THE HARIVAṀŚA PURĀṆAM

श्रीहरिवंशपुराणम्

श्रीहरिवंशपुराणम्

THE HARIVAMŚAPURĀṆAM

महापुराणम्

१. ब्रह्ममहापुराणम्	११. लिंगमहापुराणम्
२. पद्ममहापुराणम्	१२. वाराहमहापुराणम्
३. विष्णुमहापुराणम्	१३. स्कन्दमहापुराणम्
४. शिवमहापुराणम्	१४. वामनमहापुराणम्
५. भागवतमहापुराणम्	१५. कूर्ममहापुराणम्
६. नारदीयमहापुराणम्	१६. मत्स्यमहापुराणम्
७. मार्कण्डेयमहापुराणम्	१७. गरुडमहापुराणम्
८. अग्निमहापुराणम्	१८. ब्रह्माण्डमहापुराणम्
९. भविष्यमहापुराणम्	१९. वायुमहापुराणम्
१०. ब्रह्मवैवर्तमहापुराणम्	२०. विष्णुधर्मोत्तर पुराणम्
वासुकी पुराण ::	देवीभागवत
हरिवंश पुराण ::	भृंगीशपुराण

एकाम्रपुराण

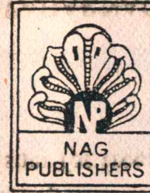
क्षेमराज श्रीकृष्णदासेन सम्पादितस्य मुम्बई श्री वेंकटेश्वरस्टीम मुद्रणालयेन प्रकाशितस्य पुनर्मुद्रण

श्रीहरिवंशपुराणम्

THE HARIVAMŚAPURĀṆAM

दिल्ली विश्वविद्यालयस्थ हिन्दूमहाविद्यालयस्य डा० राजेन्द्रनाथशर्मणा
भूमिका पाठशोधनाभ्यां परिष्कृतम्
नागशरण सिंह सम्पादित श्लोकानुक्रमण्या सहितं

PART II



NAG PUBLISHERS
11 A/U.A (POST OFFICE BUILDING) JAWAHARNAGAR, DELHI-7.

(This publication has been brought out with the financial assistance from the Government of India, Ministry of Education and Culture)

(If any defect is found in this volume please return the copy per V. P. P. for postage to the Publisher for free exchange.)

1. 11A/U.A. (Post Office Bldg.) JAWAHARNAGAR, DELHI-7
2. 8A/U.A. 3, JAWAHARNAGAR, DELHI-110007
3. JALALPURMAFI (Chunar, Mirzapur), U.P.

INTRODUCTION, TEXT & VERSE INDEX 1985
PRICE Rs. 133.00 (for 2 Volumes)

(PRINTED IN INDIA)

Published by Nag Sharan Singh for Nag Publishers, Jawahar Nagar, Delhi-7
Text printed at Gian Offset Printers, 308/2, Shahzada Bagh, Dayabasti, Delhi-35
and erse Index and Introduction at Amar Printing Press, 8/25 Vijay Nagar, Delhi—9.

॥ अथ हरिवंशे भाषाटीकायुतं तृतीयं भविष्यपर्व प्रारभ्यते ॥

श्रीगणेशाय नमः । शौनकजी बोले; हे लोमहर्षण सुत ! जन्मेजयके कितने पुत्र हैं और उनमें महात्मा पाण्डवोंका वंश किसमें प्रतिष्ठित रहा ॥ १ ॥ यह मेरे सुननेकी इच्छा है इस वार्ताके सुननेका मुझे परम कुतूहल है आपके मुखसे मैं सब सुनकर जाननेकी इच्छा करता हूं ॥ २ ॥ सौति बोले; काश्या नाम स्त्रीमें परीक्षितके पुत्र जन्मेजयके दो पुत्र हुए. राजा चन्द्रापीड और मोक्षमार्गका जाननेवाला सूर्यापीड हुआ ॥ ३ ॥ चंद्रापीडके उत्तम धनुषधारी सौ पुत्र हुए उनका कुल जानमेजय नामसे

श्रीगोपालकृष्णाय नमः ॥ शौनक उवाच ॥ जनमेजयस्य के पुत्राः पच्यन्ते लोमहर्षणे ॥ कस्मिन्प्रतिष्ठितो वंशः पाण्डवानां महात्मनाम् ॥ १ ॥ एतदिच्छाम्यहं श्रोतुं परं कौतूहलं हि मे ॥ त्वत्तः कथयतः सर्वं वेद्म्यहं तत्परिस्फुटम् ॥ २ ॥ सौतिरुवाच ॥ पारीक्षितस्य काश्यायां द्वौ पुत्रौ संबभूवतुः ॥ चन्द्रापीडश्च नृपतिः सूर्यापीडश्च मोक्षवित् ॥ ३ ॥ चन्द्रापीडस्य पुत्राणां शतमुत्तमधन्विनाम् ॥ जानमेजय इत्येवं क्षात्रं भुवि परिश्रुतम् ॥ ४ ॥ तेषां श्रेष्ठस्तु राजासीत्पुरे वाराणसाह्वये ॥ सत्यकर्णो महाबाहुर्यज्वा विपुलदक्षिणः ॥ ५ ॥ सत्यकर्णस्य दायादः श्वेतकर्णः प्रतापवान् ॥ अपुत्रः स तु धर्मात्मा प्रविवेश तपोवनम् ॥ ६ ॥ तस्माद्वनगता गर्भं यादवी प्रत्यपद्यत ॥ सुचारोर्दुहिता सुभ्रूर्मानिनी भ्रातृमालिनी ॥ ७ ॥ स तु जन्मनि गर्भस्य श्वेतकर्णः प्रजेश्वरः ॥ अन्वगच्छद्द्रुतं पूर्वैर्महाप्रस्थानमच्युतम् ॥८॥ सा दृष्ट्वा संप्रयान्तं तं मानिनी पृष्ठतोऽन्वियात् ॥ पथि सा सुषुवे सुभ्रूर्वने राजीवलोचनम् ॥९॥ कुमारं तं परित्यज्य भर्त्तारं चान्वगच्छत ॥ पतिव्रता महाभागा द्रौपदीव पुरा पतीन् ॥ १० ॥

पृथ्वीमें विख्यात हुआ ॥ ४ ॥ उनमें श्रेष्ठ राजा वाराणसीपुरीमें हुआ. महाबाहु सत्यकर्ण बडी दक्षिणाके यज्ञ करनेवाला हुआ ॥ ५ ॥ सत्यकर्णका पुत्र महाप्रतापी श्वेतकर्ण हुआ वह धर्मात्मा अपुत्र होनेसे तपोवनमें प्रविष्ट हुआ ॥ ६ ॥ उस वन जानेवालेके गर्भको यादवीने धारण किया यह सुचारुकी पुत्री सुन्दरभ्रूयुक्त भ्राताकी हितकारिणी मानिनी थी ॥ ७ ॥ वह उस गर्भके जन्मसे पहलेही श्वेतकर्ण राजा पूर्वपुरुषोंकी रीतिके अनुसार महाप्रस्थान करता हुआ ॥ ८ ॥ उसको जाता हुआ देख मानिनीभी पीछे पीछे चली मार्गमें उसके कमललोचन कुमारका जन्म हुआ ॥ ९ ॥ उस कुमारको छोड

कर वह भर्तांके पीछे पीछे चली, वह महाभागा पतिव्रता इस प्रकारसे चली, जैसे द्रौपदी अपने पतियोंके पीछे गई थी ॥ १० ॥ वह राजकुमार गिरि-कुंजमें रोने लगा उसके छाया करनेके निमित्त चारों ओरसे मेघ प्रगट हुए ॥ ११ ॥ श्रविष्ठाके दो पुत्र हुए थे, एक पिप्पलाद और कौशिक इन दोनोंने वनमें देख कृपा कर उस बालकको ग्रहण किया और जलसे प्रक्षालित किया. जिस समय उस बालकके दोनों पार्श्वभाग रुधिरालिप्त शिलापर पोंछे गये ॥ १२ ॥ तो उसकी पशली श्याम हो गइ अर्थात् छागकी समान श्यामवर्ण हो गई और वृद्धिको उसी प्रकार प्राप्त हुई ॥ १३ ॥ इस कारण उन

स तु राजकुमारोऽसौ गिरिकुञ्जे रुरोद ह ॥ छायार्थं तस्य मेघास्तु प्रादुरासन्समन्ततः ॥ ११ ॥ श्रविष्ठायाश्च पुत्रौ द्वौ पिप्पलादश्च
कौशिकः ॥ दृष्ट्वा कृपान्वितौ गृह्य तं प्रक्षालयतां जलैः ॥ निघृष्टौ तस्य तौ पार्श्वौ शिलायां रुधिरप्लुतौ ॥ १२ ॥ अजश्यामौ तु
पार्श्वौ तावुभावपि समाहितौ ॥ तथैव तु समारूढौ अजपार्श्वस्ततोऽभवत् ॥ १३ ॥ ततोऽजपार्श्व इति तौ चक्राते तस्य नाम ह ॥
स तु वेमकशालायां द्विजाभ्यामभिवर्धितः ॥ १४ ॥ वेमकस्य तु भार्या तमुद्वहत्पुत्रकारणात् ॥ वेमक्याः स तु पुत्रोऽभूद्ब्राह्मणौ
सचिवौ च तौ ॥ १५ ॥ तेषां पुत्राश्च पौत्राश्च युगपत्तुल्यजीविनः ॥ स एष पौरवो वंशः पाण्डवानां प्रतिष्ठितः ॥ १६ ॥ श्लोकोऽपि
चात्र गीतोऽयं नाहुषेण ययातिना ॥ जरासंक्रमणे पूर्वं भृशं प्रीतेन धीमता ॥ १७ ॥ आचन्द्रार्कग्रहा भूमिर्भवेदपि न संशयः ॥
अपौरवा न तु मही भविष्याति कदाचन ॥ १८ ॥ इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे भविष्यपर्वणि प्रथमोऽध्यायः ॥ १ ॥

दोनोंने उसका नाम आजपार्श्व रक्खा उन दोनों ब्राह्मणोंने वेमक नाम ऋषिके आश्रममें उसकी रक्षा कर उसे बढाया ॥ १४ ॥ वेमककी भार्याने उसको अपने पुत्रवत् पालन किया वह वेमकीका पुत्र और वे दोनों ब्राह्मण उसके मंत्री हुए ॥ १५ ॥ उसके पुत्र पौत्र एक साथ जीवनवाले हुए इस प्रकार यह पौरव वंश पाण्डवोंका प्रतिष्ठित है ॥ १६ ॥ इसमें ययाति नहुष पुत्रने श्लोक गाये हैं जो कि जराके देनेसे परम प्रसन्न हुए थे ॥ १७ ॥ कि जबतक चन्द्रमा सूर्य ग्रह स्थित रहेंगे तबतक यह भूमि पुरुवंशियोंके अधिकारमें रहेगी कभी पौरववंशहीन न होगी ॥ १८ ॥ इति श्रीमन्महाभारते

खिलेषु हरिवंशे भविष्यपर्वणि पंडितज्वालाप्रसादमिश्रकृतभाषायां प्रथमोऽध्यायः ॥ १ ॥ शौनकजी बोले; जिस प्रकार व्यासशिष्य वैशंपायनने प्रथम हरिवंशके पर्व कहे हैं; वैसेही आपने हरिवंश और सब पर्व कहे हैं ॥ १ ॥ आपका इतिहाससंयुक्त कथन अमृतकी समान सुखदाई होकर हमारे सब पाप नष्ट करता है ॥ २ ॥ सुखश्रवण कथा होनेसे हमारे मनकी प्रसन्नता होती है. हे सूत ! जन्मेजय राजा इस उत्तम आख्यानको सुनकर सर्पसत्रके उपरान्त क्या करते हुए ॥ ३ ॥ सौति बोले; जन्मेजय उस आख्यानको श्रवण कर. सर्पसत्रके उपरान्त जो करते हुए सो सुनो ॥ ४ ॥ जब सर्पसत्र समाप्त हो

शौनक उवाच ॥ उक्तोऽयं हरिवंशस्ते पर्वाणि निखिलानि च ॥ यथा पुरोक्तानि तथा व्यासशिष्येण धीमता ॥ १॥ तत्कथ्यमानममितमितिहाससमन्वितम् ॥ प्रीणात्यस्मानमृतवत्सर्वपापविनाशनम् ॥ २ ॥ सुखश्राव्यतया धीर मनो ह्लादयतीव नः ॥ जनमेजयस्तु नृपतिः श्रुत्वा चाख्यानमुत्तमम् ॥ सौते किमकरोत्पश्चात्सर्पसत्रादनन्तरम् ॥ ३ ॥ सौतिरुवाच ॥ जनमेजयस्तु स नृपः श्रुत्वा चाख्यानमुत्तमम् ॥ यदारभत्तदाख्यास्ये सर्पसत्रादनन्तरम् ॥ ४ ॥ तस्मिन्सत्रे समाप्तेऽथ राजा पारीक्षितस्तदा ॥ यष्टुं स वाजिमेधेन संभारानुपचक्रमे ॥ ५ ॥ ऋत्विक्पुरोहिताचार्यानाहूयेदमुवाच ह ॥ यक्ष्येऽहं वाजिमेधेन हयमुत्सृज्यतामिति ॥ ६ ॥ ततोऽस्य विज्ञाय चिकीर्षितं तदा कृष्णो महात्मा सहसाजगाम ॥ पारीक्षितं द्रष्टुमदीनसत्त्वं द्वैपायनः सर्वपरावरज्ञः ॥ ७ ॥ पारीक्षितस्तु नृपतिर्दृष्ट्वा तमृषिमागतम् ॥ अर्घ्यपाद्यासनं दत्त्वा पूजयामास शास्त्रतः ॥ ८ ॥ तौ चोपविष्टावभितः सदस्यास्तस्य शौनक ॥ कथा बहुविधाश्चित्राश्चक्राते वेदसंहिताः ॥ ९ ॥ ततः कथान्ते नृपतिर्नोदयामास तं मुनिम् ॥ पितामहं पाण्डवानामात्मनः प्रपितामहम् ॥ १० ॥

चुका तब राजाने अश्वमेध यज्ञ करनेकी इच्छा की ॥ ५ ॥ ऋत्विक् पुरोहित आचार्यको बुलाकर राजाने कहा; मैं अश्वमेध यज्ञ करूंगा. घोडा छोडना उचित है ॥ ६ ॥ तब इनकी यह चेष्टा देखकर सब परावरके जाननेवाले महात्मा व्यासजी जन्मेजयके देखनेको आये ॥ ७ ॥ जन्मेजय राजाने उनको आया देखकर अर्घ्य पाद्य आसन दे शास्त्रद्वारा पूजन किया ॥ ८ ॥ उनके सभामें स्थित होनेसे हे शौनक ! वेदसम्बन्धी बहुतसी कथा कहने लगे ॥ ९ ॥ कथाके अन्तमें नृपतिने उन मुनिको प्रेरणा की जो कि पाण्डवोंके पितामह और अपने प्रपितामह थे ॥ १० ॥

आपका निर्मित बहुतसे श्रुतिके विस्तारसे युक्त महाभारत सुनकर वह समय निमेषमात्रकी समान बीता ॥ ११ ॥ विभूतिका विस्तार करनेवाला सबको यशयुक्त करनेवाला है. हे ब्रह्मन् ! वह आपका निर्मित शंखमें क्षीरकी समान रक्खा है ॥ १२ ॥ स्वर्गसुख और अमृतसे तृप्ति होती है परन्तु इस भारती कथाके श्रवण करनेसे मेरी तृप्ति नहीं होती ॥ १३ ॥ आपको सर्वज्ञ जानकर मैं पूछता हूं. मेरे मतमें कुरुवंशके नाशका कारण राजसूय यज्ञ है॥ १४॥ दुःसह राजोंका ध्वंस इस राजसूयके कारणही कल्पित हुआ है ॥ १५ ॥ हमने सुना है कि; पूर्वकाल सोमने राजसूय यज्ञ किया था उसीके अन्तमें

महाभारतमाख्यानं बह्वर्थं श्रुतिविस्तरम् ॥ निमेषमात्रमपि मे सुखश्राव्यतया गतम्॥ ११॥ विभूतिविस्तारकरं सर्वेषां वै यशस्करम् ॥ त्वया सुविहितं ब्रह्मन् शङ्खे क्षीरमिवाहितम् ॥ १२ ॥ अमृतेन तु तृप्तिः स्याद्यथा स्वर्गसुखेन च ॥ तथा तृप्तिं न गच्छामि श्रुत्वेमां भारतीं कथाम् ॥ १३ ॥ अनुमान्य तु सर्वज्ञं पृच्छामि भगवन्नहम् ॥ हेतुः कुरूणां नाशस्य राजसूयो मतो मम ॥ १४ ॥ दुःसहानां यथा ध्वंसो राजन्यानामुपप्लवे ॥ राजसूयं तथा मन्ये युद्धार्थमुपकाल्पितम् ॥ १५॥ राजसूयस्तु सोमेन श्रूयते पूर्वमाहृतः ॥ तस्यान्ते सुमहद्युद्धमभवत्तारकामयम् ॥१६॥ आहृतो वरुणेनाथ तस्यान्ते सुमहाक्रतोः ॥ देवासुरं महायुद्धं सर्वभूतक्षयावहम् ॥१७॥ हरिश्चन्द्रश्च राजर्षिः क्रतुमेनमुपाहरत ॥ तत्राप्याडीबकं नाम युद्धं क्षत्रियनाशनम् ॥ १८ ॥ ततोऽनन्तरमार्गेण पाण्डवेनातिदुस्तरः ॥ महाभारत आरम्भः संभृतोऽग्निरिव क्रतुः ॥१९॥ तदस्य मूलं युद्धस्य लोकक्षयकरस्य तु ॥ राजसूयो महायज्ञः किमर्थं न निवारितः ॥ २० ॥

तारकामय महासंग्राम हुआ था ॥ १६ ॥ उसके अन्तमें वरुणने महायज्ञ किया था तब सर्वभूतक्षयकारी महान् देवासुरसंग्राम हुआ था ॥ १७ ॥ राजर्षि हरिश्चन्द्रने यह यज्ञ किया था उस समय आडीबक नाम महाभयंकर क्षत्रियनाशी युद्ध हुआ था. (आडी जलचर पक्षिविशेषरूप वसिष्ठ और बकरूप विश्वामित्र थे. ऋषिरूपसे लज्जाके कारण युद्ध न कर सके. इस कारण इस रूपसे वर्णन किया. इन दोनोंके पक्षपाती राजोंमें संग्राम हुआ) ॥ १८ ॥ इसके उपरान्त पाण्डवोंने इस दुस्तर यज्ञका प्रारंभ किया. इसमें अग्निकी समान महाभारतका प्रारंभ हुआ ॥ १९ ॥ सो इस लोकक्षयकारी युद्धका मूल

राजसूय महायज्ञ किस कारण निवारण न किया ॥ २० ॥ राजसूय यज्ञ सर्वांगसहित होना कठिन है. यज्ञांगके मिथ्या प्रणीत होनेमें प्रजाओंका अवश्य नाश होता है ॥ २१ ॥ आपभी सब पूर्वजोंके पितामह हैं. आप अतीत अनागतके स्वामी हमारे आदिकर्ता हो ॥ २२ ॥ आपसे नेता होनेपरभी वे बुद्धिमान् नीतिसे किस प्रकार चलायमान हुए. अनाथ अथवा कुशिक्षकही पुरुष अपराध करते हैं ॥ २३ ॥ व्यासजी बोले; तुम्हारे पूर्वपितामह कालानुसारही विपरीतकर्ता हुए थे न उन्होंने मुझसे भविष्य पूछा और विना पूछे मैं कहता नहीं हूं ॥ २४ ॥ भविष्यके निवृत्त करनेकी मुझे

राजसूयो ह्यसंहार्यो यज्ञाङ्गैश्च दुरत्ययैः ॥ मिथ्या प्रणीते यज्ञाङ्गे प्रजानां संक्षयो ध्रुवः ॥ २१ ॥ भवानपि च सर्वेषां पूर्वेषां नः पितामहः ॥ अतीतानागतज्ञश्च नाथश्चादिकरश्च नः ॥ २२ ॥ ते कथं भवता नेत्रा बुद्धिमन्तश्च्युता नयात् ॥ अनाथा ह्यपराद्ध्यन्ते कुनेतारश्च मानवाः ॥ २३ ॥ व्यास उवाच ॥ कालेन विपरीतास्ते तव पूर्वपितामहाः ॥ न मां भविष्यं पृच्छन्ति न चापृष्टोऽब्रवीम्यहम् ॥ २४ ॥ सामर्थ्यं च न पश्यामि भविष्यस्य निवर्तने ॥ परिहर्तुं न शक्या हि कालेन विहिता गतिः ॥ २५ ॥ त्वया त्विदमहं पृष्टो वक्ष्याम्यागन्तु भावि यत् ॥ अतश्च बलवान्कालः श्रुत्वापि न करिष्यसि ॥२६॥ न संरम्भान्न चारम्भान्न वै स्थास्यसि पौरुषे ॥ लेखा हि काललिखिताः सर्वथा दुरतिक्रमाः ॥ २७ ॥ अश्वमेधः क्रतुः श्रेष्ठः क्षत्रियाणां परिश्रुतः ॥ तेन भावेन ते यज्ञं वासवो धर्षयिष्यति ॥ २८ ॥ यदि तच्छक्यते राजन्परिहर्तुं कथंचन ॥ दैवं पुरुषकारेण मा यजेथाश्च तं क्रतुम्॥ २९ ॥

सामर्थ्य नहीं है. कालकी विधान की हुई गतिको कोई नष्ट नहीं कर सकता है ॥ २५ ॥ अब तुमने मुझसे पूछा है इस कारण मैं भावि अर्थको कहता हूं. इससे काल बलवान् है सुनकरभी कोई नहीं मेट सकता ॥ २६ ॥ भय आरंभ उत्साह पुरुषार्थभी कोई कालकी गतिको मेट नहीं सकता. कालकी गति दुरतिक्रम है ॥ २७ ॥ क्षत्रियोंके निमित्त अश्वमेध सर्वश्रेष्ठ यज्ञ कहा है. इसी भावसे तुम्हारे यज्ञको इन्द्र धर्षित करेगा ॥ २८ ॥ हे राजन् ! जो तुम उसे किसी प्रकार परिहरण करनेको समर्थ हो जो दैवको पुरुषकारसे मेटनेकी इच्छा करो तो इस यज्ञको मत यजन करो ॥ २९ ॥

इन्द्र वा तुम्हारे उपाध्यायगणोंका इसमें अपराध नहीं है न तुम यजमानका अपराध है. कालही दुरतिक्रम है ॥ ३० ॥ उस परमेष्ठी कालकीही यह संस्था की हुई है यह प्रजासर्ग युगक्षयमें यथेष्ट गतिको प्राप्त होगा ॥ ३१ ॥ ब्राह्मणभी इसी प्रकार यज्ञके फलके बेचनेवाले होंगे. यह त्रिलोकी चराचर कालकेही आधीन जानो ॥ ३२ ॥ अश्वमेधकी निवृत्तिमें क्या निमित्त होगा उसे सुनकर मैं इसको परिहार करूंगा. यदि आप कहना उचित समझो तौ इसे कहिये ॥ ३३ ॥ व्यासजी बोले; हे प्रभो ! इसमें ब्रह्मकोपही निमित्त होगा. सो इसके परिहारका यत्न करो तुम्हारा कल्याण

न चापराधः शक्रस्य नोपाध्यायगणस्य ते ॥ तव वा यजमानस्य कालोऽत्र दुरतिक्रमः॥३० ॥ तस्य संस्थाकृतमिदं कालस्य परमेष्ठिनः ॥ यथादृष्टं प्रजासर्गं गमिष्यति युगक्षये ॥३१॥ तथा यज्ञफलानां च विक्रेतारो द्विजातयः ॥ तत्प्रणेयं निबोधस्व त्रैलोक्यं सचराचरम् ॥ ३२ ॥ जनमेजय उवाच ॥ निवृत्तावश्वमेधस्य किं निमित्तं भविष्यति ॥ श्रुत्वा परिहरिष्यामि भगवन्यदि मन्यसे ॥३३॥ व्यास उवाच ॥ निमित्तं भविता तत्र ब्रह्मकोपकृतं प्रभो ॥ यतेथाः परिहर्तुं त्वमित्येतद्भद्रमस्तु ते ॥ ३४ ॥ त्वया वृत्तं क्रतुं चैव वाजिमेधं परंतप ॥ क्षत्रिया नाहरिष्यन्ति यावद्भूमिर्धरिष्यति ॥३५॥ जनमेजय उवाच ॥ निवृत्तावश्वमेधस्य ब्रह्मशापाग्नितेजसा ॥ अहं निमित्तमिति मे भयं तीव्रं तु जायते ॥ ३६ ॥ कथं ह्यकीर्त्या युज्येत सुकृती मद्विधो जनः ॥ लोकानुत्सहते गन्तुं खं सपाश इव द्विजः ॥ ३७ ॥ यथा ह्यनागतमिदं दृष्टमत्र प्रणाशनम् ॥ यद्यस्ति पुनरावृत्तिर्यज्ञस्याश्वासयस्व माम् ॥ ३८ ॥

हो ॥ ३४ ॥ हे परंतप ! यह तुम्हारा प्रवृत्त किया अश्वमेध पृथ्वीके सम्पूर्ण क्षत्रियोंका हर्ता होगा. अर्थात् तुम्हारे शिवाय फिर और कोई पृथ्वीपर आगे अश्वमेध यज्ञ न करेगा ॥ ३५ ॥ जन्मेजय बोले; अश्वमेधकी निवृत्तिमें ब्राह्मण शापरूप अग्निके तेजमें मैं निमित्त हूं. इसका मुझको महाभय उपजता है ॥ ३६ ॥ मुझसरीखा सुकृती मनुष्य किस प्रकार अकीर्ति कर कार्यमें प्रवृत्त हो उत्तम लोकमें जा सकता है. जिस प्रकार पाशबँधा पक्षी आकाशमें नहीं उड सकता ॥ ३७ ॥ और जो इसमें अनागत दीखता है अर्थात् जिस प्रकार इसमें नष्टता देखी है. फिर इस यज्ञका प्रारंभ

किस प्रकार किया जायगा इस वार्तासे मुझको आश्वासन दीजिये ॥ ३८ ॥ व्यासजी बोले; उपसंहार किया यह अश्वमेध देवता और ब्राह्मणोंमें ज्ञानरूपसे स्थित होगा. जिस प्रकार तेजसे व्याहत तेज अग्निमें स्थित होता है ॥ ३९ ॥ पृथ्वीके खोदनेसे कोई उद्भिज्ज कश्यपगोत्र सेनापति होगा. वह कलियुगमें फिर अश्वमेधको पूरा करेगा ॥ ४० ॥ उस युगमें उसके कुलमें उपजा पुरुष राजसूय यज्ञ करेगा. हे राजेन्द्र ! वह प्रलयकाल श्वेतग्रहके उत्पातकी समान हरणकर्ता होगा ॥ ४१ ॥ और वह बलके अनुसार किया करनेवाले मनुष्योंको फल देगा और ऋषियोंके छिपाये हुए युगा-

व्यास उवाच ॥ उपात्तयज्ञो देवेषु ब्राह्मणेषूपपत्स्यते ॥ तेजसा व्याहतं तेजस्तेजस्येवावतिष्ठते ॥ ३९ ॥ औद्भिज्जो भविता कश्चित्सेनानीः काश्यपो द्विजः ॥ अश्वमेधं कलियुगे पुनः प्रत्याहरिष्याति ॥ ४० ॥ तद्युगे तत्कुलीनश्च राजसूयमपि क्रतुम् ॥ आहरिष्यति राजेन्द्र श्वेतग्रहमिवान्तकः ॥ ४१ ॥ यथाबलं मनुष्याणां कर्तॄणां दास्यते फलम् ॥ युगान्तद्वारमृषिभिः संवृतं विचरिष्यति ॥ ४२ ॥ तदाप्रभृति हास्यन्ति नृणां प्राणाः पुराकृतीः ॥ न निवर्तिष्यते लोके वृत्तान्तावर्तनेष्विह ॥ ४३ ॥ तदा सूक्ष्मो महोदर्को दुस्तरो दानमूलवान् ॥ चातुराश्रम्यशिथिलो धर्मः प्रविचलिष्याति ॥४४॥ तदा ह्यल्पेन तपसा सिद्धिं प्राप्स्यन्ति मानवाः ॥ धन्या धर्मं चरिष्यन्ति युगान्ते जनमेजय ॥ ४५ ॥ इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे भविष्यपर्वणि द्वितीयोऽध्यायः ॥२॥ जनमेजय उवाच ॥ आसन्नं विप्रकृष्टं वा यदि कालं न विद्महे ॥ तस्माद्द्वापरसंविद्धं युगान्तं स्पृहयाम्यहम् ॥ १ ॥

न्तद्वारमें विचरण करेगा ॥ ४२ ॥ उस समयसे लेकर मनुष्योंकी इन्द्रिय पुराकृत शिष्टाचारोंके पूर्ववृत्तान्तोंको त्यागन कर देगी. परन्तु वार्ताओंके आवर्त संसार निवृत्त नहीं होगा ॥ ४३ ॥ तब सूक्ष्म अतितेजवान् दुस्तर दानमूलवाला चारों आश्रमोंका धर्म शिथिल हो जायगा कुत्रचित् प्रकाशित होगा ॥ ४४ ॥ उस समय मनुष्य थोडेही तपसे सिद्धिको प्राप्त होंगे. हे जन्मेजय ! युगान्तमें जो धर्माचरण करेंगे वे बडे धन्य होंगे ॥४५॥ इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे भविष्यपर्वणि भाषायां द्वितीयोऽध्यायः ॥ २ ॥ जन्मेजय बोले; यदि हम आसन्न और विप्रकृष्ट कालको नहीं

जानते हैं आगेका समय महाअधर्मयुक्त होगा तो हम द्वापर सम्बद्ध कलिके सुननेकी इच्छा करते हैं ॥ १ ॥ इस धर्म तृष्णासे हम उस कालको प्राप्त हुए हैं इस कारण अल्पकर्म करके सुखपूर्वक परम धर्मको प्राप्त होवेंगे ॥ २ ॥ शौनक बोले; त्रास और उद्वेग करनेवाला युगांत प्राप्त हुआ है. हे धर्मज्ञ ! प्रणष्ट हुए धर्मको निमित्तद्वारा आप हमसे कहिये ॥ ३ ॥ सौति बोले; इस प्रकार भविष्यकी गति तत्त्वसे चिन्तन करते हुए युगान्तके धर्मोंको भगवान् कहने लगे ॥ ४ ॥ व्यासजी बोले प्रजाकी रक्षा करनेसे रहित बलिभाग ग्रहण करनेवाले अपनी रक्षामें निपुण राजा युगान्तमें उत्पन्न

प्राप्ता वयं तु तत्कालमनया धर्मतृष्णया ॥ आद्व्यात्परमं धर्मं सुखमल्पेन कर्मणा ॥ २ ॥ शौनक उवाच ॥ त्रासमुद्वेगकरणं युगान्तं समुपस्थितम् ॥ प्रणष्टधर्मं धर्मज्ञ निमित्तैर्वक्तुमर्हसि ॥ ३ ॥ सौतिरुवाच ॥ पृष्ट एवं भविष्यस्य गतिं तत्त्वेन चिन्तयन् ॥ युगान्ते सर्वभूतानां भगवानब्रवीत्तदा ॥ ४ ॥ व्यास उवाच ॥ अरक्षितारो हर्तारो बलिभागस्य पार्थिवाः ॥ युगान्ते प्रभविष्यन्ति स्वरक्षणपरायणाः ॥ ५ ॥ अक्षत्रियाश्च राजानो विप्राः शूद्रोपजीविनः ॥ शूद्राश्च ब्राह्मणाचारा भविष्यन्ति युगक्षये ॥ ६ ॥ काण्डे स्पृष्टाः श्रोत्रियाश्च निष्क्रियाणि हवींष्यथ ॥ एकपंक्त्यामशिष्यन्ति युगान्ते जनमेजय ॥ ७ ॥ शिल्पवन्तोऽनृतपरा नरा मद्यामिषप्रियाः ॥ मित्रभार्यां भजिष्यन्ति युगान्ते जनमेजय ॥८॥ राजवृत्तिस्थिताश्चौरा राजानश्चौरशीलिनः ॥ भृत्याश्चानिर्दिष्टभुजो भविष्यन्ति युगक्षये ॥ ९ ॥ धनानि श्लाघनीयानि सतां वृत्तमपूजितम् ॥ अकुत्सना च पतिते भविष्यति युगक्षये ॥ १० ॥

होंगे ॥ ५ ॥ राजा क्षत्रियवंशहीन और ब्राह्मण शूद्रोपजीवी होंगे और शूद्र कलियुगमें ब्राह्मणोंके आचारवाले होंगे ॥ ६ ॥ श्रोत्रिय ब्राह्मण बाणधारी होंगे. हवि पंचयज्ञहीन होंगे. हे जन्मेजय ! कलियुगमें सब एक पंक्तिमें बैठकर भोजन करेंगे ॥ ७ ॥ कारीगरीसे युक्त असत्यभाषी मद्य आमिष प्रिय मनुष्य मित्रकी भार्यासे भोग करनेवाले मनुष्य कलियुगमें होंगे ॥ ८ ॥ चोर राजवृत्तिमें स्थित और राजा चोरोंसे हित करनेवाले होंगे. तथा युगक्षयमें भृत्य स्वामीका द्रव्य चुरानेवाले होंगे ॥ ९ ॥ धनकी श्लाघा होगी सत्पुरुषोंके आचरण कोई न करेगा तथा कोई

पतित होगा तथापि युगक्षयमें उसकी निन्दा न होगी ॥ १० ॥ धर्माधर्मके स्वरूपबोधसे रहित संन्यासी मुक्तकेश विधवा परस्पर मिलकर प्रजा उत्पन्न करेंगी तथा दूसरे प्राणी सोलह वर्षसे पहलेही सन्तान उत्पन्न करेंगे ॥ ११ ॥ सब प्राणी अन्न बेचेंगे ब्राह्मण वेदके बेचनेवाले होंगे तथा स्त्री भग बेचनेवाली कलियुगमें होंगी ॥ १२ ॥ सबही ब्रह्मज्ञानी और सबही वाजसनेयि शाखावाले होंगे कारण कि और शाखाओंका लोप हो जायगा और कलियुगमें शूद्र 'भो भगवन्' आदि शब्दोंके उच्चारण करनेवाले होंगे ॥ १३ ॥ ब्राह्मण तप और यज्ञके बेचनेवाले होंगे. युगक्षयमें विपरीत ऋतु

प्रणष्टचेतना मर्त्या मुक्तकेशा विचूलिनः ॥ ऊनषोडशवर्षाश्च प्रजास्यन्ति नराः सदा ॥ ११ ॥ अट्टशूला जनपदाः शिवशूलाश्चतुष्पथाः ॥ प्रमदाः केशशूलाश्च भविष्यन्ति युगक्षये ॥ १२ ॥ सर्वे ब्रह्म वदिष्यन्ति सर्वे वाजसनेयिनः ॥ शूद्रा भोवादिनश्चैव भविष्यन्ति युगक्षये ॥ १३ ॥ तपोयज्ञफलानां च विक्रेतारो द्विजातयः ॥ ऋतवश्च भविष्यन्ति विपरीता युगक्षये ॥ १४ ॥ शुक्लदन्ता जिताक्षाश्च मुण्डाः काषायवाससः ॥ शूद्रा धर्मं चरिष्यन्ति शाक्यबुद्धोपजीविनः ॥ १५ ॥ श्वापदप्रचुरत्वं च गवां चैव परिक्षयः ॥ स्वादूनां विनिवृत्तिश्च विद्यादन्तगते युगे ॥ १६ ॥ अन्त्या मध्ये निवत्स्यन्ति मध्याश्चान्तनिवासिनः ॥ यथानिम्नं प्रजाः सर्वा गमिष्यन्ति युगक्षये ॥ १७ ॥ तथा द्विहायना दम्यास्तथा पल्वलकर्षकाः ॥ चित्रवर्षी च पर्जन्यो युगे क्षीणे भविष्यति ॥ १८ ॥ सर्वे चौरकुले जाताश्चौरयानाः परस्परम् ॥ स्वल्पेनाढ्या भविष्यन्ति यत्किंचित्प्राप्य दुर्गताः ॥ १९ ॥

होंगी ॥ १४ ॥ श्वेत दांत सूक्ष्मदृष्टिवाले मुंडी काषाय वस्त्र पहरे शाक्यमतकी उपजीविका करनेवाले शूद्र धर्मको करेंगे ॥ १५ ॥ हिंस्र जीव अधिक होंगे गौओंका क्षय होगा और युगान्तमें स्वादुरसोंकी हीनता होगी ॥ १६ ॥ अन्त्यजाति म्लेच्छादि मध्य कुरु पांचालादि देशोंमें निवास करेंगी और मध्यनिवासी अंत्यमें जा बसेंगे युगक्षयमें प्रजा अधोमार्गकोही प्राप्त होती जायगी ॥ १७ ॥ किसान दो वर्षके बछडोंको नाथ डालेंगे तथा वधिया करेंगे तथा युगक्षयमें मेघ कहीं वर्षेंगे नहीं वर्षेंगे ॥ १८ ॥ चोरोंके कुलमें जन्मते हुए सब चोरीही परस्पर करेंगे, थोडाही कुछ प्राप्त करनेसे दरिद्र अपनेको धनाढ्य

समझेंगे ॥ १९ ॥ युगान्तमें मनुष्य धर्म नहीं करेंगे. पृथ्वी ऊषर अधिक और चोरोंसे मार्ग आवृत होंगे ॥ २० ॥ कलियुगमें सब वाणिज्य करेंगे पिताके दिये हुए द्रव्यका पुत्र विभाग करेंगे और लाभसे झूंठे विरोध कर उसके हरणमें प्रवृत्त होंगे ॥ २१ ॥ सुकुमारता रूपलावण्यताके क्षय होनेसे स्त्रीजन कलियुगमें केशमात्रसे अलंकृत होगी ॥ २२ ॥ निर्विहारभूत गृहस्थको कलिमें स्त्रीके सिवाय कोई वस्तु प्रिय न होगी ॥ २३ ॥ स्त्री कुशील और वृथारूपसे युक्त होगी पुरुष थोडे और स्त्री बहुत होंगी ॥ २४ ॥ लोक परस्पर बहुत मांगनेवाले होंगे वर्णान्तरोंसे विना विचार दान ले लेंगे ॥ २५ ॥

न ते धर्मं करिष्यन्ति मानवा निर्गते युगे ॥ ऊषाकबहुला भूमिः पन्थानस्तस्करावृताः ॥ २० ॥ सर्वे वाणिज्यकाश्चैव भविष्यन्ति कलौ युगे ॥ पितृदत्तानि देयानि विभजन्ते सुतास्तदा ॥ हरणाय प्रपत्स्यन्ते लोभानृतविरोधिताः ॥ २१ ॥ सौकुमार्ये तथा रूपे रत्ने चोपक्षयं गते ॥ भविष्यन्ति युगान्ते च नार्यः केशैरलंकृताः ॥ २२ ॥ निर्विहारस्य भूतस्य गृहस्थस्य भविष्यति ॥ युगान्ते समनुप्राप्ते नान्या भार्यासमा गतिः ॥ २३ ॥ कुशीलानार्यभूयिष्ठं वृथारूपसमन्वितम् ॥ पुरुषाल्पं बहुस्त्रीकं तद्युगान्तस्य लक्षणम् ॥ २५ ॥ बहुयाचनको लोको न दास्यति परस्परम् ॥ अविचार्य ग्रहीष्यन्ति दानं वर्णान्तरात्तथा ॥ २५ ॥ राजचौराग्निदण्डार्तो जनः क्षयमुपेष्यति ॥ सस्यनिष्पत्तिरफला तरुणा वृद्धशीलिनः ॥ ईहया सुखिनो लोका भविष्यन्ति युगक्षये ॥ २६ ॥ वर्षासु वाताः परुषा नीचाः शर्करवर्षिणः ॥ संदिग्धः परलोकश्च भविष्यति युगक्षये ॥२७॥ आत्मानश्च दुराचारा ब्रह्मदूषणतत्पराः ॥ आत्मानं बहु मन्यन्ते मन्युरेवाभ्ययाद्द्विजान् ॥ २८ ॥

राजा चोर अग्नि और दंडसे पीडित होकर प्रजा व्याकुल हो जायगी. शस्य सम्पत्ति निष्फल और तरुण वृद्धोंकी समान कार्य करेंगे. युगक्षयमें प्रजा मनसेही अपनेको सुखी मानेगी ॥ २६ ॥ वर्षामें तीक्ष्ण पवन चलेगी. नीच और शर्करावर्षी होंगे. युगक्षयमें परलोककाभी संदेह होगा ॥ २७ ॥ स्वयं दुराचारी स्वयं ब्रह्मदूषण तत्पर अपनेको बहुत माननेवाले ब्राह्मण महाक्रोधी होंगे ॥ २८ ॥

राजाभी धनधान्योपजीवी वैश्याचारसे जीनेवाले होंगे. युगके अन्तमें इस प्रकार ब्राह्मण होंगे ॥ २९ ॥ विनाहीं कारण परस्पर शपथ करने लगेंगे. ऋण लेने देनेमें बडी अविनय होगी ॥ ३० ॥ प्रसन्नता फलरहित और क्रोध सफल होगा. दूधकी स्थितिके निमित्त बकरीयोंको दूधके निमित्त पालैंगे ॥ ३१ ॥ अशास्त्रीय विद्वान् कहावेंगे. ऐसा उनका स्वभावही होगा और वे पंडितमानी नीतिको अप्रमाण कहेंगे ॥ ३२ ॥ युगक्षयमें शास्त्रोक्तके अप्रवक्ता होंगे. वृद्धोंकी सेवा किये विना सब अपनेको सर्वशास्त्रका ज्ञाता कहेंगे ॥ ३३ ॥ युगान्तमें कोई कवितारहित नहीं होगा;

वैश्याचाराश्च राजन्या धनधान्योपजीविनः ॥ युगापक्रमणे सर्वे भविष्यन्ति द्विजातयः ॥ २९ ॥ अप्रवृत्ताः प्रपत्स्यन्ते समयाः शपथास्तथा ॥ ऋणं सविनयभ्रंशं युगे क्षीणे भविष्यति ॥ ३० ॥ भविष्यत्यफलो हर्षः क्रोधश्च सफलो नृणाम् ॥ अजाश्चैवोपरो-त्स्यन्ते पयसोऽर्थे युगक्षये ॥ ३१ ॥ अशास्त्रविदुषां पुंसामेवमेव स्वभावतः ॥ अप्रमाणं वदिष्यन्ति नीतिं पण्डितमानिनः ॥ ३२ ॥ शास्त्रोक्तस्याप्रवक्तारो भविष्यन्ति युगक्षये ॥ सर्वं सर्वं हि जानन्ति वृद्धाननुपसेव्य वै ॥ ३३ ॥ न कश्चिदकविर्नाम युगान्ते समुप-स्थिते ॥ नक्षत्राणि नियोक्ष्यन्ति विकर्मस्था द्विजातयः ॥ चौरप्रायाश्च राजानो युगान्ते पर्युपस्थिते ॥ ३४ ॥ कुण्डा वृषा नैकृतिकाः सुरापा ब्रह्मवादिनः ॥ अश्वमेधेन यक्ष्यन्ति युगान्ते जनमेजय ॥ ३५ ॥ अयाज्यान्याजयिष्यन्ति तथाभक्ष्यस्य भक्षिणः ॥ ब्राह्मणा धनतृष्णार्ता युगान्ते समुपस्थिते ॥ ३६ ॥ भोशब्दमभिधास्यन्ति नच कश्चित्पठिष्यति ॥ एकशङ्खास्तथा नार्यो गवेधुक-पिनद्धकाः ॥ ३७ ॥ नक्षत्राणि वियोगीनि विपरीता दिशस्तथा ॥ संध्यारागोऽथ दिग्दाहो भविष्यत्यवरे युगे ॥ ३८ ॥

विकर्ममें स्थित ब्राह्मण नक्षत्र गिनकर आजीविका करेंगे और युगान्तमें राजा प्रायता करके चोर हो जांयगे ॥ ३४ ॥ जीवितपति होनेसे जारसे उत्पन्न पुत्र कुंड वृष नैकृत सुरापी ब्रह्मवाद करता होंगे. हे जन्मेजय ! यह अनधिकारी युगान्तमें अश्वमेध करेंगे ॥ ३५ ॥ अयाजोंको यज्ञ करावेंगे और अभक्ष्यका भक्षण करेंगे युगान्तमें ब्राह्मण तृष्णासे आर्त हो जांयगे ॥ ३६ ॥ कोई विद्या नहीं पढेंगे. परन्तु परस्पर भोशब्द उच्चारण करेंगे. गवे-धुक तथा चोंटली धारण करनेवाली स्त्री होंगी ॥ ३७ ॥ नक्षत्रोंके वर्ण बदल जांयगे. शास्त्ररहित गति होगी संध्या समय लाली और दिग्दाह युग-

क्षयमें होगा ॥ ३८ ॥ पिताओंको पुत्र और बहुएं सासोंको कार्यमें नियुक्त करेंगी नीच जातिकी स्त्रियोंसे सब वर्ण भोग करेंगे ॥ ३९ ॥ शिष्य गुरुओंको वाणीरूपी बाणसे जर्जरित करेंगे और प्रमत्त हो पुरुष स्त्रियोंके मुखोंमें भोग करेंगे ॥ ४० ॥ बलि वैश्वदेव किये विनाही मनुष्य भोजन करेंगे भिक्षाबलिको विना दिये स्वयं पुरुष भोजन करेंगे ॥ ४१ ॥ सोते हुए पुरुषोंको त्याग स्त्री भोगार्थ अन्यपुरुषोंके पास जांयगी और पुरुष सोई स्त्रियोंको त्याग परस्त्रियोंके निकट जांयगे ॥ ४२ ॥ सब मनुष्य व्याधित और शूलयुक्त होंगे तथा परस्पर बुराई करनेवाले होंगे. युगके क्षीण होनेमें कोई कृति

पितॄन्पुत्रा नियोक्ष्यन्ति वध्वः श्वश्रूश्च कर्मसु ॥ वियोनिषु चरिष्यन्ति प्रमदासु नरास्तदा ॥ ३९ ॥ वाक्शरैस्तर्जयिष्यन्ति गुरून् शिष्यास्तथैव च ॥ मुखेषु च प्रयोक्ष्यन्ति प्रमत्ताश्च नरास्तदा ॥ ४० ॥ अकृताग्राणि भोक्ष्यन्ति नराश्चैवाग्निहोत्रिणः ॥ भिक्षां बलिमदत्त्वा च भोक्ष्यन्ति पुरुषाः स्वयम् ॥ ४१ ॥ पतीन्सुप्तान्वञ्चयित्वा गमिष्यन्ति स्त्रियोऽन्यतः ॥ पुरुषाश्च प्रसुप्तासु भार्यासु च परस्त्रियम् ॥ ४२ ॥ नाव्याधितो नाप्यरुजो जनः सर्वोऽभ्यसूयकः ॥ न कृतिप्रतिकर्ता च काले क्षीणे भविष्यति ॥ ४३ ॥ इति श्रीम० भवि० तृतीयोऽध्यायः ॥ ३ ॥ जनमेजय उवाच ॥ एवं विलुलिते लोके मनुष्याः केन पालिताः ॥ निवत्स्यन्ति किमाचाराः किमाहारविहारिणः ॥ १ ॥ किंकर्माणः किमीहन्तः किंप्रमाणः किमायुषः ॥ कां च काष्ठां समासाद्य प्रपत्स्यन्ति कृतं युगम् ॥ २ ॥ व्यास उवाच ॥ अत ऊर्ध्वं च्युते धर्मे गुणहीनाः प्रजास्ततः ॥ शीलव्यसनमासाद्य प्राप्स्यन्ते ह्रासमायुषः ॥ ३ ॥ आयुर्हान्या बलग्लानिर्बलग्लान्या विवर्णता ॥ वैवर्ण्याद्व्याधिसंपीडा निर्वेदो व्याधिपीडनात् ॥ ४ ॥

और प्रतिकर्ता नहीं होगा ॥ ४३ ॥ इति श्रीमन्महाभारते खिलेषु हरिवंशे भविष्यपर्वणि भाषायां तृतीयोऽध्यायः ॥ ३ ॥ ॥ ७ ॥ जन्मेजय बोले; जब इस प्रकार लोक ललित होंगे तब मनुष्य किसके द्वारा पालित होंगे तब किस आचार और आहार विहारसे युक्त होंगे ॥ १ ॥ क्या कर्मवाले किस चेष्टावाले, किस प्रमाण और किस अवस्थाके मनुष्य होंगे. किस दशाको प्राप्त होकर वे सब युगको प्राप्त होंगे ॥ २ ॥ व्यासजी बोले धर्महीन होनेसे सब प्रजा गुणहीन हो जायगी. शीलके व्यसनको प्राप्त होकर आयुके ह्रासको प्राप्त होंगे ॥ ३ ॥ आयुकी हीनता होनेसे बलकी हानि और

बलहानि होनेसे विवर्णता, विवर्णतासे व्याधिपीडा और व्याधिपीडासे निर्वेद होता है ॥ ४ ॥ निर्वेदसे आत्मसंबोध, संबोधसे धर्मशीलता होती है. इस प्रकार पराकाष्ठाको प्राप्त हो प्राणी सत्ययुगको प्राप्त होंगे ॥ ५ ॥ कितने पुरुष किसी उद्देशसे धर्मशील होंगे कोई मध्यस्थताको प्राप्त होंगे. कोई हेतुवादमें आश्चर्यकरनेवाले ईर्षाशील होंगे ॥ ६ ॥ प्रत्यक्ष और अनुमानको निश्चय करनेवाले प्रत्यक्ष प्रमाणही मानकर पंडिताईका अभिमान करेंगे ॥ ७ ॥ कोई मनुष्य वेदोक्त वाक्यको अप्रमाण करेंगे स्त्रियोंका जीवन योनिसेही होगा ॥ ८ ॥ कोई धर्मलोप नास्तिक होंगे मूढ और पंडितमानी मनुष्य कलिमें होंगे ॥ ९ ॥ प्राणियोंकी

निर्वेदादात्मसंबोधः संबोधाद्धर्मशीलता ॥ एवं गत्वा परां काष्ठां प्रपत्स्यन्ति कृतं युगम् ॥ ५ ॥ उद्देशतो धर्मशीलः केचिन्मध्यस्थतां गताः ॥ विमर्षशीलाः केचित्तु हेतुवादकुतूहलाः ॥ ६ ॥ प्रत्यक्षमनुमानं च प्रमाणं चेति निश्चिताः ॥ प्रमाणैकं करिष्यन्ति नोतिपण्डितमानिनः ॥ ७ ॥ अप्रमाणं करिष्यन्ति वेदोक्तमपरे जनाः ॥ तदा सुखभगाश्चैव भविष्यन्ति स्त्रियोऽपराः ॥ ८ ॥ नास्तिक्यपरमाश्चापि केचिद्धर्मविलोपकाः ॥ भविष्यन्ति नरा मूढा मन्दाः पण्डितमानिनः ॥ ९ ॥ तदात्वमात्रे श्रद्धेयाः शास्त्रज्ञानबहिष्कृताः ॥ दाम्भिकास्ते भविष्यन्ति वादशीलकुतूहलाः ॥ १० ॥ तदा विचलिते धर्मे जनाः शेषपुरस्कृताः ॥ शुभान्येवाचरिष्यन्ति दानसत्यसमन्विताः ॥ ११ ॥ सर्वभक्षो ह्यसंगुप्तो निर्गुणो निरपत्रपः ॥ भविष्यति तदा लोकस्तत्कषायस्य लक्षणम् ॥ १२ ॥ विप्राणां शाश्वतीं वृत्तिं यदा वर्णावरा जनाः ॥ प्रतिपत्स्यन्ति वृत्त्यर्थं तत्कषायस्य लक्षणम् ॥ १३ ॥ कषायोपप्लवे लोके ज्ञानविद्याप्रणाशने ॥ सिद्धिं स्वल्पेन कालेन यास्यन्ति निरुपस्कृताः ॥ १४ ॥

श्रद्धाके बल प्रत्यक्षमें होगी. शास्त्रज्ञानसे रहित होंगे वे वादशील कुतूहलके परवश होकर दाम्भिक हो जांयगे ॥ १० ॥ इस प्रकार धर्मके चलायमान होनेसे शेष मनुष्य दान सत्यसे युक्त हो शुभ कार्योंको करेंगे ॥ ११ ॥ सब पदार्थोंके खानेवाले निर्गुणी निर्लज्ज लोक हो जांयगे यही कषायका लक्षण है ॥ १२ ॥ जब ब्राह्मणकी सदा रहनेवाली वृत्तिको शूद्र करने लगेंगे यही कषायका लक्षण जानना ॥ १३ ॥ ज्ञानविद्याका नाश होनाही कलिका लक्षण है. परन्तु इस

कालमें थोडेही परिश्रमसे मनुष्य सिद्ध हो जाता है ॥ १४ ॥ महायुद्ध, महानाद, महावर्षा, महाभय युगके क्षीण होनेपर होगा यही कलिका लक्षण है ॥ १५ ॥ ब्राह्मणके रूपमें राक्षस और चुगलीकी बात सुननेवाले राजा होंगे यही पुरुष युगान्तमें पृथ्वीको भोगेंगे ॥ १६ ॥ स्वाध्याय वषट्कारसे हीन अनीतियुक्त अभिमानी ब्राह्मण क्रव्यादरूपसे सर्वभक्षी और वृथा व्रत करनेवाले होंगे ॥ १७ ॥ मूर्ख, स्वार्थी, लोभी, क्षुद्र, क्षुद्राशय, भोजनाच्छादनके व्यवहारमें तत्पर, सनातन धर्मसे पतित ॥ १८ ॥ पराई स्त्री और पराये रत्नोंको हरनेवाले, कामी. दुरात्मा, छली, साहसी ॥ १९ ॥ जब सब

महायुद्धं महानादं महावर्षं महाभयम् ॥ भविष्यति युगे क्षीणे तत्कषायस्य लक्षणम् ॥ १५ ॥ विप्ररूपाणि रक्षांसि राजानः कर्णवेदिनः ॥ पृथिवीमुपभोक्ष्यन्ति युगान्ते समुपस्थिते ॥ १६ ॥ निःस्वाध्यायवषट्कारा अनेयाश्चाभिमानिनः ॥ विप्राः क्रव्यादरूपेण सर्वभक्षा वृथाव्रताः ॥ १७ ॥ मूर्खाः स्वाथपरा लुब्धाः क्षुद्राः क्षुद्रपरिच्छदाः ॥ व्यवहारोपवृत्ताश्च च्युता धमाच्च शाश्वतात् ॥ १८ ॥ हर्तारः पररत्नानां परदारापहारकाः ॥ कामात्मानो दुरात्मानः सापधाः प्रियसाहसाः ॥ १९ ॥ तेषु प्रभवमानेषु तुल्यशीलेषु सर्वतः ॥ अभाविनो भविष्यन्ति मुनयो बहुरूपिणः ॥ २० ॥ उत्पन्ना ये कृतयुगे प्रधानपुरुषाश्रयाः ॥ कथायोगेन तान्सर्वान्पूजयिष्यन्ति मानवाः ॥ २१ ॥ शस्यचोरा भविष्यन्ति तथा चैलापहारिणः ॥ भक्ष्यभोज्यापहाराश्च करण्डानां च हारिणः ॥ २२ ॥ चोराश्चोरस्य हर्तारो हन्ता हर्तुर्भविष्यति ॥ चोरैश्चोरक्षये चापि कृते क्षेमं भविष्यति ॥ २३ ॥ निःसारे क्षुभिते लोके निष्क्रिये व्यन्तरास्थिते ॥ नराः श्रयिष्यन्ति वनं करभारप्रपीडिताः ॥ २४ ॥

ओरसे इस प्रकारके मनुष्योंका प्रादुर्भाव हो जायगा तब मुनिरूपधारी बहुतसे मनुष्य होंगे ॥ २० ॥ जो सतयुगमें प्रधान पुरुषके आश्रयवाले उत्पन्न हुए हैं. कथाके योगसे मनुष्य उन सबका पूजन करेंगे ॥ २१ ॥ खेती और बैल, वस्त्र, चोरी करनेवालेभी मनुष्य होंगे. भक्ष्य, भोज्य, स्नान; सामग्री तथा वंशपात्रके हरनेवाले होंगे ॥ २२ ॥ चोरोंकी चोरी करनेवाले, मारनेवालोंके मारनेवाले मनुष्य कलियुगमें होंगे चोरोंसे चोरोंका क्षय होनेपर क्षेम होगी ॥ २३ ॥ जब निःसार निष्क्रिय और क्षुभित संसार हो जायगा तब करभारसे पीडित हो मनुष्य वनको चले जांयगे ॥ २४ ॥

पुत्र सब कर्मोंमें पिताको आज्ञा देंगे बहू सासुओंको युगान्तमें आज्ञा देंगी ॥ २५ ॥ शिष्य गुरुओंको वाणीरूपी बाणसे जर्जरित करेंगे. यज्ञके न होनेसे राक्षस, श्वापद ॥ २६ ॥ कीट, मूषक, सर्प मनुष्योंको धर्षित करेंगे. क्षेम सुभिक्ष आरोग्य बंधुओंमें ममता यह सब आशयसे होंगे ॥ २७ ॥ आपही पालना और आपही चोरी करनेवाले युगसंभारके धारण करनेवाले देशदेशमें मंडल बांधकर विचरण करेंगे ॥ २८ ॥ अपन देशोंसे भ्रष्ट हुए बंधुओंके सहित निस्सार हुए कालक्षयमें सब मनुष्य इस गतिको हो जांयगे ॥ २९ ॥ तब क्षुधासे व्याकुल हुए मनुष्य पुत्रोंको कंधोंपर चढाये भयसे कौशिकी नदीके पार होंगे

पितॄनाज्ञापयिष्यन्ति पुत्राः कर्मणि सर्वशः ॥ स्नुषा श्वश्रूस्तथा चैव युगांते प्रत्युपस्थिते ॥ २५ ॥ वाक्शैररर्दयिष्यन्ति गुरून् शिष्याः समन्ततः ॥ यज्ञकर्मण्युपरते रक्षांसि श्वापदानि च ॥ २६ ॥ कीटमूषकसर्पाश्च धर्षयिष्यन्ति मानवान् ॥ क्षेमं सुभिक्षमारोग्यं सामग्र्यं वापि बन्धुषु ॥ उद्देशतो नरश्रेष्ठ भविष्यन्ति युगक्षये ॥ २७ ॥ स्वयंपालाः स्वयं चोरा युगसंभारसंभृताः ॥ मण्डलैः प्रचलिष्यन्ति देशे देशे पृथक् पृथक् ॥ २८ ॥ स्वदेशेभ्यः परिभ्रष्टा निःसाराः सह बन्धुभिः ॥ नराः सर्वे भविष्यन्ति तदा कालपरिक्षयात् ॥ २९ ॥ तदा स्कन्धे समाधाय कुमारान् विद्रुता भयात् ॥ कौशिकीं प्रतरिष्यन्ति नराः क्षुद्भयपीडिताः ॥ ३० ॥ अङ्गान् वङ्गान्कालिङ्गांश्च काश्मीरानथ मेकलान् ॥ ऋषिकान्तागिरिद्रोणीः संश्रयिष्यन्ति मानवाः ॥ ३१ ॥ कृत्स्नं वा हिमवत्पार्श्वं कूलं च लवणाम्भसः ॥ अरण्येषु च वत्स्यन्ति नरा म्लेच्छगणैः सह ॥ ३२ ॥ नैव शून्या न चाशून्या भविष्यति वसुंधरा ॥ गोप्तारश्चाप्यगोप्तारः प्रभविष्यन्ति शस्त्रिणः ॥ ३३ ॥ मृगैर्मत्स्यैर्विहंगैश्च श्वापदैः सर्पकीटकैः ॥ मधुशाकफलैर्मूलैर्वर्तयिष्यन्ति मानवाः ॥ ३४ ॥

॥ ३० ॥ अंग वंग कलिंग काश्मीर मेकल ऋषिकान्त और गिरिद्रोणीको प्राप्त होंगे ॥ ३१ ॥ वा सम्पूर्ण हिमालयके पार्श्वमें वा लवणसागरके तटपर वनोंमें मनुष्य म्लेच्छगणोंके साथ निवास करेंगे ॥ ३२ ॥ न तो शून्य न अशून्य इस प्रकारकी पृथ्वी होगी. शस्त्रधारी रक्षक और अरक्षक दोनों प्रकारके होंगे ॥ ३३ ॥ मृग, मत्स्य, विहंग, श्वापद, कीट, मधु, शाक, फल, मूल इनसे मनुष्य अपनी आजीविका करेंगे ॥ ३४ ॥

चीर अनेक प्रकारके पर्ण, वल्कल, अजिन यह सब मुनिजनोंकी समान धारण करेंगे ॥ ३५ ॥ दर्शशीलादिमें हलके द्वारा बीज बोनेकी चेष्टा करेंगे और बकरी, भेड, ऊंट, गधे इनको यत्नसे पालेंगे ॥ ३६ ॥ तटपर आई हुई नदियोंके स्रोत बंद हो जांयगे. पक्वान्नका व्यवहार तथा वृक्षोंके मूलफलका परस्पर व्यवहार होगा ॥ ३७ ॥ जो सन्तान उत्पन्न होगी वह शुद्धिरहित और कुलके लक्षणोंसे हीन और बहुत सन्तति होगी ॥ ३८ ॥ जब इस प्रकार कालकारित मनुष्य हो जांयगे तब प्रजामें धर्म हीनसे हीन दशाको प्राप्त होगा ॥ ३९ ॥ उस समय मनुष्योंकी आयु तीस वर्षकी

चीरं पर्णं च बहुलं वल्कलान्याजिनानि च ॥ स्वयंकृतानि वत्स्यन्ति यथा मुनिजनास्तथा ॥ ३५ ॥ बीजानामाकृतिं निम्नेष्वीहन्तः काष्ठशंकुभिः ॥ अजेडकं खरोष्ट्रं च पालयिष्यन्ति यत्नतः ॥३६॥ नदीं स्रोतांसि रोत्स्यन्ति तोयार्थें कूलमाश्रिताः ॥ पक्वान्नव्यवहारेण विपणन्तः परस्परम् ॥ ३७ ॥ तनूरुहैर्यथा जातैः समूलान्तरसंवृतैः ॥ बह्वपत्याः प्रजाहीनाः कुललक्षणवर्जिताः ॥ ३८ ॥ एवं भविष्यन्ति तदा मनुष्याः कालकारिताः ॥ हीनाद्धीनं तदा धर्मं प्रजाः समनुवर्त्स्यति ॥ ३९ ॥ आयुस्तत्र च मर्त्यानां परं त्रिंशद्भविष्यति ॥ दुर्बला विषयग्लाना रजसा समविप्लुताः ॥ ४० ॥ भविष्याति तदा तेषां रोगैरिन्द्रियसंक्षयः ॥ आयुः प्रक्षयसंरोधाद्विषादः प्रभविष्यति ॥ ४१ ॥ शुश्रूषवो भविष्यन्ति साधूनां दर्शने रताः ॥ सत्यं च प्रतिपत्स्यन्ति व्यवहारोपसंक्षयात्॥ ४२ ॥ भविष्यन्ति च कामानामलाभाद्धर्मशीलिनः ॥ करिष्यन्ति च संकोचं स्वपक्षक्षयपीडिताः ॥ ४३ ॥ एवं शुश्रूषवो दाने सत्ये प्राणाभिरक्षणे ॥ चतुष्पादः प्रवृत्तश्च धर्मः श्रेयोऽभिपत्स्यते ॥ ४४ ॥

बहुत होगी. दुर्बल विषयोंसे ग्लानियुक्त रजोगुणसे व्याप्त होंगे ॥ ४० ॥ रोगोंसे उनकी इन्द्रियोंका क्षय होगा और आयुक्षयके संरोधसे परम विषादको प्राप्त होंगे ॥ ४१ ॥ उस समय साधुओंके दर्शन और टहलकी इच्छा होगी व्यवहारकी निवृत्ति होनेसे सत्य वचनको बोलने लगेंगे ॥ ४२ ॥ कामके न होनेसे धर्मशील हो जांयगे, भयसे पीडित हो दुराचारताके कारण संकोच करेंगे ॥ ४३ ॥ दान सत्य और प्राणोंकी रक्षामें इस प्रकार

सुश्रूषा करनेवाले जब होंगे तब चतुष्पाद धर्म उनको मंगलकारी होगा ॥ ४४ ॥ उनको जब अन्वय व्यतिरेकसे धर्माधर्म फलोंके मध्यमें प्रवृत्तता होगी धर्मके शिवाय और कोई वस्तु साधु नहीं तब वह धर्मही कहेंगे ॥ ४५ ॥ जैसे क्रमसे हानि प्राप्त हुई है इसी प्रकार क्रमसे वृद्धि होगी सबके धर्म ग्रहण करनेमें सतयुग प्रवृत्त होगा ॥ ४६ ॥ सतयुगमें साधु वृत्त होनेसे कलिकी हानि होती है, वह एकही काल हीन वर्णके चन्द्रमाके समान होता है ॥ ४७ ॥ अर्थात् जैसे वही चन्द्रमा अंधकारसे आवरण होनेके कारण सब नहीं दीखता इसी प्रकार कलि है और अंधकारसे हीन पूर्णचन्द्रमाकी समान सतयुग है ॥ ४८ ॥ परब्रह्म अर्थवाद है. यह वेदार्थ कहा गया है. इसको विना जाने इस प्रकार होता है जैसे मृत्तिकामें मिला

तेषां लब्धानुमानानां गुणेषु परिवर्ततताम् ॥ स्वादु किं न्विति विज्ञाय धर्म एवं वदिष्यति ॥ ४५ ॥ यथा हानिः क्रमात्प्राप्ता तथा वृद्धिः क्रमाद्गता ॥ प्रगृहीते यतो धर्मे प्रपत्स्यन्ति कृतं युगम् ॥ ४६॥ साधु वृत्तं कृतयुगे कषाये हानिरुच्यते ॥ एक एव तु कालः स हीनवर्णो तथा शशी ॥ ४७ ॥ छन्नो हि तमसा सोमो यथा कलियुगे तथा ॥ पूर्णश्च तमसा हीनो यथा कृतयुगे तथा ॥ ४८ ॥ अर्थवादः परं ब्रह्म वेदार्थ इति तं विदुः ॥ अनिर्णिक्तमविज्ञातं दायाद्यमिव धार्यते ॥ ४९ ॥ इष्टवादस्तपो नाम तपो हि स्थावरं कृतम् ॥ गुणैः कर्माभिनिर्वृत्तिर्गुणास्तथ्येन कर्मणा ॥५०॥ आशीस्तु पुरुषं दृष्ट्वा देशकालानुवर्तिनी ॥ युगे युगे यथाकालमृषिभिः समुदाहृता ॥ ५१ ॥ इह धर्मार्थकामानां देवतानां प्रतिक्रिया ॥ आशिषश्च शुभाः पुण्यास्तथैवायुर्युगे युगे ॥ ५२ ॥

हुआ सुवर्ण किसीके घर स्थित हो वह उसे विना जाने दरिद्र मानता है उसके जाननेसे अपनेको धनवान् मानता है. इसी प्रकार ब्रह्मके जाननेसे सर्वैश्वर्य सम्पन्न होता है ॥ ४९ ॥ इष्टवादही तप है. जिसमें स्वर्गादिका अभीष्ट कथन किया है. जो तप स्थावर अनादि अव्यभिचारी फलवान् शास्त्रमें कहा है वह देहादिद्वारा कर्मोंसे सिद्ध होता है. कर्म सत्यादि गुण देहादि कर्मोंसे मुक्ति नहीं होती इस कारण शरीरको ब्रह्माश्रय करे ॥ ५० ॥ एक कर्मसे फलप्राप्ति होती है. यह देशकालको देखकर मुनिजनोंने आशीर्वाणी कही है. यह पुण्यरूप युगयुगमें वर्तती है ॥ ५१ ॥ धर्म अर्थ काम और

देवताओंकी प्रतिक्रिया और पुण्यरूप आशीर्वाद युगयुगमें वर्तते हैं ॥ ५२ ॥ जैसे युगोंका चिरकालसे प्रवृत्त होना विधिके स्वभावसे चिरकालसे चला आता है इसी नियमसे यह लोक क्षय और उदयमें वर्तता हुआ क्षणकालकोभी स्थिर नहीं होता है ॥ ५३ ॥ इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे भविष्यपर्वणि भाषायां चतुर्थोऽध्यायः ॥ ४ ॥ सूतजी बोले; इस प्रकार राजा जन्मेजयको आश्वासन करते हुए ऋषिके अतीत अनागत वाक्योंको सभाने सुना ॥ १ ॥ महर्षिके वाणीरूपी रससे अमृतके प्रवाह चन्द्रमाकी कान्तिकी समान उनके श्रोत्र तृप्त हो गये ॥ २ ॥ धर्म अर्थ

यथा युगानां परिवर्तनानि चिरं प्रवृत्तानि विधिस्वभावात् ॥ क्षणं न संतिष्ठति जीवलोकः क्षयोदयाभ्यां परिवर्त्तमानः ॥ ५३ ॥
इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे भविष्यपर्वणि चतुर्थोऽध्यायः ॥ ४ ॥ सूत उवाच ॥ इत्येवमाश्वासयतो राजानं जनमेजयम् ॥
अतीतानागतं वाक्यमृषेः परिषदा श्रुतम् ॥ १ ॥ अमृतस्येव संवाहः प्रभा चन्द्रमसो यथा ॥ अतर्पयत तच्छ्रोत्रं महर्षेर्वाङ्मयो
रसः ॥ २ ॥ धर्मकामार्थसंयुक्तं करुणं वीरहर्षणम् ॥ रमणीयं तदाख्यानं कृत्स्नं परिषदा श्रुतम् ॥ ३ ॥ केचिदश्रूणि मुमुचुः श्रुत्वा
दध्युस्तथापरे ॥ इतिहासं तमृषिणा पाणाविव निदर्शितम् ॥ ४ ॥ सदस्यान्सोऽभ्यनुज्ञाय कृत्वा चापि प्रदक्षिणम् ॥ पुनर्द्रक्ष्याम
इत्युक्त्वा जगाम भगवानृषिः ॥ ५ ॥ अनुजग्मुस्तदा सर्वे प्रयान्तमृषिसत्तमम् ॥ लोके प्रवदतां श्रेष्ठं ये विशिष्टास्तपोधनाः ॥ ६ ॥
याते भगवति व्यासे तदा ब्रह्मर्षिभिः सह ॥ ऋत्विजः पार्थिवाश्चैव प्रतिजग्मुर्यथागतम् ॥ ७ ॥ पन्नगानां सुघोराणां कृतानां
वैरयातनाम् ॥ जगाम रोषमुत्सृज्य राजा विषामिवोरगः ॥ ८ ॥

कामसे संयुक्त करुणा वीर रसके हर्षतासे युक्त यह रमणीय आख्यान सब सभाने सुना ॥ ३ ॥ सुनकर कोई आंसू त्यागने लगे कोई ध्यान करने लगे ऋषिने उस इतिहासको हाथमें रखकर दिखा दिया ॥ ४ ॥ सभाकी आज्ञाको प्राप्त हो प्रदक्षिणा कर मैं फिर आऊंगा ऐसा कह ऋषिराज चले गये ॥ ५ ॥ तब उन ऋषिके पीछे पीछे जो कि बोलनेवालोंमें श्रेष्ठ थे सब तपोधनभी गये. जो श्रेष्ठ थे ॥ ६ ॥ ब्रह्मर्षियोंके साथ भगवान् वेदव्यासजीके जानेमें ऋत्विक् और राजाभी सब अपने २ स्थानोंको गये ॥ ७ ॥ और राजा जन्मेजयभी घोर सर्पोंकी वैरयातनाको पूर्ण

कर सर्पविषकी समान क्रोध त्यागन कर निवृत्त हुए ॥ ८ ॥ होत्र अग्निकी समान दीप्तिमान् शिरवाले तक्षकको बचाकर वह महामुनि आस्तीक अपने आश्रमको गये ॥ ९ ॥ राजा अपने सुजनोंके सहित हस्तिनापुर गये और तबसे प्रसन्नताके सहित प्रजा पालन करने लगे ॥ १० ॥ कुछ समयके उपरान्त राजा जन्मेजयने बडी दक्षिणावाले यज्ञका अनुष्ठान किया ॥ ११ ॥ तब सुन्दररूप काशीके राजाकी पुत्री वपुष्टमा जन्मेजयकी स्त्री मृतक हुए अश्वके समीपमें स्थित हुई ॥ १२ ॥ उस समय उस सब प्रकार अनिन्दित अंगवालीकी इन्द्रने इच्छा की, मृतक घोडेमें प्रवेश हो उसके

होत्राग्निदीप्तशिरसं परित्राय च तक्षकम् ॥ आस्तीकोऽथाश्रमपदं जगाम स महामुनिः ॥ ९ ॥ राजापि हास्तिनपुरं जगाम स्वजना-
वृतः ॥ अन्वशासच्च मुदितस्तदा प्रमुदिताः प्रजाः ॥ १० ॥ कस्य चित्त्वथ कालस्य स राजा जनमेजयः ॥ दीक्षितो वाजिमेधेन
विधिवद्भूरिदक्षिणः ॥ ११ ॥ संज्ञप्तमश्वं तत्रास्य देवी काश्या वपुष्टमा ॥ संविवेशोपगम्याथ विधिदृष्टेन कर्मणा ॥ १२ ॥ तां तु
सर्वानवद्याङ्गीं चकमे वासवस्तदा ॥ संज्ञप्तमश्वमाविश्य तया मिश्रीबभूव सः ॥ १३ ॥ तस्मिन्विकारे जनिते विदित्वा तत्त्वतश्च तत् ॥
असंज्ञप्तोऽयमश्वस्ते ध्वंसेत्यध्वर्युमब्रवीत् ॥ १४ ॥ अध्वर्युर्ज्ञानसंपन्नस्तदिन्द्रस्य विचेष्टितम् ॥ कथयामास राजर्षेः शशाप स
पुरंदरम् ॥ १५ ॥ जनमेजय उवाच ॥ यद्यस्ति मे यज्ञफलं तपो वा रक्षतः प्रजाः ॥ फलेनानेन सर्वेण ब्रवीमि श्रूयतामिदम् ॥ १६ ॥
अद्यप्रभृति देवेन्द्रमजितेन्द्रियमस्थिरम् ॥ क्षत्रिया वाजिमेधेन न यक्ष्यन्तीति शौनक ॥ १७ ॥ ऋत्विजश्चाब्रवीत्क्रुद्धः स राजा
जनमेजयः ॥ दौर्बल्यं भवतामेतद्यदयं धर्षितः क्रतुः ॥ १८ ॥

साथ मैथुनमें प्रविष्ट हुआ ॥ १३ ॥ यह विकार उत्पन्न होनेसे उसको तत्त्वसे जानकर राजाने अध्वर्युसे कहा, यह घोडा मृतक नहीं हुआ है इस कारण ध्वंस करनेके योग्य है ॥ १४ ॥ ज्ञानसम्पन्न अध्वर्युने यह राजाकी चेष्टा जानकर राजासे कहा और इन्द्रको शाप दिया ॥ १५ ॥ जन्मेजय बोले; जो कुछ मुझे यज्ञफल प्राप्त है तथा जो मैंने प्रजारक्षा की है इस सबके फलसे जो मैं कहता हूं सो सब कोई सुनो ॥ १६ ॥ आजसे इस अजितेन्द्रिय चंचलस्वभाव इन्द्रको कोई अश्वमेधसे पूजन नहीं करेंगे ॥ १७ ॥ हे शौनक ! इस प्रकार क्रोधित हो जन्मेजयने ऋषियोंसे कहा कि यह

मेरे यज्ञमें विघ्न तुम्हारी दुर्बलतासे हुआ है ॥ १८ ॥ तुम हमारे राज्यमें मत बसो कुटुम्बसहित चले जाओ यह कहनेपर क्रोधित हो ब्राह्मणोंने राजाको त्यागन कर दिया ॥ १९ ॥ तब तामसी जन्मेजय क्रोधकर पत्नीशालामें प्राप्त हुई स्त्रियोंसे बोले ॥ २० ॥ इस असती वपुष्टमारानीको हमारे घरसे निकाल दो जिसने धूरि भरे दोनों चरण मेरे मस्तकपर प्राप्त किये थे ॥ २१ ॥ मेरी शूरता यश और मान सब नष्ट कर दिया. मलीन हुई मालाकी समान मैं इसके देखनेकी इच्छा नहीं करता ॥ २२ ॥ जो पुरुष दूसरेकी मर्दन की हुई भार्याको फिर रख लेता है न वह स्वादु भोजन

विषये मे न वस्तव्यं गच्छध्वं सह बान्धवैः ॥ इत्युक्तास्तत्यजुर्विप्रास्तं नृपं जातमन्यवः ॥१९॥ अमर्षादन्वशाासच्च पत्नीशालागताः स्त्रियः ॥ राजा परमधर्मज्ञस्तामसो जनमेजयः ॥ २० ॥ असतीं वपुष्टमामेतां निर्यातयत मे गृहात् ॥ यया मे चरणौ मूर्ध्नि पातितौ रेणुगुण्ठितौ ॥ २१ ॥ शौण्डीर्यं मे मया भग्नं यशो मानश्च दूषितः ॥ न चैनां द्रष्टुमिच्छामि परिक्लिष्टामिव स्रजम् ॥२२॥ न स्वादु सोऽश्नाति नरः सुखं स्वपिति वा रहः ॥ अन्वास्ते यः प्रियां भार्यां परेण मृदितामिह ॥ २३ ॥ पुनर्नैवोपभुञ्जन्ति श्वावलीढं हविर्यथा ॥ एवमुच्चैः प्रभाषन्तं क्रुद्धं पारीक्षितं नृपम् ॥ गन्धर्वराजः प्रोवाच विश्वावसुरिदं वचः ॥ २४ ॥ विश्वावसुरुवाच ॥ त्रिय-ज्ञशतयज्वानं वासवस्त्वां न मृष्यते ॥ अप्सरास्तेन पत्नी ते विहितेयं वपुष्टमा ॥२५॥ रम्भानामाप्सरा देवी काशिराजसुता मता॥ सैषा योषिद्वरा राजन् रत्नभूतानुभूयताम् ॥ २६ ॥ यज्ञे विवरमासाद्य विघ्नमिन्द्रेण ते कृतम् ॥ यज्वा ह्यसि कुरुश्रेष्ठ समृद्ध्या वासवोपमः ॥ २७ ॥

कर सकता है न एकान्तमें सुखसे सो सकता है ॥ २३ ॥ जैसे कुत्तेकी छुई हुई हवि फिर नहीं खाई जाती है. ऐसे दूसरेकी भोगी स्त्री कामकी नहीं. इस प्रकार क्रोधसे परुष बात कहते हुए जन्मेजयको विश्वावसु गन्धर्वराज इस प्रकारसे कहने लगा ॥ २४ ॥ विश्वावसु बोले; हे राजन् ! तीनसौ यज्ञोंके करनेवाले तुमको इन्द्र सहन नहीं कर सकता है इस कारण उसने वपुष्टमारूपसे अप्सराको तुम्हारी पत्नी बना दिया ॥ २५ ॥ यह रम्भा नाम अप्सरा काशिराजकी पुत्री हुई है. हे राजन् ! यह रत्नभूत स्त्रियोंमें श्रेष्ठ भोगनेके योग्य है ॥ २६ ॥ यज्ञमें छिद्र देखकर इन्द्रने प्रवेश किया. हे कुरु-

श्रेष्ठ ! तू यज्ञका करनेवाला ऋद्धिमें इन्द्रके समान है ॥ २७ ॥ हे राजन् ! तुम्हारे यज्ञफलसे तिरस्कार होनेके कारण इन्द्र तुमसे डरता है. हे प्रभो ! इस कारण इन्द्रने तुम्हारा यज्ञ आवर्तित किया ॥ २८ ॥ यह यज्ञमें विघ्न करनेवाले इन्द्रने मायाही प्रवृत्त करी है. घोडेको मृतक देख यज्ञमें विघ्न करनेको प्रवृत्त हुआ ॥ २९ ॥ जिसे वपुष्टमा मानते हो. इन्द्रने उस रंभासेही रति की है और तीन सौ यज्ञ करानेवाले तुम्हारे गुरु शापित करा दिये हैं ॥ ३० ॥ तुम और ब्राह्मण बलसे इन्द्रकी समानतासे भ्रष्ट हुए हैं, तुमसे और दुर्धर्ष तीन सौ यज्ञके करानेवालोंसे ॥ ३१ ॥ इन्द्र सदा डरता

बिभेत्यभिभवाच्छक्रस्तव क्रतुफलैर्नृप ॥ तस्मादावर्तितश्चैव क्रतुरिन्द्रेण ते विभो ॥ २८॥ मायैषा वासवेनेह प्रयुक्ता विघ्नमिच्छता ॥ क्रतोर्विवरमासाद्य संज्ञप्तं दृश्य वाजिनम् ॥ २९ ॥ रतमिन्द्रेण रम्भायां मन्यसे यां वपुष्टमाम् ॥ अथ ते गुरवः शतास्त्रि-यज्ञशतयाजिनः ॥३०॥ भ्रंशितस्त्वं च विप्राश्च बलादिन्द्रसमादिह ॥ त्वत्तश्चैव सुदुर्धर्षास्त्रियज्ञशतयाजिनः ॥३१॥ बिभेति हि सदा त्वत्तो ब्राह्मणेभ्योऽपि वासवः ॥ एकेन वै तदुभयं तीर्णं शक्रेण मायया ॥३२॥ स एष स महातेजा विजिगीषुः पुरंदरः ॥ कथमन्यै-रनाचीर्णं नप्तुर्दारानतिक्रमेत् ॥ ३३ ॥ विश्वावसुरुवाच ॥ यथैव हि परा बुद्धिः परो धर्मः परो दमः ॥ यथैव परमैश्वर्यं कीर्तितं हरि-वाहने ॥ तथैव त्वयि दुर्धर्षे त्रियज्ञशतयाजिनि ॥ ३४ ॥ मा वासवं मा च गुरूनात्मानं मा वपुष्टमाम् ॥ गच्छ दोषेण कालो हि सर्वथा दुरतिक्रमः ॥ ३५ ॥ ऐश्वर्येणाश्वमाविश्य देवेन्द्रेणासि रोषितः ॥ आनुकूल्येन देवस्य वर्तितव्यं सुखार्थिना ॥ ३६ ॥

है. एकही मायासे इन्द्रने वे दोनों कार्य पूर्ण किये ॥ ३२ ॥ नहीं तो यह महातेजस्वी जयशील राजा इन्द्र दूसरे साधारणोंके न करने योग्य कर्म पौत्रकी भार्याको कैसे भोग कर सकता है ॥ ३३ ॥ विश्वावसुने कहा जिस प्रकार परम बुद्धि परम धर्म परम दम परमैश्वर्य और परमकीर्ति इन्द्रमें विद्यमान है इसी प्रकार तीन सौ यज्ञ करनेवाले तुममें यह सब वस्तु विद्यमान हैं ॥ ३४ ॥ इन्द्र गुरु अपनेको और वपुष्टमाकी दोष मत दो कालकी गति किसीसे नहीं जानी जाती ॥ ३५ ॥ अपने ऐश्वर्यमें प्राप्त होकर इन्द्रने तुमको क्रोधित किया है सुखार्थीको दैवके अनुकूल वर्तना

चाहिये ॥ ३६ ॥ जिस प्रकार नदीके प्रवाहमें प्रतिकूलतासे तरना बडा कठिन है इसी प्रकार कालकी गति है. इस पापरहित स्त्रीरत्नको आनंदसे भोगो ॥ ३७ ॥ अपापा स्त्रीके त्यागसे वे शाप देती हैं फिर जिसमें अदुष्ट और विशेष कर दिव्य स्त्री त्यागके योग्य नहीं है ॥ ३८ ॥ सूर्यकी प्रभा अग्निकी शिखा, होताकी वेदी और आहुति स्त्री है स्त्रीकी इच्छाके बिना बलत्कारसे भोगी स्त्री दूषित नहीं होती ॥ ३९ ॥ विद्वानोंको स्त्रीका ग्रहण सत्कार और पूजन सदा करना चाहिये. शीलवती स्त्रीयोंको नमस्कार और लक्ष्मी समान पूजन करना चाहिये ॥ ४० ॥ इति श्रीमन्महाभारते खिलेषु

दुस्तरं प्रतिकूलं हि प्रतिस्रोत इवाम्भसः ॥ स्त्रीरत्नमुपभुङ्क्ष्वेमामपापां विगतज्वरः ॥ ३७ ॥ अपापास्त्यज्यमाना वै त्यजेयुरपि योषितः ॥ अदुष्टास्तु स्त्रियो राजन् दिव्यास्तु सविशेषतः ॥ ३८ ॥ भानोः प्रभा शिखा वह्नेर्वेदी होत्रे तथाहुतिः ॥ परामृष्टाप्य-संसक्ता नोपदुष्यन्ति योषितः ॥ ३९ ॥ ग्राह्या लालयितव्याश्च पूज्याश्च सततं बुधैः ॥ शीलवत्यो नमस्कार्याः पूज्याः श्रिय इव स्त्रियः ॥ ४० ॥ इति श्रीमन्महाभारते खिलेषु हरिवंशे भविष्यपर्वणि पञ्चमोऽध्यायः ॥ ५ ॥ सौतिरुवाच ॥ एवं स विश्वावसुना-नुनीतः प्रसादमागम्य वपुष्टमायाः ॥ चकार मिथ्या व्यतिशङ्कितात्मा शान्तिं परां मानवधर्मदृष्टाम् ॥ १ ॥ श्रममभिविनिवर्त-मांनसं सः समभिलषञ्जनमेजयो यशः स्वम् ॥ विषयमनुशशास धर्मबुद्धिर्मुदितमना रमयन्वपुष्टमां ताम् ॥ २ ॥ नहि विरमति विप्रपूजनान्न च विनिवर्तति यज्ञदानशीलात् ॥ न विषयपरिरक्षणाच्च्युतोऽभून्न च परिगर्हति तां वपुष्टमां च ॥ ३ ॥ विधिविहि-तमशक्यमन्यथा हि यदृषिराचिन्त्यतया पुराब्रवीत्सः ॥ इति स नृपतिरात्मवांस्तदासौ तदनु विचिन्त्य बभूव वीतमन्युः ॥ ४ ॥

हरिवंशे भविष्यपर्वणि भाषायां पंचमोऽध्यायः ॥ ५ ॥ सौति बोले; इस प्रकार जब उस राजाको विश्वावसुने समझाया तब वह वपुष्टमाके प्रति शान्त हुआ और मानवधर्मसे उसने मिथ्या शंकाको त्याग शान्ति ग्रहण किं ॥ १ ॥ मनसे श्रम दूर कर वह जन्मेजय अपने यशकी अभिलाषा करता हुआ धर्मबुद्धिसे देशकी पालना करता हुआ प्रसन्न हो वपुष्टमाके साथ रमने लगा ॥ २ ॥ ब्राह्मणोंकी पूजा और यज्ञ दान शीलसे कभी विरामको प्राप्त न होता देशरक्षासे कभी आलस्ययुक्त न हुआ और न कभी वपुष्टमाकी निन्दा की ॥ ३ ॥ जो प्रारब्धमें है उसे कोई अन्यथा नहीं कर सक्ता जो कि

कही वाणीको स्मरण कर क्रोधरहित हुआ ॥ ४ ॥ यहां महात्मा ऋषिका
अचिन्त्यतासे ऋषिने उससे कहा था. इस प्रकार वह ज्ञानी राजा ऋषिकी
महाकाव्य पाठ करनेसे मनुष्य पूज्यतम हो जाता है वह दीर्घ आयुको प्राप्त हो केशवसे सर्वज्ञताके फलको प्राप्त होता है ॥ ५ ॥ यह इन्द्रके पाप दूर
करनेवाले इतिहासको जो मनुष्य पढते हैं उनके सब पाप दूर हो जाते हैं और संपूर्ण कामनाओंको प्राप्त हो अरोगी शरीर होनेसे बहुत कालतक
प्रसन्न रहता है ॥ ६ ॥ जैसे पुष्पके उपरान्त फल और उसके उपरान्त बीज और बीजसे फिर वृक्ष होते हैं इसी प्रकार महर्षियोंकी प्रगट की वाणी

इदं महाकाव्यमृषेर्महात्मनः पठन्नृणां पूज्यतमो भवेन्नरः ॥ प्रकृष्टमायुः समवाप्य दुर्लभं लभेच्च सर्वज्ञफलं च केशवम् ॥ ५ ॥
शतक्रतोः कल्मषविप्रमोक्षणं पठन्निदं मुच्यति कल्मषान्नरः ॥ तथैव कामान्विविधान्समश्नुते ह्यजात कामश्च चिराय नन्दति ॥ ६ ॥
यथा हि पुष्पप्रभवं फलं द्रुमाः फलात्प्रजायन्ति पुनश्च पादपाः ॥ तथा महर्षिप्रभवा इमा गिरः प्रवर्द्धयन्ते तमृषिं प्रवर्द्धिताः ॥ ७ ॥
पुत्रानपुत्रो लभते सुवर्चसश्च्युतः पुनर्विन्दति चात्मनः स्थितिम् ॥ व्याधिं न चाप्नोति चिरं स बन्धनं क्रियां च पुण्यां लभते
गुणान्वितः ॥ ८ ॥ पतिमभिलभते च सत्सु कन्या श्रवणमुपेत्य शुभा मुनेस्तु वाचः ॥ जनयति च सुतान्गुणैरुपेतान्स्वजनहिते
द्विषतां प्रमर्दनं च ॥ ९ ॥ विजयति वसुधां च राजवृत्तिर्धनमतुलं लभते द्विषज्जयं च ॥ विपुलमपि धनं लभेच्च वैश्यः सुगतिमि-
याच्छ्रवणाच्च शूद्रजातिः ॥ १० ॥

दूसरोंको वृद्धित करती हैं ॥ ७ ॥ पुत्र पौत्र कान्तिकी प्राप्ति तथा आत्माकी स्थितिभी प्राप्त होती है तथा वह पुरुष व्याधि और बंधनको प्राप्त नहीं
होता और गुणयुक्त हो पवित्र क्रियाको प्राप्त होता है ॥ ८ ॥ कन्या श्रेष्ठपतिको प्राप्त होती है. जो यह मुनिकी सुवाणी कर्णगोचर करता है,
वह गुणयुक्त श्रेष्ठ सन्तानोंको प्राप्त होकर सुजनोंका हित और शत्रुओंका नाश करता है ॥ ९ ॥ राजवृत्तिमान् पृथ्वीजय करता है तथा धन धर्म
अधिक प्राप्त करता है अतुल धन और शत्रुओंसे जय होता है. वैश्य बहुत धन प्राप्त करता और इसके सुननेसे शूद्रजाति सुगतिको प्राप्त होती

है ॥ १० ॥ इस महात्माओंके चरित्रसे पूर्ण पुराणके सुननेसे नैष्ठिकी बुद्धि प्राप्त होती है वह सब दुःख छोड संगरहित हो वीतराग हो पृथ्वीमें विचरता है ॥ ११ ॥ यह आख्यान आपसे वर्णन किया है. ब्राह्मणमंडलमें यह स्मरण करनेके योग्य है. जो स्थिरता धीरतासे इसे स्मरण करता है वह सुखपूर्वक इस लोकमें विचरता है ॥ १२ ॥ इस प्रकार यह महात्माओंके चरित ऋषिनिर्मित अद्भुत वीरताके कर्मसे युक्त हैं यह समास और विस्तारसे वर्णन किये अब क्या सुननेकी इच्छा है ॥ १३ ॥ इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे भविष्यपर्वणि भाषायां भविष्यान्तर्ग्रन्थार्थप्रकाशो नाम षष्ठोऽध्यायः ॥ ६ ॥ जन्मेजय बोले; जिनकी नाभिमें जगत्का प्रपंचरूप कमल है उनका सृष्टि आदिके रचनेका प्रभाव कहो. जो महद्भूत अनन्तपार

पुराणमेतच्चरितं महात्मनामधीत्य बुद्धिं लभते च नैष्ठिकीम् ॥ विहाय दुःखानि विमुक्तसङ्गः स वीतरागो विचरेद्वसुंधराम् ॥११॥
इत्येतदाख्यानमुदाहृतं वै प्रतिस्मरन्तो द्विजमण्डलेषु ॥ स्थैर्येण धैर्येण पुनः स्मरन्तः सुखं भवन्तोऽनुचरन्तु लोकम् ॥ १२ ॥
इति चरितमिदं महात्मनामृषिकृतमद्भुतवीर्यकर्मणाम् ॥ कथितमिदं हि समासविस्तरैः किमपरमिच्छसि किं ब्रवीमि ते ॥ १३ ॥
इति श्रीम० खिलेषु हरिवंशे भविष्यपर्वणि भविष्यान्तर्ग्रन्थार्थप्रकाशो नाम षष्ठोऽध्यायः॥६॥ जनमेजय उवाच ॥ प्रभावं पद्मनाभस्य स्वपतः सागराम्भसि ॥ पुष्करे वै यथोद्भूता देवाः सर्षिगणाः पुरा ॥ १ ॥ एतदाख्याहि निखिलं योगं योगविदांपते ॥ शृण्वतस्तस्य मे कीर्तिं न तृप्तिरभिजायते ॥ २ ॥ कियन्तं चैव कालं वै शयिता पुरुषोत्तमः ॥ किमर्थं शयते कालं तस्य कालस्य संभवः ॥३॥

एक रसरूप सागरमें शयन करते हैं. जब कि सब चराचर नष्ट हो गया था उस समय केवल शुद्ध ब्रह्म वर्तमान थे. निर्वचन होनेसेही सोना कहा है अर्थात् कैवल्यसमाधिमेंलीयमान मायायुक्तका प्रभाव कहिये और ब्रह्माण्डमें देवता और ऋषि किस प्रकारके उत्पन्न हुए हैं पुष्कररूपी अम्बरमें अर्थात् खम्ब्रह्मरूपी अमृत जो उस महानूमें वर्तमान है उसमें देवऋषि इन्द्रिय प्राण सूत्रात्मा किस प्रकार उत्पन्न हुए हैं ॥ १ ॥ हे सब योग और योगज्ञाताओंके पति ! यह आप मुझसे कहिये. उनकी कीर्ति सुनकर मेरी तृप्ति नहीं होती है ॥ २ ॥ कितने कालतक वह पुरुषोत्तम शयन करते हैं किस निमित्त वह शयन करता है जिससे कालकी उत्पत्ति होती है ॥ ३ ॥

हे तात ! हे मुने ! पूर्वकालमें कौन प्रजापति
वह सुराधिप कितने समयमें जागते हैं और वह भगवान् उठकर जगत्को किस प्रकार रचते हैं ॥ ४ ॥ जब स्थावर जंगमके नष्ट होनेसे एकार्णव हो गया. जब देवता असुर
हुए हैं और सनातन भगवान्ने किस प्रकार विचित्र जगत्की रचना की ॥ ५ ॥ अनल अनिल आकाश महीतलके नष्ट होनेमें महाभूतके विपर्यय होनेसे पंच महाभूतोंके गह्वरीभूत होनेमें ॥ ७ ॥
गण उरग राक्षस नष्ट हो गये ॥ ६ ॥ हे ब्रह्मन् ! यह वार्ता आप
हे मुने ! वह प्रभु महाभूतपति महातेजस्वी महाविस्तारवाले सुरगुरु किस प्रकारकी विधि धारण कर स्थित होते हैं ॥ ८ ॥

कियता चैव कालेन प्रबुद्ध्यति सुराधिपः ॥ कथमुत्थाय भगवानसृजान्निखिलं जगत् ॥४॥ के प्रजापतयस्तात आसन्पूर्वं महामुने ॥
कथं निर्मितवांश्चैव चित्रं लोकं सनातनः ॥ ५ ॥ एवमेकार्णवे लोके नष्टे स्थावरजंगमे ॥ नष्टे देवासुरगणे प्रणष्टोरगराक्षसे ॥ ६ ॥
नष्टानलानिले लोके नष्टाकाशमहीतले ॥ केवलं गह्वरीभूते महाभूतविपर्यये ॥ ७ ॥ प्रभुर्महाभूतपतिर्महातेजा महाततिः ॥ आस्ते
सुरगुरुश्रेष्ठो विधिमाधाय कां मुने ॥ ८ ॥ तन्मे त्वमुपाख्याय ब्रह्मन्नेतदसंशयम् ॥ वक्तुमर्हसि धर्मिष्ठ यशो नारायणात्मकम् ॥ ९ ॥
श्रद्धानामुपविष्टानां भगवन्वक्तुमर्हसि ॥ १० ॥ वैशम्पायन उवाच ॥ नारायणयशो-
प्रादुर्भावं पुरस्कृत्य भूतं भव्यं महात्मनः ॥ शृणुष्वादिपुराणेभ्यो देवताभ्यो यथाश्रुति ॥ ब्राह्मणानां
ज्ञाने या भवेद्भवतः स्पृहा ॥ त्वद्वंशानघपूतस्य कार्यं कुरुकुलर्षभ ॥ ११ ॥ पाराशर्यस्ततः श्रीमान्गुरुर्द्वैपायनोऽब्रवीत् ॥ १३॥
च वदतां श्रुतोऽस्माभिर्महात्मनाम् ॥१२॥ तथा च तपसा दृष्टो बृहस्पतिसमद्युतिः ॥

हमसे वर्णन कीजिये, हे धर्मिष्ठ ! नारायणात्मक यश आप हमसे वर्णन कीजिये ॥ ९ ॥ उन महात्मा भूत भविष्य वर्तमानात्मक प्रादुर्भाव हम श्रद्धावालोंके
निमित्त आप वर्णन कीजिये ॥ १० ॥ वैशंपायन बोले; जो तुम्हारी इच्छा नारायणके यशके जाननेमें है सो आपके पवित्र वंशके योग्यही है. वही तुम
पवित्र कार्य करते हो ॥ ११ ॥ जिस प्रकार आदिपुराणोंमें देवताओंके मुखसे कहते हुए तथा महात्मा ब्राह्मणोंके मुखसे मैंने सुना है सो कहता हूं
सुनो ॥ १२ ॥ तथा तपसे जो मैंने देखा है और बृहस्पतिकी समान कांतिवाले पराशरसे उत्पन्न श्रीमान् हमारे गुरु व्यासजीने जो कहा है ॥ १३ ॥

वह बुद्धि और सुननेके अनुसार मैं तुमसे कहता हूं. क्योंकि मंत्रद्रष्टा ऋषिके सम्पूर्ण अर्थ जाननेको मैं समर्थ नहीं हूं ॥ १४ ॥ शुद्ध सच्चिदानंद परमात्माको जो नारायण कहे जाते हैं कौन जान सकता है. जिसको तत्त्वसे विश्वात्मा ब्रह्माभी नहीं जान सकते ॥ १५ ॥ जो मैंने विश्वेदेवता और सब ऋषियोंका रहस्य सुना है वोह उन तत्त्ववादियोंका संवाद ॥ १६ ॥ जो अध्यात्मवादियोंके विचारने योग्य, कर्मियोंका कारणरूप जो सब देवोंमें सद्रूपसे स्थित है, महाभाग्य ज्ञानरूप जिसके आनंदसे सब प्राणी जीते हैं ॥ १७ ॥ जो भूतोंमें व्याप्त जो महर्षियोंका परम उपासनीय, जो सत्यस्वरूप; जिसको

तत्तेऽहं संप्रवक्ष्यामि यथा प्रज्ञं यथाश्रुतम् ॥ न विज्ञातुं मया शक्यमृषिमात्रेण भारत ॥ १४ ॥ कः समुत्सहते ज्ञातु परं नारायणात्मकम् ॥ विश्वात्मनो यं ब्रह्मापि न वेदयाति तत्त्वतः ॥ १५ ॥ श्रुतं म विश्वदेवानां यद्रहस्यं महर्षिणाम् ॥ तादिदं सर्वदेवानां तत्त्वतस्तत्त्ववादिनाम् ॥ १६ ॥ तदध्यात्मविदां चिन्त्यं कारणं चैव कर्मिणाम् ॥ अधिदैवं च यद्दैवं तद्दैवामिति संज्ञितम् ॥ १७ ॥ यद्भूतमाधिभूतं च यत्परं च महर्षिणाम् ॥ यत्सत्यं देवदृष्टं च यत्तद्वेदविदो विदुः ॥ १८॥ यः कर्ता कारको बुद्धिर्मनः क्षेत्रज्ञ एव च ॥ प्रधानं पुरुषः शास्ता एकस्तदभिशब्यते ॥ १९ ॥ कालः कालं स्वपयाति द्रष्टा स्वाधीन एव च ॥ प्राणः पञ्चविधश्चैव ध्रुवमक्षय एव च ॥ २० ॥ उच्यते विविधैर्भावैस्तस्यैषानघ तत्परैः ॥ स एव भगवान्सर्वं करोति विकरोति च ॥ २१ ॥ योऽस्मान्कारयते कर्म तेनास्म व्याकुलीकृताः ॥ यजामहे तमेवेशं तमेवेच्छाम निर्वृताः ॥ २२ ॥

देवताही देखते हैं, जिसको वेदवादी तत्त्वरूप कहते हैं ॥ १८ ॥ जो कर्ता कारक बुद्धिमान् और क्षेत्रज्ञरूप है; प्रधान पुरुष शास्ता वह एकही शब्दोंसे उच्चारण किया जाता है ॥ १९ ॥ वही कालरूप कालको शयन करानेवाला द्रष्टा स्वाधीन पांच विध प्राण ध्रुव अक्षय ॥ २० ॥ आदि अनेक भावोंसे उच्चारण किया जाता है. हे पापरहित ! वही अनेक भावोंसे कहा जाता है वही भगवान् सब सृष्टि और संहार करता है ॥ २१ ॥ जो हमसे अनेक कर्म कराता है जिससे हम व्याकुल हो रहे हैं उसी देवका हम यजन करते हैं. उससेही शान्तिकी इच्छा करते हैं ॥ २२ ॥

जो वक्ता और वक्तव्य है वह मैं सब तुमसे कहता हूं. इसको जो तुम सुनते हो तथा कल्याण वस्तु तथा और जो कुछ कहा जाता है ॥ २३ ॥ जो कथा और गह्वर श्रुति वर्तमान है विश्व विश्वपति देवता यह सब नारायणात्मक है ॥ २४ ॥ जो सत्य असत्य आदि अक्षर भूत भविष्य वर्तमान चराचर अव्यय त्रिलोकीमें है वह सब यह पुरुषश्रेष्ठही है ॥ २५ ॥ इति श्रीमन्महाभारते खिलेषु हरिवंशे भविष्यपर्वणि भाषायां पुष्करप्रादुर्भावे सप्तमोऽध्यायः ॥ ७ ॥ वैशम्पायन बोले; हे जन्मेजय ! चार सहस्र दिव्य वर्षोंका सतयुग होता है और आठ सौ वर्षकी उसकी संध्या होती है ॥ १ ॥ उस समय धर्म चार

यो वक्ता यश्च वक्तव्यो यश्चाहं तद्ब्रवीमि वः ॥ इदं शृणुत यच्छ्रेयो यच्चान्यत्परिजल्पथ ॥ २३ ॥ याः कथाश्चैव वर्तन्ते श्रुतयो याथ गह्वराः ॥ विश्वं विश्वपतिर्देवाः सर्वं नारायणात्मकम् ॥ २४ ॥ यत्सत्यं यदनृतमादिमक्षरं वै यद्भूतं भवति मिथश्च यद्भविष्यम् ॥ यत्किंचिच्चरमचराव्ययं त्रिलोके तत्सर्वं पुरुषवरः प्रभुर्वरिष्ठः ॥ २५ ॥ इति श्रीमन्महाभारते खिलेषु हरिवंशे भविष्यपर्वणि पुष्कर-प्रादुर्भावे सप्तमोऽध्यायः ॥ ७ ॥ वैशम्पायन उवाच ॥ चत्वार्याहुः सहस्राणि वर्षाणां तु कृतं युगम् ॥ तस्य तावच्छती संध्या द्विगुणा जनमेजय ॥ १ ॥ तत्र धर्मश्चतुष्पादो ह्यधर्मः पादविग्रहः ॥ स्वधर्मनिरताः सन्तो यजन्ते चैव मानवाः ॥ २ ॥ स्थिता धर्मपरा विप्रा राजवृत्तौ स्थिता नृपाः ॥ कृष्यामभिरता वैश्याः शूद्राः शुश्रूषवस्तथा ॥ ३ ॥ सदा सत्यं तपश्चैव धर्मश्चैव विवर्धते ॥ सद्भिराचरितं यच्च क्रियते ख्यायते च यत् ॥ ४ ॥ एतत्कृतयुगे वृत्तं सर्वेषामेव भारत ॥ प्राणिनां धर्मबुद्धीनामपि चेन्नीचयोनिनाम् ॥ ५ ॥ त्रीणि वर्षसहस्राणि त्रेतायुगमिहोच्यते ॥ तस्य तावच्छती संध्या द्विगुणा परिकीर्तिता ॥ ६ ॥

चरणसे युक्त और अधर्म एकपाद होता है. मनुष्य अपने धर्ममें तत्पर हो यजन करते हैं ॥ २ ॥ ब्राह्मण धर्म और राजा राजवृत्तिमें स्थित रहते हैं. वैश्य खेती और शूद्र शुश्रूषामें रत रहते हैं ॥ ३ ॥ सदा सत्य तप और धर्म बढता है जो सत्पुरुषोंका धर्म है वही किया जाता और आख्यान किया जाता है ॥ ४ ॥ हे भारत ! सतयुगमें यह सबका कृत्य होता है धर्मबुद्धि प्राणी तथा नीचयोनिवालेभी धर्म करते हैं ॥ ५ ॥ त्रेतायुग देवताओंके

तीन सहस्र वर्षोंका होता है और ६०० वर्षकी उसकी संध्या होती है ॥ ६ ॥ धर्मके तीन और अधर्मके दो चरण होते हैं. संतमें सत्य और सतगुण यह दोनों संपूर्णरूपसे वर्तते हैं ॥ ७ ॥ परन्तु त्रेतामें इनमें कुछ विकार होता है कारण कि चारों वर्णोंमें धर्मकी फलभोगकी इच्छासे चंचलता होती है इससे बर्दुलता धर्ममें आती है ॥ ८ ॥ यह देवनिर्मित त्रेतायुगकी विधि है. अब द्वापरकी चेष्टाको सुनो ॥ ९ ॥ हे कुरुश्रेष्ठ ! दो सहस्र वर्षका द्वापर युग होता है और ४०० वर्षकी उसकी संध्या होती है ॥ १० ॥ उसमें ब्राह्मण अर्थमें तत्पर ज्ञानी और रजोगुणी होते हैं तथा शठताको धारण

द्वाभ्यामधर्मः पादाभ्यां त्रिभिर्धर्मो व्यवस्थितः ॥ तत्र सत्यं च सत्त्वं च कृते सर्वं प्रवर्तते ॥ ७ ॥ त्रेतायां विकृतिं यान्ति वर्णा लौल्येन संयुताः ॥ चातुर्वर्ण्यस्य वैकृत्याद्यान्ति दौर्बल्यमाश्रिताः ॥ ८ ॥ एष त्रेतायुगविधिर्विहितो देवनिर्मितः ॥ द्वापरस्यापि या चेष्टा तामपि श्रोतुमर्हसि ॥ ९ ॥ द्वापरं द्वे सहस्रं तु वर्षाणां कुरुसत्तम ॥ तस्य तावच्छती संध्या द्विगुणा परिकीर्तिता ॥ १० ॥ तत्राप्यर्थपरा विप्रा ज्ञानिनो रजसावृताः ॥ शठा नैष्कृतिकाः क्षुद्रा जायन्ते कुरुपुङ्गव ॥ ११ ॥ द्वाभ्यां धर्मः स्थितः पद्भ्यामधर्मस्त्रिभिरुत्थितः ॥ विपर्ययं शनैर्यान्ति कृते ये धर्मसेतवः ॥ १२ ॥ ब्राह्मण्यभावा नश्यन्ति तथास्तिक्यं विशीर्यते ॥ व्रतोपवासास्त्यज्यन्ते द्वापरे युगपर्यये ॥ १३ ॥ तथा वर्षसहस्रं तु वर्षाणां द्वे शते तथा ॥ संध्यया सह संख्यातं क्रूरं कलियुगं स्मृतम् ॥ १४ ॥ तत्राधर्मश्चतुष्पादः स्याद्धर्मः पादविग्रहः ॥ कामनिष्ठास्तमश्छन्नाः जायन्ते तत्र मानवाः ॥ १५ ॥

करनेवाले तुच्छ जीव उत्पन्न होते हैं ॥ ११ ॥ धर्मके दो चरण और अधर्मके तीन चरण स्थित होते हैं. सतयुगकी धर्ममर्यादा शनैः २ विपरीत हो जाती है ॥ १२ ॥ ब्राह्मण्य भाव नष्ट होकर आस्तिकता जहां तहां छिन्न होने लगती है द्वापरयुगमें व्रत और उपवास त्याग दिये जाते हैं ॥ १३ ॥ इसके उपरान्त दिव्य एक सहस्र वर्षका कलि और दो सौ वर्षकी उसकी संध्या होती है ॥ १४ ॥ यह क्रूर युग है. इसमें अधर्मके चार चरण और धर्म एक चरणमें स्थित रहता है. इसमें मनुष्य कामनिष्ठावाले अंधकारसे छन्न उत्पन्न होते हैं ॥ १५ ॥

न कोई व्रती न साधु न सत्य वचन कहनेवाला होता हैं. कोई मनुष्य आस्तिक और ब्रह्मवक्ता नहीं होता ॥ १६ ॥ अहंकारयुक्त बांधवोंके स्नेहरहित होते हैं ब्राह्मण शूद्राचारवाले और शूद्र श्रेष्ठ आचार करनेवाले होते हैं ॥ १७ ॥ आश्रम और वर्णधर्मोंके दूषण करनेवाले वर्णसंकरकर्ता कलियुगी पुरुष अगम्या स्त्रियोंमें रमण करनेवाले होंगे ॥ १८ ॥ इस कारण द्वादश सहस्र वर्षोंका एक युग होता है और ऐसे इकहत्तर युगोंका एक मन्वन्तर होता है ॥ १९ ॥ हे जन्मेजय ! जैसे यहां वस्तुका प्रादुर्भाव और क्षय देखा जाता है वैसेही अन्य लोकमेंभी

नैवोपवासकृत्कश्चिन्न च साधुर्न सत्यवाक् ॥ आस्तिको ब्रह्मवक्ता वा नरो भवति वै तदा ॥ १६ ॥ अहंकारगृहीताश्च प्रक्षीणस्ने-
हबान्धवाः ॥ विप्राः शूद्रसमाचाराः शूद्रास्त्वाचारलक्षणाः ॥ १७ ॥ दूषकास्त्वाश्रमाणां च वर्णानां चैव संकराः ॥ अगम्येष्वभिरं-
स्यन्ते वर्तन्त्येवं कलौ युगे ॥ १८ ॥ एवं द्वादशसाहस्रं तदेकं युगमुच्यते ॥ तदेकसप्ततिगुणं मन्वन्तरमिहोच्यते ॥ १९ ॥ त्रय्यां
चैव न सन्देहो युगान्ते जनमेजय ॥ दिव्यं द्वादशसाहस्रं युगं तु कवयो विदुः ॥ एतत्सहस्रपर्यन्तं तदहो ब्राह्ममुच्यते ॥ २० ॥
ततोऽहानि गते तास्मिन्सर्वेषामेव देहिनाम् ॥ शरीरनिर्वृतिं दृष्ट्वा लोकः संहारबुद्धिमान् ॥ २१ ॥ देवतानां च सर्वेषां ब्राह्मणानां मही-
पते ॥ दैत्यानां मानवानां च यक्षगन्धर्वरक्षसाम् ॥ २२ ॥ देवर्षीणां ब्रह्मर्षीणां तथा राजर्षिणामपि ॥ किन्नराणामप्सरसां भुजङ्गानां
तथैव च ॥ २३ ॥ पर्वतानां नदीनां च पशूनां चैव भारत ॥ तिर्यग्योनिगतानां च सत्त्वानां मृगपक्षिणाम् ॥ २४ ॥ महाभूतपति-
र्देवः पञ्चभूतानि भूतकृत् ॥ जगत्संहरणार्थाय कुरुते वैशसं महत् ॥ २५ ॥

क्षय देखा जाता है इसमें संदेह नहीं दिव्य बारह सहस्र वर्षका एक युग होता है. ऐसे सहस्र युगोंका एक ब्रह्माका दिन होता है ॥ २० ॥ उस दिनके समाप्त होनेमें संपूर्ण प्राणधारियोंकी निर्वृत्ति होती है तब लोकके शरीरकी निर्वृत्ति देखकर लोकसंहारकी इच्छासे बुद्धिमान् ॥ २१ ॥ सब देवता और ब्राह्मण तथा दैत्य मनुष्य यक्ष गंधर्व राक्षस ॥ २२ ॥ देवर्षि ब्रह्मर्षि राजर्षि किन्नर अप्सरा भुजंग ॥ २३ ॥ पर्वत नदी पशु तिर्यक्योनिमें प्राप्त हुए जीव मृगपक्षियोंको हे भारत ॥ २४ ॥ महाभूतपति देव पंच भूत और महाभूतके करनेवाले जगत् संहारके निमित्त महाबीभत्स व्यवाहा

रको करते हैं ॥ २५ ॥ वही सूर्यरूप होकर नेत्रोंको ग्रहण करते हैं वायुरूपसे सब प्राणियोंको संहार करते हैं अग्नि होकर सब लोकोंको जलाते हैं मेघरूप होकर फिर वर्षा करते हैं ॥ २६ ॥ इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे भविष्यपर्वणि भाषायां पुष्करप्रादुर्भावे प्रश्नोत्तरं नामाष्टमोऽध्यायः ॥ ८ ॥ वैशंपायन बोले; योगी नारायण शुद्ध चिन्मात्र हो अग्निकी समान होते हुए महत् अहंकार पंच तन्मात्रा शरीरसे प्रदीप्त होकर तीक्ष्ण ज्वालारूप किरणोंसे उस रूपादिरूपसागरको सुखाते हुए ॥ १ ॥ सब नदी कूपादिके सहित सागरोंका पान करके अपनी रश्मियोंसे सम्पूर्ण पर्वतोंकाभी जलपान करके ॥ २ ॥

भूत्वा सूर्यश्चक्षुषी चाददानो भूत्वा वायुः संहरन् प्राणिजातम् ॥ भूत्वा वह्निर्दह्यते सर्वलोकान्मेघोभूत्वा भूय एवाभ्यवर्षत् ॥ २६ ॥ इति श्रीम० ह० भवि० पुष्करप्रादुर्भावे प्रश्नोत्तरं नामाष्टमोऽध्यायः ॥ ८ ॥ वैशम्पायन उवाच ॥ भूत्वा नारायणो योगी सत्तमूर्तिर्विभावसुः ॥ गभस्तिभिः प्रदीप्ताभिः संशोषयति सागरान् ॥ १ ॥ पीत्वार्णवांश्च सर्वान्स नदीकूपांश्च सर्वशः ॥ पर्वतानां च सलिलं सर्वं पीत्वा च रश्मिभिः ॥ २ ॥ भित्त्वा सहस्रशश्चैव महीं नीत्वा रसातलम् ॥ रसातलजलं कृत्स्नं पिबते रसमुत्तमम् ॥ ३ ॥ अप्सु सृजन्क्लेदमन्यद्ददाति प्राणिनां ध्रुवम् ॥ तत्सर्वमरविन्दाक्ष आदत्ते पुरुषोत्तमः ॥ ४ ॥ वायुश्च बलवान्भूत्वा स विधूयाखिलं जगत् ॥ प्राणोदयं सुराणां च वायुना कुरुते हरिः ॥ ततो देवगणानां च सर्वेषामेव देहिनाम् ॥ ५ ॥ ये चेन्द्रियगणाः सर्वे ये चान्ये च यतोद्भवाः ॥ पूयं घ्राणं शरीरं च पृथिवीमाश्रिता गुणाः ॥ ६ ॥ जिह्वा रसश्च क्लेदश्च संश्रिताः सलिलं गुणाः ॥ रूपं चक्षुर्विपाकश्च ज्योतिरेवाश्रिता गुणाः ॥ ७ ॥

सहस्रशः पृथ्वीके खण्डकर रसातलमें पहुँचाकर सब रससहित पातालका जलपान कर ॥ ३ ॥ जलके क्लेद तथा अन्य वस्तु जो प्राणियोंके निमित्त रची थी वह सब वस्तु कमलनयन पुरुषोत्तम धारण करते हैं ॥ ४ ॥ वह वायु बलवान् होकर सब जगत्को कंपित करके वायुद्वारा देवताओंके प्राणोदयको करते हैं; तब देवगण और सम्पूर्ण देहधारियोंके ॥ ५ ॥ जो इन्द्रियगण हैं और जो विषय उनसे उद्भव हैं गंध घ्राणादि जो कार्यभूत गुण पृथ्वीमें आश्रित हैं ॥ ६ ॥ जिह्वा रस क्लेद जो जलमें स्थित है और रूप चक्षु विपाक जो गुण ज्योतिमें स्थित है ॥ ७ ॥ स्पर्श प्राण चेष्टा यह गुण

पवनमें स्थित हैं. परमेष्ठी वरेण्य यह सब इन्द्रियोंके पति नारायणमें स्थित हैं ॥ ८ ॥ तब उनको प्राप्त होकर भगवान् अन्तर्यामिरूपसे सूक्ष्म किरणोंसे वायुसे आकृष्यमाण हुए परस्पर एकीभावको प्राप्त होते हैं अर्थात् उत्तमोंकी गतिको कहकर यह मध्यमयोगियोंकी वायुनिरोध गति कहते हैं. वह बलवान् योगी मूलाधारादि सब चक्रोंके भेदनमें समर्थ होकर सम्पूर्ण जगत् पादादि जानुपर्यन्त भूस्थान आदिसे तंत्रोक्त दिशाकी भावना कर शरीरमात्रको विधुवन नीचे नीचे लय करनेके प्रकारसे निरसन कर सहस्र भ्रमध्य वायुद्वारा योगी गमन करता है ॥ ९ ॥ देवगणोंके संहर्षसे उत्पन्न हुई अग्नि सौ प्रकारसे प्रज्वलित होती हुई सब लोकोंको जलाती प्रवृत्त होती है ॥ १० ॥ पर्वतसहित वृक्ष गुल्म लता वल्ली तृण दिव्य विमान अनेक पुर ॥ ११ ॥ पुण्य

स्पर्शः प्राणश्च चेष्टा च पवनं संश्रिता गुणाः ॥ परमेष्ठिनं वरेण्यं च हृषीकेशं समाश्रिताः ॥ ८ ॥ ततो भगवता तत्र रश्मिभिः परिवारिताः ॥ वायुनाकृष्यमाणाश्च रूपान्योऽन्यसमाश्रयात् ॥ ९ ॥ तेषां संघर्षजोद्भूतः पावकः शतधा ज्वलन् ॥ अदहन्निखिलाँ-ल्लोकानुग्रः संवर्तकोऽनलः ॥ १० ॥ सपर्वतांस्तरूगुल्माँल्लतावल्लीस्तृणानि च ॥ विमानानि च दिव्यानि पुराणि विविधानि च ॥ ११ ॥ आश्रमांश्च तथा पुण्यान्दिव्यान्यायतनानि च ॥ यानि चाश्रयणीयानि तानि सर्वाणि सोऽदहत् ॥ १२ ॥ भस्मीभूतांस्ततः सर्वाँल्लोकाँल्लोकगुरुर्हरिः ॥ भूयो निर्वापयामास जलयुक्तेन कर्मणा ॥ १३ ॥ सहस्रदृङ् महातेजा भूत्वा कृष्णो महाघनः ॥ दिव्यतोयेन हविषा तर्पयामास मेदिनीम् ॥ १४ ॥ ततः क्षीरनिकाशेन स्वादुना परमाम्भसा ॥ शिवेन पुण्येन मही निर्वाणमगमत्परम् ॥ १५ ॥

आश्रम दिव्यस्थान तथा अन्य स्थान (दहरादि) सबको भस्म करती है ॥ १२ ॥ जब सब लोक भस्मीभूत हो जाते हैं तब लोकगुरु नारायण फिर जलसे उस अग्निको बुझाते हैं (योगी समाधिको प्राप्त हो जलयुक्त अविद्यासंस्कारसे जागृत हो देहपातपर्यन्त संसारमें स्थिति करता है) ॥ १३ ॥ महातेजस्वी वही कृष्ण घनरूप सहस्रदृष्टि होकर दिव्य जलकी हविसे पृथ्वीको तृप्त करते हैं. (योगी विषयभेदमें सहस्र दृष्टिवाला होकर परंज्योतिरूपका संहर्ता होकर चन्द्रमंडलसे निकले जलसे शरीरको प्राप्त होता है अर्थात् पहले शरीरमें चेतना आती है) ॥ १४ ॥ तब क्षीरकी समान स्वादिष्ट उत्तम जलसे जो कि शिव और निर्माणरूप हैं पृथ्वी उससे परम तृप्त होती है, ! योगीका शरीर स्वच्छ निर्मल होनेसे परम शान्तिको प्राप्त होता है जरामृत्युरहित होता है ॥ १५ ॥

तब पर्वत आदिसहित यह पृथ्वी चारों ओर जलसे व्याप्त हो सब प्राणिरहित जलरूप हो जाती है (योगीकी दृष्टिमें बाह्यपदार्थ भी ब्रह्मरूप दीखते हैं) ॥ १६ ॥ सम्पूर्ण महाभूत उस महापराक्रमी परमात्मामें प्रविष्ट हो जाते हैं जब सूर्य पवन नष्ट होकर आकाश सूक्ष्मरूप जनरहित हो जाता है (योगीको सूक्ष्म शुद्धवस्तुही दृष्टिगोचर होती है पवन आदित्य आदि बाह्य पदार्थ दृष्ट नहीं आते) ॥ १७ ॥ सबको शोषण और पान करके एक सनातन देव निवास करते हैं यह बुद्धिमान् उस पुराणरूपमें स्थित होते हैं (सब वाणीसे परे योगी ब्रह्ममें स्थित होता है) ॥ १८ ॥ वह योगी योगको प्राप्त हो

ते नगा जलसंछन्नाः पयसः सर्वतोधराः ॥ एकार्णवजला भूत्वा सर्वसत्त्वविवर्जिताः ॥ १६ ॥ महाभूतान्यपि च तं प्रविष्टान्यमितोजसम् ॥ नष्टार्कपवनाकाशे सूक्ष्मे जनविवर्जिते ॥ १७ ॥ संशोषयित्वा पीत्वा च वसत्येकः सनातनः ॥ पौराणां रूपमास्थाय किमप्यमितबुद्धिमान् ॥ १८ ॥ एकार्णवजले ह्यासीद्योगी योगमुपागतः ॥ अयुतानां सहस्राणि गतान्येकार्णवेऽम्भसि ॥ न चैनं कश्चिद्व्यक्तं व्यक्तं वेदितुमर्हति ॥ १९ ॥ जनमेजय उवाच ॥ एकार्णवविधिः कोऽयं यश्चैव परिकीर्तितः ॥ क एष पुरुषो नाम किंयोगः कश्च योगवान् ॥ २० ॥ वैशम्पायन उवाच ॥ एतावन्तमसौ कालमेकार्णवविधिं प्रति ॥ करिष्यतीमं भगवानिति कश्चिन्न बुध्यते ॥ २१ ॥ न वै माता नच द्रष्टा न ज्ञाता नैव पार्श्वगः ॥ ततोऽवज्ञायते कश्चिद्दृते तं देवमीश्वरम् ॥ २२ ॥

एकार्णव जलमें स्थित होते हैं उस एकार्णव जलमें दश सहस्रों वर्ष स्थित होकर कोई व्यक्त अव्यक्त इनको जाननेको योग्य नहीं है (इसी प्रकार योगीको समाधिमें कोई कुछ नहीं जान सकता) ॥ १९ ॥ जन्मेजय बोले; जो आपने एकार्णवविधि कही है यह क्या है यह पुरुष क्या है किस रूपका योग है और कौन योगवान् है अर्थात् उसका सम्बन्धी कौन है ॥ २० ॥ वैशंपायन बोले; जो भगवान् इतने समयतक एकार्णवविधि करते हैं वह उस समय कोई नहीं जान सकता ॥ २१ ॥ न कोई उसका प्रमाता न द्रष्टा न पार्श्वमें चलनेवाला है. उस देव ईश्वरके सिवाय कुछभी विदित नहीं होता है ॥ २२ ॥

कौन योगवान् है इसपर कहते हैं. आकाश पृथ्वी पवनको प्रकाश करते प्रजापति भुवनचर सुरेश्वर पितामह श्रुतिके स्थान महामुनिको शासन करते प्रभुने शयनकी इच्छा की. (इस प्रकार गुणयुक्त नारायणको योगी जीवरूप मनन करके अपने स्वरूपमें लय करता है) ॥ २३ ॥ इति श्रीमन्महाभारते खिलेषु हरिवंशे भविष्यपर्वणि भाषायां पुष्करप्रादुर्भावे नवमोऽध्यायः ॥ ९ ॥ वैशंपायन बोले; इस प्रकार वह महायशस्वी एकार्णवभूतमें जलकार उपसंहार कर शयन करते हैं अर्थात् वह हरि नारायण प्रभु शुद्ध चिन्मात्ररूपसे स्थित रहते हैं ॥ १ ॥ महार्णवकी समान महारजोगुणके मध्यमें रज

नभः क्षितिं पवनमथ प्रकाशयन्प्रजापतिं भुवनचरं सुरेश्वरम् ॥ पितामहं श्रुतिनिलयं महामुनिं शशास भूः शयनमरोचयत्प्रभुः॥२३॥ इति श्रीमन्महाभारते खिलेषु हरिवंशे भविष्यपर्वणि पुष्करप्रादुर्भावे नवमोऽध्यायः ॥ ९ ॥ वैशम्पायन उवाच ॥ एवमेकार्णवीभूते शेते लोके महाश्रुतिः ॥ प्रच्छाद्य सलिलं सर्वं हरिर्नारायणः प्रभुः ॥ १ ॥ महतो रजसो मध्ये महार्णवसमस्य वै ॥ विरजस्को महाबाहुरक्षरं ब्रह्म यं विदुः ॥ २ ॥ आत्मरूपप्रकाशेन तपसा संवृतः प्रभुः ॥ त्रिकमास्थाय कालं तु ततः सुष्वाप सोऽव्ययः ॥३॥ पुरुषो यज्ञ इत्येवं यत्परं परिकीर्तितम् ॥ यच्चान्यत्पुरुषाख्यं स्यात्सर्वं तत्पुरुषोत्तमः ॥ ४ ॥ ये च यज्ञपरा विप्रा ऋत्विजा इति संज्ञिताः ॥ आत्मदेहात्पुराभूता यज्ञेभ्यः श्रूयता तदा ॥ ५ ॥ ब्रह्माणं परमं वक्राद्उद्गातारं च सामगम् ॥ होतारमथ चाध्वर्युं बाहुभ्यामसृजत्प्रभुः ॥ ६ ॥ ब्राह्मणो ब्राह्मणत्वाच्च संप्रस्तारं च सर्वशः ॥ तन्मित्रं वरुणं सृष्ट्वा प्रतिष्ठातारमेव च ॥ ७ ॥

रहित महाबाहु जिसको अक्षर ब्रह्म कहते हैं ॥ २ ॥ आत्माके प्रकाशसे तपसे संवृत हो वह प्रभु भूत भविष्य वर्तमानरूप तीन कालमें स्थित हो वह अविनाशी शयन कर गये ॥ ३ ॥ वह यज्ञपुरुष जो कि परम कहा जाता है और जो कुछभी पुरुष है वह सब पुरुषोत्तमरूप है ॥ ४ ॥ जो विप्र परब्रह्ममें निष्ठावाले हैं रागादिशून्य ऋत्विक् है तथा तप आदिक वे अनादिसिद्ध उस पुरुषकी देहसे उत्पन्न हुए हैं उनको मुझसे सुनो ॥ ५ ॥ ब्रह्मा उद्गाता और सामगा तथा होताको प्रभुने मुखसे उत्पन्न किया और अध्वर्युको भुजासे उत्पन्न किया ॥ ६ ॥ ब्राह्मण अर्थात् ब्रह्मवेत्ताको प्रस्तार तथा

मित्रावरुणको ब्रह्मत्वसे और प्रतिष्ठाता ॥७॥ तथा प्रतिहर्ता और पोता अच्छावाक मन और नेष्टा ॥८॥ हाथसे आग्नीध्र सुब्रह्मण्य यज्ञियको तथा ग्रावणको उत्पन्न किया. उन्नेता यज्ञियको भुजाओंसे उत्पन्न किया अर्थात् ब्रह्मा उद्गाता होता अध्वर्यु ब्राह्मणाच्छंसी प्रस्तोता मैत्रावरुण प्रतिप्रस्थाता प्रतिहर्ता पोता अच्छावाक नेष्टा आग्नीध्र सुब्रह्मण्य ग्रावस्तोता उन्नेता यह सोलह ऋत्विज हैं. यह यथाक्रमसे प्रणव तदर्थभावन सत्योक्ति प्राण जय धीतैक्ष्ण्य पूर्वस्मृति आचार अपानजय भाविदुःख चिन्ता ईशपूजा दान योगोत्साह सात्त्विकी श्रद्धा वेदान्तश्रवण इन्द्रियशौर्य योगांगोंकी ऊर्जता चिन्तन करते हैं ॥ ९ ॥ इस प्रकारसे भगवान्ने सम्पूर्ण यज्ञके वक्ता ऋत्विजसंज्ञक सोलह ब्राह्मणोंको अपने अंगोंसे उत्पन्न किया है ॥ १० ॥ यह यज्ञसम्मित पुरुष

उदरात्प्रतिहर्त्तारं पोतारं चैव भारत ॥ अच्छावाकमनोरूभ्यां नेष्टारं चैव भारत ॥८॥ पाणिभ्यामथ चाग्नीध्रं सुब्रह्मण्यं च यज्ञियम् ॥
ग्रावाणमथ बाहुभ्यामुन्नेतारं च यज्ञियम् ॥ ९ ॥ एवमेवैष भगवान् षोडशैतान् जगत्पतिः ॥ प्रवक्तॄन्सर्वयज्ञानामृत्विजोऽसृजदुत्त-
मान् ॥१०॥ तदेष वै वेदमयः पुरुषो यज्ञसंमितः ॥ वेदाश्च तन्मयाः सर्वे साङ्गोपनिषदक्रियाः ॥ ११ ॥ स्वापित्येकार्णवे चैव यदाश्च
र्यमभूत्तदा ॥ श्रूयते तद्यथावृत्तं मार्कण्डेयो यदन्वभूत् ॥ १२ ॥ जीर्णो भगवतस्तस्य कुक्षावेव महामुनिः ॥ बहुवर्षसहस्रायुस्तस्यैव
वरतेजसा ॥ १३ ॥ इति तीर्थप्रसङ्गेन पृथिवीतीर्थगोचरः ॥ आश्रमानपि पुण्यांश्च तीर्थान्यायतनानि च ॥ १४ ॥ देशान्राष्ट्राणि
चित्राणि पुराणि विविधानि च ॥ जपहोमरतः क्षान्तस्तपो घोरं समाश्रितः ॥ १५ ॥ मार्कण्डेयस्ततस्तस्य शनैर्वक्त्राद्विनिःसृतः ॥
निष्क्रामन्तं न चात्मानं जानात देवमायया ॥ १६ ॥

वेदमय है अंग उपनिषत्की क्रियासहित तन्मय वेद हैं ॥ ११ ॥ जिस समय वह एकार्णवमें शयन कर गये तब बडा आश्चर्य हुआ. उस समयका वृत्तान्त मार्कण्डेयने अनुभव किया है ऐसा सुना है ॥ १२ ॥ उन भगवान्की कुक्षिमें सर्व उपाधिरहित मुनि जीर्ण हो विचरे उनके वरदानसे उनकी बहुत सहस्र वर्षकी आयु हो गई ॥ १३ ॥ एक समय तीर्थप्रसंगसे पृथ्वीके तीर्थोंमें विचरते हुए पवित्र आश्रम और पवित्र तीर्थ ॥ १४ ॥ देश राज्य विविध पुर देखते हुए जप होममें प्रीति करनेवाले शान्त हो घोर तप करते ॥ १५ ॥ शनैः शनैः मार्कण्डेयजी भगवान्के मुखसे निकले, निकल

कर देवमायासे उन्होंने अपनेको न जाना ॥ १६ ॥ उनके मुखसे निकलकर एकार्णव सागरमें मग्न हो गये तब मार्कंण्डेयने देखा कि चारों ओर अंधकार व्याप्त हो रहा है ॥ १७ ॥ जब उनको बडा भय और अपने जीवनमें संदेह उत्पन्न हुआ, तब देवके दर्शनसे प्रसन्न होकर बडे विस्मयको प्राप्त हुए ॥१८॥ तब शंकित हो मध्यस्थमें स्थित हुए मार्कण्डेयजी विचारने लगे. यह मुझको मोह है या कोई स्वप्न प्रवृत्त हुआ है ॥१९॥ इसमें ठीकही मेरा भाव अन्य प्रकारका हो गया है. इस प्रकारका अयुक्त असत्य किसी प्रकारसे सत्य हो नहीं सकता॥२०॥चन्द्रसूर्यके नष्ट होने पर्वत भूतलके छन्न

निष्क्रान्तस्तस्य वदनादेकार्णवमथो गतः ॥ सर्वतस्तमसाच्छन्नं मार्कण्डेयो निरीक्षते ॥ १७ ॥ तस्योत्पन्नं भयं तीव्रं संशयश्चात्मजीविते ॥ देवदर्शनसंहृष्टो विस्मयं चागमत्परम् ॥१८॥ संचिन्तयति मध्यस्थो मार्कण्डेयोऽतिशङ्कितः॥ किंस्विद्भवेदियं चिन्ता मोहः स्वप्नोऽनुभूयते ॥ १९ ॥ व्यक्तमन्यतमो भावो ह्येतेषां भविता मम ॥ नहीदृशमसंक्लिष्टमयुक्तं सत्यमर्हति ॥ २० ॥ नष्टचन्द्रार्कपवने छन्नपर्वतभूतले ॥ कतमः स्यादयं लोक इति चिन्ताव्यवस्थितः ॥ २१ ॥ अपश्यच्चापि पुरुषं शयानं पर्वतोपमम् ॥ तोयाढ्यमिव जीमूतं मध्ये मग्नं महार्णवे ॥ २२ ॥ तपन्तमिव तेजोभिर्भास्वन्तमिव वर्चसा ॥ जाग्रन्तमिव गाम्भीर्याच्छ्वसन्तमिव पन्नगम् ॥ २३ ॥ स देवं प्रष्टुमायाति को भवानिति विस्मयात् ॥ तथैव च शनैर्भूया मुनिः कुक्षिं प्रवेशितः ॥ २४ ॥ स प्रविष्टः पुनः कुक्षौ मार्कण्डेयः सुनिश्चितः ॥ तथैव चरते भूयो विजानन्स्वप्नदर्शनम् ॥ २५ ॥ स तथैव यथापूर्वं पृथिवीमटते पुनः ॥ पुण्यतीर्थानि पूतानि निरीक्षद्दिवि भूतले ॥ २६ ॥

होनेमें यह लोक किस प्रकार हो सकता है. इस चिन्तासे व्याकुल हुए ॥ २१ ॥ तब उन्होंने पर्वतकी समान एक पुरुषको शयन करते देखा. जिस प्रकार महासागरमें नील मेघ स्थित हो ॥ २२ ॥ तेजकी सम्पत्तिसे प्रकाशमान हो रहे थे कान्ति फैल रही थी गंभीरतासे जागते हुए सर्पकी समान स्वास लेते ॥ २३ ॥ देवको पूछनेको चले. आप कौन हो तब यह मुनि शनैः २ उनकी कुक्षिमें प्रविष्ट हुए ॥ २४ ॥ कुक्षिमें प्रविष्ट हो मार्कण्डेयजी स्वप्नदर्शनकी समान उसमें विचरने लगे ॥ २५ ॥ और वहां पूर्वकालकी समान पृथ्वीमें विचरने लगे और स्वर्ग तथा पृथ्वीमें पवित्र

तीर्थ देखने लगे ॥ २६ ॥ बडी बडी दक्षिणाओंके यज्ञोंसे यजन करते हुए देवकी कुक्षिमें उन्होंने सेकडों ब्राह्मणोंको देखा ॥ २७ ॥ वे ब्राह्मणादि वर्ण सम्पूर्ण सद्वृत्तिमें स्थित थे. चारों आश्रम यथोक्त धर्मका अनुष्ठान करनेवाले थे ॥ २८ ॥ सो सहस्र वर्षतक महामुनि मार्कण्डेयजी पृथ्वीमें विचरते हुए उस कुक्षिको सर्वथा न देख सके ॥ २९ ॥ फिर किसी समय वह उनके मुखसे निकले तब न्यग्रोधकी शाखामें सोते हुए एक बालकको देखा ॥ ३० ॥ एकार्णव जल जो कि नीहारसे व्याप्त था अव्यक्त और सब प्राणियोंके विना लोक भयानक हो रहा था ॥ ३१ ॥ तब यह फिर

क्रतुभिर्यजमानांश्च समाप्तवरदक्षिणैः ॥ पश्यते देवकुक्षिस्थान्यज्ञियाञ्छतशो द्विजान् ॥ २७ ॥ सद्वृत्तमाश्रिताः सर्वे वर्णा ब्राह्मणपूर्वकाः ॥ चत्वारश्चाश्रमाः सम्यग्यथोद्दिष्टपदानुगाः ॥ २८ ॥ वर्षाणां शतसाहस्रं मार्कण्डेयो महामुनिः ॥ विचरन् पृथिवीं कृत्स्नां न च कुक्ष्यन्तमैक्षत ॥ २९ ॥ ततः कदाचिदथ वै पुनर्वक्त्राद्विनिस्सृतः ॥ सुप्तं न्यग्रोधशाखायां बालमेकं निरीक्षते ॥ ३० ॥ यथा चैकार्णवजले नीहारेण वृतान्तरे ॥ अव्यक्तभीषणे लोके सर्वभूतविवर्जिते ॥ ३१ ॥ स भूयो विस्मयाविष्टः कौतूहलसमन्वितः ॥ बालमादित्यसंकाशं न शक्तोत्युपसर्पितुम् ॥ ३२ ॥ सोऽचिन्तयदथैकान्ते स्थित्वा सलिलसन्निधौ ॥ पूर्वदृष्टमिदं नेति शङ्कितो देवमायया ॥ ३३ ॥ अगाधे सलिलस्तब्धे मार्कण्डेयः प्लवन्मुनिः ॥ न शान्तिं लभते तत्र श्रमात्संत्रस्तविक्लवः ॥ ३४ ॥ तथैव भगवान्हंसो गतो योगेन बालताम् ॥ बभाषे मेघतुल्येन स्वरेण पुरुषोत्तमः ॥ ३५ ॥ श्रीभगवानुवाच ॥ मा भैर्वत्स न भेतव्यमिहैवायाहि चान्तिकम् ॥ मार्कण्डेय मुने धीर बालस्त्वं श्रमपीडितः ॥ ३६ ॥

विस्मयको प्राप्त हो कौतूहलयुक्त होकर बालसूर्यकी समान प्रकाशमान उनके निकट जानेको समर्थ न हुए ॥ ३२ ॥ तब वह एकान्तमें जलके निकट विचारने लगे मैंने यह पूर्व देखा है या नहीं इस प्रकार देवमायासे शंकित हुए ॥ ३३ ॥ अगाध और स्तब्ध जलमें पैरते हुए महामुनि मार्कण्डेयजी श्रमसे व्याकुल हो शान्तिको किसी प्रकार प्राप्त न हुए ॥ ३४ ॥ इसी प्रकार भगवान् हंस योगमार्गसे बालअवस्थाको प्राप्त हुए, मेघकी समान गंभीर स्वरसे पुरुषोत्तमने कहा ॥ ३५ ॥ श्रीभगवान् बोले; हे वत्स ! तुम मत डरो और हमारे समीपमें आओ. हे मार्कण्डेय मुनि ! तुम बालक हो.

हे धीर ! इस समय श्रमसे पीडित हो ॥ ३६ ॥ मार्कण्डेय बोले; मेरे तपको तिरस्कार करता हुआ मुझे नाम लेकर कौन बुलाता है. बहुत वर्षोंकी आयुको धर्षणा करता हुआ मेरी वय न्यून करता है ॥ ३७ ॥ यह आचार देवताओंमेंभी नहीं है मुझको विश्वेश ब्रह्माभी दीर्घायु कह कर बोलते हैं ॥ ३८ ॥ आज कौन मेरे घोरतप को तिरस्कार कर मुझे मार्कण्डेय कहकर मृत्युके देखनेकी इच्छा करता है ॥ ३९ ॥ वैशंपायन बोले; जो मार्कंण्डेय मुनिने जब क्रोधसे इस प्रकार कहा तब इनसे भगवानूने फिर कहा ॥ ४० ॥ श्रीभगवान् बोले; हे वत्स ! मैं तुम्हारा पिता हृषीकेश गुरु हूं

मार्कण्डेय उवाच ॥ को मां नाम्ना कीर्तयते तपः परिभवन्मम ॥ बहुवर्षसहस्राख्यं धर्षयंश्चैव मे वयः ॥ ३७ ॥ न ह्येषु समुदाचारो देवेष्वपि समाहितः ॥ मां ब्रह्मापि स विश्वेशो दीर्घायुरिति भाषते ॥३८॥ कस्तपोघोरशिरसो ममाद्य त्यक्तजीवितः ॥ मार्कण्डेयेति मां प्रोक्त्वा मृत्युमीक्षितुमिच्छति ॥ ३९॥ वैशम्पायन उवाच ॥ एवमाभाषत क्रोधान्मार्कण्डेयो महामुनिः ॥ अथैनं भगवान् भूयो बभाषे तत्परायणम् ॥ ४० ॥ श्रीभगवानुवाच ॥ अहं ते जनको वत्स हृषीकेशः पिता गुरुः ॥ आयुःप्रदाता पौराणः किमर्थं नोपसर्पसे ॥ ४१ ॥ मां पुत्रकामः प्रथमं पिता ते ह्यङ्गिरा मुनिः ॥ पूर्वमाराधयामास तपस्तीव्रमुपाश्रितः ॥ ४२ ॥ ततस्त्वां घोरशिरसं दहनोपमतेजसम् ॥ दत्तवानहमात्मेष्टं महर्षिममितायुषम् ॥ ४३ ॥ तत्र नोत्सहते चान्यो यो न भृत्यो ममात्मकः ॥ द्रष्टुमेकार्णवगतं क्रीडन्तं योगधर्मिणम् ॥ ४४ ॥ वैशम्पायन उवाच ॥ ततः प्रसन्नवदनो विस्मयोत्फुल्ललोचनः ॥ मूर्ध्नि बद्धाञ्जलिपुटो मार्कण्डेयो महातपाः ॥ ४५ ॥

वह आयुके देनेवाले मेरे निकट तुम क्यों नहीं आते ॥ ४१ ॥ प्रथम तुम्हारे पिता अंगिराऋषिने पुत्रकी इच्छासे बडे तीव्र तपको कर मेरी आराधना की थी ॥ ४२ ॥ तब अग्निकी समान घोर शिरवाले बडे तेजस्वी तुमको मैंने प्रदान किया और दीर्घ आयु प्रदान की ॥ ४३ ॥ जो मेरा भक्त नहीं है वह इस एकार्णव सागरके बीचमें क्रीडा करते हुए मुझे देखनेको समर्थ नहीं है. कारण कि योगधर्मके सिवाय इसे कोई नहीं जान सकता ॥ ४४ ॥ वैशंपायन बोले; तब प्रसन्न वदन विस्मयसे उत्फुल्ल नेत्र हो शिरपर अंजली बांधे महातपस्वी मार्कण्डेयजी ॥ ४५ ॥

नाम गोत्र सुनकर दीर्घआयु लोकपूजित मार्कण्डेयजीने शिरसे प्रभुको नमस्कार किया ॥ ४६ ॥ मार्कण्डेयजी बोले; हे पापरहित ! आपसे मैं इस मायाके जाननेकी इच्छा करता हूं जो आप बालकरूप एकार्णवमें शयन करते हो ॥ ४७ ॥ हे भगवन् ! आप किस संज्ञासे लोकमें जाने जाते हो आपको मैं महाभूत जानता हूं इसमें भूत स्थित नहीं हो सकता ॥ ४८ ॥ श्रीभगवान् बोले; मैं नारायण सब देहधारियोंका उत्पत्तिकारण हूं सब प्राणियोंका उत्पन्न करनेवाला सबका संहार करता हूं ॥ ४९ ॥ मैं इन्द्रपदमें इन्द्र ऋतुओंका वर्षरूप हूं मैंही युगमें

नामगोत्रे ततः श्रुत्वा दीर्घायुर्लोकपूजितः ॥ अथाकरोन्नमस्कारं प्रणतः शिरसा प्रभुम् ॥ ४६ ॥ मार्कण्डेय उवाच ॥ इच्छेऽहं तत्त्वतो मायामिमां ज्ञातुं तवानघ ॥ यदेकार्णवमध्यस्थः शेषे त्वं बालरूपवान् ॥ ४७ ॥ किंसंज्ञः कश्च भगवाँल्लोके विज्ञायसेऽनघ ॥ तर्कये त्वां महाभूतं न भूतमिह तिष्ठति ॥ ४८ ॥ श्रीभगवानुवाच ॥ अहं नारायणो ब्रह्मा संभवः सर्वदेहिनाम् ॥ सर्वभूतोद्भवकरः सर्वभूतविनाशनः ॥ ४९ ॥ अहमैन्द्रे पदे शक्र ऋतूनामपि वत्सरः ॥ अहं युगे युगाक्षश्च युगस्यावर्त्त एव च ॥ ५० ॥ अहं सर्वाणि सत्त्वानि दैवतान्यखिलानि च ॥ भुजगानामहं शेषस्तार्क्ष्योऽहं सर्वपक्षिणाम् ॥ ५१ ॥ अहं सहस्रशीर्षाद्यैर्यः पदैरभिसंवृतः ॥ आदित्यो यज्ञपुरुषो देवो यज्ञमयो मखः ॥ अहमग्निर्हव्यवाहो यादसां पतिरव्ययः ॥ ५२ ॥ यत्पृथिव्यां द्विजेन्द्राणां तपसा भावितात्मनाम् ॥ बहुजन्मनिरुद्धात्मा ब्राह्मणो यतिरुच्यते ॥ ५३ ॥ ज्ञानवान् दृष्टविश्वात्मा योगिनां योगवित्तमः ॥ कृतान्तः सर्वभूतानां विश्वेषां कालसंज्ञितः ॥ ५४ ॥ अहं कर्म क्रिया जीवः सर्वेषां धर्मदर्शनः ॥ निष्क्रियः सर्वभूतेषु स्वात्मज्योतिः सनातनः ॥ ५५ ॥

युगाक्ष और युगका आर्वतक हूं ॥ ५० ॥ मैंही सम्पूर्ण जीव और सब देवतारूप हूं सर्पोंमें शेष और पक्षियोंमें गरुड हूं ॥ ५१ ॥ मैं सहस्रशीर्षा आदि पदोंसे युक्त होकर आदित्य यज्ञपुरुष देव यज्ञमय मखस्वरूप अग्नि हव्यवाह जलपति अविनाशी हूं ॥ ५२ ॥ जो पृथ्वीमें तपसे भावितात्मावाले तथा बहुत जन्मपर्यन्त जप तप करनेवाले ब्राह्मणोंमें जो यति हैं सो मैं हूं ॥ ५३ ॥ ज्ञानवान् विश्वात्माका द्रष्टा योग जाननेवालोंमें श्रेष्ठ सब प्राणियोंका अन्त करनेवाले सब जगत्का कालस्वरूप ॥ ५४ ॥ कर्म क्रिया जीव और सबका धर्म देखनेवाला मैं हूं. सब प्राणियोंमें क्रियारहित आत्मज्योति

सनातन मैं हूं ॥ ५५ ॥ प्रधानपुरुष देव आदि अक्षय अविनाशी मैं हूं. मैंही धर्मतपरूप सब आश्रमवासियोंका हूं ॥५६॥ मैंही हयशिर नामक देव महा
क्षीरसागरमें स्थित हुआ ऋत सत्य परम प्रजापतिरूप मैं एकही हूं ॥ ५७ ॥ मैंही सांख्ययोग और परंपदरूप हूं. मैंही यजनके योग्य शिवस्वरूप
विद्याधिप कहा जाता हूं ॥ ५८ ॥ मैं ज्योति वायु भूमि आकाश जल समुद्र नक्षत्र दशों दिशा वर्ष सोम पर्जन्य सूर्यरूप हूं ॥ ५९ ॥ मैंही क्षीरसागर
समुद्र वडवामुख हूं. मैंही संवर्त अग्नि होकर जल पान कर जाता हूं तथा रवि हूं ॥ ६० ॥ मैंही पुराणपुरुष परम परायण हूं. मैंही भविष्यमें होनहा-

प्रधानं पुरुषो देवोऽहमाद्यस्त्वक्षयोऽव्ययः ॥ अहं धर्मस्तपश्चाहं सर्वाश्रमनिवासिनाम् ॥५६॥ अहं हयशिरो देवः क्षीरोदे यो महार्णवे ॥ ऋतं सत्यं च परममहमेकः प्रजापतिः ॥५७॥ अहं सांख्यमहं योगमहं तत्परमं पदम् ॥ अहमिज्यो भवश्चाहमहं विद्याधिपः स्मृतः ॥५८॥ अहं ज्योतिरहं वायुरहं भूमिरहं नभः ॥ अहमापः समुद्राश्च नक्षत्राणि दिशो दश ॥ अहं वर्षमहं सोमः पर्जन्योऽहमहं रविः ॥५९॥ क्षीरोदः सागरश्चाहं समुद्रो वडवामुखः ॥ वह्निः संवर्तको भूत्वा पिबंस्तोयमहं रविः ॥६०॥ अहं पुराणं परं तथैवेह परायणम् ॥ भविष्यं चैव सर्वत्र भविष्ये सर्वसंभवः ॥६१॥ यत्किंचित्पश्यसे चैव यच्छृणोषि च किंचन ॥ यच्चानुभवसे लोके तत्सर्वं मामकं स्मृतम् ॥६२॥ विश्वं सृष्टं मया पूर्वं सृजेयं चाद्य पश्य माम् ॥ युगे युगे च स्रक्ष्यामि मार्कण्डेयाऽखिलं जगत् ॥६३॥ तदेतदखिलं सर्वं मार्कण्डेयावधारय ॥ शुश्रूषुर्मम धर्मांश्च कुक्षौ चर सुखी भव ॥६४॥ मम ब्रह्मा शरीरस्थो देवाश्च ऋषिभिः सह ॥ व्यक्तमव्यक्तयोगं मामवगच्छापराजितम् ॥६५॥

रूप हूं ॥ ६१ ॥ जो कुछ देखा और सुना जाता है और जो कुछ लोकमें अनुभव किया जाता है वह सब मुझे जानो ॥ ६२ ॥ पहले मैंने जैसा
विश्व रचा था देखो वैसाही अब रचूंगा मुझे देखो. हे मार्कण्डेय ! युगयुगमें मैं जगत्की रचना करता हूं ॥ ६३ ॥ हे मार्कण्डेय ! यह सब वार्ता तुम
विचार करो धर्मके सुननेकी इच्छासे मेरी कुक्षिमें सुखपूर्वक विचरो ॥ ६४ ॥ ब्रह्मा मेरे शरीरमें स्थित है. देवता ऋषियोंके सहित स्थित हैं, व्यक्त
अव्यक्तसे योगद्वारा मुझे जानकर सुखी हो और अपराजित जानो ॥ ६५ ॥

मैंही अक्षर मंत्र त्र्यक्षररूप हूं त्रिपद परम और त्रिवर्गके अर्थका निदर्शनरूप हूं ॥ ६६ ॥ वैशंपायन बोले; इस प्रकार महामुनि व्यासने वेदान्त और पुराणोंमें वर्णन किया है जो मार्कण्डेयजीके प्रति कहा गया है. तब महामुनि यह वचन सुन प्रसन्न हुए, उस समय महामुनिको ॥ ६७ ॥ विश्वरूप-धारी प्रभुने अपने जठरमें प्रवेश कराया तब मुनिश्रेष्ठ भगवान्‌की कुक्षिमें प्रवेश कर गये और अविनाशी हंसकी गाथा श्रवण करनेको सुखसे रमण करने लगे ॥ ६८ ॥ नाशरहित अनेक प्रकारके शरीर धारण करनेवाले चन्द्रसूर्यसे रहित महावर्णवमें शनैः शनैः विचरण करते हंसनामक भगवान् प्रलयके अन्तमें

अहमेवाक्षरो मन्त्रस्त्र्यक्षरश्चैव सर्वशः ॥ त्रिपदश्चैव परमस्त्रिवर्गार्थनिदर्शनः ॥ ६६ ॥ वैशम्पायन उवाच ॥ एवमेतत्पुराणेषु वेदान्ते च महामुनिः ॥ वक्रं व्याहृतवानाशु मार्कण्डेयं महामुनिम् ॥ ६७ ॥ प्रवेशयामास ततो जठरं विश्वरूपधृक् ॥ ततो भगवतः कुक्षिं प्रविष्टो मुनिसत्तमः ॥ रराम सुखमासाद्य शुश्रूषुर्हंसमव्ययम् ॥ ६८ ॥ तदक्षरं विविधमथाश्रितो वपुर्महार्णवे व्यपगतचन्द्रभास्करे ॥ शनैश्चरन्प्रभुरपि हंससंज्ञितोऽसृजज्जगद्विसृजति कालपर्यये ॥ ६९ ॥ इति श्रीम० खिलेषु हरिवंशे भवि० दशमोऽध्यायः ॥ १० ॥ वैशम्पायन उवाच ॥ आपवः स विभुर्भूत्वा कारयामास वै तपः ॥ छादयित्वात्मनो देहमात्मना कुम्भसंभवः ॥ १ ॥ ततो महात्माऽतिबलो मतिं लोकस्य सर्जने ॥ महतां पञ्चभूतानां विश्वभूतो व्यचिन्तयत् ॥ २ ॥ तस्य चिन्तयतस्तत्र तपसा भावितात्मनः ॥ निराकाशे तोयमये सूक्ष्मे जगति गह्वरे ॥ ३ ॥ ईषत्संक्षोभयामास सोऽर्णवं सलिले स्थितः ॥ सोऽनन्तरोर्मिणा सूक्ष्ममथच्छिद्रमभूत्तदा ॥ ४ ॥

जगत्‌की रचना करते हैं ॥ ६९ ॥ इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे भविष्यपर्वणि भाषायां दशमोऽध्यायः ॥ १० ॥ वैशंपायन बोले; वह हंसरूप विभु जलरूप वशिष्ठ होकर अर्थात् अपने कुंभसे उत्पन्न हुए अपने शरीरको समष्टि अभिमानवाले अपने आत्मासे आच्छादन कर तप करने लगे ॥ १ ॥ तब उन महाबली महात्माने लोकके निर्माण करनेकी इच्छा की. महान् और पंच महाभूतकी चिन्ता करने लगा ॥ २ ॥ उन भावितात्मावालेके उस समय चिन्ता करनेपर आकाशरहित जलमय सूक्ष्म जगत्‌के होनेमें ॥ ३ ॥ जलमें स्थित हो उन्होंने सागरको यत्किंचित् क्षुभित किया. तब संकल्परूपी

लहरोंसे आकाश नामक सूक्ष्म छिद्र हुआ ॥ ४ ॥ तब वह ईश्वर अन्य संकल्पसे आकाशमें शब्दरूपसे गतिवाला होकर पवनरूप द्रवसे उत्पन्न हो आकाशको प्राप्त होकर अप्राप्त हुएकी समान क्षोभसे रहित हो वायुरूपसे बढे ॥ ५ ॥ उन बलवान्‌के बढनेसे सागर क्षुभित हुआ तब एक दूसरेके वेगसे आहत हो ऊर्मी उसको मथन करने लगी ॥ ६ ॥ महार्णवके क्षुभित और जलके मथित होनेसे कान्तिमान् वैश्वानराग्नि प्रभु प्रगट हुआ ॥ ७ ॥ तब अग्निने बहुतसे जलको सुखा डाला, तब सागरमें सूखनेसे छिद्र हुआ उस समय आकाश निकला ॥ ८ ॥ आत्माके तेजसे उत्पन्न हुए अमृतके

तत्र शब्दगतिर्भूत्वा मारुतद्रवसंभवः ॥ स लब्ध्वान्तरमक्षोभ्यो व्यवर्द्धत समीरणः ॥ ५ ॥ विवर्द्धता बलवता तेन संक्षोभितोऽर्णवः ॥ अन्योन्यवेगाभिहता ममन्थुश्चोर्मयो भृशम् ॥ ६ ॥ महार्णवस्य क्षुब्धस्य तस्मिन्नम्भसि मथ्यति ॥ कृष्णवर्त्मा समभवत्प्रभुर्वैश्वानरोर्चिमान् ॥ ७ ॥ तत्र संशोषयामास पावकः सलिलं बहु ॥ क्षयाज्जलनिधेश्छिद्रमभवान्निःसृतं नभः ॥ ८ ॥ आत्मतेजोद्भवाः पुण्या आपोऽमृतरसोपमाः ॥ आकाशं छिद्रसंभूतं वायुराकाशसंभवः ॥ ९ ॥ आज्यसंघर्षणोद्भूतं पावकं चाज्यसंभवम् ॥ दृष्ट्वा प्रीतियुतो देवो महाभूतादिभावनः ॥ १० ॥ दृष्ट्वा भूतानि भगवाँल्लोकसृष्ट्यर्थतत्त्ववित् ॥ ब्रह्मणो जन्मसहितं बहुरूपो विचिन्वति ॥ ११ ॥ चतुर्युगादिसंख्यान्ते सहस्रयुगपर्यये ॥ यत्पृथिव्यां द्विजेन्द्राणां तपसा भावितात्मनाम् ॥ १२ ॥ बहुजन्मनिरुद्धात्मा ब्राह्मणो यतिरुत्तमः ॥ ज्ञानवान् दृष्टविश्वात्मा योगिनां योगवित्तमः ॥ १३ ॥

रसकी समान जल हुए और आकाशसे वायु प्रादुर्भूत हुआ ॥ ९ ॥ जलसे अग्नि अग्निसे जल प्रगट हुआ है, यह देखकर देव बहुत प्रसन्न हुए, इस प्रकार भूतभावन देव प्रसन्न होकर ॥ १० ॥ भूतोंको देख तत्त्वज्ञाता भगवान् लोककी सृष्टिके निमित्त ब्रह्माके जन्मको विचारने लगे ॥ ११ ॥ चार युगोंकी संस्थासे सहस्र वर्ष पर्यन्त जो पृथ्वीमें तप करके भावित आत्मावाले ॥ १२ ॥ बहुत जन्मोंमें निरुद्ध आत्मावाले पूर्वोक्त ब्राह्मणोंके मध्यमें उत्तम ज्ञानवान् विश्वात्मा योगियोंमें योग जाननेवालोंमें श्रेष्ठ ॥ १३ ॥

उस योगवान् जानने योग्य सम्पूर्ण ऐश्वर्य और विक्रमसे युक्त पुरुषको जो पूर्वसृष्टिमें सब प्रकारके योग्य था उसे विश्व और ब्रह्मा बनानेके निमित्त ईश्वरने नियुक्त किया ॥ १४ ॥ तब उस महाजलमें ब्रह्माके नियोगके अनन्तर नारायण अपने निर्विशेषरूपको प्राप्त होकर शयन क्रीडा करते प्रसन्न रहते हैं और यह ब्रह्मा कर्मानुसार सृष्टि रचते हैं ॥ १५ ॥ नारायणने अपनी नाभिसे एक कमल उत्पन्न किया जो रजरहित सहस्रदल सुवर्णकी समान प्रकाशमान था ॥ १६ ॥ अग्निकी जलती हुई शिखाकी समान उज्वल प्रभावाला सुगंधियुक्त शरदकालके उज्ज्वलसूर्यकी समान प्रकाशमान वह उदार कान्तिमान् कमल विराजमान

तं योगवन्तं विज्ञेयं संपूर्णैश्वर्यविक्रमम् ॥ देवो ब्रह्माणि विश्वे च नियोजयति योगवित् ॥ १४ ॥ ततस्तस्मिन्महातोये हविषो हरि-रच्युतः ॥ स्वपन् क्रीडंश्च विविधं मोदते चैष पावकिः ॥ १५ ॥ पद्मं नाभ्युद्भवं चैकं समुत्पादितवांस्तदा ॥ सहस्रपत्रं विरजो भास्कराभं हिरण्मयम् ॥ १६ ॥ हुताशनं ज्वलितशिखोज्ज्वलत्प्रभं सुगन्धिनं शरदमलार्कतेजसम् ॥ विराजते कमलमुदारवर्चसं महात्मनस्तनुरुहचारुदर्शनम् ॥ १७ ॥ इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे भविष्यपर्वणि एकादशोऽध्यायः ॥ ११ ॥ वैशम्पायन उवाच ॥ अथ योगविदां श्रेष्ठं सर्वभूतमनोमयम् ॥ स्रष्टारं सर्वभूतानां ब्रह्माणं सर्वतोमुखम् ॥ १ ॥ तस्मिन् हिरण्मये पद्मे बहुयो-जनविस्तृते ॥ सर्वतेजोगुणमये पार्थिवैर्लक्षणैर्युते ॥ २ ॥ तच्च पद्मं पुराणज्ञाः पृथिवीरुहमुत्तमम् ॥ नारायणाङ्गसंभूतं प्रवदन्ति महर्षयः ॥ ३ ॥ या तु पद्मासना देवी पृथिवीं तां प्रचक्षते ॥ ये गर्भसाराङ्कुरतस्तान्दिव्यान्पर्वतान्विदुः ॥ ४ ॥

होने लगा. कारण कि उन महात्माके शरीरसे प्रकाशित हुआ था और सुन्दर दर्शनीय था ॥ १७ ॥ इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे भविष्यपर्वणि भाषायां एकादशोऽध्यायः ॥ ११ ॥ वैशंपायन बोले; तब योगवालोंमें श्रेष्ठ सर्व प्राणियोंके मनोमय सब भूतोंके स्रष्टा सब ओरसे मुखवाले ब्रह्माजी ॥ १ ॥ उस बहुत योजनोंके विस्तारवाले सुवर्णमय कमलमें, जो सब तेजोंके गुणमय और सब लक्षणसे लक्षित था ॥ २ ॥ ऋषि और पुराणके जाननेवाले उस कमलको पृथ्वीरुह और नारायणके अंगसे उत्पन्न कहते हैं ॥ ३ ॥ और उस कमलकी आसन पृथ्वी देवी कही जाती है और उस कमलके अंकु

रोंको दिव्य पर्वत कहते हैं ॥ ४ ॥ हिमालय मेरु नील निषध कैलास मुंजवान् गंधमादन ॥ ५ ॥ पवित्र त्रिशिखर कान्त मंदर उदय कंदर विंध्य अस्ताचल पर्वत ॥ ६ ॥ यह देवगण और महात्मा सिद्धोंके आश्रम हैं. इन पर्वतोंमें इन पुण्यात्माओंके पवित्र आश्रम हैं ॥ ७ ॥ इनका इतर देश जम्बूद्वीप कहलाता है. यह जम्बूद्वीप कर्मभूमि है. यहीं यज्ञ होते हैं ॥ ८ ॥ जो स्वर्गके गर्भसे अमृतके रसकी समान जल निर्गत होता है वही दिव्य तीर्थरूपसे युक्त देवनदी कहाती है ॥ ९ ॥ जो यह कमलके चारों ओर केशर है वही पृथ्वीमें असंख्यात धातु हैं ॥ १० ॥ हे राजन् ! जो कमलके

हिमवन्तं च मेरुं च नीलं निषधमेव च ॥ कैलासं मुञ्जवन्तं च तथाद्रिं गन्धमादनम् ॥ ५ ॥ पुण्यं त्रिशिखरं चैव कान्तं मन्दरमेव च ॥ उदयं कन्दरं चैव विन्ध्यमस्तं च पर्वतम् ॥ ६ ॥ एते देवगणानां च सिद्धानां च महात्मनाम् ॥ आश्रमाः पुण्यशीलानां सर्वकामयुताद्रयः ॥७ ॥ एतेषामितरो देशो जम्बुद्वीप इति स्मृतः ॥ जम्बुद्वीपस्य संख्यानं याज्ञिया यत्र चक्रिरे ॥ ८ ॥ गर्भाद्यत्स्रवते तोयं देवामृतरसोपमम् ॥ दिव्यतीर्थशतापाङ्क्च्यस्ता दिव्याः सारतः स्मृताः ॥ ९ ॥ यान्येतानि तु पद्मस्य केसराणि समन्ततः ॥ असंख्याताः पृथिव्यां तु विश्वे ते धातुपर्वताः॥ १०॥ यानि पद्मस्य पत्राणि भूरीण्यूर्ध्वं नराधिप ॥ ते दुर्गमाः शैलचिता म्लेच्छदेशा विकल्पिताः ॥ ११ ॥ यान्यधः पद्मपत्राणि वासार्थं तानि भागशः ॥ दैत्यानामुरगाणां च पातालं तन्महात्मनाम् ॥ १२ ॥ तेषामधोगतं यत्तदुदकेत्यभिसंज्ञितम् ॥ महापातककर्माणो मज्जन्ते यत्र मानवाः ॥ १३ ॥ पद्मस्यान्ते कुशं यत्तदेकार्णवजलं महत् ॥ प्रोक्तास्ते दिक्षु संघाताश्चत्वारो जलसागराः ॥१४॥ ऋषेर्नारायणस्यायं महापुष्करसंभवः॥ प्रादुर्भावोऽप्ययं तस्मान्नाम्ना पुष्करसंभवः १५

ऊपरके पत्र हैं, वेही दुर्गम पर्वत म्लेच्छ देशोंसे आवृत हैं ॥ ११ ॥ और जो कमलपत्र नीचेकी ओर है वह दैत्य उरग और महात्मा लोगोंके रहनेका स्थान पाताल है ॥ १२ ॥ उस कमलका नीचेका भाग जलरूप है. जहां महापाप करनेवाले मनुष्य डूबते हैं ॥ १३ ॥ पद्मके अन्तमें जो कुश है वह एकार्णव जल है और उसकी चारों दिशाओंमें जलके चार सागर हैं ॥ १४ ॥ यह नारायण ऋषिके महापुष्करका संभव है. उससे उत्पन्न होनेसे

पुष्कर नाम कहाता है ॥ १५ ॥ इस कारणसे उसके जाननेवाले पुरातन ऋषियोंद्वारा तथा यज्ञ और वेदार्थ जाननेवालोंके द्वारा यज्ञमें उनका नाम पद्मचिती कथन किया गया है ॥ ॥ १६ ॥ इस प्रकारसे भगवान्‌ने कमलमें विश्वकी परम विधि पर्वत नदी और देवता आदि बनाये हैं ॥ १७ ॥ इस प्रकार महाप्रभावयुक्त भगवान् महात्मा प्रभा करनेवाले स्वयंभूने जगत्‌की उत्पत्तिके समय जगन्मय कमलको अपने सामर्थ्यसे महार्णवमें प्रगट किया ॥ १८ ॥ इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे भविष्यपर्वणि भाषायां पुष्करप्रादुर्भावे द्वादशोऽध्यायः ॥ १२ ॥ वैशंपायन बोले; जिस समय

एतस्मात्कारणात्तज्ज्ञैः पुराणैः परमर्षिभिः ॥ यज्ञियैर्वेददृष्टार्थैर्यज्ञे पद्मचिती कृतः ॥१६॥ एवं भगवता पद्मे विश्वस्य परमो विधिः॥ पर्वतानां नदीनां च देवतानां च निर्मितः ॥ १७ ॥ विभुस्तथैवाप्रतिमप्रभावः प्रभाकरो वै भगवान्महात्मा ॥ स्वयं स्वयंभूः शयनेऽसृजत्तदा जगन्मयं पद्मनिधिं महार्णवे ॥ १८ ॥ इति श्रीम० खि० ह० भ० पुष्करप्रादुर्भावे द्वादशोऽध्यायः ॥ १२ ॥ वैशम्पायन उवाच ॥ चतुर्युगादिसंभूतौ सहस्रयुगपर्यये ॥ विप्रस्तमसि संभूतो मधुर्नाम महासुरः ॥ १ ॥ तस्यैव च सहायोऽन्यो भूतो रजसि कैटभः ॥ तौ रजस्तमसाविष्टौ संभूतौ कामरूपिणौ ॥ २ ॥ एकार्णवजलं सर्वं क्षोभयन्तौ महासुरौ ॥ कृष्णरक्ताम्बरधरौ श्वेतदीप्तोग्रदंष्ट्रिणौ ॥ ३ ॥ उभौ मदकटोदग्रौ केयूरवलयोज्ज्वलौ ॥ महाविकृतताम्राक्षौ पीनोरस्कौ महाभुजौ ॥ ४ ॥ महच्छिरःसंहननौ जङ्गमाविव पर्वतौ ॥ नीलमेघाभ्रसंकाशावादित्यप्रतिमाननौ ॥ ५ ॥

सहस्र चतुर्युगी बीत गई उस समय तमकी प्रबलतासे लयरूपी मधु दैत्य प्रगट हुआ ॥ १ ॥ और उसके सहायरूप रजोगुणसे विक्षेप नामक विघ्नरूप कैटभ उत्पन्न हुआ. यह रजतमयुक्त संसारमें कामरूपी प्रगट हुए ॥ २ ॥ उन महाअसुरोंने सम्पूर्ण एकार्णवसागरको क्षोभित कर दिया वह कृष्ण और रक्त अम्बर धारण किये श्वेत दीप्त और उग्रदंष्ट्रावाले ॥ ॥ ३ ॥ दोनोंही मदके कटसे उदग्र केयूर वलय (कंकन) पहरे महाविकराल ताम्र नेत्र किये पुष्ट हृदय महाभुजावाले ॥ ४ ॥ महान् शिर और पीनस्कंधयुक्त जंगमपर्वतकी समान नीले मेघकी समान कान्तिमान् आदित्यकी

समान वर्णवाले ॥ ५ ॥ बिजली और बादलकी समान ताम्रवर्ण हाथोंसे भयंकर चरणोंके संचारवेगसे सागरको उत्क्षिप्त करते हुए ॥ ६ ॥ शयन करते हुए नारायणको कंपित करते हुए वे दोनों उस कमलमें विचरने लगे ॥ ७ ॥ उन योगिजनोंमें श्रेष्ठ दीप्तिमान् नारायणकी आज्ञासे प्रजा रचनेको स्थित तथा देवता मनुष्य और मनसे ऋषियोंको उत्पन्न करते हुए ॥ ८ ॥ देवताओंमें श्रेष्ठ ब्रह्माजीसे वे कहने लगे. कारण कि वे दोनों महाअभिमानी क्रोधसे लाल नेत्र किये थे ॥ ९ ॥ वे कहने लगे तुम सुफेद पगडी बांधे चार भुजावाले कौन हो ? तुम मोहसे हमको नहीं गिनते किस प्रकारसे स्थित हो और

विद्युदम्भोदताम्राभ्यां कराभ्यामतिभीषणौ ॥ पादसंचारवेगाभ्यामुत्क्षिपन्ताविवार्णवम् ॥६॥ कम्पयन्ताविव हरिं शयानमरिसूदनम् ॥ तौ तत्र विहरन्तौ स्म पुष्करे विश्वतोमुखम् ॥ ७ ॥ पश्यतां दीप्तवपुषं योगिनां श्रेष्ठमुत्तमम् ॥ नारायणसमाज्ञप्तं सृजन्तमखिलाः प्रजाः ॥ दैवतानि च विश्वानि मानसांश्च सुतानृषीन् ॥ ८ ॥ ततस्तावूचतुस्तत्र ब्रह्माणमसुरोत्तमौ ॥ दृप्तौ युयुत्सुकौ क्रुद्धौ रोषसंरक्तलोचनौ ॥ ९ ॥ कस्त्वं पुरुषमध्यस्थः सितोष्णीषश्चतुर्मुखः ॥ आवामगणयन्मोहादासे त्वं विगतज्वरः ॥ १० ॥ एह्यावयोर्बाहुयुद्धं प्रयच्छ कमलोद्भव ॥ आवाभ्यामतिवीराभ्यां न शक्यं स्थातुमाहवे ॥ ११ ॥ कस्त्वं कश्चोद्भवस्तुभ्यं केन वासीह चोदितः ॥ कः स्रष्टा कश्च वै गोप्ता केन नाम्नाभिधीयते ॥ १२ ॥ ब्रह्मोवाच ॥ यः क इत्युच्यते लोके ह्यविज्ञातः सहस्रशः ॥ तत्संभवं योगवन्तं किं मां नाभ्यवगच्छथः ॥ १३ ॥ मधुकैटभावूचतुः ॥ नावयोः परमं लोके किञ्चिदस्ति महामते ॥ आवां छादयता विश्वं तमसा रजसा तथा ॥ १४ ॥ रजस्तमोमयावावां यतीनां दुःखलक्षणौ ॥ छलकौ धर्मशीलानां दुस्तरौ सर्वदेहिनाम् ॥ १५ ॥

भय नहीं मानते ॥ १० ॥ हे कमलोद्भव ! आओ हमारे साथ बाहुयुद्ध करो हम वीरोंके साथ आप संग्राममें स्थित नहीं हो सकते ॥ ११ ॥ कौन हो तुम किनसे उत्पन्न हो किससे प्रेरित हुए हो कौन तुम्हारा निर्माता और कौन रक्षक है किस नामसे तुम पुकारे जाते हो ॥ १२ ॥ ब्रह्माजी बोले; जो लोकमें ब्रह्मनामसे विख्यात और सहस्रों प्रकारसेभी जाननेको अयोग्य योगरूप परमात्मासे उत्पन्न हुआ हमको जानो ॥ १३ ॥ मधुकैटभ बोले; हे महामते ! लोकमें हमसे परे कोई वस्तु नहीं है हमने तम और रजसे सारा जगत् आच्छादित कर रक्खा है ॥ १४ ॥ हम रज और तमरूप हैं सतरूपी यतियोंको

दुःखरूप हैं हम धर्मशीलोंको छलरूप और सर्व प्राणियोंको दुस्तर हैं ॥ १५ ॥ हम दोनों उच्छ्रितोंसे सारा लोक युगयुगमें मोहित हो जाता है और अर्थ काम तथा सर्व सामग्रियोंसहित यज्ञरूपभी हम दोनों हैं ॥ १६ ॥ जहां सुख आनंद लक्ष्मी और सब प्रकारकी निवृत्ति हो इनमें जो जो वांछित हो वह हमसे चिन्तवन करना उचित है अर्थात् यह सब वस्तु हमारे आधीन है ॥ १७ ॥ ब्रह्माजी बोले; जो योगवालोंमें श्रेष्ठ है और जो मैंने अर्चित किया है वह सब प्रकारसे पुष्ट कर गुणवाला मैं सतोगुणमें स्थित हुआ हूं ॥ १८ ॥ योगयुक्तोंको जो पर अक्षर और सत्त्वरूप है. जो रज तमका निर्माता जिससे जीवका संभव है ॥ १९ ॥ जिससे सात्विक तथा इतर प्राणी उत्पन्न होते हैं वही वशी युद्धमें तुमको शान्त करेगा ॥ २० ॥ वैशंपायन बोले;

आवाभ्यां मुह्यते लोक उच्छ्रिताभ्यां युगे युगे ॥ आवामर्थश्च कामश्च यज्ञाः सर्वपरिग्रहाः ॥ १६ ॥ सुखं यत्र मुदो यत्र यत्र श्रीः सन्निवृत्तयः॥ एषां यत्कांक्षितं चैव तत्तदावां विचिन्तय ॥१७॥ ब्रह्मोवाच ॥ यत्तद्योगवतां श्रेष्ठं यच्च सर्वं मयार्चितम् ॥ तत्समाधाय गुणवान्सत्त्वजोऽस्मि प्रतिष्ठितः॥१८॥ यत्परं योगयुक्तानामक्षरं सत्त्वमेव च ॥ रजस्तमसश्चैव यत्स्रष्टा जीवसंभवः ॥१९॥ यतो भूतानि जायन्ते सात्त्विकानीतराणि च ॥ स एव युक्तः समरे वशी वां शमयिष्यति ॥ २० ॥ वैशम्पायन उवाच ॥ ततः शयानं श्रीमन्तं बहुयोजनविस्तृतम् ॥ पद्मनाभं हृषीकेशं प्रणम्योचाचतावुभौ ॥ २१ ॥ जानीवस्त्वां विश्वयोनिमेकं पुरुषसत्तमम् ॥ तवो पासनहेत्वर्थमिदं नो विद्धि कारणम् ॥ २२ ॥ अमोघदर्शनं सत्यं यतस्त्वां विदुरीश्वरम् ॥ ततस्त्वामभितो देव कांक्षावः प्रतिवीक्षितुम् ॥ २३ ॥ तदिच्छावो वरं दत्तं त्वया ह्यावामरिंदम ॥ अमोघं दर्शनं देव नमस्तेस्त्वजितंजय ॥ २४ ॥

तब शयन करते हुए श्रीमान् बहुत योजनके विस्तारवाले पद्मनाभ हृषीकेशको वे दोनों प्रणाम कर ॥ २१ ॥ बोले हम आपको विश्वयोनि एक सनातन पुरुष जानते हैं आपकी उपासनाके निमित्तही हमारा कारण है ॥ २२ ॥ आप अमोघदर्शन सत्यरूप हो हम तुमको ईश्वररूप जानते हैं हे देव ! इसी कारण हम आपके देखनेकी इच्छा करते हैं ॥ २३ ॥ हे शत्रुनाशक ! आपके दिये वरकी हम इच्छा करते हैं. हे अजित ! आपका अमोघ दर्शन है आपको नमस्कार है ॥ २४ ॥

श्रीभगवान् बोले; हे असुरश्रेष्ठ ! तुम किस वरकी इच्छा करते हो सो कहो यदि जीनेकी इच्छा है तौ मेरी दी हुई आयुसे तुम जियो ॥ २५ ॥ जो तुम्हारा यह यत्न है तौ तुम महाबली हो इस कारण हमारे वध्य होजाओ यह वचन नारायणने उनसे कहे तब वे दोनों महात्मा बढे हुए क्षतसे वर्जित ॥ २६ ॥ मधुकैटभ कहने लगे; हे विभो ! जिस स्थानमें किसीकी मृत्यु नहीं हुई हो वहां हमारी मृत्यु हो, हे सुराधिप ! हम दोनों तुम्हारे पुत्र होनेकी इच्छा करते हैं ॥ २७ ॥ श्रीभगवान् बोले; निश्चयही कल्पके प्रारंभमें तुम मेरे पुत्र होंगे इसमें सन्देह नहीं यह मैं सत्य कहता हूं ॥ २८ ॥

श्रीभगवानुवाच ॥ कानिच्छतो द्रुतं ब्रूत वरानसुरसत्तमौ ॥ दत्तायुषो मया भूयस्त्वहो जीवितुमिच्छथः ॥ २५ ॥ तस्माद्यदेष वां यत्नस्तत्प्राक् (प्रु) त महाबलौ ॥ वध्यौ भवन्तौ तु स्यातां तावित्येवाब्रवीद्धरिः॥ उभावपि महात्मान वूर्जितौ क्षतवर्जितौ ॥२६॥ मधुकैटभावूचतुः ॥ यस्मिन्न कश्चिन्मृतवांस्तस्मिन्देशे विभो वधम् ॥ इच्छावः पुत्रतां यातुं तव चैव सुराधिप ॥ २७ ॥ श्रीभगवानुवाच ॥ बाढं सुतौ मे प्रवरौ भविष्ये कल्पसंभवे ॥ भविष्यथो न संदेहः सत्यमेतद्ब्रवीमि वाम् ॥ २८ ॥ वैशम्पायन उवाच ॥ वरं प्रदायाथ महासुराभ्यां सनातनो विश्ववरोत्तमो विभुः ॥ रजस्तमोभ्यां भवभावनोपमौ ममन्थ तावूरुतले सुरारिहा ॥ २९ ॥ इति श्रीमहा० हरिवंशे भ० मधुकैटभवरप्रदानं नाम त्रयोदशोऽध्यायः ॥१३॥ वैशम्पायन उवाच ॥ स्थित्वा तस्मिंस्तु कमले ब्रह्मा ब्रह्मविदां वरः ॥ ऊर्ध्वबाहुर्महाबाहुस्तपो घोरं समाश्रितः ॥ १ ॥ ज्वलन्निव च तेजस्वी भाभिः स्वाभिस्तमोनुदः ॥ बभासे सर्वधर्मस्थः सहस्रांशुरिवांशुमान् ॥ २ ॥

वैशंपायन बोले; तब वह सनातन प्रभु उन असुरोंको वरप्रदान कर रजतमसे उत्पन्न हुए दोनों दैत्योंको ऊरुतलमें स्थितकर मथने लगे ॥ २९ ॥ इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे भविष्यपर्वणि भाषायां मधुकैटभवरप्रदानं नाम त्रयोदशोऽध्यायः ॥ १३ ॥ वैशम्पायन बोले; यह सब कथा वेदान्तपर है. ब्रह्मविदां वर ब्रह्माजी उस कमलमें स्थित होकर ऊर्ध्वबाहु महाबाहु घोरतपमें स्थित हुए ॥ १ ॥ वह तेजस्वी अपनी कान्तिसे अन्धकारको दूर

करते हुए सूर्यकी समान कान्तिमान् धर्ममें स्थित हो शोभित हुए ॥ २ ॥ तब वह शंभु नारायण अविनाशी दूसरे रूपमें स्थित हो वह सनातन अचिन्त्यात्मा आत्मासे आत्माको दो भागकर ॥ ३ ॥ योगाचार्य महातेजस्वी आनकर प्राप्त हुए वह बुद्धिमान् सांख्याचार्य ब्राह्मणोंमें श्रेष्ठ कपिलजी थे ॥ ४ ॥ यह और वेदज्ञाता ब्रह्माजी ब्रह्मर्षियोंसे स्तुतिको प्राप्त हुए. यह दोनों महात्मा बडे ऊर्जित और क्षेत्रमें तत्पर थे ॥ ५ ॥ वे दोनों प्राप्त होकर महातेजस्वी ब्रह्माजीसे बोले; यह परअवरके विशेष जाननेवाले परमऋषियोंसे पूजित ॥ ६ ॥ बहुत वाक्यरूप होनेसे दृढपाद विश्वात्मा जग-

अथान्यद्रूपमास्थाय शंभुर्नारायणोऽव्ययः ॥ द्विधा कृत्वात्मनात्मानमचिन्त्यात्मा सनातनः ॥ ३ ॥ आजगाम महातेजा योगाचार्यो महायशाः ॥ सांख्याचार्यश्च मतिमान्कपिलो ब्राह्मणो वरः ॥ ४ ॥ देवर्षिभिः स्तुतावेतौ ब्रह्मब्रह्मविदां वरौ ॥ उभावपि महात्मानावूर्जितौ क्षेत्रतत्परौ ॥ ५ ॥ तौ प्राप्तावूचतुस्तत्र ब्रह्माणममितौजसम् ॥ परावरविशेषज्ञौ पूजितौ परमर्षिभिः ॥ ६ ॥ बहुत्वाद्दृढपादश्च विश्वात्मा जगतः स्थितिः ॥ ग्रामणीः सर्वलोकानां ब्रह्मा लोकगुरुर्वरः ॥ ७ ॥ तयोस्तद्वचनं श्रुत्वा तिस्रो व्याहृतयो जपन् ॥ त्रीनिमान्कृतवाँल्लोकान्यथाह ब्राह्मणी श्रुतिः ॥ ८ ॥ यत्र भूसंज्ञकं चैव समुत्पादितवान्प्रभुः ॥ ततोऽग्रे तद्गतस्नेहो ब्रह्मा मानसमव्ययम् ॥ ९ ॥ सोत्पन्नस्त्वग्रे ब्रह्माणमुवाच मानसः सुतः ॥ करोमि किं ते साहाय्यं ब्रवीतु भगवानिति ॥ १० ॥ ब्रह्मोवाच ॥ य एष कपिलो नाम ब्रह्मा नारायणस्तथा ॥ वदते वरदस्त्वां तु तत्कुरुष्व महामते ॥ ११ ॥ वैशम्पायन उवाच ॥ ब्रह्मणोक्तस्तदा भूयः संशयं समुपस्थितः ॥ शुश्रूषुरस्मि युवयोः किं कुर्मीति कृताञ्जलिः ॥ १२ ॥

तके स्थितिरूप सब लोकोंको वशमें रखनेवाले सब लोकके गुरु ब्रह्मा ॥ ७ ॥ उन दोनोंके वचन सुन तीनों व्याहृती जपते हुए उन्होंने यह तीन लोक उत्पन्न किये ऐसा ब्राह्मणकी श्रुतिमें लिखा है ॥ ८ ॥ तब प्रभुने भूसंज्ञक पुत्रको उत्पन्न किया तब वह सृष्टिके स्नेहवाले ब्रह्माके मनसे ॥ ९ ॥ उत्पन्न हो आगे खडे होकर ब्रह्मासे कहने लगे. हे भगवन् ! मैं आपकी क्या सहायता करूं सो आप कहिये ॥ १० ॥ ब्रह्माजी बोले; वह जो कपिल और नारायण हैं; हे महामते ! यह वरदाता जो कुछ तुमसे कहे सो तू कर ॥ ११ ॥ वैशंपायन बोले; ब्रह्माके यह वचन सुन वह परम सन्देहको

प्राप्त हुआ और हाथ जोड बोला; जो आप कहे वह आपकी आज्ञा सुननेकी इच्छा करता हूं ॥ १२ ॥ वे दोन कपिलनारायण बोले; जो सत्य अक्षर परिणामरहित अमर अठारह प्रकारसे कहा जाता है अर्थात् सांख्यमतमें पांच कर्मेन्द्रिय पांच ज्ञानेंद्रिय प्राणपंचक वियदादि पांच काम कर्म अविद्यादिसे अतिरिक्त हैं उस पुरुष अधिकेश्वरस त सब प्रपंचसे पृथक् परम वस्तु सब विशेषशून्य एकरसका तुम ध्यान करो ॥ १३ ॥ वैशंपायन बोले; यह वचन सुन वह उत्तरदिशाको गया और वहां जाकर ज्ञानदृष्टिसे ब्रह्मत्वको प्राप्त हुआ ॥ १४ ॥ तब ब्रह्माने भुव (सूत्रात्मा) नाम दूसरे पुरुषको निर्माण किया. वह महामना ब्रह्मा उसको मनसेही कल्पित कर चुके ॥ १५ ॥ तब उसने पितामहसे कहा; मैं क्या करूं तब ब्रह्मा-

परमेश्वरावूचतुः ॥ यत्सत्यमक्षरं ब्रह्म ह्यष्टादशविधं स्मृतम् ॥ यत्सत्यममृतं चैव परं तत्समनुस्मर ॥ १३ ॥ वैशम्पायन उवाच ॥ एतद्वचो निशम्याथ स ययौ दिशमुत्तराम्॥ गत्वा च तत्र ब्रह्मत्वमगमज्ज्ञानचक्षुषा ॥१४॥ ततो ब्रह्मा भुवं नाम द्वितीयमसृजत्प्रभुः॥ तं कल्पयित्वा मनसा मनसैव महामनाः ॥ १५ ॥ ततः सोऽप्यब्रवीद्वाक्यं किं कुर्वेति पितामहम् ॥ पितामहसमाज्ञप्तो ब्रह्माणं समुपस्थितः ॥१६॥ ब्रह्मभ्यां सहितः सोऽथ भूयो भागवतीं गतः ॥ प्राप्तश्च परमं स्थानं स तयोः पार्श्वमागतः ॥ १७ ॥ तस्मिन्नपि गते पुत्रं तृतीयमसृजत्प्रभुः ॥ मोक्षोपायेऽतिकुशलं भूर्भुवं नाम तं विभुः ॥ १८ ॥ आससाद स तद्धर्मं तयोरेवागमद्गतिम् ॥ एवं पुत्रास्त्रयोऽप्येते उक्ताः शंभोर्महात्मनः ॥ १९ ॥ तान् गृहीत्वा सुतांस्तस्य प्रययौ स्वां गतिं तथा ॥ नारायणोऽथ भगवान्कपिलश्च यतीश्वरः ॥ २० ॥ यं कालं तौ गतो मुक्तौ ब्रह्मा तत्कालमेव तु ॥ तेपे घोरतरं भूयः स तपः संशितव्रतः ॥२१ ॥

जीने कपिलनारायणकी आज्ञा माननेको कहा तब वह पितामहके पितर सांख्ययोगाचार्योंको प्राप्त हो ॥ १६ ॥ उनके निकट हो उनके सहित भागवती गतिको प्राप्त हुआ और उनके निकट प्राप्त होनेसे परमस्थानको प्राप्त हुआ ॥ १७ ॥ उसके जानेसे ब्रह्माजीने तीसरा पुत्र उत्पन्न किया. वह भूर्भुव नाम (ईश्वर सत्त्वोपाधिमान्) मोक्षके उपायमें कुशल हुआ ॥ १८ ॥ यह पुत्रभी उन दोनोंके धर्म और गतिको प्राप्त हुआ अर्थात् " पुरुषान्नापरं किंचित्सा काष्ठा सा परा गतिः " इस प्रकार महात्मा शंभुके यह तीन पुत्र परमगतिको प्राप्त हुए ॥ १९ ॥ यतीश्वर कपिल और भगवान् नारायण उन तीनों पुत्रोंको लेकर अपनी गतिको गये ॥ २० ॥ जितने कालमें वह लीन हुए उतने समयतक ब्रह्माजी घोर तप करते रहे. जब वह

शंसित व्रत घोर तप करते रहे ॥ २१ ॥ तब इकले तप करनेके कारण उनका मन नहीं लगा तब उन्होंने अपने आधे शरीरसे सुन्दर भार्याको उत्पन्न किया ॥ २२ ॥ तप तेज कान्ति और नियमसे उन्होंने लोकके उत्पन्न करनेमें अपने समान भार्याको उत्पन्न किया ॥ २३ ॥ वह तपोमय ब्रह्मा उसके संग रमते रहे तब उससे सब प्रजापति सागर और नदियोंको उत्पन्न किया ॥ २४ ॥ तब वेदमाता त्रिपदा गायत्रीको उत्पन्न किया. उस गायत्रीसे चारों वेदोंको उत्पन्न किया ॥ २५ ॥ पितामहने अपने वास्ते लोककर्ता पुत्रोंको बनाया. जो प्रजापति विश्वके देवता हैं जिनसे सब जगत् उत्पन्न हुआ

न रराम ततो ब्रह्मा प्रभुरेकस्तपश्चरन् ॥ शरीरार्द्धमथो भार्यां समुत्पादितवाञ्छुभाम् ॥ २२ ॥ तपसा तेजसा चैव वर्चसा नियमेन च ॥ सदृशीमात्मनो भार्यां समर्थां लोकसर्जने ॥ २३ ॥ तया सह ततस्तत्र रेमे ब्रह्मा तपोमयः ॥ सृजत्प्रजापतीन्सर्वान्त्सागरान् सरितस्तथा ॥ २४ ॥ ततोऽसृजद्वै त्रिपदां गायत्रीं वेदमातरम् ॥ अकरोच्चैव चतुरो वेदान् गायत्रिसंभवान् ॥ २५ ॥ आत्मार्थे चासृजत्पुत्राँल्लोककर्तॄन्पितामहः ॥ विश्वे प्रजानां पतयो येभ्यो लोका विनिःसृताः ॥ २६ ॥ विश्वेशं प्रथमं नाम महातपसमात्मजम् ॥ सर्वाश्रमतमं पुण्यं नाम्ना धर्मः स सृष्टवान् ॥ २७ ॥ दक्षं मरीचिमत्रिं च पुलस्त्यं पुलहं क्रतुम् ॥ वसिष्ठं गोतमं चैव भृगुमाङ्गिरसं मनुम् ॥ २८ ॥ अथर्वभूता इत्येते ख्याता ब्रह्ममहर्षयः ॥ त्रयोदशसुतानां तु ये वंशा वै महर्षिणाम् ॥ २९ ॥ अदितिर्दितिर्दनुः काला ह्यनायुः सिंहिका मुनिः ॥ प्रबोधा सुरसा क्रोधा विनता कद्रुरेव च ॥ ३० ॥ दक्षस्यैता दुहितरः कन्या द्वादश भारत ॥ नक्षत्राणि च भद्रं ते सप्तविंशतिरूर्जिताः ॥ ३१ ॥

है ॥ २६ ॥ ब्रह्माजीने विश्वेश नामवाला महातपस्वी सब आश्रमोंमें तत्पर प्रथम पुत्रकी रचना की. तथा पवित्ररूप धर्म नाम दूसरे पुत्रको रचा ॥ २७ ॥ दक्ष मरीचि अत्रि पुलस्त्य पुलह क्रतु वसिष्ठ गौतम भृगु अंगिरा मनु ॥ २८ ॥ अथर्व भूत यह ब्रह्ममहर्षि विख्यात हैं. यह तेरह पुत्र महर्षियोंके वंशकर्ता हुए हैं ॥ २९ ॥ अदिति दिति दनु काला अनायु सिंहिका मुनि प्रबोधा सुरसा क्रोधा विनता कद्रू ॥ ३० ॥ यह बारह दक्षकी कन्या हुईं. तुम्हारा

मंगल हो यह सत्ताईस नक्षत्र जो आकाशमें शोभित हैं यहभी दक्षकी कन्या हुई ॥ ३१ ॥ मरीचि ऋषिके तपसे कश्यपजी पुत्र हुए. उनके निमित्त दक्षने पूर्वोक्त बारह कन्या प्रदान कीं ॥ ३२ ॥ और नक्षत्ररूप कन्याओंको दक्षने चन्द्रमाके निमित्त प्रदान किया. हे जन्मेजय ! यह रोहिणी आदि पवित्र कन्या थीं ॥ ३३ ॥ लक्ष्मी कीर्ति साध्या विश्वा कामा देवी मरुत्वती यह पहिले ब्रह्माजीने निर्मित की थीं ॥ ३४ ॥ हे भारत ! यह पांच श्रेष्ठ कन्या धर्म देखनेवाले ब्रह्माजीने सुरश्रेष्ठ धर्मराजके निमित्त प्रदान कीं ॥ ३५ ॥ और जो अपने आधे शरीरसे कामरूपिणी पत्नी निर्माण की थी, वह सुरभी

मरीचेः कश्यपः पुत्रस्तपसा निर्मितः प्रभुः ॥ तस्मै कन्या द्वादशेमा दक्षस्ता अन्वमन्यत ॥ ३२ ॥ नक्षत्राख्यानि सोमाय वसवे दत्तवानृषिः ॥ रोहिण्यादीनि सर्वाणि पुण्यानि जनमेजय ॥ ३३ ॥ लक्ष्मीः कीर्तिस्तथा साध्या विश्वा कामानुगा शुभा ॥ देवी मरुत्वती चैव ब्रह्मणा निर्मिता पुरा ॥ ३४ ॥ एताः पञ्च वरिष्ठा वै सुरश्रेष्ठाय भारत ॥ दत्ता धर्माय भद्रं ते ब्रह्मणा दृष्टधर्मणा ॥ ३५ ॥ या रूपार्द्धमयी पत्नी ब्रह्मणः कामरूपिणी ॥ सुरभिः सा तु गोर्भूत्वा ब्रह्माणं समुपस्थिता ॥ ३६ ॥ ततस्तामगमद्ब्रह्मा मैथुने लोकपूजितः ॥ लोकसर्जनहेतुज्ञो गवामर्थाय भारत ॥ ३७ ॥ जज्ञे चैकादश सुतान्विपुलान्धर्मसंहितान् ॥ रक्तसंध्याभ्रसदृशान् दहनोपमतेजसः ॥ ३८ ॥ ते रुदन्तो द्रवन्तश्च भगवन्तं पितामहम् ॥ रोदनाद्द्रावणाच्चैव ततो रुद्रा इति स्मृताः ॥ ३९ ॥ निर्ऋतिश्चैव सर्पश्च तृतीयो ह्यज एकपात् ॥ मृगव्याधः पिनाकी च दहनोऽथेश्वरश्च वै ॥ ४० ॥ अहिर्बुध्न्यश्च भगवान्कपाली चापराजितः ॥ सेनानीश्च महातेजा रुद्रा एकादश स्मृताः ॥ ४१ ॥

गोरूप होकर ब्रह्माके निकट उपस्थित हुई ॥ ३६ ॥ हे भारत ! तब लोकपूजित ब्रह्मा उस सृष्टिके हेतुको विचार उससे मैथुनधर्ममें प्रवृत्त हुए ॥ ३७ ॥ उससे धर्मयुक्त ग्यारह पुत्र उत्पन्न हुए जो लाल संध्याकी सदृश अग्निकी समान तेजस्वी थे ॥ ३८ ॥ वे रोते और द्रवते हुए भगवान् पितामहके निकट आये रोदन और धावमान होनेसे रुद्र कहलाये ॥ ३९ ॥ निर्ऋति सर्प तीसरा अज एकपाद मृगव्याध पिनाकी दहन ईश्वर ॥ ४० ॥ अहिर्बुध्न्य भग-

वान् कपाली अपराजित महातेजवाले सेनानी यह ग्यारह रुद्र कहलाते हैं ॥ ४१ ॥ उसी सुरभीसे गोवृष उत्पन्न हुए. आकृष्ट माष सिकता अक्षत प्रश्रय ॥ ४२ ॥ अज एकवंश उत्तम अमृत प्रवरादि औषधी यह सब उसीसे उत्पन्न हुई हैं ॥ ४३ ॥ धर्मसे लक्ष्मी काम और साध्यनाम देवता उत्पन्न हुए. च्यवन प्रभव ईशान सुरभी ॥ ४४ ॥ अरुंधती अरुणी विश्वावसु बल ध्रुव महिष तनुज विज्ञान ॥ ४५ ॥ मत्सर विभूति यह सब सुरभीकी सन्तान है. सुपर्वत विष नाग इन लोकपूजित देवतोंको साध्याने उत्पन्न किया ॥ ४६ ॥ देवीने वासवसे अनुगत हो इनको उत्पन्न किया.

तस्यामेव सुरभ्यां तु जज्ञे गोवृषभस्तथा ॥ आकृष्टाश्च तथा माषाः सिकताः प्रश्रयोऽक्षताः ॥ ४२ ॥ अजाश्चैवैकवंशाश्च तथैवामृतमुत्तमम् ॥ ओषध्यः प्रवरा याश्च सुरभ्यां ताः समुत्थिताः॥४३॥ धर्माल्लक्ष्म्युद्भवः कामः साध्या साध्यान् व्यजायत ॥ च्यवनं प्रभवं चैवमीशानं सुरभीं तथा ॥ ४४ ॥ अरुन्धत्यारुणी चैव विश्वावसुबलध्रुवौ ॥ महिषं च तनूजं च विज्ञातमनसावपि ॥ ४५ ॥ मत्सरं च विभूतिं च सर्वाः सुरभिसूनवः ॥ सुपर्वतं विषं नागं साध्या लोकनमस्कृता ॥ ४६ ॥ वासवानुगता देवी जनयामास वै सुतान् ॥ धरं वै प्रथमं देवं द्वितीयं ध्रुवमव्ययम् ॥ ४७ ॥ विश्वावसुं तृतीयं च चतुर्थं सोममीश्वरम् ॥ पञ्चमं पर्वतं चैव योगेन्द्रं तदनन्तरम् ॥ ४८ ॥ सप्तमं च ततो वायुमष्टमं निर्ऋतिं वसुम् ॥ धर्मस्यापत्यमित्येवं सुरभ्यां समजायत ॥ ४९ ॥ विश्वेदेवास्तु विश्वायां धर्माज्जाता इति श्रुतिः ॥ दक्षयज्ञ महाबाहुर्वसुश्च सुत एव च ॥ सुधर्मा च महाबाहुः शङ्खपाच्च महाबलः ॥५०॥ उत्कश्चैव महाबाहुर्वपुष्मांश्च तथैव च ॥ चाक्षुषस्य मनोरेते तथानन्तमहीरणौ ॥ ५१ ॥ विश्वावसुसुपर्वाणौ विष्टरश्च महायशाः ॥ रुरुश्च ऋषिपुत्रो वै भास्करप्रतिमद्युतिः ॥ ५२ ॥

धर प्रथम देव दूसरे अविनाशी ध्रुव ॥ ४७ ॥ तीसरे विश्वावसु चौथे ईश्वर सोम पांचवें पर्वत छठे योगेन्द्र ॥ ४८ ॥ सातवें वायु आठवें निर्ऋति वसु यह सुरभीमें धर्मके सन्तान हुए ॥ ४९ ॥ विश्वेदेवा धर्मसे विश्वामें उत्पन्न हुए. दक्ष यज्ञ महाबाहु वसु सुत महाबाहु सुधर्मा महाबली शंखपाद ॥ ५० ॥ महावपुष्मान् अनन्त महीरण यह चाक्षुष मन्वन्तरके अन्तमें ॥ ५१ ॥ विश्वावसु सुपर्वा यशस्वी विष्टर ऋषिपुत्र

सूर्यकी समान कान्तिमान् हुए ॥ ५२ ॥ देवमाताने यह सब जगत्पति विश्वेदेवा निर्माण किये हैं. मरुत्वतीके मरुतसे देवता उत्पन्न हुए ॥ ५३ ॥ अग्नि चक्षु हवि ज्योति सावित्र मित्र अमर शरवृष्टि संक्षय महाभुजावाले ॥ ५४ ॥ विरज शुक्र विश्वावसु विभावसु अश्मन्त चित्ररश्मि निष्कुपित नृप ॥ ५५ ॥ नहुष आहुति चारित्र बहुपन्नग बृहन्त बृहद्रूप परतापन नाम पुत्र हुए. यह मरुतदेवता कहाये मरुत्वतीमें पहले धर्मसे दो पुत्र हुए ॥५६॥ अदितिमें कश्यपसे आदित्य हुए. इन्द्र विष्णु भग त्वष्टा वरुण अंशु अर्यमा रवि ॥ ॥ ५७ ॥ पूषा मित्र वरदायक मनु पर्जन्य यह बारह आदित्य देव-

विश्वेदेवान् देवमाता विश्वेशान् जनयत्सुतान् ॥ मरुत्वती मरुत्वन्तो देवानजनयच्छुभान् ॥ ५३ ॥ अग्निश्चक्षुर्हविर्ज्योतिः सावित्रो मित्र एव च ॥ अमरं शरवृष्टिं च संक्षयं च महाभुजम् ॥ ५४ ॥ विरजं चैव शुक्रं च विश्वावसुविभावसू ॥ अश्मन्तं चित्ररश्मिं च तथा निष्कुपितं नृपम् ॥ ५५ ॥ नहुषं चाहुतिं चैव चारित्रं बहुपन्नगम् ॥ बृहन्तं च बृहद्रूपं तथैव परतापनम् ॥ मरुत्वत्यां पुरा धर्माज्जज्ञे पुत्रद्वयं शुभम् ॥ ५६ ॥ अदित्यां जज्ञिरे राजन्नादित्याः कश्यपादथ ॥ इन्द्रो विष्णुर्भगस्त्वष्टा वरुणोंऽशोऽर्यमा रविः ॥ ५७ ॥ पूषा मित्रश्च वरदो मनुः पर्जन्य एव च ॥ इत्येते द्वादशादित्या वरिष्ठास्त्रिदिवौकसः ॥ ५८ ॥ आदित्यस्य सरस्वत्यां जज्ञे पुत्रद्वयं शुभम् ॥ रूपश्रेष्ठं बलश्रेष्ठं त्रिदिवे रूपिणां वरम् ॥ ५९ ॥ दनुस्तु दानवाञ्जज्ञे दितिर्दैत्यान् व्यजायत ॥ कालानुकालकेयांश्च ह्यसुरान्राक्षसांस्तथा ॥ ६० ॥ अनायुषायास्तनया व्याधयश्चाधयस्तथा ॥ सिंहिका ग्रहमाता च गन्धर्वजननी मुनिः ॥ ६१ ॥ प्रवोधाप्सरसां माता सुरसायां सरीसृपाः ॥ क्रोधायाः सर्वभूतानि पिशाचाश्चैव भारत ॥ ६२ ॥ तथा यक्षगणाश्चैव गुह्यकाश्च विशां पते ॥ चतुष्पदानि सर्वाणि ऋते गावस्तु सौरभाः ॥ ६३ ॥

ताओंमें श्रेष्ठ हैं ॥ ५८ ॥ आदित्यके सरस्वतीमें दो पुत्र हुए. रूपश्रेष्ठ बलश्रेष्ठ स्वर्गवासियोंमें रूपवान् हुए ॥ ५९ ॥ दनुके दानव दितिके दैत्य हुए. कालामें कालकेय संज्ञक असुर और राक्षस हुए ॥ ६० ॥ अनायुषकी सन्तान आधि व्याधि हुई. सिंहिकामें राहु और मुनिमें गन्धर्व हुए ॥ ६१ ॥ प्रवोधाके अप्सरा सुरसाके सरीसृप हुए क्रोधाके सम्पूर्ण भूत और पिशाच हुए ॥ ६२ ॥ तथा यक्षगण और गुह्यक सब चौपाये गौको छोडकर सब

क्रोधाके हुए ॥ ६३ ॥ अरुण और गरुड विनतामें उपजे कद्रूके महीधर सर्प नाग ॥ ६४ ॥ इस प्रकार संसारमें लोक परस्पर वृद्धिको प्राप्त हुए हैं. हे राजन् ! इस प्रकार इस पुष्कर प्रादुर्भावमें उत्पत्ति हुई है ॥ ६५ ॥ यह पुष्कर उत्पत्ति पुराणोंमें जो व्यासजीसे सुनी है वह परमर्षियोंका कृत्य सब तुमसे वर्णन किया ॥ ६६ ॥ जो इस श्रेष्ठ पुराणको सदा अप्रमत्त होकर पढता है वह सब कामनाको प्राप्त कर शोकरहित हो परलोकमें स्वर्गफलोंको भोगता है ॥ ६७ ॥ इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे भविष्यपर्वणि भाषायां चतुर्दशोऽध्यायः ॥ १४ ॥ जन्मेजय बोले; हे ब्रह्मन् ! हमने अपने

अरुणो गरुडश्चैव विनतायां व्यजायत ॥ महीधरान्सर्पनागान् देवी कद्रूर्व्यजायत॥६४॥एवं विवृद्धिमगमन्विश्वे लोकाः परस्परम् ॥ तदा पौष्करके राजन्प्रादुर्भावे महात्मनः ॥ ६५ ॥ पुराणं पौष्करे चैव मया द्वैपायनाच्छ्रुतम् ॥ कथितं तेन पूर्वेण यत्कृतं परमर्षिभिः ॥ ६६ ॥ यश्चेदमग्र्यं प्रथमं पुराणं सदाप्रमत्तः पठते महात्मा ॥ अवाप्य कामानिह वीतशोकः परत्र स स्वर्गफलानि भुंक्ते ॥ ६७ ॥ इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे भविष्यपर्वणि चतुर्दशोऽध्यायः ॥१४॥ जनमेजय उवाच ॥ श्रुतं नः परमं ब्रह्मन् स्ववंशचरितं महत् ॥ दिव्यमन्योन्यसंभूतं मानितं बहुभिर्गुणैः ॥ १ ॥ छन्दोभिर्वृत्तसङ्घातैः समासैश्च सविस्तरैः ॥ लघुभिर्मधुराभाषैर्ग्रथितं पदविग्रहैः ॥ २ ॥ त्रिवर्गेणाभिसंपन्नं धर्मेणार्थेन भोगिनाम् ॥ कामेन बहुरूपेण शरीरान्तर्गतेन च ॥ ३ ॥ ब्राह्मणानां प्रभावैश्च योधानां च पराक्रमैः ॥ वैरानिर्यातनैश्चैव प्रतिज्ञानां च पारगैः ॥ ४ ॥ रिपुस्तवसुसंपन्नैर्नानुबन्धः प्रचोदितः ॥ वंशयोर्निर्विनाशाय नृपेण द्विजविग्रहात् ॥ ५ ॥

वंशका अद्भुत चरित्र सुना जो बडा दिव्य और बहुत गुणोंसे पूजित है ॥ १ ॥ वृत्तोंवाले छन्द विस्तारयुक्त समास लघुरूप मधुर वाणियोंसे ग्रथित पदोंके विग्रहसे युक्त ॥ २ ॥ धर्म अर्थ कामसे सम्पन्न शरीरके अन्तर विचरनेवाली इच्छासे सम्पन्न ॥ ३ ॥ ब्राह्मणोंके प्रभाव योधाओंके पराक्रम वैरनिर्यातनकी प्रतिज्ञाके पारगामी ॥ ४ ॥ रिपुकी स्तुतिसे संपन्न अनुबंधसे रहित ब्राह्मणके विग्रहसे दोनों वंशोंके विनाशके निमित्त चरित्र सुना ॥ ५ ॥

उस महासंग्राममें राजा हत हुए थे. उनके राज्योंमें उनके पुत्र प्रतिष्ठित हुए. भगवान्‌की आज्ञा माननेवाले राजा युधिष्ठिर सिंहासनपर विराजे ॥ ६ ॥ तीनों वर्णोंकी संप्रदायका धर्म सुना हे द्विजश्रेष्ठ ! स्वर्गका हेतु शूरोंका धर्म सुना ॥ ७ ॥ सो प्राणियोंके अनुग्रहकेही निमित्त कहा. उद्वेगके निमित्त नहीं. चारों वर्णोंका धर्म पृथक् पृथक् अनेक प्रकारसे कहा ॥ ८ ॥ गर्भवासमें पडनेवाले प्राणियोंको प्रबोधका वर्णन किया. क्षीणपुण्य होनेपर देवसंचारभी कहा ॥ ९ ॥ दानका संयोगभी बहुत प्रकारसे कहा यह आपने मधुर वचनसे मुझसे कहीं है ॥ १० ॥ वह भारतका अध्ययन करनेको मैं

ये च तस्मिन्महारौद्रे संग्रामे निहता नृपाः ॥ तेषां सर्वाणि राष्ट्राणि पुत्राः सर्वे प्रपेदिरे ॥ कौरवः प्रथितो राजा भगवच्छासनानुगः ॥ ६ ॥ धर्मश्च बहुधा प्रोक्तस्त्रयाणां वर्णसंपदाम् ॥ शूराणामपि विख्यातः स्वर्गहेतुर्द्विजर्षभ ॥ ७ ॥ अनुग्रहार्थं भूतानां नोत्सेकाय कथंचन ॥ चतुर्णां वर्णसंज्ञानां पृथक् पृथगनेकधा ॥ ८॥ गर्भवासे पतन्तश्च भूतानां संप्रबोधितः ॥ पृच्छेतां देवसंचारे क्षीणे पुण्ये च कर्मणि ॥ ९ ॥ दाने यश्चापि संयोगः स चापि बहुधा कृतः ॥ द्वाभ्यां संयोगविहितो मधुवाग्वचनं तयोः ॥ १० ॥ न तच्छक्यं मयाख्यातुं भारताध्ययनं महत् ॥ एकाहेन महान् ब्रह्मन्नपि दिव्येन चक्षुषा ॥ ११ ॥ ब्रह्मणोऽह्नस्तु विस्तारं संक्षेपं च सुसंग्रहम् ॥ श्रोतुमिच्छामि भगवन्महत्कौतूहलं हि मे ॥१२॥ इति श्रीम० खिलेषु हरिवंशे भविष्यपर्वणि पञ्चदशोऽध्यायः ॥१५॥

वैशम्पायन उवाच ॥ शृणुष्वैकमना राजन् पञ्चेन्द्रियसमाहितः ॥ कथां कथयतो राजन्निर्विकारेण चेतसा ॥ १ ॥ ब्रह्मसम्बन्धसंबद्धमबद्धं कर्मभिर्नृप ॥ पुरस्ताद्ब्रह्म संपन्नं ब्रह्मणो यददक्षिणम् ॥ २ ॥

समर्थ नहीं हूं हे ब्रह्मन् ! कोई दिव्य चक्षुसेभी एक दिनमें नहीं देख सकता ॥ ११ ॥ इस कारण ब्रह्माके दिनका विस्तार (ब्रह्मयज्ञ) का वर्णन संक्षेपसे मैं सुना चाहता हूं. हे भगवन् ! इसका मुझे परम कौतूहल है सो आप कहिये ॥ १२ ॥ इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे भविष्यपर्वणि भाषायां पंचदशोऽध्यायः ॥ १५ ॥ वैशंपायन बोले; हे राजन् ! पांचों इन्द्रियोंको सावधान कर एक मनसे सुनो. हे राजन् ! निर्विकार चित्तसे कथा सुनो ॥ १ ॥ यह कथा ब्रह्मसंबन्धसे संबन्धित कर्मसंबंधसे रहित है. ब्रह्म जाननेवालोंको पहिलेही सिद्ध है, इसको सुनो ॥ २ ॥

जो अव्यक्त कारण नित्य सत् असत् आत्मक है. जो निष्कल पुरुष है उससे अहंकारयुक्त आत्मा ब्रह्मा हुआ है ॥ ३ ॥ वह सर्व भूतपति दिव्य विभु दिव्यशरीरसे प्रादुर्भूत हुआ है. अचिन्त्य अविनाशी युगोंकी उत्पत्ति करनेवाले अव्यय ॥ ४ ॥ न हुआ न उत्पन्न सम्पूर्ण प्राणियोंमें समानताको प्राप्त हुआ. अव्यक्तसे परे जिसको नारायणके ज्ञाता तद्रूप कहते हैं ॥ ५ ॥ सब ओर हाथ चरणसे युक्त सब ओर नेत्र और शिरसे युक्त सब ओर कर्णवाला लोकमें सबको घेरे स्थित हो रहा है ॥ ६ ॥ सत् असत्का कारण व्यक्त अव्यक्त रूपमें स्थित जो चलता

अव्यक्तं कारणं यत्तन्नित्यं सदसदात्मकम् ॥ निष्कलः पुरुषस्तस्मात्संबभूवात्मयोनिजः ॥ ३ ॥ दिव्यो दिव्येन वपुषा सर्वभूतपतिर्विभुः ॥ अचिन्त्यश्चाव्ययश्चैव युगानां प्रभवोऽव्ययः ॥ ४ ॥ अभूतश्चाप्यजातश्च सर्वत्र समतां गतः ॥ अव्यक्तात्परमं यत्तन्नारायणविदो विदुः ॥ ५ ॥ सर्वतः पाणिपादं तत्सर्वतोऽक्षिशिरोमुखम् ॥ सर्वतः श्रुतिमँल्लोके सर्वमावृत्य तिष्ठति ॥ ६ ॥ असतश्च सतश्चैव विज्ञेयं तत्र कारणम् ॥ अव्यक्तो व्यक्तरूपस्थश्चरन्नपि न दृश्यते ॥ ७ ॥ विकारपुरुषोऽव्यक्तो ह्यरूपी रूपमाश्रितः ॥ चरत्यचिन्त्यः सर्वेषु गूढोऽग्निरिव दारुषु ॥ ८ ॥ भूतभव्योद्भवो नाथः परमेष्ठी प्रजापतिः ॥ प्रभुः सर्वस्य लोकस्य नाम चास्येति तत्त्वतः ॥ ९ ॥ अपदात्तु पदो जातस्तस्मान्नारायणोऽभवत् ॥ अव्यक्तो व्यक्तिमापन्नो ब्रह्मयोगेन कामतः ॥ १० ॥ ब्रह्मभावे च तं विद्धि सशब्दं लब्धवान्प्रभुः ॥ प्रभुः सर्वस्य लोकस्य स्थावरस्येतरस्य च ॥ ११ ॥

हुआभी नहीं दीखता है ॥ ७ ॥ विकार पुरुष व्यक्त और रूपसे रहित रूपमें आश्रित है. वह अचिन्त्य सबमें विचरण करता हुआ काठमें अग्निकी समान स्थित हो रहा है ॥ ८ ॥ भूत भविष्य वर्तमानका उत्पन्न करनेवाला परमेष्ठी प्रजापति सब लोकका पति अहंनामवाला तत्त्वयुक्त ॥ ९ ॥ उस अपदसे अहंकार हुआ. उससे नारायण हुआ इस प्रकार वह ब्रह्म व्यक्त और अव्यक्तको प्राप्त होकर स्थावर जंगमका स्वामी ब्रह्मरूप हुआ ॥ १० ॥ उसको ब्रह्मभावसे जानो. उस ब्रह्मने शब्दका ग्रहण किया. वही स्थावर जंगम सब जगत्का पिता है ॥ ११ ॥

हे भारत! वह अहंकारसे युक्त हो मैं प्रजा रचूंगा. ऐसा कहने लगे वही सब प्रजाओंके उत्पत्तिस्थान हैं. जिनकी यह प्रजा तन्तुरूप है ॥ १२ ॥ स्वभावसेही सब जगत् उत्पन्न होता है और स्वभावसेही पूर्वजन्मके वासना उपरान्त वैसा हुआ है. अहंकार स्वभावसे यह सब जगत् है ॥ १३ ॥ सर्वव्यापी निरालम्ब अग्राह्य अज ध्रुव ब्रह्ममय ज्योति ब्रह्मशब्दसे कही जाती है ॥ १४ ॥ अव्यक्तही व्यक्तिको प्राप्त हुआ है. वह व्यक्तता पांच तत्त्वोंके लक्षणसे हुई है. अनेक प्रकारके चिन्तनसे अनेक वस्तुओंको धारण करता हुआ ॥ १५ ॥ ब्रह्मसे प्रेरित हुआ ब्रह्ममूर्तिको प्राप्त होकर जल निर्मित

अहं त्विति स होवाच प्रजाः स्रक्ष्यामि भारत ॥ प्रभवः सर्वभूतानां यस्य तन्तुरिमाः प्रजाः ॥ १२ ॥ स्वभावाज्जायते सर्वं स्वभावाच्च तथाभवत् ॥ अहंकारः स्वभावाच्च तथा सर्वमिदं जगत् ॥ १३ ॥ सर्वव्यापी निरालम्बो ह्यग्राह्योऽथ जयो ध्रुवः ॥ एवं ब्रह्ममयो ज्योतिर्ब्रह्मशब्देन शब्दितः ॥ १४ ॥ अव्यक्तो व्यक्तिमापन्नः पञ्चभिः कृतुलक्षणैः ॥ धारयन् ब्रह्मणो व्यक्तं विविधं चिन्तितं त्वरन् ॥ १५ ॥ अथ मूर्तिं समाधाय स्वभावाद्ब्रह्मचोदितः ॥ ससर्ज सलिलं ब्रह्मा येन सर्वमिदं ततम् ॥ १६ ॥ वायुं पूर्वमथो दृष्ट्वा यो धातुर्धातृसत्तमः ॥ धारणाद्धातृशब्दं च लभते लोकसंज्ञितम् ॥ १७ ॥ तदेतद्वायुसंभूतं कृत्स्नं जगदभूत्पुरा ॥ एतद्देवैरतिक्रान्तं पूर्वमेव सरस्वति ॥ १८ ॥ पृथक्त्वं गमितं तोयं पृथिवीशब्दमिच्छता ॥ घनत्वाच्च द्रवत्वाच्च निखिलेनोपलभ्यते ॥ १९ ॥ फलत्वात्सीदमाना च सलिले सलिलोद्भवः ॥ व्याजहार शुभां वाणीं समन्तात्पूरयन्निव ॥ २० ॥

करते हुए. जिससे यह सब जगत् हुआ है ॥ १६ ॥ जलकी सृष्टिसे पहिले वायुको देख मरीचि आदिने सतलोकमें संकेतित धातृशब्दको धारण किया ॥ १७ ॥ वायुके स्थूल अंश अग्नि आदिसे उत्पन्न हुआ. यह जगत् पार्थिवताको प्राप्त हो तेजसे देव शमादिसे आक्रान्त हुआ समुद्रमें स्थित था ॥ १८ ॥ तब पृथ्वीकी इच्छावाले परमेश्वरने जलसे पृथ्वी अलग की वह घनी और द्रवरूप होनेसे पृथक्तासे युक्त हुई ॥ १९ ॥ कार्यरूप होनेसे जलमें सीदमान होता हुआ जलसे उद्धार होनेकी इच्छासे और चारों ओर वाणीको पूर्ण करता हुआ भूदेवता वाणीको बोला ॥ २० ॥

मैं यहां दुःखी हुआ. बाहर आनेकी इच्छा करता हूं मुझे उद्धार करो इस गंभीर जलमें स्थित हो रहा हूं ॥ २१ ॥ जब मूर्तिधारी देवी सब प्राणियोंकी
उत्पन्न करनेवाली यथायोग्य स्थानकी इच्छावाली स्थिरकी इच्छासे पुकारने लगी ॥ २२ ॥ तब उसकी उस सुभाषित वाणीको सुनकर वाराह रूप धारण
कर नारायण सागरमें कूदे ॥ २३ ॥ वह पृथ्वीको जलसे निकालकर इस महाकर्मको करके इसे स्थापित कर फिर लीन हो गये दिखाई न दिये ॥२४॥
जो ब्रह्ममय ज्योति आकाशसंज्ञावाली है उसमें सब भूतोंके पितामह ब्रह्मा उत्पन्न हुए ॥ २५ ॥ अबभी सब योगके ज्ञाता विधातासे यह मनके द्वारा

ऊर्ध्वोऽहं स्थातुमिच्छामि संसीदाम्युद्धरस्व माम् ॥ गम्भीरे तोयविवरे मूर्तिविक्षोभितान्तरम् ॥ २१ ॥ ततो मूर्तिधरा देवी सर्वभूत-
प्ररोहिणी ॥ यथायोगेन संभूता सर्वत्र विषयैषिणी ॥ २२ ॥ श्रुत्वा च गदितं तस्या गिरं तां च सुभाषिताम् ॥ वाराहरूपमास्थाय
निपपात महार्णवे ॥ २३ ॥ उद्धृत्य सोऽवनिं तोयात्कृत्वा कर्म सुदुष्करम् ॥ समाधौ प्रलयं गत्वा प्रलीनो न च दृश्यते ॥ २४ ॥
यत्तद्ब्रह्ममयं ज्योतिराकाशमिति संज्ञितम् ॥ तत्र ब्रह्मा समुद्भूतः सर्वभूतपितामहः ॥ २५ ॥ अद्यापि मनसा धात्रा धार्यते सर्वयो-
गिना ॥ ज्ञानयोगेन सूक्ष्मेण प्रजानां हितकाम्यया ॥ २६ ॥ भित्त्वा तु पृथिवीमध्यमुपयाति समुद्भवम् ॥ तपनस्तूर्ध्वमातिष्ठन्
रश्मिभिः स हसन्निव ॥ २७ ॥ तस्य मण्डलमध्यात्तु निःसृतं सोममण्डलम् ॥ स सनातनजो ब्रह्मा सौम्यं सोमत्वमन्वगात् ॥२८॥
सोममण्डलपर्यन्तात्पवनः समजायत ॥ तदक्षरमयं ज्योतिस्तेजोभिरभिवर्द्धयन् ॥२९॥ स तु योगमयाज्ज्ञानात्स्वभावाद्ब्रह्मसंभवात् ॥
सृजते पुरुषं दिव्यं ब्रह्मयोनिं सनातनम् ॥ ३० ॥

कच्छ मच्छादि रूपसे धारण की जाती है अर्थात् सूक्ष्म ज्ञानयोगसे प्रजाके हितकी कामनासे ॥ २६ ॥ पृथ्वीके मध्यभागको भेदन कर उत्पन्न होने- ॥२९॥
वाला सूर्य अपनी किरणोंसे जलको खचता हुआ प्रगट हुआ ॥ २७ ॥ उस सूर्यमण्डलके मध्यसे सोममण्डल निकला वह सनातन चन्द्रमा ब्रह्मरूप
होनेसे ब्राह्मणोंका राजा है ॥ २८ ॥ सोममण्डलसे अक्षरात्मक ज्योतितेजसे पृथ्वीको बढाता हुआ पवन उत्पन्न हुआ ॥ २९ ॥ वह सूर्यमण्डल

अधिदैविक अर्थोंका स्रष्टा सोमाख्य ईश्वरसे वेदको प्राप्त हो योगमय ज्ञानसे सनातन ब्रह्मयानि और दिव्य पुरुषको रचता है ॥ ३० ॥ द्रवरूप जल और घनरूप पृथ्वी है. छिद्र आकाश और ज्योति चक्षु है ॥ ३१ ॥ वायुसे स्पंदता और उसके संघातसे अग्नि होती है और ईश्वरसे पुरुष होकर ॥ ३२ ॥ सनातनरूप भूतात्मा पंचमहाभूतमय होके वसता है और यह सनातनरूप ब्रह्म बुद्धिरूप गुहाके विषय ज्ञानरूपसे जाना जाता है ॥ ३३ ॥ जो अग्नि देहधारियोंमें वसती है वह सूर्यकाही रूप है वह शरीरमें स्थित हुआ नित्य धातुओंमें रहता है ॥ ३४ ॥ वह स्वभावसेही क्षयको प्राप्त होकर स्वभावसेही बढता

द्रवं यत्सलिलं तस्य घनं यत्पृथिवी भवत् ॥ छिद्रं यच्च तदाकाशं ज्योतिर्यच्चक्षुरेव तत् ॥ ३१ ॥ वायुना स्पन्दते चैनं संघाताज्ज्योतिसंभवः ॥ पुरुषात्पुरुषो भावः पञ्चभूतमयो महान् ॥ ३२ ॥ भूतात्मा वै समे तस्मिंस्तस्मिन्देहः सनातनः ॥ गुहायां निहितं ज्ञानं योगाद्यज्ञः सनातनः ॥ ३३ ॥ तपनस्यैव तद्रूपं योऽग्निर्वसति देहिनाम् ॥ शरीरे नित्यशो युक्ते धातुभिः सह संगतः ॥ ३४ ॥ स्वभावात्क्षयमायाति स्वभावाद्व्ययमेति च ॥ स्वभावाद्विन्दते शान्तिं स्वभावाच्च न विन्दति ॥ ३५ ॥ इन्द्रियैरतिमूढात्मा मोहितो ब्रह्मणः पदे ॥ संभवं निधनं चैव कर्मभिः प्रतिपद्यते ॥ ३६ ॥ यावत्तद्ब्रह्मविषयं नोपयातीह तत्त्वतः ॥ तावत्संसारमाप्नोति संभवांश्च पुनः पुनः ॥ ३७ ॥ इन्द्रियैर्व्यतिरिक्तो वै यदा भवति योगवित् ॥ तदा ब्रह्मत्वमापन्नः प्रलयाग्रे प्रतिष्ठति ॥ ३८ ॥ प्रतिषिद्धममुं लोकं ब्रह्मवान् स भवत्युत न ॥ च रागव्ययया ात न च सज्जति कर्हिचित् ॥ ३९ ॥ आगतिं त्वं गतिं चैव निधनं संभवं तथा ॥ भूतेभ्यो वेत्ति सर्वज्ञः परां सिद्धिमुपागतः ॥ ४० ॥

है. स्वभावसेही शान्तिको प्राप्त होता आर स्वभावसेही शान्ता नहीं होता ॥ ३५ ॥ इन्द्रियोंसे मूढात्मा हो ब्रह्मपदमें मोहित हुआ उत्पत्ति और मरणको जीव प्राप्त होता है ॥ ३६ ॥ जबतक तत्त्वसे जीव ब्रह्मविषयको प्राप्त नहीं होता तबतक संसारको प्राप्त हो वारंवार जन्ममरणको प्राप्त होता है ॥ ३७ ॥ जब यह योगज्ञाता इंद्रियोंसे व्यतिरिक्त होता है तब यह ब्रह्मत्वको प्राप्त हो इन्द्रियादिकोंमें स्वरूपानंदकी प्रतिष्ठाको प्राप्त होता है ॥ ३८ ॥ ब्रह्मज्ञानी इस निषिद्ध लोक आर रागव्ययको कभी प्राप्त नहीं होता ॥ ३९ ॥ आना जाना उत्पत्ति नाश यह दूसरे प्राणियोंको देखकर सर्वज्ञ जानकर परम

सिद्धिको प्राप्त होता है ॥४०॥ विषयगोचर होनेमें आत्माकी गतिको देखकर कर्मसे निवृत्त हो ब्रह्मके पदमें प्रतिष्ठित होता है ॥ ४१ ॥ कामादिके लोभसे भिन्न हुई पूर्व यातना मनके द्वारा चित्तकी ग्रंथिको रोकती है और इस प्रकारसे भेदन करती है; जैसे सागर वायुसे भिन्न होता है ॥ ४२ ॥ वासनाको रोकनेसे कामादिसे मलीन हुई बुद्धि शुद्ध होती है वेदमें कहे ज्ञानसे यह जीव देहबंधनसे मुक्त हो जाता है ॥४३॥ तेजमूर्ति योगी विद्यासे लोक रचने और संहार करनेकी सामर्थ्य रखता है और इस लोकको रच सकता है ॥४४॥ तिर्यक्‌योनिमें प्राप्त हुए जीवोंको कर्म और नियमोंसे ब्रह्मयुक्त चित्त होनेके

आत्मनो गतयश्चैव तथा विषयगोचरे ॥ पुरस्तात्कर्मनिर्वृत्तेः पदे ब्रह्मा प्रतिष्ठितः ॥ ४१ ॥ चित्तग्रन्थींश्च मनसा रुन्ध्यात्पूर्वांश्च यातनाः ॥ भिद्यमानाः प्रलोभेन वायुभिन्नमिवार्णवम् ॥ ४२ ॥ पच्यते हृदयं नोऽलं परेभ्यो ज्ञानचक्षुषा ॥ ब्रह्मप्रोक्तामिवात्मा वै विमुक्तो देहबन्धनात् ॥ ४३ ॥ सृजेदपि परं लोकं संहरेदपि विद्यया ॥ तेजोमूर्तिरिवाविद्धमिह लोकं च संसृजेत् ॥४४॥ तिर्यग्योनौ गतांश्चैव कर्मभिर्नियमोपमैः ॥ तान्यपि प्रतिमुच्येत ब्रह्मयुक्तेन चेतसा ॥ ४५ ॥ अक्षरं च क्षरं चैव योगकर्माभिविद्यते ॥ न क्षरं विद्यते तत्र यद्ब्रह्म कर्मभिर्ध्रुवम् ॥ ४६ ॥ इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे भविष्यपर्वणि षोडशोऽध्यायः ॥ १६ ॥ वैशम्पायन उवाच ॥ पृथिव्यां यत्कृतं छिद्रं तपनेन विवर्द्धता ॥ तस्मिन्न्यस्तोऽथ मैनाकः स्वभावविहितोऽचलः॥ १॥ पर्वभिः पर्वतत्वं च लभते नाम संज्ञितम् ॥ अचलादचलत्वं च स्वभावान्मेरुरेव सः ॥ २ ॥ तस्य पृष्ठे सुविस्तीर्णे नगस्य सुमहर्द्धिमान् ॥ तस्मिंस्तु पुरुषो व्यक्तो वसति ज्योतिसंभवः ॥ ३ ॥

कारण उनको कर्मबंधनसे छुटा सकता है ॥ ४५ ॥ मोक्ष और भोग दोनों वस्तु योगकर्मसे जानी जाती है. जो कर्मसे ब्रह्मगति मिलती है फिर उसका नाश नहीं होता ॥ ४६ ॥ इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे भविष्यपर्वणि भाषायां षोडशोऽध्यायः ॥ १६ ॥ वैशंपायन बोले; सूर्यदेवने जो छिद्र पृथ्वीमें किया था वहां स्वभावसे निर्मित मैनाक पर्वत स्थित है ॥ १ ॥ पर्व होनेसे इनको पर्वत कहते हैं. अचल होनेसे अचल और स्वभावसेही मेरु है ॥ २ ॥ उस विस्तृत पर्वतकी ऊपर महाऋद्धिमान् वह ज्योतिर्मय दीप्त शरीरवाला पुरुष उस परमात्माद्वारा स्वभावसेही स्थित किया गया है ॥ ३ ॥

और उसके शिरपर जो ब्रह्ममय तेज स्थित है उसका ज्योतिर्मय दिव्य पुरुष कहा गया हैं ॥ ४ ॥ वह मुखसे निकला हुआ तेजसे प्रकाशित चार मुख चार द्विजोत्तमोंके सहित प्रगट हुआ ॥ ५ ॥ उसके मुखसे वेद प्रगट हुआ है. वा तिस देवका मुख वेदसे प्रगट हुआ है इस कारण उस वेदके धारण करनेसे ब्रह्मा ब्राह्मण है. इस प्रकार यह महाभूत फिर पूज्यताको प्राप्त हो गये ॥ ६ ॥ जिन्होंने जलसे पृथ्वी देवीका उद्धार किया है वह ब्रह्माके स्थान (मुक्ति) मेरुपृष्ठको प्राप्त होकर अलोक होकर लोकताको प्राप्त हुआ ॥ ७ ॥ जिसकी पदसंधिमें ब्रह्मलोक मेरुशृंग स्थित है (यह ज्ञानपरत्व है पर्वत कल्पनामात्र है)

विहितश्च स्वभावेन तेनैव परमात्मना ॥ यत्तद्ब्रह्ममयं तेजो निहितं शिरसोऽन्तरे ॥ तस्य ज्योतिर्मयं रूपं दीप्तं पुरुषविग्रहम् ॥ ४ ॥ वदनादभिनिष्क्रान्तं ज्वलन्तमिव तेजसा ॥ चतुर्भिर्वदनैर्युक्तं चतुर्भिश्च द्विजोत्तमैः ॥ ५ ॥ वक्त्रं ब्रह्मसमुद्भूतं ब्रह्मा ब्राह्मणपुङ्गवः ॥ तदेव तन्महाभूतं पुनर्भावत्वमागतम् ॥ ६ ॥ उद्धृता पृथिवी देवी पुरस्तात्सलिलाशयात् ॥ ब्रह्मत्वं ब्रह्मणः स्थानादलोको लोकतां गतः ॥ ७ ॥ पदसंधौ ब्रह्मलोकं शृङ्गं मेरोस्तदाभवत् ॥ उच्छ्रितं योजनशतं सहस्रशतमेव च ॥ ८ ॥ एवमेव च विस्तारं चतुर्भिर्गुणितं गुणैः ॥ अथवा नैव संख्यातुं शक्यं भूतेन केनचित् ॥ समाः सहस्रं बहुभिरपि दिव्येन तेजसा ॥ ९ ॥ चतुर्भिः पार्श्वविस्तारैः शिलाभिरभिसंवृतैः ॥ नगस्य यस्य राजेन्द्र विस्तारैः शतयोजनैः ॥ १० ॥ कोटिकोटिशतगुणैर्गुणितब्रह्मवादिभिः ॥ योगयुक्तैः सदा सिद्धैर्नित्यं ब्रह्मपरायणैः ॥ ११ ॥ मरुद्भिः सह देवेन्द्रै रुद्रैर्वसुभिरेव च ॥ आदित्यैर्विश्वसहितै ररक्ष वसुधाधिपान् ॥ १२ ॥ ररक्ष पृथिवीं चैव भगवान्विष्णुना सह ॥ विवस्वद्वरुणाभ्यां च संघातं गमितां नृप ॥ १३ ॥

यह सौ सहस्र सो योजन ऊंचा है ॥ ८ ॥ और इस प्रमाणसेभी चौगुना प्रमाण गिना जाता है अथवा कोई मनुष्य इसकी संख्या नहीं कर सकता. बहुत सहस्रों वर्षतक दिव्य तेजसे कोई नहीं जानता ॥ ९ ॥ जिस पर्वतमें सौ सौ योजनवाली धर्म ज्ञान वैराग्य ऐश्वर्यरूप चार शिला हैं ॥ १० ॥ उसमें करोडों २ सौ ब्रह्मवादी योगयुक्त नित्य ब्रह्मपरायण निवास करते हैं ॥ ११ ॥ मरुत देवेन्द्र वसुओंके साथ आदित्य विश्वेदेवा सहित पृथ्वीके राजोंकी रक्षा की जाती है ॥ १२ ॥ यह सब भगवान् विष्णुके सहित पृथ्वीकी रक्षा करते हैं. सूर्य और वरुणके साथ मिले हुए अर्थात् जल अग्निसे

संघटित लिंगशरीरसे ब्रह्म निर्विशेषरूपको प्राप्त होता है ॥ १३ ॥ हे भारत ! उस ब्राह्मणशरीरसे ब्रह्मको प्राप्त होकर जो ब्रह्ममें तेज सब ओरसे समताको प्राप्त हो रहा है ॥ १४ ॥ वेदपारगामी ब्राह्मण जिसको ब्रह्म कहते हैं जो सत्यव्रतपरायण अनेक नियमोंसे प्राप्त होता है ॥ १५ ॥ इस प्रकार यह तीनों लोक ब्रह्माके दिनमें स्थित रहते हैं. उस दिनमें अव्यक्त प्रतिष्ठित ब्रह्मरूप प्रगट हो जीवरूप प्राणमें प्रतिष्ठित होता है ॥ १६ ॥ ईश्वरके प्रभावसे निश्वसित वेदके द्वारा प्रेरित किया जो नित्यकर्म है वह नियतकर्म शुद्धभावसे करनेसे ॥ १७ ॥ सदैव हित करनेवाला है यह वार्ता वेदपारगामी ब्राह्मणोंने कही है जो कर्मसे प्राप्त होता है वह ब्रह्मका पाद लेशमात्र कहा गया है ॥ १८ ॥ और बहुरूप अर्थात् इन्द्र मित्र वरुणरूप होनेसे ब्रह्मभूत सत्य-

तेन ब्राह्मेण वपुषा ब्रह्मप्राप्तेन भारत ॥ यत्ताद्विष्णुमयं तेजः सर्वत्र समतां गतम् ॥ १४ ॥ यत्तद्ब्रह्मेति वै प्रोक्तं ब्राह्मणैर्वेदपारगैः ॥ नियमैर्बहुभिः प्राप्तैः सत्यव्रतपरायणैः ॥ १५ ॥ एवमेते त्रयो लोका ब्राह्मेऽह्नि समाहिताः ॥ अहनि ब्रह्म चाव्यक्तं व्यक्तं प्राणे प्रतिष्ठितम् ॥ १६ ॥ ब्रह्मणो नियतं कर्म प्रभावेन प्रचोदितम् ॥ प्रवर्त्तमानं भावेन शश्वदच्छलवादिनाम् ॥ १७ ॥ एताद्धितमिति प्रोक्तं ब्राह्मणैर्वेदपारगैः ॥ यदेकं ब्रह्मणः पादं दिष्टत्वं गमितं पदम् ॥ १८ ॥ बहुत्वाद्विप्रभावानां विश्वशब्दः प्रयुज्यते ॥ ब्राह्मणैर्ब्रह्मभूतात्मा सत्यव्रतपरायणैः ॥ १९ ॥ विश्वरूपं मनोरूपं बुद्धिरूपं च मानयन् ॥ एवं द्वन्द्वं स भगवान् प्रथमं मिथुनं सृजत् ॥ २० ॥ स एव भगवान्विश्वो देव्या सह सनातनः ॥ विधाय विपुलान् भोगान् ब्रह्माचरति सानुगः ॥ २१ ॥ स एष भगवान् ब्रह्मा नित्यं ब्रह्मविदां वरः ॥ निर्वाणमयगन्तॄणामकिंचनपथैषिणाम् ॥ २२ ॥ सोमात्सोमः समुत्पन्नो धारासलिलविग्रहात् ॥ यथाभिषिक्तो भूतानामाधिपत्ये महेश्वरः ॥ २३ ॥

व्रतपरायण ब्राह्मणोंद्वारा विश्वरूप कहा जाता है ॥ १९ ॥ विश्वरूप मनरूप बुद्धिरूप मानते हुए भगवान्‌ने प्रथम मिथुनको उत्पन्न किया है ॥ २० ॥ वह भगवान् विश्व सनातन देवीके साथ अनेक भोगोंको करता हुआ अनुचरों सहित विचरता है ॥ २१ ॥ यह भगवान् ब्रह्मा नित्य वेदके ज्ञाता निर्वाणमयको प्राप्त होनेवाले और अकिंचन मार्गकी इच्छावाले हैं ॥ २२ ॥ उमारूप विद्याके सहित ज्ञानशक्तिरूप परमेश्वरसे औषधीपति चन्द्रमा उत्पन्न हुआ है, वह जलरूप धारा स्वर्गसे प्रादुर्भूत हुई है. जिससे महेश्वर भूतोंके आधिपत्यमें अभिषिक्त हुए हैं ॥ २३ ॥

भूतेशको अभिषेक कर स्वाभाविक कर्म करके नाद करती है, इस कारण इसको नदी कहते हैं ॥ २४ ॥ वह मार्गके रोकनेवाले पर्वतोंका तिरस्कार कर सहस्र प्रकारसे युक्त हो स्वर्गसे (गां) पृथ्वीमें प्राप्त होनेके कारण गंगा कहलाई, और गोदावरी आदि रूपसे समुद्र संगममें सात प्रकारकी हुई है ॥ २५ ॥ हे राजेन्द्र ! इस प्रकारसे यह सहस्र प्रकारोंसे वारंवार लोकको बढाती है इस लोक परलोकको संभावित करती है ॥ २६ ॥ इसीसे सब प्राणी और महाभूत (जरायुजादि जीव) बढते हैं. इसीसे सब बुद्धिमानोंकी क्रियाका आरंभ होता है अर्थात् मनुष्यादि होकर उससे सब क्रिया बढती है ॥ २७ ॥ उस देवके चार मुखोंसे निकली हुई अक्षरमयी सिद्धि वेदरूप उपदेशपनेको प्राप्त हुई है ॥ २८ ॥ उसका ज्ञानमय पुण्यरूप चतुष्पाद सनातन है. यह

अभिषिच्य भूतेशं कृत्वा कर्म स्वभावतः ॥ नदति स्म तदा नादं तेन सा ह्युच्यते नदी ॥ २४ ॥ सा ब्रह्मलोकं संभाव्य अभिभूय सहस्रधा ॥ गां गता गगनाद्देवी सप्तधा प्रससार च ॥ २५ ॥ सहस्रधा च राजेन्द्र बहुधा च पुनः पुनः ॥ इमं लोकममुं चैव भावयन् ॥२६॥ ततो भूतानि रोहन्ति महाभूतफलानि च ॥ ततः सर्वे क्रियारम्भाः प्रवर्तन्ते मनीषिणाम् ॥ २७ ॥ चतुर्भिर्वेदनेक्षरसंभवम् स्तस्य मुखपद्माद्विनिःसृता ॥ तदाक्षरमयी सिद्धिर्दिशत्वं समुपागता ॥ २८ ॥ तस्य ज्ञानमयं पुण्यं चतुष्पादं सनातनम् ॥ पतित्वे नाभवद्देवो ब्रह्मा चात्र पितामहः ॥२९॥ पादा धर्मस्य चत्वारो यैरिदं धार्यते जगत् ॥ ब्रह्मचर्येण व्यक्तेन गृहस्थेन च पावने ॥ ३० ॥ गुरुभावेन वाक्येन गुह्यगामिनगामिना ॥ इत्येते धर्मपादाः स्युः स्वर्गहेतोः प्रचोदिताः ॥ ३१ ॥ न्यायाद्धर्मेण गुह्येन सोमो वर्धोति मण्डले ॥ ब्रह्मणो ब्रह्मचरणाद्वेदा वर्तन्ति शाश्वताः ॥ ३२ ॥

पितामह ब्रह्मा देवताओंके अधिपति हुए ॥ २९ ॥ धर्मके चार चरण हैं जिनसे यह जगत् धारण किया जाता है ब्रह्मचर्य व्यक्तता और पवित्र गृहस्थधर्मसे स्थित है अर्थात् वह ईश्वर यज्ञरूप चार चरणवाला है ब्रह्मा उद्गाता होता अध्वर्यु यह चारों चरण हैं अर्थात् धर्मका एक पाद ब्रह्मचर्य आश्रम है गृहस्थाश्रम दूसरा पाद है ॥ ३० ॥ वानप्रस्थ तीसरा और संन्यास चौथा पाद है. यह धर्मके चार चरण धर्मके कारण हैं और स्वर्गके हेतु कहे हैं ॥ ३१ ॥ न्याय और गुप्त धर्मके ब्रह्माण्डमें चन्द्रसे अधिष्ठित मन बढता है और देदके द्वारा प्रमाणित योगसे शाश्वत वेद प्रवृत्त होते हैं ॥ ३२ ॥

पूर्वोक्त योगोंके जाननेवालोंसे पितर तृप्त होते हैं और ऋषिभी धर्मसे उस पर्वतके शिखरपर स्थित हैं ॥ ३३ ॥ उस मेरुपर्वतकी उत्तम शिखरको देखकर चरणोंसे वृषणको पीडित कर अर्थात् सिद्धासनसे स्थित हो विचार करते हैं ॥ ३४ ॥ ग्रीवाको निग्रह कर पृष्ठभागको निवारण कर हँसते हुए नाभि-देशमें हाथोंको रखकरके (अंजलि बांधकर वाममुद्रा कर वामके ऊपर दक्षिण हाथ कर) सम्पूर्ण अंगोंको निग्रह करता हुआ ॥ ३५ ॥ मस्तकमें ब्रह्मको प्राप्त कर ब्रह्माने अधिकारी मनसे योगसे योगेश्वर विष्णुको सृज ॥ ३६ ॥ इन्द्रियोंसे रहित बिंबसे बिंबकी समान विष्णुको उद्धृत करनेसे

गृहस्थानभिवाक्येन तृप्यन्ति पितरस्तथा ॥ ऋषयोऽपि च धर्मेण नगस्य शिरसि स्थिताः ॥ ३३ ॥ नगस्य तस्य संपश्य मेरोः शिखरमुत्तमम् ॥ पद्भ्यां संपीड्य वृषणावृषिभिस्तैर्विचार्यते ॥ ३४ ॥ ग्रीवां निगृह्य पृष्ठं च विनाम्य प्रहसन्निव ॥ नाभिदेशे करौ न्यस्य सर्वशोऽङ्गानि संक्षिपन् ॥ ३५ ॥ मूर्ध्नि ब्रह्म समुत्क्षिप्य मनसापि पितामहः ॥ असृजन्मनसा विष्णुं योगाद्योगेश्वरस्य च ॥ ३६ ॥ व्यतिरिक्तेन्द्रियो विष्णुर्बिम्बाद्बिम्बमिवोद्धृतः ॥ तेजोमूर्तिधरो देवो नभसीन्दुरिवोदितः ॥ ३७ ॥ रराज ब्रह्मयोगेन सहस्रांशुरिवापरः विराजन्नभसो मध्ये प्रभाभिरतुलं प्रभुः ॥ ३८ ॥ नोपलभ्यति मूढानां प्रत्यक्षं ब्रह्म शाश्वतम् ॥ ललाटमध्ये तिष्ठन्तं द्विधाभूतं क्रियां प्रति ॥ ३९ ॥ ज्योतिश्चक्षुषि संबद्धं बिम्बं भास्करसोमयोः ॥ बुद्ध्या पूर्वं तु पश्यन्ति अध्यात्मविषये रताः ॥ ४० ॥ ब्रह्मणा वेदविद्वांसः सत्यव्रतपरायणाः ॥ नेतरे जातु पश्यन्ति अध्यात्मं नावबुध्यते ॥ ४१ ॥ हिंसायोगैरयोगात्मा सर्वप्राणचरैर्नृप ॥ भूतयो भुवि भूतेशो मोहप्राप्तेन चेतसा ॥ ४२ ॥

तेजकी मूर्ति धारण करनेवाला आकाशमें उदित चन्द्रमाकी समान प्रकट होता है ॥ ३७ ॥ वह दूसरे सूर्यकी समान ब्रह्मयोगसे शोभित हुए. वह प्रभु अपनी अतुलप्रभासे आकाशके मध्यमें शोभित हुए ॥ ३८ ॥ मूढोंको वह शाश्वत ब्रह्म प्रत्यक्ष नहीं होता है. वह क्रिया नियम्य और नियामक रूपसे ललाटके मध्यमें स्थित हैं ॥ ३९ ॥ नेत्रोंको प्रकाशित करनेवाली ज्योति सूर्य और चन्द्रमाका बिम्ब है. अध्यात्मज्ञानी इसको बुद्धिपूर्वक देखते हैं ॥ ४० ॥ जो वेदके ज्ञाता ब्राह्मण सत्यव्रतमें परायण हैं उन्हींको यह अध्यात्म ज्ञान विदित होता है. दूसरे इसको नहीं जानते ॥ ४१ ॥ जो योगी पृथ्वीमें प्राणि-

योंकी निग्रह अनुग्रह करते हैं जिनका आत्मा हिंसायोगसे अयोग हो रहा हैं तथा ऐश्वर्यसें उपजें हुए मोहमें प्राप्त हुए चित्तसे अयोगात्मा ॥ ४२ ॥ कुत्सित कर्म और प्राणियोंके वधकी इच्छा करनेवाला अपने भोगोंके अर्थ ईश्वरको नहीं जानता ॥ ४३ ॥ हे ब्रह्मन् ! सावधान मनवाला मोक्षप्राप्तिके कारण चन्द्रमण्डलके स्थानसे बडी चन्द्रसम्बन्धी ज्योतिर्मे ॥ ४४ ॥ हृदयमें प्रवेश कर सगुण ब्रह्मके हृदयके भीतर गर्भसे उपजनेवाले अकार उकार मकार और अर्द्धमात्रासे चार प्रकारवाला होकर ॥ ४५ ॥ ब्रह्मतेजयुक्त होकर शाश्वत ध्रुव अविनाशी इन्द्रियगुणोंसे अयुक्त तेजगुणोंसे युक्त ॥ ४६ ॥ चन्द्रकिरणकी समान उज्ज्वल प्रकाशमान वर्णकी संज्ञावाले देवने नेत्रोंसे यजुके साथ ऋग्वेदको उत्पन्न किया ॥ ४७ ॥

कर्मभिः कुत्सितैरन्यैः सर्वप्राणिवधैषिणाम् ॥ नराणां योगमाधाय स्वेषु मात्रेषु भारत ॥ ४३ ॥ समाहितमना ब्रह्मन् मोक्षप्राप्तेन हेतुना ॥ चन्द्रमण्डलसंस्थानाज्ज्योतिश्चान्द्रं महत्तदा ॥ ४४ ॥ प्रविश्य हृदयं क्षिप्रं गायत्र्या नयनान्तरे ॥ गर्भस्य संभवो यश्च चतुर्धा पुरुषात्मकः ॥ ४५ ॥ ब्रह्मतेजोमयो युक्तः शाश्वतोऽथ ध्रुवोऽव्ययः ॥ न चेन्द्रियगुणैर्युक्तो युक्तस्तेजोगुणेन च ॥ ४६ ॥ चन्द्रांशुविमलप्रख्यो भ्राजिष्णुर्वर्णसंस्थितः ॥ नेत्राभ्यां जनयद्देवो ऋग्वेदं यजुषा सह ॥ ४७ ॥ सामवेदं च जिह्वाग्रादथर्वाणं च मूर्द्धतः ॥ जातमात्रस्तु ते वेदाः क्षेत्रं विन्दन्ति तत्त्वतः ॥ ४८ ॥ तेन वेदत्वमापन्ना यस्माद्विन्दन्ति तत्पदम् ॥ ते सृजन्ति तदा वेदा ब्रह्म पूर्व सनातनम् ॥४९॥ पुरुषं दिव्यरूपाभं स्वैः स्वैर्भावैर्मनोभवैः ॥ अथर्वणस्तु यो योगः शीर्षं यज्ञस्य तत्स्मृतम् ॥५०॥

जिह्वाके अग्रभागसे सामवेद प्राज्ञरूप उत्पन्न हुआ शब्दमात्र गम्यत्व होनेसे जिह्वाग्रसे उत्पत्ति कही. मूर्धासे अथर्व हुआ अर्थात् यह विश्व और तैजसरूप है. जो मन नेत्रादि इन्द्रियोंके अगोचर है उस सब शुद्धके मूर्धासे हुआ. उत्पन्न होतेही यह वेद अपने क्षेत्रको प्रकाश कर इनसे सबसे विलक्षणरूप होनेसे जो तुर्यातीत उपाधिको ग्रहण करते हैं ॥ ४८ ॥ इसीसे यह वेदत्वको प्राप्त हुए हैं. कारण कि इनसे तत्पद जाना जाता है. यही वेद सनातन ब्रह्मको प्रकाश करते हैं ॥ ४९ ॥ इस प्रकार दिव्यकान्तिवाले पुरुषको अपने २ मनोभवरूप भावोंसे प्रगट करते हैं. अथर्वणको तुर्य धारणायोगका शिर है

कहा है ॥ ५० ॥ ग्रीवा और बाहुओंका अन्तर ऋग्भाग है. हृदय और पार्श्वभाग साम कहाता है ॥ ५१ ॥ बस्ति शिर कटि जंघा ऊरु चरण यह यज्ञकल्पित यजुर्भाग कहलाता है यह पुरुष दिव्यरूप कान्तिमान् चौथे अक्षरसे प्रादुर्भूत है ॥ ५२ ॥ यही वेदमय यज्ञ सब प्राणियोंको सुख देनेवाला है. वह हिंसारहित सनातन यज्ञ दोनों लोकोंका मंगल करनेवाला है अर्थात् सबीज निर्बीज नामसे दो प्रकारका योग है. पहला चार प्रकारका है. वितर्क विचार आनंद स्मृतिरूप जब बाह्यप्रतिमादिमें चित्त नियमन किया जाता है वह वितर्क ऋक्शब्दसे कहा जाता है और जब स्वप्नकी समान अन्तरबुद्धिसे मनोमात्र प्रतिमादिमें कल्पना की जाती है वह विचार यजुशब्दसे कहा जाता है जब इसको छोडकर तुर्यमें जानेकी इच्छासे मध्यमें लय होता है वह प्रकृति लीन सामशब्दसे कहा जाता है यह लयरूप होनेसे अयोग है और तुर्यपदको प्राप्त होनेपर जब सम्पूर्ण ऐश्वर्य सर्वज्ञादिका वर्णन किया जाता है

ग्रीवा बाह्वन्तरं चैव ऋग्भागः स भवेत्ततः॥ हृदयं चैव पार्श्वं च सामभागस्तु निर्मितः ॥ ५१ ॥ बस्ति शीर्षं कटीदेशं जङ्घोरुचरणैः सह ॥ एवमेष यजुर्भागः संघातो यज्ञकल्पितः ॥ पुरुषो दिव्यरूपाभः संभूतो ह्यमरात् परात् ॥ ५२ ॥ स हि वेदमयो यज्ञः सर्वभूतसुखावहः॥ उभयोर्लोकयोस्तात हिंसावर्ज्यः सनातनः॥५३॥ योगारम्भं कर्मसाध्यं ब्रह्मचर्यं सनातनम् ॥ प्रभवः सर्वभूतानां यो विन्दति स वेदवित् ॥ ५४ ॥ स सिद्धः प्रोच्यते लोके सिद्धिरेव न संशयः ॥ निर्मुक्तः सर्वकर्मभ्यो मुनिभिर्वेदपारगैः ॥ ५५ ॥ वैष्णवं यज्ञमित्येवं ब्रुवते वेदपारगाः ॥ ब्राह्मणा नियमश्रान्ता वेदोपनिषदे पदे ॥ ५६ ॥ जनमेजय उवाच ॥ चेतसस्तूपलम्भं हि मनोग्राह्यस्य कामतः ॥ कारणं श्रोतुमिच्छामि यथा त्वं मन्यसे मुने ॥ ५७ ॥

वह आनंद कहलाता है और जब अंधकारको छोडकर मैं हूं इस प्रकारका जो आनंद है वह स्मित है. यह दोनों अथर्वशब्दसे कहे जाते हैं. (विस्तार इसका भागवतमें वेदस्तुतिपर देखो) ॥ ५३ ॥ यह योगारंभ सनातन कर्म ब्रह्मचर्यसे सिद्ध होता है यही सम्पूर्ण भूतोंका उत्पत्तिरूप है जो इसे जानता है वही वेदवित् है ॥ ५४ ॥ वही लोकमें सिद्ध कहाता है उसेही सिद्धि है इसमें सन्देह नहीं. वेदके जाननेवाले मुनियों करके वह सब कर्मोंसे निर्मुक्त कहा गया है ॥ ५५ ॥ इस प्रकार वेदपारगामियोंने यही वैष्णवयज्ञ कहा है. यह वार्ता वेदके जाननेवाले वेद उपनिषद्में श्रान्त जन ब्राह्मण कहते हैं ॥ ५६॥ जन्मेजय बोले; मनके ग्रहण करनेसे योग चित्तकी कामनासे उपलंभ होता है. हे मुनिश्रेष्ठ ! सो मैं इसके कारणके सुननेकी इच्छा करता हूं जैसा आप

मानते हैं ॥ ५७ ॥ वैशंपायन बोले; हे भारत! इसका कारण कुछ बाह्य नहीं है. हे राजन्! इसका कारण शरीरके अन्तर्गत मन है ॥ ५८ ॥
जिससे शंसित व्रतवाले ब्राह्मण वेद्य कहते हैं. उस अवेद्य और वेद्यको कर्मोंसे नहीं जान सकते ॥ ५९ ॥ हे राजन्! सदा ब्रह्मके सेवन करनेवाले विनीत
ब्राह्मणद्वारा जो सिद्धिके निमित्त सदा तत्त्वको जानता है ॥ ६० ॥ सदा पवित्र होकर नियत ब्रह्मकर्मसे युक्त हो हाथ जोडकर ब्राह्मण गुरुके निकट उपस्थित
हो ॥ ६१ ॥ तत्त्वका जाननेवाला प्रभात और संध्यासमय मोक्षके कर्मोंको करे विनीत और ब्रह्मभावसे सावधान रहे ॥ ६२ ॥ मनसे उत्तम वैष्णव पदको

वैशम्पायन उवाच ॥ न ह्यस्य कारणं किंचिद्बाह्यं भवति भारत ॥ अन्तर्गतं कारणं तु शारीरं मानसं नृप ॥ ५८ ॥ येन वेद्यं
विदुर्मर्त्या ब्राह्मणाः संशितव्रताः ॥ अवेद्यमपि वेद्यं च शक्यं वेत्तुं न कर्मणा ॥ ५९ ॥ ब्राह्मणेन विनीतेन सदा ब्रह्मनिषेविणा ॥
सदा विदिततत्त्वेन सिद्धिहेतोर्महीपते ॥ ६० ॥ सदा चैव शुचिर्भूत्वा नियतो ब्रह्मकर्मणा ॥ उपतिष्ठेत सद्गुरुं बद्धाञ्जलिपुटो
द्विजः ॥ ६१ ॥ सायं प्रातश्च तत्त्वज्ञो मोक्षकर्माणि कारयेत् ॥ विनीतो ब्रह्मभावेन समाहितमतिर्मुनिः ॥ ६२ ॥ संप्रपद्येत मनसा वैष्णवं
पदमुत्तमम् ॥ ध्यायन्नेव प्रसीदेत समाहितमतिर्द्विजः ॥ ६३ ॥ गच्छते परमं ब्रह्म निर्विकारेण चेतसा ॥ अपुनर्भवभावज्ञो निर्ममो
भावबन्धनात् ॥ ६४ ॥ तदेवाक्षरमित्याहुर्यत्तद्ब्रह्म सनातनम् ॥ तर्हि तत्कर्मयोगेन विद्यायोगेन दर्शितम् ॥ ६५ ॥ ब्राह्मणानां विनी-
तानां वैष्णवे पदसंचये ॥ सर्वद्रव्यातिरिक्तानां कामयोगविगर्हिणाम् ॥ ६६ ॥ अपुनर्भाविनां लोकाः कर्मयोगप्रतिष्ठिताः ॥ अनादानेन
मनसा राजन्कर्मणि कर्मणि ॥ ६७ ॥ आदानाद्बध्यते जन्तुर्निरादानात्प्रमुच्यते ॥ ब्राह्मणेभ्यः क्रियावात्तिर्जन्तोः पुत्राज्जनाधिप ॥ ६८ ॥

प्राप्त हो. इस प्रकार सावधान मतिवाला ब्राह्मण ध्यान करता हुआ प्रसन्न हो ॥ ६३ ॥ निर्विकार चित्तसे परब्रह्मको प्राप्त होकर फिर न लौटनेके भावका
जाननेवाला निर्मम होकर भावबंधनसे पृथक् हुआ रहे ॥ ६४ ॥ जो सनातन ब्रह्म है उसीको अक्षर कहते हैं. वह कर्म और विद्यायोगसे दीखता है ॥ ६५ ॥
विनीत ब्राह्मणोंको वैष्णवपदके संचयके निमित्त सब द्रव्योंसे अतिरिक्तोंको जो कामयोगकी निन्दा करते हैं ॥ ६६ ॥ जो फिर संसारमें न आनेकी
इच्छासे कर्मयोगमें प्रतिष्ठित हैं. हे राजन्! वे कर्मोंमें फलके नहीं चाहनेवाले मुक्त होते हैं ॥ ६७ ॥ प्राणी कर्मफलको ग्रहण करनेसे बंधता है त्यागनेसे

छूट जाता है. हे राजन् ! पूर्वजन्मके संस्कारसे ब्राह्मणोंके अर्थ क्रियाओंकी प्राप्ति होती है ॥ ६८ ॥ इंद्रिय बंधनसे मुक्त हुआ परम पदको प्राप्त होकर फिर मनुष्य शरीरमें नहीं आता ॥ ६९ ॥ इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे भविष्यपर्वणि भाषायां सप्तदशोऽध्यायः ॥ १७ ॥ जन्मेजय बोले; उपसर्ग योग और ध्यान करनेके योग पदं इनके प्रतापसे मनुष्य देहको फिर प्राप्त नहीं हो सक्ता है ॥ १ ॥ वैशंपायन बोले; जो तुम ब्रह्मादिक योगियोंकी अनेक प्रकारसे उत्पत्ति देखते हो उसे बुद्धिसे सुनो. जो मनसे ब्रह्मादिकी अनेक प्रकार प्राप्ति होती है ॥ २ ॥ शब्दादि पांच सिद्धियोंके गुण

मुक्तश्चेन्द्रियबन्धेन प्राप्तश्च परमं पदम् ॥ न भूयः पुनरायाति मानुषं देहविग्रहम् ॥ ६९ ॥ इति श्री महाभारते खि० हरि० भविष्यपर्वणि सप्तदशोऽध्यायः ॥ १७ ॥ जनमेजय उवाच ॥ उपसर्गं च योगं च ध्यातव्यं चैव यत्पदम् ॥ न भूयः पुनरायाति मानुषं देहविग्रहम् ॥ १ ॥ वैशम्पायन उवाच ॥ शृणु विस्तरतः सर्वं यथा पृच्छसि मेधया ॥ उपपन्नेन मनसा ब्रह्मादीनामनेकधा ॥ २ ॥ पञ्च सिद्धिगुणांस्त्यक्त्वा पश्यतो ब्रह्मणा नृप ॥ योगयुक्तेन मनसा पञ्चेन्द्रियनिवासिनः ॥ ३ ॥ ब्रह्मणश्चिन्तयानस्य ब्रह्मयज्ञं सनातनम् ॥ बहुरूपमनैश्वर्यात्प्रवर्त्तति निरोधनम् ॥ ४ ॥ पञ्चेन्द्रियस्य ग्रामस्य नवद्वारस्य भारत ॥ कामक्रोधस्य लोभस्य सन्निरुद्धस्य मेधया ॥ ५ ॥ तेजसा मूर्ध्नि चाधाय धूमो दोधूयते महान् ॥ नीललोहितवर्णाभैः पीतैः श्वेतैश्च धातुभिः ॥ ६ ॥

त्यागन कर ब्रह्मको देखते हुए योगयुक्त मनसे पंचेन्द्रियनिवासी ब्रह्मको चिन्तन करनेसे ॥ ३ ॥ सनातन ब्रह्मयज्ञकी प्राप्ति होती है बहुरूप अनैश्वर्य वैराग्य बलके अभावसे ब्रह्मयज्ञ निरोधको प्राप्त होता है ॥ ४ ॥ हे भारत ! नौ द्वारयुक्त पंच इन्द्रियसमूह काम क्रोध लोभकी मेधासे रुका हुआ ग्रामरूप शरीरका योग अनैश्वर्यसे रुक जाता है ॥ ५ ॥ भृकुटि नासिकाके मध्यमें धारण किये तेजसे नेत्रोंके प्रणिधान किये चित्तको संयुक्त कर स्थित हुए योगीके धुआंरूप जल ओसकी समान बहुतसा निकलता है. नील लोहित वर्णकी समान कांतिवाले पीत श्वेत धातुओंद्वारा ॥ ६ ॥

मँजीठके रंगकी समान कबूतरके रंगकी समान शुद्ध वैडूर्य और पद्मदलकी कान्तिकी समान ॥ ७ ॥ स्फटिकमणिके वर्ण नागेशकी सदृश इन्द्रगोपवर्णकी समान चन्द्रकिरण और जलकी समान ॥ ८ ॥ इन्द्रधनुषकी समान बहुत वर्णके धूमसमागमको प्राप्त होनेवाले एकसाथ मेघसम्पत्तिको प्राप्त होने- वाले ॥ ९ ॥ पक्षोंवाले पर्वतोंकी समान आकाशको रोकनेवाले धूमवर्ण मेघ जलके धारण करनेवाले जलसमूहको उगलते हुए पृथ्वीतलमें प्रवेश करते हैं ॥ १० ॥ शिरमें परमयोगसे युक्त सैकडों ज्वालाओंसे युक्त महान् अग्नि मनसे उपजी कंपित होती है ॥ ११ ॥ उसकी सहस्रों सैकडों ज्वाला-

स्फटिकैर्मणिवर्णाभैर्नागेन्द्रसदृशैस्तथा ॥
माञ्जिष्ठरागवर्णाभैः कपोतसदृशैस्तथा ॥ शुद्धवैडूर्यवर्णाभैः पद्मवर्णदलप्रभैः ॥ ७ ॥ स्फटिकैर्मणिवर्णाभैर्नागेन्द्रसदृशैस्तथा ॥
इन्द्रगोपकवर्णाभैश्चन्द्रांशुसलिलप्रभैः ॥ ८ ॥ बहुवर्णैः सुधूमौघैरिन्द्रायुधसमप्रभैः ॥ संपतद्भिश्च युगपन्मेघैरिव समागमे ॥ ९ ॥
निरुध्यन्त इवाकाशे पक्षवद्भिरिवाद्रिभिः॥ ते धूमवर्णाः संघाता घनाः सलिलधारिणः॥ निर्वमुश्चैव तोयौघान्निविशुर्वसुधातले ॥१०॥
मूर्ध्नि चैव महानाग्निर्मानसो धूयते प्रभुः ॥ युक्तः परमयोगेन शतशोऽर्चिभिरावृतः ॥ ११ ॥ तस्यार्चैर्विस्फुलिङ्गानां सहस्राणि
शतानि च ॥ विसस्रुः सर्वगात्रेभ्यो ज्वलन्निव युगाग्नयः ॥ १२ ॥ यावन्त्यो वर्षधारास्तु तावन्त्योऽर्च्योऽनलस्य च ॥ समेयुर्वा-
रिधाराभिर्विपुले वसुधातले ॥१३॥ वर्णाभ्यां युज्यमानस्य वायुर्दोधूयते महान् ॥ दिव्यसिद्धगुणोद्भूतः सूक्ष्मप्राणविवर्द्धनः ॥१४॥
वेगवान्भीमनिर्घोषो बलवान्प्राणगोचरः ॥ तैरेव चाग्निसंघातैर्धातुभिः सह संगतः ॥ १५ ॥ सहस्रशोऽथ शतशो मूर्तिं कृत्वा
पृथग्विधाम् ॥ अग्निर्वायुर्जलं भूमिर्धातवो ब्रह्मचोदिताः ॥ १६ ॥

ओंके विस्फुलिंग प्रलयाग्निकी समान जलते हुए सब शरीरसे निकलते हैं ॥ १२ ॥ जितनी जलकी धारा हैं उतनीही अग्निकी चिनगारी हैं वे विपुल पृथ्वीतलमें जलधारासे मिलते हैं ॥ १३ ॥ श्वेत लोहित वर्णवाले दिव्य सिद्धगुणोंसे युक्त सूक्ष्म प्राणका बढानेवाला ॥ १४ ॥ वेगवान् भयंकर शब्द- वाला बलवान् प्राणगोचर उन्हीं अग्निके संघात और धातुओंसे मिला हुआ ॥ १५ ॥ सैकडों सहस्रों मूर्ति पृथ्वीमें पृथक् करके अग्नि वायु जल

भूमि धातु ब्रह्मसे पूरित हुए ॥ १६ ॥ समवायभावको प्राप्त हो बीजभूत ब्रह्मयोगसे संघातको प्राप्त हो धातुके कारणभावको प्राप्त हुए ॥ १७ ॥ जो ब्रह्म चक्षुके मध्यमें सूक्ष्म विराट्पुरुष है वह सूक्ष्म विराट्से बहुतसे पुरुषोंको रचता है ॥ १८ ॥ यह भगवान् विष्णु सनातन व्यक्त और अव्यक्त है यही सब विद्याओंके आधार और प्रलयमें प्रलयान्त करनेवाले हैं ॥ १९ ॥ उनको शिरमें धातुओंसे नद्ध ब्रह्मसे प्रेरित जन प्रवेश करते हैं. वे अन्तर पुरुष सब सुखदुःखके ज्ञाता जीवमें प्रवेश करते हैं ॥ २० ॥ तब वे ब्रह्मसम्मित मूर्ति चेष्टा करने लगती हैं धरणी देवीको भेदन कर दशों दिशाओंमें

समवायत्वमापन्ना बीजभूता महीपते ॥ संघातं ब्रह्मवेगेन धातवो गमिता नृप ॥१७॥ यद्ब्रह्म चक्षुषोर्मध्ये स सूक्ष्मः पुरुषो विराट् ॥ तयोरन्यान्बहून्सूक्ष्मान्ससृजे पुरुषोत्तमः ॥ १८ ॥ स एव भगवान्विष्णुर्व्यक्ताव्यक्तः सनातनः ॥ आधारः सर्वविद्यानां प्रलये प्रलयान्तकृत् ॥ १९ ॥ तं मूर्ध्नि धातुभिर्नद्धं विशन्ति ब्रह्मचोदिताः ॥ तेऽन्तरा पुरुषाः सर्वे ज्ञातारः सुखदुःखयोः ॥ २० ॥ अथ चेष्टितुमारब्धा मूर्तयो ब्रह्मसंमिताः ॥ भित्त्वा च धरणीं देवीं प्रापद्यन्त दिशो दश ॥ २१ ॥ इत्येते पार्थिवाः सर्वे ऋषयो ब्रह्मनिर्मिताः ॥ तत्रैव प्रलयं याता भूमित्वमुपयान्ति च ॥ २२ ॥ कर्मक्षयाद्विमुच्यन्ते धातुभिः कर्मबंधनैः ॥ कर्मक्षयाद्विमुक्तत्वादिंद्रियाणां च बन्धनात् ॥ २३ ॥ तामेव प्रकृतिं यान्ति अज्ञतां कर्मगोचरैः ॥ क्षराद्धूमक्षयं चैव अग्निगर्भास्तपोमयाः ॥ २४ ॥ येन तन्तुरिवाच्छिन्नो भावाभावः प्रवर्तते ॥ धूमादभ्रास्तु संभूता अभ्रात्तोय सुनिर्मलम् ॥ २५ ॥

प्राप्त होती हैं ॥ २१ ॥ यह सब पृथुभूतसे उत्पन्न होनेसे पार्थिवरूप सब ब्रह्मनिर्मित ऋषि फिर प्रलयको प्राप्त हुए भूमितलमें प्रविष्ट हो जाते हैं ॥ २२ ॥ कर्म क्षय होनेसे छूट जाते हैं कर्मबंधनवाली धातुओंसे छूट जाते हैं कर्मक्षयसे इन्द्रियोंके बंधनसे छूट ॥ २३ ॥ अज्ञानवासे कर्मगोचर होनेके कारण उसी प्रकृतिको प्राप्त हो संसारमें आते हैं. अग्निहोत्रादि कर्म करनेवाले मनुष्य तपोमय कृच्छ्र चान्द्रायणादि कर्म करनेवाले होते हैं ॥२४॥ जिससे तंतुकी समान अवच्छिन्न भाव अभाव प्रवृत्त होता है धूमसे मेघ और मेघसे निर्मल जल होता है ॥ २५ ॥

जलसे पृथ्वी होती है. पृथ्वीमें फल फलसे रस रससे शरीरधारियोंके प्राण होते हैं ॥ २६ ॥ यज्ञोंमें जो सनातन ब्रह्म है तन्मय ब्रह्म चैतन्य रूप रस है. जो बहुतसे करणोंसे प्रधान ब्रह्म कहा है वह तपसे श्रान्त तपव्रतमें परायण ब्राह्मणोंने प्रधानभूत कहा है ॥ २७ ॥ हे भारत ! वह अपने भावसे अव्यक्तसे व्यक्तताको प्राप्त हुआ सब भूतोंके अन्तरमें क्रियाके सहित विचरण करता है ॥ २८ ॥ कर्मकर्ताके विषयमें अनेक प्रकारसे स्थित तपसे दग्धपापवालोंकी चक्षुसे नहीं दीखता ॥ २९ ॥ ब्रह्मवादी ज्ञानियोंको चक्षुसे दीखता है. वह दोनों भृकुटिके मध्यसे मेघयुक्त सूर्यकी समान निकलता है ॥ ३० ॥

जगती जलात्तु संभूता जगत्येव च यत्फलम् ॥ फलाद्रसस्तु संजज्ञे रसात्प्राणस्तु देहिनाम् ॥ २६ ॥ रसश्च तन्मयो जज्ञे यत्तद्ब्रह्म सनातनम् ॥ प्रधानं ब्रह्म चोद्दिष्टं बहुभिः कारणान्तरैः ॥ ब्राह्मणैस्तपसि श्रान्तैः सत्यव्रतपरायणैः ॥ २७ ॥ अव्यक्ताद्व्यक्तिमापन्नं स्वेन भावेन भारत ॥ अन्तस्थं सर्वभूतेषु चरन्तं क्रियया सह ॥२८॥ कर्म कर्तेति राजेन्द्र विषयस्तमनेकधा ॥ नोपलभ्येत चक्षुर्भ्यां तपसा दग्धकिल्बिषैः ॥ २९ ॥ उपलभ्येत चक्षुर्भ्यां ज्ञानिभिर्ब्रह्मवादिभिः ॥ निःसृतस्तु भ्रुवोर्मध्यान्मेघमुक्त इवांशुमान् ॥ ३० ॥ चरद्भिः पक्षिवल्लोके निर्द्वन्द्वैर्निष्परिग्रहैः॥ योगधर्मेण कौरव्य ध्रुवमासाद्यते फलम् ॥३१॥ प्रादुर्भावं क्षयं चैव भूतस्य निधनं तथा ॥ विधत्ते शतशो ब्रह्मा संक्षये च भवेत्तदा ॥ ३२ ॥ कर्मणः कर्मयोगज्ञो भूतेभ्यो नात्र संशयः ॥ अविनाशाय लोकस्य धर्मस्याप्यायनेन च ॥ ३३ ॥ युगं द्वादशसाहस्रं सहस्रयुगसंहितम् ॥ एतद्ब्रह्मयुगं नाम युगानां प्रथमं युगम् ॥ ३४ ॥ सहस्रयुगयोरन्ते संहारः प्रलयान्तकृत् ॥ सूक्ष्मं भवति लोकानां निर्विकारमचेतनम् ॥ ३५ ॥

वह लोकमें पक्षकी समान निर्द्वंद्व विचरता है. हे कौरव्य ! योगधर्मसे अवश्य फल मिलता है ॥ ३१ ॥ भूतोंका प्रादुर्भाव क्षय और निधन ब्रह्माजी सैकडों वार करते हैं. प्रलयके उपरान्त सृष्टि होती है ॥ ३२ ॥ कर्मसे कर्मयोगोंका जाननेवाला भूतोंके कर्मोंका जाननेवाला लोकके अविनाश और धर्मकी पुष्टिके अर्थ ॥ ३३ ॥ बारह सहस्र युग सहस्रयुगके सहित अर्थात् तेरह सहस्र युगका ब्रह्माका युग प्रथम जानना चाहिये ॥ ३४ ॥ सहस्र युगके अन्तमें प्रलयान्त करनेवाला संहार उपस्थित होता है. उस समय लोक निर्विकार अचेतन और सूक्ष्मरूप होता है ॥ ३५ ॥

जब इस प्रकार सब सनातन जगत् प्रलयको प्राप्त होता है तब अपने कारणगुणोंसे सूक्ष्म ब्रह्म स्थित होता है॥ ३६॥ इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे भविष्यपर्वणि भाषायाम् अष्टादशोऽध्यायः ॥ १८ ॥ जन्मेजय बोले; हे महामुने ! विस्तारसे मैं प्राग्वंश श्रवण करनेकी इच्छा करता हूं. हे ब्रह्मन् ! जो सगुणब्रह्मको जाननेवाले आद्ययुगोंके विस्तारसे युक्त हैं॥ १ ॥वैशंपायन बोले; जो आप बुद्धिपूर्वक सुननेकी इच्छा करते हैं वह मुझसे सुनिये. देवके ऊपर विश्वास करनेवाले युक्तमनसे सुनिये ॥ २॥ योगात्मा ब्रह्मसंभव भगवान् ऋद्धिको प्राप्त होकर प्राणियोंकी बहुतायत करते हुए ॥ ३॥ ब्रह्मासनके ऊपर बैठे

तथा प्रलयमापन्नं जगत्सर्वं सनातनम् ॥ ब्रह्म संपद्यते सूक्ष्मं निमित्तं कारणैर्गुणैः ॥ ३६ ॥ इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे भविष्यपर्वणि अष्टादशोऽध्यायः ॥ १८ ॥ जनमेजय उवाच ॥ प्राग्वंशं श्रोतुमिच्छामि विस्तरेण महामुने ॥ आद्ययोर्युगयोर्ब्रह्मन् ब्रह्मप्राप्तस्य सर्वशः॥ १॥वैशम्पायन उवाच॥शृणु विस्तरशः सर्वं यन्मां पृच्छसि मेधया ॥ उपपन्नेन मनसा दैवप्रत्ययसाधिना ॥२॥ ऋद्धिं प्राप्तस्तु भगवान्योगात्मा ब्रह्मसंभवः ॥ भूतानां बहुलत्वं च चक्रेऽहेश्वरः प्रभुः ॥ ३ ॥ स्थितो ब्रह्मासने ब्रह्मा विक्षितः सहसा प्रभुः ॥ अचलेनैव भावेन स्थाणुभूतेन भारत ॥४॥ रक्तश्च मोक्षविषये सच ज्ञानमये पदे ॥ यस्मात्पदसहस्राणि प्रभवन्ति भवन्ति च ॥ ५ ॥ ब्रह्मयज्ञं तु यजते योगाद्वेदात्मकं सदा ॥ ब्रह्मणो विपुलं ज्ञानमैश्वर्यं च प्रवर्तते ॥ ६ ॥ ततः प्रथममैश्वर्यं युञ्जानेन प्रवर्तितम् ॥ ब्रह्मणा ब्रह्मभूतेन भूतानां हितमिच्छता ॥ ७ ॥ तदा त्वाकाशमैश्वर्यं युञ्जानस्य प्रवर्तते ॥ ब्रह्मणो ब्रह्मभूतस्य निर्विकारेण कर्मणा ॥ ८ ॥

हुए ब्रह्मा प्रभु सहसा विक्षिप्त हुए. हे भारत ! उस समय उनका स्थाणुकी समान अचलभाव हो रहा था ॥ ४ ॥ वह ज्ञानरूप मोक्षपदमें स्थित हुए थे कि जिससे सैकडों पद निकल कर प्रविष्ट हो जाते हैं ॥ ५ ॥ सब कालमें वेदात्मक ब्रह्मयज्ञको करते हैं उससे ब्रह्माका महाज्ञान और ऐश्वर्य बढता है ॥ ६ ॥ तब ब्रह्मभूत और प्राणियोंके हितकी इच्छा करनेवाले ब्रह्माने प्रथम ऐश्वर्य प्रगट किया ॥ ७ ॥ निर्विकार कर्मसे ऐश्वर्यरूप आकाश

जहां देहधारी प्रवृत्त किया ॥ ८ ॥ तब निर्मल ब्रह्मरूप अविनाशी अन्तरिक्ष प्राप्त हुआ जो सब प्राणी और ब्रह्मवादियोंका संहाररूप है. आकाशमें ऐश्वर्यसे सम्पन्न संयुगमें ब्रह्मवादी और उससे प्रवर्तमान ऐश्वर्य वायुभावको करता है योगके ध्रुव ऐश्वर्यरूप प्राप्त होते हैं ॥ ९ ॥ और इन विकारोंसे चारों ओर ढके और निरुद्ध हुए ध्रुव ऐश्वर्यको प्राप्त हो और बहुतसे विकारोंमें पडे हुए महाबलोंसे संवृत ॥ १० ॥ निरालम्ब अनालम्बय मनसे ॥ १२ ॥ ऐश्वर्यभूत ब्राह्मण सिद्ध हो जाते हैं ॥ ११ ॥ तब वह शरीरादिसे निकलकर आकाशमें धावमान होता है.

तदान्तरिक्षं संप्राप्तं निर्मलं ब्रह्म चाव्ययम् ॥ संहारः सर्वभूतानां नराणां ब्रह्मवादिनाम् ॥ ध्रुवमैश्वर्ययोगानां प्रतिपद्यन्ति देहिनः ॥९॥
आकाशैश्वर्यभूतेन संयुगे ब्रह्मवादिना ॥ प्रवर्तमानमैश्वर्यं वायुभूतं करोति च ॥ विकारैर्बहुभिः प्राप्तैः संपन्नाद्भिर्महाबलैः ॥ १० ॥
एतैर्विकारैः संवृत्तैर्निरुद्धैश्च समन्ततः ॥ ध्रुवमैश्वर्यमापन्नः सिद्धो भवति ब्राह्मणः ॥ ११॥ शरीरादभिनिष्क्रम्य आकाशेन प्रधावति ॥
निरालम्बो निरालम्बानालम्ब्य मनसा ततः ॥ १२ ॥ ऐश्वर्यभूतो भूतात्मा चरन्दिवि न दृश्यते ॥ चक्षुर्भिर्बहुभिर्लोकैः पुरंदरसमैरपि ॥ १३ ॥ ओंकारं ये त्वधीयन्ते मनसा ब्रह्मसत्तमाः ॥ विभक्ताः सर्वकर्मभ्यस्ते यं पश्यन्ति साधवः ॥ १४ ॥ एतद्धि परमं ब्रह्म ब्राह्मणानां मनीषिणाम् ॥ अन्तश्चरति भूतानां विद्धि चेतनया सह ॥ १५ ॥ एष शब्दो महानादः पुराणो ब्रह्मसंभवः ॥ वायुभूतोऽक्षरं प्राप्तो वदन्त्येवं द्विजातयः ॥ १६ ॥ अरूपी रूपसंपन्नो धातुभिः सह संगतः ॥ अन्तश्चरति भूतेषु कामकारकरो वशी ॥ १७ ॥ एतत्पूर्वमनुध्याय मनसापूरयन्निव ॥ वेदात्मकं तदा यज्ञं चिन्तयन्तो मनीषिणः ॥ १८ ॥

जो ब्राह्मणश्रेष्ठ मनसे ओंकारका ध्यान करते हैं वे भूतात्मा चरता हुआ स्वर्गमें नहीं दीखता है. चाहे पुरन्दरकी समान चक्षुभी क्यों न हों ॥ १३ ॥ महात्मा सब कर्मोंसे रहित होकर उनको देखते हैं ॥ १४ ॥ ब्राह्मण मनीषियोंका यही परब्रह्म है. यह चेतनके सहित भूतोंके अन्तरमें फिरता है सो जानो ॥ १५ ॥ यह शब्दरूपी महानाद पुरातन और ब्रह्मसंभव है यह वायुभूत अक्षरको प्राप्त है. इस प्रकार द्विजाति कहते हैं ॥ १६ ॥ रूपरहित रूपसे सम्पन्न धातुओंसे संगत हुआ काम कर सब कुछ करनेवाला वशी प्राणियोंके अन्तःकरणमें चरता है ॥ १७ ॥ यह प्रथम ध्यान कर मनसे पूर्ण

करता हुआ बुद्धिमान् वेदान्तयज्ञको चिन्ता करता हुआ ॥ १८ ॥ पवित्र ब्राह्मण चतुर उसके यशको प्राप्त होता हुआ ब्रह्मलोकमें उत्तम वैष्णवपदकी इच्छा करता हुआ ॥ १९ ॥ उस पदप्राप्तिके निमित्त विगतज्वर होकर सब क्रिया करता है. हे राजन्! यह जन्म देनेवाले संसारकी इच्छा नहीं करते ॥ २० ॥ विश्व तैजस प्राज्ञ इन तीनोंको समर्पण करनेवाले माल्य उपहार आदिसे सत्वपराक्रमवाले परात्मा विष्णुको यजन करते हैं ॥ २१ ॥ वे वेदप्रमाण युक्त यजन और विक्रम करके तथा ब्रह्माजी वेदोक्त वचनोंसे वैष्णवतेजको प्राप्त हो ॥ २२ ॥ ब्रह्मज्ञानी ब्राह्मण तथा ब्रह्मयज्ञ करनेवाले

ब्राह्मणाः शुचयो दान्ता यशोयुक्तस्तदन्वया ॥ ब्रह्मलोकं काङ्क्षमाणा वैष्णवं पदमुत्तमम् ॥ १९ ॥ पदहेतोः क्रिया सर्वाः कुर्वन्ति
विगतज्वराः ॥ न ह्येते प्रसवादाने भवमिच्छन्ति भारत ॥ २० ॥ त्रिभिर्माल्योपहारैश्च प्रतिभावैश्च वै द्विजाः ॥ यजन्ति परमात्मानं
विष्णुं सत्त्वपराक्रमम् ॥ २१ ॥ यजनं विक्रमं चैव ब्रह्मपूर्वा प्रचक्रिरे ॥ ब्रह्मापि वैष्णवं तेजो वेदोक्तैर्वचनैर्नृप ॥ २२ ॥ ब्राह्मणैर्ब्रह्म-
विद्भिश्च ब्रह्मज्ञैर्ब्रह्मवादिभिः ॥ शुचिभिः कर्मनिर्मुक्तैः ॥ सत्यव्रतपरायणैः ॥ २३ ॥ धातुभिर्मोक्षकाले च महात्मा संप्रदृश्यते ॥ तदेव
परमं ब्रह्म वैष्णवं परमाद्भुतम् ॥२४॥ रसात्मकं तदैश्वर्यं विकारान्ते प्रदृश्यते ॥ घोररूपा विकारास्ते व्यथयन्ति महात्मनः ॥ २५ ॥
संच्छाद्यातीव तोयेन क्षुभ्यमाणो विचेतनः ॥ ऊर्मिभिश्छाद्यते चैव शीतोष्णाभिर्विकारतः ॥ २६ ॥ महार्णवगतश्चैव दह्यते न च
सज्जते ॥ मग्नश्चैव महानद्याः सलिले नैव सीदति ॥ २७ ॥ सीदमानश्च सलिले स शीते पात्यते बलात् ॥ आसनाच्छादनाच्चैव
मुच्यमानो विचेतनः ॥ २८ ॥

ब्रह्मवादियोंद्वारा जो पवित्र कर्मसे निर्मुक्त और सत्यव्रतमें परायण हैं ॥ २३ ॥ तेजबलयुक्त ब्रह्मको मोक्षकालमें कोईही महात्मा देखते हैं. वही परम अद्भुत वैष्णवोंका परम स्थान है ॥ २४ ॥ वह रसात्मक ऐश्वर्य प्रकारान्तरमें दीखता है वे घोररूप विकार महात्माको दुःखित करते हैं ॥ २५ ॥ अत्यन्त जलसे आच्छादित और तरंगोंसे क्षुभित विचेतन जीव शीत उष्ण तरंगोंसे क्षुभित किया जाता है ॥ २६ ॥ और महासमुद्रमें गत जीव दग्ध होता है और दग्ध हुई महानदीके जलसे दुःखित होता है ॥ २७ ॥ वह जलमें दुःखी हुआ बलसे शीतमें डाला जाता है तब वह आसन

आच्छादनसे छूटा हुआ विचेतन हो ॥ २८ ॥ मेघमें प्राप्त हुआ जलसे सींचा जाता है और शुक्लवर्णवाले स्रोतोंसे शिरकी ओर वारंवार सींचा जाता हुआ ॥ २९ ॥ ऊर्ध्व ज्योति शुक्ल पीतसे बाधित होता है; गंभीर जलसे पूर्ण बिजलियोंसे प्रकाशित ॥ ३० ॥ इन विकारोंसे संवृत और अनेक प्रकारसे निरुद्ध ध्रुव ऐश्वर्यको प्राप्त होकर ब्राह्मण सिद्ध होता है ॥ ३१ ॥ वह रसात्मक ऐश्वर्य जिह्वाग्रसे निकला हुआ सहस्रधारायुक्त हो मेघत्वको प्राप्त हुआ ॥ ३२ ॥ सब प्राणियोंके हेतुभूत प्राप्तयोग करके धातुओंके अर्थ योगसे सिद्ध ईश्वर अनेक प्रकारके रसोंको सृजता है ॥ ३३ ॥ तेजरूप

स्वभ्रे प्रपद्यमानश्च तोयेन परिषिच्यते ॥ शुक्लवर्णेन बहुना स्रोतसा मूर्ध्नि सर्वशः ॥२९॥ ऊर्ध्वं ज्योतिरवेक्षंश्च शुक्लैः पीतैश्च बाध्यते ॥ वारिपूर्णैः सुगम्भीरैर्विद्युद्भिरिव भासितैः ॥३०॥ एतैर्विकारैः संवृत्तैर्निरुद्धैश्चैव सर्वशः ॥ ध्रुवमैश्वर्यमासाद्य सिद्धो भवति ब्राह्मणः ॥३१॥ रसात्मकं तदैश्वर्यं जिह्वाग्रादभिनिःसृतम् ॥ सहस्रधारं विततं मेघत्वं समुपागतम् ॥ ३२ ॥ रसांश्च विविधान्योगान्त्संसिद्धः सृजते प्रभुः ॥ धात्वर्थं सर्वभूतानां योगप्राप्तेन हेतुना ॥ ३३ ॥ तेजसो रूपमैश्वर्यं विकारैः सह वर्द्धते ॥ आत्मनो विघ्नजननं स्वस्थो ब्राह्मणकारणे ॥३४॥ उग्ररूपैर्विरूपैश्च हन्यते दण्डपाणिभिः ॥ घोररूपैः सुगम्भीरैः पिङ्गाक्षैर्नरविग्रहैः ॥ ३५ ॥ नेत्रं समुद्धरन् भीमं जीह्वाग्रं चास्य विन्दति ॥ नदन्ति युगपन्नादं जृम्भमाणाः पुनः पुनः ॥ ३६ ॥ पुनरेव तदा भूत्वा बहुरूपास्तदाभवन् ॥ नृत्यमानाः प्रगायन्ति तर्पयन्तो विशेषतः ॥ ३७ ॥ स्त्रीभूताश्च ततः सर्वे युञ्जानाश्चावलम्बिरे ॥ कण्ठेषु बहुरूपत्वाद्विघ्नैश्चैव प्रलोभयन् ॥ ३८ ॥

ऐश्वर्य और आत्माके विघ्न करनेवाले विकारोंके सहित बढता है और कारणमें स्वस्वरूप है ॥ ३४ ॥ उग्ररूप विरूप दण्डधारी घोररूप अतिगंभीर पिंगल नेत्रोंवाले पुरुषोंसे ताडित हुआ ॥ ३५ ॥ भयानक नेत्रोंको निकालता हुआ जिह्वाग्रको छेदन करता है और वारंवार जंभाई लेता हुआ एक साथ शब्द करता है ॥ ३६ ॥ फिर अनेकरूप होता है तब अनेकरूपसे नाचते गाते विशेषकर तृप्त करते हैं ॥ ३७ ॥ और वे सब स्त्रीरूप हुए बहुत रूपोंसे विघ्नोंसे लोभ देनेवाले कंठमें लटकते हैं ॥ ३८ ॥

योगके प्रसादकी आकांक्षा ॥ ३९ ॥ और मधुर वचनोंसे डरे हुए पुरुषोंकी समान नहीं बोलते हैं और एककालमें सब अपना शिर चरणोंमें रखते हैं ॥ ३९ ॥ योगके प्रसादकी आकांक्षा
करनेवाले योगके भीतर बहुत प्रकारको कहनेवाले बहुत प्रकार नाचते हुए फिरते हैं ॥ ४० ॥ इन विकारोंसे सब प्रकारके निरुद्ध और आच्छादित
हुआ निश्चल ऐश्वर्यको प्राप्त हुआ ब्राह्मण सिद्ध होता है ॥ ४१ ॥ वहां वे जलकी बूंदें सूर्यकी किरणोंकी समान तेजरूप ऐश्वर्यको प्राप्त होती हैं॥४२॥
वही जल मेघरूप हो आकाशमें प्राप्त होकर लोकमें चन्द्रसूर्यकी गतिको प्राप्त हो जाता है ॥ ४३ ॥ जो चन्द्रसूर्यात्मक सघन ज्योति है यही वह ध्रुव

मधुरैरभिधानैश्च व्याहरन्ति न भीतवत् ॥ पतन्ति युगपत्सर्वे पादयोर्मूर्धभिर्युताः ॥ ३९ ॥ प्रसादं काङ्क्षमाणाश्च योगस्यान्तरविघ्नतः ॥
बहुप्रकारं कथयन्नृत्यन्ति च तरन्ति च ॥४०॥ एतैर्विकारैः संवृत्तैर्निरुद्धैश्चैव सर्वशः ॥ ध्रुवमैश्वर्यमासाद्य सिद्धो भवति ब्राह्मणः॥४१॥
तदर्चिष इवाग्नेया आदित्यस्येव रश्मयः ॥ तेजोरूपकमैश्वर्यं जनितास्तेजबिन्दवः ॥ ४२ ॥ ज्योतींषि चैव संवृता आकाशे
गुणसंवृताः ॥ चरन्ति लोके सततं सूर्याचन्द्रमसोर्गतिम् ॥ ४३ ॥ चन्द्रसूर्यात्मकं दिव्यं ज्योतिः सघनमुत्तमम् ॥ एतद्विभ्राजते
लोके कालचक्रं ध्रुवं वरम् ॥४४॥ अर्धमासाश्च मासाश्च ऋतुसंवत्सराण्यथ ॥ क्षणा लवा मुहूर्ताश्च कलाः काष्ठास्तथैव च ॥ ४५ ॥
अहोरात्रप्रमाणं च निमिषोन्मेषणं तथा ॥ ताराणां गतयश्चैव ग्रहाणां च विशेषतः ॥ ४६ ॥ अथ पार्थिवमैश्वर्यं विकारग्रहसंभवम् ॥
योगयुक्तास्त्वभिग्रस्ता यान्त्यन्ते ह्यचलासनात् ॥ ४७ ॥ अलोभाच्छिद्यते सद्यो वेपमानो नु कीर्त्यते ॥ सीदते वसुधामध्ये विद्यमानः
पुनः पुनः ॥ ४८ ॥

कालचक्र संसारमें प्रकाशित होता है ॥ ४४ ॥ आधे महीने, महीने, ऋतु, संवत्सर, क्षण, लव, मुहूर्त, कला, काष्ठा ॥ ४५ ॥ अहोरात्रका प्रमाण
निमेष, उन्मेष और विशेषकरके तारे और ग्रहोंकी गति ॥ ४६ ॥ विकारोंके ऐश्वर्यसे उत्पन्न हुआ कालचक्र है. पार्थिव ऐश्वर्यको अभिग्रस्त हुए योगी
अतुलरूप आसनसे गिराते हैं ॥ ४७ ॥ अलोभसे ऐश्वर्य छेदित करते हैं और विघ्नसेभी योगी कांपता है और पृथ्वीमें वारंवार भिद्यमान हुआ दुःखी

होता है ॥ ४८ ॥ भूतोंको अनेकरूप और अन्य लोकवासियोंके विषयोंसे शीघ्र युक्त होता है और संक्षेपसे रुक जाता है ॥ ४९ ॥ फिर सब प्रकारसे पार्थिव ऐश्वर्यको सेवन करता हुआ मूर्तिवाली धातुओंसे मारा जाता है ॥ ५० ॥ शक्ति तोमर निस्त्रिंश और अनेक प्रकारकी गदाओंसे तथा असि और अनेक प्रकारकी क्षुरधाराओंसे पातित किया जाता है ॥ ५१ ॥ और सुतीक्ष्ण मर्मभेदी बाणाग्रसे भेदन किया जाता है, इस प्रकारके विकारोंसे निवृत्त और सब प्रकारसे निरुद्ध हुआ ॥ ५२ ॥ ऐश्वर्यको प्राप्त हुआ ब्राह्मण सिद्ध होता है तब फिर विकारसे पार्थिव ऐश्वर्यसे रहित है ॥ ५३ ॥ योगी समा-

भूतानां बहुरूपैश्च अन्यैश्च तलवासिभिः॥ विषयैर्युज्यते क्षिप्रं संक्षेपात्समवरुद्धचते ॥ ४९ ॥ ततः पार्थिवमैश्वर्यं सेवमानश्च सर्वतः ॥ मूर्तिमाद्भिश्च बहुधा धातुभिः स च हन्यते ॥ ५० ॥ शक्तितोमरनिस्त्रिंशैर्गदाभिश्चाप्यनेकधा ॥ असिभिः पात्यते चैव क्षुरधारैः सहस्रशः ॥ ५१ ॥ भिद्यते चैव बाणाग्रैः सुतीक्ष्णैर्मर्मभेदिभिः ॥ एभिर्विकारैर्निर्वृत्तैर्निरुद्धैश्चैव सर्वशः ॥ ५२ ॥ ध्रुवमैश्वर्यमापन्नः सिद्धो भवति ब्राह्मणः ॥ ततः पार्थिवमैश्वर्यं निर्मुक्तस्य विकारतः ॥ ५३ ॥ प्रादुर्भवति संजाते समाधौ प्रलयं गते ॥ दिव्यं गन्ध समाघ्राय दिव्यार्थांस्ताञ्छृणोति च ॥ ५४ ॥ दिव्यरूपैश्च पुरुषैश्छिद्यते नच भिद्यते ॥ गच्छन्त्सुकृतिनां चान्तः प्रधानात्मा क्षरन्निव ॥ ५५ ॥ इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे भविष्यपर्वणि एकोनविंशोऽध्यायः ॥ १९ ॥ वैशम्पायन उवाच ॥ ततोऽन्यां धारणां गत्वा मनसा स पितामहः ॥ ब्रह्मकर्मसमारम्भं निर्मुक्तेनान्तरात्मना ॥ १ ॥ सर्वाङ्गधारणां कृत्वा मनसा प्रहसन्निव ॥ ब्रह्मयोगेन च ब्रह्मा सृजते मनसा प्रजाः ॥ २ ॥

धिके नाशमें प्रगट होकर दिव्यगंधको सूंघता हुआ दिव्य पदार्थोंका श्रवण करता है ॥ ५४ ॥ दिव्य पुरुषोंसे छेदित होकरभी भेदको प्राप्त नहीं होता है और सुकृतियोंके अन्तःकरणमें प्रविष्ट होता अर्थात् सबके अन्तःकरणमें प्रविष्ट हो जाता है ॥ ५५ ॥ इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे भविष्यपर्वणि भाषायाम् एकोनविंशोऽध्यायः ॥ १९ ॥ वैशंपायन बोले; फिर मनसे ब्रह्माजी दूसरी धारणाको प्राप्त हुए (अर्थात् योगी निर्मुक्त अन्तरात्मासे ब्रह्मकर्म समारंभको प्राप्त हो सर्वज्ञ हो जाता है) ॥ १ ॥ सर्वांगकी धारणा करते हुए ब्रह्मयोगसे ब्रह्मा मानसी प्रजा उत्पन्न करते हैं ॥ २ ॥

चक्षुसे वह रूपसंपन्न प्रभु प्रजा रचते हैं. नासिकाके अग्रभागसे गन्धर्व चित्र विचित्र वस्त्रवालोंको रचते हैं ॥ ३ ॥ और तुम्बरु आदि सैकडों गन्धर्व नाचने बजानेमें कुशल सामगानमें चतुरोंको रचते हैं ॥ ४ ॥ उन योगके जाननेवाले स्वयंभू भगवान् प्रभुने सुन्दर नेत्र और सुन्दर केशोंवाली सुन्दर मुखवाली ॥ ५ ॥ शतपत्रके कमलसे विराजमान सुन्दर सुन्दर वाणीसे सेवनीय ब्राह्मीमूर्तिके आश्रय लक्ष्मीको ॥ ६ ॥ सब प्रकारसे समाधान चित्तसे निर्माण किया. इस प्रकार सब प्राणियोंके धारण करनेवाले भूतात्माने भावयोगसे रचना करके ॥ ७ ॥ नेत्रोंसे रूपसम्पन्न अप्सराओंको बनाया और नासिकाके

चक्षुषा रूपसंपन्ना ह्यप्सराः सृजते प्रभुः ॥ नासिकाग्राच्च गन्धर्वान्सुचित्राम्बरवाससः ॥ ३ ॥ तुम्बरुप्रमुखान्सर्वाञ्छतशोऽथ सहस्रशः ॥ नृत्यवादित्रकुशलान्कुशलान्सामगीतिषु ॥ ४ ॥ ब्रह्मयोगेन योगज्ञः स्वयंभूर्भगवान्प्रभुः ॥ चारुनेत्रां सुकेशान्तां सुभ्रूं चारुनिभाननाम् ॥ ५ ॥ पद्मेन शतपत्रेण चारुणा सुविराजिताम् ॥ स्वक्षां शुचिगिरं सेव्यां ब्राह्मीं मूर्तिमतीं श्रियम् ॥ ६ ॥ ससृजे मनसा ब्रह्मा सम्यक् प्रोक्तेन चेतसा ॥ भावयोगेन भूतात्मा सर्वप्राणभृतां नृप ॥ ७ ॥ चक्षुषो रूपसंपन्नाः सृजत्सोऽप्सरसः प्रभुः ॥ नासिकाग्राच्च गन्धर्वान्सुवासः सुप्रवादितान् ॥ ८ ॥ गानप्रभावं संचक्रे गन्धर्वाणामशेषतः ॥ अन्येषां चैव विप्राणां गानं ब्रह्म प्रभावितम् ॥ ९ ॥ पद्भ्यां सृजति भूतानि गतिमन्ति ध्रुवाणि च ॥ नरकिन्नरयक्षांश्च पिशाचोरगराक्षसान् ॥ १० ॥ गजान्सिंहांश्च व्याघ्रांश्च मृगांश्चैव सहस्रशः ॥ तृणजातीश्च बहुधा भावहेतोश्चतुष्पदान् ॥ ११ ॥ ये तु हस्तान्निखादन्ति कर्मप्रातेन हेतुना ॥ हस्तेभ्यः कर्म ससृजे मन्तव्यं मनसा तथा ॥ १२ ॥

अग्रभागसे सुवास श्रेष्ठ बजानेवाले गन्धर्वोंको निर्मित किया ॥ ८ ॥ सम्पूर्ण गन्धर्वोंके निमित्त गानविद्याका अधिकार दिया और ब्राह्मणोंके निमित्त सामवेदका गान विधान किया ॥ ९ ॥ चरणोंसे गतिवाले जीव उत्पन्न किये. नर किन्नर यक्ष पिशाच उरग राक्षस ॥ १० ॥ गज सिंह व्याघ्र सहस्रों मृग बहुतसी तृणजाति चौपाये तिनकोंसे जीनेवाले रचे ॥ ११ ॥ जो प्राणी हाथमें लेकर भोजन करते हैं तिनको कर्महेतुसे ब्रह्माने अपने हाथोंसे रचा है और मनसे उनकी रचना की है ॥ १२ ॥

और प्राणियोंके सुखकी इच्छासे प्राणादि अनेक प्रकारके पवन कार्योंकी सृष्टि हुई ॥ १३ ॥ हृदयसे गौ और बाहोंसे पक्षियोंको निर्माण किया औरभी विशेष जीव उन उन विशेष नटवत् वेषोंद्वारा उत्पन्न किये हैं ॥ १४ ॥ और ज्वलित तेजस्वी अंगिरा ऋषि ब्रह्मवंश करनेवाले दिव्य छः इन्द्रियोंसे युक्तको शरीरसे उत्पन्न किया ॥ १५ ॥ और योगेश्वर प्रभुने योगद्वारा भौंके अन्तरसे ब्रह्मवंशके करनेवाले परम धर्मात्मा भृगुको उत्पन्न किया ॥ १६ ॥ ललाटके मध्यसे प्रिय शरीर नारदजीको उत्पन्न किया. महायोगी पितामहने शिरसे सनत्कुमारको उत्पन्न किया ॥ १७ ॥ जो कि

वायुना स विसर्गं च भूतानां सुखमिच्छता ॥ उपतस्थे तदानंदं पञ्चेन्द्रियसमाधिना॥१३॥हृदयादसृजद्गावो बाहुभ्यां पक्षिणस्तथा ॥ अन्यानि चैव सत्त्वानि तैस्तैर्वेषैः पृथग्विधैः ॥ १४ ॥ ऋषिं त्वङ्गिरसं चैव मुनिं ज्वलिततेजसम् ॥ ब्रह्मवंशकरं दिव्यं व्यतिषिक्तषडिन्द्रियम् ॥१५॥ भ्रुवोन्तरादजनयद्योगाद्योगेश्वरः प्रभुः ॥ ब्रह्मवंशकरं दिव्यं भृगुं परमधार्मिकम् ॥ १६ ॥ ललाटमध्यादसृजन्नारदं प्रियविग्रहम् ॥ सनत्कुमारं मूर्ध्नश्च महायोगी पितामहः ॥ १७ ॥ अभिषिक्तं तु सोमं च यौवराज्ये पितामहः ॥ ब्राह्मणानां च राजानं शाश्वतं रजनीश्वरम् ॥ १८ ॥ तपसा महता युक्तो ग्रहैः सह निशाकरः ॥ चचार नभसो मध्ये प्रभाभिर्भासयन् जगत् ॥ १९ ॥ स गात्रैर्भगवान्योगान्मनसा सिद्धिमागतः ॥ ससृजे सर्वभूतानि स्थावराणि चराणि च ॥ २० ॥ तत्र स्थानानि भूतानां योगांश्चैव पृथग्विधान् ॥ निधत्ते शतशो ब्रह्मा सर्वभूतपितामहः ॥ २१ ॥ एष ब्रह्ममयो यज्ञो योगः सांख्यश्च तत्त्वतः ॥ विज्ञानं च स्वभावं च क्षेत्रं क्षेत्रज्ञमेव च ॥ २२ ॥

पितामहने सोमको यौवराज्यमें अभिषिक्त किया यह रजनीचर ब्राह्मणोंके राज्यमें अभिषिक्त हुए हैं ॥ १८ ॥ चन्द्रमा ग्रहोंके साथ बडे तपसे युक्त हो प्रभासे जगत्को प्रकाशित करता हुआ आकाशमें विचरने लगा ॥ १९ ॥ तब अपने शरीरसे भगवान् योगसे सिद्धिको प्राप्त हो स्थावर जंगम सब प्राणियोंको निर्मित करने लगे ॥ २० ॥ वहांके स्थान और प्राणी और अनेक प्रकारके योग सब भूतोंके पितामहने निर्मित किये ॥ २१ ॥ यही ब्रह्ममय

यज्ञ योग सांख्य है विज्ञान स्वभाव क्षेत्र और क्षेत्रज्ञ है ॥ २२ ॥ एकपन पृथक्पन उत्पत्ति और निधनकाल कालक्षय आत्मानुभवविज्ञान जानना चाहिये ॥ २३ ॥ इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे भविष्यपर्वणि भाषायां विंशोऽध्यायः ॥ २० ॥ जन्मेजय बोले; हे भगवन् ! ब्रह्मप्राप्तिका कारण प्रथम सतयुग जिसमें सब धर्मका अन्तर्भाव है सुना. हे ब्रह्मन् ! अब क्षत्रियोंका योगधर्म सुननेकी इच्छा करता हूं ॥ १ ॥ संक्षेप विस्तारके सहित बहुत नियमोंसे युक्त उपाय जाननेवालोंसे कथित और यज्ञोंसे शोभित कहो ॥ २ ॥ वैशंपायन बोले; यह वार्ता यज्ञकर्मोंसे अर्चित मैं

एकत्वं च पृथक्त्वं च संभवो निधनं तथा ॥ कालः कालक्षयश्चैव ज्ञेयो विज्ञानमेव च ॥ २३ ॥ इति श्रीमन्महाभारते खिलेषु
हरिवंशे भविष्यपर्वणि विंशोऽध्यायः ॥ २० ॥ जनमेजय उवाच ॥ श्रुतं ब्रह्मयुगं ब्रह्मन्युगानां प्रथमं युगम् ॥ क्षत्रस्यापि युगं
ब्रह्मञ्छ्रोतुमिच्छाम्यहं प्रभो ॥ १ ॥ ससंक्षेपं सविस्तारं नियमैर्बहुभिश्चितम् ॥ उपायज्ञैश्च कथितं क्रतुभिश्चैव शोभितम् ॥ २ ॥
वैशम्पायन उवाच ॥ एतत्ते कथयिष्यामि यज्ञकर्मभिरर्चितम् ॥ दानधर्मैश्च विविधैः प्रजाभिरुपशोभितम् ॥ ३ ॥ तेऽङ्गुष्ठमात्रा
मुनय आर्दिताः सूर्यरश्मिभिः ॥ मोक्षप्राप्तेन विधिना निराबाधेन कर्मणा ॥ ४ ॥ प्रवृत्ते चाप्रवृत्ते च नित्यं ब्रह्मपरायणाः ॥
परायणस्य संगम्य ब्रह्मणस्तु महीपते ॥ ५ ॥ श्रीवृताः पावनाश्चैव ब्राह्मणाश्च महीपते ॥ चरितं ब्रह्मचर्याश्च ब्रह्मज्ञानावबोधिताः ॥ ६ ॥
पूर्णे युगसहस्रान्ते प्रभावे प्रलयं गताः ॥ ब्राह्मणा वित्तसंपन्ना ज्ञानसिद्धाः समाहिताः ॥ ७ ॥

तुमसे कहूंगा जो अनेक प्रकारके दान धर्म और प्रजाओंसे शोभित है ॥ ३ ॥ वे ब्रह्मवृत्तियोंसे सम्पन्न ज्ञानसिद्ध सावधान चित्त होते हैं और सूर्यकी किरणोंसे अर्दित हुए अंगुष्ठमात्र मुनि मोक्षप्राप्तिके विधानसे प्रलयको प्राप्त होकर ॥ ४ ॥ यज्ञादि और शमादिमें प्रवृत्त ब्रह्मपरायण एकवेदमें परायण वेदोक्त कर्ममें तत्पर ॥ ५ ॥ वित्तसे सम्पन्न श्रीसंज्ञक साम और यजुर्वेदोंकी ऋचाओंसे सम्पन्न ब्रह्मचर्य और ब्रह्मज्ञानमें बोधित ॥ ६ ॥ पूर्ण सहस्रयुगके अन्तमें वित्तसे सम्पन्न और ज्ञानसिद्ध सावधान ब्राह्मण पूर्वकल्पमें लयको प्राप्त हुएही आगेके कल्पमें ब्राह्मण होते हैं ॥ ७ ॥

तिनमेंसे व्यतिरिक्त इन्द्रियवाले योगात्मा विष्णु ब्रह्मासे उत्पन्न हो दक्षप्रजापतिके रूपसे अनेक प्रजाकी सृष्टि करते हैं ॥ ८ ॥ अक्षरसे सौम्य ब्राह्मण और सत्त्वरजोगुण ब्रह्मसे क्षत्रिय रजोगुणके विकारसे वैश्य और तमसे शूद्र हुए हैं ॥ ९ ॥ और सत रज तम इन तीनों गुणोंसे विष्णुने ब्राह्मण क्षत्रियादि वर्णोंको उत्पन्न किया ॥ १० ॥ वर्णत्वको प्राप्त हो प्रजा लोकमें चार प्रकारसे विभक्त हुई. ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्य और शूद्र ॥ ११ ॥ एकलिंगवाले पृथक् धर्मवाले दो चरणवाले परम अद्भुत कर्मफलके भोगनेको सम्पन्न और सब कर्मोंकी गति जाननेवाले हैं ॥ १२ ॥ इनमें तीन वर्णोंकी

व्यतिरिक्तेन्द्रियो विष्णुर्योगात्मा ब्रह्मसंभवः ॥ दक्षः प्रजापतिर्भूत्वा सृजते विपुलाः प्रजाः ॥ ८ ॥ अक्षराद्ब्राह्मणाः सौम्याः क्षरात्क्षत्रियबान्धवाः ॥ वैश्या विकारतश्चैव शूद्रा धूमविकारतः ॥ ९ ॥ श्वेतलोहितकैर्वर्णैः पीतैर्नीलैश्च ब्राह्मणाः ॥ अभिनिर्वर्तिता वर्णाश्चिन्तयानेन विष्णुना ॥ १० ॥ ततो वर्णत्वमापन्नाः प्रजा लोके चतुर्विधाः ॥ ब्राह्मणाः क्षत्रिया वैश्याः शूद्राश्चैव महीपते ॥ ११ ॥ एकलिङ्गाः पृथग्धर्मा द्विपदाः परमाद्भुताः ॥ यातनायाभिसंपन्ना गतिज्ञाः सर्वकर्मसु ॥ १२ ॥ त्रयाणां वर्णजातानां वेदप्रोक्ताः क्रियाः स्मृताः ॥ तेन ब्राह्मणयोगेन वैष्णवेन महीपते ॥ १३ ॥ प्रज्ञया तेजसा योगात्तस्मात्प्राचेतसः प्रभुः ॥ विष्णुरेव महायोगी कर्मणामन्तरं गतः ॥ १४ ॥ ततो निर्माणसंभूताः शूद्राः कर्मविवर्जिताः ॥ तस्मान्नार्हन्ति संस्कारं नह्यत्र ब्रह्म विद्यते ॥ १५ ॥ यथाग्नौ धूमसंघातो ह्यरण्या मथ्यमानया ॥ प्रादुर्भूतो विसर्पन्वै नोपयुञ्जति कर्मणि ॥ १६ ॥ एवं शूद्रा विसर्पन्तो भुवि कार्त्स्न्येन जन्मना ॥ नासंस्कृतेन धर्मेण वेदप्रोक्तेन कर्मणा ॥ १७ ॥

क्रिया वेदके अधीन है. हे राजन् ! उस वैष्णव ब्राह्मण योगसे ॥ १३ ॥ तेज और ऐश्वर्यसे युक्त तथा योगसे युक्त दक्षजी विष्णुरूप महायोगी कर्मके अधिकारमें युक्त होकर सृष्टि करते हैं ॥१४॥ निर्माणसे अर्थात् शिल्प और त्रिवर्णकी सेवासे सम्पन्न कर्मवर्जित शूद्र हुए हैं इस कारण शूद्र संस्कारके योग्य नहीं है कारण कि उसमें वेदकी प्रतिष्ठा नहीं है ॥१५॥ जैसे अरणीके मथनेसे धूमका संघात अग्निमें होता है. वह फैलता हुआ किसी कर्ममें नहीं प्राप्त होता है ॥ १६ ॥ इसी प्रकार शूद्र जन्मसे पृथ्वीमें विचरते हुए वेदोक्त संस्कारके योग्य नहीं है ॥ १७ ॥

तब फिर ब्रह्मयोनिवाले दूसरे पक्षके पुत्र हुए, वे बडे बली महाउत्साही महाबली महापराक्रमी हुए ॥ १८ ॥ तब यज्ञकर्मा महात्मा दक्षजीने उनसे कहा; हे पुत्रो ! मैं पृथ्वीका अन्त जाननेकी इच्छा करता हूं अथवा मैं तुम्हारे शरीरकी उत्पन्न करनेवाली धात्री (जननी) के सिद्धान्त सुननेकी इच्छा करता हूं. जैसा मैं बली हूं इस प्रकारकाही तुमको होना चाहिये ॥ १९ ॥ तुम्हारी धात्रीके सिद्धान्तको सुन तुम्हारे बलाबलको जानकर प्रजाको विपुल बल प्रदान करूंगा और विपुल मायाके सारको जाननेवाले उन दक्षके पुत्रोंको ॥ २० ॥ उस देवीने नेत्रोंसे अपना रूप न दिखाया यद्यपि उन्होंने सार जाननेकी बडी

ततोऽन्ये दक्षपुत्राश्च संभूता ब्रह्मयोनयः ॥ बलवन्तो महोत्साहा महावीर्या महौजसः ॥ १८ ॥ पित्रा प्रोक्ता महात्मानो दक्षिणा यज्ञकर्मणा ॥ अन्तमिच्छाम्यहं श्रोतुं धात्र्याः पुत्रा बलो ह्यहम् ॥ १९ ॥ ततो विधास्ये तत्त्वज्ञः प्रजानां विपुलं बलम् ॥ विपुलत्वाद्धि क्षेत्राणां ममापि विपुलाः प्रजाः ॥ २० ॥ न तेषां दर्शयद्देवी चक्षुषा रूपमात्मनः ॥ प्रजापतिसुतानां वै विपुलासारमिच्छताम् ॥ २१ ॥ आत्मनो भावनिर्वृत्ते भावे कृतयुगे तदा ॥ जनित्री सर्वभूतानामण्डजानुद्भिजांस्तथा ॥ २२ ॥ संवेद जननी धात्री चेति मात्रा प्रचोदिता ॥ अणुतां तनुतां चैव जन्तूनां कर्मभोगिनाम् ॥ २३ ॥ इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे भविष्यपर्वणि एकविंशोऽध्यायः ॥ २१ ॥ जनमेजय उवाच ॥ साध्वहं श्रोतुमिच्छामि त्रेतायां ब्राह्मणोत्तम ॥ यज्ज्ञात्वा सर्वविद्यानां परं पश्येयमव्ययम् ॥ १ ॥ वैशम्पायन उवाच ॥ दक्षस्तु पुनरालम्ब्य स्त्रीभावं पुरुषोत्तमः ॥ योगाद्योगेश्वरात्मानं विषण्णो गिरिमूर्द्धनि ॥ २ ॥

इच्छा की थी ॥ २१ ॥ तब तिन दक्षप्रजापतिके पुत्रोंको शुद्धसत्त्वमय भावसे चेतन द्वारा प्रेरित हुई माया अंडज और उद्भिज्जोंको उत्पन्न करनेवाली ॥ २२ ॥ कर्मके भोगनेवाले प्राणियोंको सूक्ष्म विस्तृतभावसे चेतनकी प्रेरित हुई माया प्राप्त करती हुई ॥ २३ ॥ इति श्रीम० खिलेषु हरिवंशे भविष्यपर्वणि भाषायाम् एकविंशोऽध्यायः ॥ २१ ॥ जन्मेजय बोले; इस समय त्रेतामें होनेवाले केवल प्रवृत्त्यात्मक यज्ञादिरूप धर्मके सुननेकी इच्छा करता हूं जिसके जाननेसे सब विद्याओंका प्रतिपाद्य अविनाशी जाना जाता है ॥ १ ॥ वैशंपायन बोले; पुरुषोत्तम योगी दक्ष अपने आत्मासे फिर स्त्रीको प्राप्त करके पर्वतशिख-

रमें दुःखी हुए ॥ २ ॥ सुन्दर जानु पीन जंघा सुन्दर भौं कमलकी समान मुखवाली रक्तान्तनेत्र सब प्राणियोंको मनोहर उत्पन्न किया ॥ ३ ॥ उसमें दक्ष प्रजापतिने कन्याओंको उत्पन्न किया, वे कमलकी समान मुखवाली कन्या आधे देहके योगसे उत्पन्न कीं ॥ ४ ॥ फिर दक्ष स्त्रीभावको त्याग पुरुषरूपसे सब भूतोंको दर्शनीय होता हुआ ॥ ५ ॥ हे राजन् ! दक्षजीने उन कन्याओंको ब्रह्मविवाहसे वेदविधिसे प्रदान किया ॥ ६ ॥ दश धर्मको तेरह कश्यपको और सताईस चन्द्रमाको प्रदान कीं ॥ ७ ॥ इस प्रकार दक्षजी उन कन्याओंको प्रदान कर ब्रह्मक्षेत्र (प्रयाग) को प्राप्त हो ब्रह्मासे

सुजानुः पीनजघना सुभ्रूः पद्मनिभानना ॥ रक्तान्तनयना कान्ता सर्वभूतमनोरमा ॥३॥ दक्षः प्राचेतसस्तस्यां कन्यायां जनयत्प्रभुः॥ देहार्धयोगविधिना कन्याः पद्मनिभाननाः ॥ ४ ॥ दक्षः पुरुषरूपेण स्त्रीरूपमपहाय वै ॥ दर्शने सर्वभूतानां कान्तः कान्ततरोऽभवत् ॥ ५ ॥ ताः कन्या प्रददौ दक्षः स्वयं प्राचेतसः प्रभुः ॥ ब्रह्मदेयेन विधिना ब्रह्मप्रातेन भारत ॥ ६ ॥ प्रददौ दश धर्माय कश्यपाय त्रयोदश ॥ सप्तविंशति सोमाय पत्नीहेतोः समाहितः ॥ ७ ॥ दक्षो दत्त्वाथ ताः कन्या ब्रह्मक्षेत्रं प्रपद्य च ॥ ब्रह्मणाध्युषितं पुण्यं समाहितमना मुनिः ॥ ८ ॥ तप्यमानो मृगैः सार्द्धं चचार वसुधां नृप ॥ तृणमूलफलैर्वृद्धो वृद्धश्च तपसासकृत् ॥ ९ ॥ मृगास्तु तस्य मोदन्ति फलं मोदन्ति ब्राह्मणाः ॥ दीक्षिताः पुण्यकर्माणस्तपसा दग्धकिल्बिषाः ॥ १० ॥ संग्रामकाले कालज्ञः शरीरादिपतिर्मुनिः ॥ कर्मयज्ञकृतां तत्र सिद्धिं पश्यति लक्षणम् ॥ ११ ॥

सेवित पवित्रदेशमें सावधान मनसे ॥ ८ ॥ मुनिरूपसे मृगोंके साथ तप करते पृथ्वीमें विचरने लगे, तृणमूलफलोंसे वृद्ध हुए तपसे बढने लगे, यह त्रेताका स्त्रीसंग्रहरूप धर्म है ॥ ९ ॥ उनके तपसे मृग प्रसन्न होते हैं और अहिंसाद्वारा तपके फलको प्राप्त हो ब्राह्मण प्रसन्न होते हैं, वे पुण्यात्मा दीक्षित पवित्रकर्मा तपसे पाप दूर करनेवाले ॥ १० ॥ संग्रामकालमें कालके जाननेवाले योगसे चित्तके जीतनेवाले शरीरादिके पति मुनि कर्मयज्ञकी प्राप्त हुई सिद्धिको देखने लगे ॥ ११ ॥

दानमानमें प्रवीण उद्योगरहित आमिषभक्षणसे पृथक् स्त्रीसहित पुत्रवाले मृगोंके साथ, जराको प्राप्त होते हैं अर्थात् इस देहको ब्रह्मक्षेत्र संज्ञक करते
हैं ॥ १२ ॥ और वेदमंत्रोंसे सिद्ध ब्राह्मण प्रथम पद ओंकारमें स्थित ब्रह्मासे युक्त होनेसे वे ब्रह्मक्षेत्र कहाये जाते हैं ॥ १३ ॥ कर्मोंसे मुक्त क्रोधर-
हित जितेन्द्रिय यतियोंके साथ पृथ्वीमें विचरते हुए. अकिंचन मार्गकी इच्छा करनेवाले ब्राह्मणोंने शरीरमें अध्यात्म प्रयागवर्णन किया है ॥ १४ ॥ और
जो मानसी ब्रह्मचारिणी प्रजा पहले ईश्वरमें लय हुई थी वही यह स्वभावसे दुरतिक्रम प्रगटताको प्राप्त हुई ॥ १५ ॥ अर्थात् स्वभावसे अतिक्रमण न

दानमानप्रवीराश्च निरुद्वेगा निरामिषाः ॥ मृगैः सह जरां यान्ति सपत्नीकाः सुपुत्रिणः ॥ १२ ॥ ब्राह्मणाः स्तोत्रसंसिद्धा जनित्रे
प्रथमे पदे ॥ ब्रह्मणाध्युषितत्वाच्च ब्रह्मक्षेत्रमिहोच्यते ॥ १३ ॥ यतिभिः कर्मभिर्मुक्तैर्जितक्रोधैर्जितेन्द्रियैः ॥ चरद्भिर्वसुधां विप्रैरकिं-
चनपथैषिभिः ॥ १४ ॥ या प्रजा पूर्वमारूढा मानसी ब्रह्मचारिणी ॥ सेवैषा व्यक्तिमापन्ना स्वभावदुरतिक्रमा ॥ १५ ॥ अव्यक्ता
व्यक्तमापन्ना स्वभावाद्दुरतिक्रमा ॥ व्यक्ताव्यक्तगतिश्चैषा कालधर्मान्महीपते ॥ १६ ॥ स्थावरा जङ्गमाश्चैव स्थूलसूक्ष्माश्च भारत ॥
कालयोगेन कालज्ञा भवन्ति न भवन्ति च ॥ १७ ॥ एताश्चैताः प्रजाः सर्वा दक्षकन्यासु जज्ञिरे ॥ कश्यपेनाव्ययेनेह संयुक्ताः
कालधर्मणा ॥ १८ ॥ आदित्या वसवो रुद्रा विश्वेदेवा मरुद्गणाः ॥ नागाश्चानेकशिरसः साध्या वै पन्नगास्तथा ॥ १९ ॥ गन्धर्वाः
किन्नरा यक्षा सुपर्णाश्च तथाऽपरे ॥ गरुत्मान्त्सह यक्षैश्च किन्नराश्च सुवाससः ॥ २० ॥ गावः पशुगणैः सार्द्धं नराश्च वसुधाधिप ॥
चराचराश्च वसुधा धर्त्तारश्च धराधराः ॥ २१ ॥

होकरभी व्यक्त अव्यक्त भावको प्राप्त हो कालधर्म (समाधि काल भेद लक्षणवाले) से व्यक्त अव्यक्तरूपवाली होती है ॥ १६ ॥ हे भारत ! स्थावर
जंगम स्थल सूक्ष्म यह सब काल योगसे होते और नहीं होते हैं ॥ १७ ॥ यह सब प्रजा दक्षकन्यामें उत्पन्न हुई है. अविनाशी कश्यपने इसको काल
धर्मसे संयुक्त किया है ॥ १८ ॥ आदित्य वसु रुद्र विश्वेदेवा मरुद्गण अनेक शिरके नाग और साध्य पन्नग ॥ १९ ॥ गन्धर्व यक्ष किन्नर सुपर्ण गरुड
और यक्षोंके सुन्दर वस्त्रवाले किन्नर ॥ २० ॥ हे राजन् ! गौ पशुगण मनुष्य चराचरके सहित पृथ्वीको धारण करनेवाले पर्वत आदि ॥ २१ ॥

गज सिंह व्याघ्र घोडे पक्षी गेंडे सींगोंवाले वृष मृग ॥ २२॥ चार दांतके हाथी कमलकी समान कांतिवाले वर्णसे श्रेष्ठ सब लक्षणसे सम्पन्न कामरूपी प्राणी हुए ॥ २३ ॥ उनके रूप शील पराक्रम शरीरसे सनातन धर्म क्षेत्र (भारतवर्ष) में फिर मुनि उत्पन्न हुए ॥ २४ ॥ आत्मामें निष्ठावाले मनमें कल्पित लोकके ज्ञाता धर्मात्मा वेदगोचर ऋषि होते हैं जिनमें उत्पन्न हुए सब देवता स्वर्गलोकमें स्थित हैं ॥ २५ ॥ और जो दूसरे तपसे सिद्ध गृहस्थ हैं वे ब्रह्मचर्यको प्राप्त हो गुरुकी परिचर्या करते हैं ॥ २६ ॥ हे राजन् ! जो सिद्धिके निमित्त योगकी गतिको प्राप्त हुए हैं वे अधिक क्लेशसे प्राप्त हुई कर्मजन्य

गजाः सिंहाश्च व्याघ्राश्च हयाः पक्षधरास्तथा ॥ खड्गा विषाणिनश्चैव वृषभाश्च मृगास्तथा ॥ २२ ॥ चतुर्विषाणा नागेन्द्रा पद्माभा वर्णतः शुभाः॥ सर्वलक्षणसंपन्नाः प्राणिनः कामरूपिणः ॥ २३ ॥ तेषां रूपैस्तथा गात्रैस्तैः शीलैस्तैः पराक्रमैः ॥ मुनयः पुनरुद्भूता धर्मक्षेत्रे सनातने ॥२४॥ क्षेत्रज्ञा मानसे लोके धर्मिणो वेदगोचराः॥ यत्रोद्भूताः सुराः सर्वे दिवि लोके प्रतिष्ठिताः ॥२५॥ ये चान्ये तपसा सिद्धा गृहस्था मनुजाधिप ॥ ब्रह्मचर्येण संसिद्धाः परिचर्यां गता गुरोः ॥ २६ ॥ ये च योगगतिं प्राप्ताः सिद्धिहेतोर्महीपते ॥ क्लेशाधिकैः कर्मजन्यैर्वृत्तिं लप्स्यान्ति वै द्विजाः ॥ २७ ॥ शिलोञ्छवृत्तयः ख्याताः सपत्नीका दृढव्रताः ॥ सर्वे त्वेते दिविचरा भवन्ति चरितव्रताः ॥ २८ ॥ इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे भविष्यपर्वणि द्वाविंशतितमोऽध्यायः ॥ २२ ॥ वैशम्पायन उवाच ॥ पितामहं पुरस्कृत्य मेरुपृष्ठे समाहिताः ॥ जटाजिनधरा विप्रास्त्यक्तक्रोधा जितेन्द्रियाः ॥ १ ॥ पर्वतान्तरसंसिद्धे बहुपादपसंवृते ॥ धातुसंराजितशिले समे निस्तृणकण्टके ॥ २ ॥

गतिको प्राप्त होते हैं ॥ २७ ॥ जो सपत्नीक दृढव्रत होकर शिलोञ्छवृत्ति करते हैं वे व्रतधारी सब स्वर्गमें गमन करते हैं ॥ २८ ॥ इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे भविष्यपर्वणि भाषायां द्वाविंशतितमोऽध्यायः ॥ २२ ॥ वैशंपायन बोले; जटा और अजिन वस्त्रके धारण करनेवाले क्रोधवर्जित जितेन्द्रिय ब्राह्मण ब्रह्माजीको आगे कर मेरुपृष्ठपर सावधान अर्थात् भ्रूघ्राणके मध्यमें समाधिको प्राप्त हुए कार्यके पिता कारणको आगे करके ॥ १ ॥ पर्वतान्तर (वंश कपाल अस्थि) से सिद्ध बहुत वृक्षों (योगसाधनके धर्म) से संयुक्त धातुओंसे रंजित शिलासमान कांटे और तृणोंसे रहित अर्थात् वातपित्तादि

धातु और मनशिलादिरूप नाडियोंसे युक्त अस्थिवाले जरारोगादि कंटकरहित ॥ २ ॥ तीन वेदोंके पंचस्वरसे विराजित अर्थात् इडा पिंगला सुषुम्नारूप जीवोपाधिभूत प्राणमार्गके सम्बन्धी पांच प्राणोंकी वृत्तिभेदसे युक्त स्थानमें नित्य मंत्रयज्ञमें परायण (ओंकार जपनिरत) नित्यव्रत (वायुजप) हित (आनंदरूप आत्मामें निरत) ॥ ३ ॥ वे सब ब्राह्मणश्रेष्ठ एकही अग्निको आधान कर सावधान चित्तसे मंत्रद्वारा तीन प्रकारसे भेदित करते हुए ॥ ४ ॥ तीन प्रकार ज्वलित होती हुई प्राणाग्निको रेचक पूरक कुंभक रूप नाडीमार्गोंसे विशेष करते हुए अर्थात् पूरकादि अभ्याससे आत्मतत्त्वको प्राप्त हुए. वेदपारगामी मुनियोंसे तत्त्वको प्राप्त हुए तत्त्व जानते हैं ॥ ५ ॥ एकही वह प्राणाग्नि प्राणायाम अभ्यासवालेको हविद्वारा वृद्धिको प्राप्त करती है, अर्थात् योगयुक्त आहारसे प्राण बलिष्ठ होता है और कार्यसिद्धिके निमित्त होममंत्रके जाननेवाले नृप स्वधाकारसे मंत्रको करता हुआ जरारोगरहित होता है

त्रयाणां ब्रह्मवेदानां पञ्चस्वरविराजिते ॥ मन्त्रयज्ञपरा नित्यं नित्यं व्रतहिते रताः ॥ ३ ॥ एक एवाग्निमाधाय सर्वे ब्राह्मणपुङ्गवाः ॥ बिभिदुर्मन्त्रविषयैः सुसमाहितमानसाः ॥ ४ ॥ त्रिधा प्रणीतो ज्वलनो मुनिभिर्वेदपारगैः ॥ अतस्ते तत्त्वमापन्ना यदेकस्त्रिविधः कृतः ॥ ५ ॥ एक एव महानग्निर्हविषा संप्रवर्तते ॥ स्वधाकारेण मन्त्रज्ञ मन्त्राणां कार्यसिद्धये ॥ ६ ॥ स्वयं च दक्षसंप्राप्तो भगवान् भूतसत्कृतः ॥ ब्रह्मा ब्राह्मणनिर्माता सर्वभूतपितामहः ॥ ७ ॥ दण्डी चर्मी शरी खड्गी शिखी पद्मनिभाननः ॥ अभवन्नयस्तसंतापो जितक्रोधो जितेन्द्रियः ॥ ८ ॥ यजते पुष्करे ब्रह्मा मेधया सह संगतः ॥ इन्द्रप्रोक्तानि सामानि गीयन्ते ब्रह्मवादिभिः ॥ ९ ॥

(इसका विशेष वर्णन हठयोगके ग्रंथोंमें देखो) ॥ ६ ॥ इस रूपसे प्राणियोंसे सत्कृत सूत्रात्मा सब ऐश्वर्योंसे सम्पन्न प्राप्त होता है अर्थात् ध्यानसे प्रथम उकारार्थभूत सूत्रात्माका साक्षात्कार होता है. इस प्रकारका दक्ष ब्रह्मा ब्राह्मणोंका निर्माण करनेवाला पितामह होता है ॥ ७ ॥ पूरकसमयमें नासिकानलिमें दंडाकार पूर्ण होनेसे दंडी कुंभक अवस्थामें चर्मधारी रेचकअवस्थामें शरयुक्त खड्गकी समान तीक्ष्ण धारावाला संसारवृक्ष छेदनमें समर्थ शिखी प्राणाग्निरूप कमलकी समान मुख प्रसन्नभाव होनेसे संतापरहित स्वभावसे क्रोधजित और जितेन्द्रिय होता है ॥ ८ ॥ दशरूप ब्रह्मा आत्मतीर्थमें शास्त्राचार्यसे प्राप्त हुई बुद्धियें तन्निष्ठ होकर यजन करता है. जहां ब्रह्मवादियोंद्वारा इन्द्रके कहे साम (अहमन्नमहमन्न) इत्यादि गाये जाते हैं ॥ ९ ॥

घृत क्षीर यव व्रीहि यह सब परमहवि हैं. यह ब्रह्मपदके प्राप्त होने योग्य वेदप्रोक्त यज्ञका विधान है ॥ १० ॥ अग्निसम्बन्धी अरणीको मथन कर जो शमीके गर्भसे प्रकट होती है अर्थात् परमेश्वरकी तिरोधान स्थानभूत अविद्याको नाश करके देहमें प्रगट हुए. कारण ब्रह्म अन्तर्यामी अग्निरूपको प्रवृत्त करे अर्थात् देहके अभिमानरहित होनेसे ब्रह्मरूप होता है. ब्रह्माने प्रथम उस सूत्रात्मामें अग्नि प्रवृत्त की ॥ ११ ॥ जिस प्रकार यज्ञकर्ममें अग्नि विधान किया जाता है उसी प्रकार अल्प द्रव्यसे अनेक प्रकारके द्रव्योंको ॥ १२ ॥ और फलोंको योगके जाननेवाले ब्रह्मवादी मुनि हवि कल्पित कर यज्ञमें डालते हैं अर्थात् मानसिक यज्ञमें कल्पना की हुई मानसी सामग्री डालकर मनके अनुसार फलभागी होते हैं ॥ १३ ॥ उस यज्ञमें छः महीने पर्यन्त बृहस्पतिजी चारों

धृतं क्षीरं यवा व्रीहिः सर्वं परमकं हविः ॥ वेदप्रोक्तं मखे न्यस्तं कल्पितं ब्रह्मणः पदे ॥ १० ॥ निर्मथ्यारणिमाग्नेयीं शमीगर्भसमुत्थिताम् ॥ स ब्रह्मा प्रथमं तस्मिन्नग्निमन्यं प्रवर्त्तयत ॥ ११ ॥ नह्यल्पं विहितं द्रव्यं यथाग्निर्यज्ञकर्मणि ॥ प्रवर्तयेद्विभागैर्वा हुतद्रव्यमयं बलम् ॥ १२ ॥ फलानि तैः प्रयुक्तानि हवींषि विततेऽध्वरे ॥ प्रयुञ्जते प्रयोगज्ञा मुनयो ब्रह्मवादिनः ॥ १३ ॥ षण्मासांश्चतुरो वेदान्त्संबभाषे बृहस्पतिः ॥ ब्रह्मणो वितते यज्ञे परया ब्रह्मसम्पदा ॥ १४ ॥ शिक्षाक्षरसमेताया मधुरायाः समन्ततः ॥ सानुस्वारितरामायाः सरस्वत्या प्रभाषते ॥ १५ ॥ तेन ब्राह्मणशब्देन ब्रह्मप्रोक्तेन भारत ॥ विभाति स मखो व्यक्तं ब्रह्मलोक इवापरः ॥ १६ ॥ मखो ब्रह्ममुखोत्तीर्णो ब्रह्मशब्दैरनामयैः ॥ प्रयोगैः संप्रयुक्तस्य जलपान्निव विवर्द्धते ॥ १७ ॥ समिद्भिः सोमकलशैः पात्रैश्चैव बर्हिः खलैः ॥ यवैर्व्रीहिभिराज्यैश्च पूर्णैश्च जलभाजनैः ॥ १८ ॥

वेदोंको पढते हैं, और उस ब्रह्मयज्ञमें अत्यन्त ब्रह्मसम्पदासे युक्त होते हैं अर्थात् छः महीनेके निरन्तर अभ्याससे सिद्धि होती है ॥ १४ ॥ तब अभ्यास किये उस वेदको शिक्षा अक्षरके सहित वहां सरस्वती कथन करती है जिससे उपनिषद्सहित और कर्म उपासनासहित वेद उनके शिष्योंको प्राप्त होता है ॥ १५ ॥ हे भारत ! उस ब्रह्मके कहे वेदशब्दसे वह आध्यात्मिक ब्रह्मलोककी समान प्रकाशित होता है ॥ १६ ॥ वह यज्ञ ब्रह्माके मुखसे निर्गत अनामय ब्रह्मशब्दोंसे और संदेहरहित प्रयोगोंसे कहे हुएकी समान बढता है ॥ १७ ॥ समिधा सोमके कलशे पात्र यव व्रीहि घृत और दूसरे पूर्ण जल-

पात्र ॥ १८ ॥ कर्मके प्राप्त होने योग्य पशु और ब्रह्ममें अर्पणके योग्य कर्म दूधवाली गौ और कोमल वंश और सुवर्णसे युक्त ॥ १९ ॥ हे भारत ! वेदशब्दसे बढा हुआ, दक्षिणासे बढा हुआ तपसे परिवर्द्धित ब्रह्मज्ञानमें वेदविद्यासे संगत हुआ ॥ २० ॥ मनसे कल्पना की हुई समिधादिसे क्रियामूर्ति यज्ञात्मा ब्रह्मा कल्पनाके विना स्वभावसे उत्पन्न हुई घृतादि सामग्रीसे मरुद्गणोंके साथ हवन करता है ॥ २१ ॥ हे राजन् ! तेजमूर्ति धारण करनेवाले चिन्मयरूप द्रव्य देवताओंद्वारा यागरूपसे प्राप्त ब्रह्मयज्ञ सब प्राणियोंके कर्मको स्पर्श न करता हुआ वेदमें कही विधिसे सबसे अधिक होता है ॥ २२ ॥ शमीके गर्भसे उठी अग्निदात्री अरणीको मथकर अग्निष्टोम यज्ञसे वह प्रभु यजन करता है ॥ २३ ॥ उस यज्ञमें सभाके ब्राह्मण मधुरवाणीसे बोलते हैं

कर्मप्राप्तैश्च पशुभिः कर्मभिश्चापरान्वितैः ॥ गोभिः पयस्विनीभिश्च परिवंशैश्च कोमलैः ॥ १९ ॥ ब्रह्मवृद्धो वयोवृद्धस्तपोवृद्धश्च भारत ॥ ब्रह्मज्ञानमयो देवो विद्यया सह संगतः ॥२०॥ मानसैश्च क्रियामूर्तिर्ये च भूताः स्वयं नृप ॥ ब्रह्मा जुहोति तांस्तस्मान्मरुद्भिः सहितस्तदा ॥ २१ ॥ तेजोमूर्तिधरैरूपैर्नच तत्कर्मणास्पृशत् ॥ वेदप्रोक्तेन विधिना सर्वप्राणभृतां वर ॥ २२ ॥ निर्मथ्यारणिमाग्नेयीं शमीगर्भसमुत्थिताम् ॥ क्रतुना यजते पूर्णमग्निष्टोमेन स प्रभुः ॥ २३ ॥ सदस्यैस्तत्सदो व्यक्तं शुशुभे यज्ञकर्मणि ॥ जल्पन्ति मधुरा वाचः सानुसाराः क्रियास्तथा ॥२४॥ कर्मभिश्च तपोयुक्तैर्वेदवेदाङ्गपारगैः ॥ सूर्येन्दुसदृशै राजन्विरराज महाक्रतुः ॥ २५ ॥ ब्रह्मघोषेण महता ब्रह्मावास इवापरः ॥ वसुधामिव संप्राप्तैः सर्वैरेव दिवौकसैः ॥ २६ ॥ वेदवेदाङ्गविद्भिश्च विनीतैर्ब्रह्मवादिभिः ॥ गतागतैस्तपः श्रान्तैः स्वर्गलोके महीयते ॥ २७ ॥

और अध्वर्यु आदिके सहित व्यक्त हुआ यज्ञ शोभाको प्राप्त होता है ॥ २४ ॥ तपयुक्त कर्म करनेवाले वेदवेदांगके पारगामी सूर्य चन्द्रमाके समान मुनिजनोंसे वह महायज्ञ शोभित हुआ ॥ २५ ॥ बडे भारी वेदके शब्दसे दूसरे ब्रह्मलोककी समान सब स्वर्गके देवताओं सहित पृथ्वीमें प्राप्त हुएकी समान ॥ २६ ॥ वेदवेदांगके जाननेवाले विनीत ब्रह्मवादी महात्माओंके जो तपसे पूर्ण हो गये हैं आनेजानेसे स्वर्गलोकमें पूजित होता है और मनुष्य लोकमें अत्यंत पूजित होता है ॥ २७ ॥

प्रकाशमान तीन ब्राह्मण और तीन यज्ञकी अग्नियोंकरके वह यज्ञ ब्रह्माके ब्रह्मलोककी समान प्रकाशित होता है ॥ २८ ॥ उसमें ब्रह्मवादी ब्राह्मण इन्द्रके कहे सामगान करते हैं और यजुके वचनप्रयोग किये जाते हैं जिससे यज्ञका विस्तार होता है ॥ २९ ॥ तपसे शान्त ब्रह्मपरायण सत्यव्रत क्रियामें सावधान सुनने मात्रसे मनके संकल्पसे आते हैं ॥ ३० ॥ हे राजन् ! यज्ञमें मूर्तिभेदसे होता और ब्रह्मा बृहस्पति हुए सब धर्मवेत्ताओंमेंश्रेष्ठ पुरातन ब्रह्मसे उत्पन्न होनेवाला यजमान ॥ ३१ ॥ यज्ञान्तमें विष्णुकी पूजा कर अर्थात् सब कर्म विष्णुको समर्पण कर यज्ञकी महिमासे अदितिके गर्भमें उत्पन्न होता

ज्वलद्भिरिव विप्रैस्तैस्त्रिभिरेवाध्वरेऽग्निभिः ॥ ब्रह्मलोक इवाभाति ब्रह्मणः स महाक्रतुः ॥ २८ ॥ इन्द्रप्रोक्तानि सामानि गायन्ति ब्रह्मवादिनः ॥ वचनानि प्रयुक्तानि यजूंषि विततेऽध्वरे ॥ २९ ॥ तपःशान्ता ब्रह्मपराः सत्यव्रतसमाहिताः ॥ आययुर्मुनयः सर्वे मनोभिः श्रोत्रवादिभिः ॥ ३० ॥ होता चैवाभवद्राजन् ब्रह्मत्वे च बृहस्पतिः ॥ सर्वधर्मविदां श्रेष्ठः पुराणो ब्रह्मसंभवः ॥ ३१ ॥ यजमानश्च यज्ञान्ते विष्णोः पूजां प्रयुज्य च ॥ आदित्याः पश्चिमे गर्भे तपसा संवृत्ते नृप ॥ ३२ ॥ पदं विष्णुरजो ब्रह्मा निर्द्वन्द्वं निष्परिग्रहम् ॥ यतः पदसहस्राणि भविष्यन्त्युद्भवन्ति च ॥ ॥ ३३ ॥ अवन्ध्यं चाप्रमेयं च व्यतिरिक्तं च कर्मभिः ॥ आत्मापि यस्य मुनयो भवन्ति निष्परिग्रहाः ॥ ३४ ॥ परिग्रहाश्च विषया दोषप्राप्ता महीपते ॥ दोषाश्च युगपत्सर्वे छादयन्ति मनो बलात् ॥ ३५ ॥ इन्द्रियग्रामविषये चरन्तो निष्परिग्रहाः ॥ परिग्रहं शुभं धर्ममविद्यालक्षणं विदुः ॥ ३६ ॥

है ॥ ३२ ॥ इस प्रकार कर्मफल देवताभाव सुख दुःखरूपको कथन कर मोक्षपदरूप विष्णुपदका वर्णन करते हैं कि अजन्मा अर्थात् कर्मप्राप्त ब्रह्मा ब्रह्मवित् निर्द्वन्द्व और निष्परिग्रह जिससे सहस्रों इन्द्रादि पद हुए और होते हैं उस विष्णुके परम पदको प्राप्त होता है ॥ ३३ ॥ वह बंधरहित और अप्रमेय कर्मोंसे व्यतिरिक्त है. जिस विष्णुके परम पद और आत्माको मुनिजन एक कहते हैं ॥ ३४ ॥ हे राजन् ! रूपादि सब विषयरागादि दोषोंसे कल्पित हुए एक कालमें बलसे मनको आच्छादित करते हैं ॥ ३५ ॥ इन्द्रियोंके समूहके रूपरसादि विषयोंमें निष्परिग्रह विचरते हुए मुनिजन परिग्रहवाले सुन्दर

धर्मको अपने विद्यालक्षणसे जानते हैं ॥ ३६ ॥ हे राजन् ! विद्यालक्षणके संयोगसे मन आच्छादित नहीं होता है जो मुनि शब्दकरके ब्रह्मवादियोंने ग्रहण किया है ॥ ३७ ॥ हे कुरुश्रेष्ठ ! उस ब्रह्मविद्याके व्रतमें स्नान किये नियममें तत्पर सत्पुरुषोंके स्थान दिव्यलोक हैं वही लोकोंके लोक ह ॥ ३८ ॥ हे भारत ! जहांके हवि सेवन करनेवाले देवता क्षयको प्राप्त नहीं होते हैं और यजमानभी अपने भोगोंसे कर्मसे प्राप्त स्थानमें अपनी पत्नियोंके सहित दुःखरहित हो निवास करता है ॥ ३९ ॥ यज्ञके अवसानमें प्रभुने ब्राह्मणोंको शैल (दिव्य देह पित्र्य गान्धर्व प्राजापत्य वा ब्राह्म) स्थान दिया यह सब प्राणियोंपर दया करके निर्मल अन्तःकरण करके द्विजोंको दिया ॥ ४० ॥ उस दिव्य देहरूपी शैलको जो सर्वगात्रात्मक क्षेत्र है

विद्यालक्षणसंयोगान्न मनश्छाद्यते नृप ॥ यदि चेन्मुनिशब्देन गृह्यते ब्रह्मवादिभिः ॥ ३७ ॥ वेदविद्याव्रतस्नातैर्नियतैः कुरुसत्तम ॥ दिवि लोकाः सतां स्थानं लोकानां लोक उच्यते ॥ ३८ ॥ यत्र देवा हव्यपुष्टा न क्षयं यान्ति भारत ॥ यजमानश्च भोगैः स्वैः कर्मप्राप्तोदिते पदे ॥ मोदते सह पत्नीभिर्विज्वरो वसुधाधिप ॥ ३९ ॥ यज्ञावसाने शैलेन्द्रं द्विजेभ्यः प्रददौ प्रभुः ॥ दयया सर्वभूतानां निर्मलेनान्तरात्मना ॥ ४० ॥ तं शैलं सर्वगात्राणि परस्परविशेषिणः ॥ न शेकुः प्रविभागार्थं भेत्तुं सर्वोद्यमैरपि ॥ ४१ ॥ ततस्ते ब्राह्मणगणा निषेदुर्वसुधातले ॥ श्रमेणाभिहताः सर्वे विवर्णवदना नृप ॥ ४२ ॥ सुपार्श्वो गिरिमुख्यस्तु वाग्भिर्मधुरभाषिता ॥ अब्रवीत्प्रणतः सर्वांश्छिरसा तान् द्विजोत्तमान् ॥ ४३ ॥ नहि शक्यो बलाद्भेत्तुं युष्माभिरसुसङ्गिभिः ॥ अपि वर्षशतैर्दिव्यैः परस्परविरोधिभिः ॥ ४४ ॥ एकीभूता यदा सर्वे भविष्यथ समाहिताः ॥ अविरोधेन युगपद्विभजिष्यथ निर्वृताः ॥ ४५ ॥

परस्पर भेददृष्टिसे परस्पर संघटित हुए ब्राह्मण क्षत्रियत्वादिके अभिमानसे सर्वोद्यम अर्थात् कर्मविद्यासे आत्मासे पृथक् निश्चय करनेको समर्थ न हुए ॥ ४१ ॥ तब वे सब ब्राह्मण श्रमसे व्याप्त विवर्णवदन हो पृथ्वीमें बैठे ॥ ४२ ॥ तब उस पर्वतके पार्श्वभागमें पाप छेदन करनेवालोंमें मुख्य वायु प्रणत हुए उन सब ब्राह्मणोंसे कहने लगा ॥ ४३ ॥ हे ब्राह्मणो ! यह देहाभिमानका पर्वत बल वा हठसे परस्पर विरोधके कारण देह इन्द्रियादिमें मन लगानेसे दिव्य सौ वर्षोंमेंभी भेदन नहीं कर सकते ॥ ४४ ॥ जब तुम समाधिमें सावधानतासे एकीभूत हो जाओगे और कोई विरोध न होगा

तब तुम इसको एकसाथ तोड सकोगे ॥ ४५ ॥ स्वाभाविक सामर्थ्यको राग और द्वेष नष्ट कर देते हैं और रागदोषसे रहित होनेसे ब्रह्मनिष्ठा बढती है ॥ ४६ ॥ जब मैं स्वर्गको भेदन करनेवाले यहां वहांके भोगसे रहित शिलाओंसे फेंके हुए और सानुओंके गिरनेसे धातुओंके फैलनेसे अर्थात् गुहामें शयन करनेवाला मैं गुरु देहकी आरंभ करनेवाली धातु और उनके कार्य वाक् प्राण मनको विशीर्ण करूंगा (" अन्नमयं हि सौम्य मनः आपां-मयः प्राणस्तेजोमयी वागिति श्रुतेः ") और शिखररूप इन्द्रियोंको तापित करूंगा ॥ ४७ ॥ समीप स्थित स्त्री आदि जिन्होंने चित्तमें सर्पकी समान प्रवेश किया है तथा नाग (श्वेतसांपकी तुल्य शास्त्रादि व्यसन व्याल कृष्णसर्पकी तुल्य कामादि व्यसनों) से विशीर्ण और प्रेरित हुएको जब गुरु नाशकर

बलं हि रागद्वेषाभ्यां वर्द्धते ब्रह्मसत्तमाः ॥ विमुक्तं रागदोषाभ्यां ब्रह्म वर्द्धति शाश्वतम् ॥ ४६ ॥ यदाहं भेदयिष्यामि स्वर्गभिन्नैः शिलाशतैः ॥ धातुभिश्च विसर्पद्भिः शिखरैश्चानुपातिभिः ॥ ४७ ॥ विशीर्णैः पार्श्वविवरैर्नागैश्च गलितैर्भुवि ॥ बहुभिर्व्यालरूपैश्च चोद्यमानो गुहाशयैः ॥ ४८ ॥ प्रतिगृह्य च तद्वाक्यं शैलेन्द्रस्य सुभाषितम् ॥ तूष्णीं बभूवुस्ते सर्वे तदा ब्राह्मणसत्तमाः ॥ ४९ ॥ इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे भविष्यपर्वणि त्रयोविंशतितमोऽध्यायः ॥ २३ ॥ वैशम्पायन उवाच ॥ बलिहोमाश्च वर्द्धन्ते अहन्यहनि भारत ॥ द्विजानां तपसाढ्यानां गृहधर्मेषु तिष्ठताम् ॥ १ ॥ देवतार्च्याश्च पूज्यन्ते तदाप्रभृति भारत ॥ तेषां ब्रह्मविदां राजन् पृथिव्यां ब्रह्मवादिभिः ॥ २ ॥ तत्रैव ब्रह्मसदने समे निस्तृणकण्टके ॥ प्राग्येन्धनतृणे देशे पुण्ये पर्वतरोधसि ॥ ३ ॥

देता है तब यह कार्यसाधनमें समर्थ होता है ॥ ४८ ॥ इस प्रकार शैलेन्द्रके कहे उस वचनको स्वीकार करके वे सब ब्रह्मश्रेष्ठ मौन हुए अर्थात् वैराग्य न होनेसे आत्माको देहसे पृथक् करनेके व्यापारसे निवृत्त हुए ॥ ४९ ॥ इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे भ० भा० त्रयोविंशतितमोऽध्यायः ॥ २३ ॥ वैशंपायन बोले; हे राजन् ! उस समयसे प्रतिदिन तपसे युक्त गृहधर्ममें वर्तनेवाले शैलभेदमें असमर्थ कर्मवाले ब्राह्मणोंका ऋत्विजोंके साथ पृथ्वीमें बलि-होमादि कर्म बढने लगा ॥ १ ॥ हे भारत ! तबसे देवताओंकी पूजा उन ब्रह्मवादियों द्वारा पृथ्वीमें बढती है ॥ २ ॥ उसी पृथ्वीरूप ब्रह्मसदनमें " अविमुक्तं वै कुरुक्षेत्रं देवानां देवयजनं सर्वेषां भूतानां ब्रह्मसदनम् " इति श्रुतेः । जो समान और तृणकंटकसे रहित है (भ्रू और घ्राणसन्धिके मध्यमें)

विन्ध्यके समीप घृत ईंधन तृणसे युक्त ॥ ३ ॥ भगवान्‌की गतागतिरूप क्रियाको देखकर निवास करते हैं तपके अर्थी महाभाग ब्रह्मचर्य व्रतमें स्थित ॥ ४ ॥ गृहस्थ धर्ममें निरत दानसे शुद्ध यतिभि वहां निवासकी इच्छा करते हैं ॥ ५ ॥ वनके मूलफलसे और कर्मफलसे रत ब्राह्मणश्रेष्ठ अग्निहोत्र व्रतमें पारगामी जितक्रोध सावधान चित्त ॥ ६ ॥ दैवयुक्त कर्मसे युक्त ब्राह्मणश्रेष्ठ चीरवल्कलधारी नियत जितेन्द्रिय ॥ ७ ॥ दारुणव्रतमें स्थित हुए ब्रह्मचर्यमें स्थित हो इस क्रमसे सर्वथा वे महात्मा ॥ ८ ॥ क्रमसे पवित्र वेदके पवित्र संस्कारको प्राप्त हो जो कि पुरातन ब्रह्मचारियोंने आचरण किये

वासं यत्र प्रकुर्वन्ति दृष्ट्वा भगवतः क्रियाम् ॥ तपोऽर्थिनो महाभागा ब्रह्मचर्यव्रते स्थिताः ॥ ४ ॥ गृहस्थधर्मनिरता दानप्रातेन चेतसा ॥ यतयश्चापि कांक्षन्ति धर्मेणेह विकांक्षिणः ॥ ५ ॥ वन्यैः कर्मफलैश्चैव रता ब्राह्मणपुङ्गवाः ॥ अग्निहोत्रव्रतस्नाता जितक्रोधाः समाहिताः ॥ ६ ॥ दैवयुक्तेन वा युक्ताः कर्मणा ब्रह्मसत्तमाः ॥ चीरवल्कलसंवीता नियता नियतेन्द्रियाः ॥ ७ ॥ चरन्तो ब्रह्मचर्यं च व्रतमास्थाय दारुणम् ॥ अनेन विधिना राजन् क्रमप्रातेन सर्वशः ॥ ८ ॥ क्रमाद्ये वेदसंस्कारं पुण्यं प्राप्ताः सनातनम् ॥ पूर्वैराचरितं राजन्मुनिभिर्ब्रह्मवादिभिः ॥ ९ ॥ नावेदविद्वान्नागच्छेन्नापि रौद्रं व्रतं चरेत् ॥ नच त्यागेन गच्छेत गृहधर्मं न च त्यजेत् ॥ १० ॥ नैवं गच्छेत दुःस्थानमप्राप्तो वेदसंचयम् ॥ ऋचश्च संचयः पूर्वैः सामगानां च भारत ॥ ११ ॥ ये चापि पुत्रिणो न स्युः श्रुतश्चापि प्राप्नुयुः फलम् ॥ ब्राह्मणास्तपसा श्रान्ता गुरोश्च परिचर्यया ॥ १२ ॥ यस्य नैव श्रुतं ब्रह्मन्न गृहीतं विशांपते ॥ कामं तं धार्मिको राजा शूद्रकर्माणि कारयेत् ॥ १३ ॥

हैं उनके स्थानको प्राप्त होते हैं ॥ ९ ॥ वेदका न जाननेवाला गृहस्थ धर्मको नहीं प्राप्त होता अर्थात् सम्पूर्ण वेदको विना जाने गृहस्थ धर्म न करे त्यागके विना संन्यास न करे. विना पुत्र उत्पन्न किये गृहस्थधर्मका त्याग न करे ॥ १० ॥ वेदसंचयके प्राप्त हुए विना संन्यासी न हो. हे भारत ! साम गानेवालोंको पहले ऋच और यजुका संचय करना चाहिये ॥ ११ ॥ और जो पुत्रवाले न हों वे वेदान्तको सुनकर उसके फलको प्राप्त होते हैं. ब्राह्मणजन तपसे श्रान्त हुए गुरुकी परिचर्यासे फलको पाते हैं ॥ १२ ॥ हे राजन् ! जिसने वेदको न सुना न ग्रहण किया उस ब्राह्मणसे राजा शूद्रोंके

कर्म करावे ॥ १३ ॥ जो ब्राह्मण होकर वेदका आदर न करे ऐसा तो होही नहीं सका. जो वेदका अनादर करे वह ब्राह्मणही नहीं है. कारण कि ब्रह्म-चारी और गृहस्थ दोनोंहीका अध्ययनकालमें मन वेदमें लगता है ॥ १४ ॥ इस कारण भूतिसे सम्पन्न अपनी विभूतिकी इच्छा करनेवाला ब्राह्मण वेदपूर्वक सब इन्द्रियोंके आरंभोंको सम्यक् प्रकारसे आचरण करे ॥ १५ ॥ इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे भविष्यपर्वणि भाषायां चतुर्विंशतितमोऽध्यायः ॥ २४ ॥ वैशंपायन बोले; वे नारद आदि गन्धर्व और ऋषि वैदिक कर्म श्रेयस्कर हैं और उसके करनेमें राजदण्ड है इस प्रकार जानकर वेदप्रधान अपराधरहित नागराजकी प्रकृतिवाले चन्द्रमा और आदित्य (काल) को आगे करके ब्रह्मसे उत्पत्तिवाले देवता और ऋषियोंको वसु हवि

अथवा नेव विद्येत यद्ब्रह्म नाद्रियेद्विजः ॥ द्वाभ्यां तु श्रोत्रविषये मनः पूर्वं समाहितम् ॥ १४ ॥ एवं सर्वेन्द्रियारम्भान्वेदपूर्वान्त्समाचरेत् ॥ ब्राह्मणो भूतसंपन्नो य इच्छेद्भूतिमात्मनः ॥ १५ ॥ इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे भविष्यपर्वणि चतुर्विंशतितमोऽध्यायः॥ २४ ॥ वैशम्पायन उवाच ॥ ते तु गोब्राह्मणा नागाश्चन्द्रादित्यपुरस्कृताः ॥ ब्राह्मणान्पूजयन्देवान्वसुभिर्ब्रह्मसंभवैः ॥ १ ॥ नारदप्रमुखाश्चैव गन्धर्वा ऋषयो नृप ॥ कुर्वन्ति सततं यज्ञे क्रमप्राप्तं पितामहम् ॥ २ ॥ वचोभिर्मधुराभाषैः पञ्चेन्द्रियनिवासिभिः ॥ सर्वभूतप्रियकरैः सर्वभूतहितैषिभिः ॥ ३ ॥ स्तूयमानश्च यज्ञान्ते पञ्चेन्द्रियसमाहितैः ॥ प्रोवाच भगवान्ब्रह्मा दिष्ट्या दिष्ट्येति भारत ॥ ४ ॥ ततः कश्यपमाभाष्य प्रोवाच भगवान्प्रभुः ॥ भवानपि सुतैः सार्द्धं यक्ष्यते वसुधातले ॥ ५ ॥ क्रतुभिः परमप्राप्तैः संपूर्णवरदक्षिणैः ॥ यक्षाः सुराश्च ते सर्वे यथा प्रतिगुणैः प्रभो ॥ ६ ॥

दक्षिणादिके सहित पूजन करने लगे ॥ १ ॥ हे राजन् ! वह नारद गंधर्वादि ऋषि ब्रह्माकी पूजाके क्रमसे ब्रह्माको पूजन करते हुए ॥ २ ॥ पंचेन्द्रियमें निवास करनेवाले मधुरवचनों और सब भूतोंके प्रिय करनेवाले सब प्राणियोंके हितकारी ॥ ३ ॥ वचनोंसे स्तुतिको प्राप्त हो यज्ञान्तमें पंचेन्द्रियसे सावधान उस यज्ञको देखकर ब्रह्माजी बोले; तुम धन्य हो भाग्यसेही तुम्हारी यज्ञमें इस प्रकार प्रवृत्ति है ॥ ४ ॥ तब कश्यपसे संभाषण कर भगवान् प्रभुने कहा आपभी पृथ्वीतलमें पुत्रोंके सहित पूजित होंगे ॥ ५ ॥ हे प्रभो ! सम्पूर्ण श्रेष्ठदक्षिणावाले यज्ञोंसे यक्ष असुर अपने २ सात्त्विक

राजसी तामसी गुणोंसे ॥ ६ ॥ पहले हम यजन करेंगे पहले हम यजन करें, इस प्रकार बलसे दर्पित परस्पर विवाद करने लगे ॥ ७ ॥ देवता और दैत्य परस्पर जयकी इच्छा करनेवाले अपनी विपुल भुजाओंके आश्रयसे युद्धके निमित्त स्थित हुए ॥ ८ ॥ तपसे पापरहित हुए ऋषियोंसे तथा दूसरे वेदवेदांगके पारगामी ऋषियोंके निवारण करनेपरभी वे ॥ ९ ॥ गोकुलमें वृषकी समान युद्ध करने लगे. वे देवता प्राण नामक सूत्रात्माके आश्रित हो कामादि असुरोंके जीतनेको सूत्रात्माके जीतनेकी इच्छा करने लगे ॥ १० ॥ तब वे सब प्राणियोंके देखते २ मृत्युके विषयको प्राप्त हुए तब वे महा

वयं यक्षामहे पूर्वं पूर्वं यक्षामहे वयम् ॥ एवमन्योन्यसंरम्भाद्विघ्नन्ते बलदर्पिताः ॥७॥ दैतेयाश्चाप्यदैतेयाः परस्परजयैषिणः ॥ युद्धायैव प्रतिष्ठन्ति प्रगृह्य विपुलौ भुजौ ॥ ८ ॥ निवार्यमाणा ऋषिभिस्तपसा दग्धकिल्बिषैः ॥ अन्यैश्च विविधैर्विप्रैर्वेदवेदाङ्गपारगैः ॥ ९ ॥ निवार्यमाणा युद्ध्यन्ते वृषभा इव गोकुले ॥ प्रयुद्धा युद्धसंक्रान्ताः सर्वे प्राणजयैषिणः ॥ १० ॥ पश्यतां सर्वभूतानां मृत्योर्विषयमागताः ॥ ततः शब्देन महता परं कृत्वा महाबलाः ॥ ११ ॥ रुन्धन्ति बाहुभिः क्रुद्धाः सपक्षा इव पक्षिणः ॥ चचाल वसुधा चैव पादाक्रान्ता च रोचिभिः ॥ १२ ॥ नौर्यथा पुरुषाक्रान्ता निषीदति महाजले ॥ पर्वताश्च विशीर्यन्ते नर्दमाना गजा इव ॥ १३ ॥ चुक्षुभुश्च महानद्यस्ताडिता मातरिश्वना ॥ ततः समभवद्युद्धं मधोर्विष्णोश्च भारत ॥ १४ ॥ युगान्तकरणं घोरं सर्वप्राणिभयंकरम् ॥ प्रममाथ बलं विष्णुः समग्रं बलपौरुषम् ॥ १५ ॥

बलवाले अत्यन्त शब्द करके ॥ ११ ॥ पंखवाले पर्वतकी समान बाहुसे एक दूसरेको रोकने लगे (अर्थात् वैराग्यसे कामादिको निवारण करने लगे) उसमेंभी विघ्न हुआ उन विषयवासनाओंकी ज्वालासे योगभूमि चलायमान हो गई ॥ १२ ॥ जैसे पुरुषोंसे आक्रान्त होकर नौका महाजलमें दुःखी होती है इसी प्रकार आसनबंधादिक पर्वतकी तुल्य शब्द करते हुए हाथीकी समान क्शीर्ण होते हैं ॥ १३ ॥ पवनसे ताडित होकर महानदी (नाडी) चलायमान हो गई. हे भारत ! उस समय मधु और सत्त्वगुणरूप विष्णुका युद्ध होने लगा ॥ १४ ॥ वह घोर युद्ध युगान्तकी समान सब प्राणियोंको

भयंकर हुआ तब विष्णुने दैत्यका समग्र बल और पौरुष नष्ट कर दिया ॥ १५ ॥ जैसे अग्निके बलको जल शान्त कर देता है इसी प्रकार भगवान्‌से वह दैत्य शान्त हो गया ॥ १६ ॥ इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे भविष्यपर्वणि भा० पंचविंशतितमोऽध्यायः ॥ २५ ॥ वैशंपायन बोले; वह भीम पराक्रमी मोहरूपी दैत्य (वासनामय) पाशोंसे महेन्द्ररूपी आत्माको पर्वतान्तररूपी देहमें बांधता हुआ ॥ १ ॥ और उसको हर्षरूपी प्रह्लादके वचनसे उसके अनुसारी द्वेषरूप लयके लक्षणवाले योगीका पूर्णतत्वके न जाननेसे उत्पन्न हुआ माह इन्द्ररूप अपनी बुद्धिके क्षय होनेसे भविष्य द्वैतके अदर्शनरूप

वह्नेरिव बलं दीप्तं शमयत्यम्बुना यथा ॥ तथा प्रशामितं तेन भगवत्यपकारिणा ॥ १६ ॥ इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे भवि० पञ्चविंशतितमोऽध्यायः ॥ २५ ॥ वैशम्पायन उवाच ॥ बलवान्स तु दैतेयो मधुर्भीमपराक्रमः ॥ बबन्ध पाशैर्निशितैर्महेन्द्रं पर्वतान्तरे ॥ १ ॥ तं वै प्रह्लादवचनाल्लक्षणज्ञश्च भारत ॥ ऐश्वर्यमैन्द्रमाकांक्षन् भविष्यं बुद्धिसंक्षयात् ॥ २ ॥ बद्धेन्द्रं सहसा मध्ये पाशैर्मर्मविवर्जितैः ॥ आयसैर्बहुभिश्चित्रैर्बलवद्भिर्विदारणैः ॥ ३ ॥ विष्णुमेवाग्रणी रुद्रमाह्वयद्युद्धकोविदः ॥ मध्ये गणानां सर्वेषां कालस्य वशमागतः ॥ ४ ॥ द्वैधीभूताः काश्यपेया मधोर्वशमुपागताः ॥ युद्धार्थमभ्यधावन्त प्रगृह्य विपुला गदाः ॥ ५ ॥ गन्धर्वाः किन्नराश्चैव वाद्ये गीते च कोविदाः ॥ प्रनृत्यन्ति प्रगायन्ति प्रहसन्ति च सर्वशः ॥६॥ तन्त्रीभिः सुप्रयुक्ताभिर्मधुराभिः स्वभावतः ॥ मनो मधोर्विधुन्वन्ति युध्यमानस्य रागिणः ॥ ७ ॥

ऐश्वर्यको इच्छा करता हुआ सुषुप्तिरूप निर्विकल्पावस्थामें गिराता हुआ ॥ २ ॥ मर्मभेद करनेवाले पाशोंसे भिन्न लोहकी समान दृढपाशोंसे इन्द्रको बांधकर ॥ ३ ॥ अग्रणी होकर विष्णु और रुद्रको कालके वशीभूत हो सब गणोंके मध्यमें बुलाने लगा ॥ ४ ॥ तब वह कश्यपकी सन्तान द्वैधीभूत होकर मधुके वशमें हो गई और बडी २ गदा ग्रहण कर मधुके सन्मुख धावमान हुई अर्थात् गन्धर्वादि रजप्रधान मधुका मोह नष्ट करने लगे ॥ ५ ॥ गंधर्व और किन्नर बाजे और गानेमें पंडित सब प्रकार नाचेन गाने और हँसने लगे ॥ ६ ॥ और स्वभावसे मनोहर वीणा बजाते हुए युद्ध करते हुए

रागी मधुका मन विदीर्ण करने लगे ॥ ७ ॥ मधु दैत्य (तब) के विकारके निमित्त ब्रह्माके नियोगसे सत्यवादी गन्धर्व इन विकारोंको करते हैं ॥ ८ ॥
उस मधुदैत्यका मन उस गंधर्वविद्यामें आसक्त हो गया. दानव और असुर प्रत्यक्ष नाद करने लगे ॥ ९ ॥ इस प्रकार मधुका मन सब ओरसे विषयोंमें
लगाकर योगरूपी नेत्रोंसे देखते हुए विष्णुजी सबका यत्न करते काष्ठमें स्थित अग्निकी समान अन्तर्ध्यान हो गये ॥ १० ॥ मंत्ररूप ऋषि परमात्मारूप
विष्णुको अन्तर्हित देखकर व्याकुल हो गये और स्वयंभी पितामह आत्माको आगे करके अन्तर्ध्यान हो गये ॥ ११ ॥ अब विष्णु और दैत्यके मिससे

मधोर्बलार्थं मधुनो नियोगात्पद्मयोनि (गि) नः ॥ एतान्विकारान्कुर्वन्ति गन्धर्वाः सत्यवादिनः ॥ ८ ॥ तत्र शक्तो हि गान्धर्वे
तस्मिञ्छन्दे मधुर्मनः ॥ दानवाश्चासुराश्चैव प्रत्यक्षं यान्ति प्राणदन् ॥ ९ ॥ मधोश्च मन आक्षिप्य पश्यन्योगेन चक्षुषा ॥ मन्दरं
प्रयते विष्णुर्गूढोऽग्निरिव दारुषु ॥ १० ॥ ऋषयो दीतमनसं किंचिद्व्यथितमानसाः ॥ पितामहं पुरस्कृत्य क्षणेनान्तरधीयत ॥ ११ ॥
विष्णुं सोऽभ्यहनत्क्रुद्धो मधुर्मधुनिभेक्षणः ॥ भुजेन शङ्खदेशान्ते न चकम्पे पदात्पदम् ॥ १२ ॥ विष्णुश्चाभ्यहनद्दैत्यं कराग्रेण
स्तनान्तरे ॥ स पपात महीं तूर्णं जानुभ्यां रुधिरं वमन् ॥ १३ ॥ न चैनं पतितं हन्ति विष्णुर्युद्धविशारदः ॥ बाहुयुद्धे हि समयं
मत्वाचिन्त्यपराक्रमः ॥ १४ ॥ इन्द्रध्वज इवोत्तिष्ठन् जानुभ्यां स महीतलात् ॥ मधू रोषपरीतात्मा निर्दहन्निव चक्षुषा ॥ १५ ॥
परुषाभिस्ततो वाग्भिरन्योन्यमभिगर्जतुः ॥ समीयतुर्बाहुयुद्धे परस्परवधैषिणौ ॥ १६ ॥

विवेक और मोहका युद्ध वर्णन करते हैं. मधुकी समान नेत्रवाले मधुने क्रोधकर विष्णुको ताडित किया. वह उसकी मुष्टि शंखदेशमें लगनेसेभी विष्णुजी
एकपदभी कंपित न हुए ॥ १२ ॥ विष्णुने दैत्यकी छातीमें घूंसेका प्रहार किया तब वह जानुसे रुधिर बहाता पृथ्वीमें गिरा ॥ १३ ॥ युद्धविशारद विष्णुने
उस पतित हुएको न मारा. कारण कि वह अचिन्त्यपराक्रमी बाहुयुद्धके समयको जानते थे ॥ १४ ॥ फिर वह पृथ्वीतलसे इन्द्रध्वजकी
समान जानुओंके बलसे उठा और क्रोधसे नेत्रोंद्वारा दग्ध करता हुआ ॥ १५ ॥ फिर दोनों कठोर वचन कहकर गर्जने लगे और परस्पर वधकी

इच्छासे बाहुयुद्ध करने लगे ॥ १६ ॥ दोनों बाहुयुद्धमें बली दोनों तपसे शान्त दोनों सत्य पराक्रमी ॥ १७ ॥ दृढप्रहारवाले दोनों वीर परस्पर एक दूसरेको खैंचने लगे और दो पंखवाले पर्वतकी समान युद्ध करने लगे ॥ १८ ॥ एक दूसरेको पृथ्वीमें पकडकर तिरस्कार करने लगे और दो हाथियोंकी समान हाथके नखोंसे प्रहार करने लगे ॥ १९ ॥ तब शरीरमें व्रण हो जानेसे बहुत रुधिर निकला जैसे ग्रीष्मान्तमें कांचन धातुएं पर्वतसे निकलती हैं ॥ २० ॥ तब शरीरसे निकलते हुए रुधिरसे भीजे हुए दोनों पैरोंके अग्रभागसे पृथ्वीको विदीर्ण करने लगे ॥ २१ ॥ इस प्रकार वे दोनों

उभौ तौ बाहुबलिनावुभौ युद्धविशारदौ ॥ उभौ च तपसा शान्तावुभौ सत्यपराक्रमौ ॥१७॥ दृढप्रहारिणौ वीरावन्योन्यं विचकर्षतुः ॥ शैलेन्द्राविव युद्ध्यन्तौ पक्षैः पाषाणसंन्निभैः ॥ १८ ॥ विकर्षन्तौ वमन्तौ च अन्योन्यं वसुधातले ॥ गजाविव विषाणाग्रैर्नखाग्रैश्च विचेरतुः ॥ १९॥ ततो व्रणमुखेभ्यश्च सुस्राव रुधिरं बहु ॥ ग्रीष्मान्ते धातुसंसृष्टं शैलेभ्य इव काञ्चनम् ॥२०॥ संसिक्तौ रुधिरौघैश्च स्रवद्भिः समरञ्जितौ ॥ अथोद्यतैः पदाग्रैश्च तौ व्यदारयतां महीम् ॥ २१ ॥ आभिहत्य तु तौ वीरौ परस्परमनेकधा ॥ पतङ्गाविव युध्येतां पक्षाभ्यां मांसगृद्धिनौ ॥२२॥ शुश्रुवुश्चान्तरिक्षेऽथ सर्वभूतानि पुष्करे ॥ सिद्धानां वदनोन्मुक्ताः परया वर्णसम्पदा ॥ २३ ॥ स्तुतयो विष्णुसंयुक्ताः सत्याः सत्यपराक्रमे ॥ शरीरं धातुसंयुक्तं संयुक्तं चेतनेन च ॥ २४ ॥ तद्ब्रह्म इन्द्रियैर्युक्तं तेजोभूतं सनातनम् ॥ ध्रुवं तिष्ठन्ति भूतास्ते सूक्ष्मे प्रलयतां गते ॥ २५ ॥

वीर परस्पर अनेक प्रकारसे प्रहार करके मांसके निमित्त दो पक्षीकी समान युद्ध करने लगे ॥ २२ ॥ तब आकाशमें सब प्राणी सिद्धोंके मुखसे निकली सत्यपराक्रमयुक्त विष्णुकी स्तुति सुनने लगे ॥ २३ ॥ जब सत्यपराक्रम विष्णुकी स्तुति की गई (देहादि अनात्मामें आत्माभिमानका जो मोह है उसके नाश करनेको आत्मासेही आत्माको विवेक स्थलपर आरूढ करे) जो शरीर धातुसंयुक्त और चेतनके साथ संयुक्त है ॥ २४ ॥ वह सनातन तेज युक्त ब्रह्म सनातन है. उस सूक्ष्म और लयको प्राप्त हुएमें सब भूत अवश्य स्थित होते हैं. अर्थात् माया नष्ट होनेसे ब्रह्मरूपसे स्थित होते हैं ॥ २५ ॥

फिर सब भूतोंका त्रिलोकीमें कामनाका देनेवाला सूक्ष्मरूप और अनेकरूप सब भूतोंसे उत्पन्न होता है ॥ २६ ॥ और वह सबका नियन्ता सुरूप और अनेकरूप होकर लोकोंमें विचरता है. अनेक कारणान्तरसे मानसी रूपमें स्थित होता है ॥ २७ ॥ वह योगात्मा मानसीरूप शेष कूर्मादि धारण कर अनेक दुष्ट निग्रहरूप कारणसे शेषनागरूपसे पृथ्वीको धारण करके द्युलोकको धारण करे चार वेद और पांच तत्त्वको सूक्ष्मरूपसे धारण करता हुआ विचरता है ॥ २८ ॥ ब्रह्मरूपसे ब्राह्मणोंमें युद्धरूपसे क्षत्रियोंमें प्रदानकर्मसे वैश्योंमें और सेवाकर्मसे शूद्रोंमें वसता है ॥ २९ ॥ क्षीरदानसे गौओंमें

पुनश्चोद्भवते सूक्ष्मं बहुरूपमनेकधा ॥ प्रबोध्य भावं भूतानां त्रिषु लोकेषु कामदः ॥ २६ ॥ सुरूपो बहुरूपांस्ताँल्लोकान्संचरते वशी ॥ मानसीं तनुमास्थाय बहुभिः कारणान्तरैः ॥ २७ ॥ योगात्मा धारयन्नुर्वीं नागात्मानं दिवंधरः ॥ ब्रह्मभूतं परं चैव सूक्ष्मेणात्मानमीश्वरः ॥ २८ ॥ ब्राह्मेण विप्रान्वसति युद्धेनैव च क्षत्रियान् ॥ प्रदानकर्मणा वैश्याञ्छूद्रान्परिचरेण च ॥ २९ ॥ गावः क्षीरप्रदानेन अश्वान्यज्ञेषु प्रोक्षणैः ॥ पितरश्चोष्मणा वेदहविर्भागेन देवताः ॥ ३० ॥ चतुर्भिर्व्यतिरिक्ताङ्गैस्त्रिभिरन्यैश्च धातुभिः ॥ सप्तभिः पितृभिर्नित्यैस्त्रींल्लोकान्परिरक्षति ॥ ३१ ॥ चन्द्रसूर्यात्मकं नित्यं तद्रूपनिहतात्मकम् ॥ प्रकाशं चाप्रकाशं च निगूढं स्वेन तेजसा ॥ ३२ ॥ त्रयस्तु पितरो नित्यं वर्द्धयन्ति दिवाकरम् ॥ चतुर्भिः पितृभिश्चैव चन्द्रो वर्धति मण्डले ॥ ३३ ॥ त्रयः पितृगणा नित्यं पिण्डान्पश्चाद्दर्न्ति ते ॥ चत्वारोऽन्ये पितृगणाः सिद्धाः पश्चक आददे ॥ ३४ ॥

यज्ञोंसे प्रोक्षणकर्मद्वारा अश्वोंमें भोजनके गरम प्रदान करनेसे पितरोंमें हविर्भागसे देवताओंमें ॥ ३० ॥ दर्श पौर्णमास पिण्डपितृयज्ञ इन चारमें और मन वाक् प्राण इन तीनमें इस प्रकार सात अन्नसे पितरोंके साथ तीन लोककी रक्षा करता है ॥ ३१ ॥ यह सप्तक चन्द्रसूर्यात्मक है. इसमें अर्चिरादि मार्ग प्रकाशरूप और धूमादि मार्ग अप्रकाशरूप हैं यह अपने तेजसे निगूढ कर रक्खा है ॥ ३२ ॥ मन वाक् प्राण यह तीनों पितर नित्य दिवाकर अर्थात् अर्चिरादि मार्गको बढाते हैं और दर्शादि चार पितरोंसे चन्द्रमण्डल (धूममार्ग) बढाया जाता है ॥ ३३ ॥ पूर्वोक्त तीन पितर नियमसे

नित्य फलभोगके अन्तमें स्थूल सूक्ष्म कारण देहोंको संहार करते हैं अर्थात् मन वाक् और प्राण उपासनाको प्राप्त हो मुक्ति प्रदान करते हैं और दूसरे दर्शादिक पितरोंके गण शरीरके आकारसे परिणामको प्राप्त हो पंच विषयादिक होते हैं अर्थात् दर्शादिका फल देहान्तर प्राप्तिके निमित्त है ॥ ३४ ॥ हे विभो! तुमही तिन पांचों धर्मोंके रूप हो जैसे सुवर्णके कुंडलादि होते हैं. उस प्रकार सनातन दिव्य शाश्वत ब्रह्मसे सबका संभव है ॥ ३५ ॥ इस कारण आप उस तेजको ग्रहण करते हो. सब प्रकार अग्नि वायुरूप हो उसी कर्मसे तुम आदित्यरूप हो ॥ ३६ ॥ जो अपनी रश्मियोंसे 'जगत्को भस्म करते हुए भक्षण करते हो. युगान्तकालके प्राप्त होनेसे परम सिद्धिको प्राप्त हुआ ॥ ३७ ॥ पक्ष संधि पूर्णिमा और अमा-

त्वमेव पञ्च तान्धर्मांस्त्वमेवापञ्च तान्विभो ॥ सनातनमयो दिव्यः शाश्वतो ब्रह्मसंभवः ॥ ३५ ॥ तस्मात्तत्तेज आदत्ते अग्निर्वायुश्च सर्वशः ॥ अतस्त्वं कर्मणा तेन आदित्यः समपद्यत ॥ ३६ ॥ यदश्नासि जगत्सर्वं रश्मिभिः प्रदहन्निव ॥ युगान्तकाले संप्राप्ते परां सिद्धिमुपागतः ॥ ३७ ॥ पक्षसंधावमावास्यां लोकं चरसि मानुषम् ॥ ऋषिभिः सह गूढात्मा सूर्येन्दुवसुसंभवैः ॥ ३८ ॥ सफलं कर्म कुर्वाणं यजतां पुष्टिवर्धनम् ॥ हेतूनामविकाराय मा भूत्कर्मविपर्ययः ॥ ३९ ॥ वनस्पत्योषधीश्चैव युगपत्प्रतिपद्यसे ॥ बालभावाय वसुधां पक्षे पक्षे जनिस्तव ॥ ४० ॥ भूतानां भुवि भूतेश भाव्यर्थं वसुधातले ॥ वसु यद्भुवि किंचिच्च सर्वं तत्त्वमयं विभो ॥ ४१ ॥ त्वमेव विविधं धर्मं शाश्वतं वसुधातले ॥ देवयज्ञं मन्त्रवाक्यमात्मयज्ञं समानुषम् ॥ ४२ ॥ द्विविधः स्वर्गमार्गश्च सूर्यश्चन्द्रश्च निर्मलः ॥ चन्द्रमाः पितृयानश्च देवयानश्च भास्करः ॥ ४३ ॥

वसमें सूर्य चन्द्रमा वसुके संग गूढात्मा होकर मनुष्यलोकमें विचरते हो ॥ ३८ ॥ फलसहित कर्मको करते हुए पुष्टिवर्धन यजन करते हुए हेतुओंके अविकारके निमित्त कर्मका विपर्यय न हो ॥ ३९ ॥ वनस्पति और औषधियोंमें दर्शादिको पृथ्वीको चन्द्ररूपसे प्राप्त होते हो. बालभाव होनेसे प्रत्येक पक्षमें उत्पन्न होते हो ॥ ४० ॥ हे भूतेश! भूत भविष्य वर्तमान अर्थोंमें जो कुछ भूतोंका द्रव्य है वह सब तत्त्वरूप है ॥ ४१ ॥ हे भगवन्! पृथ्वी-तलमें आप विविध शाश्वत धर्म करते हो. आप देवयज्ञ में वाक्य आत्मयज्ञ मानुषरूप हो ॥ ४२ ॥ सूर्यचन्द्रमाके भेदसे स्वर्गका दो प्रकारका मार्ग है चन्द्रमा पितृयान मार्ग और सूर्य देवयान मार्ग है ॥ ४३ ॥

तुमही पृथ्वी रूप होकर प्राणिरूपसे मर्यादाके सहित विश्वमें विचरते हो. इन्द्रियादिके गुणोंको संक्षेप करके देहमात्ररूपसे दूसरे लोकमें गोचर होता है ॥ ४४ ॥ एकही आप पुराणपुरुष विराटरूप हो अक्षय अप्रमेय कर्मकर्ता वशी ॥ ४५ ॥ और तेजरूप होकर चक्षुओंके गोचर होते हो और आकाशचारी वायुभी तुम हो सात महत् अहंकार पंच तन्मात्राओंसे नित्य आच्छादित होकर स्थित होता है ॥ ४६ ॥ साधन निर्माण संहार प्रलय अर्थात् समाधिसाधनकालमें जीवरूपसे निर्वाणमें शुद्धरूपसे संहाररूप दिन प्रलयमें रुद्ररूपसे पालनमें विष्णुरूपसे दिशा वर्णाश्रम मर्यादा चक्षुइ-

त्वमेव वसुधायुक्तो विश्वं चरासि सीमया ॥ एकीकृत्य गणान्सर्वान्संक्षिप्यामुत्र संभवः ॥ ४४ ॥ एकस्त्वमसि संभूतः पुराणपुरुषो विराट् ॥ अक्षयश्चाप्रमेयश्च कर्मकारकरो वशी ॥ ४५ ॥ मूर्तस्तेजसि संभूतो वायुः पर्योति खेचरः॥ सप्तभी रूपसंस्थानैर्नित्यमावृत्य तिष्ठति ॥ ४६ ॥ साधने चापि निर्माणे संहारे प्रलये तथा ॥ धाता धारणकाले च दिशश्चक्षुषि धारिणी ॥ ४७ ॥ सेव्यमानो मुनिगणैर्नित्यं विगतकिल्बिषैः ॥ कर्मभिः सत्यमापन्नैः समरागैर्जितेन्द्रियैः ॥ ४८ ॥ स्तूयमानैश्च विबुधैः सिद्धैर्मुनिवरैस्तथा ॥ सस्मार विपुलं देहं हरिर्हयशिरो महान् ॥ ४९ ॥ कृत्वा वेदमयं रूपं सर्वदेवमयं वपुः ॥ शिरोमध्ये महादेवो ब्रह्मा तु हृदये स्थितः ॥ ५० ॥ आदित्या रश्मयो वालाश्चक्षुषी शशिभास्करौ ॥ जंघे तु वसवः साध्याः सर्वसंधिषु देवताः ॥ ५१ ॥ जिह्वा वैश्वानरो देवः सत्या देवी सरस्वती ॥ मरुतो वरुणश्चैव जानुदेशे व्यवास्थताः ॥ ५२ ॥

न्द्रियमें चिद्रूपसे वर्तमान तुमही हो ॥ ४७ ॥ नित्य पापरहित कर्मोंद्वारा सत्यताको प्राप्त हुए शत्रुमित्रमें समान दृष्टि रखनेवाले जितेन्द्रिय मुनिजनोंसे सेवित ॥ ४८ ॥ देवता सिद्ध और मुनिजनोंसे स्तूयमान होकर (मधुसे बद्ध हुए महेन्द्र नामक जीवने स्तुतिव्याजसे सिद्ध हो सद्गुरुसे बोधित होकर ॥ ५० ॥
हरिने) अपने सर्वात्मक देह हयशिरको स्मरण किया ॥ ४९ ॥ वह सर्वदेवमय अपना वेदमय रूप करते हुए शिरके मध्यमें महादेव और हृदयमें ब्रह्मा स्थित हुए ॥ ५० ॥ सूर्यकी किरण बालचन्द्र सूर्य नेत्र हुए वसु साध्य जंघाओंमें और सम्पूर्ण संधियोंमें देवता हुए ॥ ५१ ॥ जिह्वामें अग्नि देवता सत्या

देवी वाणीरूप; मरुत और वरुण जानुदेशमें स्थित हुए ॥ ५२ ॥ इस प्रकार देवताओंको महाअद्भुत रूप करके क्रोधसे लाल नेत्र कर मोहरूपी असुरको पीडित किया ॥ ५३ ॥ उस समय मधुके मेदरूपी जलसे पूर्ण पृथ्वी दीखने लगी. जैसे घनकुचासे युक्त प्रमदा शुक्लवर्ण धारण किये शोभित होती है, त्वचा रुधिर मांस मज्जा अस्थि मेद शुक्र धातुओंसे रचित शरीर मोहमें मेदमात्र पर्यन्त अवशिष्ट रहा अर्थात् अज्ञानलेशसे पूर्ण हुई पृथ्वी दीखने लगी ॥ ५४ ॥ हे राजन् ! तबसे यह पृथ्वी स्निग्धरूप हो मेदिनी नामसे विख्यात हुई और सहस्रों दैत्योंद्वारा यह नाम प्रतिष्ठित किया गया है. यदि अज्ञान न हो तौ ज्ञानके होतेही शरीरपात होजाता है ॥ ५५ ॥ इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे भविष्यपर्वणि भाषायां षड्विंशतितमोऽध्यायः ॥ २६ ॥

एवं कृत्वा तथा रूपं सुराणामद्भुतं महत् ॥ असुरं पीडयामास क्रोधाद्रक्तान्तलोचनः ॥ ५३ ॥ मधोर्मेदोऽम्बुपूर्णा च पृथिवी समदृश्यत ॥ प्रमदेव घना चैव शुक्लांशुकनिवासिनी ॥ ५४ ॥ मेदिनीत्येव शब्दश्च लब्धः पृथ्व्याः नरोत्तम ॥ नामासुरसहस्रेण धरण्यां संप्रतिष्ठितम् ॥ ५५ ॥ ॥ इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे भविष्यपर्वणि षड्विंशतितमोऽध्यायः ॥ २६ ॥ वैशम्पायन उवाच ॥ मधोर्निपतनं दृष्ट्वा सर्वभूतानि पुष्करे ॥ प्रहृष्टानि प्रगायन्ति प्रनृत्यंति च सर्वशः ॥ १ ॥ सुपार्श्वो गिरिमुख्यस्तु काञ्चनैः शिखरोत्तमैः ॥ बहुधातुविचित्रैश्च खं लिखन्निव चाबभौ ॥ २ ॥ गिरयश्चाभिशोभन्ते धातुभिः समराजिताः ॥ प्रांशुभिः शिखराग्रैश्च सविद्युत इवाम्बुदाः ॥ ३ ॥ पक्षवातोद्धतो रेणुश्चूर्णैः साञ्जनवालुकैः ॥ छादयन्पर्वताग्राणि महामेघ इवाबभौ ॥ ४ ॥

वैशंपायन बोले; परम व्योमाख्य कारणब्रह्ममें अज्ञान मोहरूप दैत्यका पतन देखकर सम्पूर्ण प्राणी प्रसन्न हो नचने और गाने लगे अर्थात् अब उपदेश लगकर कारणब्रह्ममें प्रवेश हो सकेगा ॥ १ ॥ वह पूर्वोक्त सुन्दर पार्श्ववाला गिरिमुख्य अर्थात् दिव्यदेहभी बहुतसी धातुसे विचित्र आकाशको लिखता हुआसा प्रकाशित हुआ ॥ २ ॥ उसके निकट धातुओंसे रंजित दूसरे पर्वत शोभित होने लगे. उनके ऊंचे शिखर बिजलीयुक्त बादलकी समान शोभित हुए ॥ ३ ॥ पक्षपवनसे उठी हुई धूरि और चूर्ण और रेतके संग पर्वतके अग्रभागको आच्छादन करती हुई महामेघकी समान शोभित हुई ॥ ४ ॥

मेघोंसे छुए हुए शिखर पक्षसे विक्षिप्त वृक्ष कांचनके उद्भेदसे अधिकतर पर्वत आकाशमें स्थित हुए (आकाश हृदयाकाश) ॥ ५ ॥ पक्षवाले शिखरयुक्त सुवर्णकी धातुओंसे रंजित पवनसे समुद्धूत हुए विहंगमोंको त्रासित करते हैं ॥ ६ ॥ वे सम्पूर्ण सुवर्णके पर्वत स्फटिक मणियोंसे युक्त सूर्यकान्त चंद्रकांत मणियोंसे निर्मल ॥ ७ ॥ महापर्वत हिमवान् श्वेतधातुओंसे अर्चित सुवर्णकी समान प्रकाशित पर्वतोंके अग्रभाग और सूर्यकी किरणके समान प्रकाशित ॥ ८ ॥ पक्षान्तरसे निकले हुए प्रकाशमान मणियोंसे प्रकाशित ताम्रपुष्प युक्त शिखरोंद्वारा अपने तेजसे

मेघसंश्लिष्टशिखराः पक्षविक्षिप्तपादपाः ॥ काञ्चनोद्भेदबहुलाः खे तिष्ठन्तीव पर्वताः ॥ ५ ॥ पक्षवन्तः सशिखरा हेमधातुभिरञ्जि-
ताः ॥ पवनेन समुद्धूतास्त्रासयन्ति विहङ्गमान् ॥६॥ काञ्चनाः पर्वताः सर्वे स्फटिकैर्मणिभिश्चिताः॥ सूर्यकान्तैश्च बहुभिश्चन्द्रकान्तैश्च
निर्मलाः ॥ ७ ॥ हिमवांश्च महाशैलः श्वेतैर्धातुभिराचितः ॥ कांचनैः शिखराग्रैश्च सूर्यपादप्रकाशितः॥ ८ ॥ मणिभिश्च प्रकाशद्भिः
पक्षान्तरविनिःसृतैः ॥ ताम्रपुष्पैश्च शिखरैर्दीप्यमानैः स्वतेजसा ॥ ९ ॥ मन्दरश्चोग्रशिखरः स्फाटिकैर्मणिभिश्चितः ॥ वज्रगर्भो
निरालम्बैः स्वर्गोपम इवाबभौ ॥१०॥ सहस्रशृङ्गः कैलासः शिलाधातुविभूषितः॥ तोरणैश्चैव निबिडैः प्रांशुभिश्चैव पादपैः ॥ ११॥
प्रवादयद्भिर्गन्धर्वैः किन्नरैश्च प्रगायिभिः ॥ देवकन्याङ्गरागैश्च प्रक्रीडाद्रिरिवाबभौ ॥ १२ ॥ मधुरैर्वाद्यगीतैश्च नृत्यैश्चाभिनयोद्गतैः ॥
शृङ्गारैः साङ्गहारैश्च कैलासो मदनायते ॥ १३ ॥ आदित्याभासिभिः शृङ्गैर्भिन्नाञ्जनचयोपमैः ॥ विन्ध्यो नीलाम्बुदश्यामो विभिन्न
इव तोयदः ॥ १४ ॥

प्रकाशमान ॥ ९ ॥ मन्दर उग्र शिखरवाला स्फटिकमणियोंसे शोभित वज्रगर्भ निरालम्ब स्वर्गकी समान शोभित हुआ ॥ १० ॥ सहस्रशृंग कैलास शिलाधातुओंसे भूषित बडी बडी घनी तोरणोंसे युक्त ऊंचे वृक्षोंसे व्याप्त ॥ ११ ॥ गन्धर्वोंसे गाया हुआ किन्नरोंके शब्दोंसे परिपूर्ण देवकन्याओंके अंगरागोंसे क्रीडा करते हुएकी समान शोभित हुआ ॥ १२ ॥ मधुर बाजे और गीतोंसे अभिनय करते हुएकी शृंगार और अंगहारद्वारा कैलास कामरूप हो रहा है ॥ १३ ॥ सूर्यकी समान प्रकाशमान भिन्नांजनचयके समूहोंसे नीलमेघकी समान श्याम भिन्नमेघकी समान विंध्याचल

दीखने लगा. (मेरुपृष्ठरूप भ्रूमध्यमेंसे प्रकाश हो निकलता है) ॥ १४ ॥ महाबलिष्ठ मेरुपृष्ठमें सब प्राणियोंकी धातुके निमित्त मेघजालकी समान उत्तम जलको उगलने लगे ॥ १५ ॥ चित्रविचित्र शिला और बहुतरूपवाली धातुएं अपने गुहाद्वारसे स्फटिकमणिकी समान निर्मल जल बहाने लगीं ॥ १६ ॥ ग्रीष्मान्तमें वायुसे संयुक्त हुए बिजलीसहित वनकी समान पुष्पोंसे चित्रविचित्र हुए वृक्ष शोभित होने लगे ॥ १७ ॥ कनकअलंकारसे भूषित हाथी पक्षियोंकी कान्तिसे लीन हुए लता और वृक्षोंमें आश्रय लेने लगे ॥ १८ ॥ लम्बायमान वायुसे चलायमान फूलोंवाले वृक्ष वैशाखमासकी समान ॥ १९ ॥

धात्वर्थं सर्वभूतानां मेरुपृष्ठे महाबले ॥ निर्ममुर्विमलं तोयं मेघजालैरिवोत्तमैः ॥ १५ ॥ शिलाभिर्बहुचित्राभिर्धातुभिर्बहुरूपिभिः ॥ प्रस्रवद्भिर्गुहाद्वारैः सलिलं स्फटिकप्रभम् ॥ १६ ॥ ग्रीष्मान्ते वायुसंमूढा घना इव सविद्युतः ॥ चित्रैः पुष्पैस्तरुगणाः शोभन्त इव भूषिताः ॥ १७ ॥ नागाः कनकसंभूतैर्विचित्रैरिव भूषिताः ॥ विहंगमाभिर्लीनाश्च लतास्तरुसमाश्रिताः ॥ १८ ॥ विलम्बन्त्यः सपुष्पाश्च नृत्यन्ते वायुघट्टिताः ॥ पवनेन समुद्भूता महता माधवेऽहनि ॥ १९ ॥ मुमुचुः पुष्पसंघातं तोयं वेलेव वर्षति ॥ बलवद्भिश्च विपुलैः शाखास्कन्धावरोहिभिः ॥ २० ॥ पादपैर्वर्णबहुलैर्ध्रियते च वसुन्धरा ॥ मधुप्रिया मधुकरा मधुमत्ता विहङ्गमाः ॥ घोषयन्तीव गायन्तः कामस्यागमसंभवम् ॥ २१ ॥ विष्णुर्मधोर्निहन्ता च चकार मधुवाहिनीम् ॥ नदीं प्रस्रवनिर्भेदां सुतीर्थां बहुलोदकाम् ॥ २२ ॥ अङ्गारवर्णसिकतां मधुतीर्थां मनोरमाम् ॥ विमलैरम्बुभिः पूर्णां पुष्पसंचयवाहिनीम् ॥ २३ ॥ विवेश पुष्करं सा तु ब्रह्मणो वाक्यचोदिता ॥ ऋषिभिश्चानुचरितां ब्रह्मतन्त्रनिषेविभिः ॥ २४ ॥

फूलोंको त्यागने लगे. जैसे वेलामें जलवर्षा होती है और बडे बलवाले शाखा और स्कंधमें आरोहण करनेवाले ॥ २० ॥ बहुत सारे वृक्षोंसे पृथ्वी धारित होने लगी. मधुके प्रिय मधुकर मधुमत्त विहंगम गाते हुए मानो कामका आगमन सूचन करते हैं ॥ २१ ॥ मधुहंता विष्णुने बहुत जलयुक्त मधुवाहिनी निर्भेद सुतीर्थ नदी निर्माण की ॥ २२ ॥ जो अंगारवर्णवाली रेतसे युक्त सुतीर्थ और मनोरमा उज्ज्वल जलसे पूर्ण पुष्पसमूहकी वहानेवाली थी ॥ २३ ॥ इस प्रकार वह स्वमकला मधुमती भूमा " नेह नानास्ति किंचन " इस श्रुतिसे प्रबोधित योगीके हृदयाकाशमें लीन हो गई जो ऋषिरूप

योगियोंद्वारा अनुसरण की गई थी ॥ २४ ॥ इस प्रकार योगके उपसर्ग लीन होनेपर ब्रह्मविद्यासंज्ञक 'अहं ब्रह्मास्मि' वाक्यवाली अन्तःकरणकी वृत्ति उदय होती है। धात्री (मूलप्रकृति) कपिल (त्रिगुणात्मकत्व मिश्ररूपसे) गौ (आत्मतत्त्व विद्यावृत्ति होकर) पयः क्षरते (ब्रह्मको प्रकाश करती है) मधुर (आनंदमात्र होनेसे) यज्ञे (योगके अधिक विस्तार होनेपर) ब्रह्मवाक्य (अहं ब्रह्मास्मि) से प्रेरित हुई प्रगट होती है ॥ २५ ॥ फिर वह पृथ्वी कूटस्थ वस्तुको धारण करनेमें समर्थ होकरभी अपने उपादान जलके प्रति प्राप्त होकर गतवती होती हुई उस समय योगी ब्रह्म निर्विकल्प समाधिसे आत्माको भजता है ॥ २६ ॥ और वेदवाणीसे समुद्भूत ज्ञानमात्र अज्ञानका विरोधी ब्रह्म सर्वदा आकाशमें स्थित है अर्थात् आकाशभी उसके

धात्री कपिलरूपेण गोर्भूत्वा क्षरते पयः ॥ मधुरं वितते यज्ञे ब्रह्मणो वाक्यचोदिता ॥ २५ ॥ शिरश्च पृथिवी भूतं संधातुं प्राप्तवा-न्महीम् ॥ शुद्धं च भजते लोकं शाश्वतं परमाद्भुतम् ॥ २६ ॥ सरस्वत्याः समुद्भूतं ब्रह्मक्षेत्रे तमोनुदम् ॥ मरुतीर्थमतिक्रम्य पुष्क-रेषु विसर्पति ॥ २७ ॥ सुचारुरूपा धर्मज्ञा अजारूपेण छादयन् ॥ रूपं कनकवर्णाभं तपोयुक्तेन तेजसा ॥ २८ ॥ अजगन्धकृतो-न्मुक्तः संभूतः पर्वतो महान् ॥ गुरुद्वारगुणप्राणः शाश्वतः सिद्धसेवितः ॥ २९ ॥ वेदिकाभिः सुचित्राभिः काञ्चनाभिर्विराजितः ॥ पुष्कराणि परीतानि त्वष्ट्रा विपुलदक्षिणः ॥ ३० ॥

आश्रितही है ॥ २७ ॥ सुन्दररूप धर्मके जाननेवाली अजा (अहंकारादि रूपसे माया) कनकवर्ण ब्रह्मको आच्छादन करनेवाली है वह आच्छादन तपयुक्त चित्तसे होता है, यह अध्यास अदृष्टवशसे होता है ॥ २८ ॥ वह नदी सन्मात्र लेशसे मुक्त अर्थात् अहंकारादिकोंसे जाग्रत अवस्थामें सत्की समान भासमान महापर्वत (गुरुद्वार) शाश्वतरूप सिद्धजनोंसे शोभित सुवर्णके समान रूपको साक्षात् करती है ॥ २९ ॥ जो कहो कि सुषुप्तिआदिमें मनके संयोगाभावसे संसारी अहमर्थसे प्रकाशित होता है उस समयभी इसको अनात्मत्व नहीं होता उसपर कहते हैं कि वह पर्वत जाग्रत् स्वप्न सुषुप्ति तीन क्रीडाके स्थानवाली वेदिकाओंसे विराजित है, जो चित्रविचित्ररूप है. और अहंकारादि उत्थानकारण मूल अज्ञान

विचित्र जगत्के निर्माण करनेवाले ईश्वरसे व्याप्त है. हे राजन् ! चित्प्रकाश्य चित्स्वभावको नहीं भजता है ॥ ३० ॥ जिस प्रकार उस महामेरु पर्वत (शरीर) का रूप पांच धातु (महाभूतशरीरके कारण) से व्याप्त है वह अहंकाररूपसे अद्भुत दर्शन होकर अनिर्वचनीय चेतनासे सम्पन्न होता है ॥ ३१ ॥ फिर शास्त्रदृष्टिसे ब्रह्मरूप हो "अहं मनुरभवम्" इति श्रुतेः । तत्त्वको कथन करता है, मैंही इस धर्मचारी देहको मनके संकल्पमात्रसे करूंगा सो केवल देहमात्रही नहीं किन्तु सम्पूर्ण लोकमात्रको कर सकता हूं. तथा पृथ्वी शरीरसम्बान्धिनी चेतनाको बहुत प्रकारसे कर सकता हूं. यह सब मनकेही संकल्पसे हो सकता है यह सब आत्मा है यह इसका तात्पर्य है ॥ ३२ ॥ सर्वज्ञता कहते हैं धातुलक्षणवाली पांच इन्द्रियोंसे तीनों

महामेरोर्यथा रूपं पञ्चभिर्धातुभिर्वृतः ॥ चेतनायाभिसंपन्नो रूपेणाद्भुतदर्शनः ॥ ३१ ॥ करिष्याम्यहमप्येतन्मनसा धर्मचारिणम् ॥ रूपं बहुविधं लोके पार्थिवीं चेतनां तथा ॥ ३२ ॥ त्रींश्च लोकान्प्रपश्येयं पञ्चभिर्धातुलक्षणैः ॥ षष्ठेन च ससर्जेयं मनसा धर्मचारणीम् ॥ ३३ ॥ सङ्गेषु भावमोहाभ्यां पश्यन्ति च समृद्धयः ॥ विमुक्ताः सर्वसङ्गेभ्यो धारयन्ति परिग्रहान् ॥ ३४ ॥ न च विन्देत मां कश्चिन्मनसा कामरूपिणम् ॥ पञ्चधातुनिबद्धश्च नानाभाषितचोदनाः ॥ ३५ ॥ ये च विष्णुमधीयन्ते बहुधा कामविग्रहैः ॥ ते मां पश्येयुरव्यक्तं तपसा दग्धकिल्बिषाः ॥ ३६ ॥

लोकोंको जानता हूं (आत्मज्ञान कहते हैं) और छठे मनसे धर्मचारिणी आत्माकी सदृश असंग चिदाकार वृत्तिभी बना सकता हूं ॥ ३३ ॥ दीयमान विद्याके अधिकारियोंको कहते हैं. जो सम्यक् ऐश्वर्यमान् पुरुष है अर्थात् संकल्पमात्र भ्रमत्वसे सिद्धिको देखते हैं इसी कारण सम्पूर्ण संगोंसे विरक्त हुए बुद्धि इन्द्रिय मन प्राणोंको विषयोंसे रोकते हैं वे अधिकारी हैं ॥ ३४॥ कामरूपवाले मुझको मन करके कोईभी नहीं जान सकता कारण कि वे पंचेन्द्रियोंसे अनेक प्रकार बंध रहे हैं और "अपामसोममृता भवेम" आदि नानार्थवाद फलमें पडे हैं ॥ ३५ ॥ जो रामकृष्णादि अनेक रूप धारण करनेवाले विष्णुको प्रणवादि उच्चारण कर देखते हैं अर्थात् प्रथम स्थूल पूजासे अन्तर दृढ हो जाय इस कारण बाह्यसामग्रीका वर्णन किया

जब सब जगत् लीन हो जाय तब योगीको अव्यक्तरूपका भान हो जाता है ॥ ३६ ॥ जो धर्ममार्गमें स्थित हो मेरे विषे प्राप्त होंगे वे स्वर्गजित् होकर क्रमरहित हो मुझको देख सकते हैं ॥ ३७ ॥ और जो मेरुपृष्ठमें प्रांशुरूप पर्वत है अर्थात् भ्रूमध्यमें समष्टि अहंकार है इसपर स्थित हो अविद्याके संग युद्धमें इन्द्रियरूप प्राणत्यागसे निर्मल हो ॥ ३८ ॥ अप्सराओंके साथ समागमको प्राप्त हो मनकी समान वेगवान् होकर विचरें. इस प्रकार नंदन और काम्यक वनको प्राप्त हो ॥ ३९ ॥ इस विद्याको प्राप्त हुए मेरे भक्त अनेक प्रकारके बहुतसे व्रत करके शरीरको त्याग करेंगे ॥ ४० ॥ सिद्धिको प्राप्त हो वे मनुष्य इच्छानुसार कामनाओंको प्राप्त होते हैं उस लोक और इस लोकमें यथासुखसे जा सकते हैं ॥ ४१ ॥ जब तपसे उक्त

ये च मामभिरोहेयुर्नरा धर्मपथे स्थिताः ॥ तेऽपि स्वर्गजितः सन्तः पश्येयुर्मां गतक्लमाः ॥ ३७ ॥ यश्चैव पर्वतः प्रांशुर्मेरुपृष्ठे व्यवस्थितः ॥ एतमारुह्य युध्येयुः प्राणत्यागेषु निर्मलाः ॥ ३८ ॥ अप्सरोभिः समागम्य विचरेयुर्मनोजवाः ॥ नन्दनं वनमारुह्य काम्यकं च महद्वनम् ॥ ३९ ॥ इमां विद्यां समास्थाय मद्भक्ताः पुष्करेष्विह ॥ शरीरं क्षपयिष्यन्ति व्रतैर्बहुविधैः कृतैः ॥ ४० ॥ सिद्धिं प्राप्य क्रमेयुस्ते कामैर्बहुविधैर्नराः ॥ इमं लोकममुं चैव संपतेयुर्यथासुखम् ॥ ४१ ॥ गौरी सिद्धेति व्याख्याता त्रिषु लोकेषु विद्यया ॥ प्रभावं तपसा वृत्तं दर्शयन्ति समाहिताः ॥ ४२ ॥ षण्णां ज्ञानाभिसंधीनामभिज्ञानात्ससंग्रहाः ॥ भवेयुस्ते निरारम्भा धातुनिर्मुक्तबन्धनाः ॥ ४३ ॥ सहस्रगुणमप्यत्र दत्त्वा दानफलादिव ॥ अवमानेन विप्राणां मनःशुद्धेन कर्मणा ॥ ४४ ॥ सर्वत्रैवाप्रमेयेण अत्यन्तं फलमाप्नुयुः ॥ अमुष्मिल्लोके धर्मज्ञा सह सर्वकुलोद्भवैः ॥ ४५ ॥

प्रकारका प्रभाव हो जाता है तब विद्या अर्थात् शास्त्राचार्यके उपदेशज्ञानसे गौरी परब्रह्मविदको त्रिलोकीमें सिद्ध हुई दीखती है ॥ ४२ ॥ वे योगी जन ज्ञानवृत्तिमें रहनेसे धातुनिर्मुक्त होते हैं अर्थात् उनका बंध छूट जाता है और वे ज्ञान होनेसे निरालम्ब हैं ॥ ४३ ॥ जैसे कोई अपराधी सहस्रगुण राजाको कर देकर दानफलसे राजाकी प्रीतिसे मुक्त होता है इस प्रकार शुद्धमन ब्राह्मणोंके सन्मानसे और शुद्ध कामरहित मनसे बंधनसे मुक्त हो जाते हैं ॥ ४४ ॥ सब जगह असंकुचित मनसे अत्यन्त दुःखका परिहार परमेश्वरकी प्रीति ब्रह्मलोकमें पूर्वजोंके सहित उनको प्राप्त होती है जो धर्मज्ञ

हैं ॥४५॥ जिन यजमानोंका ब्राह्मणकुलके साथ यज्ञमें सान्निध्य होता है वे यजमानादितीं वारंवार यज्ञमें अभिषेकको प्राप्त हो पूर्वोक्त फलको प्राप्त होते हैं ॥४६॥ जैसे दानयज्ञसे सम्पत्ति मानते हो, तथा ब्रह्मविद्याकी सम्पत्ति तपोधनके आगे स्थित मानते हो तो ऐसा न मानिये, कारण कि भूतोंपर अनुग्रह करनेके निमित्त धर्मचारिणी अर्थात् बाह्य दान यज्ञ दानादिसे बाह्य सम्पत्ति साध्य हैं वह परिमित सम्पत्ति है और मानसी होनेसे अनन्त है ॥ ४७ ॥ यदि ऐसा है तो दानादिक करनेसे क्या लाभ है. यह गौरीरूप आत्मा सत्यस्वरूप और अबाधित है. यह सत्यरूप होगी इसमें सन्देह नहीं. चित्तशुद्धि आदिसे जो इस प्रकार धर्माचरण करता है वह अफलताको प्राप्त नहीं हो सक्ता ॥ ४८ ॥ इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे भविष्यपर्वणि भाषायां

येषामिह च सान्निध्यं यज्ञे ब्राह्मणसंकुले ॥ ते भूयो यजमानाद्या अभिषिच्य पुनः पुनः ॥ ४६ ॥ तथा तां मन्यसे गौरीं मनसा धर्मचारिणीम् ॥ अनुग्रहाय भूतानां तन्ममाग्रे तपोधने ॥ ४७ ॥ सत्य एष परोविद्ये भविता नात्र संशयः ॥ नाफलो विद्यते धर्मश्चरितो धर्मचारिणा ॥ ४८ ॥ इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे भविष्यपर्वणि सप्तविंशतितमोऽध्यायः ॥ २७ ॥ वैशम्पायन उवाच ॥ दिशं जिगमिषुर्दिव्यामुत्तरां सत्यसाधनः ॥ तथा स धातुनिचये पुण्ये पर्वतरोधसि ॥ १ ॥ विष्णुः परमधर्मात्मा एकपादेन तिष्ठति ॥ दश वर्षसहस्राणि पुष्करे पुष्करेक्षणः ॥ २ ॥ आत्मन्यात्मानमाधाय तपसा ब्रह्मसंभवः ॥ घटते कर्मणोग्रेण लोकमुत्थानकारणात् ॥ ३ ॥ भासुरो भस्मनाच्छाद्य गात्राणि स्वयमात्मनः ॥ अष्टौ वर्षसहस्राणि सहस्रं च तपोधनः ॥ ४ ॥ तेजसा तेन ज्योतींषि विभाव्य ब्राह्मणर्षभः ॥ तिष्ठते नभसो मध्ये योगात्मा भावयन् जगत् ॥ ५ ॥

सप्तविंशतितमोऽध्यायः ॥ २७ ॥ वैशंपायन बोले; मोक्ष अवस्थाको प्राप्त होनेवाले उत्तरदिशारूप मोक्षमें जानेकी इच्छासे उस धातुसमूहवाले पर्वत (नासामूल भ्रूसंधि) में ॥ १ ॥ परम धर्मात्मा विष्णु हृदयरूपी आकाशमें विश्व तैजस प्राज्ञ तुरीय चार चरणोंमेंसे तुरीयपादसे स्थित होता है. अर्थात् निर्विकल्प समाधिसे स्थित होता है. वह पुष्करलोचन दश सहस्र वर्ष स्थित हो ॥ २ ॥ शुद्धआत्मामें मायोपाधिक शरीरको लीन कर उग्रकर्मसे मुक्तिके निमित्त चेष्टा करता है ॥ ३ ॥ भस्मसे अंगोंको आच्छादन कर नौ सहस्र वर्षतक वह तपोधन ॥ ४॥ ब्राह्मणश्रेष्ठ अपने तेजसे प्रसिद्ध तारकादि ज्योति-

योंको व्याप्त करके सब जगत्‌को भावना करते हुए योगात्मा आकाशके मध्यमें स्थित होते हैं ॥ ५ ॥ सोम अर्थात् चन्द्रमाके विषयका अधिकार करके मनसे मनको धारण करके वह धर्मात्मा ब्राह्मी सिद्धिको प्राप्त होकर ॥ ६ ॥ दिवि भुविके मध्यमें सब ओरसे देख प्रकाश कर्म बहुरूप सम्पदासे करता हुआ ॥ ७ ॥ वह माहेश्वर गूढात्मा वृष (धर्म) रूपसे स्थित होता है, वह धर्म अहिंसागर्भ जपादिरूप निष्काम सकाम दक्षिण चरण है और हिंसागर्भ यज्ञादिरूप सकाम निष्काम उत्तर चरण है. उसमें निष्काम जपादिरूप चरणको आगे करके ॥ ८ ॥ नौ सहस्र वर्षतक महायोगी महादेव ब्रह्म-संभव नियमसे युक्त होता है ॥ ९ ॥ अब योगज धर्मसे विश्वको द्योतन करते हुए वृषरूप शंकरसे मेघकी उत्पत्ति कहते हैं. पश्चात् शिवके अन्तर

सोमो विषयमाक्षिप्य मनसा धारयन्मनः ॥ युक्तः परमधर्मात्मा ब्राह्मीं सिद्धिमुपागतः ॥६॥ संप्रदृश्यत सर्वत्र दिवि भुव्यन्तरे तथा ॥ ज्योतिष्णु कम कुर्वाणो बहुरूपः स सम्पदा ॥ ७ ॥ महेश्वरोऽतिगूढात्मा वृषरूपेण तिष्ठति ॥ उद्धृत्य दक्षिणं पादं वायुभक्षः समाहितः ॥ ८ ॥ अष्टौ वर्षसहस्राणि सहस्रशतमेव च ॥ महायोगी महादेवो नियमाद्ब्रह्मसंभवः ॥ ९ ॥ अथ वायुर्घनीभूतो अन्ते चरति गोपतेः ॥ फेनीभूतं समुद्गारैः पवनं निर्गिरन्मुखात् ॥ १० ॥ स निष्क्रान्तस्ततो वक्त्रात्प्राणेन परमात्मवान् ॥ निर्यासभूतो पतितो नेवार्द्रो नेव पार्थिवः ॥ ११ ॥ स फेनो वारिणाविश्य चचार वसुधातले ॥ नेवार्द्रो नैव शुष्काङ्गो वायुसंघातमागतः ॥ १२ ॥ तत्कालफेनमुत्क्षिप्य पवनः सह वारिणा ॥ निरालम्बे निरालंबस्त्वभ्राणि समपद्यत ॥ १३ ॥ ते क्षिपन्ति पयो भूमा वात्मानं स्वेन घट्टिताः ॥ नीलमेघारुणप्रख्या नेवार्द्रा नेव पार्थिवाः ॥ १४ ॥

घनीभूत अर्थात् निपीडित रुईकी तरह घनीभूत हुआ वायु होता है तब फेनीभूत वायुको मुखसे बाहर निकालते हैं ॥ १० ॥ वह प्राणद्वारा मुखसे निकलकर वायुसे वृक्षके मदरूप होकर गिरा न वोह गीला था और न पाषाणादिकोंकी समान शुष्क था ॥ ११ ॥ वह शिवके मुखसे निकला फेन चर्मकोशाकार जलको ग्रहण कर न गीला न सूखा आकाशमें विचरता वायुके संघातको प्राप्त हो गया ॥ १२ ॥ तब उसी समय वायु जलके सहित फेनको उठाके आश्रयरहित आकाशमें प्राप्त करता है, जिससे मेघ होते हैं ॥ १३ ॥ वे परस्पर स्वयं विघट्टित होनेसे घनत्व और नीलवर्णको प्राप्त हुए

सूर्यद्वारा घनीभूत हो पृथ्वीपर जल बरसाते हैं ॥ १४ ॥ फिर सर्वत्र जानेवाला वायु ब्राह्म ऐश्वर्यको प्राप्त होकर एक सहस्र वर्षतक तप करता हुआ ॥ १५ ॥ और अग्निभी बहुतसी जटाओंको धारण कर तथा चीर वल्कल वस्त्र पहरे अनाहार उस पुष्करमें तप करने लगा अर्थात् वायुसे अग्नि हुआ ॥ १६ ॥ और उनको तप करते चार सहस्र वर्ष बीच गये तब तपके तेजसे महान् अग्नि प्रवृत्त हुआ ॥ १७ ॥ वह स्वर्गवासी अन्धकारहारी प्रकाश करके स्वर्गमें दिव्य ब्राह्मणरूप धारण कर तप करता रहा ॥ १८ ॥ स्वर्ग प्रकाश करनेवाली अग्निका जो तम है वह मनुष्योंके लोकमें स्थित है अर्थात् धूममार्ग मनुष्योंका है उस तेजका संहार (समूह) रूप सूर्य है ॥ १९ ॥ वह सब भूत और मनुष्योंके तेजको आक्षिप्त करके वर्तता है

ब्राह्मीं मूर्तिं समाधाय वायुः सर्वत्रगो वशी ॥ समाः सहस्रं संपूर्णं चचार विपुलं तपः ॥ १५ ॥ वह्निर्बहुजटी भूत्वा चीरवल्कलवासभृत् ॥ तपस्तप्यदनाहारो मौनमास्थाय पौष्करे ॥ १६ ॥ वर्षाणां च सहस्राणि त्रीणि चैकं च यत्नतः ॥ तस्याग्नेस्तेजःसंभूतो महानाग्निः प्रवर्त्तते ॥ १७ ॥ स्वर्गप्रकाशं कृत्वा च स्वर्गवासी तमोनुदः ॥ दिवि भूतप्रकाशाख्यस्तपसा ब्रह्मसंभवः ॥ १८ ॥ तत्तमो भुवि राजेन्द्र मानुषेषु प्रतिष्ठितम् ॥ भास्करस्तेजसंहारस्ततो भवति सत्तमः ॥ १९ ॥ मर्त्यानां सर्वभूतानां तेज आक्षिप्य वर्तते ॥ नतु योगबले राजन् ब्राह्मणस्य विशेषतः ॥ २० ॥ तत्तमो नाशयेद्रात्रौ नाप्यह्नो भविताऽद्वयम् ॥ पुष्पमित्रो महातेजा यक्षः सर्वत्रगो वशी ॥ तपश्चरति धर्मात्मा पुष्करेषु समाहितः ॥ २१ ॥ महेन्द्रशिखराद्धारा यावन्त्यो यान्ति मेदिनीम् ॥ तावत्स्वरूपमास्थाय तिष्ठते निखिलाः समाः ॥ २२ ॥

परन्तु योगबलसे ब्राह्मणोंका तेज नहीं हरण करता है ॥ २० ॥ वह उक्त गुणके सूर्य उस अंधकारको रात्रिमें नाश करता हुआ अर्थात् रात्रिमेंभी आराधन करनेवालेकी धूमगति नाशते हुए अपनी गति प्रदान करते हैं और दिनमें मृत्युको प्राप्त होनेपरभी अयोगीको अर्चिरादि मार्गकी प्राप्ति नहीं होती. अद्वैतवादी पुरुषकोही दिनरात किसी समय मरे तोभी श्रेष्ठगति प्राप्त होती है और स्वस्थ कुबेर महातेजस्वी धर्मात्मा आकाशमें स्थित हो तप करता है ॥ २१ ॥ महेन्द्र शिखरसे जितनी धारा पृथ्वीमें आती हैं उतनेही स्वरूपमें स्थित हो बहुत समयतक तप करता है ॥ २२ ॥

और पृथ्वीमें जानुके बलसे स्थित हुआ आकाशमें सहस्र वर्षपर्यन्त बिना पलक लगाये ज्योति देखता हुआ जगत्‌को देखता है ॥ २३ ॥
और जब सूर्य मध्यमें प्राप्त हुए तब सूर्यकी किरणोंसे उनके अनेक नेत्र प्रकाशित हुए ॥ २४ ॥ वे नेत्रोंकी कांति सूर्यमंडलसे सहस्रों ऐसे प्रकाशित हुई जैसे
विद्वानोंके तेजसंयोगसे अग्नि प्रकाशित होती है ॥ २५ ॥ वह कुबेर विस्फुलिंगयुक्त नेत्र अन्तभागसे आदित्यके प्रति वर्तता है और देहारंभ कर्म क्षय
होनेके पीछे; अथवा युगान्तके समय ॥ २६ ॥ बहुत तापयुक्त फिर होकर वसुधातलमें स्थित हो सूर्यकी किरणोंके आश्रय सहस्र वर्षतक तप करते

जानुभ्यां पतितो भूमौ ज्योतिर्नभसि पश्यति ॥ समासहस्रं निखिलं नेत्रैरनिमिषैर्जगत् ॥ २३ ॥ नेत्राणि बहुधा तस्य नेत्रान्तैराभिनिः-
सृतः ॥ मध्यं दिनकरे प्राप्ते रश्मिवान्त्स परिग्रहे ॥ २४ ॥ ते रश्मयः प्रभानेत्रैः शतशोऽथ सहस्रशः ॥ रराज तेजः संयोगाद्विद्वद्भिरिव
पावकः ॥ २५ ॥ स विस्फुलिङ्गैर्नेत्रान्तैरादित्यमनुवर्त्तते ॥ कर्मणोऽन्ते युगान्ते वा जगतो बहुरूपिणः ॥ २६ ॥ बहुतापः पुनर्भूत्वा
विषण्णो वसुधा तले ॥ स यो रश्मिषु संपूर्णस्तपस्तेपे सुदारुणम् ॥ २७ ॥ निगृहीतेन्द्रियो भूत्वा अप्सरोभिर्लेलाम ह ॥ मेरोः
शिखरमासाद्य कामं कामेन निर्वमन् ॥ २८ ॥ तपः कामः स यक्षस्तु कुबेरो नरवाहनः ॥ विष्णुरेव तपोऽध्यक्षस्तेजसोऽन्ते
विजृम्भाति ॥ २९ ॥ नहि कश्चित्पुमानास्ति य एवं तप आचरेत् ॥ त्रिषु लोकेषु राजेन्द्र ऋते विष्णुं सनातनम् ॥ ३० ॥ वासुकिर्ब-
हुशीर्षस्तु नागेन्द्रो मौनमास्थितः ॥ तप आचरते सम्यक् निधाय मनसा मनः ॥ ३१ ॥

रहे ॥ २७ ॥ निगृहीत इन्द्रिय हो अप्सराओंके साथ रमते रहे. मेरुपर्वतको प्राप्त हो कामको कामके द्वारा भोगते हुए ॥ २८ ॥ तपकी इच्छासे वह
नरवाहन कुबेर तपमें विष्णुरूपही है यह जानना उचित है ॥ २९ ॥ कोईभी पुरुष नहीं है जो ऐसा तप करे. हे राजेन्द्र! त्रिलोकीमें सनातन विष्णुके सिवायं
कोईभी ऐसा नहीं है ॥ ३० ॥ वासुकी बहुत शिरवाले नागेन्द्र मौनको प्राप्त हो तप करने लगे. मनसे मनको रोक भली प्रकार तप करने लगे ॥ ३१ ॥

शेष सत्यधृति नाग बलवान् ब्रह्मसंभव धर्मात्मा वृक्षपर आरोहण कर नीचेको मुख कर लटकते हैं अर्थात् धूमपान करते हैं ॥ ३२ ॥ और विषको त्याग अपनी जिह्वासे शरीरको चाटते हुए पूर्ण सहस्र वर्षतक वह महात्मा निराधार रहे ॥ ३३ ॥ उस समय बहुतसा कालकूट विष प्राप्त हुआ उसने लोकोंको ग्रास कर लिया कहीं कोई सुखको प्राप्त न हुआ ॥ ३४ ॥ यह तीक्ष्ण विष सब सर्पोंमें अनुगत है और स्थावर जंगम सब भूतोंमें अनुगत है ॥ ३५ ॥ हे भारत! परस्पर प्राणग्राही क्रोधरूपसे तामसी तपपरिणामको प्राप्त होता है और बढा हुआ यह तीक्ष्णतासे अंगोंको नाश कर देता है ॥ ३६ ॥ तब महाभाग्यवान् ब्रह्माजीने प्राणियोंके हितकी कामनासे ब्रह्माक्षरयुक्त अहिंसावाले मंत्रकी रचना की ॥ ३७ ॥ गरुत्मान् सलिल मही और मेरे जीवनभूत द्वन्द्वकी रक्षा करे, अथवा ब्रह्मरूपी प्रणव अहिंसकरूप अक्षर हैं, यह अमृतका बीज है विस्तारित दीर्घ पक्ष और स्वरयुक्त वं

शेषः सत्यधृतिर्नागो बलवान् ब्रह्मसंभवः ॥ वृक्षमारुह्य धर्मात्मा अवाक्शीर्षोऽवलम्बते ॥ ३२ ॥ जिह्वाभिर्लेलिहानाभिर्गात्रजं विषमुत्सृजन् ॥ समाः सहस्रं सम्पूर्णं निराहारस्तपोधनः ॥ ३३ ॥ कालकूटं विषं तद्धि सुमहत्समपद्यत ॥ येन लोको ह्यभिग्रस्तो न सुखं विन्दते नृप ॥ ३४ ॥ सर्वत्रानुगतं तीक्ष्णं भुजङ्गेषु महीपते ॥ जङ्गमं स्थावरं चैव सर्वत्रानुगतं विषम् ॥ ३५ ॥ परस्परविवृद्धेन हिंसायुक्तेन भारत ॥ नाशयत्यात्मनोऽङ्गानि तेन तीक्ष्णेन भारत ॥ ३६ ॥ अथ ब्रह्मा महाभागो भूतानां हितकाम्यया ॥ मन्त्रं विसृजते राजन् ब्रह्माक्षरमहिंसकम् ॥ ३७ ॥ गरुत्मान्विततैः पक्षैर्नखाग्रैः सलिलं महीम् ॥ समासहस्रं संपूर्णं चूलाग्रेणावलम्बिना ॥ ३८ ॥

बीज तथा नखाग्ररूपी पंचांग प्रयोगसे युक्त अथवा ॐ वां गरुत्मान् हृदयाय नमः अंगुष्ठयोः । ॐ वीं गरुत्मान् शिरसे स्वाहा तर्जन्योः । ॐ वूं गरुत्मान् शिखायै वषट् मध्यमयोः । ॐ वैं गरुत्मान् कवचाय हुम् अनामिकयोः । ॐ वौं गरुत्मान् नेत्रत्रयाय वौषट् कनिष्ठयोः । ॐ वः गरुत्मान् अस्त्राय फट् करतलकरपृष्ठयोः । इसी प्रकार हृदयादि मूलमंत्र कहे हैं. जल वं बीजरूपी पृथ्वीको सहस्र वर्ष अर्थात् हकार सहस्र हकार सकार रेफोंके कूटवर्ण और पिछला स्वर मूलशिखा उसके आगे वषट्कारके अवलम्बनसे स्थित है. वषट् पंचाक्षर है इसका ब्रह्मा ऋषिः गायत्री छंदः गरुत्मान् देवता वं बीजम् हः शक्तिः लं कीलकं विषनाशने विनियोगः 'पर्णभारैः' यह ध्यानका श्लोक है. वह वर्णके भारसे सब पृथ्वीमें व्याप्त होकर स्थित हो रहे हैं और बाहर भीतर सूर्य वागादि ज्योतिद्वारा नखाग्रसे अवलम्बन किये व्याप्त है इन विचित्र पर्णोंसे पृथ्वी शोभाको प्राप्त होती है ॥ ३८ ॥

जिसमें ब्रह्म विचार किया जाता है उस वसुधारूप शरीरके गर्भमें विस्तीर्ण सब ओरसे फैले हुए पक्षरूपी इन्द्रियोंके कार्य समूहसे योगियोंकी दृष्टिसे शोभित होते हैं, जिसके यह इन्द्रियरूपी पर्ण प्रवृत्त हैं उसका शरीर बहुत प्रकारके विचित्र विषयोंसे शोभित होता है; जो शरीरके अन्तरमें सर्वात्मरूपसे विराजमान होता है जिससे शरीर शोभित होता है ॥ ३९ ॥ मंत्रजापका फल कहते हैं. हे भारत! जिस मंत्रके आवर्तन करनेसे सब प्राणी जीते हैं. हे मनुष्येन्द्र! इस लोकमेंभी और देवलोकमेंभी आवर्तन होता है जिस मंत्रसे निर्विषा पृथ्वी अर्थात् शरीरतलमें फैलनेवाली इन्द्रियादिसे नक्षत्रयुक्त स्वर्गकी समान शोभा होती है॥ ४० ॥ पुष्करके जलमें अर्थात् मायाशबलके आश्रयभूत निर्विशेष चैतन्यमें संसाररूपी नदीमें जाग्रत स्वप्न नामक दोनों किनारोंमें चलनेवाला मत्स्यरूप जीव शिर

पर्णभारैश्च विकचैर्विस्तर्णिर्वसुधातले ॥ रराज वसुधा चैव पर्णैर्बहुविचित्रितैः ॥ ३९ ॥ येन वृत्तेन जीवेयुः सर्वभूतानि भारत ॥ इह लोके मनुष्येन्द्र देवलोके च भारत ॥ द्यौरिवाचितनक्षत्रा महीतलविसर्पिभिः ॥ ४० ॥ हिमवान् हिमसंपाते भवत्येकं चरो वशी ॥ पुष्कराम्भसि धर्मात्मा मत्स्यो लिखितमूर्द्धजः ॥४१॥ अथ सुतलमाक्रम्य पृथिवीं प्रांशुदेहिनी ॥ तपश्चरति धर्मात्मा बाहुमुद्यस्य दक्षिणम् ॥ ४२ ॥ साग्रं वर्षसहस्रं च शतमेकं च सुव्रत ॥ तपश्चरति संयोगाद्वायुभक्षो समाहितः ॥ ४३ ॥ समाधियोगात्सङ्गाद्वा ब्रह्मयोगस्य भारत ॥ येनेयं पृथिवी राजन् धार्यते ब्रह्मयोनिना ॥ ४४ ॥ अनाद्यन्तेन नित्येन सर्वत्र विषयैषिणा ॥ योऽसौ विष्णुरगाधात्मा परमात्मा निराकृतिः ॥४५॥ दिने निषण्णो भवति रात्रौ भवति वै स्थिरः ॥ सत्यसन्धः स धर्मात्मा कामकारकरो भवेत् ॥४६॥

निकाले हुए निर्विशेष चैतन्यमात्रको प्राप्त होता है ॥ ४१ ॥ पीछे सुतलको प्राप्त हो प्रांशुदेहवाली पृथ्वीसे संगति करके दाहिने बाहुको उठाये (दानादिक करता हुआ) धर्मात्मा तप करता है ॥ ४२ ॥ वह समीचीन योगद्वारा ग्यारह सौ वर्षतक वायुके भक्षण करते महात्मा अगाधात्मा महात्मा विष्णु तप करते हैं ॥ ४३ ॥ हे भारत! वह ब्रह्मके समाधियोगसे और ब्रह्मयोगसे तप करते हैं जिस ओंकारके कारण यह पृथ्वी धारण की जाती है ॥ ४४ ॥ विषयाभिलाषी जीवरूपसे वह आदि अन्तरहित नित्य परमात्मा निराकार विष्णु पृथ्वी धारण करता है ॥ ४५ ॥ दिनमें विद्याहीमें स्थित रात्रिमें अवि-

ध्यामें स्थित सत्यमें स्थित धर्मात्मारूप विष्णु भगवान् लीलासेही सृष्टि प्रवृत्त करते हैं ॥ ४६ ॥ इन विष्णु भगवान्का पृथ्वीमें भक्तोंके निमित्त उठाया हुआ जो हाथ है सो उद्धार कहनेसे पृथ्वीकी समान है और विद्यामें सूर्य अर्थात् प्रकाश विवेकवाला है ॥ ४७ ॥ वह धर्मरूप चन्द्र मनके विषयोंसे मनके बंधको नाश करता है और ग्रहादिक अर्थात् चक्षुरादि इन्द्रियोंकी गतिको शांत करता है ॥ ४८ ॥ वही धर्म अविद्यारूप रात्रिको शिथिल करता है. पृथ्वीविषे दक्षिण हस्त और चित्तकी शुद्धिका करनेवाला है ॥ ४९ ॥ यही अविद्या रात्रिरूपा छाया तत्त्वज्ञानसे रहित हो पृथ्वीके लिंगको प्राप्त हो वृत्तिकी एकाग्रतासे चन्द्ररूप हुई अन्तमें चन्द्रमाकी तादात्म्यताको प्राप्त होती है. वह आकाशमें स्थित होती है अद्भुत है और मिथ्या होनेसे

तस्य यः सोद्यतः पाणिः पृथिव्यां पृथिवीसमः ॥ रात्रौ स तपनो भवति मण्डलं विपुलं नभः ॥४७॥ स चन्द्रविषयं राजश्छमयामास रुन्धति ॥ ग्रहाणां गतयश्चैव ताराणां च विशेषतः ॥ ४८ ॥ तां छयामाक्षिपन्त्सोमात्स्रवद्भिर्मण्डलेन वै ॥ पृथिव्यां दक्षिणो हस्तो महायोगी महामनाः ॥ ४९ ॥ सेषा छाया शशीभूता शशिमण्डलमाविशत् अलिङ्गा पृथिवीलिङ्गादद्भुतादक्षया दिवि ॥ ५० ॥ अङ्गाङ्गान्युपगृह्यैव तपश्चराति निश्चयात् ॥ प्रोक्ष्य पादौ तु सतलौ पृथिवी तपसि स्थिता ॥ ५१ ॥ सूर्यार्चिभिः पीयमानादाक्षिप्यत महीतले ॥ महीमिवाम्बुवसनां युगान्ते विष्णुतेजसा ॥ ५२ ॥ रराज सूर्यरश्मिभिर्व्यातिषिक्ता महानदी ॥ स्फाटिकेष शुभा सेषा काञ्चनैर्धातुभिर्वृता ॥ ५३ ॥ आदित्येन समादत्ता रश्मितेजोभिसंभवैः ॥ मण्डलान्तर्गता देवी चक्षुषा नोपलभ्यते ॥ ५४ ॥

अपचयशून्य है. हवकी किरणोंकी समान मिथ्या होती है ॥ ५० ॥ पृथ्वी चन्द्ररूप किस प्रकार होती है सो कहते हैं सब अंगोंको एकत्र कर तीर्थ स्नान कर फिर यह पृथ्वी तपमें स्थित हुई ॥ ५१ ॥ इस प्रकार जलसे घनीभावरूप हुई पृथ्वी सूर्यके किरणोंद्वारा धारण होनेसे गंगारूप हुई है. वह पृथ्वी सूर्यकी किरणोंसे पीयमान होनेसे सूर्यसे मिलती हुई युगान्तमें विष्णुके तेजसे यह पृथ्वी जलरूप वस्त्रवाली होती है ॥ ५२ ॥ सूर्यकी किरणोंसे मिलनेसे वह महानदी शोभित हुई यह स्फटिकमणिकी समान मणिधातुओंसे युक्त हो महानदीरूपसे स्थित हुई ॥ ५३ ॥ रवितेजसे संभव हुई महानदी

मण्डलके अन्तर्गत होकर नेत्रोंके समक्ष नहीं होती है ॥ ५४ ॥ फिर सूर्यकी किरणोंसे उतरकर जलरूप आत्मा पृथ्वी वेगसे वहन करने लगी तब अनेक जलवाली होनेसे यह आकाशगंगा कहाती है ॥ ५५ ॥ शीत छायावाले वृक्ष सुगंधित लता विविध प्रकारके दिव्यगंधिवाले पवनोंसे शोभित है ॥ ५६ ॥ सुवर्णके मुकुटवाली मणियोंकी मेखलावाली पद्मरेणुके समान सित और पीत वर्ण चक्रवाकरूपी कर्णफूलवाली ॥ ५७ ॥ नीलगर्भ सुन्दर केशोंवाली फूलोंके संचयसे व्याप्त वह भूषित प्रमदाकी समान चलती हुई शोभित हुई ॥ ५८ ॥ यह लोक धारण करनेमें रत पृथ्वी सुन्दर तप करती हुई प्रथम चन्द्ररूपसे निष्पन्न हुई पीछे गंगापनको प्राप्त हो पुष्कररूप परमात्मा द्वारा एकीभावको प्राप्त हो सर्वके पावन करनेरूप तपके फलको प्राप्त होती

रश्मिभिः पुनरुत्तीर्णा ततो योगेन धावति ॥ आकाशगङ्गा संवृत्ता विपुलैरम्बुविग्रहैः ॥ ५५ ॥ शीतच्छायैश्च तरुभिर्लताभिश्च सुगन्धिभिः ॥ पद्मखण्डैश्च विविधैः शुशुभे दिव्यगन्धिभिः ॥ ५६ ॥ काञ्चनापिडजघना स्फटिकान्तरमेखला ॥ पद्मरेणुसिता पीता चक्रवाकावतंसिका ॥ ५७ ॥ नीलगर्भसुकेशान्ता पुष्पसंचयसंकुला ॥ शोभते विप्रसर्पन्ती प्रमदेव विभूषिता ॥ ५८ ॥ सैषा गङ्गा फलं लेभे पुष्करेण समाहिता ॥ सुतपा चन्द्रविहिता लोकानां धारणे रता ॥ ५९ ॥ सरस्वती स्वरैर्व्यक्तैरधीते ब्रह्मवादिनी ॥ पृष्ठात्प्रयाता शैलेन्द्रे मन्दरे मन्दगामिनी ॥ ६० ॥ ऋङ्मयांश्चतुरो वेदान्पादैश्चतुर्भिरावृतान् ॥ यजुर्भिः सामभिश्चैव ग्रथिताङ्घ्रिश्च या सदा ॥ ६१ ॥ ऋषिभिर्ज्वलनप्रख्यैस्तपसा दग्धकिल्बिषैः ॥ सुपार्श्वस्य गिरेः पादे परिदायैः सुपारणैः ॥ ६२ ॥ निःस्वनं सर्वभूतानि नियमैश्च न शृण्वते ॥ मन्दराग्रे विसर्पन्तं जगत्कृच्छ्रमतीन्द्रियम् ॥ ६३ ॥

हुई ॥ ५९ ॥ फिर वह पृथ्वी गंगारूप होकर सरस्वतीरूप हो अकार उकार मकारको कहती है और व्यक्तस्वरोंसे वेदोंको कहती है और मन्दराख्य अर्थात् नासा और भ्रुकुटीस्थानमें स्थित होती है ॥ ६० ॥ चार पादोंसे आवृत ऋङ्मय चार वेदोंको शिक्षा करके कहती है अर्थात् ऋक् यजु साम वेदको और अथर्वको शिक्षा कर कहती है ॥ ६१ ॥ तपसे दग्धपाप हुए अग्निकी समान तेजस्वी स्थूलशरीररूपी पर्वतके एक देश अर्थात् भ्रूनासामें ऋषियोंसे परोद्धार होता है ॥ ६२ ॥ सम्पूर्ण प्राणी इस ब्रह्माख्य नादको नियमसेभी नहीं सुन सकते हैं

वह मन्दररूपी स्थूल प्रपंचके अग्रभागमें अधिक प्रथम अतिस्थूल होनेसे सम्पूर्ण जगत् व्याप्त कर रक्खा है परन्तु सूक्ष्मरूप होनेसे दुर्ग्राह्य है ॥ ६३ ॥ सब प्राणी चुप हुए विरामनियमको प्राप्त हो जाते हैं तब वह सरस्वती नियमसे कुछ नहीं कहती. "यतो वाचो निवर्तन्ते" ॥ ६४ ॥ सुषुप्ति समाधिमें सब प्राणियोंके तूष्णीभूत हो जानेमें फिर कोई बलसे कुछ कहनेको समर्थ नहीं है ॥ ६५ ॥ वह सरस्वती मनसे योगका विभाग करके सब भूतोंमें अनुग्रहके वास्ते महास्वन अर्थात् ब्रह्मका ज्ञान करा देती है ॥ ६६ ॥ फिर सरस्वतीके साथ युक्त हो देहधारी शिक्षा ग्रहण करते हैं उसीमें फिर वे शिक्षासे आत्माका गायन करते हैं ॥ ६७ ॥ आदित्य वसु रुद्र मरुत् अश्विनीकुमारोंके साथ जटिल चीर वस्त्र पहरे मुंज मेखला धारण

विरामनियमे प्राप्ते तूष्णींभूता बभूव ह ॥ न वाचमीरयेद्देवी नियमात्सत्यवादिनी ॥ ६४ ॥ अथ भूतानि सर्वाणि तूष्णीं भूतानि सर्वशः ॥ न शेकुरभिधानार्थं व्याहर्तुं वदनैर्बलात् ॥ ६५ ॥ विभज्य योगं मनसा सर्वभूतेष्वनुग्रहम् ॥ सरस्वती तीरयुता व्याजहार महास्वनम् ॥ ६६ ॥ सरस्वत्या समायुक्तां शिक्षां गृह्णन्ति देहिनः ॥ तस्मिन्नेवाथ ते सर्वे गानं गायन्ति शिक्षया ॥ ६७ ॥ आदित्या वसवो रुद्रा मरुतश्चाश्विभिः सह ॥ जटिला चीरवसना मुञ्जमेखलधारिणः ॥ ६८ ॥ गन्धर्वाः किन्नराश्चैव सनागाः सहचाम्भसः ॥ तपश्चरन्ति सहिताः पुष्करेषु मनीषिणः ॥ ६९ ॥ अपि कीटपतङ्गैश्च सह सर्वैः सरीसृपैः ॥ शोषयन्ति शरीराणि तपसोग्रेण यत्नतः ॥ ७० ॥ विष्णुर्विष्णुत्वमापन्नो देहान्तरविसृष्टवान् ॥ संरक्षति महायोगी सर्वांस्तान्सहचारिणः ॥ ७१ ॥ पुष्करे रमते विष्णुर्विष्णुरेव द्विधा कृतः ॥ दीप्यमानः स्वतेजोभिर्विधूम इव पावकः ॥ ७२ ॥

किये ॥ ६८ ॥ गन्धर्व किन्नर नाग वरुण यह सब महात्मा पुष्करमें तप करते हैं कीट पतंग ओर सब सरीसृप जीवोंके सहित बडे तप यत्नसे शरीरको सुखाते हैं ॥ ६९ ॥ इस प्रकार शरीररूप पृथ्वीको योगबलसे जलादिभावमें परिणय करके शब्दादिके आकारसे सब लोकके हितके निमित्त होती है इसी प्रकार शरीराभिमानीको वाच्यवाचकके अभेद होनेसे जीवसे अन्य कोई ईश्वर नहीं है इसपर कहते हैं ॥ ७० ॥ परमात्मा विष्णु व्यापकपनको प्राप्त होकरभी देहान्तर चतुर्भुजरूप हो व्यापकरूपसे पालन करनेको अशक्त होकर चतुर्भुजविग्रह यज्ञादिभोक्ता प्राणियोंके नियन्ता होकर उन आदित्यादिकी रक्षा करते हैं ॥ ७१ ॥ सर्वकार्यात्मक जगत्में विष्णुही नारायणरूपसे रमण करता है और धूमरहित अग्निकी समान अपने तेजोंसे व्याप्त

होता है ॥ ७२ ॥ वह अग्नि मनसे उत्पन्न हुआ पृथ्वीको तापित करता हुआ अर्थात् मनकल्पित गार्हपत्यादिरूप होकर पृथ्वी अभिमानी देहकी इच्छा करता है फिर अग्निहोत्रादिसे तिस कर्मरूप होकर गति सकर्मरूप होकर गति देता है ॥ ७३ ॥ और देहआत्मवादी विष्णुकी सामर्थ्यसे मोहादि दग्ध हो जाते हैं और अग्निरूप विष्णु दीप्त रहते हैं ॥ ७४ ॥ और विष्णुरूपमें विषयासक्त हो जाते हैं वे विष्णुलिंग ब्रह्मादिके उल्लंघनमें समर्थ नहीं हैं जिस प्रकार कोई सूर्यको उल्लंघन नहीं कर सकता ॥ ७५ ॥ सो विष्णु अपने बडे प्रकाशकरके द्रव्य देवतादिको अनेक प्रकारसे स्थित हुआ ऋत्वि-

सोऽग्निर्मनःसमुद्भूतः पृथिवीं तापयन्निव ॥ प्रधावति समं तेन मण्डलं दशयोजनम् ॥ ७३ ॥ विरराजार्चिभिर्दीप्तैः पृष्ठतश्चावल-म्बिभिः ॥ विशीर्णपार्थिविभवैर्मयूखैरिव दीपितः ॥ ७४ ॥ तस्याग्नेर्विस्फुलिङ्गानां न शेकुर्लङ्घने रताः ॥ विप्रप्रकीर्णस्य वसुधामर्या-दामिव भास्करम् ॥ ७५ ॥ सोऽग्निर्दीप्य विभज्यांशून्विधूम इव पावकः ॥ ऋत्विग्भिर्ज्वलनप्रख्यैर्विक्रीयत इवाध्वरे ॥ ७६ ॥ सोऽग्निर्भूमागतस्तत्र तिष्ठते विपुलं तदा ॥ यावद्विष्णुः क्रमप्राप्तो नियमस्य समापनात् ॥ ७७ ॥ रक्षां कृत्वा स्थितं विद्याद्विष्णु-र्विष्णुपराक्रमः ॥ भूत्वा शतशरीरो वै नागो बालाहकोऽभवत् ॥ ७८ ॥ तमग्निमात्मसंसृष्टं लेलिहानं महामतिम् ॥ प्रतिप्रवृत्तं तेजोभिर्भूतानां हितकाम्यया ॥७९॥ वारिणा सुखशीतेन प्राणिनां प्राणवर्द्धनः ॥ न्यषिञ्चद्दहनं तत्र नागो बालाहकस्तदा ॥ ८० ॥ ततः सिद्धगणैर्जुष्टः पुष्करे तप्यते तपः ॥ संहृत्य मनसात्मानं महायोगी महाबलः ॥ ८१ ॥

जोंद्वारा अनेक प्रकारसे किया जाता है ॥ ७६ ॥ वह अग्नि उस यज्ञमें द्रव्यदेवतादिके रूपसे प्रकाशमान हो निर्धूमअग्निकी समान स्थित होता है और फलरूपसे विष्णु अनन्त पृथ्वीको आक्रमण करता है ॥ ७७ ॥ रक्षा करके स्थित हुए विष्णुको कोई नहीं जानता वह विष्णुही शतशरीर होकर मेघमें स्थित होते हैं अर्थात् यज्ञफलभी विष्णुरूप है ॥ ७८ ॥ और विष्णुही जठराग्निरूप होकर भूतोंके हितके निमित्त वर्षा करता है ॥ ७९ ॥ और उस पुष्करमें उपजी हुई अपनी रची उग्र अग्निको आप प्राणियोंका प्राणरूप मेघ होकर शान्त करता है ॥ ८० ॥ फिर सिद्धगणोंके सहित महा-

योगी महाबली विष्णु मनसे आत्माको ग्रहण कर तप करते हैं ॥ ८१ ॥ चरण अंगोंको संकुचित कर मनको शिरमें धारण कर अचलस्थानको प्राप्त हो विष्णुजीने मौन धारण किया ॥ ८२ ॥ जिसमें कोई उपाधि और विकल्प नहीं है यही धर्मोंका धर्म है यही दोनों लोकमें सब प्राणियोंका हित करता है ॥ ८३ ॥ तब हत हुए दैत्य अपने २ शस्त्रोंको ग्रहण कर मायासे प्राप्त अनेक नगरोंसे आच्छादित हुए अर्थात् इसमेंभी योगसर्ग उपस्थित होते हैं जो कामादि दैत्य योगारंभसे पहले जीते गये वे समाधिकालमें शरीरोंसे आच्छादित हुए अस्त्र उठाने लगे ॥ ८४ ॥ उस ज्ञान और प्रकाशित रूप तेजमान् विष्णुको पर्वतादिरूप दिव्यवनितादिके शरीरोंसे बुझाने लगे वे दैत्य महाबली बडे शरीरवाले थे ॥ ८५ ॥

पादमात्राणि संहृत्य मनो मूर्ध्नि विधारयन् ॥ अचलं स्थानमासाद्य तूर्ष्णींभूतो बभूव ह ॥ ८२ ॥ एष धर्मो हि धर्माणां नोपधानविकल्पितः ॥ हितः सर्वेषु भूतेषु इह चामुत्र चोभयोः ॥ ८३ ॥ अथ दैत्या हतास्तत्र समागम्योद्यतायुधाः ॥ मायाप्राप्तैर्बहुविधैर्नगरैरविसंवृताः ॥ ८४ ॥ अग्निं दैत्याः पर्वताग्रैरभिघ्नन्ति परंतप ॥ ज्वलन्तं ज्वलनप्रख्या महाकाया महाबलाः ॥ ८५ ॥ मेघीभूताश्च मायाभिर्वर्षन्ति बलदर्पिताः ॥ तस्मिन्नेवाभिसंघाते ससंघातं महाबलम् ॥ ८६ ॥ ते शैलास्त्वर्चिषा दग्धाः शतशोऽथ सहस्रशः ॥ युगान्ते प्रभुरादित्यः प्रजा इव दिधक्षति ॥ ८७ ॥ न शेकुरग्निं दैत्यास्ते मायाभिर्मुखमुद्यतम् ॥ आदित्य इव दीप्यन्ते नभः सूर्योदये यथा ॥ ८८ ॥ विहितैरुद्यमैः सर्वैर्दैत्या भग्नपराक्रमाः ॥ गन्धमादनमासाद्य निषण्णा नगमूर्द्धनि ॥ ८९ ॥ स चाग्निर्वैष्णवैर्लोकैर्विद्वद्भिः सह संगताः ॥ अन्तरिक्षचरान्दैत्यान्निर्दहन्विचरान्दिवि ॥ ९० ॥

वे मेघीभूत हुए बलदर्पित हो माया कर जल वर्षाने लगे और मिलकर महाबल करने लगे ॥ ८६ ॥ वे सैकडों वनितादिक पर्वत इस तेजकी कान्तिसे दग्ध हो गये. जैसे युगान्तमें आदित्य प्रजा भस्म करनेको उद्यत होता है इस प्रकार वह अग्नि दीप्त हुई ॥ ८७ ॥ मायासे वे दैत्य मुख उठानेको उनके सन्मुख समर्थ न हुए और सूर्यके उदयमें आकाशकी समान वह प्रदीप्त हुआ ॥ ८८ ॥ अनेक उद्यम करनेपरभी दैत्योंका पराक्रम न चल सका तब वे गन्धमादन पर्वतके शिरोभागमें स्थित हुए ॥ ८९ ॥ और वह अग्नि उस लोकमें वैष्णवतेजयुक्त विद्वानोंसे संगतिको प्राप्त हो अन्तरिक्षमें रहनेवाले

कामादि दैत्योंको दग्ध करता हुआ स्वर्गमें विचरने लगा ॥ ९० ॥ इस प्रकार योगी उपद्रवोंको जीत यज्ञादिफलरूप धर्मको वृष्टि आदिके द्वारा प्राप्त होता है तब वह विष्णुही यज्ञसे वृष्टिरूप हो मेघसंघातको प्राप्त हो पृथ्वीमें वर्षा करते हैं ॥ ९१ ॥ वृष्टिकी अधिष्ठात्री देवता ब्राह्मणोंके मुखादिद्वारा कहे मंत्रोंसे प्रेरित हुआ ब्राह्मणसंतति भूतलोकको जलसे प्लावित करता है ॥ ९२ ॥ इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे भविष्यपर्वणि भाषायाम् अष्टाविंशतितमोऽध्यायः ॥ २८ ॥ जन्मेजय बोले: तब वे देवता अचलभावको प्राप्त हो परस्पर क्या करने लगे. जो बात तपसे प्राप्त न हो सके वह लोकमें

नागो बलाहकश्चैव मेघसंघातमागतः ॥ मुमोच सलिलं भूमौ पर्जन्य इव वृष्टिमान् ॥ ९१ ॥ मन्त्रैः संचोदितो नागो द्विजेभ्यो
वदनोद्गतैः ॥ मुमोच तोयसंघातं मानयन्विप्रजं जनम् ॥ ९२ ॥ इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे भविष्यपर्वणि अष्टाविंशति-
तमोऽध्यायः ॥२८॥ जनमेजय उवाच ॥ संबुज्य तपसा देवाः किमकुर्वंस्ततः परम् ॥ नहि तद्विद्यते लोके तपसा यन्न लभ्यते ॥१॥
वैशम्पायन उवाच ॥ अथ दीक्षां समास्थाय सर्वे विष्णुमया गणाः ॥ पुष्करादग्निमुद्धृत्य प्रणीय च यथाविधि ॥ २ ॥ जुहुवुर्मन्त्र-
विधिना ब्राह्मणा मन्त्रचोदिताः ॥ हविषा मन्त्रपूतेन यथा वै विधिरेव च ॥ ३ ॥ स चाग्निर्विधिवत्तत्र वर्धते ब्रह्मतेजसा ॥ तेजोभिर्ब-
हुलीभूतः प्रभुः पुरुषविग्रहः ॥ ४ ॥ ब्रह्मदण्डी इति ख्यातो वपुषा निर्दहन्निव ॥ दिव्यरूपप्रहरणो ह्यासिचर्मधनुर्धरः ॥ ५ ॥ सगदो
लाङ्गली चक्री शरी चर्मी परश्वधी ॥ शूली वज्री खड्गपाणिः शक्तिमान्वरकार्मुकः ॥६॥ विष्णुश्चक्रधरः खड्गी मुसली लाङ्गलायुधः ॥
नरो लाङ्गलमालम्ब्य मुसलं च महाबलः ॥ ७ ॥

नहीं है ॥ १ ॥ वैशम्पायन बोले, सम्पूर्ण विष्णुमय गण दीक्षाको प्राप्त हो पुष्करसे यथाविधि अग्निका उद्धार कर ॥ २ ॥ ब्रह्माकी प्रेरणा की हुई मंत्रविधिसे हवन करने लगे. वह हवि मंत्रसे पवित्र हुई विधिपूर्वक दी जाती थी ॥ ३ ॥ वह अग्नि विधिपूर्वक ब्रह्मकान्तिसे युक्त हो बहुत तेजोंके मिलनेसे पुष्कराकार हो गई ॥ ४ ॥ वह ब्रह्मदण्ड नामसे विख्यात शरीरको भस्म करते हुएकी समान दिव्यरूप प्रहारवाला धनुषधारी ॥ ५ ॥ गदा लांगल चक्र शर चर्म परशा शूल वज्र लिये खड्ग हाथमें धारे शक्तिमान् सुन्दर धनुष लिये ॥ ६ ॥ विष्णु चक्रधारी मुसल और लांगल हाथमें लिये

नरलांगलको अवलम्बन किये मुसल लिये वह महाबली ॥ ७ ॥ तपके योगसें इन्द्रक वज्रसेभी अधिके कान्तिमान् वज्र लिये; महादेव शूल और पिनाकको मनसे धारण करते हुए ॥ ८ ॥ मृत्यु दण्डको, वरुण पाशको, और काल शक्तिको ग्रहण करता हुआ, त्वष्टाने फरशा, कुबेरने फरशा ग्रहण किया ॥ ९ ॥ औरभी सैकडों निर्विकारताको प्राप्त होते हुए विश्वकर्मा और त्वष्टा अनेक शस्त्रोंको बनाते हुए ॥ १० ॥ इन्द्र अग्नि और सूर्य तथा रुद्रके निमित्त रथप्रदान किया ॥ ११ ॥ वेदरीतिसे त्वष्टाने रथोंकी सेना निर्माण की और विश्वकर्माने बहुतसे विमान बनाये ॥ १२ ॥ सत्यपराक्रमी विष्णुने अव्यय पुष्कर नाम शरीरके अंशसे सेनाको निर्माण किया ॥ १३ ॥ सूर्य और नक्षत्रोंकी स्थितिके अर्थ विष्णुने बाणसे आकाशकी रचना की जिसके पूजन कर संग्राममें

वज्रमिन्द्रस्तपोयोगाच्छतपर्वाणमाक्षिपत् ॥ रुद्रः शूलं पिनाकं च मनसाधारयद्भुवि ॥८॥ मृत्युर्दण्डं पाशमापः कालः शक्तिमगृह्णत ॥ जग्राह परशुं त्वष्टा कुबेरश्च परश्वधम् ॥ ९ ॥ निर्विकारैः समायुक्ताः शतशोऽथ सहस्रशः ॥ विश्वकर्मा च त्वष्टा च चक्राते ह्यायुधं बहु ॥ १० ॥ इन्द्रायाग्निरथं प्रादात्सूर्याय च प्रतापिने ॥ परमात्मा ददौ कृष्णो रुद्राय च महात्मने ॥ ११ ॥ छन्दोभिरेव त्वष्टा च स चकाराथ वाहिनीम् ॥ विश्वकर्मा विमानानि चकार बहुभिः क्रमैः ॥ १२ ॥ शरीरांशं समुत्पत्य विष्णुः सत्यपराक्रमः ॥ पुष्करात्पर्वाणि वनात्पृतनार्थं प्रवर्तयन् ॥ १३ ॥ द्यां चैव सर्वऋक्षाणां वाचा वै समकल्पयत् ॥ यया स पूज्यः संग्रामे शत्रून्निर्बिभिदे रणे ॥ १४ ॥ स तं दण्डं समुचितं निर्विकारं समाहितम् ॥ ब्रह्मा जग्राह विधिना अन्तर्धानगतः प्रभुः ॥ १५ ॥ स्वैः प्रभावैश्च विधिना सोऽस्त्रग्रामं चतुर्विधम् ॥ ऐन्द्रमाग्नेयवायव्ये रौद्रं रौद्रेण वर्चसा ॥ १६ ॥ एभिर्विकारैः संयुक्ता दितेः पुत्रा महाबलाः ॥ तमसा शिक्षया चैव स्वास्त्रैः प्रहरणैरपि ॥१७॥ बलेन चतुरङ्गेण वीर्येण सुसमाहिताः ॥ अप्रधृष्या रणे सर्वे समपद्यन्त वै तदा ॥१८॥

शत्रुभेद किये जाते हैं ॥ १४ ॥ वह ब्रह्मरूपी विष्णु अन्तरमें असुरोंके ऊपर प्रहार किये इन्द्रके दण्डको अन्तर्धान होकर ग्रहण करता हुआ ॥ १५ ॥ वह अपने प्रभाव और विधिसे चार प्रकारके अस्त्रग्रामको ऐन्द्रास्त्र आग्नेयास्त्र वायव्यास्त्र रौद्रास्त्र ॥ १६ ॥ इन विकारोंसे संयुक्त हो वे महाबली दितिके पुत्र तप शिक्षा और अपने अस्त्रोंके प्रहारसे ॥ १७ ॥ चतुरंग बल और वीर्यसे सावधान हुए युद्धसे न भागनेवाले सब विचरने लगे ॥ १८ ॥

वह दितिपुत्र गुह्य सूत्रात्मकस्वरूप छोडकर भोग्यवस्तुयुक्त रथमें स्थित हुए मन्दररूप स्थूल कार्यके एकदेशमें विचरने लगे ॥ १९ ॥ तमके कार्य असुररूपको संहार करके वह महायोगरूप विष्णु पृथ्वीतलमें विचरने लगे ॥ २० ॥ तब फिरभी वे देवता ब्राह्मण आदिके साथ जो चर्म चीर धारण करनेवाले थे फिर महातप करने लगे अर्थात् मुमुक्षु सात्त्विक धर्मका वारंवार आदर करते हैं ॥ २१ ॥ इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे भविष्य-पर्वणि भाषायां एकोनत्रिंशोऽध्यायः ॥ २९ ॥ जन्मेजय बोले; (इस प्रकार तामसजनकी वारंवार संसारप्राप्ति सुनकर दयापूर्वक उनकी गति जाननेकी

ते विहाय गुहामध्ये सभाण्डोपस्करे रथे ॥ मन्दरस्य गिरेः पादे विचेरुर्वसुधातले ॥ १९ ॥ चतुरङ्गं बलं सर्वं संहृत्य तमसः प्रभुः॥ विष्णुरेव महायोगश्चचार वसुधातले ॥२०॥ भूयोऽन्यत्तप आसेदुश्चरन्तो ब्राह्मणैः सह ॥ तैश्च सर्वैः सुरगणैर्धर्मचीरनिवासिभिः॥२१॥ इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे भविष्यपर्वणि एकोनत्रिंशत्तमोऽध्यायः ॥ २९ ॥ जनमेजय उवाच ॥ ब्रह्मन् खिले वर्तमाने निर्मर्यादे महाग्रहे ॥ अविनाशे च भूतानां कथमासन्प्रजास्तदा ॥ १॥ वैशम्पायन उवाच ॥ अभ्यषिञ्चत्पृथुं वैन्यं पुरा राज्ये प्रजा-पतिः ॥ राज्याय ऋषिभिः सार्धं प्रजाधर्मपरायणः ॥ २ ॥ एष नः परमो राजा सानुरागादजायत ॥ त्रेतायां संप्रवृत्तायामन्यो-न्यमनुजल्पिरे ॥ ३ ॥ एष नो वृत्तिदाता च विप्राणां च प्रवर्तिता ॥ निर्माता सर्वभूतानां सत्यप्राप्तेन कर्मणा ॥ ४ ॥ एतस्मिन्नन्तरं देवा गन्धमादनसानुषु ॥ बहुभिर्नियमैः श्रान्ता निषण्णा गिरिसानुषु ॥ ५ ॥

इच्छासे जन्मेजय बोले) जब शंकुतुल्य महाअज्ञान हृदयमें वर्तमान होता है इस अविनाशी कार्यमें कैसे दुःखकी परंपरा हुई कैसे प्रजा हुई ॥ १ ॥ वैशंपायन बोले; पहले प्रजापतिने वैन्यराजाको राज्यमें अभिषेक किया था. वह प्रजाधर्ममें परायण हो ऋषियोंके साथ राज्य करने लगे ॥ २ ॥ यह हमारे परम राजा अनुरागसे हुए हैं इस प्रकार त्रेताकी प्रवृत्तिमें सब कहने लगे ॥ ३ ॥ वृत्तिके देनेवाले ब्राह्मणोंके प्रवृत्त करनेवाले सत्यद्वारा सब भूतोंके निर्माण करनेवाले हैं ऐसा प्रजा कहने लगी ॥ ४ ॥ इसी समय देवता गंधमादन पर्वतके सानुओंमें बहुतसे शान्त होकर बैठ गये (अपने धर्ममें

॥ ६० ॥

स्थित प्रजा होनेसे जो परमात्माके भक्त हैं वेही मुक्ति पाते हैं यह कथा रूपसे वर्णन करते हैं) ॥ ५ ॥ तब देवता और मनुष्य चारों ओरसे गंधिको प्राप्त हो वसन्तसमय प्राप्त होनेपर उस गंधसे दर्पित हुए बोले ॥ ६ ॥ कि यह पवनके द्वारा लाई हुई सुगंधि है या कुछ और है यह मनकी ग्रहण करनेवाली उत्तम पार्थिव गंध है ॥ ७ ॥ वे दैत्य उस गंधसे किंचित् विस्मयको प्राप्त हो प्रसन्नमन हो परम सुखी हुए ॥ ८ ॥ उस गंधसे दर्पित हो सब कहने लगे कि पुष्पमात्रकीही क्या यह गन्ध है ॥ ९ ॥ विविध प्रकारके कर्म बुद्धि अनुमानसे जानना चाहिये. बुद्धिके प्रमाणसे शुभाशुभका ज्ञान होता है॥ १० ॥ जिस कारणसे कि योगफल श्रेष्ठ है यह अनुमानसे निश्चय किया है. इस कारणसे पयरूपी अमृत ज्ञानसाधनमें समुद्रतुल्य देहके मध्यमें औषधी

अथ गन्धं समासाद्य समन्ताद्देवमानवाः ॥ माधवे समयं प्राप्ते तेन गन्धेन दर्पिताः ॥६॥ पुष्पमात्रस्य यद्वीर्यं मारुतेन विसर्पितम् ॥ मनोग्राहि सुखं सर्वं पार्थिवं गन्धमुत्तमम् ॥ ७ ॥ ते दैत्यास्तेन गन्धेन किंचिद्विस्मयमागताः ॥ प्रसन्नमनसो भूत्वा परं सौख्यमुपागताः ॥ ८ ॥ ऊचुश्च सहिताः सर्वे तेन गन्धेन दर्पिताः ॥ पुष्पमात्रस्य यद्वीर्यं किं तस्य फलतो भवेत् ॥ ९ ॥ अनुमानेन विज्ञेया विविधाः कर्मबुद्धयः ॥ शुभाश्चैवाशुभाश्चैव बुद्धिप्राणेन देहिनाम् ॥ १० ॥ तस्माद्वयं पयोमध्ये औषध्यो निर्मथामहे ॥ मन्दरेण विशालेन बलिना कामरूपिणा ॥ ११ ॥ समुद्रमभिसंरम्भान्मथनीमः सोमजं जलम् ॥ पीत्वा च सहिताः सर्वे प्रस्थिता कामरूपिणः ॥ १२ ॥ विष्णुरेवाग्रणीस्तेषां भविष्याति महाबलः ॥ दिवं च वसुधां चैव भोक्ष्याम सह शत्रुभिः ॥ १३ ॥ समूलपत्रशाखाश्च सपुष्पाः फलशालिनः ॥ सर्वे ग्रहांश्च गृह्णीमः सुधां च वसुधातले ॥ १४ ॥

संभव देहको डालकर विवेकद्वारा साधन करें ॥ ११ ॥ इस समुद्रको इस अमृतके निमित्त हम मथन करेंगे और उसे पानकर सब कामरूपही विचरेंगे. यह कह सब अविद्यानाशके निमित्त प्रस्थित हुए ॥ १२ ॥ इस कार्यमें महाबली विष्णुही हमारे अग्रणी होंगे उससे हम सत्यसंकल्प होंगे तब हम स्वर्ग और पृथ्वीको कामादि शत्रुओंको भोगेंगे ॥ १३ ॥ मूल पत्र शाखा पुष्प फलके खानेवाले हम वसुधातलमें सब ग्रहोंमें ग्रहण करेंगे अर्थात् मूल पित्रादि पत्र भार्यादिक शाखा भ्रातादि पुष्पादि अपत्यादिकोंके सहित सब एकात्मग्रह मोक्षको भोगेंगे. (ब्रह्म होकर ब्रह्मको प्राप्त होता है फिर उसके

प्राण उत्क्रमण नहीं होते) ॥ १४ ॥ गंधमादनके सानुभागमें हुए गिरिवृक्षादि उखाडकर मंदरके कंपनमें वचन कहने लगे अर्थात् गुरु शिष्य संकेत-पूर्वक देहके प्रलापन कर ब्रह्माण्डके अन्तर्गत उसमें निमग्न वासनाके उद्धार करनेको ॥ १५ ॥ पृथ्वीको कंपायमान करते हुए उखाडनेको धावमान हुए और इस निश्चयसे वे महावीर्यवाले बडी बलिष्ठ भुजाओंसे ॥ १६ ॥ वे दनुवंशमें उत्पन्न हुए उसे उखाडनेको समर्थ न हुए और टांगोंको तानकर स्थित हुए अर्थात् मंदररूप देहके उन्मूलन करनेको बडी भुजा प्राणायामादि द्वारा धावमान होते हुए समस्त मेदिनीरूप ब्रह्माण्डको कम्पित करने लगे ॥ १७ ॥ फिर आत्मासे आत्माको समाधान कर तपसे पापरहित होकर कामरूपी शिरोंद्वारा ब्रह्माको प्राप्त होते हैं ॥ १८ ॥ सर्व जाननेवाले ब्रह्माजी उनके मनो-

उद्धृत्य गिरिपादेभ्यो गन्धमादनसानुजान् ॥ प्रभाष्य वचनं दैत्या मन्दरस्य प्रकम्पने ॥ १५ ॥ समुद्धर्तुं प्रधावन्तः कम्पयन्ति स्म मेदिनीम् ॥ निश्चयेन महावीर्या बाहुभिः परिणाहिभिः ॥ १६ ॥ न शक्नुस्ते समुद्धर्त्तुं शैलेन्द्रं दनुवंशजाः ॥ निपेतुर्जानुभिर्धृष्टा विपुले पर्वतान्तरे ॥ १७ ॥ समाधायात्मनात्मानं तपसा दग्धकिल्बिषाः ॥ पितामहं प्रपद्यन्ते शिरोभिः कामरूपिभिः ॥ १८ ॥ तेषां मनोऽभिलषितं ब्रह्मा सर्वत्रगो वशी ॥ ज्ञात्वा बहुविधैर्वाक्यैर्व्याजहार सरस्वतीम् ॥ १९ ॥ अशरीरां शरीरस्थः परया वर्णसम्पदा ॥ सर्वलोकपतिर्ब्रह्मा लोकानां हितकाम्यया ॥ २० ॥ आदित्यैर्वसुभिश्चैव रुद्रैश्च समरुद्गणैः ॥ देवैर्यक्षैः सगन्धर्वैः किन्नरैश्च प्रगायिभिः ॥ २१ ॥ समेत्य सहितैः सर्वैः शक्य उद्धर्तुं गिरिः ॥ अमृतार्थं महातेजा धातुभिः समरञ्जितः ॥ २२ ॥ सुरासुरगणाः सर्वे समुत्पाट्य महागिरिम् ॥ हस्तारूढाः प्रपश्यन्ति वीरुधो हिमवद्रसम् ॥ २३ ॥

भिलाषको जानकर बहुत प्रकारके वाक्योंसे सरस्वतीको बुलाते हुए ॥ १९ ॥ वह शरीररहित प्रणवरूप सरस्वती शरीरमें स्थित अन्तर्यामी वैखरी आदि परम वाणीसे बहुतसे वाक्यों (ओमित्येकाक्षरमिदं सर्वमित्याद्यैकात्म्यप्रतिपादकवाक्यों) से उपदेश देते हुए यह ब्रह्माने लोकोंको हितकी कामनासे किया ॥ २० ॥ आदित्य वसु रुद्र मरुद्गण देवता यक्ष गन्धर्व किन्नर इन गानेवालोंके साथ ॥ २१ ॥ इकट्ठे अर्थात् मनके एकीभावको प्राप्त होकरभी अमृतके निमित्त शरीररूपी पर्वतके उठानेमें समर्थ न हुए वह वातादि धातुओंसे रंजित महातेजयुक्त था ॥ २२ ॥ तब सब सुर असुरगण उस

महापर्वतको उखाडकर बेलोंके रसोंसे युक्त हाथमें आरूढ देखने लगे (अर्थात् हृदयाकाशमें वासना संततिरूपसे देहांग शून्य देखने लगे) ॥ २३ ॥ यह वचन सुनकर उनके समीपमें बडे बली दैत्य मन और वाणियोंसे ॥ २४ ॥ क्रीडा करते हुए बहुत प्रकारसे उस समुद्रमें पुष्कर अर्थात् मथनदण्डके समीपमें स्थित हुए तब देवदानवोंके सहित ॥ २५ ॥ सब सुर असुरगण परस्पर मिलकर पुष्करको मंदर और वासुकीको नेती बनाय ॥ २६ ॥ उसमें औषधी डालकर सहस्र वर्षपर्यन्त मथते रहे अर्थात् सनालकमलके सदृश मंथन दण्ड हैं. पुष्कररूप देह है मन समुद्र वासना औषधी उस देहमें डाल वासुकीरूप सर्पाकार कुंडलीको नेत्रयोगमार्गद्वारा आनयन करके अर्थात् मूलबंधसे कुंडलीको जगाकर १००० वर्षतक मथनेसे अमृत

एतच्छ्रुत्वा च वचनं सर्वेषामन्तिके तदा ॥ दैतेया बाहुबलिनो मनोभिर्वाग्भिरेव च ॥ २४ ॥ विक्रीडभूता बहुधा बभूवुर्लवणाम्भसः ॥ यत्र पुष्करविन्यस्तः सहितैर्देवदानवैः ॥ २५ ॥ सुरासुरगणाः सर्वे सहिता लवणाम्भसः ॥ मन्दरं पुष्करं कृत्वा नेत्रं वासुकिमेव च ॥ २६ ॥ समाः सहस्रं मथितं जलमोषधिभिः सह ॥ क्षीरभूतं समायोगादमृतं समपद्यत ॥ २७ ॥ तज्जहुरसुराः पूर्वमाक्रान्ता लोभमन्युना ॥ धन्वन्तरिस्तथा मद्यं श्रीर्देवी कौस्तुभो मणिः ॥ २८ ॥ शशाङ्को विमलश्चापि समुत्तस्थुः समन्ततः ॥ उच्चैःश्रवा हयो रम्यः पीयूषं तदनन्तरम् ॥ २९ ॥

क्षीरकी समान निकला (मन शुद्ध सत्व निर्मल हो गया) ॥ २७ ॥ लोभ और क्रोधसे आक्रान्त हो सम्पूर्ण असुरोंने प्रथम उसे ग्रहण कर लिया अर्थात् योगके विघ्न प्राप्त हुए छहों विघ्नोंको जीतकर योगी सिद्ध होता है. धन्वन्तरि मद्य लक्ष्मी देवी कौस्तुभ मणि ॥ २८ ॥ उज्ज्वल चन्द्र या उच्चैः-श्रवा घोडा यह निकला. उसके उपरान्त अमृत निकला धन्वन्तरि आदिसे तात्पर्य सिद्धिसे है धन्वन्तरिशब्दसे लघुता आरोग्यता अलोलुपता वर्णप्रसाद स्वरसौष्ठवता विदित होती है. मद्यशब्दसे मधुमत्यादि योगीके चित्तकी उन्माद करनेवाली भूमि योगशास्त्रमें प्रसिद्ध है श्रीसे ऋगादिरूप वेदविद्या कौस्तुभसे देहकी कान्ति चन्द्रमासे गुणोंद्वारा आह्लादकता उच्चैःश्रवासे दूर दर्शन दूर श्रवण पारिजातादिसे सुगन्धिता इनके उपरान्त निर्विशेष कैवल्यरूप प्रवृत्त

होता है इनमें मद्य असुरोंको और शेष सब देवतोंको प्राप्त हुआ ॥ २९ ॥ अब राहुकी कथाके मुखसे कपटी विद्यार्थियोंका नाश कथन करते हैं. जब दैत्योंने अमृत लिया तब विष्णु वंचित कर देवतोंको अमृत देने लगे तब राहु देवतोंकी पंक्तिमें छलसे देवता बन जा बैठा तब उसको देखकर देवताओंने कह दिया यह दैत्य है तब उसको अमृत न मिला इस प्रकार दैत्य और दानव कोई अमृत न पी सके ॥ ३० ॥ तब नारायणने चक्रसे उसका शिर छेदन कर डाला. इस प्रकार पितृगण और सनातन मुनियोंसे नहीं छोडा हुआ ॥ ३१ ॥ वह अमृत इन्द्रके हाथ लगा और ब्रह्मवाक्यसे प्रेरणा की हुई पृथ्वी इन्द्रके हाथ आई अर्थात् ब्रह्मवाक्य 'तत्त्वमसि' आदि पृथ्वी शिष्यपनको प्राप्त हुई ॥ ३२ ॥ इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे भविष्यपर्वणि

पश्चाद्देवास्तदा दातुमुद्यता राहुमब्रुवन् ॥ न तु केचित्पिबन्ति स्म दैत्या नैव च दानवाः ॥ ३० ॥ चिच्छेदाथ हरिः संख्ये राहोश्चक्रेण कं तदा ॥ अनिर्मुक्तं पितृगणैर्मुनिभिश्च सनातनैः ॥ ३१ ॥ तदिन्द्रहस्तादमृतं जहार पृथिवी स्वयम् ॥ जगामाङ्कगता देवी ब्रह्मवाक्यप्रचोदिता ॥ ३२ ॥ इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे भविष्यपर्वणि त्रिंशोऽध्यायः ॥ ३० ॥ जनमेजय उवाच ॥ निहते दैत्यसंघाते विष्णोश्चातिपराक्रमे ॥ दैतेया दानवेयाश्च किमिच्छन्ति पराक्रमात् ॥ १ ॥ वैशम्पायन उवाच ॥ दानवा राज्यमिच्छन्ति पराक्रम्य महाबलाः ॥ तप इच्छन्ति सहिता देवाः सत्यपराक्रमाः ॥ २॥ जनमेजय उवाच ॥ कथं कालस्य महतो हिरण्यकशिपुस्तदा ॥ यजते ब्रह्मणः क्षेत्रे प्राप्तैश्वर्यः स कामदः ॥ ३ ॥ वैशम्पायन उवाच ॥ यजेद्बहुसुवर्णेन राजसूयेन पार्थिवः ॥ क्रतुना दानवश्रेष्ठो वसुधायां महाफलः ॥ ४ ॥ गङ्गायमुनयोर्मध्ये यदभूद्विपुलं तपः ॥ समेयुस्तत्र सहिता यजमाने महासुरे ॥ ५ ॥

भाषायां त्रिंशोऽध्यायः ॥ ३० ॥ जन्मेजय बोले; विष्णुने जब महापराक्रमी दैत्योंका वध किया तब दैत्य और दानव पराक्रमसे क्या करने लगे अर्थात् मोक्षसे निरस्त हो क्या करने लगे ॥ १ ॥ वैशंपायन बोले; दानव तो पराक्रमसे राज्यकी इच्छा करते हैं और सत्यपराक्रमी देवता तपकी इच्छा करते हैं ॥ २ ॥ जन्मेजय बोले; ऐश्वर्यसे संयुक्त कामनाके देनेवाले हिरण्यकशिपु बलि राजा ब्रह्मक्षेत्र (भ्रूनासिकारूप गंगायमुनाके) मध्यमें ऐश्वर्य और कामनावाला यज्ञ करने लगे ॥ ३ ॥ वैशंपायन बोले; कि यह राजा बहुत सुवर्णकी दक्षिणावाले यज्ञको विधिसे करता हुआ वह दानवश्रेष्ठ पृथ्वीमें यजन करने लगा ॥ ४ ॥ गंगायमुनाके बीचमें जो बडा तप किया गया था वहां उस महाअसुर यजमानके यज्ञमें ॥ ५ ॥

वेदके ज्ञाता ब्राह्मण महाव्रतपरायण तथा हे भारत ! औरभी अनेक सिद्ध योगधर्मसे प्राप्त आये ॥ ६ ॥ और न्यायधर्मसे शोभित वालखिल्यादि ऋषि
औरभी धर्मपरायण अनेक ब्राह्मण ॥ ७ ॥ महाभागी ऋषि ब्राह्मणोंसे पूजित सहस्रों अनेक प्रकारोंके ऐश्वर्योंसहित इधर उधरसे आये ॥ ८ ॥ पुत्रसहित
शुक्राचार्य राजाको यजन कराता था. हिरण्यकशिपु (बलि) के मध्यमें गणाक प्रभुने ॥ ९ ॥ इस प्रकारके वचन वामनजीसे कहे कि मैं तुमको वर
देता हूं मांगो (इस कथामें यह वार्ता दिखाई है कि मैं जिसके ऊपर कृपा करता हू उसका प्रथम धन हरण करता हूं) ॥ १० ॥ वामनरूपसे विष्णुजीने

ब्राह्मणा वेदविद्वांसो महाव्रतपरायणाः ॥ यतयश्चापरे सिद्धा योगधर्मेण भारत ॥६॥ मुनयो वालखिल्याश्च धन्या धर्मेण शोभिताः ॥
बहवो हि द्विजा मुख्या नित्यं धर्मपरायणाः॥७॥ ऋषयश्च महाभागा विप्रैः पूज्याः सहस्रशः॥ विपुलैरत्र विभवैर्ह्रियमाणैस्ततस्ततः ॥८॥
शुक्रस्तु सह पुत्रेण दैत्यं याजयते प्रभुः ॥ हिरण्यकशिपुं मध्ये गणानां प्रभवः प्रभुः॥९॥ हिरण्यकशिपुश्चैव व्याजहार सरस्वतीम् ॥
कामाद्वरं ददानीति तद्वै संप्रतिपद्यताम् ॥ १० ॥ विष्णुर्वामनरूपेण भिक्षां तां प्रतिगृह्णाति ॥ हिरण्यकशिपोर्हस्ताद्द्वे पदे पदमेव
च ॥ ११ ॥ ततः क्रमितुमारेभे विष्णुः सत्यपराक्रमः ॥ त्रींल्लोकान्मुनिभिः क्रान्तैर्दिव्यं वपुरधारयत् ॥ १२ ॥ हृतराज्याश्च दैतेयाः
पातालविवरं ययुः ॥ ससैन्यगणसंबद्धाः सप्रासाः सासितोमराः ॥ १३ ॥ सयन्त्रलगुडाश्चैव सपताकारथध्वजाः ॥ सचर्मवर्मकोशाश्च
सायुधाः सपरश्वधाः ॥ १४ ॥ तथेन्द्रविष्णुसहिताः सद्यस्तेऽभ्युत्थिता गणाः ॥ अभ्यषिञ्चत्प्रमुदिता लोकानामाधिपे सुराः ॥ १५ ॥
स तान्स्वधामृतेनाशु पितॄंस्त्वै समतर्पयत् ॥ ब्रह्मा तदमृतं दिव्यं महेन्द्राय प्रयच्छति ॥ अक्षयश्चाव्ययश्चैव संभृतस्तेन कर्मणा ॥ १६ ॥

उससे भिक्षा मांगी और बलिसे तीन पग पृथ्वी मांगी ॥ ११ ॥ तब सत्यपराक्रमी विष्णु पृथ्वी नापने लगे. मुनियोंसे प्राथित हो उन्होंने त्रिलोकीको
अतिक्रमण कर लिया ॥ १२ ॥ और राज्यसे भ्रष्ट हो दैत्य पातालको गये. वह सेनासहित सम्बद्ध होकर प्रास असि तोमर ॥ १३ ॥ यंत्र लगुड
पताका ध्वज रथ ढाल वर्म कोश आयुध परशे लिये ॥ १४ ॥ इन्द्र विष्णुके साथ शीघ्रतासे वे देवता उठे और लोकोंके आधिपत्यमें बलिको अभिषेक
करते हुए ॥ १५ ॥ बलि सूर्य इन्द्रने पितरोंको सुधासे तृप्त किया और ब्रह्माने उस अमृतको महेन्द्रके निमित्त दिया वह उस कर्मसे अक्षय और अव्यय

हो गये ॥ १६ ॥ तब शत्रुओंके रुयें खडे करनेवाला शंख बजाया गया वह जनितृके प्रथम पदमें शंख बजाया गया ॥ १७ ॥ उस शंखके शब्दको सुन सावधान हुए तीनों लोक इन्द्रस्वामीको प्राप्त हो परम सुख मानते हुए अर्थात् चिन्मयरूप हो परम सुख मानते हुए ॥ १८ ॥ अत्यन्त विषयोंके दूर करनेवाले शस्त्रोंसे जो अग्नि अर्थात् ब्रह्मसे उत्पन्न हुए थे. अग्निकी समान प्रज्वलित हुए मन्दरके अग्रभाग देहाग्रमें स्थित हुए ॥ १९ ॥ इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे भविष्यपर्वणि भाषायाम् एकत्रिंशोऽध्यायः ॥ ३१ ॥ वैशंपायन बोले; तब इस महोदय राज्यके वृत्तान्त स्थित होनेमें देवता और

ततः शंखमुपाध्मासीद्द्विषतां लोमहर्षणम् ॥ पितामहकरोद्भूतं जनितृप्रथमे पदे ॥ १७ ॥ तं श्रुत्वा शंखशब्दं तु त्रयो लोका समाहिताः ॥ निवृत्तिं परमां प्राप्ता इन्द्रं नाथमवाप्य च ॥१८॥ सर्वैः प्रहरणैश्चैव संयुक्ता वह्निसंभवैः ॥ मन्दराग्रेषु विहितैर्ज्वलद्भिरिव पावकैः ॥ १९ ॥ इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे भविष्यपर्वणि एकत्रिंशोऽध्यायः ॥ ३१ ॥ वैशम्पायन उवाच ॥ ततो महति वृत्तान्ते स्थिते राज्ये महोदये ॥ देवतानां मनुष्याणां सहवासोऽभवत्तदा ॥ १ ॥ एकतः समधीयन्ति सहिताः प्ररुदन्ति च ॥ स्वयं च भागं गृह्णन्ति यज्ञकर्मणि भारत ॥२॥ प्राचेतसं ततो दक्षं दीक्षित्वा वै बृहस्पतिः॥ वाजिमेधाय भगवानृषिभिः परिवारितः॥३॥ तस्मिन्मातामहे यज्ञं दक्षस्याविदितात्मनः॥ शामित्रमकरोद्रुद्रो भागार्थं सह नन्दिना॥४॥ रुद्रस्यैव हि तद्रूपं द्विधाभूतं तदीप्सया ॥ जातः परमधर्मात्मा नन्दी पुरुषविग्रहः ॥ ५ ॥

मनुष्योंका एकत्र संवास होने लगा अर्थात् ब्रह्मज्ञानी होनेसे परस्पर उनमें कुछ भेद न रहा ॥ १ ॥ एकही स्थानमें सबका पठन और शब्द होने लगा. हे भारत ! यज्ञकर्ममें स्वयं भाग ग्रहण करने लगे ॥ २ ॥ तब बृहस्पतिजी प्राचेतस दक्षको दीक्षित करके अश्वमेध यज्ञ करनेको ऋषियोंसे परिवारित हुए ॥ ३ ॥ उस अविदित आत्मावाले दक्षरूप मातामहके यज्ञ प्रवृत्त होनेमें (अर्थात् दक्षकन्याओंसे जगत्की प्रवृत्ति होनेसे मातामहरूप कहा) शिवने उस यज्ञमें दक्षकोही पशुरूपसे कल्पित किया ॥ ४ ॥ उसकी इच्छासे वह रुद्रकाही रूप हो गया. वह परम धर्मात्मा पुरुषरूप नंदी हो गये ॥ ५ ॥

हे राजेन्द्र ! उस योगसे वह जो सनातन ब्रह्म है उन रुद्रने वह वेदवाक्यसे प्रकाशित किया है ॥ ६ ॥ स्वरूप अरूप विरूपाक्ष और घटकी समान उदरवाले ऊर्ध्वनेत्र महाकायावाले विकट और वामन ॥ ७ ॥ तीन शिखावाले जटावाले तीन नेत्र शंकुकर्ण चीरचर्म और कूट मुद्गर हाथमें लिये ॥ ८ ॥ घंटा धारण किये मुंज मेखला धारण किये हाथमें कटक और कुंडल धारण किये ॥ ९ ॥ डिमडिम भेरी मृदङ्ग वेणु इससे परिवृत हुए देव उस यज्ञको विघ्न करने लगे ॥ १० ॥ शंख मुरज तालफल हाथमें उग्र आयुध धारण किये देव अन्तककी समान बली पिनाकधारी ॥ ११ ॥ कान्तियोंकरके वह यज्ञवाले शोभाको प्राप्त हुए कालाग्निकी

तेन योगेन राजेन्द्र यत्तद्ब्रह्म सनातनम् ॥ विहितं सत्यवचनैस्तेनैव परमात्मना ॥ ६ ॥ स्वरूपैश्चाप्यरूपैश्च विरूपाक्षैर्घटोदरैः ॥ ऊर्ध्वनेत्रैर्महाकायैर्विकटैर्वामनैस्तथा ॥ ७ ॥ शिखिभिर्जटिभिश्चैव त्र्यक्षैश्च शंकुकर्णिभिः ॥ चीरिभिश्चर्मिभिश्चैव कूटमुद्गरपाणिभिः ॥ ८ ॥ सघण्टाधारिभिश्चैव मुञ्जमेखलधारिभिः ॥ सहस्तकटकैश्चैव स्वर्णकुण्डलधारिभिः ॥ ९ ॥ साडिण्डिमैः सभेरीकैः समृदङ्गैः सवेणुभिः ॥ एतैः परिवृतो देवो मखं तं समुपारुजत् ॥ १० ॥ सशङ्खमुरजैश्चापि सतालफलपाणिभिः ॥ उग्रायुधधरो देवः सपिनाक इवान्तकः ॥ ११ ॥ विरराजार्चिभिर्दीप्तैर्मखे मखवतां वरः ॥ कालाग्निरिव दीप्तार्चिर्जगद्दग्धुमिवोद्यतः ॥ १२ ॥ नन्दी पिनाकपाणिश्च जघ्नतुर्मखमुत्तमम् ॥ युगान्त इव कालाग्निः क्षिप्रं दग्धुमिवोद्यतः ॥ १३ ॥ यूपमुत्क्षिप्य धावन्ति निशाचरगणास्तथा ॥ त्रासयन्मुनिसङ्घांश्च चीरचर्मनिवासिनः ॥ १४ ॥ हवींष्यन्ये पिबन्त्येव जिह्वाभिस्ताम्रलोचनाः ॥ भक्षयन्ति पशूनन्ये रसनान्तावलम्बिभिः ॥ १५ ॥

समान वह दीप्तअर्चिवाले जगत्के नष्ट करनेको मानो उद्यत हुए ॥ १२ ॥ नंदी और शिव उस यज्ञको नष्ट करने लगे और कालाग्नि जैसे युगान्तमें प्रज्वलित होती है इस प्रकार यज्ञको नष्ट करने लगे ॥ १३ ॥ निशाचरगण यूप लेकर धावमान होते हैं और चीर चर्मनिवासी मुनिजनोंको त्रास देते हैं ॥ १४ ॥ दूसरे हवि पान करते हुए जिह्वा चाटते हुए ताम्रलोचन दूसरे जिह्वा निकाले अनेक प्रकारके पशुओंको भक्षण करते हुए ॥ १५ ॥

दूसरे स्तम्भोंको नष्ट करते कोई पशुओंपर प्रहार करते कोई जल अग्निके ऊपर छिडकने लगे ॥ १६ ॥ कोई यज्ञके सोमको हरण करते हुए जो कि ताम्र और जपाकुसुमकी समान वर्णके थे और कमलदलके प्रमाणवाले हाथोंसे कुशाओंको काटने लगे ॥ १७ ॥ कोई यूपके अग्रभागोंको तोडते हुए कलशोंको भग्न करने लगे और कोई शोभाके निमित्त लगाये सुवर्णके वृक्षोंको नष्ट करने लगे ॥ १८ ॥ वे बाणोंसे भेदकर सुवर्णके पात्रोंको तोडने और अरणीको मथने लगे ॥ १९ ॥ कोई प्राग्वंशको तोडने लगे और सावधानीसे तोड फोड करने लगे पुरोडाश खाने और नखाग्रसे चीर फाड

मुमुचुश्चापरे यूपान्पशवः प्रहरन्ति च ॥ वह्निमध्ये प्रसिञ्चन्ति वारिभिः प्रशमाय च ॥१६॥ सोममन्ये जह्रुः केचिन्नेत्रैस्ताम्रजपोपमैः ॥ दर्भान्केचिद्विलुम्पन्ति हस्तैः पद्मदलप्रभैः ॥ १७ ॥ बभञ्जिरे च यूपाग्रान्कलशांश्चापि चिक्षिपुः ॥ चिच्छिदुः काञ्चनान्वृक्षाञ्छोभार्थमुपकल्पितान् ॥ १८ ॥ बिभिदुश्चैव बाणैस्ते मुमुचुश्च हिरण्मयान् ॥ लुलुपुश्चैव पात्राणि ममन्थुश्चारणीमपि ॥ १९ ॥ अरुजंश्चैव प्राग्वंशं लुलुपुश्च समाहिताः ॥ चखादिरे पुरोडाशान्नखाग्रैश्चाववर्तिरे ॥ २० ॥ एवं दिवा च रात्रौ च भिद्यमानो महामखः ॥ चुक्रोश च महानादान् भिद्यमान इवार्णवः ॥ २१ ॥ धनुः सशरमादाय पूर्वदत्तं स्वयंभुवा ॥ कृतं कीचकवेणुभ्यां समरे सुमहारथः ॥ २२ ॥ प्रतिगृह्य महादेवः स शरः समयोजयत् ॥ धनुर्विगृह्य जानुभ्यां जघान स महाक्रतुम् ॥ २३ ॥ स विद्धस्तेन बाणेन खं समुत्पतितः क्रतुः ॥ मृगो भूत्वा नर्दमानो ब्रह्माणमुपधावति ॥२४॥ शरेणाभिहतस्त्राणं न लेभे प्रशमं भुवि ॥ शरणार्थी ह्ययं प्राप्तः शरेणान्तर्गतेन च ॥ २५ ॥

करने लगे ॥ २० ॥ इस प्रकार दिनरात भिद्यमान होता हुआ महायज्ञ भिद्यमान सागरकी समान बडा शब्द करने लगा ॥ २१ ॥ तब पूर्वकालमें ब्रह्माजीके दिये धनुष और बाणको ग्रहण कर जो कीचकजातिके वांसोंसे बना हुआ था उसे ले समरमें महारथी महादेवजीने ॥ २२ ॥ उसे ग्रहण कर जानुपर स्थित हो उस बाणसे यज्ञको प्रहार किया ॥ २३ ॥ उस बाणसे युद्ध हो यज्ञ आकाशमार्गमें उत्पतित हुआ और मृगरूप धारण कर आकाशमार्गसे ब्रह्माके निकट गया ॥ २४ ॥ बाणके भयसे कहीं पृथ्वीमें उसको शान्तिकी प्राप्ति न हुई तब शरसे दुःखी हुआ शरणमें गया ॥ २५ ॥

तब ब्रह्माने उस मृगसे प्रार्थनापूर्वक सुन्दर वचन कहे और गम्भीरतायुक्त उत्तम स्वरसे बोले; इस रूपसे आकाशमें तू महामृगरूपसे स्थित होगा॥ २६॥ और पर्व लगे हुए बाणसे जीता जानेके कारण रुद्रके साथ नित्य नक्षत्रोंके शिरोभागमें स्थित हो॥ २७॥ अक्षय अविनाशी सोमके साथ वह मृगशिर नाम नक्षत्रसे गमन करता है॥ २८॥ वह ज्योतियोंकी ज्योति ध्रुवकाभी महाध्रुव है और बाण लगनेसे जो दिव्य रुधिर निकला है ॥ २९॥ और आकाशमें फिरनेके कारण पृथ्वीमें गिरा है यह अनेक वर्णवाला मण्डल क्षेत्र भूतोंका निमित्तभूत वर्षाकालमें वृष्टिका देनेवाला इन्द्रधनुष नामसे विख्यात होगा ॥ ३० ॥ इसके दर्शनसे प्राणियोंका सुख दुःख प्रवृत्त होता है. इन्द्रियश्रवणसे आकाशमें यह प्रवृत्त होताहै. हे राजन् ! मनुष्योंके नेत्र आकाशमें

तमुवाच मृगं ब्रह्मा शुभं सानुनयं वचः ॥ स्वरेणोत्तमवीर्येण गम्भीरेण सुभाषिणा ॥ एवंरूपो नभसि त्वं भविष्यसि महामृगः ॥२६॥
विजितश्च त्रिपर्वेण शरेणानतपर्वणा ॥ तिष्ठन्नक्षत्रशिरसि सह रुद्रेण नित्यशः ॥ २७ ॥ सोमेन सह संयुक्तो ह्यक्षयेणाव्ययेन च ॥
दिवि संचारभूतो वै ताराभिः सह संगतः ॥२८॥ ज्योतिर्भूतो ज्योतिषां त्वं ध्रुवश्चैव महाध्रुवः ॥ यच्चैतद्रुधिरं दिव्यं क्षतजाद्‌भिनिः-
सृतम् ॥ २९ ॥ नभस्युत्पतितं चैव प्रवेगेन प्रधावतः ॥ क्षतजं बहुवर्णं च क्षेत्रं मण्डलसंज्ञितम् ॥ निमित्तभूतं भूतानां वर्षे वर्षप्रदं
तथा ॥ ३० ॥ सुखं दुःखं च भूतानां दर्शने संप्रवर्तते ॥ इन्द्रियश्रवणाच्चैव नभसीन्द्रायुधोऽभवत् ॥ ३१ ॥ चक्षुषी मानुषे
राजन्विस्मयात्समवेक्षत ॥ अद्भुतं बहुचित्रं च मनसा संप्रकल्पितम् ॥३२॥ न तु रात्रौ प्रदृश्येत खे सब्रह्माणि संज्ञितम् ॥ दिनस्यैव
सदा त्वग्रे महत्कार्यं प्रदृश्यते ॥ ३३ ॥ भूमावेव समुत्तिष्ठेदाकाशे तु विलीयते ॥ शतशश्च समं सर्वे प्रधावन्ति प्रचेतसः ॥ ३४ ॥

इसके देखनेको विस्मयके साथ प्रवृत्त होते हैं. यह बडा अद्भुत और विचित्र मनसे कल्पना किया गया है ॥ ३१ ॥ यह सब स्वप्न वृत्तान्तकी समान रात्रिमें अविद्यासे कथन किया है. देहके आत्माभिमानरूपमें यह नहीं दीखता है ॥ ३२ ॥ ब्रह्मसंज्ञक आकाशमें रात्रिके समय यह नहीं दीखता अर्थात् अविद्याकी निवृत्तिमें शुद्ध ब्रह्मके उपलब्धिभूत हृदयाकाशमें यह लक्षित होता नहीं ब्रह्मरूप होनेसे दूसरी वस्तुका अवकाश कहां ? दिनकेही अग्रभागमें यह महाकार्य प्रवृत्त होता है ॥ ३३ ॥ यह अविद्यारूपी रात्रि शरीरमें उत्थित हो आकाशमें लय हो जाती है. (सर्वात्मक ब्रह्म देहात्म-

बुद्धिरूपाविद्या नाशमात्र होतेही अभिलाषके प्रति धावमान होती है) इसी प्रकार दक्षप्रजापतिके प्रिय सैकडों जहां तहां धावमान होने लगे ॥ ३४ ॥ फिरभी रुद्रके बडे अनुचर धनुषधारी गण तथा नंदिके साथ रुद्र स्थित हुए. जैसे युगान्तकालके समय अग्नि प्रज्वलित होती है ॥ ३५ ॥ एक हाथमें शार्ङ्गधनुष और एक हाथमें सुदर्शन चक्र लेकर स्थित हुए ॥ ३६ ॥. दूसरे हाथमें गदा घंटा और खड्ग धारण किये इस प्रकार आयुध लेकर रुद्रके सन्मुख स्थित हुए ॥ ३७ ॥ फिर शृङ्गके अग्रभागकी समान बडा धनुष ग्रहण कर अनुपमेय शंख और तीक्ष्ण पर्ववाले बाण ॥ ३८ ॥

भयाद्रुद्रस्य महतो धन्विनो बाणपाणयः॥नन्दी रुद्रगणैः सार्द्धं पिनाकी समतिष्ठत ॥ युगान्तकाले ज्वलितो ब्रह्मदण्ड इवोद्यतः॥३५॥ विष्णुः संग्रामसंभूतं प्रगृह्य विपुलं धनुः ॥ प्रातिष्ठत महाबाहुः पाणिना चक्रमादधत् ॥ ३६ ॥ गदां सघण्टामन्येन खड्गमन्येन पाणिना ॥ प्रगृह्य सोऽग्रतोऽतिष्ठद्रुद्रायोद्यतपाणये ॥ ३७ ॥ ततः शृङ्गाग्रसंभूतं प्रगृह्य विपुलं धनुः ॥ शृङ्गं चाप्रतिमं लोके शरांश्चानतपर्वणः ॥ ३८ ॥ विष्णुरग्रस्थितो भाति सबलः संहताञ्जलिः ॥ बद्धगोधाङ्गुलित्राणः सचन्द्र इव तोयदः ॥ ३९ ॥ आदित्या वसवश्चैवः दिव्यैः प्रहरणैः सह ॥ विष्णुमेवाभितः सर्वे तिष्ठन्ति ज्वलनप्रभाः ॥ ४० ॥ मरुतश्चैव विश्वे च रुद्रमेवाभिपेदिरे ॥ गन्धर्वाः किन्नराश्चैव नागा यक्षाः सपन्नगाः ॥ ४१ ॥ ऋषयो न्यस्तदण्डाश्च उभयोः पक्षयोर्हिताः ॥ जपन्ति शान्तये नित्यं लोकानां हितकाम्यया ॥ ४२ ॥ रुद्रः शरेणाभ्यहनत् विष्णुमेवाग्रणी रणे ॥ हृदि सर्वाङ्गसंधीषु तीक्ष्णाग्रेण सुयन्त्रिणा ॥ ४३ ॥

ग्रहण कर शबल संहत अंजलिवाले विष्णु अर्थात् धर्माधिष्ठातृदेवता विष्णु और ज्ञानाधिष्ठात्री देवता शिव गोधा अंगुलीत्राण बांधे मेघसहित चन्द्रमाकी समान शोभित हुए ॥ ३९ ॥ इनके परस्पर विरोधमें आदित्य वसु विष्णु पक्षके हो ज्ञानका द्वेष करते हैं और यह सब महाकान्तिमान् विष्णुके निकट स्थित होते हैं ॥ ४० ॥ मरुत् और विश्वेदेवा रुद्रकी ओर हुए गन्धर्व किन्नर नाग यक्ष पन्नग ॥ ४१ ॥ और दण्डत्यागी ऋषि समान दृष्टि होनेसे दोनों पक्षके आश्रित हुए लोगोंकी हित चाहनेके निमित्त शान्तिपाठ करने लगे ॥ ४२ ॥ रुद्रने युद्धमें बाणके प्रहारसे विष्णुको युद्धमें ताडन

किया और तीक्ष्ण शरोंसे शरीरकी सब संधियोंमें प्रहार किया ॥ ४३ ॥ ब्रह्मसंभव सर्वात्मा विष्णु कंपित न हुए और छः इन्द्रियोंसे व्याप्त हो रोषको प्राप्त न हुए ॥ ४४ ॥ तब विष्णुजीने बाण धारण कर धनुषके ऊपर चढाया और ब्रह्मदण्डीकी समान उस बाणको शिवके जत्रुदेश (हँसली) में प्रहार किया ॥ ४५ ॥ तब उस बाणसे विद्ध होकर महादेव कंपित न हुए जिस प्रकार वज्रसे मंदरपर्वतकी संधि कोई चलायमान नहीं कर सकता है ॥ ४६ ॥ तब विष्णुने कूदकर सनातन रुद्रको कंठदेशमें ग्रहण किया जिससे वह नीलकण्ठ कहलाये. इसका तात्पर्य यह है कि यद्यपि अपनी उत्पत्तिमें ज्ञानको धर्मापेक्षा है. उत्पन्न ज्ञान धर्मको मूलसे उच्छेद करता है तोभी महात्माकोही धर्माधिकार होनेसे ज्ञानके कंठमें शिशुकी समान लग्न है ॥ ४७ ॥

न चकम्पे तदा विष्णुः सर्वात्मा ब्रह्मसंभवः ॥ न च रोषमना नित्यं वृतः सर्वैः षडिन्द्रियैः॥४४॥ विष्णुश्च धनुरानम्य शरेण समयोजयत् ॥ जत्रुदेशे मुमोचाशु ब्रह्मदण्डमिवोद्यतम् ॥ ४५ ॥ स विद्धस्तेन बाणेन महादेवो न कम्पते ॥ वज्रेण च महासंधिर्मन्दरस्य न चाल्यते॥ ४६ ॥ ततः प्रसभमाप्लुत्य रुद्रं विष्णुः सनातनम् ॥ कण्ठे जग्राह भगवान्नीलकण्ठस्ततोऽभवत् ॥ ४७ ॥ अनादिनिधनो देवः क्षमतां हि भवान्मम ॥ सर्वभूतागमाचार्यमचलत्वाच्च कर्मणाम् ॥ ४८ ॥ कर्मणा चैव कर्ता च विकर्ता चैव भारत ॥ अशेषत्वाच्च भूतानां सर्वभूतेषु चोत्तमः ॥ ४९ ॥ स्वयमेव हि यत्कर्म विधत्ते कर्मयोनिषु ॥ तयोः शुभतमो राजन्स्वयमेव तथाकरोत् ॥ ५० ॥ अन्तरिक्षाच्छुभा वाचः श्रूयन्ते परमाद्भुताः ॥ सिद्धानां वदनोन्मुक्ताः सनातन नमोऽस्तु ते ॥ ५१ ॥ नन्दी पिनाकमुद्यम्य बलवान् रुद्रसंभवः ॥ मूर्द्धन्यभिजघानाजौ विष्णुं क्रोधेन मूर्च्छितः ॥ ५२ ॥

कथाके प्रसंगसे विज्ञानकी स्तुति करते हैं. आदि अन्तरहित सर्व भूत और शास्त्रके आचार्य और महदादि भूत कर्मके अचल रखनेवाले ॥ ४८ ॥ कर्मके कर्त्ता और विकर्ता भूतोंके अशेष सबसे उत्तम ॥ ४९ ॥ हमको क्षमा करो. आप कर्मयोनियोंमें स्वयं कर्मका विधान करते हो और हे राजन् ! जो उनमें शुभमत है वैसाही आप करते हो ॥ ५० ॥ अन्तरिक्षसे सुन्दर वाणी सुनी जाती है. जो सिद्धोंके मुखसे निकली हुई थी. हे सनातन देव ! आपको नमस्कार है ॥ ५१ ॥ रुद्रसंभव बलवान् नन्दी पिनाकको उठाकर क्रोधसे मूर्च्छित हुए विष्णुके मस्तकमें प्रहार करते हुए ॥ ५२ ॥

तब सुरोत्तम विष्णु (योगाख्य धर्म) नंदी (क्षुद्रज्ञान) को देखकर हास्य करते हुए और सर्वभूतपति हरिने; उसको स्तंभित कर दिया ॥ ५३ ॥ विष्णु ब्रह्मकी समान हो तेजसे प्रज्वलित होते हुए क्षमासे युक्त हो स्थाणुकी समान अचल स्थित हुए अर्थात् सांख्य और योगको जो एक देखता है वही देखता है ॥ ५४ ॥ वह अचिन्त्य अप्रमेय अजेय शत्रुसूदन युगान्ताग्निकी समान होकर वह शान्तात्मा अविनाशी हरिने ॥ ५५ ॥ प्रसन्न हो हरिने रुद्रके निमित्त भागकी कल्पना की, कारण कि विष्णु नित्य धर्ममें तत्पर कामना त्याग किये हैं ॥ ५६ ॥ हे राजेन्द्र! विष्णुने उस यज्ञको फिर साधन किया, अर्थात् अनात्मज्ञ दक्षका यज्ञ श्रद्धारूपी विष्णुसे फिर सन्निधानको प्राप्त हो योगसे आत्मदर्शन और ज्ञानसे आत्मबोध इन दोनोंका विभाग किये हे महीपते !

ततः प्रहसितो विष्णुर्नन्दीं दृष्ट्वा सुरोत्तमः ॥ स्तम्भयामास भगवान्सर्वभूतपतिर्हरिः ॥ ५३ ॥ विष्णुर्ब्रह्मसमो भूत्वा तेजसा प्रज्वलन्निव ॥ क्षमया च समायुक्तः स्थितः स्थाणुरिवाचलः ॥ ५४ ॥ अचिन्त्यश्चाप्रमेयश्च ह्यजेयश्चाप्यरिंदमः ॥ युगान्ताग्निसमो भूत्वा शान्तात्मा हरिरव्ययः ॥ ५५ ॥ प्रसन्नः कल्पयामास भागं रुद्राय धीमते ॥ विष्णुर्धर्मपरो नित्यं त्यक्तकामः सुरोत्तमः ॥ ५६ ॥ विष्णुना चैव राजेन्द्र स यज्ञः संधितः पुनः ॥ यथापक्षं च ते सर्वे गणास्त्वासन्महीपते ॥ तस्मिन्युद्धे महाघोरे विष्णुरुद्रस्य चैव ह ॥ ५७ ॥ यथापक्षं भवद्युद्धं दक्षयज्ञविनाशने ॥ विनाशश्चैव यज्ञस्य तदा लोके प्रतिष्ठितः ॥ ५८ ॥ सर्वभूतेषु राजेन्द्र हितो यज्ञः सनातनः ॥ दक्षो यज्ञफलं चैव प्राप्तवान्स प्रजापतिः ॥ ५९ ॥ इमां चोदाहृतां दिव्यां कथामिति स बुद्धिमान् ॥ श्रावयेद्यस्तु विप्रेभ्यः शुचिः प्रयतमानसः ॥ ६० ॥ अधीत्य सर्वमध्यात्मं देवलोके महीयते ॥ एष पौष्करको नाम प्रादुर्भावो महात्मनः ॥ ६१ ॥

वे सब गण यथा पक्षमें स्थित हुए उस विष्णु और रुद्रके महाघोर युद्धमें ॥५७॥ दक्षयज्ञविनाशी यथापक्ष दोनोंका युद्ध हुआ अर्थात् श्रवण आसनकी सहायवाले सांख्य और परस्पर योगके विरोध होनेमें यज्ञविनाश और ज्ञानकीही उत्कर्षता हुई. उस समय लोकमें यज्ञविनाशही प्रतिष्ठित हुआ ॥ ५८ ॥ यद्यपि ज्ञान श्रेष्ठ है तथापि उपकारी होनेसे यज्ञ श्रेष्ठ है; नहीं तो द्वारलोप हो जानेसे ज्ञानभी सिद्ध नहीं होता ॥ ५९ ॥ हे राजेन्द्र ! सर्वभूतोंमें सनातन यज्ञ हितकारी है उस प्रजापति दक्षने यज्ञफलकी प्राप्ति की ॥६०॥ इस दिव्य कथाको कहकर जो बुद्धिमान् पवित्र होकर ब्राह्मणोंके प्रति सुनावे

यह कथा तो एक प्रपंचरूप है परन्तु यह सब अध्यात्मरूप है इसके पाठ करनेसे आत्मस्वरूप देवलोकमें प्रतिष्ठा होती है यह उन महात्माका पुष्करप्रादुर्भाव है ॥ ६१ ॥ यह पुराणोंमें मैंने कृष्णद्वैपायनके मुखसे श्रवण किया है. परमर्षियोंने इसको यथायोग्य संस्कृत किया है ॥ ६२ ॥ जो इस श्रेष्ठ परमपुराणको सदा अप्रमत्त होकर श्रवण करता है वह सब कामनाको प्राप्त हो शोकरहित होकर दूसरे लोकोंमें स्वर्गफलको भोगता है ॥ ६३ ॥ इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे भविष्यपर्वणि भाषायां द्वात्रिंशोऽध्यायः ॥ ३२ ॥ जन्मेजय बोले; हे द्विजराज ! हमने पुराणोंमें अमित तेजवाले

पुराणे पौष्करे चैव मया द्वैपायनेरितः ॥ यथावदनुपूर्वेण संस्कृतः परमर्षिभिः ॥ ६२ ॥ यश्चैनमग्र्यं पुरुषं पुराणं सदाप्रमत्तः शृणुयाद्यथोक्तम् ॥ अवाप्य कामानिह वीतशोकः परत्र च स्वर्गफलानि भुङ्क्ते ॥ ६३ ॥ इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे भविष्यपर्वणि द्वात्रिंशोऽध्यायः ॥ ३२ ॥ जनमेजय उवाच ॥ प्रादुर्भावः पुराणेषु विष्णोरमिततेजसः ॥ सतां कथयतां विप्र वाराह इति नः श्रुतः ॥ १ ॥ न जानतेऽस्य चरितं न विधिं नैव विस्तरम् ॥ न कर्म गुणवद्भावं न हेतुं न मनीषितम् ॥ २ ॥ किमात्मको वराहोऽसौ का मूर्तिः कास्य देवता ॥ किमाचारः किंप्रभावः किं वा तेन पुरा कृतम् ॥ ३ ॥ एतन्मे संशयत्वेन वाराहं श्रुतिविस्तरम् ॥ यज्ञार्थं च समेतानां द्विजातीनां महात्मनाम् ॥ ४ ॥ वैशम्पायन उवाच ॥ एतत्ते कथयिष्यामि पुराणं ब्रह्मसंमितम् ॥ नानाश्रुतिसमायुक्तं कृष्णद्वैपायनेरितम् ॥ महावराहचरितं कृष्णस्याद्भुतकर्मणः ॥ ५ ॥

विष्णुका वाराह अवतार सत्पुरुषोंसे सुना है ॥ १ ॥ उसके चरित्र और विधि विस्तारसे नहीं जानता हूं न उनके कर्म गुण भाव और हेतुको जानता हूं ॥ २ ॥ वह वराह किस आत्मक है यज्ञमय है वा योगमय है क्या मूर्ति है शरीर भौतिक है वा मायिक है इसके अधिष्ठात्री देवता हरि वाराह हैं क्या आचार और प्रभाव है अथवा पूर्वमें क्या कृत्य किया था ॥ ३ ॥ हे भगवन् ! यह मुझे सन्देह है वराहचरित्र विस्तारपूर्वक कहिये यज्ञार्थको इकट्ठे हुए ब्राह्मणोंका चरित्र मुझसे वर्णन कीजिये ॥ ४ ॥ वैशंपायन बोले; यह ब्रह्मसंमित पुराण मैं तुमसे वर्णन करता हूं. जो अनेक

प्रकारकी श्रुतियोंसे युक्त व्यासजीने वर्णन किया है वह महावराहका चरित्र अद्भुत कर्मा श्रीकृष्णकाही है ॥ ५ ॥ हे राजन्! जिस प्रकार नारायणने वाराहरूप धारण कर दंष्ट्रासे पृथ्वीका उद्धार किया ॥ ६ ॥ वह चरित उदारवेदकी श्रुतियोंसे अलंकृत है. हे जन्मेजय! इस चरित्रको पवित्र होकर सुनो ॥ ७ ॥ यह पुराण पुण्यरूप वेदोंसे सम्मत है अनेक श्रुतियोंसे युक्त है नास्तिकोंके निमित्त देना न चाहिये ॥ ८ ॥ इस संपूर्ण पुराणमें सांख्य और योग सब विधिपूर्वक कहा है. इस रीतिसे सांख्य और योगका अन्तर्भाव है वह विद्वानोंको कोई एक ग्रहण करना चाहिये, जो केवल कथामात्रो-

यथा नारायणो राजन्वाराहं वपुरास्थितः ॥ दंष्ट्रया गां समुद्रस्थामुज्जहारारिसूदनः ॥ ६ ॥ छान्दसीभिरुदाराभिः श्रुतिभिः समलंकृतः ॥ शुचिः प्रयत्नवान् भूत्वा निबोध जनमेजय ॥ ७ ॥ इदं पुराणं परमं पुण्यं वेदैश्च संमितम् ॥ नानाश्रुतिसमायुक्तं नास्तिकाय न कीर्त्तयेत् ॥ ८ ॥ पुराणमेतदखिलं सांख्यं योगं तथैव च ॥ कार्त्स्न्येन विधिना प्रोक्तं योऽस्यार्थं ज्ञास्यते पुमान् ॥ ९ ॥ विश्वेदे-वास्तथा साध्या रुद्रादित्यास्तथाश्विनौ ॥ प्रजानां पतयश्चैव सप्त चैव महर्षयः ॥ १० ॥ मनःसंकल्पजाश्चैव पूर्वजाश्च महर्षयः ॥ वसवोऽप्सरसश्चैव गन्धर्वा यक्षराक्षसाः ॥ ११ ॥ दैत्याः पिशाचा नागाश्च भूतानि विविधानि च ॥ ब्राह्मणाः क्षत्रिया वैश्याः शूद्रा म्लेच्छादयो भुवि ॥ १२ ॥ चतुष्पदानि सर्वाणि तिर्यग्योनिगतानि च ॥ जङ्गमानि च सत्त्वानि यच्चान्यज्जीवसंज्ञितम् ॥ १३ ॥ पूर्णे युगसहस्रान्ते ब्राह्मेऽहनि तथागते ॥ निर्वाणे सर्वभूतानां सर्वोत्पातसमुद्भवे ॥ १४ ॥ हिरण्यरेतास्त्रिशिखस्ततो भूत्वा वृषाकपिः ॥ शिखाभिर्विविधाँल्लोकान्संशोषयाति देहिनः ॥ १५ ॥

पजीवी है वे अर्थानभिज्ञ हैं ॥ ९ ॥ विश्वेदेवा साध्य रुद्र आदित्य अश्विनीकुमार प्रजापति सप्त महर्षि ॥ १० ॥ मनके संकल्पसे उत्पन्न औरभी पूर्वज महर्षि वसु अप्सरा गन्धर्व यक्ष राक्षस ॥ ११ ॥ दैत्य पिशाच नाग अनेक प्रकारके भूत ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्य शूद्र म्लेच्छादि ॥ १२ ॥ संपूर्ण चतुष्पद तिर्यग्योनिके जीव सब जंगम जीव और जो जीवसंज्ञक हैं ॥ १३ ॥ सहस्रयुग पूर्ण होनेपर ब्राह्मदिनकी पूर्तिमें सब भूतोंके निर्वाण होनेमें और सब उत्पातोंके प्रादुर्भूत होनेमें ॥ १४ ॥ तब साक्षात् महादेवरूप अपनी शिखाओंसे लोकोंको कंपायमान करता हुआ शोषित करता है ॥ १५ ॥

तब उनकी तेजोराशिसे दग्ध होते हुए विवर्णवदन दग्ध अंग बिगडे हुए वर्णवाले कान्तिवाले मुखोंसे युक्त ॥ १६ ॥ सांग उपनिषद् सहित वेद इतिहा-
सादिके सहित सम्पूर्ण विद्याके आश्रय सत्यधर्ममें परायण ॥ १७ ॥ ब्रह्माको आगे किये ईश्वरकी इच्छासे हुए सम्पूर्ण तैतीस करोड देवता ॥ १८ ॥
उस दिनके प्राप्त होनेमें उस हंस, महाअक्षरवाले ब्रह्म नारायणमें प्रवेश कर जाते हैं ॥ १९ ॥ फिर उन प्रवेश करनेवालोंके प्रवेश करनेपर फिर उत्पत्ति
होती है. जैसे सूर्यका उदय और अस्त हुआ करता है ॥ २० ॥ सहस्रयुगके पूर्ण हो जानेमें कल्पका निशेष हो जाता है उसमें कोई जीव अपने कृत्यको

दह्यमानास्ततस्तस्य तेजोराशिभिरग्रतः ॥ विवर्णवर्णा दग्धाङ्गा हतार्चिष्माद्रिराननैः ॥ १६ ॥ साङ्गोपानिषदा वेदा इतिहासपुरोगमाः ॥
सर्वविद्याश्रयाश्चैव सत्यधर्मपरायणाः ॥ १७ ॥ ब्रह्माणमग्रतः कृत्वा छन्दतो विश्वतोमुखम् ॥ सर्वे देवगणाश्चैव त्रयस्त्रिंशच्च कोटयः ॥ १८ ॥
तास्मिन्नहानि संप्राप्ते तं हंसं महदक्षरम् ॥ प्रविशन्ति महायोगं हरिं नारायणं प्रभुम् ॥ १९ ॥ तेषां भूयः प्रविष्टानां निधनोत्पत्तिरु-
च्यते ॥ यथा सूर्यस्य सततमुदयास्तमयाविह ॥ २० ॥ पूर्णे युगसहस्रान्ते कल्पो निःशेष उच्यते ॥ तस्मिन् जीवकृतं सर्वं निः-
शेषमवतिष्ठते ॥ २१ ॥ संहृत्य लोकान्त्सर्वान्त्स सदेवासुरपन्नगान् ॥ कृत्वात्मगर्भे भगवानास्त एको जगद्गुरुः ॥ २२ ॥ यः स्रष्टा सर्व-
भूतानां कल्पान्तेषु पुनः पुनः ॥ अव्यक्तः शाश्वतो देवस्तस्य सर्वमिदं जगत् ॥ २३ ॥ नष्टार्ककिरणे लोके चन्द्ररश्मिविवर्जिते ॥
त्यक्तभूताग्निपवने क्षीणयज्ञवषट्क्रिये ॥ २४ ॥ अपक्षिगणसंघाते सर्वप्राण्यचरे पथि ॥ अमर्यादाकुले रौद्रे सर्वतस्तमसा वृते ॥ २५ ॥
अदृश्ये सर्वलोकेऽस्मिन्नभावे सर्वकर्मणाम् ॥ प्रशान्ते सर्वसंपाते नष्टे वैरपरिग्रहे ॥ २६ ॥

प्राप्त नहीं होता है ॥ २१ ॥ देव असुर पन्नगोंके सहित सम्पूर्ण लोकोंका संहार करके अपने गर्भमें सबको करके वह जगद्गुरु स्थित होते हैं ॥ २२ ॥ जो
कल्पान्तमें वारंवार सब भूतोंकी रचना करते हैं वह अव्यक्त शाश्वत देव हैं उन्हींके यह सब जगत् वशमें है ॥ २३ ॥ जब लोक चन्द्र सूर्यकी किर-
णोंसे रहित हो जाता है भूत अग्नि पवन यज्ञ और वषट्कारके हीन होनेमें ॥ २४ ॥ पक्षी और प्राणिसमूह रहित होनेपर सब मर्यादाहीन होकर रौद्र
और अंधकारसे आच्छादन होनेमें ॥ २५ ॥ सब लोकोंके अदृश्य और सब कर्मोंके अभाव होनेमें सब संतापके शान्त और वैर परिग्रहके नष्ट होनेमें ॥ २६ ॥

नारायणात्मक लोकके अपने स्वभावको प्राप्त होनेमें हृषीकेश परमेष्ठी शयन करनेकी इच्छा करते हैं ॥ २७ ॥ पीतवसन लालनेत्र कृष्णमेघकी समान कान्तिमान् सहस्र शिखायुक्त जटाभारको धारण किये ॥ २८ ॥ श्रीवत्सके पवित्र जलसे युक्त लाल चंदनसे भूषित हृदयवाले बिजलीसे युक्त मेघकी समान प्रकाशमान ॥ २९ ॥ सहस्र कमलोंकी मालासे शोभित अपनी पत्नी लक्ष्मीके देहको आश्रय कर स्थित होनेवाले ॥ ३० ॥ वह धर्मात्मा लोकके पितामह शयन कर जाते हैं. इस प्रकार वह विक्रान्त योगनिद्राको प्राप्त हो ॥ ३१ ॥ सहस्र वर्षके पूर्ण होनेमें स्वयंही विभु होकर

गते स्वभावसंस्थानं लोके नारायणात्मके॥ परमेष्ठी हृषीकेशः शयनायोपचक्रमे॥२७॥पीतवासा लोहिताक्षः कृष्णो जीमूतसन्निभः॥
शिखासहस्रविकचं जटाभारं समुद्वहन् ॥ २८॥ श्रीवत्सकलिलं पुण्यं रक्तचन्दनभूषितम् ॥ वक्षो बिभ्रन्महाबाहुः सविद्युदिव
तोयदः ॥ २९ ॥ पुण्डरीकसहस्रस्य मालयास्य शुशुभे तदा ॥ पत्नी चैव स्वयं लक्ष्मीर्देहमावृत्य तिष्ठति ॥ ३० ॥ ततः स्वपिति
धर्मात्मा सर्वलोकपितामहः ॥ किमप्यमितविक्रान्तो निद्रायोगमुपागतः ॥ ३१ ॥ ततो वर्षसहस्रे तु पूर्णे स पुरुषोत्तमः ॥ स्वयमेव
विभुर्भूत्वा बुध्यते विबुधाधिपः ॥ ३२ ॥ ततश्चिन्तयते भूयः सृष्टिं लोकस्य लोककृत् ॥ पितृदेवासुरनरान्पारमेष्ठ्येन कर्मणा ॥३३॥
ततश्चिन्तयतः कार्यं देवेषु समितिंजयः ॥ संभवं सर्वलोकस्य विदधाति स वाक्पतिः ॥ ३४ ॥ कर्ता चैव विकर्ता च संहर्ता च
प्रजापतिः ॥ धाता विधाता च तथा संयमो नियमो यमः ॥ ३५ ॥ नारायणपरा देवा नारायणपराः क्रियाः ॥ नारायणपरो यज्ञो
नारायणपरा श्रुतिः ॥ ३६ ॥

जागृत होते हैं ॥ ३२ ॥ तब वह लोककर्ता स्वयं सृष्टि करनेकी इच्छा करते हैं. पितृ देवता असुर मनुष्योंको परमेष्ठी क्रमसे बनानेकी इच्छा करते हैं ॥ ३३ ॥ तब वह नियामक देवताओंके कार्यकी चिन्ता करते हैं वह वाणीपति त्रिलोकीके संभवका विधान करते हैं ॥ ३४ ॥ वही प्रजापति कर्ता विकर्ता और संहर्ता है. धाता विधाता संयम नियमरूप वही है ॥ ३५ ॥ सब देवता और सब क्रिया नारायणसे प्रवृत्त हैं सब यज्ञ और श्रुति नाराय-

णपर है ॥ ३६ ॥ मोक्ष नारायणपर और परम गति नारायणसे है धर्म और क्रतु नारायणपर हैं ॥ ३७ ॥ यज्ञ तप सत्य परंपद नारायणपर है नारायणसे अधिक कोई देवता न है न होगा ॥ ३८ ॥ वही स्वयंभू ब्रह्मा और भुवनका अधिपति कहाता है वहां वायु और वही सनातन यज्ञ है ॥ ३९ ॥ वही सत् असत् यज्ञ और प्रजाका करनेवाला है. जो देवताओंको जानना चाहिये वही यह सबसे श्रेष्ठ है ॥ ४० ॥ इन भगवान्‌को प्रजापति सात ऋषि देवताओंके सहित जाननेको समर्थ नहीं हैं ॥ ४१ ॥ कोई इनके अन्तको प्राप्त नहीं हो सकता इससे यह अनन्त कहलाते हैं जो

नारायणपरो मोक्षो नारायणपरा गतिः ॥ नारायणपरो धर्मो नारायणपरः क्रतुः ॥ ३७ ॥ नारायणपरं ज्ञानं नारायणपरं तपः ॥ नारायणपरं सत्यं नारायणपरं पदम् ॥ नारायणपरो देवो न भूतो न भविष्यति ॥ ३८ ॥ स्वयंभूरिति विज्ञेयः स ब्रह्मा भुवनाधिपः ॥ स वायुरीति विज्ञेय एष यज्ञः सनातनः ॥ ३९ ॥ सदसच्च स विज्ञेयः स यज्ञः स प्रजाकरः ॥ यद्वेदितव्यं त्रिदशैस्तदेष परिविन्दति ॥ ४० ॥ यच्च वेद्यं भगवतो देवा अपि न तद्विदुः ॥ प्रजानां पतयः सप्त ऋषयश्च सहामरैः ॥ ४१ ॥ नास्यान्तमधिगच्छन्ति ततोऽनन्त इति श्रुतिः ॥ यदस्य परमं रूपं तत्र पश्यन्ति देवताः ॥ ४२ ॥ प्रादुर्भावेषु तं भूतं यत्तदर्चन्ति देवताः ॥ यन्न दर्शितवान्देवः कस्तदन्वेष्टुमर्हति ॥ ४३ ॥ ग्रामणीः सर्वभूतानामग्निमारुतयोर्गतिः ॥ तेजसस्तपसश्चैव निधानममृतस्य च ॥ ४४ ॥ चतुराश्रमवर्णेषु चातुर्होत्रफलाशनः ॥ चतुःसागरपर्यन्तश्चतुर्युगविवर्तकः ॥ ४५ ॥ तदेष संहृत्य जगत्कृत्वा गर्भस्थमात्मनः ॥ मुमोचाण्डं महायोगी धृतं वर्षसहस्रिकम् ॥ ४६ ॥

इसका परमरूप है उसे देवता देखते हैं ॥ ४२ ॥ जो इनका प्रादुर्भावरूप है उसकी देवता अर्चना करते हैं और जो रूप इन देवने नहीं दिखाया उसे कौन देख सकता है ॥ ४३ ॥ यह सब भूतोंका नेता अग्नि और पवनकी गति तेज और तप तथा अमृतके स्थान ॥ ४४ ॥ चार आश्रम और चारों वर्णोंमें चातुर्होत्रके फलभागी हो चार सागर पर्यन्त चारों युगोंके प्रवृत्त करनेवाले ॥ ४५ ॥ इस संसारको संसार कर अपने गर्भमें स्थित कर वह महायोगी सहस्रवर्षपर्यन्त धारण किये इस अण्डेको फिर त्यागन करते हैं ॥ ४६ ॥

सुर असुर ब्राह्मण अप्सराओंके गण महौषधी पर्वत यक्ष गुह्यक प्रजापति श्रुतिधर यक्ष राक्षस आदियोंके कुलको उन्होंने निर्माण किया इस प्रकार प्रभुने सब अपनी आत्मासेही रचा ॥ ४७ ॥ इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे भविष्यपर्वणि भाषायां त्रयस्त्रिंशोऽध्यायः॥ ३३ ॥ वैशंपायन बोले; पूर्वमें यह ब्रह्माण्ड सुवर्णरूप था प्रजापतिका मूर्तिरूप था यह वैदिकी श्रुति है ॥ १ ॥ तब सहस्रवर्षके अनन्तर प्रभुने इसके ऊर्ध्वमुखका विभेद किया और लोकोंके उत्पन्न करनेके निमित्त नीचेके मुखका भेद किया ॥ २ ॥ फिर जगत्के उत्पत्तिकारण प्रभुने जगत्को आठ प्रकारसे विभक्त किया इस

सुरासुरद्विजभुजगाप्सरोगणैर्महौषधिक्षितिधरयक्षगुह्यकैः ॥ प्रजापतिः श्रुतिधररक्षसां कुलं तदासृजज्जगादिदमात्मना प्रभुः ॥ ४७ ॥
इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे भविष्यपर्वणि त्रयस्त्रिंशोऽध्यायः ॥ ३३ ॥ वैशम्पायन उवाच ॥ जगदण्डमिदं पूर्वमासीत्सर्वं
हिरण्मयम् ॥ प्रजापतेर्मूर्तिमयमित्येवं वैदिकी श्रुतिः ॥ १ ॥ ततो वर्षसहस्रान्ते बिभेदोर्ध्वमुखं विभुः ॥ लोकसंजननार्थाय बिभे-
दाधोमुखं पुनः ॥ २ ॥ भूयोऽष्टधा बिभेदाण्डं प्रभुर्वै लोकयोनिकृत् ॥ चकार जगतश्चात्र विभागं सर्वभागवित् ॥ ३ ॥ यच्छिद्र-
मूर्ध्वमाकाशं परा सुकृतिनां गतिः ॥ विहितं विश्वयोगेन यदधस्तद्रसातलम् ॥ ४ ॥ यदण्डमकरोत्पूर्वं देवलोकसिसृक्षया ॥ समन्ताद-
ष्टधा यानि च्छिद्राणि कृतवांस्तु सः ॥ ५ ॥ विदिशस्ता दिशाः सर्वा मनसैवाकरोद्द्विधा ॥ नानारागविरागाणि यान्यण्डशकलानि
वै ॥ ६ ॥ बहुवर्णधराश्चित्रा बभूवुस्ते बलाहकाः ॥ यदण्डमध्ये स्कन्नं तद्रुतमासीत्समाहितम् ॥ ७ ॥ जातरूपं तदभवत्तत्सर्वं
पृथिवीतले ॥ तस्य क्लेदार्णवौघेन प्राच्छाद्यत समन्ततः ॥ ८ ॥

सब जगत्का विभाग उस जाननेवालेने किया अर्थात् वाक् पाणि पाद नाम तीन छिद्र श्रोत्र त्वक् चक्षु जिह्वा घ्राण नामक तीन छिद्र, उपस्थमें अपानका अन्तर्भाव है ॥ ३ ॥ जो ऊपरका आकाशात्मक छिद्र है वह पुण्यात्माओंकी गति है. जो योगसे विधान किया है जो नीचेका है वही रसातलका द्वार है ॥४॥ जो अण्ड प्रथम देवलोकके रचनेकी इच्छासे बनाया उसके चारों ओर उसने आठ छिद्र किये हैं ॥ ५ ॥ फिर सम्पूर्ण दिशा विदिशा मनसेही दो प्रकार कीं और स्थूल सूक्ष्मके भेदसे विषयोंके ग्रहण करनेवाली इन्द्रियोंकी रचना की और अनेक प्रकारके राग विराग जो अण्डके खण्ड थे ॥ ६ ॥ वे अनेक वर्णके चित्रविचित्र मेघ हुए और जो अण्डके मध्यमें द्रवरूप निकला है ॥ ७ ॥ वह सब पृथ्वीमें सुवर्णनामसे विख्यात है और उसकेही

क्लेदसे यह चारों ओर पूर्ण स्वरूप ॥ ८ ॥ पृथ्वी युगान्तमें सागरसे पूर्ण हुईसी विदित होती है ॥ ९ ॥ जो देवलोक रचनेकी इच्छासे प्रथम अण्ड निर्माण किया उसमें जहां जहां जल भरा वही सुवर्णका पर्वत हुआ ॥ १० ॥ उस जलसे दिशा विदिशा सब भर गई अन्तरिक्ष स्वर्ग तथा और जो कुछ है ॥ ११ ॥ वह जल जहां टपका वहीं वहीं पर्वत हो गया, तब सम्पूर्ण पर्वतोंसे पृथ्वी विषम हो गई ॥ १२ ॥ उन बहुत योजनके विस्तारवाले पर्वतजालोंके सहित महापर्वतोंसे पीडित हो व्यथित हुई ॥ १३ ॥ जो पृथ्वीतलमें नारायणात्मक महाजल है. जो हिरण्यमय उज्ज्वल तेज और रूप-

पृथिवी निखिला राजन्युगान्ते सागरैरिव ॥ ९ ॥ यच्चाण्डमकरोत्पूर्वं देवलोकचिकीर्षया ॥ तत्र तत्सलिलं स्कन्नं सोऽभवत्काञ्चनो गिरिः ॥ १० ॥ तेनाम्भसा प्लुताः सर्वा दिशश्चोपदिशस्तथा ॥ अन्तरिक्षं च नाकं च यच्चान्यत्किंचिदन्तरम् ॥ ११ ॥ यत्र यत्र जलं स्कन्नं तत्र तत्र स्थितो गिरिः ॥ शैलैः समस्तैर्गहना विषमा मेदिनी भवत् ॥ १२ ॥ तैः सपर्वतजालैश्चैर्बहुयोजनविस्तृतैः ॥ पीडिता गुरुभिर्देवी पृथिवी व्यथिताभवत् ॥ १३ ॥ महीतले भूरिजलं दिव्यं नारायणात्मकम् ॥ हिरण्मयं समुद्दिष्टं तेजो विमलरूपितम् ॥ १४ ॥ अशक्ता वै धारयितुमधः सा प्रविवेश ह ॥ पीड्यमाना भगवतस्तेजसा तेन सा क्षितिः ॥ १५ ॥ पृथिवीं विशतीं दृष्ट्वा तामधो मधुसूदनः ॥ उद्धारार्थं मनश्चक्रे लोकानां हितकाम्यया ॥ १६ ॥ श्रीभगवानुवाच ॥ मत्तेज एव बलवत्समासाद्य तपस्विनी ॥ रसातलं विशेद्देवी पङ्के गौरिव दुर्बला ॥ १७ ॥ धरण्युवाच ॥ त्रिविक्रमायामितविक्रमाय महानृसिंहाय चतुर्भुजाय ॥ श्रीशार्ङ्गचक्रासिगदाधराय नमोऽस्तु तस्मै पुरुषोत्तमाय ॥ १८॥

वान् है ॥ १४ ॥ उन जलोंको पृथ्वी धारण करनेमें समर्थ न हुई इससे पातालमें प्रवेश कर गई इस प्रकार भगवान्के तेजसे पीडित हुई महापृथ्वी प्रवेश करने लगी ॥ १५ ॥ तब मधुसूदन पृथ्वीको प्रवेश करता देख लोकोंके हितकी कामनासे उसके उद्धारकी इच्छा करने लगे ॥ १६ ॥ श्रीभगवान् बोले हे तपस्विनि! हमारे बलिष्ठ तेजके आश्रय होकर कीचमें दुर्बल गौकी समान तू रसातलमें प्रवेश कराती है॥ १७॥ धरणी बोली; त्रिविक्रम

अमितविक्रम महानृसिंह चतुर्भुज श्रीशार्ङ्ग चक्र गदा पद्मधारी पुरुषोत्तम देवको नमस्कार है॥ १८॥ आपहींसे यह जगत् धारण और संहार किया जाता है. तुम भूतोंको धारण कर भरण पोषण करते हो ॥ १९ ॥ जो कुछ तेज और बलसे आपके द्वारा धारण किया जाता है सो आपके प्रसादसे धारण किया जाता है. मैं आपके प्रसादसे धारण करती हूं ॥ २० ॥ तुम्हारी धारण की हुई वस्तुको मैं धारण करती हूं अधृतको धारण नहीं करती हूं वह वस्तु संसारमें नहीं है जिसको तुम धारण नहीं करते हो ॥ २१ ॥ हे वीरपुरुष नारायण! आपही युगयुगमें जगत्के हितकी कामनासे मेरा भार उतारते

त्वयात्मना धार्यते वै त्वया संह्रियते जगत् ॥ त्वं धारयसि भूतानि भुवनं त्वं बिभर्षि च ॥ १९ ॥ यत्त्वया धार्यते किंचित्तेजसा च बलेन च ॥ ततस्तव प्रसादेन मया पश्चात्तु धार्यते ॥ २० ॥ त्वया धृतं धारयामि नाधृतं धारयाम्यहम् ॥ नहि तद्विद्यते रूपं यत्त्वया न तु धार्यते ॥ २१ ॥ त्वमेव पुरुषो वीर नारायण युगे युगे ॥ मम भारावतरणं जगतो हितकाम्यया ॥ २२ ॥ तवैव तेजसा क्रान्तां रसातलतलं गताम् ॥ त्रायस्व मां सुरश्रेष्ठ त्वामेव शरणं गताम् ॥ २३ ॥ दानवैः पीड्यमानाहं राक्षसैश्च दुरात्मभिः ॥ त्वामेव शरणं नित्यमुपयामि सनातनम् ॥ २४॥ तावन्मेऽस्ति भयं भूयो यावन्न त्वां ककुद्मिनम् ॥ शरणं यामि मनसा शतशोऽप्युपलक्षये ॥ २५ ॥ श्रीभगवानुवाच ॥ मा भैर्धरणि कल्याणि शान्तिं व्रज समाहिता ॥ एष त्वामुचितं स्थानमानयामि मनीषितम् ॥२६॥ वैशम्पायन उवाच ॥ ततो महात्मा मनसा दिव्यं रूपमचिन्तयत् ॥ किंतु रूपमहं कृत्वा उद्धरामि वसुंधराम्॥२७॥

हो ॥ २२ ॥ तुम्हारेही तेजसे आक्रान्त हो मैं पातालमें प्रवेश करती हूं. हे सुरश्रेष्ठ! मेरी रक्षा करो. मैं आपकी शरणमें प्राप्त हुई हूं ॥ २३ ॥ मैं दानव और दुरात्मा राक्षसोंसे पीडित हुई नित्य आपहीकी शरणको प्राप्त होती हूं ॥ २४ ॥ तबहीतक मुझको भय है जबतक मैं उन्नत कंधर तुम्हारी शरणमें जाकर प्राप्त नहीं होती हूं ॥ २५ ॥ श्रीभगवान् बोले; हे कल्याणि धरणि! तुम भय मत करो; सावधान होकर शान्तिको प्राप्त हो यह मैं तुमको उचित स्थानमें प्राप्त करता हूं ॥ २६ ॥ वैशंपायन बोले; तब महात्माने मनसे उस दिव्यरूपकी चिन्ता की कि रूप धारण कर

मैं पृथ्वीका उद्धार करूं ॥ २७ ॥ जिससे जलमें निमग्न हुई पृथ्वीका मैं उद्धार कर सकूं; यह विचार देव उस कार्यमें मति कर ॥ २८ ॥ जलकीडाकी रुचिवाले वाराहरूपका स्मरण करते हुए तब भूमिभृत् भूमिके उद्धारमें युक्त हुए ॥ २९ ॥ सब प्राणियोंको अधृष्यरूप वाङ्मय ब्रह्म (वेद) सम्मत दश योजनके विस्तार और सौ योजनके ऊंचे ॥ ३० ॥ नीलमेघकी समान मेघके गर्जनेकी समान शब्दवाले महापर्वतकी समान संहनन श्वेतवर्णकी दीप्तिमान् उग्र डाढें ॥ ३१ ॥ बिजली और अग्निकी समान प्रकाश सूर्यकी समान तेज पीन गोल चौडे स्कंध दृप्तशार्दूलकी समान गमन करने-

जले निमग्नां धरणीं येनाहं वै समुद्धरे ॥ इत्येवं चिन्तयित्वा तु देवस्तत्करणे मतिम् ॥ २८ ॥ जलक्रीडारुचिस्तस्माद्वाराहं रूपमस्मरत् ॥ हरिरुद्धरणे युक्तस्तदाभूदस्य भूमिभृत् ॥ २९ ॥ अधृष्यं सर्वभूतानां वाङ्मयं ब्रह्मसंमितम् ॥ दशयोजनविस्तारमुच्छ्रितं शतयोजनम् ॥ ३० ॥ नीलमेघप्रतीकाशं मेघस्तनितनिःस्वनम् ॥ महागिरेः संहननं श्वेतदीप्तोग्रदंष्ट्रिणम् ॥ ३१ ॥ विद्युदग्निप्रतीकाशमादित्यसमतेजसम् ॥ पीनवृत्तायतस्कन्धं दृप्तशार्दूलगामिनम् ॥ ३२ ॥ पीनोन्नतकटीदेशं वृषलक्षणपूजितम् ॥ रूपमास्थाय विपुलं वाराहममितं हरिः ॥ ३३ ॥ पृथिव्युद्धरणार्थाय प्रविवेश रसातलम् ॥ वेदपादो यूपदंष्ट्रः क्रतुदन्तश्चितीमुखः ॥ ३४ ॥ अग्निजिह्वो दर्भरोमा ब्रह्मशीर्षो महातपाः ॥ अहोरात्रेक्षणधरो वेदाङ्गश्रुतिभूषणः ॥ ३५ ॥ आज्यनासः स्रुवस्तुण्डः सामघोषस्वरो महान् ॥ सत्यधर्ममयः श्रीमान् क्रमविक्रमसत्कृतः ॥ ३६ ॥ क्रियासत्रमहाघोणः पशुजानुर्मखाकृतिः ॥ उद्गात्रान्त्रो महालिङ्गो बीजौषधिमहाफलः ॥ ३७ ॥

वाले ॥ ३२ ॥ पीन और ऊंचा कटिदेश वृषलक्षणसे पूजित इस प्रकार हरि महावराहका रूप धारण कर ॥ ३३ ॥ पृथ्वीके उद्धारके निमित्त रसातलमें प्रविष्ट हुए. (इनकी अधिष्ठात्री देवता यज्ञ है इसको कहते हैं) वेद चरण हैं दंष्ट्रा यूप हैं दांत क्रतु और मुख चिती है ॥ ३४ ॥ जिह्वा अग्निरूप दर्भ ब्रह्म शिर महातप अहोरात्र रूपी ईक्षणके देखनेवाले वेदांग श्रुति भूषण ॥ ३५ ॥ घृतरूप नासिका स्रुवरूप तुण्ड सामरूप महास्वर सत्य धर्ममय श्रीमान् क्रमविक्रमसे सत्कृत ॥ ३६ ॥ यज्ञकी क्रियारूप महानासिका पशु जानु मुखकी आकृति उद्गात्रान्त्ररूप महालिंग बीज औषधीरूप महा-

फल ॥ ३७ ॥ वायुरूप अन्तरात्मा मंत्रका स्पर्श करता विक्रम है सोमरूपी रुधिर वेदरूपी स्कंध हविरूप गंध हव्यकव्यरूप वेगवान् ॥ ३८ ॥ प्राग्वंश काया कान्तिमान् अनेक दीक्षाओंसे अर्चित दक्षिण हृदययोगी महासत्रमय महान् ॥ ३९ ॥ उपाकर्मरूपी ओष्ठ रुचक प्रवर्ग्यरूपी यज्ञ अंगके भूषणवाले नानाछन्दयुक्त गति ओर गुह्यरूपी उपनिषद्के आसनवाले ॥ ४० ॥ छायारूप पत्नीकी सहायतासे युक्त मणिशृंगकी समान उच्छ्रित वह यज्ञवराह गुरु जलमें प्रविष्ट हुए ॥ ४१ ॥ वह प्रजापति जलोंसे आच्छादित हुई पृथ्वीका उद्धार करने लगे. जो कि रसातलमें पातालतलमें मग्न हो रही थी ॥४२॥

वाय्वन्तरात्मा मन्त्रस्पृक् विक्रमः सोमशोणितः॥ वेदीस्कन्धो हविर्गन्धो हव्यकव्यातिवेगवान् ॥३८॥ प्राग्वंशकायो द्युति मान्नानादीक्षाभिरर्चितः ॥ दक्षिणाहृदयो योगी महासत्रमयो महान् ॥ ॥ ३९ ॥ उपाकर्मोष्ठरुचकः प्रवर्ग्यावर्तभूषणः ॥ नानाछन्दोगतिपथो गुह्योपनिषदासनः ॥ ४० ॥ छायापत्नीसहायो वै मणिशृङ्ग इवोच्छ्रितः॥ भूत्वा यज्ञवराहोऽसौ युगपत्प्राविशद्गुरुः ॥ ४१ ॥ अद्भिः संछादितामुर्वीं स तामार्च्छत्प्रजापतिः ॥ रसातलतले मग्नां पातालान्तरसंश्रयाम् ॥४२॥ प्रभुर्लोकहितार्थाय दंष्ट्राग्रेणोज्जहार गाम् ॥ ततः वस्थानमानीय पृथिवीं पृथिवीधरः ॥ ४३ ॥ मुमोच पूर्वं सहसा धारयित्वा धराधरः ॥ ततो जगाम निर्वाणं मेदिनी तस्य धारणात् ॥ ४४ ॥ चकार च नमस्कारं तस्मै देवाय शंभवे ॥ एवं यज्ञवराहेण भूत्वा भूतहितार्थिना ॥ ४५ ॥ उद्धृता पृथिवी देवी लोकानां हितकाम्यया ॥ अथोद्धृत्य क्षितिं देवो जगतः स्थापनेच्छया ॥ ४६ ॥ पृथिवीप्रविभागाय मनश्चक्रेऽम्बुजेक्षणः ॥ रसातलगतामेवं विचिन्त्य स सुरोत्तमः ॥ ४७ ॥

लोकहितके निमित्त प्रभुने उसे दंष्ट्रापर धारण किया तब पृथ्वीधरने उस पृथ्वीको अपने स्थानमें लाकर ॥ ४३ ॥ उसको रखकर एक साथ छोड दिया तब उनके धारण करनेसे पृथ्वी निर्माणताको प्राप्त हुई ॥ ४४ ॥ उस देव शंभुके निमित्त नमस्कार किया गया. इस प्रकार प्राणियोंके हितकारी यज्ञवराहने ॥ ४५ ॥ लोकके हितकी कामनासे पृथ्वीदेवीका उद्धार किया है, इस प्रकार जगती देवीको उद्धार कर जगत्के स्थापनकी इच्छासे ॥ ४६ ॥ पृथिवीके विभागके निमित्त कमललोचनने इच्छा की. इस प्रकार वह देवश्रेष्ठ रसातलमें गई पृथ्वीके निमित्त विचार करके ॥ ४७ ॥

वह विभु वराहरूपधारी वृषाकपि एकही दंष्ट्रापर उन अतुलविक्रमवान् अच्युतने लोकहितके निमित्त पृथ्वीका उद्धार किया ॥ ४८ ॥ इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे भविष्यपर्वणि भाषायां चतुस्त्रिंशोऽध्यायः ॥ ३४ ॥ तब उस सागरके ऊपर यह पृथ्वी नावकी समान स्थित हुई देहके विस्तार होनेसे यह पृथ्वी फिर जलमें न डूबी ॥ १ ॥ तब प्रभुने पृथ्वीके विभागकी इच्छा की सब पर्वत और नदियोंकी श्रेष्ठता ॥ २ ॥ विलेखन प्रमाणगति प्रसव और नदियोंके माहात्म्य और विशेषताकी प्रभुने चिन्ता की ॥ ३ ॥ चतुर्दल पद्माकर भरत केतुमाल भद्राश्व कुरव आदि देशोंकी समुद्रपर्यन्त

ततो विभुः प्रवरवराहरूपधृक् वृषाकपिः प्रसभमथैकदंष्ट्रया ॥ समुद्धरद्धरणिमतुल्यविक्रमो महायशा लोकहितार्थमच्युतः ॥ ४८ ॥
इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे भविष्यपर्वणि चतुस्त्रिंशोऽध्यायः ॥ ३४ ॥ तस्योपरि जलौघस्य महती नौरिव स्थिता ॥ वितत-
त्वात्तु देहस्य न ययौ संप्लवं मही ॥ १ ॥ ततः स चिन्तयामास प्रविभागं क्षितेर्विभुः ॥ समुच्छ्रयं च सर्वेषां पर्वतानां नदीषु च ॥२॥
विलेखनं प्रमाणं च गतिं प्रस्रवमेव च ॥ माहात्म्यं च विशेषं च नदीनामन्वचिन्तयत् ॥ ३ ॥ चतुरन्तां धरां कृत्वा तथा चैव महार्ण
वम् ॥ मध्ये पृथिव्याः सौवर्णमकरोन्मेरुपर्वतम् ॥ ४ ॥ प्राचीं दिशमथो गत्वा चकारोदयपर्वतम् ॥ शतयोजनविस्तारं सहस्रं च
समुच्छ्रयम् ॥ ५ ॥ जातरूपमयैः शृङ्गैस्तरुणादित्यसन्निभैः ॥ आत्मतेजोगुणमयैर्वेदिकाभोगकल्पितम् ॥ ६ ॥ विविधांश्च महास्क-
न्धान्काञ्चनान्पुष्करेक्षणः ॥ नित्यपुष्पफलान्वृक्षान्कृतवांस्तत्र पर्वते ॥ ७ ॥ शतयोजनविस्तारं ततस्त्रिगुणमायतम् ॥ चकार स
महादेवः पुनः सौमनसं गिरिम् ॥ ८ ॥ नानारत्नसहस्राणां कृत्वा तत्र सुसंचयम् ॥ वेदिकां बहुवर्णां च संध्याभ्राभामकल्पयत् ॥ ९ ॥

कल्पना की पृथ्वीके मध्यमें सुवर्णका पर्वत मेरु स्थित किया ॥ ४ ॥ फिर पूर्वदिशामें जाकर उदयपर्वतकी कल्पना की जिसका सौ योजनका विस्तार और सहस्र योजनकी ऊंचाई है ॥ ५ ॥ प्रातःकालकी सूर्यकी समान सुवर्ण शृंगोंसे युक्त आत्मतेज गुणमय वेदिका भोगसे कल्पित ॥ ६ ॥ उसमें अनेक प्रकारके सुवर्ण स्कन्धवाले नित्य पुष्पफलसे युक्त वृक्ष कल्पित किये जो उस पर्वतमें हैं ॥ ७ ॥ सौ योजनका विस्तार तिगुना ऊंचा इस प्रकारका उस महादेवने सौमनस पर्वत बनाया ॥ ८ ॥ उसमें अनेक प्रकारके सहस्रों रत्नोंका संचय किया और संध्याकालके मेघकी समान उसमें बहुत

वर्णकी वेदिका निर्माण की ॥ ९ ॥ सहस्रशृंग नामक गिरि नानारत्न और मणिशिलासे युक्त वृक्षोंसे घना साठ योजनके विस्तारमें किया ॥ १० ॥
उसमें सब प्राणियोंसे नमस्कृत अत्यन्त सुन्दर आसनमें प्रजापति विश्वकर्माने अपना स्थान कल्पित किया ॥ ११ ॥ फिर हिमसमूहसे युक्त हिमालय
महापर्वतको जो कि महादुर्ग गहन कन्दरान्तरसे मंडित ॥ १२ ॥ शीत उत्पत्तिका स्थान अनेक नदी और द्विजगणोंसे युक्त पुलिन और वसुधारासे युक्त
बनाया ऐसी श्रुति है ॥ १३ ॥ यह नदी अमृतके समान सैकडों सुखोंसे संयुक्त हुई शोभित होने लगी और अनेक मुक्ताशंखोंसे विभूषित हो शोभित

सहस्रशृङ्गं च गिरिं नानामणिशिलातलम् ॥ कृतवान्वृक्षगहनं षष्टियोजनमुच्छ्रितम् ॥ १० ॥ आसनं तत्र परमं सर्वभूतनमस्कृतम् ॥
कृतवानात्मनः स्थानं विश्वकर्मा प्रजापतिः ॥ ११ ॥ शिशिरं च महाशैलं तुषारचयसंनिभम् ॥ चकारं दुर्गगहनं कन्दरान्तरम-
ण्डितम् ॥ १२ ॥ शिशिरप्रभवां चैव नदीं द्विजगणायुताम् ॥ चकार पुलिनोपेतां वसुधारामिति श्रुतिः ॥ १३ ॥ सा नदी निखिलां
प्राचीं पुण्यां सुखशतैश्रिताम् ॥ शोभयत्यमृतप्रख्यैर्मुक्ताशङ्खविभूषितैः ॥ १४ ॥ नित्यपुष्पफलोपेतैश्छादयद्भिः सुसंवृतैः ॥
भूषिताभ्यधिकं कान्तैः सा नदी तीरजैर्द्रुमैः ॥ १५ ॥ कृत्वा प्राचीविभागं च दक्षिणायामथो दिशि ॥ चकार पर्वतं दिव्यं सर्व-
काञ्चनराजतम् ॥ १६ ॥ एकतः सूर्यसंकाशमेकतः शशिसन्निभम् ॥ स बिभ्रच्छुशुभेतीव द्वौ वर्णौ पर्वतोत्तमः ॥ १७ ॥ तेजसा
युगपद्व्याप्तं सूर्याचन्द्रमसाविव ॥ वपुष्मन्तमथो तत्र भानुमन्तं महागिरिम् ॥ १८ ॥ सर्वकामफलैर्वृक्षैर्वृतं रम्यैर्मनोरमैः ॥ चकार कुञ्जरं
चैव कुञ्जरप्रतिमाकृतिम् ॥ १९ ॥

होती है ॥ १४ ॥ जिसको नित्य पुष्प और फलवाले वृक्ष आच्छादन करते हैं. इस प्रकार वह नदी किनारेके वृक्षोंसे भूषित है ॥ १५ ॥ इस प्रकार
पूर्वदिशाका विभाग कर दक्षिण दिशाका विभाग कर उसमें सम्पूर्ण कांचन और चांदीके पर्वत निर्माण किये ॥ १६ ॥ एक चन्द्रमा और एक सूर्यकी
समान वर्णोंसे दोनों पर्वत अत्यन्त शोभित हुए ॥ १७ ॥ और सूर्यचन्द्रमाके समान तेजसे एकसाथ व्याप्त हो गये. यह वपुष्मन्त और भानुमन्त
पर्वत ॥ १८ ॥ सब कामनाओंके देनेवाले मनोरम वृक्षोंसे युक्त हैं इसको बनाकर कुंजरके आकार कुंजरपर्वतको बनाया ॥ १९ ॥ जिसकी बहुत

योजनके विस्तारमें सुवर्णकी गुहा थीं और ऋषभकी समान ऋषभपर्वतको बनाया ॥ २० ॥ जो सुवर्णके वृक्षोंसे शोभित पुष्पहाससे युक्त था. फिर सौ योजन ऊंचा महेन्द्र पर्वत बनाया ॥ २१ ॥ जिसके सुवर्णके शृंग और फूलोंवाले वृक्ष महाशोभित थे. मेदिनीमें यह अचल पर्वत शोभित हुए ॥ २२ ॥ नाना रत्नोंसे युक्त सूर्यचन्द्रमाकी समान कान्तिमान् चन्द्रमाकी समान मलय पर्वतको चित्रविचित्र किया ॥ २३ ॥ फिर शिलाजालसे युक्त मैनाक महापर्वतको निर्माण किया. इस प्रकार दक्षिणादिशामें अचल पर्वत स्थापित किया ॥ २४ ॥

सर्वतः काञ्चनगुहं बहुयोजनविस्तृतम् ॥ ऋषभप्रतिमं चैव ऋषभं नाम पर्वतम् ॥ २० ॥ हेमकाञ्चनवृक्षाढ्यं पुष्पहासं स सृष्टवान् ॥ महेन्द्रमथ शैलेन्द्रं शतयोजनमुच्छ्रितम् ॥ २१ ॥ जातरूपमयैः शृङ्गैः सपुष्पितमहाद्रुमम् ॥ मेदिन्यां कृतवान्देवः प्रतिक्षोभमिवाचलम् ॥ २२ ॥ नानारत्नसमाकीर्णं सूर्येन्दुसदृशप्रभम् ॥ चकार मलयं चाद्रिं चित्रपुष्पितपादपम् ॥२३॥ मैनाकं च महाशैलं शिलाजालसमावृतम् ॥ दक्षिणस्यां दिशि शुभं चकाराचलमायतम् ॥ २४ ॥ सहस्रशिरसं विन्ध्यं नानाद्रुमलताकुलम् ॥ नदीं च विपुलावर्त्तां पुलिनश्रोणिभूषिताम् ॥ २५ ॥ क्षीरसंकाशसलिलां पयोधारामिति श्रुतिः ॥ सुरम्यां तोयकलिलां विहितां दक्षिणां दिशम् ॥ २६ ॥ दिव्यां तीर्थशतोपेतां प्लावयन्तीं शुभाम्भसा ॥ दिशं याम्यां प्रतिष्ठाप्य प्रतीचीं दिशमागमत् ॥ २७ ॥ अकरोत्तत्र शैलेन्द्रं शतयोजनमुच्छ्रितम् ॥ शोभितं शिखरैश्चित्रैः सुप्रवृद्धैर्हिरण्मयैः ॥ २८ ॥ काञ्चनीभिः शिलाभिश्च गुहाभिश्च विभूषितम् ॥ समाकुलं सूर्यनिभैः शालैस्तालैश्च भास्वरैः ॥ २९ ॥

फिर सहस्रशिरवाले विन्ध्याचलको जो विविध वृक्षोंसे युक्त है बनाया. उसमें महाआवर्तयुक्त श्रोणीभूषित नदी निर्माण की ॥ २५ ॥ उसकी नदियोंका जल दुग्धकी समान निर्मल है यह श्रुति है. दक्षिण दिशाका जल बहुतही मनोहर किया ॥ २६ ॥ वे नदियें अपने जलसे दिव्य अनेक तीर्थोंको प्लावित करती हैं. इस प्रकार दक्षिण दिशा कर फिर पश्चिममें आये ॥ २७ ॥ वहां सौ योजनके विस्तारवाले चित्रशिखरोंसे शोभित बडे सुवर्णराशियोंसे युक्त ॥ २८ ॥ सुवर्णकी शिला और गुहाओंसे भूषित सूर्यकी समान प्रकाशित शाल और तालोंसे व्याप्त ॥ २९ ॥

सुवर्णकी बनी मनोहर वेदियोंसे सम्पन्न वहां साठ सहस्र पर्वतोंको सन्निवेशित कियाहै ॥ ३० ॥ वे सुवर्णकी समान कान्तिमान् प्रभासे दीप्त हो रहे हैं. सहस्र जलधारासे युक्त वह मेरुकी समान पर्वत है॥ ३१ ॥ अनेक पुण्यतीर्थके समूहसे युक्त भगवान्‌ने उस सन्निवेशित कियाहै. उसका साठ योजनका विस्तार और इतनाही ऊंचाव है॥ ३२ ॥ उसका नाम अपने आत्मतुल्य वाराह रक्खा औरभी दिव्य वैडूर्यके पर्वतकी रचना की ॥ ३३ ॥ जहां सुवर्ण और चांदीके दिव्य शिखर हैं. वहांही चक्रके सदृश चक्रवन्त महाबलयुक्त॥ ३४ ॥ सहस्रकूट पर्वतको भगवान्‌ने निर्मित किया शंखकी समान श्वेत राजतपर्वतको बनाया॥ ३५ ॥

शुशुभे जातरूपश्च श्रीमद्भिश्चित्रवेदिकैः ॥ षष्टिं गिरिसहस्राणि तत्रासौ संन्यवेशयत् ॥ ३० ॥ मेरुप्रतिमरूपाणि वपुषा प्रभया सह ॥
सहस्रजलधारं च पर्वतं मेरुसन्निभम्॥ ३१ ॥ पुण्यतीर्थगुणोपेतं भगवान्संन्यवेशयत् ॥ षष्टियोजनविस्तारं तावदेव समुच्छ्रितम्॥ ३२ ॥
आत्मरूपोपमं तत्र वाराहं नाम नामतः ॥ निवेशयामास गिरिं दिव्यं वैडूर्यपर्वतम् ॥ ३३ ॥ राजताः काञ्चनाश्चैव यत्र दिव्याः
शिलोच्चयाः ॥ तत्रैव चक्रसदृशं चक्रवन्तं महाबलम् ॥ ३४ ॥ सहस्रकूटं विपुलं भगवान्संन्यवेशयत् ॥ शंङ्खप्रतिमरूपं च राजतं
पर्वतोत्तमम् ॥ ३५ ॥ सितद्रुमसमाकीर्णं शंखं नाम न्यवेशयत् ॥ सुवर्णं रत्नसंभूतं पारिजातं महाद्रुमम् ॥ ३६ ॥ महतः पर्वत-
स्याग्रे पुष्पहासं न्यवेशयत् ॥ शुभामतिरसां चैव घृतधारामिति श्रुतिः ॥ ३७ ॥ वराहः सरितं पुण्यां प्रतीच्यामकरोत्प्रभुः ॥
प्रतीच्यां संविधिं कृत्वा पर्वतान्काञ्चनोज्ज्वलान् ॥ ३८ ॥ गुणोत्तरानुत्तरस्यां संन्यवेशयदग्रतः ॥ ततः सौम्यगिरिं सौम्यमन्तरि-
क्षप्रमाणतः ॥ ३९ ॥ रुक्मधातुप्रतिच्छन्नमकरोद्भास्करोपमम् ॥ स तु देशो विसूर्योऽपि तस्य भासा प्रकाशते ॥ ४० ॥

वह श्वेतवृक्षोंसे युक्त है इस कारण उसका नाम शंखही रक्खा. उसमें सुवर्णरत्नसे युक्त पारिजात महावृक्ष है ॥ ३६ ॥ उस पर्वतके आगे बडा पुष्प-समूह स्थित रहता है वहां शुभ और रसीली घृतधारा वहती है यह श्रुति है ॥ ३७ ॥ पश्चिम दिशामें प्रभुने पवित्र वाराहनदी निर्माण की है. इस प्रकार प्रतीचीमें प्रभुने कांचनके उज्ज्वल पर्वत निर्माण किये ॥ ३८ ॥ फिर गुणोंमें श्रेष्ठ उत्तर दिशाका विभाग किया इसके उपरान्त सौम्यपर्वतको निर्माण किया ॥ ३९ ॥ वह सुवर्णकी धातुओंसे प्रतिच्छन्न सूर्यकी समान प्रकाशित है उसकी प्रभासे वह देशभी प्रकाशित होता है. जहां सूर्यका

प्रकाश नहीं होता ॥ ४० ॥ उसकी अधिक लक्ष्मी तपाये हुए सूर्यकी समान शोभित थीं. वह सूक्ष्म लक्षणसे तपते हुए सूर्यकी समान प्रकाशित होता है ॥ ४१ ॥ सहस्र शिखर और अनेक प्रकारके तीर्थोंसे युक्त अनेक रत्नोंसे सम्पन्न उस पर्वतको निर्माण किया ॥ ४२ ॥ वह मनोहरगुणोंसे युक्त उत्तम मन्दराचल बडे पुष्पगंधयुक्त गंधमादन पर्वतको ॥ ४३ ॥ बनाया उसके सुवर्णके शृंगपर जम्बू जाम्बूनदनिर्मित अनंत और अद्भुत दर्शनवाली किया ॥ ४४ ॥ शिखर पर्वत और उत्तम शृंगसे युक्त पुष्करपर्वत बनाया शुभ्र पांडुवर्ण मेघकी समान कैलासकी ॥ ४५ ॥ तथा दिव्यधातुसे युक्त

तस्य लक्ष्म्याधिकं भाति तपसा रविणा यथा ॥ सूक्ष्मलक्षणविज्ञेयस्तपतीव दिवाकरः ॥ ४१ ॥ सहस्राशिखरं चैव नानातीर्थसमा-
कुलम् ॥ चकार रत्नसंकीर्णं भूयोऽस्तं नाम पर्वतम् ॥ ४२ ॥ मनोहरगुणोपेतं मन्दरं चाचलोत्तमम् ॥ उद्दामपुष्पगन्धं च पर्वतं
गन्धमादनम् ॥ ४३ ॥ चकार तस्य शृङ्गेषु सुवर्णरससंभवम् ॥ जम्बूं जाम्बूनदमयीमनन्ताद्भुतदर्शनाम् ॥ ४४ ॥ गिरिं च शिखरं
चैव तथा पुष्करपर्वतम् ॥ शुभ्रं पाण्डुरमेघाभं कैलासं च नगोत्तमम् ॥ ४५ ॥ हिमवन्तं च शैलेन्द्रं दिव्यधातुविभूषितम् ॥ निवे-
शयामास हरिर्वाराहीं तनुमास्थितः ॥ ४६ ॥ नदीं सर्वगुणोपेतामुत्तरस्यां दिशि प्रभुः ॥ मधुधारां स कृतवान् दिव्यामृषिशता
कुलाम् ॥ ४७ ॥ सर्वे चैव क्षितिधराः सपक्षाः कामरूपिणः ॥ तदा कृता भगवता विचित्राः परमेष्ठिना ॥ ४८ ॥ स कृत्वा प्रविभागं
तु पृथिव्या लोकभावनः ॥ देवासुराणामुत्पत्तौ कृतवान्बुद्धिमक्षयाम् ॥ ४९ ॥ सर्वासु दिक्षु क्षतजोपमाक्षश्चकार शैलान्विविधाभि-
धानान् ॥ हिताय लोकस्य स लोकनाथः पुण्याश्च नद्यः सलिलोपगूढाः ॥ ५० ॥ इति श्री०खि० ह०भवि० पञ्चत्रिंशोऽध्यायः॥ ३५ ॥

पर्वतश्रेष्ठ हिमालयकी रचना हरिने वाराहशरीरका आश्रय कर की ॥ ४६ ॥ सम्पूर्ण गुणोंसे युक्त प्रभुने उत्तरदिशामें नदियें स्थापन कीं जिनके जल महामिष्ट हैं और सैकडों ऋषि जिनके किनारेपर वास करते हैं ॥ ४७ ॥ सब पर्वत कामरूपधारी और पंखोंसे युक्त थे. वह परमेष्ठी विधाताने सब कुछ किया ॥ ४८ ॥ इस प्रकार लोकभावनने पृथ्वीका विभाग कर देवता असुरोंकी सृष्टि अक्षयबुद्धियुक्त की ॥ ४९ ॥ इस प्रकार सम्पूर्ण दिशाओंमें पर्वतोंको करके उन लोकनाथने पवित्र नदियें निर्माण कीं ॥ ५० ॥ इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे भविष्यपर्वणि भाषायां पंचत्रिंशोऽध्यायः॥ ३५ ॥

वैशंपायन बोले; तब वह देव जगत् रचना करनेके निमित्त विचार करने लगे तब विचार करते हुए उनके मुखसे पुरुष निकला ॥ १ ॥ तब वह पुरुष देवके सामने स्थित हो बोला; हे देव ! मैं क्या करूं उससे देवदेव हँसते हुए बोले ॥ २ ॥ तुम अपनेको विभाग करो यह कह प्रभु अन्तर्धान हो गये; जिस समय वह देव अन्तर्धान हो गये ॥ ३ ॥ उनके अन्तर्हित होनेसे प्रभुकी गति नहीं जानी जाती है तब भगवान्‌की कही वाणीको वह प्रभु विचार कर ॥ ४ ॥ वह हिरण्यगर्भ भगवान् जो वेदमें विख्यात हैं यही प्रथम सबके अधिपति प्रजापति हुए हैं ॥ ५ ॥ उसी समयसे उनको यज्ञभाग

वैशम्पायन उवाच ॥ जगत्स्रष्टुमना देवश्चिन्तयामास पूर्वजः ॥ तस्य चिन्तयतो वक्त्रान्निःसृतः पुरुषः किल ॥ १ ॥ ततः स पुरुषो देवं किं करोमीत्युपस्थितः ॥ प्रत्युवाच स्मितं कृत्वा देवदेवो जगत्पतिः ॥ २ ॥ विभजात्मानमित्युक्त्वा गतोऽन्तर्धानमीश्वरः अन्तर्हितस्य देवस्य सशरीरस्य भारत ॥ ३ ॥ प्रशान्तस्येव दीपस्य गतिस्तस्य न विद्यते ॥ ततस्तेनेरितां वाणीं सोऽन्वचिन्तयत प्रभुः ॥४॥ हिरण्यगर्भो भगवान्य एष च्छन्दसि श्रुतः ॥ एष प्रजापतिः पूर्वमभवद्भुवनाधिपः ॥५॥ तदाप्रभृति तस्याद्यो यज्ञभागो विधीयते ॥ प्रजापतिरुवाच ॥ विभजात्मानमित्युक्तस्तेनास्मि सुमहात्मना ॥ ६ ॥ कथमात्मा विभज्यः स्यात्संशयो ह्यत्र मे महान् ॥ इति चिन्तयतस्तस्य ओमित्येवोत्थितः स्वरः ॥ ७ ॥ स भूमावन्तरिक्षे च नाके च कृतवांस्ततः ॥ तं चैवाभ्यसतस्तस्य मनःसारमयः पुनः ॥८॥ हृदयाद्देवदेवस्य वषट्कारः समुत्थितः ॥ भूम्यन्तरिक्षनाकानां भूर्भुवः सुवरात्मिकाः॥९॥ महास्मृतिमयाः पुण्या महाव्याहृतयोऽभवन् ॥ छन्दसां प्रवरा देवी चतुर्विंशाक्षराभवत् ॥ तत्पदं संस्मरन् दिव्यां सावित्रीमकरोत्प्रभुः ॥ १० ॥

विधान किया जाता है. प्रजापति बोले; जब कि उन महात्माके कहनेसे आत्माका विभाग करनेकी इच्छा की ॥ ६ ॥ तब मुझको संदेह हुआ कि आत्माका विभाग किस प्रकार हो सकता है यह विचार करतेमें ॐ यह स्वर प्रगट हुआ ॥ ७ ॥ वह पृथ्वी अन्तरिक्ष और स्वर्गमें व्याप्त हो गया. उस सारमय शब्दको अभ्यास करते हुए ॥ ८ ॥ देवदेवके हृदयसे वषट्कार प्रादुर्भूत हुआ वह भूमि अन्तरिक्ष और स्वर्गमें भूर्भुवः स्वः इन तीन रूपवाला हुआ ॥ ९ ॥ वह महास्मृतिमय पुण्यरूप महाव्याहृतियें हुईं. उसीसे छंदोंमें श्रेष्ठ चौवीस अक्षरात्मक देवी प्रगट हुई. उस दिव्य पदको स्मरण

करते हुए प्रभुने सावित्री की ॥ १० ॥ फिर प्रभुने ऋग् यजु साम अथर्व इन चार वेदोंको ब्रह्मयुक्त कर्मसे प्रगट किया ॥ ११ ॥ फिर उन्हीके मनसे सनक सनातन और सनंदन ॥ १२ ॥ सनत्कुमार विभु और सनातनको उत्पन्न किया. यह छः पूर्वमहर्षि मनसेही उत्पन्न किये हैं ॥ १३ ॥ ब्रह्मा और कपिलपर्यन्त यह छः योगी हैं. यह योगतंत्रोंमें यति विख्यात हैं. जिनको द्विजाति स्तुति करते हैं ॥ १४ ॥ फिर मरीचि अत्रि पुलस्त्य पुलह क्रतु भृगु अंगिरा प्रजापति मनु ॥ १५ ॥ सब भूतोंके पितर देवता असुर राक्षस और महर्षि इन आठोंको शंभुने निर्माण किया ॥ १६ ॥ यह सह-

ऋक्सामाथर्वयजुषश्चतुरो भगवान्प्रभुः ॥ चकार निखिलान्वेदान्ब्रह्मयुक्तेन कर्मणा ॥ ११ ॥ ततस्तस्यैव मनसः सनः सनक एव च ॥
सनातनश्च भगवान्वरदश्च सनन्दनः ॥१२॥ सनत्कुमारश्च विभुस्तत्र जज्ञे सनातनः ॥ मानसाश्चैव पूर्वाद्या इत्येते षण्महर्षयः ॥ १३॥
ब्रह्माणं कपिलं चैव षडेतांश्चैव योगिनः ॥ यतयो योगतन्त्रेषु यान्स्तुवन्ति द्विजातयः ॥ १४ ॥ ततो मरीचिमत्रिं च पुलस्त्यं पुलहं
क्रतुम् ॥ भृगुमङ्गिरसं चैव मनुं चैवं प्रजापतिम् ॥ १५ ॥ पितॄंश्च सर्वभूतानां देवतासुररक्षसाम् ॥ महर्षीनसृजच्छंभुरष्टावेतांश्च
मानसान् ॥ १६ ॥ एते युगसहस्रान्ते याश्चैषामभवत्प्रजाः ॥ कल्पे निःशेषभुक्ते तु ततो गच्छन्ति निर्वृतिम् ॥ १७ ॥ भूयो
वर्षसहस्रान्ते उत्पत्तिस्तु विधीयते ॥ एतेषामेव देवानां प्रजाकर्तृषु वै तदा ॥ १८ ॥ किं तु कर्मविशेषेण देवतानां युगे युगे ॥
नामजन्मविशेषाश्च तथैव युगपर्यये ॥ १९ ॥ अङ्गुष्ठाद्दक्षिणाद्दक्ष उत्पन्नो भगवानृषिः ॥ तस्यैव तु पुनर्भार्या वामाङ्गुष्ठादजा-
यत ॥ २० ॥ तस्य तत्राभवन्कन्या विश्रुता लोकमातरः ॥ याभिर्व्याप्तास्त्रयो लोकाः प्रजाभिर्मनुजाधिप ॥ २१ ॥

स्रयुगके अन्तमें प्रजा पालन कर जब कल्प पूर्ण हो जाता है तब स्वयं निवृत्तिको प्राप्त हो जाते हैं ॥ १७ ॥ फिर सहस्र वर्षके उपरान्त इनकी उत्पत्ति होती है इन देवताओंकी जो प्रजाके करनेवाले हैं ॥ १८ ॥ उत्पत्ति कर्मविशेषसे युगयुगमें हुआ करती है केवल नामजन्ममें विशेषता होती है ॥ १९ ॥ यही युगसमाप्तिमें होता है. उनके दक्षिण अंगुष्ठसे दक्ष और भगवानृषि उत्पन्न हुए और वाम अंगुष्ठसे उनकी भार्या हुई ॥ २० ॥ उसकी कन्या विख्यात और लोककी मातायें हुई. हे राजन्! जिनकी प्रजासे त्रिलोकी व्याप्त हो रही है ॥ २१ ॥

अदिति दिति काला अनायु सिंहिका मुनि प्राधा क्रोधा सुरभी विनता सुरसा ॥ २२ ॥ दनु और कद्रु यह प्रजावृद्धिके अर्थ दक्षने कश्यपजीको प्रदान कीं ॥ २३ ॥ अरुंधती वसु यामी लम्बा भानु मरुत्वती संकल्पा मुहूर्ता साध्या विश्वा ॥ २४ ॥ यह दश कन्या प्रजापति दक्षने मनुको दीं तब यह सम्पूर्ण शरीरसे उत्तम कमललोचनी ॥ २५ ॥ पूर्णचन्द्रमाकी समान मुखवाली दिव्यगंधसे युक्त मनोरम कीर्ति लक्ष्मी धृति पुष्टि बुद्धि मेधा क्षमा ॥ २६ ॥ मति लज्जा वसु यह दक्षने धर्मके वास्ते दीं और आत्रिकुमार चन्द्रमा ॥ २७ ॥ सहस्रांशु अंधकारनाशकको उस दक्षने अपनी कन्या प्रदान कीं ॥ २८ ॥

अदितिं च दितिं कालामनायुं सिंहिकां मुनिम् ॥ प्राधां क्रोधां च सुरभिं विनतां सुरसां तथा ॥ २२ ॥ दनुं कद्रुं च दुहितॄः प्रददौ कश्यपाय तु ॥ प्रजां संचिन्त्य मनसा गतिज्ञेनान्तरात्मना ॥ २३ ॥ अरुन्धतीं वसुं यामीं लम्बां भानुं मरुत्वतीम् ॥ संकल्पां च मुहूर्तां च साध्यां विश्वां च भारत ॥ २४ ॥ मनवे ब्रह्मपुत्राय कन्या दक्षो ददौ दश ॥ ततः सर्वानवद्याङ्ग्यः कन्याः कमललोचनाः ॥ २५ ॥ पूर्णचन्द्राननां दिव्या गन्धवत्यो मनोरमाः ॥ कीर्तिं लक्ष्मीं धृतिं पुष्टिं बुद्धिं मेधां क्षमां तथा ॥ २६ ॥ मतिं लज्जां वसुं चैव दक्षो धर्माय वै ददौ ॥ आत्रेयस्तु ततो भूतस्तस्य तोयात्मकः शशी ॥ २७ ॥ पुत्रो ग्रहाणामाधिपः सहस्रांशुस्तमिस्रहा ॥ तस्मै नक्षत्रयोगिन्यः सप्तविंशतिरुत्तमाः ॥ २८ ॥ रोहिणीप्रमुखाः कन्या दक्षः प्राचेतसो ददौ ॥ एतासां पुत्रपौत्रं च प्रोच्यमानं मया शृणु ॥ २९ ॥ कश्यपस्य मनोश्चैव धर्मस्य शशिनस्तथा ॥ अर्यमा वरुणो मित्रः पूषा धाता पुरंदरः ॥ ३० ॥ त्वष्टा भगोऽंशुः सविता पर्जन्यश्चेति विश्रुताः ॥ अदित्यां जज्ञिरे देवाः कश्यपाल्लोकभावनाः ॥ ३१ ॥ दित्याः पुत्रद्वयं जज्ञे कश्यपादिति नः श्रुतम् ॥ हिरण्यकशिपुश्चैव हिरण्याक्षश्च वीर्यवान् ॥ द्वावप्यमितविक्रान्तौ तपसा कश्यपोपमौ ॥ ३२ ॥

यह रोहिणी आदि सत्ताईस कन्या उनको प्राप्त हुई. इनके पुत्रपौत्रोंका विस्तार मुझसे सुनो ॥ २९ ॥ कश्यप मनु धर्म और चन्द्रमाकी सन्तान मुझसे सुनो. अर्यमा वरुण मित्र पूषा धाता पुरन्दर ॥ ३० ॥ त्वष्टा भग अंशु सविता पर्जन्य यह विख्यात सूर्य कश्यपसे अदितिमें उत्पन्न हुए ॥ ३१ ॥ और दितिमें कश्यपसे दो पुत्र हुए ऐसा हमने सुना है. हिरण्यकशिपु और हिरण्याक्ष यह दोनों बडे बली तपसे कश्यपकी समान थे ॥ ३२ ॥

हिरण्यकशिपुके महाबली पांच पुत्र हुए. प्रहाद संह्राद अनुह्राद॥ ३३ ॥ ह्रद और पांचवां अनुह्रद उनमें प्रह्राद पूर्वज और अनुह्रद छोटा था ॥३४॥ प्रह्रादके महाबली तीन पुत्र हुए विरोचन जंभ और सुजंभ ॥ ३५ ॥ विरोचनका पुत्र बलि और बलिके बाण और बाणका शत्रुनाशी इन्द्रदमन हुआ ॥ ३६ ॥ दनुके पुत्र इस वंशमें विख्यात बहुत हुए उसमें पहला विप्रचित्ति उनका राजा हुआ ॥ ३७॥ क्रोधाके गण हुआ और उसके पुत्र पौत्र अनन्त हुए. क्रोधाके क्रोधवशा क्रूरकर्मा सन्तान हुई ॥ ३८ ॥ सिंहिकाके चन्द्रसूर्यको दुःख देनेवाला राहु हुआ. वह चन्द्रमा और सूर्यका ग्रास करता

हिरण्यकशिपोः पुत्राः पञ्चैव सुमहाबलाः ॥ प्रह्रादश्चैव संह्रादस्तथानुह्राद एव च ॥३३॥ ह्रदश्चैव तु विक्रान्तः पञ्चमोऽनुह्रदस्तथा ॥ प्रह्रादः पूर्वजस्तेषामनुह्रादस्तथा परः ॥ ३४ ॥ प्रह्रादस्य त्रयः पुत्रा विक्रान्ताः सुमहाबलाः ॥ विरोचनश्च जम्भश्च सुजम्भश्चेति विश्रुताः ॥ ३५॥ बलिर्विरोचनसुतो बाण एको बलेः सुतः ॥ बाणस्य चेन्द्रदमनः पुत्रः परपुरंजयः ॥ ३६ ॥ दनोः पुत्रास्तु बहवो वंशे ख्याता महासुराः ॥ विप्रचित्तिः प्रथमजस्तेषां राजा बभूव ह ॥ ३७ ॥ गणः प्रजज्ञे क्रोधायाः पुत्रपौत्रमनन्तकम् ॥ रौद्राः क्रोधवशा नाम क्रूरकर्माण एव च ॥ ३८ ॥ सिंहिका सुषुवे राहुं ग्रहचन्द्रार्कमर्दनम् ॥ ग्रस्तारं चैव चन्द्रस्य सूर्यस्य च विनाशनम् ॥ ३९ ॥ कालायाः कालकल्पस्तु गणः परमदारुणः ॥ अभवद्दीप्तसूर्याक्षो नीलमेघसमप्रभः ॥ ४० ॥ सहस्रशीर्षा शेषश्च वासुकिस्तक्षकस्तथा ॥ बहूनां कद्रुपुत्राणामेते प्राधान्यमागताः॥ ४१ ॥ धर्मात्मानो वेदविदः सदा प्राणिहिते रताः ॥ लोकतन्त्रधराश्चैव वरदाः कामरूपिणः ॥४२॥ तार्क्ष्यश्चारिष्टनेमिश्च गरुडश्च महाबलः ॥ अरुणिश्चारुणिश्चैव विनतायाः सुताः स्मृताः ॥ इमाश्चाप्सरसः पुण्या विविधाः पुण्यलक्षणाः ॥ ४३ ॥

है ॥ ३९ ॥ कालको कालकी समान परम दारुण गण हुआ. यह सूर्याक्ष नीलमेघकी समान महाकान्तिमान् हुआ ॥ ४० ॥ सहस्र शिरवाले शेष वासुकि और तक्षक यह बहुतसे कद्रुपुत्रोंमें प्रधानताको प्राप्त हुए ॥ ४१ ॥ धर्मात्मा वेदके जाननेवाले सदा प्राणी हितमें निरत लोकतंत्रधारी वरदाता कामरूपी ॥ ४२ ॥ तार्क्ष्य अरिष्टनेमि महाबली गरुड अरुणि आरुणि यह विनताके पुत्र हुए, यह पवित्र अप्सरा अनेक पुण्यरूपिणी हैं ॥ ४३ ॥

यह आठ महाभागा देवर्षिपूजित प्राधाके उत्पन्न हुईं. निन्दारहित अनूका अरुणप्रिया अनुगा सुभगा भासी यह स्त्री प्राधाके उत्पन्न हुईं ॥ ४४ ॥ अलम्बुषा मिश्रकेशी पुण्डरीका तिलोत्तमा सुरूपा लक्षणा क्षेमा मनोरमा रंभा ॥ ४५ ॥ असिता सुबाहु सुवृत्ता सुमुखी सुप्रिया सुगन्धा सुरसा प्रमाथिनी ॥ ४६ ॥ काश्या शारद्वती यह अप्सरा मुनिकी सन्तान कहलाईं, विश्वावसु भरण्य यह विख्यात गन्धर्व ॥ ४७ ॥ मेनका सहजन्या पर्णिका पुंजिकस्थला घृतस्थला घृताची विश्वाची उर्वशी ॥ ४८ ॥ अनुम्लोचा प्रम्लोचा यह दश विख्यात अप्सरा हैं. मनोवती वैदिकी अप्सरा ॥ ४९ ॥ यह

सुषुवेऽष्टौ महाभागा प्राधा देवर्षिपूजिता ॥ अनवद्यामनूकां च अनूनामरुणप्रियाम् ॥ अनुगां सुभगां भासीं स्त्रियः प्राधा व्यजायत ॥४४॥ अलम्बुषा मिश्रकेशी पुण्डरीका तिलोत्तमा ॥ सुरूपा लक्षणा क्षेमा तथा रम्भा मनोरमा ॥४५॥ असिता च सुबाहुश्च सुवृत्ता सुमुखी तथा ॥ सुप्रिया च सुगन्धा च सुरसा च प्रमाथिनी ॥ ४६ ॥ काश्या शारद्वती चैव मौनेयाप्सरसः स्मृताः ॥ विश्वावसुर्भरण्यश्च गन्धर्वाश्चैव विश्रुताः ॥ ४७ ॥ मेनका सहजन्या च पर्णिका पुञ्जिकस्थला ॥ घृतस्थला घृताची च विश्वाची चोर्वशी तथा ॥ ४८ ॥ अनुम्लोचेत्यभिख्याता प्रम्लोचेति च ता दश ॥ मनोवती चापि तथा वैदिक्योऽप्सरसस्तथा ॥ ४९ ॥ प्रजापतेस्तु संकल्पात्संभूता भुवनप्रियाः ॥ अमृतं ब्राह्मणा गावो रुद्राश्चेति चतुष्टयम् ॥ ५० ॥ सुरभ्यपत्यमित्येतत्पुराणे निश्चयो महान् ॥ एतद्वै कश्यपापत्यं मनोर्वंशं निबोध मे ॥ ५१ ॥ संक्षेपेणैव तत्सर्वं कीर्तयिष्यामि तेऽनघ ॥ विश्वेदेवास्तु विश्वायाः साध्या साध्यान्व्यजायत ॥ ५२ ॥ मरुत्वत्यां मरुत्वन्तो वसोस्तु वसवः स्मृताः ॥ भानोस्तु भानवस्तात मुहूर्ताश्च मुहूर्तजाः ॥ ५३ ॥

भुवनप्रिय अप्सरा प्रजापतिके संकल्पसे उत्पन्न हुई हैं. अमृत ब्राह्मण गौ रुद्र यह चारों ॥ ५० ॥ सुरभीसे उत्पन्न हुई हैं. यह कश्यपका वंश है अब मनुवंश सुनो ॥ ५१ ॥ हे पापरहित ! तुम्हारे आगे संक्षेपसे कीर्तन करता हूं. विश्वाके विश्वेदेवा साध्याके साध्य ॥ ५२ ॥ मरुत्वतीके मरुत वसुके वसु भानुके भानु मुहूर्ताके मुहूर्त उत्पन्न हुए ॥ ५३ ॥

लम्बाके घोष जामीके नागवीथी मरुत्वतीके पृथ्वीविषयक सब पदार्थ हुए ॥ ५४ ॥ हे राजन् ! संकल्पाके संकल्प हुए और धर्मसे लक्ष्मीमें जगत्प्रिय कामदेव हुआ ॥ ५५ ॥ यश हर्ष यह दो पुत्र कामसे रतिमें हुए सोमका पुत्र रोहिणीमें महाकान्तिमान् वर्चा हुआ ॥ ५६ ॥ जिससे उदय होकर चन्द्रमा महातेजस्वी प्रतीत होता है और पुरूरवासे उर्वशीका संयोग हुआ है ॥ ५७॥ उस प्रकार स्त्रीजनोंके परस्पर सहस्रों पुत्र उत्पन्न हुए हैं. इतनाही जगत्का मूल है जिसमें तीनों लोक प्रतिष्ठित हैं ॥ ५८ ॥ भगवान् प्रजापतिने गुणोंसे मनुष्योंको देख सबको योगद्वारा आधिपत्यमें

लम्बा घोषं विजज्ञेऽथ नागवीथी च जामिजा ॥ पृथिव्यां विषमं सर्वं मरुत्वत्यामजायत ॥५४॥ संकल्पायास्तु कौरव्य जज्ञे संकल्प एव च ॥ धर्मस्य पुत्रो लक्ष्म्यास्तु कामो जज्ञे जगत्प्रभुः ॥ ५५ ॥ यशो हर्षश्च कामस्य रत्यां पुत्रद्वयं स्मृतम् ॥ सोमस्य पुत्रो रोहिण्यां जज्ञे वर्चा महाप्रभः ॥ ५६ ॥ उदयन्नेव भगवान्वर्चस्वी येन जायते ॥ पुरूरवाश्च भगवानुर्वशी येन युज्यते ॥ ५७ ॥ एवं पुत्रसहस्राणि स्त्रीणां चैव परस्परम् ॥ एतावत्तु जगन्मूलं यत्र लोकाः प्रतिष्ठिताः ॥ ५८ ॥ प्रजापतिस्तु भगवान् गुणतः प्रेक्ष्य देहिनः ॥ आधिपत्येषु युक्तेषु नियोजयाति योगवित् ॥ ५९ ॥ दिशो दश क्षितिमृषयोऽर्णवान्नगान्द्रुमौषधीरुरगसारित्सुरासुरान् ॥ प्रजापतिर्भुवनसृजो नभोभुवः क्रियामखानथ कृतवान् गिरींश्च सः ॥ ६० ॥ इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे भविष्यपर्वणि षट्त्रिंशोऽध्यायः ॥ ३६ ॥ वैशम्पायन उवाच ॥ त्रयाणामपि लोकानामादित्यानां च भारत ॥ चकार शक्रं राजानमादित्यसमतेजसम् ॥ १ ॥ स वज्री कवची विष्णुरदित्यामभिजज्ञिवान् ॥ स्मृतेः सहायो द्युतिमान्यथा सोऽध्वर्युभिः स्तुतः ॥ २ ॥

नियुक्त किया है ॥ ५९ ॥ दश दिशा पृथ्वी ऋषि समुद्र वृक्ष औषधी सर्प नदी देवता दैत्य लोकोंके रचनेवाले प्रजापति आकाश पाताल क्रिया यज्ञ पर्वत यह सब भगवान्ने किये हैं ॥ ६० ॥ इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे भविष्यपर्वणि भाषायां षट्त्रिंशोऽध्यायः ॥ ३६ ॥ वैशंपायन बोले; हे राजन् ! तीनों लोक और सब देवताओंके आधिपत्यमें सूर्यकी समान तेजस्वी इन्द्रको अधिष्ठित किया ॥ १ ॥ वज्रकवच धारण किये विष्णुहैं अदितिमें जन्में वह कान्तिमान् स्मृतिकी सहायताको प्राप्त हो अध्वर्युजनोंसे स्तुतिको प्राप्त हुए ॥ २ ॥

उत्पन्न होतेही भगवान् इन्द्र कुशा धारण किये ब्राह्मणोंसे धारण किये गये उसी दिनसे देवेशका नाम कौशिक हुआ ॥ ३ ॥ सहस्राक्ष इन्द्रको देवराजत्वमें अभिषेक कर ब्रह्मा क्रमसे सब राज्य विभाग करने लगे ॥ ४ ॥ यज्ञ तप ग्रह नक्षत्र औषधी ब्राह्मणोंका राजा चन्द्रमाको किया ॥ ५ ॥ दक्षको प्रजापतियोंका वरुणको जलोंका पितरोंका सर्वनिधन अग्निको जिसको काल वैश्वानर प्रभु कहते हैं ॥ ६ ॥ गंध और सब भूत शरीरधारियोंका शब्द आकाश और बलका अधिपति वायुको किया ॥ ७ ॥ सब भूत पिशाच मृत्यु गौ उत्पात ग्रहरोग व्याधी ॥ ८ ॥ और सम्पूर्ण व्रतोंका अधिपति महादेवको किया. यक्ष राक्षस गुह्यक

जातमात्रोऽथ भगवान्स कुशैर्ब्राह्मणैर्धृतः ॥ तदाप्रभृति देवेशः कौशिकत्वमुपागतः ॥ ३ ॥ अभिषिच्याधिराज्ये तु सहस्राक्षं पुरंदरम् ॥ ब्रह्मा क्रमेण राज्यानि व्यादेष्टुमुपचक्रमे ॥ ४ ॥ यज्ञानां तपसां चैव ग्रहनक्षत्रयोस्तथा ॥ द्विजानामोषधीनां तु सोमं राज्येऽभ्यषेचयत् ॥ ५ ॥ दक्षं प्रजापतीनां तु अम्भसां वरुणं पतिम् ॥ पितॄणां सर्वनिधनं कालं वैश्वानरं प्रभुम् ॥ ६ ॥ गन्धानां चैव सर्वेषां भूतानां च शरीरिणाम् ॥ शब्दाकाशबलानां च वायुरीशस्तदा कृतः ॥ ७ ॥ सर्वभूतपिशाचानां मृत्यूनां च गवां तथा ॥ उत्पातग्रहरोगाणां व्याधीनां तु तथैव च ॥ ८ ॥ व्रतानां चैव सर्वेषां महादेवः कृतः प्रभुः ॥ यक्षाणां राक्षसानां च गुह्यकानां धनस्य च ॥ ९ ॥ रत्नानां चैव सर्वेषां कृतो वैश्रवणः प्रभुः ॥ सर्वेषां दंष्ट्रिणां शेषो नागानामथ वासुकिः ॥ १० ॥ सरीसृपाणां सर्वेषां प्रभुर्वै तक्षकः कृतः ॥ सागराणां नदीनां च मेघानां वर्षणस्य च ॥ आदित्यानामवरजः पर्जन्योऽधिपतिः कृतः ॥ ११ ॥ गन्धर्वाणामधिपतिस्तथा चित्ररथः कृतः ॥ सर्वाप्सरोगणानां च कामदेवः प्रभुः कृतः ॥ १२ ॥

धन ॥ ९ ॥ और सम्पूर्ण रत्नोंका पति कुबेरको किया. सब दंष्ट्रावालोंका अधिपति शेष, नागोंका वासुकी ॥ १० ॥ सब सरीसृप रिंगनेवाले जीवोंका पति तक्षक सागर नदी मेघ वर्षाका पति, आदित्योंका छोटा पर्जन्य किया ॥ ११ ॥ गन्धर्वोंका अधिपति चित्ररथ सम्पूर्ण अप्सराओंका अधिपति कामदेव किया ॥ १२ ॥

सब चतुष्पद और वाहनोंका स्वामी महेश्वर ध्वज श्रीमान् गोवृष किया ॥ १३ ॥ दैत्योंका अधिपति महातेजस्वी हिरण्याक्ष किया. हिरण्यकशिपुको युवराज्यमें अभिषिक्त किया ॥ १४ ॥ कालकेयगणोंका अधिपति काल किया. अनायुषाके पुत्रोंका अधिपति वृत्रको किया ॥ १५ ॥ सिंहिकापुत्र महाअसुर राहु सम्पूर्ण उत्पात और अशुभोंका राजा किया गया ॥ १६ ॥ सम्पूर्ण ऋतु मुहूर्त पक्ष महीना युग तिथि पर्व ॥ १७ ॥ कला काष्ठा मुहूर्त गति अयन योग गणितका राजा संवत्सरको किया ॥ १८ ॥ पक्षी और चक्षुका स्वामी महाबल भोगियोंका अधिपति गरुड ॥ १९ ॥ जपापुष्पकी समान कान्तिमान् गरुडके भाई

चतुष्पदानां सर्वेषां वाहनानां च सर्वशः ॥ महेश्वरध्वजः श्रीमान् गोवृषोऽधिपतिः कृतः ॥ १३ ॥ दैत्यानां च महातेजा हिरण्याक्षः प्रभुः कृतः ॥ हिरण्यकशिपुश्चैव यौवराज्येऽभिषेचितः ॥ १४ ॥ गणानां कालकेयानां महाकालः प्रभुः कृतः ॥ अनायुषायाः पुत्राणां वृत्रो राजा तदा कृतः ॥ १५ ॥ सिंहिकातनयो यस्तु राहुर्नाम महासुरः ॥ उत्पातानामनेकानामशुभानां प्रभुः कृतः ॥ १६ ॥ ऋतूनामथ सर्वेषां युगानां चैव भारत ॥ पक्षाणां चैव मासानां तथैव तिथिपर्वणाम् ॥ १७ ॥ कलाकाष्ठामुहूर्तानां गतेरयनयोस्ततः ॥ कृतः संवत्सरो राजा योगस्य गणितस्य च ॥ १८ ॥ पक्षिणां चैव सर्वेषां चक्षुषां च महाबलः ॥ सुपर्णो भोगिनां चैव गरुडोऽधिपतिः कृतः ॥ १९ ॥ अरुणो गरुडभ्राता जपापुष्पचयप्रभुः ॥ योगानां चैव सर्वेषां साध्यानामधिपः कृतः ॥ २० ॥ पुत्रोऽस्य विरथो नाम कश्यपस्य प्रजापतेः ॥ राजा प्राच्यां दिशि तथा वासवेनाधिपः कृतः ॥ २१ ॥ आदित्यस्य विभोः पुत्रो धर्मराजो महायशाः ॥ दक्षिणस्यां दिशि यमो महेन्द्रेणैव सत्कृतः ॥ २२ ॥ कश्यपस्यौरसः पुत्रः सलिलान्तर्गतः सदा ॥ अम्बुराज इति ख्यातः प्रतीच्यां दिशि पार्थिवः ॥ २३ ॥ पुलस्त्यपुत्रो द्युतिमान्महेन्द्रप्रतिमः प्रभुः ॥ एकाक्षः पिङ्गलो नाम सौम्यायां दिशि पार्थिवः ॥ २४ ॥

अरुण सब योग और साध्योंके अधिपति किये गये ॥ २० ॥ कश्यप प्रजापतिका पुत्र विरथ उसको इन्द्रने पूर्व दिशाका अधिपति किया ॥ २१ ॥ आदित्यका पुत्र महायशस्वी विभु यम दक्षिण दिशाका अधिपति इन्द्रने किया ॥ २२ ॥ कश्यपका औरस पुत्र जलमें प्राप्त हुआ. अम्बुराज नाम पश्चिम दिशाका अधिपति किया गया ॥ २३ ॥ पुलस्त्यका पुत्र द्युतिमान् महेन्द्रकी समान कान्तिमान् एकाक्ष पिंगल नाम कुबेर उत्तर दिशाके

अधिपति किये ॥ २४ ॥ लोक उत्पन्नकर्ता स्वयम्भूने इस प्रकार राज्योंका विभाग कर दिव्यलोक पृथक् पृथक् देवताओंको दिये ॥ २५ ॥ किसीको सूर्यकी समान किसीको अग्निकी समान किसीको बिजलीकी समान किसीको चन्द्रकी समान निर्मल किया ॥ २६ ॥ अनेक वर्णोंवाले यथाकाम गमन करनेवाले सैकडों जन उनमें रहते हैं. यह पुण्यात्माओंके लोक पापियोंको दुर्लभ हैं ॥ २७ ॥ यह ग्रह और तारागणोंके समान प्रकाशित होते हैं. यह पुण्यकर्म करनेवाले महात्माओंके लोक हैं ॥ २८ ॥ जो पवित्र यज्ञ बडी दक्षिणाओंसे समाप्त करते हैं जो अपनी स्त्रियोंमें निरत शान्त क्षान्त सीधे

एवं विभज्य राज्यानि स्वयंभूर्लोकभावनः ॥ लोकांश्च त्रिदिवे दिव्यानददत्स पृथक् पृथक् ॥ २५ ॥ कस्यचित्सूर्यसंकाशान्कस्यचिद्वह्निसन्निभान् ॥ कस्यचित्सुष्ठुविद्योतान्कस्यचिच्चन्द्रनिर्मलान् ॥ २६ ॥ नानावर्णान्कामगमाननेकशतशो जनान् ॥ स तान्सुकृतिनां लोकान्पापदुष्कृतिदुर्लभान् ॥ २७ ॥ येषां भासो विभान्त्यग्रे सौम्यास्तारागणा इव ॥ एते सुकृतिनां लोका ये जाताः पुण्यकर्मिणः ॥ २८ ॥ ये यजन्ति मखैः पुण्यैः समाप्तवरदक्षिणैः ॥ स्वदारनिरताः क्षान्ता ऋजवः सत्यवादिनः ॥ २९ ॥ दीनानुग्रहकर्तारो ब्रह्मण्या लोभवर्जिताः ॥ संत्यक्तरजसः सन्तो यान्ति तत्र तपोमलाः ॥ ३० ॥ एवं नियुज्य तनयान्स्वयं लोकपितामहः ॥ पुष्करं ब्रह्मसदनमारुरोह प्रजापतिः ॥ ३१ ॥ सर्वे स्वयंभुदत्तेषु पालनेषु दिवौकसः ॥ रेमिरे स्वेषु लोकेषु महेन्द्रेणाभिपालिताः ॥ ३२ ॥ स्वयंभुवा शक्रपुरःसरा सुराः कृता यथार्हं प्रतिपालनेषु ते ॥ यशो दिवं च प्रतिपेदिरे शुभं मुदं च जग्मुर्मखभागभोजिनः ॥ ३३ ॥

इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे भविष्यपर्वणि सप्तत्रिंशोऽध्यायः ॥ ३७ ॥

सत्यवादी हैं ॥ २९ ॥ दीनोंपर अनुग्रह करनेवाले ब्रह्मण्य लोभरहित रजोगुण त्यागे हुए हैं वह तपसे निर्मल होकर वहां जाते हैं ॥ ३० ॥ इस प्रकार लोकपितामह ब्रह्मा अपने पुत्रोंको नियुक्त कर अपने पुष्कर नाम ब्रह्मस्थानमें प्राप्त हुए ॥ ३१ ॥ वे देवता ब्रह्माके दिये स्थानोंमें महेन्द्रसे पालित हो रमण करने लगे ॥ ३२ ॥ ब्रह्माने इन्द्रको आदि ले सम्पूर्ण देवताओंको जगत्की पालनामें तत्पर किया इससे उनको परम यशकी प्राप्ति हुई और यज्ञभाग पानेवाले आनंदसे निज निज स्थानको गये ॥ ३३ ॥ इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे भविष्यपर्वणि भाषायां सप्तत्रिंशोऽध्यायः ॥ ३७ ॥

वैशंपायन बोले; एक समय पृथ्वीको धारण करनेवाले वे पर्वत परमेश्वरकी मायासे पृथ्वीको त्यागकर उड गये ॥ १ ॥ एक समय हिरण्याक्षसे पालित असुरोंके स्थानको प्राप्त हो वे पर्वत प्रतीची दिशामें प्राप्त हो गजकी समान ह्रदमें स्नान करते हुए ॥ २ ॥ और उन पर्वतोंने असुरोंसे स्वर्गका ऐश्वर्य वर्णन किया यह सुनकर असुरोंने स्वर्गमें जानेका उद्योग किया ॥ ३ ॥ वे महाक्रूर बुद्धि कर पृथ्वीहरणमें रत हुए और उन भयंकर पराक्रमवालोंने सम्पूर्ण आयुध ग्रहण किये ॥ ४ ॥ चक्र अशनि खड्ग भुशुण्डी धनुष प्रास पाश शक्ति मुसल गदा ॥ ५ ॥ ग्रहण कर कवच धारण कर सज्जीभूत हुए कोई

वैशम्पायन उवाच ॥ कदाचित्तु सपक्षास्ते पर्वता धरणीधराः ॥ प्रस्थिता धरणीं त्यक्त्वा नूनं तस्यैव मायया ॥ १ ॥ तदासुराणां निलयं हिरण्याक्षेण पालितम् ॥ दिशं प्रतीचीमागम्य ह्रदेऽमज्जन्यथा गजाः ॥ २ ॥ तत्रासुरेभ्यः शंसन्त आधिपत्यं सुराश्रयम् ॥ तच्छ्रुत्वाथासुराः सर्वे चक्रुरुद्योगमुत्तमम् ॥ ३ ॥ क्रूरां च बुद्धिमतुलां पृथिवीहरणे रताः ॥ आयुधानि च सर्वाणि जगृहुर्भीमवि-क्रमाः ॥ ४ ॥ चक्राशनीस्तथा खड्गान्भुशुण्डीश्च धनूंषि च ॥ प्रासान्पाशांश्च शक्तीश्च मुसलानि गदास्तथा ॥ ५ ॥ केचित्कवचिनः सज्जा मत्तनागांस्तथा परे ॥ केचिदश्वरथान्युक्ता अपरेऽश्वान्महासुराः ॥ ६ ॥ केचिदुष्ट्रांस्तथा खड्गान्महिषान् गर्दभानपि ॥ स्वबा-हुबलमास्थाय केचिच्चापि पदातयः ॥ ७ ॥ परिवार्य हिरण्याक्षं तलबद्धाः कलापिनः ॥ इतश्चेतश्च निश्चेरुर्हृष्टाः सर्वे युयुत्सवः ॥ ८ ॥ ततो देवगणाः पश्चात्पुरंदरपुरोगमाः ॥ दैत्यानां विदितोद्योगाश्चक्रुरुद्योगमुत्तमम् ॥ ९ ॥ महता चतुरङ्गेण बलेन सुसमाहिताः ॥ बद्ध-गोधाङ्गुलित्राणास्तूणवन्तः समार्गणाः ॥ १० ॥ उग्रायुधधरा देवाः स्वेष्वनीकेष्ववस्थिताः ॥ ऐरावतगतं शक्रमन्वगच्छन्त पृष्ठतः ॥ ११ ॥

हाथीपर चढे कोई छोटे रथोंपर स्थित हुए कोई अश्वोंपर स्थित हुए ॥ ६ ॥ कोई ऊंट खड्ग महिष गर्दभोंपर स्थित हुए कोई अपने बाहुबलके आश्रय हो पैदल स्थित हुए ॥ ७ ॥ सब कोई हिरण्याक्षको घेर युद्धकी इच्छासे शिरके जुडे बांधे हुए इधर उधर विचरने लगे ॥ ८ ॥ तब देवगण इन्द्रको आगे कर दैत्योंकी इच्छा जान स्वयं उद्योग करने लगे ॥ ९ ॥ बडी भारी चतुरंग सेनाके बलसे युक्त हो गोधा अंगुलीत्राण बांधे तूणवन्त बाण लिये ॥ १० ॥ उग्रायुध धारण करनेवाले देवता अपनी सेनाओंमें स्थित हुए. ऐरावतपर चढे इन्द्रके पीछे पीछे देवता चलने लगे ॥ ११ ॥

तब तूर्य और भेरीके महाशब्दोंसे हिरण्याक्ष देवराज इन्द्रके ऊपर झपटा ॥ १२ ॥ तीक्ष्ण परशे निर्स्त्रिंश गदा तोमर शक्ति मुसल और पट्टिशोंके प्रहारसे इन्द्रको आच्छादन कर दिया ॥ १३ ॥ तब अस्त्रबलसे बडी वेगवान् अर्चिष्मान् दारुण घोररूप बाणवर्षा होने लगी ॥ १४ ॥ और श्रेष्ठ बली दैत्य शितधारवाले परशे लिये परिघ लोहनिर्मित खड्ग और क्षेपणीय मुद्गर ॥ १५ ॥ अनेक प्रकारके तेजयुक्त गण्डशैल पर्वतकी समान पत्थर और मारनेवाली बडी बडी शतघ्नी ॥ १६ ॥ युगाकर अस्त्र यंत्रके द्वारा छोडे जानेवाले अस्त्र अर्थात् पाषाण वर्षानेवाले आग्नेयादि अस्त्रोंसे दैत्य

ततस्तूर्यनिनादेन भेरीणां च महास्वनैः ॥ अभ्यद्रवद्धिरण्याक्षो देवराजं पुरंदरम् ॥ १२ ॥ तीक्ष्णैः परशुनिर्स्त्रिंशैर्गदातोमरशक्तिभिः॥ मुशलैः पट्टिशैश्चैव च्छादयामास वासवम् ॥ १३ ॥ ततोऽस्त्रबलवेगेन सार्चिष्मत्यः सुदारुणाः ॥ घोररूपा महावेगा निपेतुर्बाणवृष्टयः ॥१४॥शिष्टाश्च दैत्या बलिनः सितधारैः परश्वधैः॥ परिघैरायसैः खड्गैः क्षेपणीयैश्च मुद्गरैः॥१५॥गण्डशैलैश्च विविधै रश्मिभिश्चाद्रिसन्निभैः ॥ घातनीभिश्च गुर्वीभिः शतघ्नीभिस्तथैव च ॥१६॥ युगैर्यन्त्रैश्च निर्मुक्तैरर्गलैश्च विदारणैः॥ सर्वान्देवगणान्दैत्याः सन्निजघ्नुः सवासवान् ॥ १७ ॥ धूम्रकेशं हरिश्मश्रुं नानाप्रहरणायुधम् ॥ रक्तसंध्याभ्रसंकाशं किरीटोत्तमधारिणम् ॥ १८ ॥ नीलपीताम्बरधरं शितदंष्ट्रोर्ध्वधारिणम् ॥ आजानुबाहुं हर्यक्षं वैडूर्याभरणोज्ज्वलम्॥१९॥ समुद्यतायुधं दृष्ट्वा सर्वे देवगणास्तदा ॥ ते हिरण्याक्षमसुरं दैत्यानामग्रतः स्थितम् ॥२०॥ युगान्तसमये भीमं स्थितं मृत्युमिवाग्रतः ॥ प्रविव्यथुः सुराः सर्वे तदा शक्रपुरोगमाः ॥ २१॥

सम्पूर्ण देवगणोंसे इन्द्रके सहित ताडन करने लगे ॥ १७ ॥ धूम्रकेश हरिश्मश्रु अनेक आयुध प्रहार करनेवाले रक्तसंध्याके अभ्रकी समान उत्तम किरीट धारे ॥ १८ ॥ नील पीताम्बरधारी श्वेतदंष्ट्रा ऊर्ध्व किये जानुपर्यन्त लम्बायमान भुजा प्रकाशित वैडूर्यमणिके भूषण पहरे॥ १९॥ आयुध उठाकर आगे स्थित हुए हिरण्याक्षको सब देवता देखकर ॥ २० ॥ युगान्तकालमें मृत्युकी समान स्थित जानते हुए और इन्द्रादिक सम्पूर्ण देवता व्यथित हुए ॥२१॥

॥ ७९ ॥

चलते पर्वतकी समान हिरण्याक्षको आता देखकर देवताओंने उद्विग्नमन हो शरासन ग्रहण किये ॥ २२ ॥ और इन्द्रको आगे कर संग्राममें
स्थित हुए वह सुवर्ण कवच पहरे उज्ज्वल सेना शोभित हुई ॥ २३ ॥ जिस प्रकार नक्षत्रोंसे शरदृतुकी रात्रि शोभित होती है वे परस्पर सेनामें
मारते हुए प्रहार करने लगे ॥ २४ ॥ बाहुयुद्धमें भुजा तोडने लगे. गदापातसे भग्न अंग और बाणोंसे व्यथित हृदय हो गये ॥ २५ ॥ कोई पृथक्
हो गिर पडे कोई एक दूसरेको मारने लगे कोई रथोंको तोडने लगे कोई रथोंसे चर्ण हो गये ॥ २६ ॥ कोई ऐसी रोकमें प्राप्त हुए कि उनका रथ चला-

दृष्ट्वायान्तं हिरण्याक्षं महाद्रिमिव जङ्गमम् ॥ देवाः संविग्नमनसः प्रगृहीतशरासनाः॥२२॥ सहस्राक्षं पुरस्कृत्य तस्थुः संग्राममूर्धनि ॥
सा च दैत्यचमू रेजे हिरण्यकवचोज्ज्वला ॥ २३ ॥ प्रवृद्धनक्षत्रगणा शारदा द्यौरिवामला ॥ तेऽन्योन्यमपि संपेतुः पातयन्तः परस्प-
रम् ॥ २४ ॥ बभञ्जुर्बाहुभिर्बाहून्द्वन्द्वमन्ये युयुत्सवः ॥ गदानिपातैर्भग्नाङ्गा बाणैश्च व्यथितोरसः ॥ २५ ॥ विनिपेतुः पृथक्केचि-
त्तथान्येऽपि विजघ्निरे ॥ बभञ्जिरे रथान्कोचित्केचित्संमर्दिता रथैः॥ २६ ॥ संबाधमन्ये संप्राप्ता न शेकुश्चलितुं रथात् ॥ दानवेन्द्रबलं
तत्र देवानां च महद्बलम् ॥ २७ ॥ अन्योन्यबाणवर्षेण युद्धदुर्दिनमाबभौ ॥ हिरण्याक्षस्तु बलवान् क्रुद्धः स दितिनन्दनः ॥ २८ ॥
व्यवर्द्धत महातेजाः समुद्र इव पर्वणि ॥ तस्य क्रुद्धस्य सहसा मुखान्निश्चेरुरर्चिषः ॥ २९ ॥ शस्त्रजालैर्बहुविधैर्धनुर्भिः परिघैरपि ॥
सर्वमाकाशमावव्रे पर्वतैरुत्थितैरिव ॥ ३० ॥ बहुभिः शस्त्रनिस्त्रिंशैश्छिन्नभिन्नाशिरोरसः ॥ न शेकुश्चलितुं देवा हिरण्याक्षार्दिता
युधि ॥ ३१ ॥ सर्वे वित्रासिता देवा हिरण्याक्षेण संयुगे ॥ न शेकुर्यत्नवन्तोऽपि यत्नं कर्तुं विचेतसः ॥ ३२ ॥

यमान न हो सका उस समय दानवेन्द्र और देवताओंकी बडी सेनाके ॥ २७ ॥ परस्पर बाण वर्षानेसे वह दिन युद्धके कारण दुर्दिन हो गया. बलवान्
हिरण्याक्ष बडा क्रोध कर॥ २८॥ महातेजस्वी पर्वके समुद्रकी समान बढने लगा. क्रोध करनेपर उसके मुखसे अग्निकी चिनगारी निकलने लगी ॥ २९॥
अनेक प्रकारके शस्त्रजाल धनुष परिघोंसे उठे हुए पर्वतोंकी समान सब आकाश भर गया॥ ३०॥ बहुतसे शस्त्रअस्त्रोंसे हृदय शिर छिन्नभिन्न हो गये हिरण्या-
क्षसे अर्दित हो देवता चलनेको समर्थ न हुए ॥ ३१ ॥ हिरण्याक्षने युद्धमें सब देवता भगा दिये वे यत्न करकेभी विचेतन हो कुछ न कर सके ॥ ३२ ॥

उसने अस्त्रसे इन्द्रको युद्धमें स्तंभित कर दिया. ऐरावतपर स्थित हुआ इन्द्र चलनेको समर्थ न हुआ ॥ ३३ ॥ वह दानव इस प्रकार सब देवताओंको पराजित कर देवेशको स्तंभित कर सब जगत् अपने वशीभूत मानने लगा ॥ ३४ ॥ वोह मेघकी समान गंभीर शब्द करता मत्तमातंगकी समान शरीर धारे महाकान्तिमान् धनुष कंपित करता हुआ देवताओंको दीखने लगा ॥ ३५ ॥ इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे भविष्यपर्वणि भाषायां अष्टत्रिंशोऽध्यायः ॥ ३८ ॥ वैशंपायन बोले; इन्द्रके निष्प्रयत्न और देवताओंके धर्षित होनेपर चक्रगदाधारी नारायणने हिरण्याक्षके मारनेका विचार किया ॥ १ ॥

तेन शक्रः सहस्राक्षः स्तम्भितोऽस्त्रेण धीमता ॥ ऐरावतगतः संख्ये नाशकच्चलितुं भयात् ॥ ३३ ॥ सर्वांश्च देवानखिलान्त्स पराजित्य दानवः ॥ स्तम्भयित्वा च देवेशमात्मस्थं मन्यते जगत् ॥ ३४ ॥ सतोयमेघप्रतिमोग्रनिःस्वनं प्रभिन्नमातङ्गविलासविग्रहम् ॥ धनुर्विधुन्वन्तमुदारवर्चसं तदा सुरेन्द्रं ददृशुः सुराः स्थिताः ॥ ३५ ॥ इति श्रीम० खि० ह० भ० वा० अष्टत्रिंशोऽध्यायः ॥ ३८ ॥ वैशम्पायन उवाच ॥ निष्प्रयत्ने सुरपतौ धर्षितेषु सुरेषु च ॥ हिरण्याक्षवधे बुद्धिं चक्रे चक्रगदाधरः ॥ १ ॥ वाराहः पर्वतो नाम यः पूर्वं समुदाहृतः ॥ स एष भूत्वा भगवानाजगामासुरान्तकृत् ॥ २ ॥ ततश्चन्द्रप्रतीकाशमगृह्णाच्छङ्खमुत्तमम् ॥ सहस्रारं च तच्चक्रं चक्रपर्वतसन्निभम् ॥ ३ ॥ महादेवो महाबुद्धिर्महायोगी महेश्वरः ॥ पठ्यते योऽमरैः सर्वैर्गुह्यैर्नामभिरव्ययः ॥ ४ ॥ सदसच्चात्मनि श्रेष्ठः सद्भिर्यः सेव्यते सदा ॥ इज्यते यः पुराणैश्च त्रिलोके लोकभावनः ॥ ५ ॥ यो वैकुण्ठः सुरेन्द्राणामनन्तो भोगिनामपि ॥ विष्णुर्यो योगविदुषां यो यज्ञो यज्ञकर्मणाम् ॥ ६ ॥

जो वाराह नामका पर्वत प्रथम कहाहै वही रूप धारण कर भगवान् असुरनाशक आये ॥ २ ॥ तब चंद्रकी समान कान्तिमान् श्वेत शंख और चक्र पर्वतकी समान सहस्रधारवाले सुदर्शनचक्रको धारण किये ॥ ३ ॥ महादेवी महाबुद्धि महायोगी महेश्वर जिसको देवता दिव्य नामसे स्तुति करते हैं ॥ ४ ॥ सत् असद्रूप श्रेष्ठ आत्मा जिनकी सत्पुरुष सदा सेवा करते हैं. जो पुराणोंमें स्तुतिको प्राप्त होताहै सब लोकोंका एकभावनहै ॥ ५ ॥ सुरेन्द्रोंमें वैकुंठरूप भोगियोंमें

अनन्तरूप योगियोंमें विष्णु यज्ञकर्मोंमें यज्ञस्वरूप है ॥ ६ ॥ जिसके प्रसादसे यज्ञ कर देवता स्वर्गमें स्थित हुए हैं और महर्षियोंद्वारा दी हुई घृतकी आहुति पान करते हैं. अग्नि ब्राह्मण मुख आदिमें आहुति देनेसे तीन प्रकारकी आहुति कही है ॥ ७ ॥ जो देवता दैत्योंकी परा गति और सुरोंकी परम गति है जो पवित्रोंका पवित्र स्वयंभू अव्यय विभु है ॥ ८ ॥ जिसके चक्रसे दानव युगयुगमें पीसे जाते हैं. जिनके पराक्रमको देख कुल अकुलताको प्राप्त हो जाते हैं वे आये ॥ ९ ॥ तब उन्होंने दैत्योंको भय देनेवाला पुरातन उत्तम शंख मुखपर धरकर बजाया. जिससे दैत्योंका जीवन नष्ट होता

मखे यस्य प्रसादेन भुवनस्था दिवौकसः ॥ आज्यं महर्षिभिर्दत्तमश्नुवन्ति त्रिधा हुतम् ॥ ७ ॥ यो गतिर्देवदैत्यानां यः सुराणां परा गतिः ॥ यः पवित्रं पवित्राणां स्वयंभूरव्ययो विभुः ॥ ८ ॥ यस्य चक्रप्रविष्टानि दानवानां युगे युगे ॥ कुलान्याकुलतां यान्ति यानि दृष्टानि वीर्यतः ॥ ९ ॥ ततो दैत्यद्रवकरं पौराणं शंखमुत्तमम् ॥ धमन्वक्त्रेण बलवानाक्षिपद्दैत्यजीवितम् ॥ १० ॥ श्रुत्वा शङ्ख-स्वनं घोरमसुराणां भयावहम् ॥ क्षुभिता दानवाः सर्वे दिशो दश व्यलोकयन् ॥ ११ ॥ ततः संरक्तनयनो हिरण्याक्षो महासुरः ॥ कोऽयमित्यब्रवीद्रोषान्नारायणमुदैक्षत ॥ १२ ॥ वाराहरूपिणं देवं संस्थितं पुरुषोत्तमम् ॥ शंखचक्रोद्यतकरं देवानामार्तिनाशनम् ॥ १३ ॥ रराज शंखचक्राभ्यां ताभ्यामसुरसूदनः ॥ सूर्याचन्द्रमसोर्मध्ये यथा नीलपयोधरः ॥ १४ ॥ ततोऽसुरगणाः सर्वे हिर-ण्याक्षपुरोगमाः ॥ उद्यतायुधनिस्त्रिंशा दृप्ता देवमुपाद्रवन् ॥ १५ ॥ पीड्यमानोऽतिबलिभिर्दैत्यैः सर्वायुधोद्यतैः ॥ न चचाल हरि-र्युद्धेकम्पमान इवाचलः ॥ १६ ॥

है ॥ १० ॥ असुरोंके भय देनेवाले शंखका घोर शब्द सुनकर क्षुभित हो दानव दशों दिशाको अवलोकन करने लगे ॥ ११ ॥ तब महाअसुर हिर-ण्याक्ष लाल नेत्र कर यह कौन है ऐसा कह क्रोधसे नारायणको देखने लगा ॥ १२ ॥ उन पुरुषोत्तमको वाराहरूपमें देख कि वे देवताओंके दुःखना-शक हाथमें शंख लिये हैं ॥ १३ ॥ वह शत्रुसूदन शंखचक्रसे शोभित होते थे. जैसे सूर्यचन्द्रमाके बीचमें नीलमेघ हो ॥ १४ ॥ तब सब असुर हिरण्याक्षको आगे कर आयुध उठाये दृप्त हो देवके ऊपर झपटे ॥ १५ ॥ वह बली दैत्योंके सम्पूर्ण आयुधोंसे पीडित होकरभी अचलकी समान

नारायण युद्धमें चलायमान न हुए ॥ १६ ॥ तब दानवने प्रज्वलित शक्तिको प्रभुके हृदयमें महातेज और बलयुक्त निपातन किया ॥ १७ ॥ उस शक्तिके प्रभावसे ब्रह्माभी विस्मित हो गये उस महाशक्तिको निकट आई देख महाबली ॥ १८ ॥ प्रभुने हुंकारसेही झिडककर पृथ्वीमें गिरा दिया. उस शक्तिके नष्ट होनेपर ब्रह्माने धन्य धन्य कहा ॥ १९ ॥ जो सबके प्रभु हैं उन वराहको उसने ताडित किया तब भगवान्‌ने सूर्यकी समान चक्र ग्रहण किया ॥ २० ॥ और उत्तमकर्मा दानवेन्द्रके शिरपर मारा तब उसका शिर कट पृथ्वीमें गिरा. जैसे वज्रसे हत हुआ सुवर्णमय मेरुशृंग गिरता

ततः प्रज्वलितां शक्तिं वाराहोरसि दानवः ॥ हिरण्याक्षो महातेजाः पातयामास वीर्यवान् ॥ १७ ॥ तस्या शक्त्या प्रभावेण ब्रह्मा विस्मयमागतः ॥ समीपमागतां दृष्ट्वा महाशक्तिं महाबलः ॥ १८ ॥ हुंकारेणैव निर्भर्त्स्यै पातयामास भूतले ॥ तस्यां प्रतिहतायां तु ब्रह्मा साध्विति चाब्रवीत् ॥ १९ ॥ यः प्रभुः सर्वभूतानां वराहस्तेन ताडितः ॥ ततो भगवता चक्रमाविध्यादित्यसन्निभम् ॥ २० ॥ पातितं दानवेन्द्रस्य शिरस्युत्तकर्मणा॥ ततः स्थितस्यैव शिरस्तस्य भूमौ पपात ह ॥ हिरण्मयं वज्रहतं मेरुशृङ्गमिवोत्तमम् ॥ २१ ॥ हिरण्याक्षे हते दैत्ये शेषा ये तत्र दानवाः ॥ सर्वे तस्य भयत्रस्ता जग्मुराशु दिशो दश ॥ २२ ॥ स सर्वलोकाप्रतिचक्रचक्रो महाहवेष्वप्रतिमोग्रचक्रः ॥ बभौ वराहो युधि चक्रपाणिः कालो युगान्तेष्विव दण्डपाणिः॥ २३ ॥ इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे भविष्यपर्वणि एकोनचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ३९ ॥ वैशम्पायन उवाच ॥ विद्राव्य तु रणे सर्वानसुरान्पुरुषोत्तमः ॥ मुमोच तत्र बद्धांस्तान्पुरंदरमुखान्त्सुरान् ॥ १ ॥ ततः प्रकृतिमापन्नाः सर्वे देवगणास्तथा ॥ पुरंदरं पुरस्कृत्य नारायणमुपस्थिताः ॥ २ ॥

है ॥ २१ ॥ हिरण्याक्ष दैत्यके मरनेपर शेष रहे दानव उनके भयसे दशों दिशामें भाग गये ॥ २२ ॥ जिस प्रकार कालका सब लोकोंमें अप्रतिहत आज्ञाचक्र चलता है. इस प्रकार महायुद्धमें उपमारहित चक्र धारण किये भगवान् वाराहजी शोभित हुए. जैसे दण्डपाणि काल शोभित होता है ॥ २३ ॥ इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे भविष्यपर्वणि भाषायां एकोनचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ३९ ॥ वैशंपायन बोले; इस प्रकार पुरुषोत्तम युद्धमें सब असुरोंको भगाकर इन्द्रादि देवताओंको बंधनसे छुडाते हुए ॥ १ ॥ तब सम्पूर्ण देवता अपनी प्रकृतिको प्राप्त हुए इन्द्रको आगे कर नारायणके सन्मुख

स्थित हुए ॥ २ ॥ देवता बोले; हे भगवन् ! आपके प्रसाद और आपके बाहुबलसे हम कालके मुखसे निकल जीवित हुए हैं ॥ ३ ॥ हे भगवन् ! आपकी आज्ञासे हम देवता क्या करें. हे सनातन ! आपके चरणकी सेवा करनेकी इच्छा करते हैं ॥ ४ ॥ वैशंपायन बोले; कमललोचन उनके यह वचन सुन शत्रुहन्ता देवताओंसे प्रसन्न हो वचन कहने लगे ॥ ५ ॥ श्रीभगवान् बोले; तुम जिसके निमित्त मैंने जिस लोककी कल्पना की है उसको यत्नपूर्वक पालन कर वेदाज्ञा मानते रहो ॥ ६ ॥ और यज्ञभागको प्राप्त हो अपने ऐश्वर्यको भोगो और मेरी निर्देश की हुई आज्ञाको पालन करो ॥ ७ ॥

देवा ऊचुः ॥ त्वत्प्रसादेन भगवन् तव बाहुबलेन च ॥ जीवामोऽद्य महाबाहो निष्क्रान्ताश्चान्तकाननात् ॥ ३ ॥ त्वच्छासनाद्धि भगवन् किं कुर्वन्त्यदितेः सुताः ॥ इच्छामः पादशुश्रूषां तव कर्तुं सनातन ॥ ४ ॥ वैशम्पायन उवाच ॥ तच्छ्रुत्वा वचनं तेषां पुण्डरीकनिभेक्षणः ॥ उवाच वचनं देवान्मुदा युक्तो हताद्विषः ॥ ५ ॥ श्रीभगवानुवाच ॥ यो यस्य भवतो लोको मयैव विहितः पुरा ॥ पाल्यतां स तु यत्नेन वियोगश्च क्वचित् क्वचित् ॥ ६ ॥ ऐश्वर्यं प्रतिपन्नाः स्थ क्रतुभागपुरस्कृतम् ॥ मयेव पूर्वं निर्दिष्टो नियोगः प्रतिपाल्यताम् ॥ ७ ॥ शक्रं चोवाच भगवान्वचनं दुन्दुभिस्वनः ॥ इदं यथावत्कर्तव्यं सत्सु चासत्सु च त्वया ॥ ८ ॥ गच्छन्तु तपसा स्वर्गं मुनयः शंसितव्रताः ॥ तव लोकं सुरश्रेष्ठ सर्वकामदुघं सदा ॥ यायजूकाश्च ये केचिद्ब्राह्मणाः क्षत्रिया विशः ॥ तेषां कामदुघा लोकाः स्वर्गमादिमनोहराः ॥ यज्ञैरिष्ट्वा यायजूकाः फलं ते प्राप्नुवन्तु च ॥ ९ ॥ भावः सद्धर्मशीलानामभावः पापकर्मणाम् ॥ सन्तः स्वर्गजितः सन्तु सर्वाश्रमनिवासिनः ॥ १० ॥

फिर भगवान् मेघवत् गंभीरस्वरसे इन्द्रसे बोले; हे इन्द्र ! तुम यथायोग्य कर्तव्यकर्मको करो ॥ ८ ॥ व्रत करनेवाले मुनि तपसे स्वर्गको प्राप्त हो. हे सुरश्रेष्ठ ! तुमको सब कामना देनेवाले लोक प्राप्त होंगे जो कोई ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्य यज्ञ करनेवाले हैं उनके निमित्त स्वर्गादि कामना देनेवाले मनोहर लोक हैं यज्ञको प्राप्त होकर फल प्राप्त होंगे ॥ ९ ॥ जहां धर्मशीलोंका भाव और पापियोंका अभाव है वे सर्व आश्रमके निवासी सन्त स्वर्गको प्राप्त

होते हैं ॥ १० ॥ सत्यशूर युद्धशूर दानशूर जो मनुष्य हैं तथा जो किसीकी निन्दा नहीं करते वह मनुष्य स्वर्गको प्राप्त होते हैं ॥ ११ ॥ जो पुरुष अश्रद्धावाले कामी अर्थमें तत्पर और शठ हैं अब्रह्मण्य तथा नास्तिक हैं वे मनुष्य नरकको प्राप्त हों ॥ १२ ॥ हे देवेश ! यह तुम हमारे कहे वचन मानो. तब मेरे स्थित होते हुए कोई शत्रु तुमको बाधा नहीं दे सकेंगे ॥ १३ ॥ ऐसा कह शंखचक्रधारी नारायण अन्तर्धान हो गये और सम्पूर्ण देवताओंको बडा विस्मय हुआ ॥ १४ ॥ देवता इस अद्भुत वाराहचरित्रको देख वाराहको नमस्कार कर स्वर्गको गये ॥ १५ ॥ तब

सत्यशूरा रणे शूरा दानशूराश्च ये नराः ॥ ते नराः स्वर्गमश्नन्तु सदा ये चानसूयवः ॥ ११॥ अश्रद्दधानाः पुरुषाः कामिनोऽर्थपराः शठाः ॥ अब्रह्मण्या नास्तिकाश्च नरकं यान्तु मानवाः ॥ १२ ॥ एतावत्क्रियतां वाक्यं मयोक्तं त्रिदशेश्वराः ॥ ततो मयि स्थिते सर्वान्बाधिष्यन्ते न चारयः ॥ १३ ॥ इत्युक्त्वान्तर्हितो देवः शङ्खचक्रगदाधरः॥ देवतानां च सर्वेषामभवद्विस्मयो महान् ॥ १४ ॥ एतदत्यद्भुतं दृष्ट्वा वाराहचरितं सुराः ॥ नमस्कृत्वा वराहाय नाकपृष्ठमितो गताः ॥ १५ ॥ ततः स्वान्याधिपत्यानि प्रतिपन्नानि देवतैः ॥ सर्वलोकाधिपत्ये च प्रतिष्ठां वासवो गतः ॥ १६ ॥ विमुक्ता दानवगणैः प्रकृतिं धरणी गता ॥ स्थैर्यहेतोर्धरण्यास्तु ज्ञात्वा चागस्कृतान् गिरीन् ॥ १७ ॥ स्वेषु स्थानेषु संस्थाप्य पर्वतानां पुरंदरः ॥ चिच्छेद भगवान्पक्षान्वज्रेण शतपर्वणा ॥ १८ ॥ सर्वेषामेव पक्षा वै छिन्नाः शक्रेण धीमता ॥ एकः सपक्षो मैनाकः सुरैस्तत्समयः कृतः ॥ १९ ॥ एष नारायणस्यायं प्रादुर्भावो महात्मनः ॥ वाराह इति विप्रेन्द्रैः पुराणे परिकीर्तितः ॥ २० ॥

देवता अपने २ अधिकारको प्राप्त हुए और इन्द्र सब लोकके अधिपतित्वको प्राप्त हुए ॥ १६ ॥ और दानवगणोंसे मुक्त हो पृथ्वी अपने स्वभावको प्राप्त हुई. पृथ्वीके स्थिति करनेके निमित्त उन अपराध करनेवाले पर्वतोंको ॥ १७ ॥ इन्द्रने उन उन स्थानोंमें स्थित कर दिया और उस अपराधसे तीक्ष्ण धारावाले वज्रसे उनके पंख छेदन कर डाले ॥ १८ ॥ इस प्रकार बुद्धिमान् इन्द्रने सबके पंख छेदन कर डाले. एक पंखवाला मैनाक रहा जिसके रक्षणार्थ देवताओंकी प्रतिज्ञा थी ॥ १९ ॥ यह महात्मा नारायणका प्रादुर्भाव है. विप्रेन्द्रोंने पुराणोंमें इसको वाराहचरित्र कहा है ॥ २० ॥

यह व्यासजीको अभिमत अनेक श्रुतियोंसे सम्मत है. यह अशुचि कृतघ्न और नृशंससे न कहना ॥ २१ ॥ क्षुद्र नीच गुरुद्वेषकारी अशिष्य और कृतघ्नको न देना ॥ २२ ॥ आयु यश पृथ्वी जयकी कामनावाले पुरुषोंको यह देवताओंकी जय श्रवण करनी चाहिये ॥ २३ ॥ यह पुराण वेदसे सम्बद्ध कल्याणरूप स्वस्तिदायक है सब जीवोंका शोधक और तत्काल विजयका देनेवाला है ॥ २४ ॥ हे कौरव्य ! यह तत्त्वसे समस्त तुमको कहा है. हे नृपश्रेष्ठ ! इस प्रकार वाराहप्रादुर्भावकी कथा है ॥ २५ ॥ जो पवित्र यज्ञोंसे देवता पितरोंका यजन करते हैं जो आत्माका आत्मासे

कृष्णद्वैपायनमतं नानाश्रुतिसमाहितम् ॥ नाशुचेर्नं कृतघ्नाय न नृशंसाय कीर्त्तयेत् ॥२१॥ न क्षुद्राय न नीचाय न गुरुद्वेषकारिणे ॥ नाशिष्याय तथा राजन्न कृतघ्नाय चैव हि ॥ २२॥ आयुष्कामैर्यशःकामैर्महीकामैश्च मानवैः ॥ जयैषिभिश्च श्रोतव्यो देवानामेष वै जयः ॥ २३ ॥ पुराणवेदसंबद्धः शिवः स्वस्त्ययनो महान् ॥ पावनः सर्वसत्त्वानां तत्कालविजयप्रदः ॥ २४ ॥ एष कौरव्य तत्त्वेन कथितस्त्वनुपूर्वशः ॥ वाराहस्य नृपश्रेष्ठ प्रादुर्भावो महात्मनः ॥ २५ ॥ ये यजन्ति मखैः पुण्यैर्दैवतानि पितॄनपि ॥ आत्मानमात्मना नित्यं विष्णुमेव यजन्ति ते ॥ २६ ॥ लोकायनाय त्रिदशायनाय ब्रह्मायनायात्मभवायनाय ॥ नारायणायात्महितायनाय महावराहाय नमस्कुरुष्व ॥ २७ ॥ इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे भविष्यपर्वणि वाराहप्रादुर्भावे चत्वारिंशत्तमोऽध्यायः ॥ ४० ॥ वैशम्पायन उवाच ॥ वाराह एष कथितो नारसिंहमतः शृणु ॥ यत्र भूत्वा मृगेन्द्रेण हिरण्यकशिपुर्हतः ॥ १ ॥ पुरा कृतयुगे राजन्हिरण्यकशिपुः प्रभुः ॥ दैत्यानामादिपुरुषश्चकार सुमहत्तपः ॥ २ ॥

यजन करते हैं वे नित्य विष्णुका यजन करते हैं ॥ २६ ॥ लोकके स्थान देवताओंके स्थान ब्रह्म और आत्माके स्थान नारायण आत्माके हितकारी महावराहजीको प्रणाम करो ॥ २७ ॥ इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे भविष्यपर्वणि भाषायां वाराहप्रादुर्भावे चत्वारिंशत्तमोऽध्यायः ॥ ४० ॥ वैशंपायन बोले; यह वाराहचरित्र कहा अब नृसिंहचरित्र सुनो. जिसमें मृगेन्द्ररूपसे भगवान्ने हिरण्यकशिको मारा ॥ १ ॥ हे राजन् ! सत्ययुगमें बली हिरण्यकशिपु दैत्योंके आदिपुरुषने बडा तप किया ॥ २ ॥

ग्यारह सहस्र पांच सौ वर्षतक मौन हो वह जलमें स्थिति करता हुआ॥ ३॥शम दम और ब्रह्मचर्यसे तप और नियमसे ब्रह्माजी उसपर प्रसन्न हो गये॥४॥ तब स्वयंभू भगवान् स्वयं उस स्थानमें हंसयुक्त प्रकाशमान विमानपर चढकर आये ॥ ५ ॥ आदित्य वसु साध्य रुद्र मरुत विश्वेदेवा यक्ष राक्षस किन्नर उनके साथ थे ॥ ६ ॥ दिशा विदिशा नदी सागर नक्षत्र मुहूर्त आकाशचारी महाग्रह ॥ ७ ॥ देवर्षि ब्रह्मर्षि सिद्ध सप्तर्षि पुण्यात्मा राजर्षी गन्धर्व अप्सराओंके साथ ॥ ८ ॥ चराचरके गुरु देवताओंसे युक्त श्रीमान् ब्रह्मज्ञानियोंमें श्रेष्ठ ब्रह्माजी यह वचन उससे बोले ॥ ९ ॥ ब्रह्माजी बोले; हे सुव्रत !

दश वर्षसहस्राणि शतानि दश पञ्च च ॥ जलवासी समभवत्स्थानमौनव्रतस्थितः ॥ ३ ॥ ततः शमदमाभ्यां च ब्रह्मचर्येण चैव हि ॥ ब्रह्मा प्रीतोऽभवत्तस्य तपसा नियमेन च ॥ ४ ॥ ततः स्वयंभूर्भगवान्स्वयमागम्य तत्र ह ॥ विमानेनार्कवर्णेन हंसयुक्तेन भास्वता ॥ ५ ॥ आदित्यैर्वसुभिः साध्यैर्मरुद्भिर्दैवतैः सह ॥ रुद्रैर्विश्वसहायैश्च यक्षराक्षसकिन्नरैः ॥ ६ ॥ दिग्भिश्चाथ विदिग्भिश्च नदीभिः सागरैस्तथा ॥ नक्षत्रैश्च मुहूर्तैश्च खचरैश्च महाग्रहैः ॥ ७ ॥ देवैर्ब्रह्मर्षिभिः सार्द्धं सिद्धैः सप्तर्षिभिस्तथा ॥ राजर्षिभिः पुण्यकृद्भिर्गन्धर्वैरप्सरोगणैः ॥ ८ ॥ चराचरगुरुः श्रीमान्वृतो देवगणैः सह ॥ ब्रह्मा ब्रह्मविदां श्रेष्ठो दैत्यं वचनमब्रवीत् ॥ ९ ॥ ब्रह्मोवाच ॥ प्रीतोऽस्मि तव भक्तस्य तपसानेन सुव्रत ॥ वरं वरय भद्रं ते यथेष्टं काममाप्नुहि ॥ १० ॥ ततो हिरण्यकशिपुः प्रीतात्मा दानवोत्तमः ॥ कृताञ्जलिपुटः श्रीमान्वचनं चेदमब्रवीत् ॥११॥ हिरण्यकशिपुरुवाच ॥ न देवासुरगन्धर्वा न यक्षोरगराक्षसाः ॥ न मानुषाः पिशाचाश्च निहन्युर्मां कथंचन ॥ १२ ॥ ऋषयो नैव मां क्रुद्धाः सर्वलोकपितामह ॥ शपेयुस्तपसा युक्ता वर एष वृतो मया ॥१३ ॥ न शस्त्रेण न चास्त्रेण गिरिणा पादपेन च ॥ न शुष्केण न चार्द्रेण स्यान्न चान्येन मे वधः ॥ १४ ॥

तुझ भक्तके इस तपसे मैं प्रसन्न हूं. तुम्हारा जो यथेष्ट हो सो वर मांगो ॥ १० ॥ तब दानवोत्तम हिरण्यकशिपु प्रसन्न हुआ और हाथ जोडकर वचन कहने लगा ॥ ११ ॥ हिरण्यकश्यप बोला; देव असुर गंधर्व यक्ष राक्षस मनुष्य पिशाच इनसे किसी प्रकार मेरी मृत्यु न हो ॥ १२ ॥ और महातपसे युक्त ऋषियोंका शापभी मुझको न लगे यही वर मेरे लिये चाहिये ॥ १३ ॥ शस्त्र अस्त्र गिरि वृक्ष शुष्क गीली किसी वस्तुसे मेरा वध न हो ॥ १४ ॥

स्वर्ग पाताल आकाश पृथ्वीके अभ्यंतर रातदिनमें मेरा वध न हो ॥ १५ ॥ जो एकही हाथके प्रहारसे भृत्य बल वाहन सहित नष्ट करनेको समर्थ हो उससे मेरी मृत्यु हो ॥ १६ ॥ मैं सोम सूर्य वायु अग्नि जल अन्तरिक्ष नक्षत्र दशों दिशा क्रोध काम वरुण इन्द्र और यमके समान हो जाऊं ॥ १७ ॥ धनाध्यक्ष कुबेर यक्ष किंपुरुषोंका अधिपति हो जाऊं और युद्धके समय दिव्य अस्त्र मूर्तिमान् होकर मेरे निकट उपस्थित हों हे ब्रह्माजी ! यह वर मुझको दीजिये ॥ १८ ॥ ब्रह्माजी बोले; हे तात ! यह दिव्य वर मैंने तुमको दिये तुम अच्छी प्रकार सब कामनाओंको प्राप्त होगे, इसमें सन्देह नहीं है ॥ १९ ॥

न स्वर्गेऽप्यथ पाताले नाकाशे नावनिस्थले ॥ न चाभ्यन्तररात्र्यह्नोर्न चाप्यन्येन मे वधः ॥ १५ ॥ पाणिप्रहारेणैकेन सभृत्यबलवाहनम् ॥ यो मां नाशयितुं शक्तः स मे मृत्युर्भविष्यति ॥ १६ ॥ भवेयमहमेवार्कः सोमो वायुर्हुताशनः ॥ सलिलं चान्तरिक्षं च नक्षत्राणि दिशो दश ॥ अहं क्रोधश्च कामश्च वरुणो वासवो यमः ॥ १७ ॥ धनदश्च धनाध्यक्षो यक्षकिंपुरुषाधिपः ॥ मूर्तिमन्ति च दिव्यानि ममास्त्राणि महाहवे ॥ उपतिष्ठन्तु देवेश सर्वलोकपितामह ॥ १८ ॥ पितामह उवाच ॥ एते दिव्या वरास्तात मया दत्तास्तवाद्भुताः ॥ सर्वान्कामानलपभावात्प्राप्स्यसि त्वं न संशयः ॥ १९ ॥ वैशम्पायन उवाच ॥ एवमुक्त्वा स भगवान् जगामाकाशमेव च ॥ वैराज्यं ब्रह्मसदनं ब्रह्मर्षिगणसेवितम् ॥ २० ॥ ततो देवाश्च नागाश्च गन्धर्वा मुनिभिः सह ॥ वरप्रदानं श्रुत्वैव पितामहमुपस्थिताः ॥ २१ ॥ देवा ऊचुः ॥ वरेणानेन भगवन्वधिष्यति स नोऽसुरः ॥ तत्प्रसीदस्व भगवन्वधोऽप्यस्य विचिन्त्यताम् ॥ २२ ॥ वैशम्पायन उवाच ॥ भगवान्सर्वभूतानामादिकर्ता स्वयंप्रभुः ॥ स्रष्टा च हव्यकव्यानामव्यक्तप्रकृतिर्ध्रुवः ॥ २३ ॥

वैशंपायन बोले; यह कह ब्रह्माजी उस विराट्रूप ब्रह्मसदन अपने स्थानको चले गये जो ब्रह्मर्षियोंसे सेवित है ॥ २० ॥ तब देवता और नाग गन्धर्व तथा मुनियोंके साथ इस वरका वृत्तान्त सुन ब्रह्माजीके पास आये ॥ २१ ॥ देवता बोले; हे भगवन् ! वह असुर हम सबको वरके कारण वध करेगा इस कारण हे भगवन् ! प्रसन्न हो आप इसके वधका उपाय विचारो ॥ २२ ॥ वैशंपायन बोले; भगवान् सर्वभूतोंके आदिकर्ता स्वयं प्रभु हैं, वह हव्य

कव्योंके स्रष्टा अव्यक्त प्रकृति ध्रुवरूप हैं ॥ २३ ॥ वह प्रजापति सब लोकके हितकारी वचन सुनकर उन देवताओंको मनोहर वचनोंसे आश्वासन करने लगे ॥ २४ ॥ हे देवताओ ! वह तपके फलको अवश्य प्राप्त होगा. तपके अन्तमें भगवान् विष्णु उसका वध करेंगे ॥ २५ ॥ सब देवता कमलनाभ ब्रह्माजीका वचन सुन प्रसन्न हो अपने दिव्य स्थानोंको गये ॥ २६ ॥ वैशंपायन बोले; वह दैत्य वरको प्राप्त हो सब प्रजाको बाधा देने लगा वह हिरण्यकशिपु दैत्य वरदानसे मोहित हो गया ॥ २७ ॥ सब मुनि और शंसितव्रतवाले ब्राह्मणोंके आश्रम तथा सत्यधर्मरत

सर्वलोकहितं वाक्यं श्रुत्वा देवः प्रजापतिः॥ आश्वासयामास सुरान्स शीतैर्वचनाम्बुभिः ॥२४॥ अवश्यं त्रिदशास्तेन प्राप्तव्यं तपसः फलम् ॥ तपसोऽन्ते स भगवान्वधं विष्णुः करिष्यति ॥ २५ ॥ एतच्छ्रुत्वा सुराः सर्वे वाक्यं पङ्कजजन्मनः ॥ स्वानि स्थानानि दिव्यानि प्रतिजग्मुर्मुदान्विताः ॥ २६ ॥ वैशम्पायन उवाच ॥ लब्धमात्रे वरे तस्मिन्सर्वाः सोऽबाधत प्रजाः ॥ हिरण्यकशिपुर्दैत्यो वरदानने दर्पितः ॥ २७ ॥ आश्रमेषु मुनीन्सर्वान् ब्राह्मणान्संशितव्रतान् ॥ सत्यधर्मरतान्दान्तान्धर्षयामास वीर्यवान् ॥ २८ ॥ देवांस्त्रिभुवनस्थांश्च पराजित्य महासुरः ॥ त्रैलोक्यं वशमानीय स्वर्गे वसति दानवः ॥ २९ ॥ यदा वरमदोन्मत्तश्चोदितः कालधर्मणा यज्ञियानकरोद्दैत्यान्देवतानप्ययाज्ञियान् ॥ ३० ॥ तदादित्याश्च साध्याश्च विश्वे च वसवस्तथा ॥ रुद्रा देवगणा यक्षा देवद्विजमहर्षयः ॥ ३१ ॥शरण्यं शरणं विष्णुमुपतस्थुर्महाबलम् ॥ देवं देवमयं यज्ञं ब्रह्मदेवं सनातनम् ॥ ३२ ॥ भूतं भव्यं भविष्यं च प्रजालोकनमस्कृतम् ॥ देवा ऊचुः ॥ नारायण महाभाग देव त्वां शरणं गताः ॥ ३३ ॥

दान्त चतुरोंको धर्षित करने लगा ॥ २८ ॥ इस प्रकार वह असुर त्रिलोकीके देवताओंको जीत त्रिलोकीको वशमें कर स्वर्गमें रहने लगा ॥ २९ ॥ महाबली जब विष्णुकी वरदानसे मदोन्मत्त हो कालधर्मसे प्रेरित हुआ तब दैत्योंको यज्ञभागभोगी और देवताओंको यज्ञभागरहित करता हुआ ॥ ३० ॥ तब आदित्य साध्य विश्वेदेवा वसु रुद्र देवगण यक्ष देव द्विज महर्षि ॥ ३१ ॥ शरणागतवत्सल शरणमें उपस्थित हुए जो देवदेव यज्ञमय ब्रह्मदेव सनातन हैं ॥ ३२ ॥ भूत भव्य भविष्यरूप प्रजा लोकसे नमस्कृत है उनके निकट जाय देवता बोले

हे नारायण महाभाग देव ! हम आपकी शरण हैं ॥ ३३ ॥ तुमही हमारे परमधाता गुरु और ब्रह्मादिकोंके देव हो ॥ ३४ ॥ तुमही कमललोचन शत्रु-ओंको भय देते हो हे प्रभु ! आप दैत्योंके नाशक और हमारे मंगलकर्ता हो ॥ ३५ ॥ हे प्रभो ! दैत्येन्द्र हिरण्यकशिपुको मारकर हमारी रक्षा करो विष्णु बोले; हे देवताओ ! भय त्यागो मैं तुमको अभय देता हूं ॥ ३६ ॥ हे देवताओ ! तुम बहुत शीघ्र अपने स्थानको प्राप्त होंगे. मैं उस वरदर्पित दैत्यको गणसहित ॥ ३७ ॥ जो देवताओंसे अवध्य है वध कर डालूंगा. वैशंपायन बोले; यह कह भगवान्‌ने देवताओंको बिदा कर॥ ३८ ॥ हिरण्यक-

त्वं हि नः परमो धाता त्वं हि नः परमो गुरुः ॥ त्वं हि नः परमो देवो ब्रह्मादीनां सुरोत्तम ॥ ३४ ॥ त्वं पद्मामलपत्राक्ष शत्रुपक्षभयावह ॥ क्षयाय दितिवंशस्याश्रयाय भव नः प्रभो ॥ ३५ ॥ त्रायस्व जहि दैत्येन्द्रं हिरण्यकशिपुं प्रभो ॥ विष्णुरुवाच ॥ भयं त्यजध्वममरा अभयं वो ददाम्यहम् ॥ ३६ ॥ तथैव त्रिदिवं देवाः प्रतिपत्स्यथ मा चिरम् ॥ एष तं सगणं दैत्यं वरदानेन दर्पितम् ॥ ३७ ॥ अवध्यममरेन्द्राणां दानवेन्द्रं निहन्म्यहम् ॥ वैशम्पायन उवाच ॥ एवमुक्त्वा स भगवान्विसृज्य त्रिदिवौकसः ॥ ३८ ॥ वधं संकल्पयित्वा तु हिरण्यकशिपोः प्रभुः ॥ ३९ ॥ सोऽचिरेणैव कालेन हिमवत्पार्श्वमागतः ॥ किंतु रूपं समास्थाय निहन्म्येनं महासुरम् ॥ ४० ॥ यत्सिद्धिकरमाशु स्याद्वधाय विबुधाद्विषः ॥ अनुत्पन्नं ततश्चक्रे सोऽत्यन्तं रूपमास्थितः ॥ ४१ ॥ नारसिंहमनाधृष्यं दैत्यदानवरक्षसाम् ॥ सहायं तु महाबाहुर्जग्राहोंकारमेव च ॥ ४२ ॥ अथोंकारसहायोऽसौ भगवान्विष्णुरव्ययः ॥ हिरण्यकशिपोः स्थानं जगाम प्रभुरीश्वरः ॥ ४३ ॥

शिपुके वधका संकल्प कर ॥ ३९ ॥ थोडेही समयमें हिमालयके समीप आये और विचार किया कैसे रूपको धारण कर इस दैत्यको मारूं ॥ ४० ॥ जो उसके वधमें शीघ्र सिद्धिका देनेवाला हो तब वह अपूर्वरूपको धारण करते हुए ॥ ४१ ॥ जो देवदानवोंसे अधृष्य नारसिंह नामसे विख्यात है और सहायके निमित्त महाबाहुने सर्वात्मा ओंकारको लिया ॥ ४२ ॥ प्रभु अविनाशी विष्णु ओंकारकी सहाय ले हिरण्यकशिपुके स्थानको गये ॥ ४३ ॥

सूर्यकी समान तेज चन्द्रमाकी समान कान्ति आधा मनुष्य और आधा सिंहका शरीर कर॥ ४४॥ नारसिंहशरीर हाथसे हाथ स्पर्श किये बडी दिव्य मनोहर विस्तारवाली ॥ ४५ ॥ सब कामसे युक्त हिरण्यकशिपुकी सभाको देखते हुए जो सौ योजनके विस्तार और एक सौ पचास योजन चौडी थी ॥४६॥ आकाशमें फिरनेवाली यथेष्ट गमन करनेवाली पांच योजन ऊंची जरा शोक क्रमसे रहित कंपरहित मनोहर शुभ ॥ ४७ ॥ सुंदर आसनवाली मनोहर तेजसे प्रकाशमान अन्तरजलसे युक्त विश्वकर्माकी बनाई दिव्य रत्नमय वृक्ष पुष्पफलोंसे युक्त ॥ ४८ ॥ नील पीत सित श्याम सित लाल अवतान

तेजसा भास्कराकारः कान्त्या चन्द्र इवापरः ॥ नरस्य कृत्वार्द्धतनुं सिंहस्यार्द्धतनुं विभुः ॥ ४४ ॥ नारसिंहेन वपुषा पाणिं संस्पृश्य पाणिना ॥ ततोऽपश्यत विस्तीर्णां दिव्यां रम्यां मनोरमाम् ॥ ४५ ॥ सर्वकामयुतां शुभ्रां हिरण्यकशिपोः सभाम् ॥ विस्तीर्णां योजनशत शतमध्यार्द्धमुच्छ्रिताम् ॥ ४६ ॥ विहायसीं कामगमां पञ्चयोजनमुच्छ्रिताम् ॥ जराशोकक्लमत्यक्तां निष्प्रकम्पां शिवां शुभाम् ॥ ४७ ॥ शुभासनवतीं रम्यां ज्वलन्तीमिव तेजसा ॥ अन्तःसलिलसंयुक्तां विहितां विश्वकर्मणा ॥ दिव्यरत्नमयैर्वृक्षैः फलपुष्पप्रदैर्युताम् ॥ ४८ ॥ नीलपीतासितश्यामैः सितैर्लोहितकैरपि ॥ अवतानैस्तथा गुल्मैर्मञ्जरीशतधारिभिः ॥ ४९ ॥ सिताभ्रघनसंकाशा प्लवन्तीवाप्सु दृश्यते ॥ धन्यासनवती रम्या ज्वलन्ती इव तेजसा ॥ ५० ॥ प्रभावती भास्वरा च दिव्यगन्धमनोरमा ॥ नासुखा न च दुःखा सा न शीता न च घर्मदा ॥५१॥ न क्षुत्पिपासे न ग्लानिं प्राप्य तां प्राप्नुवन्ति हि ॥ नानारूपैर्विरचिता विचित्रैरतिभास्वरैः ॥ ५२ ॥ स्तम्भैर्मणिमयैर्दिव्यैः शाश्वती चाक्षता च सा ॥ अतिचन्द्रं च सूर्यं च पावकं च स्वयंप्रभा ॥ ५३ ॥

(झालर) गुल्म (गुच्छे) शतधाराकी मंजरीसे युक्त ॥ ४९ ॥ श्वेतमेघकी समान जलमें पैरती हुईसी दीखती है. वह श्रेष्ठ आसनवती तेजसे प्रज्वलित दीखती थी ॥ ५० ॥ वह प्रभावती प्रकाशमान दिव्य गंधसे मनोरम सुखरूप दुःखरहित न शीत न गरमीसे युक्त ॥ ५१ ॥ उसमें रहनेवाले क्षुधा पिपासा ग्लानिको प्राप्त नहीं होते हैं. वह अनेक प्रकारके चित्र विचित्र कान्तिमान् रूपोंसे प्राप्त थी ॥ ५२ ॥ उसमें दिव्य मणिमय स्तंभ लगे थे. सब प्रकारसे स्वच्छ थी कहींसे टूटी फूटी न थी. चन्द्रसूर्यके तेजको अतिक्रमण करनेवाली स्वयं कान्तिमान् अग्निसे अधिक तेजयुक्त ॥ ५३ ॥

और स्वर्गमें स्थित हुई सूर्यकी भर्त्सना करती हुई प्रकाशित है. सम्पूर्ण काम जो दिव्य और जो मानुष है ॥ ५४ ॥ वे बडे बडे रससे युक्त और अक्षय भक्ष्य भोज्य पवित्र गन्धवाली माला और नित्य पुष्पफलवाले वृक्ष हैं ॥ ५५ ॥ उष्ण और शीतल जल शीत और उष्ण पदार्थ हैं पुष्पित अग्रभागवाले महाशाखायुक्त प्रवाल अंकुर धारण किये ॥ ५६ ॥ लता और वितानों युक्त नदी और सरोवरोंमेंसे बडी मनोहरता प्रभुने देखी ॥ ५७ ॥ अनेक प्रकारके द्रुम और मृगेन्द्र देखे गये. गंध ले पुष्प और रसवाले फल ॥ ५८ ॥ शीतल जलवाले जहां तहां सरोवर और उस सभामें प्रभुने अनेक

दीप्यते नाकपृष्ठस्था भर्त्सयन्तीव भास्करम् ॥ सर्वे च कामाः प्रचुरा ये दिव्या ये च मानुषाः ॥५४॥ रसवन्तः प्रभूताश्च भक्ष्यभोज्यं तथाक्षयम् ॥ पुण्यगन्धाः स्रजस्तत्र नित्यपुष्पफलद्रुमाः ॥ ५५ ॥ उष्णे शीतानि तोयानि शीते चोष्णानि सन्ति वै ॥ पुष्पिताग्रान्महाशाखान्प्रवालाङ्कुरधारिणः ॥ ५६ ॥ लतावितानसंछन्नान्सरित्सु च सरःसु च ॥ मनोहरांश्च विविधान् ददर्श स तदा प्रभुः ॥ ५७ ॥ द्रुमान्बहुविधांस्तत्र मृगेन्द्रो ददृशे द्रुतम् ॥ गन्धवन्ति च पुष्पाणि रसवन्ति फलानि च ॥ ५८ ॥ तानि शीतानि तोयानि तत्र तत्र सरांसि च ॥ अपश्यत्सर्वतीर्थानि सभायां शतशो विभुः ॥ ५९ ॥ नलिनैः पुण्डरीकैश्च शतपत्रैः सुगन्धिभिः ॥ रक्तैः कुवलयैर्नीलैः कुमुदैः संयुतानि च ॥ ६० ॥ सकान्तैर्धार्तराष्ट्रैश्च राजहंसैः सुरप्रियैः ॥ कादम्बैश्चक्रवाकैश्च सारसैः कुररैरपि ॥ ६१ ॥ विमलस्फटिकाभानि पाण्डुराष्टदलानि च ॥ कलहंसोपनीतानि सारिकाभिरुतानि च ॥ ६२ ॥

तीर्थ देखे ॥ ५९ ॥ नलिन पुण्डरीक शतपत्र सुगंधिवाले पदार्थ रक्त कुवलय नील वणक कुवलय कुमुदोंसे संयुक्त ॥ ६० ॥ कान्तिमान् हंस देवप्रिय राजहंस कादम्ब चक्रवाक सारस कुरर ॥ ६१ ॥ विमल स्फटिक मणिकी समान पाण्डुवर्णके अष्टदल कमल मनोहर शब्द करनेवाले तोते और सारका हंसादिके शब्दोंसे व्याप्त ॥ ६२ ॥

गंधवाली सुन्दर पुष्पमंजरीधारिणी वृक्षोंके अग्रभागमें अनेक प्रकारकी पुष्प धारण करनेवाली लता ॥ ६३ ॥ केतक अशोक सरल पुन्नाग तिलक अर्जुन आम नीप नागपुष्प कदम्ब बकुल धव ॥ ६४ ॥ प्रियंगु पाटलीवृक्ष शाल्मली हरिद्रक शाल ताल प्रियाल मनोहर चंपक ॥ ६५ ॥ तथा औरभी पुष्पोंवाले वृक्ष उस सभामें शोभित थे. विद्रुमके कृत्रिम वृक्ष दावाग्निकी समान कान्तिवाले॥ ६६ ॥ स्कंधवाले सुन्दर शाखासे बहुत तालकी बराबर

गन्धवत्यः शुभास्तत्र पुष्पमञ्जरिधारिणीः॥ दृष्टवान्पादपाग्रेषु नानापुष्पधरा लताः॥६३॥ केतकाशोकसरलाः पुन्नागतिलकार्जुनाः ॥ चूता नीपा नागपुष्पाः कदम्बबकुला धवाः ॥ ६४ ॥ प्रियङ्गुपाटलीवृक्षाः शाल्मलयः सहारिद्रकाः ॥ शालास्तालाः प्रियालाश्च चम्पकाश्च मनोरमाः ॥ ६५ ॥ तथा चान्ये व्यराजन्त सभायां पुष्पिता द्रुमाः ॥ वैद्रुमाश्च द्रुमानीका दावाग्निज्वलितप्रभाः ॥६६॥ स्कन्धवन्तः सुशाखाश्च बहुतालसमुच्छ्रयाः ॥ अञ्जनाशोकवर्णाभा भान्ति वंजुलका द्रुमाः॥६७॥ वरणा वत्सनाभाश्च पनसाश्चन्दनैः सह ॥ नीलाः सुमनसश्चैव पीताम्लाश्वत्थतिन्दुकाः ॥ ६८ ॥ प्राचीनामलका लोध्रा मल्लिका भद्रदारवः ॥ आम्रातकास्तथा जम्बूलकुचाः शैलवालुकाः ॥६९॥ सर्ज्जार्जुनाः कन्दुरवाः पतङ्गाः कुटजास्तथा ॥ रक्ताः कुरबकाश्चैव नीपाश्चागरुभिः सह ॥७०॥ कदम्बाश्चैव भव्याश्च दाडिमीबीजपूरकाः ॥ कालीयका दुकूलाश्च हिङ्गवस्तैलपर्णिकाः ॥ ७१ ॥ खर्जूरा नालिकेराश्च पूगवृक्षा हरीतकी ॥ मधूकाः सप्तपर्णाश्च बिल्वाः पारावतास्तथा ॥ ७२ ॥

ऊंचे अंजन और अशोककी समान वर्णवाले वंजुल वृक्ष शोभित होते हैं॥ ६७॥ वरण वत्सनाभ पनस चंदन नील सुमन पीत इमली अश्वत्थ तिंदुक॥ ६८॥ प्राचीन आमलक लोध्र मल्लिका भद्रदारु आम्रातक जम्बू लकुच शैलवालु ॥ ६९ ॥ सर्ज्ज अर्जुन कंदुवर पतंग कुटज रक्तकुरबक नीप अगरु ॥ ७० ॥ कदम्ब भव्य दाडिम बीजपूरक कालीयक दुकूल हिंगु तैलपर्णिक ॥ ७१ ॥ खजर नारिकेल सुपारीके वृक्ष हररै मधूक सप्तपर्ण बेल पारावत ॥ ७२ ॥

पनस तमाल अनेक गुल्मलताओंसे युक्त और अनेक प्रकारकी लता पत्र पुष्प फलवाली ॥ ७३ ॥ इससे आदि लेकर औरभी बहुतसे वनके वृक्ष अनेक प्रकारके पुष्प फलोंसे युक्त विराजित होते थे ॥ ७४ ॥ चकोर शतपत्र मतवाली कोकिलाओंसे युक्त सारिका फूले फले महावृक्ष झुक रहे हैं ॥ ७५ ॥ रक्त पीत लाल वर्णके पक्षी पेडोंपर बैठे हैं और प्रसन्न मन हो परस्पर एक दूसरेको देख रहे हैं ॥ ७६ ॥ इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे भविष्यपर्वणि भाषायां एकचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४१ ॥ वैशंपायन बोले; उस सभामें वह दैत्येन्द्र हिरण्यकश्यप चार सौ हाथके लम्बे चौडे

पनसाश्च तमालाश्च नानागुल्मलतावृताः ॥ लताश्च विविधाकाराः पत्रपुष्पफलोपगाः ॥ ७३ ॥ एते चान्ये च बहवस्तत्र काननजा द्रुमाः ॥ नानापुष्पफलोपेता व्यराजन्त समन्ततः ॥ ७४ ॥ चकोराः शतपत्राश्च मत्तकोकिलसारिकाः ॥ पुष्पितान्फलितांश्चैव संपतन्ति महाद्रुमान् ॥ ७५ ॥ रक्तपीतारुणास्तत्र पादपाग्रगता द्विजाः ॥ परस्परमवेक्षन्त प्रहृष्टा जीवजीवकाः ॥ ७६ ॥ इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे भविष्यपर्वणि एकचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४१ ॥ वैशम्पायन उवाच ॥ तस्यां सभायां दैत्येन्द्रो हिरण्यकशिपुः प्रभुः ॥ आसीन आसने दिव्ये नल्वमात्रे प्रमाणतः ॥ १ ॥ दिवाकरनिभे रम्ये दिव्यास्तरणसंभृते ॥ रराज सुचिरं राजन् ज्वलत्काञ्चनकुण्डलः ॥ २ ॥ तस्य दैत्यपतेर्मन्दं विरजस्कं समन्ततः ॥ दिव्यगन्धवहस्तत्र मारुतः सुसुखो ववौ ॥ ३ ॥ तत्र देवाः सगन्धर्वा गणैरप्सरसां वृताः ॥ दिव्यतालेन दिव्यानि जगुर्गीतानि गायनाः ॥ ४ ॥ विश्वाची सहजन्या च प्रम्लोचेत्यभिविश्रुता ॥ दिव्या च सौरभेया च समीची पुञ्जिकस्थला ॥ ५ ॥ मिश्रकेशी च रम्भा च चित्रसेना शुचिस्मिता ॥ चारुनेत्रा घृताची च मेनका चोर्वशी तथा ॥ ६ ॥

सिंहासनमें स्थित था ॥ १ ॥ सूर्यकी समान कान्तिमान् दिव्य बिछौने उसपर बिछ रहे थे. उसपर प्रकाशमान कानोंमें कुंडल पहरे ॥ २ ॥ उस दैत्यपतिके मंदमंद रजरहित दिव्य गंधवाली पवन सन्मुख बहने लगी ॥ ३ ॥ वहां देवता गंधर्व अप्सराओंके गणोंसे युक्त दिव्य तालस्वरसे अनेक प्रकारके गीत गाने लगे ॥ ४ ॥ विश्वाची सहजनी प्रम्लोचा दिव्या सौरभेया समीची पुंजिकस्थला ॥ ५ ॥ मिश्रकेशी रंभा चित्रसेना शुचिस्मिता

चारुनेत्रा घृताची मेनका उर्वशी॥६॥इससे आदि ले औरभी सहस्रों अप्सरा नृत्यगीतमें चतुर राजा हिरण्यकश्यपके समीप स्थित होती हैं॥७॥और वहा हिरण्यकश्यप विचित्र वस्त्र भूषण धारण किये सहस्र स्त्रियोंसे परिवृत ज्वलितकुंडल स्थित हुए ॥ ८ ॥ वहां बैठे हुए महाबाहु प्रभु हिरण्यकश्यपको बडे बडे बली दानव उपासना करते थे ॥ ९ ॥ बलि वैरोचन नरक पृथ्वीजय प्रह्लाद विप्रचित्ति महाबली गविष्ठ॥ १० ॥अहंता क्रोधहंता सुमना सुमति स्वर घटोदर महापार्श्व क्रथन पिठर ॥ ११ ॥ विश्वरूप रूप विरूप महाद्युति रावण वाली मेघवास महारव॥ १२॥ कटाभ विकटाभ संह्लाद इन्द्रतापन दैत्यदा-

एताः सहस्रशश्चान्या नृत्यगीतविशारदाः ॥ उपतिष्ठन्ति राजानं हिरण्यकशिपुं तदा ॥७॥ हिरण्यकशिपुस्तत्र विचित्राभरणाम्बरः॥ स्त्रीसहस्रैः परिवृतस्तस्थौ ज्वलितकुण्डलः ॥८॥ तत्रासीनं महाबाहुं हिरण्यकशिपुं प्रभुम् ॥ उपासन्ति दितेः पुत्राः सर्वे लब्धवराः पुरा ॥ ९ ॥ बलिर्वैरोचनस्तत्र नरकः पृथिवीजयः ॥ प्रह्लादो विप्रचित्तिश्च गविष्ठश्च महासुरः॥ १० ॥ अहन्ता क्रोधहंता च सुमनाः सुमतिः स्वरः ॥ घटोदरो महापार्श्वः क्रथनः पिठरस्तथा ॥ ११ ॥ विश्वरूपश्च रूपश्च विरूपश्च महाद्युतिः ॥ दशग्रीवश्च वाली च मेघवासा महारवः ॥ १२ ॥ कटाभो विकटाभश्च संह्लादश्चेन्द्रतापनः ॥ दैत्यदानवसंघाश्च सर्वे ज्वलितकुण्डलाः ॥ १३ ॥ स्रग्विणो वाग्मिनः सर्वे सर्वे सुचरितव्रताः ॥ सर्वे लब्धवराः शूराः सर्वे विगतमृत्यवः ॥ १४ ॥ एते चान्ये च बहवो हिरण्यकशिपुं प्रभुम् ॥ उपासन्ते महात्मानं सर्वे दिव्य परिच्छदाः ॥ १५ ॥ विमानैर्विविधैरग्र्यैर्भ्राजमानैरिवार्चिभिः ॥ स्रग्विणो भूषणधरा यान्ति चायान्ति हेलया ॥ १६ ॥ विचित्राभरणोपेता विचित्रवसनास्तथा ॥ विचित्रशस्त्रकवचा विचित्रध्वजवाहनाः ॥ १७ ॥

नवोंके समूह सम्पूर्ण ज्वलित कुंडल पहरे ॥ १३ ॥ सब मालाधारी बडे बोलनेवाले सबही सचरित्र सबही वर पाये और सबही मृत्युके भयसे रहित ॥ १४ ॥इनके सिवाय औरभी बहुतसे प्रभु हिरण्यकश्यप महात्माको दिव्य वस्त्र पहरे उपासना करते थे॥ १५॥अनेक विमान कान्तिमान् विराज-मान थे. वे माला भूषणधारी आते और जाते थे ॥ १६ ॥ विचित्र आभरण और विचित्र वस्त्र पहरे विचित्र शस्त्र कवच और विचित्र ध्वज और

वाहनवाले ॥ १७ ॥ महेन्द्रधनुषकी समान विचित्र अंगद धारण किये भूषित अंग दानव दैत्य नित्य हिरण्यकश्यपकी उपासना करते थे ॥ १८ ॥ उस दिव्य सभामें पर्वतकी समान असुर सुवर्णके मुकुट पहरे सूर्यकी समान कान्तिमान् ॥ १९ ॥ सुवर्णमणियोंकी बनी विचित्र वेदिकामें जहां सहस्रों रत्न जटित थे. हाथीदान्तके झरोखे लगे हुए उस सभाको मृगेन्द्रने देखा ॥ २० ॥ कि सोनेके विमल हारसे भूषित अंग सूर्यकी किरणोंकी समान प्रकाशित सहस्रों असुरोंसे निषेवित मृगराजने सभामें हिरण्यकश्यपको देखा ॥ २१ ॥ इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे भविष्यपर्वणि भाषायां नारसिंहे द्विचत्वा-

महेन्द्रचापसंकाशैर्विचित्रैरङ्गदैर्वरैः ॥ भूषिताङ्गा दितेः पुत्रास्तमुपासन्ति नित्यशः ॥ १८ ॥ तस्यां सभायां दिव्यायामसुराः पर्वतोपमाः ॥ हिरण्यमुकुटाः सर्वे दिवाकरसमप्रभाः ॥ १९ ॥ कनकमणिविचित्रवेदिकायामुपाहितरत्नसहस्रवीथिकायाम् ॥ स ददर्श मृगाधिपः सभायां सुरुचिरदन्तगवाक्षसंवृतायाम् ॥ २० ॥ कनकविमलहारभूषिताङ्गं दितितनयं स मृगाधिपो ददर्श ॥ दिवसकरकरप्रभं ज्वलन्तमसुरसहस्रगणैर्निषेव्यमाणम् ॥ २१ ॥ इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे भविष्यपर्वणि नारसिंहे द्विचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४२ ॥ वैशम्पायन उवाच ॥ ततो दृष्ट्वा महाबाहुं कालचक्रमिवागतम् ॥ नारसिंहवपुच्छन्नं भस्मच्छन्नमिवानलम् ॥ १ ॥ विकुञ्चितसटं तस्य नारसिंहस्य भारत ॥ रूपौदार्यं बभौ तत्र सहस्रशशिसन्निभम् ॥ २ ॥ अहो रूपमिदं चित्रं शंखकुन्देन्दुसन्निभम् ॥ अब्रुवन् दानवाः सर्वे हिरण्यकशिपुश्च सः ॥ ३ ॥ एवं हि ब्रुवतां तेषां निर्दग्धानां महात्मनाम् ॥ नारसिंहेन चक्षुर्भ्यां चोदिताः कालधर्मणा ॥ ४ ॥ हिरण्यकशिपोः पुत्रः प्रह्लादो नाम वीर्यवान् ॥ दिव्येन चक्षुषा सिंहमपश्यद्देवमागतम् ॥ ५ ॥

रिंशोऽध्यायः ॥ ४२ ॥ वैशंपायन बोले; तब उन कालचक्रकी समान आते हुए महाभुजावाले राखसे ढके अग्निकी समान नृसिंहशरीरधारीको देखा ॥ १ ॥ हे राजन् ! उनकी केसरके बाल टेढे थे और सहस्र चन्द्रमाकी समान उनके रूपकी उदारता थी ॥ २ ॥ आगे यह कुन्द और इन्दुकी समान बडा विचित्ररूप है ऐसे वे सब दानव हिरण्यकश्यपसे कहने लगे ॥ ३ ॥ इस प्रकार कहते हुए उन महात्माओंको कालधर्मसे प्रेरित कर नृसिंहजी अपनी दृष्टिसे भस्म करने लगे ॥ ४ ॥ हिरण्यकश्यपका वीर्यवान् प्रह्लाद पुत्र दिव्य दृष्टिसे देखकर नृसिंहजीको देव मानता हुआ ॥ ५ ॥

उनका सुवर्णपर्वतके समान अपूर्व शरीर देख सब दानव और हिरण्यकश्यपभी विस्मित हो गया ॥ ६ ॥ प्रह्लाद बोले; हे राजराज महाबाहो ! हे दैत्योंमें प्रथम ! इस प्रकारका नारसिंह शरीर न हमने देखा न सुना ॥ ७ ॥ क्या यह दिव्यरूप अव्यक्तसे प्रगट है हमारे मनमें यह बात आती है कि यह घोर दैत्योंके नाशक है ॥ ८ ॥ देवता इनके शरीरमें स्थित हैं सागर नदी हिमालय पारियात्र तथा और जो दूसरे पर्वत हैं ॥ ९ ॥ नक्षत्रोंके सहित चन्द्रमा आदित्य अश्विनीकुमार कुबेर वरुण यम शचीपति इन्द्र ॥ १० ॥ मरुत देव गन्धर्व तपोधन मुनि नाग यक्ष पिशाच भीमपराक्रमी राक्षस ॥ ११ ॥

तं दृष्ट्वा रुक्मशैलाभमपूर्वां तनुमास्थितम् ॥ विस्मिता दानवाः सर्वे हिरण्यकशिपुश्च सः ॥ ६ ॥ प्रह्लाद उवाच ॥ महाराज महाबाहो दैत्यानामादिसंभव ॥ न श्रुतं नैव दृष्टं च नारसिंहमिदं वपुः ॥ ७ ॥ अव्यक्तप्रभवं दिव्यं किमिदं रूपमद्भुतम् ॥ दैत्यान्तकरणं घोरं शंसतीव मनांसि नः ॥ ८ ॥ अस्य देवाः शरीरस्थाः सागराः सरितस्तथा ॥ हिमवान्पारियात्रश्च ये चान्ये कुलपर्वताः ॥ ९ ॥ चन्द्रमाः सह नक्षत्रैरादित्याश्चाश्विनौ तथा ॥ धनदो वरुणश्चैव यमः शक्रः शचीपतिः ॥ १० ॥ मरुतो देवगन्धर्वा मुनयश्च तपोधनाः ॥ नागा यक्षाः पिशाचाश्च राक्षसा भीमविक्रमाः ॥ ११ ॥ ब्रह्मदेवः पशुपतिर्ललाटस्था विभान्ति वै ॥ स्थावराणि च भूतानि जङ्गमानि तथैव च ॥ १२ ॥ भवांश्च सहितोऽस्माभिः सर्वैर्दैत्यगणैर्वृतः ॥ विमानशतसंकीर्णा तथाभ्यन्तरजा सभा ॥ १३ ॥ सर्वं त्रिभुवनं राजन् लोकधर्मश्च शाश्वतः ॥ दृश्यते नारसिंहेऽस्मिन्यथेन्दौ विमलं जगत् ॥ १४ ॥ प्रजापतिश्चात्र मनुर्महात्मा ग्रहाश्च योगाश्च मही नभश्च ॥ उत्पातकालश्च धृतिः स्मृतिश्च रजश्च सत्त्वं च तपो दमश्च ॥ १५ ॥ सनत्कुमारश्च महानुभावो विश्वे च देवाप्सरसश्च सर्वाः ॥ क्रोधश्च कामश्च तथैव हर्षो दर्पश्च मोहः पितरश्च सर्वे ॥ १६ ॥

ब्रह्मदेव पशुपति इनके ललाटमें लक्षित होते हैं तथा स्थावर जंगम प्राणी ॥ १२ ॥ आपभी सब दैत्यगणोंके सहित सैकडों विमानोंसे संयुक्त यह सभा ॥ १३ ॥ हे राजन् ! सम्पूर्ण त्रिलोकी लोकके शाश्वत धर्म इन नारसिंहमें दीखते हैं चन्द्रमामें जगत्की छाया दीखती है ॥ १४ ॥ इनमें प्रजापति महात्मा मनु ग्रह योग पृथ्वी आकाश उत्पात काल धृति स्मृति रज सत्य तप दम ॥ १५ ॥ महानुभाव सनत्कुमार विश्वेदेवा अप्सरा क्रोध

काम हर्ष दर्प मोह पितर इनमें दीखते हैं ॥ १६ ॥ यह वचन प्रह्लादने हिरण्यकशिपुसे कहे और वह दैत्यपुत्र कुछ कालतक नीचेको मुख किये ध्यान करता रहा ॥ १७ ॥ इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे भविष्यपर्वणि भाषायां नारसिंहे त्रिचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४३ ॥ वैशंपायन बोले, हिरण्यकशिपु इस प्रकार प्रह्लादके वचन सुन वह गणाधिप सब दानवोंसे कहने लगा ॥ १ ॥ इस अपूर्वशरीरधारी मृगेन्द्रको शीघ्र पकड लो और जो कोई सन्देह हो तो इस वनमें फिरनेवालेको मार डालो ॥ २ ॥ यह सुन वह सब दानव उस भीमपराक्रमी मृगेन्द्रके ऊपर बडे वेगसे अस्त्रोंका प्रहार

इत्येवमुक्त्वा स च दैत्यराजं हिरण्यनामानमविस्मयेन ॥ दध्यौ च दैत्येश्वरपुत्र उग्रं महामतिः किंचिदधोमुखः प्राक् ॥ १७ ॥ इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे भविष्यपर्वणि नारसिंहे त्रिचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४३ ॥ वैशम्पायन उवाच ॥ प्रह्लादस्य च तच्छ्रुत्वा हिरण्यकशिपुर्वचः ॥ उवाच दानवान्सर्वान्सगणांश्च गणाधिपः ॥१॥ मृगेन्द्रो गृह्यतां शीघ्रमपूर्वां तनुमास्थितः ॥ यदि वा संशयः कश्चिद्वध्यतां वनगोचरः॥ २ ॥ तच्छ्रुत्वा दानवाः सर्वे मृगेन्द्रं भीमविक्रमम् ॥ परिक्षिपन्तो मुदितास्त्रासयामासुरोजसा ॥३॥ सिंहनादं नदित्वा तु पुनः सिंहो महाबलः ॥ बभञ्ज तां सभां रम्यां व्यादितास्य इवान्तकः ॥ ४ ॥ सभायां भज्यमानायां हिरण्यकशिपुः स्वयम् ॥ चिक्षेपास्त्राणि सिंहस्य रोषव्याकुललोचनः ॥ ५ ॥ सर्वास्त्राणामथ श्रेष्ठं दण्डमस्त्रं सुभैरवम् ॥ कालचक्रं तथात्युग्रं विष्णुचक्रं तथैव च ॥ ६ ॥ धर्मचक्रं महच्चक्रमजितं नाम नामतः ॥ चक्रमैन्द्रं तथा घोरमृषिचक्रं तथैव च ॥ ७ ॥ पैतामहं तथा चक्रं त्रैलोक्यमहितस्वनम् ॥ विचित्रामशनीं चैव शुष्कार्द्रं चाशनिद्वयम् ॥ ८ ॥

करने लगे ॥ ३ ॥ तब वह महाबली सिंह सिंहनाद करके मुख फैलाये कालकी समान उस सभाको तोडते हुए ॥ ४ ॥ उस सभाके टूटनेसे स्वयं हिरण्यकश्यप क्रोधसे लालनेत्र कर सिंहके ऊपर अस्त्र प्रहार करने लगा ॥ ५ ॥ तब सम्पूर्ण अस्त्रोंमें श्रेष्ठ भैरवदण्ड कालचक्र विष्णुचक्र ॥ ६ ॥ धर्मचक्र महच्चक्र अजितचक्र घोर इन्द्रचक्र तथा ऋषिचक्र ॥ ७ ॥ पितामहचक्र त्रिलोकीमें महाशब्द करानेवाले विचित्र अशनि शुष्क और आर्द्र

भशनी ॥ ८ ॥ रौद्र उग्र शूल कंकाल मुशल ब्रह्मशिर अस्त्र ब्रह्मास्त्र ॥ ९ ॥ ऐषीकास्त्र इन्द्रास्त्र आग्नेयास्त्र शिशिरास्त्र वायव्य कपाल और किंक-
रास्त्र ॥ १० ॥ अपूर्व शक्ति और अस्त्र हयशिरास्त्र सौम्यास्त्र ॥ ११ ॥ पिशाचास्त्र अद्भुत सर्पास्त्र मोहन शोषण सन्तापन और विलापन अस्त्र ॥ १२ ॥
जृंभण प्रापण दारुण त्वाष्ट्र अस्त्र अक्षोभ्य कालमुद्गर दूसरोंकी सेनाको क्षुभित करनेवाला ॥ १३ ॥ संवर्तन मोहन मायाधर गंधर्वास्त्र असिरत्न नंदन
अस्त्र ॥ १४ ॥ प्रस्वापन प्रमथन वारुणास्त्र अप्रतिहत गतिवाला पाशुपतास्त्र ॥ १५ ॥ इत्यादि अनेक अस्त्र हिरण्यकशिपुने अग्निमें आहुतिकी समान

रौद्रं तदुग्रं शूलं च कङ्कालं मुशलं तथा ॥ अस्त्रं ब्रह्मशिरश्चैव ब्राह्ममस्त्रं तथैव च ॥ ९ ॥ ऐषीकमस्त्रमैन्द्रं च आग्नेयं शैशिरं तथा ॥
वायव्यं मथनं नाम कापालमथ किंकरम् ॥ १० ॥ तथाचाप्रतिमां शक्तिं क्रौञ्चमस्त्रं तथैव च ॥ अस्त्रं हयशिरश्चैव सौम्यमस्त्रं तथैव
च ॥ ११ ॥ पैशाचमस्त्रममितं सार्पमस्त्रं तथाद्भुतम् ॥ मोहनं शोषणं चैव संतापनविलापने ॥ १२ ॥ जृम्भणं प्रापणं चैव त्वाष्ट्रं
चैव सुदारुणम् ॥ कालमुद्गरमक्षोभ्यं क्षोभणं तु महाबलम् ॥ १३ ॥ संवर्त्तनं मोहनं च तथा मायाधरं परम् ॥ गान्धर्वमस्त्रं दयि-
तमसिरत्नं च नन्दकम् ॥ १४ ॥ प्रस्वापनं प्रमथनं वारुणं चास्त्रमुत्तमम् ॥ अस्त्रं पाशुपतं चैव यस्याप्रतिहता गतिः ॥ १५ ॥
एतान्यस्त्राणि सर्वाणि हिरण्यकशिपुस्तदा ॥ चिक्षेप नरसिंहस्य दीप्तस्याग्नेर्यथाहुतिः ॥ १६ ॥ अस्त्रैः प्रज्वलितैः सिंहमावृणोदसु-
राधिपः ॥ विवस्वान्धर्मसमये हिमवन्तमिवांशुभिः ॥ १७ ॥ सह्यमर्षानिलोद्धूतो दैत्यानां सैन्यसागरः ॥ क्षणेन प्लावयन्सिंहं मैना-
कमिव सागरः ॥ १८ ॥ प्रासैः पाशैस्तथा शूलैर्गदाभिर्मुशलैस्तथा ॥ वज्रैरशनिकल्पैश्च शिलाभिश्च महाद्रुमैः ॥ १९ ॥

नृसिंहजीके ऊपर छोडे ॥ १६ ॥ असुरराजने इन अस्त्रोंसे नृहसिंहजीको आच्छादन कर दिया जैसे गरमीमें सूर्य अपनी किरणोंसे हिमवान्‌को आच्छा-
दन करते हैं ॥ १७ ॥ वह दैत्योंकी सागररूप सेना उनके क्रोधरूप पवनसे क्षणमात्रमें नृसिंहको ढकने लगी,. जैसा सागरने मैनाकको आच्छादन
किया था ॥ १८ ॥ प्रास पाश शूल गदा मुशल अशनि तुल्य वज्र शिला वृक्ष ॥ १९ ॥

मुद्गर कूट पाश शूल उलूखल पर्वत दीप्त शतघ्नी दारुण दंडोंसे ॥ २० ॥ सब ओरसे उन्हें घेर प्रहार करनेलगे. उन महात्माका उससे थोडाभी अपकार न हुआ ॥ २१ ॥ वे दानव हाथमें पाश लिये महेन्द्रके वज्र और अशनिकी तुल्य वेगवाले सब ओरसे बाहुओंमें शस्त्र उठाये तीन शिरवाले सर्पकी समान स्थित हुए ॥ २२ ॥ सुवर्णकी मालाओंसे भूषित शरीर अनेक गदा और शस्त्रोंसे शरीर सज्जित किये मोतियोंकी मालासे भूषित शरीर विशालपंखवाले हंसोंकी समान शोभित होते थे ॥ २३ ॥ वायुकी समान पराक्रमी उनके बाजूबंद माला वलय (कंकन) खडुए उत्तम शरीरमें महाशोभाको प्राप्त होते थे. जो प्रभातकालके

मुद्गरैः कूटपाशैश्च शूलोलूखलपर्वतैः ॥ शतघ्नीभिश्च दीप्ताभिर्दण्डैरपि सुदारुणैः ॥ २० ॥ परिवार्य समन्तात्तु निघ्नन्नस्त्रैर्हरिं तदा ॥
स्वल्पमप्यस्य न क्षुण्णमूर्जितस्य महात्मनः ॥ २१ ॥ ते दानवाः पाशगृहीतहस्ता महेन्द्रवज्राशनितुल्यवेगाः ॥ समन्ततोऽभ्युद्यत-
बाहुशस्त्राः स्थितास्त्रिशीर्षा इव पन्नगेन्द्राः ॥ २२ ॥ सुवर्णमालाकुलभूषिताङ्गा नानाङ्गदाभोगपिनद्धगात्राः ॥ मुक्तावलीदामविभूषि-
ताङ्गा हंसा इवाभान्ति विशालपक्षाः ॥ २३ ॥ तेषां तु वायुप्रतिमौजसां वै केयूरमालावलयोत्कटानि ॥ तान्युत्तमाङ्गान्यभितो
विभान्ति प्रभातसूर्यांशुसमप्रभाणि ॥ २४ ॥ तैः प्रक्षिपद्भिर्ज्वलतानलोपमैर्महास्त्रपूगैः स समावृतो बभौ ॥ गिरिर्यथा संततवर्षिभिर्घनैः
कृतान्धकारो द्रुतकन्दरद्रुमः ॥ २५ ॥ तैर्हन्यमानोऽपि महास्त्रजालैः सर्वैस्तदा दैत्यगणैः समेतैः ॥ नाकम्पताजौ भगवान् प्रतापवान्
स्थितः प्रकृत्या हिमवानिवाचलः ॥ २६ ॥ संतापितास्ते नरसिंहरूपिणा दितेः सुताः पावकदीप्ततेजसा ॥ भयाद्विचेलुः पवनोद्धता
यथा महोर्मयः सागरवारिसंभवाः ॥ २७ ॥

सूर्यकी समान शोभित होते थे ॥ २४ ॥ वह सूर्यकी समान बडे बडे अस्त्रोंको जो अग्निकी तुल्य प्रभाववाले थे प्रहार करते शोभित हुए जिस प्रकार निरन्तर वर्षावाले घनोंसे अंधकारको प्राप्त हो कंदराके वृक्ष शोभित होते हैं ॥ २५ ॥ उन सम्पूर्ण दैत्योंके मिलकर एकसाथ बाणप्रहार करने पर भगवान् प्रतापवान् संग्राममें कंपित न हुए और हिमालयकी समान स्वभावमें स्थित रहे ॥ २६ ॥ जब अग्निकी समान नृसिंहजीने दितिके पुत्रोंको तापित किया

तब वह भयसे चलायमान हुए. जैसे पवनसे प्रेरणा की सागरकी तरंगें चलायमान होती हैं ॥ २७ ॥ वह बडे वेगसे सौ धनुषोंद्वारा युगान्तकालकी समान बाणोंको एकसाथ नृसिंहके ऊपर छोडने लगे क्रोधसे असुरोंके अंग दीप्तिमान् हो गये ॥ २८ ॥ इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे भविष्यपर्वणि भाषायां नारसिंहे चतुश्चत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४४ ॥ वैशंपायन बोले; खर खरमुख मकर सर्पमुख ईहामृग वराहमुख ॥ १ ॥ बालसूर्यकी समान मुख-वाले धूमकेतुकी समान मुखवाले चन्द्र अर्द्धचन्द्र प्रदीप्ताग्निमुख ॥ २ ॥ हंस कुक्कुटमुख मुख फैलाये भयावने पंचमुख जीभ चाटते हुए काक और

शतैर्धनुर्भिः सुमहातिवेगा युगान्तकालप्रतिमाञ्छरौघान् ॥ एकायनस्था मुमुचुर्नृसिंहे महासुराः क्रोधविदीपिताङ्गाः ॥ २८ ॥ इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे भविष्यपर्वणि नारसिंहे चतुश्चत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४४ ॥ वैशम्पायन उवाच ॥ खराः खरमुखाश्चैव मकराशीविषाननाः॥ ईहामृगमुखाश्चान्ये वराहसदृशाननाः॥ १ ॥ बालसूर्यमुखाश्चैव धूमकेतुमुखास्तथा ॥ चन्द्रार्द्धचन्द्रवक्त्राश्च प्रदीप्ताग्निमुखास्तथा ॥ २ ॥ हंसकुक्कुटवक्त्राश्च व्यादितास्या भयावहाः ॥ पञ्चास्या लेलिहानाश्च काकगृध्रमुखास्तथा ॥ ३ ॥ विद्युज्जिह्वास्त्रिशीर्षाश्च तथोल्कासन्निभाननाः॥ महाग्राहनिभाश्चान्ये दानवा बलदर्पिताः ॥ ४ ॥ कैलासवपुषस्तस्य शरीरे शरवृष्टयः ॥ अवध्यस्य मृगेन्द्रस्य न व्यथां चक्रुराहवे ॥ ५ ॥ एवं भूयोऽपरान्घोरानसृजन्दानवाः शरान् ॥ मृगेन्द्रस्योरसि क्रुद्धा निःश्वसन्त इवोरगाः ॥ ६ ॥ ते दानवशरा घोरा मृगेन्द्राय समीरिताः॥ विलयं जग्मुराकाशे खद्योता इव पर्वते ॥ ७॥ ततश्चक्राणि दिव्यानि दैत्याः क्रोधसमन्विताः॥ मृगेन्द्रायाक्षिपन्त्याशु प्रज्वलन्तीव सर्वशः॥ ८॥ तेरासीद्गगनं चक्रैः संपतद्भिः समावृतम् ॥ युगान्ते संप्रकाशद्भिश्चन्द्रसूर्यग्रहैरिव ॥ ९॥

गृध्रोंके मुखवाले ॥ ३ ॥ विद्युज्जिह्व त्रिशीर्ष उल्कामुख महाग्राहकी समान बलदर्पित दानव ॥ ४ ॥ कैलासकी समान शरीरवाले नृसिंहजीके शरीरमें बाण वर्षा करने लगे, परन्तु वह अवध्य मृगेन्द्रके शरीरमें व्यथा न कर सके ॥ ५ ॥ इस प्रकार वह दानव शरवर्षा करते हुए मृगेन्द्रके हृदयमें क्रोधकर सर्पकी समान बाणप्रहार करने लगे ॥ ६ ॥ वे नृसिंहजीके ऊपर छोडे हुए दानवोंके बाण आकाशमें ऐसे लीन हो गये जैसे पर्वतमें खद्योत ॥ ७ ॥ तब वे दैत्य क्रोधकर दिव्यचक्र प्रज्वलित होते हुए नृसिंहजीके ऊपर प्रहार करने लगे ॥ ८ ॥ उनके पतनसे चारों ओर आकाश व्याप्त हो गया, जैसे

युगान्तमें चन्द्रमा और सूर्य प्रकाश करते हैं ॥ ९ ॥ वह चक्र उनके मुखमें ऐसे प्रवेश करने लगे, जैसे मेघकी गुहामें अथवा जैसे चन्द्रसूर्य मेघोंमें प्रवेश कर जाते हैं ॥ १० ॥ महात्मा मृगेन्द्रने अग्निकी समान प्रदीप्त वे सब चक्र निगल लिये ॥ ११ ॥ हिरण्यकशिपुने फिर एक महावीर अग्निकी समान प्रज्वलित शक्ति उनके ऊपर छोडी ॥ १२ ॥ मृगेन्द्रने उस शक्तिको आता देख अपने महाहुंकारसेही उसको नष्ट कर डाला ॥ १३ ॥ मृगेन्द्रसे तोडी हुई वह शक्ति पृथ्वीमें शोभित होने लगी, जैसे विस्फुलिंगों सहित जलती हुई उल्का पृथ्वीमें गिरती है ॥ १४ ॥ वह नाराचोंकी पांकि उन मृग-

तानि चक्राणि वदनं प्रविशन्ति विभान्ति वै ॥ मेघोदरदरीं घोरां चन्द्रसूर्यग्रहा इव ॥ १० ॥ तानि चक्राणि सर्वाणि मृगेन्द्रेण महात्मना ॥ निगीर्णानि प्रदीप्तानि पावकार्चिःसमानि वै ॥ ११ ॥ हिरण्यकशिपुर्दैत्यो भूयः प्रासृजदूर्जिताम् ॥ शक्तिं प्रज्वलितां घोरां हुताशनसमप्रभाम् ॥ १२ ॥ तामापतन्तीं संप्रेक्ष्य मृगेन्द्रः शक्तिमुत्तमाम् ॥ हुंकारेणैव रौद्रेण बभञ्ज भगवांस्तदा ॥ १३ ॥ रराज भग्ना सा शक्तिर्मृगेन्द्रेण महीतले ॥ सविस्फुलिङ्गा ज्वलिता महोल्केव नभश्च्युता ॥ १४ ॥ नाराचपङ्क्तिः सिंहस्य सृष्टा रेजे त्विदूरतः ॥ नीलोत्पलपलाशानां मालेवोज्ज्वलदर्शना ॥ १५ ॥ गर्जित्वा तु यथाकामं विक्रम्य च यथासुखम् ॥ तत्सैन्यमुत्सारितवान् तृणाग्राणीव मारुतः ॥ १६ ॥ ततोऽश्मवर्षं दैत्येन्द्रा व्यसृजन्त नभोगताः ॥ नगमात्रैः शिलाखण्डैर्गिरिकूटैर्महाप्रभैः ॥ १७ ॥ तदश्मवर्षं सिंहस्य गात्रे निपतितं महत् ॥ दिशो दश प्रकीर्णं हि खद्योतप्रकरो यथा ॥ १८ ॥ तदश्मौघैर्दितिसुतास्तदा सिंहमरिंदम ॥ प्रच्छादयन्यथा मेघो धाराभिरिव पर्वतम् ॥ १९ ॥ न च तं चालयामासुर्दैत्यौघा देवमास्थितम् ॥ भीमवेगा बलश्रेष्ठं समुद्रा इव पर्वतम् ॥ २० ॥

न्द्रसे दूरही शोभित हुई, जैसे नीले कमलोंकी माला शोभित होती है ॥ १५ ॥ यथायोग्य गर्जना और अपना विक्रम कर नृसिंहजीने ऐसे उस सेनाको नष्ट कर दिया जैसे पवन तृणको नष्ट कर देती है ॥ १६ ॥ तब दैत्य आकाशसे पत्थरोंकी वर्षा करने लगे वह पर्वतोंकी समान शिलाखण्ड महाकान्तिमान् पडने लगे ॥ १७ ॥ वह पत्थरोंकी वर्षा नृसिंहजीके शरीरपर होने लगी. दशों दिशा खद्योतकी समान उससे प्रकाशित होने लगीं ॥ १८ ॥ तब दितिकुमार महापर्वतोंसे सिंहको ऐसे आच्छादन करने लगे, जैसे मेघ धाराओंसे पर्वतोंको आच्छादन करते हैं ॥ १९ ॥ उन देवको दैत्यसमूह

चलायमान करनेको समर्थ न हुए, जैसे समुद्र पर्वतको चलायमान नहीं कर सकते हैं ॥ २० ॥ तब पर्वतोंकी वर्षा होनेमें निरन्तर जलकी वर्षाभी होने लगी. अक्षमात्र धारा चारों ओरसे पतित होने लगी ॥ २१ ॥ आकाशसे बडी तीक्ष्ण जलधारा सहस्रों गिरने लगीं उनसें दिशा विदिशा आकाश सब ओरसे व्याप्त हो गया ॥ २२ ॥ धाराके संपात और वायुके स्फूर्जनसे तथा वर्षाके वेगसे कुछभी विदित नहीं होता था ॥ २३ ॥ वह आकाशसे पतित हुई धारा पृथ्वीमें पडती थीं पृथ्वीमें गिरकर उनको स्पर्श नहीं करती थीं ॥ २४ ॥ बाहरसेही जल वर्षता था मेघके ऊपरसे नहीं तब मायासे वह मृगे-

ततोऽश्मवर्षे निहते जलवर्षमनन्तरम् ॥ धाराभिरक्षमात्राभिः प्रादुरासीत्समन्ततः ॥ २१ ॥ नभसः प्रच्युता धारास्तिग्मवेगाः सहस्रशः ॥ आवृण्वन्त्सर्वतो व्योम दिशश्चोपदिशस्तथा ॥२२॥ धाराणां सन्निपातेन वायोर्विस्फूर्जितेन च ॥ वर्द्धता चैव वर्षेण न प्राज्ञायत किंचन ॥ २३ ॥ धारा दिवि च संसक्ता वसुधायां च सर्वशः ॥ न स्पृशन्ति स्म तं तत्र निपतन्त्योऽनिशं भुवि ॥ २४ ॥ बाह्यतो ववृषे वर्षं नोपरिष्टात्तु तोयदः ॥ मृगेन्द्रप्रतिरूपस्य स्थितस्य युधि मायया ॥२५॥ हतेऽश्मवर्षे तुमुले जलवर्षे च शोषिते ॥ ससृजुर्दानवा मायामग्निं वायुं च सर्वशः ॥ २६ ॥ नभसः प्रच्युतश्चैव तिग्मवेगः समन्ततः ॥ ज्वालामाली महारौद्रो दीप्ततेजाः समन्ततः ॥ २७ ॥ स सृष्टः पावकस्तेन दैत्येन्द्रेण महात्मना ॥ न शशाक महातेजा दग्धुमप्रतिमौजसम् ॥ २८ ॥ तमिन्द्रस्तोयदैः सार्द्धं सहस्राक्षोऽमितद्युतिः ॥ महता तोयवर्षेण शमयामास पावकम् ॥ २९ ॥ तस्यां प्रतिहतायां तु मायायां युधि दानवाः ॥ ससृजुर्घोरसंकाशं तमस्तीव्रं समन्ततः ॥३०॥ तमसा संवृते लोके दैत्येष्वात्तायुधेषु वै ॥ स्वतेजसा परिवृतो दिवाकर इवाबभौ ॥ ३१ ॥

न्द्रसे युद्ध करनेको स्थित हुआ ॥ २५ ॥ जब पत्थर और जलवर्षा शान्त हो गई तब दानवोंने मायासे अग्नि और वायुकी रचना की ॥ २६ ॥ तब चारों ओर आकाशसे तीक्ष्णतेजसे युक्त ज्वालामालासे युक्त महारौद्र अग्नि पतित होने लगी ॥ २७ ॥ जब महात्मा दैत्येन्द्रने अग्निकी रचना की तथापि वह अग्नि उन महातेजस्वीको जलानेको समर्थ नहीं हुआ ॥ २८ ॥ उसको सहस्राक्ष महाकान्तिमान्ने बडी भारी जलवर्षासे शान्त कर दिया ॥ २९ ॥ दानव उस मायाके नष्ट होनेसे महाघोर अंधकारकी रचना करते हुए ॥ ३० ॥ जब अंधकार व्याप्त कर दैत्योंने अस्त्र उठाये तब

वह नृसिंह अपने तेजसे व्याप्त हो सूर्यकी समान शोभित हुए ॥ ३१ ॥ दानव रणमें इनका त्रिशिखा भृकुटी देखने लगे जैसे ललाटरूपी त्रिकूटमें त्रिप-
थगामिनी गंगा स्थित हो ॥ ३२ ॥ इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे भविष्यपर्वणि भाषायां नारसिंहे पंचचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४५ ॥ वैशंपायन
बोले; जब सम्पूर्ण माया नष्ट हो गई तब दैत्य व्याकुल हो हिरण्यकशिपुकी शरणमें गये ॥ १ ॥ तब क्रोधसे जलते और तेजसे दग्ध करते हुए हिर-
ण्यकशिपु दैत्यने क्रोधसे पृथ्वीको चलायमान कर दिया ॥ २ ॥ उस समय जलके आकर सागर चलायमान हो गये और वनके कानन द्रुम सब चला-

त्रिशिखां भ्रुकुटीं चास्य ददृशुर्दानवा रणे ॥ ललाटस्थां त्रिकूटस्थां गङ्गां त्रिपथगामिव ॥ ३२ ॥ इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे
भविष्यपर्वणि नारसिंहे पञ्चचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४५ ॥ वैशम्पायन उवाच ॥ ततः सर्वासु मायासु हतासु दितिनन्दनाः ॥ हिरण्य-
कशिपुं सर्वे विषण्णाः शरणं गताः ॥१॥ ततः प्रज्वलितः क्रोधात्प्रदहन्निव तेजसा ॥ हिरण्यकशिपुर्दैत्यश्चालयामास मेदिनीम् ॥२॥
ततः प्रक्षुभिताः सर्वे सागराः सलिलाकराः ॥ चलिता गिरयः सर्वे सकाननवनद्रुमाः ॥ ३ ॥ तस्मिन् क्रुद्धे तु दैत्येन्द्रे तमोभूतमभू-
ज्जगत् ॥ तमसा समभूच्छन्नं न प्राज्ञायत किंचन ॥४॥ अवहः प्रवहश्चैव विवहश्च समीरणः॥ पराहः संवहश्चैव उद्वहश्च महाबलः ॥५॥
तथा परिवहः श्रीमान्मारुता भयशंसिनः ॥ इत्येते क्षुभिताः सप्त मारुता गगनेचराः ॥ ६ ॥ ये ग्रहाः सर्वलोकस्य क्षये प्रादु-
र्भवन्ति वै ॥ ते ग्रहा गगने हृष्टा विचरन्ति यथासुखम् ॥ ७ ॥ अयोगतश्च तारासु सर्वेष्वृक्षेषु संगताः ॥ सग्रहं सहनक्षत्रं प्रजज्वाल
नभो नृप ॥ ८ ॥ विवर्णत्वं च भगवान् गतो दिवि दिवाकरः ॥ कृष्णः कबन्धश्च महांल्लक्ष्यते च नभस्तले ॥ ९ ॥

यमान हो गये ॥ ३ ॥ उस दैत्यके क्रोध करनेपर जगत् अंधकारमय हो गया और अंधकार व्याप्त होनेसे कुछ दिखाई नहीं देता था ॥ ४ ॥
आवह प्रवह विवह पराह संवह उद्वह महाबल ॥ ५ ॥ परिवह यह भयदायक पवन चलने लगी, यह आकाशचारी सातों पवन क्षुभित हो गई ॥ ६ ॥
जो ग्रह सब लोकके क्षयमें प्रादुर्भूत होते हैं वे ग्रह प्रसन्न हो आकाशमें विचरने लगे ॥ ७ ॥ नियत गतिवाले तारा नक्षत्र अनियत गतिवाले हो
गये ग्रह नक्षत्र सहित आकाश जल उठा ॥ ८ ॥ सूर्यभी आकाशमें कान्तिहीन हो गया आकाशमें काला कबंध दीखने लगा ॥ ९ ॥

सूर्यमेंसे काला धूम निकलने लगा और आकाशमें वारंवार सूर्य तापित होने लगे ॥ १० ॥ सात सूर्य धूम्रवर्ण आकाशमें स्थित हुए सात ग्रह चन्द्रमाके शृंगगामी हुए ॥ ११ ॥ अर्थात् वाम और दक्षिणमें शुक्र और बृहस्पति स्थित हुए, शनैश्चर और लाल सूर्यकी समान कान्तिमान् मंगल ॥ १२ ॥ यह सब एकसाथ कठिन मार्गमें आरोहण करने लगे, इनके सुवर्णमय शृंग युगान्तकी समान दीखने लगे ॥ १३ ॥ चन्द्रमा नक्षत्र और सात ग्रहोंसे आवृत हुआ और चराचरके विनाशके निमित्त रोहिणीसे प्रसन्न नहीं हुआ ॥ १४ ॥

अमुञ्चच्चासितां सूर्यो धूमवर्तिं भयावहाम् ॥ गगनस्थश्च भगवानभीक्ष्णं परितप्यते ॥ १० ॥ सप्तधूमनिभा घोराः सूर्या दिवि समुत्थिताः ॥ सोमस्य गगनस्थस्य ग्रहास्तिष्ठन्ति शृङ्गगाः ॥ ११ ॥ वामे च दक्षिणे चैव स्थितो शुक्रबृहस्पती ॥ शनैश्चरो लोहिताङ्गो लोहितार्कसमद्युतिः ॥१२॥ समं समभिरोहन्ति दुर्गाणि गगनेचराः ॥ शृङ्गाणि कनकेघोरा युगान्तावर्तका ग्रहाः॥१३॥ चन्द्रमाः सह नक्षत्रैर्ग्रहैः सप्तभिरावृतः ॥ चराचरविनाशार्थं रोहिणीं नाभ्यनन्दत ॥१४ ॥ गृहीतो राहुणा चन्द्र उल्काभिरभिहन्यते ॥ उल्काः प्रज्वलिताश्चन्द्रे प्रचेलुर्घोरदर्शनाः ॥ १५ ॥ देवानामपि यो देवः सोऽभ्यवर्षत शोणितम् ॥ अपतन् गगनादुल्का विद्युद्रूपाः सनिःस्वनाः ॥ १६ ॥ अकाले पादपाः सर्वे पुष्पन्ति च फलन्ति च ॥ लताश्च सफलाः सर्वा याः प्राहुर्दैत्यनाशनम् ॥ १७ ॥ फले फलान्यजायन्त पुष्पे पुष्पं तथैव च ॥ उन्मीलन्ति निमीलन्ति हसन्ति च रुदन्ति च ॥ १८ ॥ विक्रोशन्ति च गम्भीरं धूमयन्ति ज्वलन्ति च ॥ प्रतिमाः सर्वदेवानां कथयन्ति युगक्षयम् ॥ १९ ॥

राहुसे गृहीत हुआ चन्द्रमा उल्कासे ताडित होने लगा और चन्द्रमासे घोररूप उल्का चलायमान होने लगी ॥ १५ ॥ देवादिदेव मेघोंसे रुधिर वर्षने लगा विजलीकी समान शब्द करती उल्का आकाशसे गिरी ॥ १६ ॥ अकालमें वृक्षोंमें फूल फल लगि आये और फलवती होकर सब लता दैत्यका नाश कथन करने लगीं ॥ १७ ॥ फलमें फल पुष्पमें पुष्प लगने लगे आखें खोलती मीचती हंसती रोती ॥ १८ ॥ चिल्लाती धूम्र छोडती ज्वलित होती

हुई सब देवताओंकी प्रतिमा युगक्षय कीर्तन करने लगीं ॥ १९ ॥ अरण्यपशु पक्षियोंका ग्राम्यपशुओंसे संयोग हुआ और मृगेन्द्रके उपस्थित होनेमें भयंकर स्वरसे शब्द करने लगे ॥ २० ॥ नदियोंका जल मैला और प्रतिकूल गमन करने लगा अपराह्णमें प्राप्त होकरभी सूर्यकी छाया न परिवर्तित हुई ॥ २१ ॥ दिशा रेणुसे व्याप्त हो प्रकाशित न हुई पूजनयोग्य वनस्पतियोंका पूजन नहीं हुआ ॥ २२ ॥ वायुवेगसे चलकर वस्तुओंको तोडने लगा उस समय किसीभी प्राणीकी छायाका परिवर्तन न हुआ ॥ २३ ॥ सूर्यके अपराह्णमें प्राप्त होनेपर युगक्षय दीखने लगा तब हिरण्यकशिपु दैत्यके

आरण्यैः सह संसृष्टा ग्राम्याश्च मृगपक्षिणः॥ चुक्रुशुर्भैरवं तत्र मृगेन्द्रे समुपस्थिते ॥२०॥ नद्यश्च प्रातिलोमा हि वहन्ति कलुषोदकाः॥ अपराह्णगते सूर्ये लोकानां क्षयकारके ॥ २१ ॥ न प्रकाशन्ति च दिशो रक्तरेणुसमाकुलाः ॥ वानस्पत्या न पूज्यन्ते पूजनार्हाः कथञ्चन ॥ २२ ॥ वायुवेगेन हन्यन्ते भिद्यंते प्रणुदन्ति च ॥ तदा च सर्वभूतानां छाया न परिवर्त्तते ॥ २३ ॥ अपराह्णगते सूर्ये लोकानां च युगक्षये ॥ तदा हिरण्यकशिपोर्दैत्यस्योपरि वेश्मनः ॥२४॥ भाण्डागारायुधागारे निविष्टमभवन्मधु ॥ तथैव चायुधागारे धूमराजिरदृश्यत ॥ २५ ॥ स च दृष्ट्वा महोत्पातान् हिरण्यकशिपुस्तदा ॥ पुरोहितं तदा शुक्रं वचनं चेदमब्रवीत् ॥ २६ ॥ किमर्थं भगवन्नेते महोत्पाताः समुत्थिताः ॥ श्रोतुमिच्छामि तत्त्वेन परं कौतूहलं हि मे ॥ २७ ॥ शुक्र उवाच ॥ शृणु राजन्नवहितो वचनं मे महासुर ॥ यदर्थमिह दृश्यन्ते महोत्पाता महाभयाः ॥ २८ ॥ यस्यैते संप्रदृश्यन्ते राज्ञो राष्ट्रे महासुर ॥ देशो वा ह्रियते तस्य राजा वा बन्धमर्हति ॥ २९ ॥

ऊपरके स्थानके ॥ २४ ॥ भाण्डागार और आयुधागारमें शहतकी मक्खी छत्ता रखने लगी और इसी प्रकार आयुधागारमें धूमराजि दीखने लगी ॥ २५ ॥ तब हिरण्यकशिपु इन महाउत्पातोंको देख अपने पुरोहित शुक्रसे यह वचन बोले ॥ २६ ॥ हे भगवन् ! यह महाउत्पात किस कारणसे होते हैं यह मैं तत्त्वसे सुननेकी इच्छा करता हूं इसमें मुझको परम कौतूहल है ॥ २७ ॥ शुक्र बोले; हे राजन् ! हमारे हितके वचन सुनो. जिस कारण यह भय देनेवाले महाउत्पात दिखाई देते हैं ॥ २८ ॥ हे महासुर ! जिसके राज्यमें इस प्रकारके उत्पात सुनाई वा दिखाई देते हैं या उसका देश हरण होता

है वा राजा बंधनमें पडता है ॥ २९ ॥ इससे बुद्धिपूर्वक विचारनेसे सर्वनाश विदित होता है इसमें संदेह नहीं कि बडा भय आनकर प्राप्त होगा ॥ ३० ॥ जब शुक्रने हिरण्यकशिपुसे यह वचन कहे तब स्वस्ति कहकर वह दैत्यपतिसे विदा हो अपने स्थानको गया ॥ ३१ ॥ उनके जानेपर वह दैत्येन्द्र बहुत समयतक विचार करता रहा और दीन हो वह ब्रह्माके वचनोंको स्मरण करने लगा कि असुरोंका नाश और सुरोंका विजय होगा ॥ ३२ ॥ इसीके कारण यह घोर उत्पात सुनाई आते हैं तथा औरभी अनेक उत्पात दीखते हैं ॥ ३३ ॥ यह कालनिर्मित उत्पात दैत्योंके नाश करनेकोही

अतो बुद्ध्या समीक्षस्व यथा सर्वं प्रणश्यति ॥ बृहद्भयं हि न चिराद्भविष्यति न संशयः ॥ ३० ॥ एतावदुक्त्वा शुक्रस्तु हिरण्यकशिपुं तदा ॥ स्वस्तीत्युक्त्वा तु दैत्येन्द्रं जगाम स्वं निवेशनम् ॥ ३१ ॥ तस्मिन् गते स दैत्येन्द्रो ध्यातवान्सुचिरं तदा ॥ आसांचक्रे सुदीनात्मा ब्रह्मवाक्यमनुस्मरन् ॥ असुराणां विनाशाय सुराणां विजयाय च ॥ ३२ ॥ दृश्यन्ते विविधोत्पाता घोरा घोरनिदर्शनाः ॥ एते चान्ये च बहवो घोरा ह्युत्पातदर्शनाः ॥ ३३ ॥ दैत्येन्द्राणां विनाशाय दृश्यन्ते कालनिर्मिताः ॥ ततो हिरण्यकशिपुर्गदामादाय सत्वरम् ॥ ३४ ॥ अभ्यद्रवत वेगेन धरणीमनुकम्पयन् ॥ हिरण्यकशिपुर्दैत्यो यदा संस्पृष्टवान्महीम् ॥ ३५ ॥ संदष्टोष्ठपुटः क्रोधाद्वराह इव पूर्वजः ॥ मेदिन्यां कंपमानायां दैत्येन्द्रेण महात्मना ॥ ३६ ॥ महीधरेभ्यो नागेंद्रा निपेतुर्भयविक्लवाः ॥ विषज्वालाकुलैर्वक्त्रैर्विमुञ्चन्तो हुताशनम् ॥ ३७ ॥ चतुःशीर्षाः पञ्चशीर्षाः सप्तशीर्षाश्च पन्नगाः ॥ वासुकिस्तक्षकश्चैव कर्कोटकधनंजयौ ॥ ३८ ॥

दीखते हैं तब हिरण्यकशिपुने बहुत शीघ्र गदाको ग्रहण कर ॥ ३४ ॥ धरणीको कंपायमान करते बहुत शीघ्रतासे गमन किया, जिस समय दैत्य हिरण्यकशिपुने पृथ्वीका स्पर्श किया ॥ ३५ ॥ तब अपने होठसे होठ चाटते हिरण्याक्षकी समान जब उस दैत्यने मेदिनी कंपित की ॥ ३६ ॥ तब पीडित हो पृथ्वीमेंसे बडे बडे सर्प निकलने लगे और विषकी ज्वालासे व्याकुल हो अग्निको वमन करने लगे ॥ ३७ ॥ चार पांच तथा सात शिरके सर्प वासुकि तक्षक कर्कोटक धनंजय ॥ ३८ ॥

एलापत्र कालीय महापद्म सहस्रशिरके नाग हेमतालध्वज प्रभु ॥ ३९ ॥ हे राजन् ! शेष अनन्त दुष्प्रकंप प्रकंपित दीप्तजलके अन्तरमें रहनेवाले पृथ्वीके धारण करनेवाले निकले ॥ ४० ॥ क्रोध कर दैत्यने यह सब कंपित कर दिये पातालतलमें विचरनेवाले नागतेजधारी मंगलरूप ॥ ४१ ॥ और जलभी सहसा क्रोध करनेसे कंपहीन हुए भागीरथी नदी सरयू कौशिकी ॥ ४२ ॥ यमुना कावेरी कृष्णा वेणी सुवेणा महाभागा गोदावरी ॥ ४३ ॥ चर्मण्वती नदनदीपति सिंधु मेकलप्रभव शोण माणिनिभोदक ॥ ४४ ॥ सुस्रोता नर्मदा वेत्रवती गोमती गोकुलसे आकीर्ण पूर्णा सरस्वती ॥ ४५ ॥

एलापत्रश्च कालीयो महापद्मश्च वीर्यवान् ॥ सहस्रशीर्षधृङ्नागो हेमतालध्वजः प्रभुः ॥ ३९ ॥ शेषोऽनन्तो महीपालो दुष्प्रकम्पः प्रकम्पितः ॥ दीप्तान्यन्तर्जलस्थानि पृथिवीधरणानि च ॥ ४० ॥ तदा क्रुद्धेन दैत्येन कम्पितानि समन्ततः ॥ पातालतलचारिण्यो नागतेजोधराः शिवाः ॥ ४१ ॥आपश्च सहसा क्रुद्धा दुष्प्रकम्प्यरशाः शुभाः ॥ नदी भागीरथी चैव सरयूः कौशिकी तथा ॥ ४२ ॥ यमुना चैव कावेरी कृष्णा वेणा तथैव च ॥ सुवेणा च महाभागा नदी गोदावरी तथा ॥ ४३ ॥ चर्मण्वती च सिन्धुश्च तथा नदनदीपतिः ॥ मेकलप्रभवश्चैव शोणो मणिनिभोदकः ॥ ४४ ॥ सुस्रोता नर्मदा चैव तथा वेत्रवती नदी ॥ गोमती गोकुलाकीर्णा तथा पूर्णा सरस्वती ॥ ४५ ॥ मही कालनदी चैव तमसा पुण्यवाहिनी ॥ सिता चेक्षुमती चैव वेदिका च महानदी ॥ ४६ ॥ जम्बुद्वीपं रत्नवन्तं सर्वरत्नोपशोभितम् ॥ सुवर्णकूटकं चैव सुवर्णाकरमण्डितम् ॥ ४७ ॥ महानदश्च लौहित्यः शैलकाननशोभितः ॥ पत्तनं कौशिकारण्यं द्रविडं रजताकरम् ॥ ४८ ॥ मागधांश्च महाग्रामानङ्गान्वङ्गांस्तथैव च ॥ सुह्मान्मल्लान्विदेहांश्च मालवान्काशिकोसलान् ॥ ४९ ॥ भुवनं वैनतेयस्य सुवर्णस्य च कम्पितम् ॥ कैलासशिखराकारं यत्कृतं विश्वकर्मणा ॥ ५० ॥

मही कालनदी तमसा पुण्यवाहिनी सिता इक्षुमती महानदी वेदिका ॥ ४६ ॥ रत्नवाला जम्बुद्वीप सब रत्नोंसे शोभित सुवर्णकूट सुवर्ण आकरसे मंडित ॥ ४७ ॥ महानद लौहित्य शैलकाननसे शोभित कौशिकवन पत्तन द्रविड रजताकर ॥ ४८ ॥ मागध महाग्राम अंग बंग कलिंग सुह्म मल्ल विदेह मालवान काशी कोसल ॥ ४९ ॥ गरुडका भवन सुवर्णका कंपित कैलासके शिखरके आकार विश्वकर्माका बनाया हुआ ॥ ५० ॥

रक्ततोय भीमवेग लौहित्य सागर (लालसमुद्र[1]) सुन्दर पांडुवर्ण मेघकी समान कान्तिवान् क्षीरसागर ॥ ५१ ॥ हे राजेन्द्र ! सौ योजन ऊंचा उदय पर्वत नागपक्षसे सेवित सुवर्णवेदिक ॥ ५२ ॥ सूर्यकी समान प्रकाशित जातरूपमय वृक्ष शाल ताल तमाल और कर्णिकारके पुष्पोंसे युक्त ॥ ५३ ॥ विपुल अयोमुख और सब प्रकार धातुसे मंडित तमाल वनगंध सुन्दर मलयपर्वत ॥ ५४ ॥ सुराष्ट्र सुबाह्लीक भोज पांडु वंग कलिंग ताम्रलिप्त ॥ ५५ ॥ अंध्र पुंड्र वामचूड केरल देशोंसहित उस दैत्यने अप्सरा और दैत्योंको क्षुभित कर डाला ॥ ५६ ॥ अगम्य पूर्वनिर्मित अगस्त्यभवन सिद्ध चारणोंके

रक्ततोयो भीमवेगो लौहित्यो नाम सागरः ॥ शुभः पाण्डुरमेघाभः क्षीरोदश्चैव सागरः ॥ ५१ ॥ उदयश्चैव राजेन्द्र उच्छ्रितः शतयोजनम् ॥ सुवर्णवेदिकः श्रीमान्नागपक्षिनिषेवितः ॥ ५२ ॥ भ्राजमानोऽर्कसदृशैर्जातरूपमयैर्द्रुमैः ॥ शालैस्तालैस्तमालैश्च कर्णिकाभिश्च पुष्पितैः ॥ ५३ ॥ अयोमुखश्च विपुलः सर्वतो धातुमण्डितः ॥ तमालवनगन्धश्च पर्वतो मलयः शुभः ॥ ५४ ॥ सुराष्ट्राश्च सुबाह्लीकाः शूराभीरास्तथैव च ॥ भोजाः पाण्ड्याश्च वङ्गाश्च कालिङ्गास्ताम्रलिप्तकाः ॥ ५५ ॥ तथैवान्ध्राश्च पुण्ड्राश्च वामचूडाः सकेरलाः ॥ क्षोभितास्तेन दैत्येन सदेवाः साप्सरोगणाः ॥ ५६ ॥ अगस्तिभुवनं चैव यदगम्यं पुरा कृतम् ॥ सिद्धचारणसङ्घैश्च सेवितं सुमनोहरम् ॥ ५७ ॥ विचित्रनागविहगं सुपुष्पितलताद्रुमम् ॥ जातरूपमयैः शृङ्गैरप्सरोगणसेवितम् ॥ ५८ ॥ गिरिः पुष्पितकश्चैव लक्ष्मीवान्प्रियदर्शनः ॥ उत्थितः सागरं भित्त्वा वयस्यश्चन्द्रसूर्ययोः ॥ ५९ ॥ रराज सुमहाशृङ्गैर्गगनं विलिखन्निव ॥ सूर्यचन्द्रांशुसंकाशैः सागराम्बुसमावृतः ॥ ६० ॥

समूहोंसे सेवित ॥ ५७ ॥ विचित्र नाग विहंगमोंसे युक्त पुष्पित लतावाले वृक्षोंसे व्याप्त सुवर्णके शृंगवाले पर्वत अप्सराओंसे सेवित ॥ ५८ ॥ पुष्पोंसे व्याप्त पर्वत लक्ष्मीकी समान प्रियदर्शन सागरको भेदकर चंद्रसूर्यकी समान उठा ॥ ५९ ॥ और महाशृंगोंसे आकाशको लिखता हुआसा शोभित हुआ चन्द्रसूर्यकी समान कान्तिवाले सागरके जलसे व्याप्त ॥ ६० ॥ ॥ ९४ ॥

[1] अंग्रेजीमें इसीको रेड सी (RED SEA) कहते हैं.

विद्युद्वान् श्रीमान् पर्वत सौ योजन ऊंचा कि जिस पर्वतपर वारंवार बिजलीका पात होता है ॥ ६१ ॥ सबसे श्रेष्ठ श्रीमान् ऋषभ पर्वत कुंजर पर्वत जिसपर अगस्त्यजीका बडा घर है ॥ ६२ ॥ विशाल गलीवाली दुर्धर्ष सर्पोंकी पुरी तथा भोगवती पुरी उस दैत्यके भयसे कंपित हो गई ॥ ६३ ॥ महामेघ पारियात्र पर्वत चक्रवाक गिरि वाराहपर्वत ॥ ६४ ॥ प्राग्ज्योतिषपुर जो सुवर्णमय है जिसमें दुष्टात्मा नरक नाम दैत्य निवास करता है ॥ ६५ ॥ पर्वतश्रेष्ठ मेरु महागंभीर शब्दसे युक्त है राजन् ! जिसके चारों ओर साठ सहस्र पर्वत हैं ॥ ६६ ॥ तरुणसूर्यकी समान महेन्द्र पर्वत वह पर्वतराज

विद्युद्वान्पर्वतः श्रीमानायतः शतयोजनम् ॥ विद्युतां यत्र संपाता निपात्यन्ते नगोत्तमे ॥ ६१ ॥ ऋषभः पर्वतश्चैव श्रीमानृषभसंस्थितः ॥ कुञ्जरः पर्वतश्चैव यत्रागस्त्यगृहं महत् ॥ ६२ ॥ विशालरथ्या दुर्धर्षा सर्पाणामालया पुरी ॥ तथा भोगवती चापि दैत्येन्द्रेणाभिकम्पिता ॥ ६३ ॥ महामेघगिरिश्चैव पारियात्रश्च पर्वतः ॥ चक्रवांश्च गिरिः श्रेष्ठो वाराहश्चैव पर्वतः ॥ ६४ ॥ प्राग्ज्योतिषपुरं चैव जातरूपमयं शुभम् ॥ यस्मिन्वसति दुष्टात्मा नरको नाम दानवः ॥ ६५ ॥ मेरुश्च पर्वतश्रेष्ठो मेघगम्भीरनिःस्वनः ॥ षष्टिं तत्र सहस्राणि पर्वतानां विशांपते ॥ ६६ ॥ तरुणादित्यसंकाशो महेन्द्रश्च महागिरिः ॥ देवावासः शुभः पुण्यो गिरिराजो दिवं गतः ॥ ६७ ॥ हेमशृङ्गो महाशैलस्तथा मेघसखो गिरिः ॥ कैलासश्चापि दुष्कम्पो दानवेन्द्रेण कम्पितः ॥ ६८ ॥ यक्षराक्षसगन्धर्वैर्नित्यं सेवितकन्दरः ॥ श्रीमान्मनोहरश्चैव नित्यं पुष्पितपादपः ॥ ६९ ॥ हेमपुष्करसंच्छन्नं तेन वैखानसं सरः ॥ कम्पितं मानसं चैव राजहंसैर्निषेवितम् ॥ ७० ॥ त्रिशृङ्गः पर्वतश्चैव कुमारी च सरिद्वरा ॥ तुषारचयसंकाशो मन्दरश्चैव पर्वतः ॥ ७१ ॥ उशीरबीजश्च गिरी रुद्रोपस्थस्तथाद्रिराट् ॥ प्रजापतेश्च निलयस्तथा पुष्करपर्वतः ॥ ७२ ॥

देवताओंका निवासस्थान होनेसे मानो स्वर्गमें प्राप्त है ॥ ६७ ॥ हेमशृंग महापर्वत मेघसखा और दुष्कंप कैलासकोभी दानवेन्द्रने कंपित कर दिया ॥ ६८ ॥ जिसकी कंदरा नित्य यक्षराक्षसोंसे सेवित हैं श्रीमान् मनोहर नित्य पुष्पितवृक्षोंवाले ॥ ६९ ॥ तथा हेमकमलसे व्याप्त वैखानस सरोवर और राजहंसोंसे सेवित मानससरोवरभी कंपित कर दिया ॥ ७० ॥ त्रिशृंग पर्वत नदीश्रेष्ठ कुमारी तुषारसमूहकी समान मंदर पर्वत ॥ ७१ ॥ उशीर बीज पर्वत रुद्रके

निवासका स्थान पर्वतराज प्रजापतिका स्थान पुष्कर पर्वत ॥ ७२ ॥ देवावृत पर्वत वालुकपर्वत क्रौंच सप्तर्षि तथा धूमपर्वत ॥ ७३ ॥ यह पर्वत तथा देश और जनपद नदी और सागर सब उस दानवने कंपित कर दिये ॥ ७४ ॥ महीपुत्र व्याघ्राक्ष और कपिल आकाशचारी निशाके पुत्र पातालतलके निवास करनेवाले ॥ ७५ ॥ रुद्रके गण मेघनाद करनेवाले अंकुश हाथमें लिये ऊर्ध्वगामी भीमवेगवान् सबही कंपित कर दिये ॥ ७६ ॥ इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे भविष्यपर्वणि भाषायां नारसिंहे षट्चत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४६ ॥ वैशंपायन बोले; आदित्य साध्य विश्वेदेवा मरुत रुद्र देव

देवावृत्पर्वतश्चैव तथा वै वालुकागिरिः॥क्रौञ्चः सप्तर्षिशैलश्च धूमवर्णश्च पर्वतः ॥७३॥ एते चान्ये च गिरयो देशा जनपदास्तथा ॥ नद्यश्च सागराश्चैव दानवेन्द्रेण कम्पिताः ॥ ७४ ॥कपिलश्च महीपुत्रो व्याघ्राक्षश्चैव कम्पितः ॥ खेचराश्च निशापुत्राः पातालतलवासिनः ॥ ७५ ॥ गणास्तथा परे रौद्रा मेघनादाङ्कुशायुधाः॥ऊर्ध्वगो भीमवेगश्च सर्व एवाभिकम्पिताः ॥ ७६ ॥ इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे भविष्यपर्वणि नारसिंहे षट्चत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४६ ॥ वैशम्पायन उवाच ॥ तत्रादित्याश्च साध्याश्च विश्वे च मरुतस्तथा ॥ रुद्रा देवा महात्मानो वसवश्च महाबलाः ॥ १ ॥ आगम्य ते मृगेन्द्रस्य सकाशं सूर्यवर्चसः ॥ ऊचुः संत्रस्तमनसो देवा लोकक्षयार्दिताः ॥ २ ॥ जहि देव दितेः पुत्रं दानवं लोकनाशनम् ॥ दुर्वृत्तमसदाचारं सह सर्वैर्महासुरैः ॥ ३ ॥ त्वं ह्येषामन्तकृन्नान्यो दैत्यानां दैत्यनाशन ॥ तन्नाशय हितार्थाय लोकानां स्वस्ति वै कुरु ॥ ४ ॥ त्वं गुरुः सर्वलोकानां त्वमिन्द्रस्त्वं पितामहः ॥ ऋते त्वदन्यच्छरणं न भूतं न भविष्यति ॥५॥ तच्छ्रुत्वा वचनं देवो देवानामादिसंभवः ॥ ननाद सुमहानादमतिगम्भीरनिःस्वनम् ॥ ६॥

महात्मा वसु महाबली ॥ १ ॥ वे सूर्यकी समान प्रकाशमान मृगेन्द्रके निकट आकर लोकक्षयसे व्याकुलमन हो नारायणसे बोले ॥ २ ॥ हे देव ! लोकनाशी इस दितिके पुत्र दैत्यको मारो. यह बडा दुर्वृत्त असदाचारसे युक्त सब असुरोंसे युक्त है ॥ ३ ॥ हे दैत्यनाशन ! तुमही इन दैत्योंके नाशक हो अन्य कोई नहीं है सो लोकके हितके निमित्त इसको मारकर जगतका मंगल करो ॥ ४ ॥ तुम सब लोकोंके गुरु इन्द्र और पितामह हो, तुम्हारे सिवाय न कोई शरणदाता है न होगा ॥ ५ ॥ देवोंके आदिसंभव देव यह देवताओंके वचन सुन अतिगंभीर शब्दोंसे महानाद करने लगे ॥ ६ ॥

इस महासिंहनादसे नृसिंहजीने असुरोंके हृदय फाड डाले और मन व्याकुल कर दिये ॥ ७ ॥ क्रोधवश नाम गण कालकेय वेग वैगलेय महाबली सिंहि-केय ॥ ८ ॥ संह्लादीय महानाद महावेगवान् कपिल महीपुत्र व्याघ्राक्ष क्षितिकंपन ॥ ९ ॥ खेचर निशापुत्र पातालतलनिवासी गण परम रौद्र मेघनाद अंकुश आयुध ॥ १० ॥ ऊर्ध्वगामी भीमवेग भीम सूर्यलोचन वज्री शूली कराल हिरण्यकशिपु ॥ ११ ॥ घनमेघकी समान प्रकाशमान, मेघकी समान वेग-वान् घने बादलकी समान शब्द तथा मेघकी समान कान्तिवाले दर्पित दैत्यगण मृगेन्द्रके प्रति धावमान हुए ॥ १२ ॥ देवारि दितिपुत्र क्रोधकर नृसिंहके

पाटितान्यसुरेन्द्राणां मृगेन्द्रेण महात्मना ॥ सिंहनादेन महता हृदयानि मनांसि च ॥ ७ ॥ गणः क्रोधवशो नाम कालकेयस्तथा परः ॥ वेगश्च वैगेलयश्च सिंहिकेयश्च वीर्यवान् ॥ ८ ॥ संह्लादीयो महानादो महावेगस्तथा परः ॥ कपिलश्च महीपुत्रो व्याघ्राक्षः क्षितिकम्पनः ॥ ९ ॥ खेचराश्च निशापुत्राः पातालतलचारिणः ॥ गणस्तथा परो रौद्रो मेघनादोऽङ्कुशायुधः ॥ १० ॥ ऊर्ध्वगो भीमवेगश्च भीमकर्मार्कलोचनः ॥ वज्री शूली करालश्च हिरण्यकशिपुस्ततः ॥ ११ ॥ जीमूतघनसंकाशो जीमूत इव वेगवान् ॥ जीमूतघनसंनादो जीमूतसदृशद्युतिः ॥ दृप्तैर्दैत्यगणैस्तुष्टो मृगेन्द्रेण महात्मना ॥ १२ ॥ देवारिर्दितिजो हृप्तो नृसिंहं समुपाद्रवत् ॥ समुत्पत्य ततस्तीक्ष्णैर्मृगेन्द्रेण महानखैः ॥ १३ ॥ तत्रोङ्कारसहायेन विदार्य निहतो युधि ॥ १४ ॥ मही च लोकश्च शशी नभश्च ग्रहाश्च सूर्यश्च दिशश्च सर्वाः ॥ नद्यश्च शैलाश्च महार्णवाश्च गताः प्रकाशं दितिपुत्रनाशात् ॥ १५ ॥ ततः प्रमुदिता देवा ऋषयश्च तपोधनाः ॥ तुष्टुवुर्विविधैः स्तोत्रैरादिदेवं सनातनम् ॥ १६ ॥ देवा ऊचुः ॥ यत्त्वया विहितं देव नारसिंहमिदं वपुः ॥ एतदेवार्चयिष्यन्ति परावर-विदो जनाः ॥ मृगेन्द्रत्वं च लोकेषु सर्वसत्त्वेषु वा विभो ॥ १७ ॥

ऊपर झपटा तब इसके आनेपर मृगेन्द्रने अपने तीक्ष्ण महानखोंसे ॥ १३ ॥ ओंकारकी सहायता द्वारा विदीर्ण कर डाला ॥ १४ ॥ मही लोक चन्द्रमा आकाश ग्रह सूर्य सम्पूर्ण दिशा नदी शैल उस दैत्यके मरनेसे प्रकाशित हुए ॥ १५ ॥ तब प्रसन्न हो देवता और तपोधन ऋषि आदि देव सनातन नारायणको अनेक स्तुतियोंसे प्रसन्न करते हुए ॥ १६ ॥ देवता बोले, हे देव ! जो आपने नृसिंहशरीर धारण किया है इसको परअवरके जाननेवाले

पूजन करेंगे. हे विभो ! आप आजसे सब जीवोंमें तथा प्राणियोंमें अधिक होनेसे मृगेन्द्र हुए ॥ १७ ॥ तुमको मुनि नित्य मृगेन्द्र कहकर गावेंगे हे विभो ! आपके प्रसादसे हम अपने स्थानको प्राप्त हुए ॥ १८ ॥ देवताओंके ऐसे कहनेपर महामनवाले नृसिंहजी प्रसन्न हुए और प्रसन्न हो ब्रह्माजी विष्णुकी स्तुति करने लगे ॥ १९ ॥ आपही अक्षर अव्यक्त अचिन्त्य गुह्य तथा उत्तम हो कूटस्थ अकृत कर्ता सनातन अनामय हो ॥ २० ॥ जो तत्त्वअर्थमें निष्ठित सांख्य योगकी बुद्धि है वह उसके द्वारा आपही वेद विद्यात्मा पुरुष निरन्तर ध्रुव जाने

गायन्ति त्वां च मुनयो मृगेन्द्र इति नित्यशः ॥ त्वत्प्रसादात्स्वकं स्थानं प्रतिपन्नाः स्म वै विभो ॥ १८ ॥ एवमुक्तो देवसंघैर्नरसिंहो महामनाः ॥ ब्रह्मा च परमप्रीतो विष्णोः स्तोत्रमुदीरयत् ॥ १९ ॥ ब्रह्मोवाच ॥ भवानक्षरमव्यक्तमचिन्त्यं गुह्यमुत्तमम् ॥ कूटस्थमकृतं कर्तृ सनातनमनामयम् ॥ २० ॥ सांख्ययोगे च या बुद्धिस्तत्त्वार्थपरिनिष्ठिता ॥ तां भवान्वेद विद्यात्मा पुरुषः शाश्वतो ध्रुवः ॥ २१ ॥ त्वं व्यक्तश्च तथाव्यक्तस्त्वत्तः सर्वमिदं जगत् ॥ भवन्मया वयं देव भवानात्मा भवान्प्रभुः ॥ २२ ॥ चतुर्विभक्तमूर्तिस्त्वं सर्वलोकविभुर्गुरुः ॥ चतुर्युगसहस्रेण सर्वलोकान्तकान्तकः ॥ २३ ॥ प्रतिष्ठा सर्वभूतानामनन्तबलपौरुषः ॥ कपिलप्रभृतीनां च यतीनां परमा गतिः ॥ २४ ॥ अनादिमध्यनिधनः सर्वात्मा पुरुषोत्तमः ॥ स्रष्टा त्वं त्वं च संहर्ता त्वमेको लोकभावनः ॥ २५ ॥ भवान्ब्रह्मा च रुद्रश्च महेन्द्रो वरुणो यमः ॥ भवान्कर्त्ता विकर्त्ता च लोकानां प्रभुरव्ययः ॥ २६ ॥

जाते हो ॥ २१ ॥ आप व्यक्त अव्यक्त स्वरूप हो तुमसेही यह सब जगत् स्थित है हम त्वन्मय हैं. हे देव ! आपही सबके आत्मा प्रभु हो ॥ २२ ॥ आप चतुर्विभक्तमूर्ति और सब लोकके गुरु हो चार सहस्र देवयुग बीचनेसे जगत्का अन्त करते हो ॥ २३ ॥ आपसेही सब भूतोंकी प्रतिष्ठा है आपमेंही अनन्त बल और पुरुषार्थ है आपही कपिल आदि यतियोंकी परम गति हो ॥ २४ ॥ आपही अनादि मध्य निधन सर्वात्मा पुरुषोत्तम हो आपही उत्पन्न और संहार करनेवाले एकही लोकभावन हो ॥ २५ ॥ आप ब्रह्मा रुद्र महेन्द्र वरुण यम हो आपही कर्ता विकर्ता लोकोंके अविनाशी प्रभु

हो ॥ २६ ॥ परम सिद्ध परम मंत्र परम मन परम धर्म परम यश अग्र्य पुराणपुरुष आपहीको कहते हैं ॥ २७ ॥ परम सत्य परम हवि परम पवित्र परम मार्ग परम यज्ञ परम होत्र अग्र्य पुराणपुरुष आपको कहते हैं ॥ २८ ॥ परम शरीर परम धाम परम योग परम वाणी परम रहस्य परम गति अग्र्य पुराणपुरुष आपको कहते हैं ॥ २९ ॥ परंपरेसेभी परे जिससे कोई परे नहीं परमदेव परंपरासे परे प्रभु आपको अग्र्य और पुराणपुरुष कहते हैं ॥ ३० ॥ परेसेभी परे परम प्रधान परेसे परे तत्त्व परसे परे धाता अग्र्य पुराणपुरुष आपको कहते हैं ॥ ३१ ॥ परेसे परे परम रहस्य परेसे परे परम तप अग्र्य पुराण

परां च सिद्धिं परमं च देवं परं च मन्त्रं परमं मनश्च ॥ परं च धर्मं परमं यशश्च त्वामाहुरग्र्यं पुरुषं पुराणम् ॥ २७ ॥ परं च सत्यं परमं हविश्च परं पवित्रं परमं च मार्गम् ॥ परं च यज्ञं परमं च होत्रं त्वामाहुरग्र्यं पुरुषं पुराणम् ॥ २८ ॥ परं शरीरं परमं च धाम परं च योगं परमां च वाणीम् ॥ परं रहस्यं परमां गतिं च त्वामाहुरग्र्यं पुरुषं पुराणम् ॥ २९ ॥ परं परस्यापि परं च यत्परं परं परस्यापि परं च देवम् ॥ परं परस्यापि परं प्रभुं च त्वामाहुरग्र्यं पुरुषं पुराणम् ॥ ३० ॥ परं परस्यापि परं प्रधानं परं परस्यापि परं च तत्त्वम् ॥ परं परस्यापि पर च धाता त्वामाहुरग्र्यं पुरुषं पुराणम् ॥ ३१ ॥ परं परस्यापि परं रहस्यं परं परस्यापि परं परं यत् ॥ परं परस्यापि परं तपो यत्त्वामाहुरग्र्यं पुरुषं पुराणम् ॥ ३२ ॥ परं परस्यापि परं परायणं परं च गुह्यं च परं च धाम ॥ परं च योगं परम प्रभुत्वं त्वामाहुरग्र्यं पुरुषं पुराणम् ॥ ३३ ॥ वैशम्पायन उवाच ॥ एवमुक्त्वा स भगवान्त्सर्वलोकपितामहः ॥ स्तुत्वा नारायणं देवं ब्रह्मलोकं गतः प्रभुः ॥३४॥ ततो नदत्सु तूर्येषु नृत्यन्तीष्वप्सरःसु च ॥ क्षीरोदस्योत्तरं कूलं जगाम प्रभुरीश्वरः ॥३५॥ नारसिंहीं तनुं त्यक्त्वा स्थापयित्वा च तद्वपुः ॥ पौराणं रूपमास्थाय ययौ स गरुडध्वजः ॥ ३६ ॥

पुरुष आपको कहते हैं ॥ ३२ ॥ परंपरेसे परे परायण परम गुह्य परम धाम परम योग परम प्रभु आपको अग्र्य पुरातन पुरुष कहते हैं ॥ ३३ ॥ वैशंपायन बोले; इस प्रकार सब लोकके पितामहने जब कहा तब नारायणदेवकी स्तुति कर अपने ब्रह्मलोकको चले गये तब बाजोंके बजने और अप्सराओंके नृत्य करनेपर भगवान् क्षीरसागरके उत्तर तटपर चले गये ॥ ३४ ॥ ३५ ॥ वहां उस नारसिंहशरीरको अदृश्य कर उसकी प्रतिमा स्थापन कर

पुराण चतुर्भुजरूपमें स्थित हो नारायण चले गये ॥ ३६ ॥ आठ चक्रके विभूति शोभित विमान अर्थात् श्रुतिप्रसिद्ध शब्द श्रोत्रादि ग्रह अतिग्राहरूपसे निरन्तर चाल्यमान देहरूपी साधनसे वे अव्यक्त प्रकृति आठ आकारवाली है. उस अहंकारसे निकृष्ट देवात्मा नृसिंहरूपी अपने स्थान चिन्मात्रस्वरूपको प्राप्त हुए ॥ ३७ ॥ इस प्रकार नृसिंहरूपधारी इन महात्माने पूर्वकालमें हिरण्यकशिपु दैत्यका वध किया था ॥ ३८ ॥ इति श्रीमहा० खिलेषु हरिवंशे भविष्यपर्वणि पंडितज्वालाप्रसादमिश्रकृतभाषायां नारसिंहप्रादुर्भावे हिरण्यकशिपुवधकथनं नाम सप्तचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४७ ॥ वैशंपायन बोले; नृसिंहचरित्र वर्णन किया अब फिरभी इसके उपरान्त वामनचरित्र वणन क ते हैं जिसमें रूप धारण करनेवालोंमें श्रेष्ठ नारायणने वामनरूप धारण किया ॥ १ ॥

अष्टचक्रेण यानेन भूतियुक्तेन शोभिना ॥ अव्यक्तः प्रकृतिर्देवः सस्थानमगमत्प्रभुः ॥ ३७ ॥ एवं महात्मना तेन नृसिंहवपुषा तदा ॥ देवेन निहतः पूर्वं हिरण्यकशिपुश्च सः ॥ ३८ ॥ इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे भविष्यपर्वणि नारसिंहप्रादुर्भावे हिरण्यकशिपुवधकथनं नाम सप्तचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४७ ॥ वैशम्पायन उवाच ॥ नृसिंह एष कथितो भूयोऽयं वामनो परः ॥ यत्र वामनमास्थाय रूपं रूपविदां वरः ॥ १ ॥ बलेर्बलवतो यज्ञे बलिना विष्णुना पुरा ॥ विक्रमैस्त्रिभिराक्रम्य त्रैलोक्यमखिलं हृतम् ॥ २ ॥ समुद्रवसना चोर्वी नानानगविभूषिता ॥ हृत्वा दत्त्वा सुरेन्द्राय शक्राय प्रभविष्णुना ॥ ३ ॥ जनमेजय उवाच ॥ अत्र मे संशयो ब्रह्मन्नत्र कौतूहलं महत् ॥ कथं नारायणो देवो वामनत्वमुपागतः ॥ ४ ॥ यः पुराणे पुराणात्मा भूत्वा नारायणः प्रभुः ॥ पद्मनाभो महाबाहुर्लोकानां प्रकृतिर्ध्रुवः ॥ ५ ॥ अनादिमध्यानिधनस्त्रैलोक्यादिः सनातनः ॥ देवदेवः सुराध्यक्षः कृष्णो लोकनमस्कृतः ॥ ६ ॥

बलि बलिके यज्ञमें महाबली विष्णुने अपने विक्रमसे त्रिलोकीको वशीभूत कर लिया था ॥ २ ॥ समुद्रपर्यन्त यह पृथ्वी अनेक पर्वतोंसे युक्त हरण कर विष्णुने सुरेन्द्रके निमित्त प्रदान की थी ॥ ३ ॥ जनमेजय बोले; हे ब्रह्मन्! इसमें मुझे परम कुतूहल और संदेहभी है कि नारायणदेवने क्यों वामनशरीर धारण किया ॥ ४ ॥ जो पुराणोंमें पुराणात्मा गाया जाता है वह नारायण प्रभु पद्मनाभ महाबाहु लोकोंकी प्रकृति ध्रुवरूप ॥ ५ ॥ अनादि मध्य निधन त्रैलोक्यके आदि सनातन देवदेव सुरोंके अध्यक्ष कृष्ण लोकसे नमस्कृत ॥ ६ ॥

हव्य कव्य ले जानेवाले श्रीमान् हव्यकव्यभोजी अविनाशी है वह देवमाता अदितिके गर्भमें कैसे प्राप्त हुए जो इन्द्रकेभी स्रष्टा हैं वह किस प्रकार वासवके अनुज हुए ॥ ७ ॥ वह उत्पन्न हो देवेश किस प्रकार विष्णुत्वको प्राप्त हुए. हे विप्र ! आप उन महात्माका प्रादुर्भाव मुझसे कहिये ॥ ८ ॥ वैशंपायन बोले; ऋषिश्रेष्ठोंसे पूजित इस कथाको श्रवण कीजिये जो पुराणोंमें विद्वानोंने कही है और ब्रह्माकी प्रेरणासे है अर्थात् नारायणका देवताओंमें पक्षपात नहीं है. सत्त्वप्रधानरूप देवताओंके हैं, रजप्रधानरूप यक्षराक्षसोंके, तमप्रधानरूप भूत प्रेत पिशाचादिके होते हैं, सतोगुण सतोगुणको आकर्षण करता है, इस कारण नारायण देवताओंकी ओर सत्त्वगुणोंको प्राप्त होते हैं इन्द्रकेही पृथ्वीके बीज अंकुर तरुफलकी समान पांच रूप हैं अर्थात्

हव्यकव्यवहः श्रीमान् हव्यकव्यभुगव्ययः ॥ अदित्या देवमातुश्च कथं गर्भेऽभवत्प्रभुः ॥ स्रष्टा यो वासवस्यापि स कथं वासवानुजः ॥ ७ ॥ प्रसूतो देवदेवेशो विष्णुत्वं प्राप्तवान्कथम् ॥ एतदाचक्ष्व मे विप्र प्रादुर्भावं महात्मनः ॥ ८ ॥ वैशम्पायन उवाच ॥ शृणु राजन्कथां दिव्यामर्चितामृषिपुङ्गवैः ॥ पुराणैः कविभिः प्रोक्तां ब्रह्मोक्तां ब्राह्मणैरिताम् ॥ ९ ॥ मारीचस्य सुरेशस्य कश्यपस्य प्रजापतेः ॥ अदितिर्दितिर्द्वे भार्ये भगिन्यौ जनमेजय ॥ १० ॥ अदित्यां जज्ञिरे देवाः कश्यपस्य महात्मनः ॥ धातार्यमा च मित्रश्च वरुणोंऽशो भगस्तथा ॥ ११ ॥ इन्द्रो विवस्वान्पूषा च पर्जन्यो दशमस्तथा ॥ तथैकादशमस्त्वष्टा द्वादशो विष्णुरुच्यते ॥ १२ ॥

शुद्ध शबल सूत्र विराट् विष्णुसंज्ञक उसमें शुद्ध निर्विशेष है विष्णु सर्वविशेषमें युक्त है और राजाकी समान शिष्टोंपर अनुग्रह दुष्टोंपर निग्रह करता है यद्यपि सब उसीके अंग हैं परन्तु (त्याज्यो दुष्टः प्रियोऽप्यासीदंगुलीवोरगक्षता) अर्थात् सर्पसे काटी हुई अपनी अंगुलीभी तो त्याज्य है दुष्टकी तो कौन कहे इसी न्यायसे दुष्टोंका निग्रह करते हैं ॥ ९ ॥ देवताओंके ईश मरीचपुत्र कश्यपके अदिति और दिति यह दो विख्यात भार्यां थीं ॥ १० ॥ महात्मा कश्यपसे अदितिमें देवता हुए धाता अर्यमा मित्र वरुण अंश भग ॥ ११ ॥ इन्द्र विवस्वान् पूषा और दशवां पर्जन्य ग्यारहवां त्वष्टा और बार-

हवां विष्णु कहलाता है ॥ १२ ॥ दितिके बलवान् हिरण्यकश्यप हुआ उसका अनुज महाप्रतापी हिरण्याक्ष हुआ ॥ १३ ॥ हिरण्याकशिपुके घोर पराक्रमी पांच पुत्र हुए प्रह्लाद अनुह्लाद जंभ अनुह्रद और संह्लाद ॥ १४ ॥ प्रह्लादके विरोचन और उसका पुत्र बलि हुआ उनके बडे बली पुत्र और पौत्र अनेक हुए ॥ १५ ॥ वे तेजस्वी सुरारि दैत्येन्द्र मनस्वी जनोंके अनेक गण देशदेशमें स्थित हो गये ॥ १६॥ जब उन्होंने यह देखा कि नारसिंहने हिरण्यकशिपुको मार डाला तब दैत्योंने देवताओंके वधके निमित्त बलिको इन्द्र किया ॥ १७ ॥ इनको धर्ममें तत्पर सत्यवाक् जितेन्द्रिय शूरता

दित्यां जातो हि बलवान् हिरण्यकशिपुः प्रभुः ॥ तस्यानुजस्य दैत्येन्द्रो हिरण्याक्षः प्रतापवान् ॥ १३ ॥ हिरण्यकशिपोः पुत्राः पञ्च घोरपराक्रमाः ॥ प्रह्लादश्चानुह्लादश्च जम्भः संह्लाद एव च ॥ १४ ॥ विरोचनश्च प्राह्लादिस्तस्य पुत्रो बलिः स्मृतः ॥ पुत्रपौत्रं च बलवत्तेषामक्षयमव्ययम् ॥ १५ ॥ तेजस्विनां सुरारीणां दैत्येन्द्राणां मनस्विनाम् ॥ गणाः सुबहुशो राजन् देशे देशे सहस्रशः ॥ १६ ॥ ते दृष्ट्वा नारसिंहेन हिरण्यकशिपुं हतम् ॥ दैत्या देववधार्थाय बलिमिन्द्रं प्रचक्रिरे ॥ १७ ॥ दृष्ट्वा धर्मपरं नित्यं सत्यवाक्यं जितेन्द्रियम् ॥ शौर्याध्ययनसंपन्नं सर्वज्ञानविशारदम् ॥ १८ ॥ परावरगृहीतार्थं तत्त्वदर्शिनमव्ययम् ॥ तेजस्विनं सुररिपुं हिरण्यकशिपुं यथा ॥ १९ ॥ अभिषेकेण दिव्येन बलिं वैरोचनिं तथा ॥ दैत्याधिपत्ये दितिजास्तदा सर्वेऽभ्यपूजयन् ॥ २० ॥ अभिषिक्तस्तदा दैत्यैर्बलिर्बलवतां वरः ॥ ब्रह्मणा चैव तुष्टेन हिरण्यकशिपोः पदे ॥ २१ ॥ अभिषिक्तोऽसुरगणैर्बलिर्वैरोचनिस्तदा ॥ काञ्चनैः कलशैः स्फीतैः सर्वतीर्थाम्बुसंवृतैः ॥ २२ ॥

अध्ययनमें सम्पन्न सम्पूर्ण ज्ञानमें विशारद देखकर ॥ १८ ॥ कि पर अपरके अर्थ ग्रहण करनेमें समर्थ तत्त्वदर्शी अव्यय तेजस्वी सुररिपु हिरण्यकशिपुकी समान देखा ॥ १९ ॥ तब विरोचनपुत्र बलिको दिव्य अभिषेक किया सब दानवोंने उसको दैत्योंके आधिपत्यमें पूजन किया ॥ २० ॥ तब इस प्रकार दैत्योंने महाबली बलिका अभिषेक किया ब्रह्माकी संतुष्टतासे हिरण्यकशिपुके पदमें स्थापित किया ॥ २१ ॥ इस प्रकार असुरोंने सब

तीर्थोंसे सोनेके कलशोंमें जल लाकर बलिको अभिषेक किया ॥ २२ ॥ अभिषेक करके फिर दानव जयशब्द करने लगे जब कि अतुलबलवान् बली
सिंहासनपर स्थित हुए थे ॥ २३ ॥ इस प्रकार बली बलिको यह दैत्य अभिषेक कर अपने शिर पृथ्वीमें झुकाकर प्रार्थना करने लगे ॥ २४ ॥
दैत्य बोले; हे दैत्येन्द्र ! आपको विदित है जिस प्रकार हिरण्यकशिपुके वशवर्ती स्थावर जंगमात्मक त्रिलोकी थी ॥ २५ ॥ नारायणने उन तुम्हारे
पितामहको मारकर त्रिलोकी हरण कर इन्द्रको अभिषेक किया है ॥ २६ ॥ सो आप अपने पितामहके राज्य लौटानेको योग्य है. हे नाथ !

जयशब्दं ततश्चक्रुरभिषिक्तस्य दानवाः ॥ बलेरतुलवीर्यस्य सिंहासनगतस्य वै ॥२३॥ कृत्वेन्द्रं दानवाः सर्वे बलिं बलवतां वरम् ॥
ततो विज्ञापयामासुः शिरोभिः पतिताः क्षितौ ॥ २४ ॥ दैत्या ऊचुः ॥ विदितं तव दैत्येन्द्र हिरण्यकशिपोर्यथा ॥ त्रैलोक्यमासी-
दखिलं जगत्स्थावरजङ्गमम् ॥ २५ ॥ पितामहं तु हत्वा ते सुरेश्वरानिषूदन ॥ हृतं तदैव त्रैलोक्यं शक्रश्चैवाभिषेचितः ॥ २६ ॥
तत्पितामहराज्यं त्वं प्रत्याहर्तुमिहार्हसि ॥ अस्माभिः सहितो नाथ त्रैलोक्यमिदमव्ययम् ॥ २७ ॥ प्रत्यानयस्व भद्रं ते राज्यं
पैतामहं प्रभो ॥ २८ ॥ असुरगणसहस्रसंवृतस्त्वं जय दिवि देवगणान्महानुभावान् ॥ अमितबलपराक्रमोऽसि राजन्नतिशयसे
स्वगुणैः पितामहं स्वम् ॥ २९ ॥ इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे भविष्यपर्वणि वामने बलेरभिषेको नाम अष्टचत्वारिंशोऽ-
ध्यायः ॥ ४८ ॥ वैशम्पायन उवाच ॥ निशम्य तेषां वचनं महामतिर्बलिस्तदा प्रीतमना महाबलः ॥ आज्ञापयामास स दैत्यकोटिं
त्रैलोक्यमद्यैव जयाम सर्वम् ॥ १ ॥

हमारे सहित यह त्रिलोकी ॥ २७ ॥ आप फेर लीजिये आपका मंगल हो पितामहका राज्य स्वीकार करो ॥ २८ ॥ सहस्रों असुरगणोंके
सहित तुम स्वर्गमें रहनेवाले महानुभाव देवताओंको जीतो. हे राजन् ! तुम अमितबल और पराक्रमसे युक्त हो और गुणोंमें अपने पितामहसे
अधिक हो ॥ २९ ॥ इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे भविष्यपर्वणि भाषायां वामने बलेरभिषेको नाम अष्टचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४८ ॥ वैशंपायन
बोले; महाबली उनके यह वचन सुन बहुत प्रसन्न हुए और वह दैत्यसमूहको आज्ञा देता हुआ कि हम सब अभी त्रिलोकीका जय करें ॥ १ ॥

इस प्रकार विरोचनपुत्र बलिके वचन सुन युद्धदुर्मद दानव परम उद्योग करने लगे ॥ २ ॥ महापद्म निकुंभ कुंभकर्ण कांचनाक्ष कपिस्कंध मैनाक क्षितिकंपन ॥ ३ ॥ शितकेश ऊर्ध्ववक्र वज्रनाभ शिखाजटावाला सहस्रबाहु विकट व्याघ्राक्ष प्रियदर्शन ॥ ४ ॥ एकाक्ष एकपाद मुंड विद्युदक्ष चतुर्भुज गजोदर गजशिरा गजस्कंध गजेक्षण ॥ ५ ॥ अष्टदंष्ट्र चतुरवक्र मेघनादी जलंधर कराल ज्वालजिह्वामुख शतांग शतलोचन ॥ ६ ॥ सहस्रपाद सुमुख कृष्ण महाअसुर रणोत्कट दानपति शैलकंपी कुलाकुली ॥ ७ ॥ समुद्र रभस चण्ड महाअसुर धूम्र गोत्रज गोक्षुर रौद्र गोदन्त स्वस्तिक

तस्य तद्वचनं श्रुत्वा बलेर्वैरोचनस्य तु ॥ उद्योगं परमं चक्रुर्दानवा युद्धदुर्मदाः ॥ २ ॥ महापद्मो निकुम्भश्च कुम्भकर्णश्च वीर्यवान् ॥ काञ्चनाक्षः कपिस्कन्धो मैनाकः क्षितिकम्पनः ॥ ३ ॥ शितकेशोर्ध्ववक्रश्च वज्रनाभः शिखी जटी ॥ सहस्रबाहुर्विकटो व्याघ्राक्षः प्रियदर्शनः ॥ ४ ॥ एकाक्ष एकपान्मुण्डो विद्युदक्षश्चतुर्भुजः ॥ गजोदरो गजशिरा गजस्कन्धो गजेक्षणः ॥ ५ ॥ अष्टदंष्ट्रश्चतुर्वक्रो मेघनादी जलंधरः ॥ करालो ज्वालजिह्वास्यः शताङ्गः शतलोचनः ॥ ६ ॥ सहस्रपादः सुमुखः कृष्णश्चैव महासुरः ॥ रणोत्कटो दानपतिः शैलकम्पी कुलाकुलिः ॥ ७ ॥ समुद्रो रभसश्चण्डो धूम्रश्चैव महासुरः ॥ गोत्रजो गोक्षुरो रौद्रो गोदन्तः स्वस्तिको ध्रुवः ॥ ८ ॥ मांसलो मांसभक्षश्च वेगवान्केतुमाञ्छिबिः ॥ पङ्कदिग्धशरीरश्च बृहत्कीर्तिर्महाहनुः ॥ ९ ॥ समप्रभो विकुम्भाण्डो विरूपाक्षो महोदरः ॥ श्वेतशीर्षश्चन्द्रहनुश्चन्द्रहा चन्द्रतापनः ॥ १० ॥ विक्षरो दीर्घबाहुश्च मद्यपो मारुताशनः ॥ तालजङ्घो महाभागः सरभः शलभः क्रथः ॥ ११ ॥ समुद्रमथनो नादी विततश्च महाबलः ॥ प्रलम्बो नरको व्याली धेनुकः काललोचनः ॥ १२ ॥ वरिष्ठश्च गरिष्ठश्च भूतलोमा तथा विधुः ॥ दुष्प्रसादः किरीटी च सूचीवक्रो महासुरः ॥ १३ ॥

ध्रुव ॥ ८ ॥ मांसल मांसभक्ष वेगवान् केतुमान् शिबि पंकदिग्धशरीर बृहत्कीर्तिवाले महाहनु (ठोडी) वाले ॥ ९ ॥ समप्रभ विकुंभाण्ड विरूपाक्ष महोदर श्वेतशीर्ष चन्द्रहनु चन्द्रहा चन्द्रतापन ॥ १० ॥ विक्षर दीर्घबाहु मद्यप मारुताशन तालजंघ महाभाग सरभ शलभ क्रथ ॥ ११ ॥ समुद्रमथन नादी वितत महाबल प्रलम्ब नरक व्याली काललोचन ॥ १२ ॥ वरिष्ठ गरिष्ठ भूतलोमा विधु दुष्प्रसाद किरीटी सूचीवक्र महाअसुर ॥ १३ ॥

सुबाहु कंजबाहु करण कलशोदर सोमपा देवयाजी प्रवर वीरमर्दन ॥ १४ ॥ सुपथ खण्डमुक्ति शिखिनेत्र शिखिध्वज यह मरीचिके कीर्ति बढानेवाले दैत्य कहे ॥ १५ ॥ इनके सिवाय औरभी नानाभूषणोंसे भूषित अनेक सहस्रों रथोंमें स्थित हो युद्ध करनेको चले ॥ १६ ॥ यह दैत्य दिव्यवस्त्र और दिव्यमाला अनुलेपन किये दिव्य कवच पहरे दिव्य ध्वजाओंसे युक्त ॥ १७ ॥ दिव्य आयुधधारी दैत्य मेघकी समान गर्जन करते बडे बडे रथ-समूहोंसे पृथ्वीको चलायमान करते ॥ १८ ॥ महाबली दिव्य बलवाले अस्त्रधारी सर्पके शरीरकी समान महाभुजाओंसे व्याप्त दुर्जय दैत्योंमें श्रेष्ठ सुरारि

सुबाहुः कञ्जबाहुश्च करणः कलशोदरः ॥ सोमपो देवयाजी च प्रवरो वीरमर्दनः ॥ १४ ॥ सुपथः खण्डमुक्तिश्च शिखिनेत्रः शिखिध्वजः ॥ यथास्मृति मया प्रोक्ता मरीचेः कीर्तिवर्धनाः ॥१५॥ एते चान्ये च बहवो नानाभूषणभूषिताः ॥ रथैर्बहुसाहस्रैर्ययुर्योद्धुमरिंदमाः ॥१६॥ दिव्याम्बरधरा दैत्या दिव्यमाल्यानुलेपनाः ॥ दिव्यैश्च कवचैर्नद्धा दिव्यैश्चोच्छ्रितैर्ध्वजैः ॥१७॥ दिव्यायुधधरा दैत्या गर्जमाना यथाम्बुदाः ॥ बृहद्भी रथघोषैश्च चालयन्तो वसुन्धराम् ॥ १८ ॥ महाबला दिव्यबलास्त्रधारिणो भुजङ्गभोगप्रतिमैर्महाभुजैः ॥ सुदुर्जया दैत्यवृषाः सुरारयो दितिप्रिया लोहितलोहितेक्षणाः ॥ १९ ॥ ते जग्मुरर्कज्वलनेन्द्रवीर्या महेन्द्रवज्राशनितुल्यवेगाः ॥ विवृद्धदंष्ट्रा हरिधूम्रकेशा विवर्द्धमानाः शरदीव मेघाः ॥ २० ॥ सहस्रबाहुर्बाणश्च बलेः पुत्रो महाबलः ॥ रथातिरथकोट्या वै सन्नह्यत महाबलः ॥२१॥ सर्वे मायाधरा दैत्याः सर्वे दिव्यास्त्रयोधिनः ॥ सर्वे मदबलोत्सिक्ताः सर्वे लब्धवराः पुरा ॥२२॥ सर्वे काञ्चनशैलाभाः पीतकौशेयवाससः ॥ किरीटोष्णीषमुकुटा दिव्यभूषणभूषिताः ॥ २३ ॥

दितिप्रिय लोहितवर्ण लाल नेत्र किये ॥ १९ ॥ सूर्यके प्रकाशकी समान पराक्रमी महेन्द्रके वज्रकी तुल्य वेगवाले बडी डाढ हरित वर्णके धुमैले केश बढे हुए शरत्कालके मेघकी समान ॥ २० ॥ बलिका पुत्र सहस्र भुजावाला बाण जो करोडों अतिरथियोंसेभी महाबली था ॥ २१ ॥ यह सब दैत्य मायाके जाननेवाले दिव्य अस्त्रधारी मदके बलसे उत्सिक्त सम्पूर्ण वरदान पाये हुए ॥ २२ ॥ सब सुवर्णके पर्वतकी समान कान्तिमान् पीत रेशमी वस्त्र पहरे किरीट पगडी मुकुट दिव्य भूषणोंसे भूषित ॥ २३ ॥

सबके सुवर्णके कवच सुवर्णकी ध्वजा आकाशमें शरद्ऋतुके ग्रहोंकी समान रथोंमें स्थित विराजमान होते थे ॥ २४ ॥ तपाये हुए उत्तम सुवर्ण और अग्निकी समान कान्तिमान् सुवर्ण पर्वतपर स्थित टेसूके फूलकी समान शोभित होते थे ॥ २५ ॥ उनके मध्यमें चौमासेके उठे हुए मेघकी समान बाण शोभित होता था और शक्ति गदा हाथमें लिये त्रिनल्व (१२०० हाथके) प्रमाण रथमें स्थित था ॥२६॥ उसमें विचित्र चित्रित ध्वजा और विचित्र रचना थी वह रथ गदा और परिघसे सम्पूर्ण सुवर्णजालसे विभूषित था ॥ २७ ॥ दैत्य इस प्रकार उसके साथ थे जैसे सूर्यके संग वालखिल्य ऋषि

हिरण्यकवचाः सर्वे हिरण्यध्वजकेतवः ॥ स्यन्दनस्था व्यराजन्त शारदा इव खे ग्रहाः ॥ २४ ॥ तापनीयैर्वरैर्निष्कैरनलज्वलितप्रभैः ॥ हेमपर्वतशृङ्गस्थाः पुष्पिता इव किंशुकाः ॥ २५ ॥ तेषां मध्यगतो बाणः प्रावृषीवोत्थितो घनः ॥ स्थितः शक्तिगदापाणिस्त्रिनल्वप्रतिमे रथे ॥ २६ ॥ विचित्राश्वध्वजयुगे चित्रभक्तिविराजिते ॥ गदापरिघसंपूर्णे हेमजालविभूषिते ॥ २७ ॥ अन्वीयमानो दितिजैर्वालखिल्यैरिवांशुमान् ॥ नानाप्रहरणैर्घोरैस्तीक्ष्णदंष्ट्रैरिवोरगैः ॥ २८ ॥ पञ्च तस्य महावीर्या दानवा युद्धदुर्मदाः ॥ ररक्षू रथमव्यग्रा व्यादितास्या भयावहाः ॥ २९ ॥ सुबाहुर्मेघनादश्च भीमगर्भश्च वीर्यवान् ॥ तथा कनकमूर्धा च वेगवान्केतुमानिति ॥ ३० ॥ कनकरजतभक्तिचित्रपार्श्वे पतगपतिप्रतिमे रथे स्थितोऽभूत् ॥ जलदनिनदतुल्यनेमिघोषे सुरगणसैन्यवधाय दानवेन्द्रः ॥ ३१ ॥ अनायुषायाः पुत्रस्तु बलो नाम महासुरः॥ वृतः शतसहस्रेण रथानां भीमवर्चसाम् ॥ ३२ ॥ युक्तमृक्षसहस्रेण रथमारुह्य वीर्यवान् ॥ नीलायसमयं घोरं वायसाङ्कं सुदुर्जयम् ॥ ३३ ॥

गमन करते हैं अनेक प्रकारके घोर प्रहारयुक्त तीक्ष्ण दंष्ट्रावाले सर्पोंकी समान थे ॥ २८ ॥ पांच महावीर युद्धदुर्मद दानव महाभयावना मुख फैलाये उसके रथकी रक्षा करते थे ॥ २९ ॥ सुबाहु मेघनाद वीर्यवान् भीमगर्भ कनकमूर्धा वेगवान् केतुमान् ॥ ३० ॥ सुवर्ण और चांदीकी भक्ति (रचना) जिस रथके पार्श्वभागमें होती थी वह गरुडकी समान वेगवान् उस रथमें स्थित हुआ जिसकी नेमिका शब्द मेघकी समान होता है इस प्रकार दानवेन्द्र रथमें स्थित हुआ ॥ ३१ ॥ अनायुषाका पुत्र महाबली महासुर भयंकर सौ हजार रथोंसे युक्त ॥ ३२ ॥ जिसमें सहस्रऋक्ष जुते हुए थे नीले लोह

मय घोर वायस अंकवाले परम दुर्जय थे ॥ ३३ ॥ वह श्रीमान् नीलाम्बरधारी वैडूर्य पर्वतकी समान दानव बडे वेगसे धावमान हुआ ॥ ३४ ॥ वहां वह सागररूपी सेनाके मध्यमें शोभित हुआ जैसे प्रातःकाल सागरके समीप सूर्य शोभित होता है ॥ ३५ ॥ तपाये हुए सुवर्णकी समान कान्तिमान् चन्द्रमाके समान आकार और बिजलीकी तुल्य गुणसे युक्त मुख्य किरीटसे शोभायमान जैसे शृंगोंसे पर्वत शोभित होता है ॥ ३६ ॥ साठ सहस्र रथ नमुचि असुरके साथ चले जिनमें खर जुते जिनका मेघकी समान शब्द होता था ॥ ३७ ॥ वे सब चित्रयोधी अनेक प्रकारके प्रहार करनेवाले थे सब

नीलाम्बरधरः श्रीमान्वैडूर्याचलसन्निभः ॥ महता रथवेगेन प्रययौ दानवस्तदा ॥ ३४ ॥ तत्रैकार्णवसंकाशे सैन्यमध्ये व्यराजत ॥ प्रभातसमये श्रीमान्त्समुद्रस्थ इवांशुमान् ॥ ३५ ॥ सुतप्तजाम्बूनदतुल्यवर्चसा निशाकराकारतडिद्गुणाकरः ॥ किरीटमुख्येन विभाति शोभिना यथा गिरिः शृङ्गवरेण भास्वता ॥ ३६ ॥ षष्ठी रथसहस्राणि नमुचेरसुरस्य वै ॥ खरयुक्तानि सर्वाणि मेघतुल्यरवाणि च ॥ ३७ ॥ नानाप्रहरणाः सर्वे सर्वे ते चित्रयोधिनः ॥ महाभ्रघनसंकाशा वेगवन्तो महाबलाः ॥ ३८ ॥ रथो व्याघ्रसहस्रेण युक्तः परमवेगवान् ॥ नमुचेरसुरेन्द्रस्य सर्वरत्नविभूषितः ॥ ३९ ॥ शार्दूलचिह्नः शुशुभे तस्य केतुर्हिरण्मयः ॥ रथमध्ये सुरेशस्य मध्यंदिनरविर्यथा ॥ ४० ॥ स भीमवेगश्च महाबलश्च प्रगृह्य चापं हिमवानिव स्थितः ॥ नीलाम्बरः काञ्चनपट्टनद्धो दिशागजो यद्वदुपेतकक्षः ॥ ४१ ॥ किङ्किणीजालनिर्घोषं तपनीयविभूषितम् ॥ सपताकध्वजोपेतं ससंध्यमिव तोयदम् ॥ ४२ ॥ चक्रैश्चतुर्भिः संयुक्तमष्टनल्वायतान्तरम् ॥ हेमजालाकुलं दीप्तं कालचक्रमिवोदितम् ॥ ४३ ॥

महामेघकी समान वेगवाले महाबली थे ॥ ३८ ॥ वह सहस्र व्याघ्र जुने रथमें स्थित हो परम वेगवान् नमुचि असुरका रथ सम्पूर्ण रत्नोंसे भूषित था ॥ ३९ ॥ उसकी हिरण्मय ध्वजा शार्दूलके चिह्नसे शोभित थी और उसके रथमें शोभा मध्याह्नके सूर्यकी समान थी ॥ ४० ॥ वह भीमवेगवान् महाबली भयंकर चाप लेकर हिमालयकी समान स्थित हुआ नीलाम्बर सुवर्णके पट्टसे जडित जैसे कक्षसहित दिशाका हाथी हो तद्वत् शोभित हुआ ॥ ४१ ॥ किंकिणीसमूहका शब्द सुवर्णसे भूषित पताका ध्वजासे युक्त संध्याकालीन मेघकी समान ॥ ४२ ॥ चार पहियोंसे संयुक्त आठ नल्व

(३२०० हाथ) के अन्तरवाला सुवर्णजालसे आकुल और दीप्त कालचक्रकी समान उदित ॥ ४३ ॥ अनेक प्रकारके घोर आयुध धारे व्याघ्रचर्मसे मढे ईहामृगोंके समूहोंसे युक्त चित्र रचनासे विराजित ॥ ४४ ॥ बाणोंसे पूर्ण तूणीर शक्ति तोमरसे संकुल गदा मुद्गरसे युक्त धनुषरत्नसे विभूषित ॥ ४५ ॥ लम्बायमान केशर और कान्तिवाले सहस्रों ऋक्षोंसे युक्त और सुवर्ण बढी सिंहध्वजाओंसे शोभित ॥ ४६ ॥ उस मयकी मायासे युक्त उस रथमें दैत्य शोभित हुआ और रथमें स्थित हो उदय हुए सूर्यकी समान शोभित हुआ ॥ ४७ ॥ उसमें उज्ज्वल रजतके बिंदु

नानायुधधरं घोरं व्याघ्रचर्मपरिष्कृतम् ॥ ईहामृगगणाकीर्णं चित्रभक्तिविराजितम् ॥ ४४ ॥ तूणीरशरसंपूर्णं शक्तितोमरसंकुलम् ॥
गदामुद्गरसंबाधं चापरत्नविभूषितम् ॥ ४५ ॥ युक्तमृक्षसहस्रेण लम्बकेसरवर्चसा ॥ राजतेन विकीर्णेन शोभितं सिंहकेतुना ॥ ४६ ॥
स तेन शुशुभे दैत्यो मयो मायाविसर्पिणा ॥ रथरत्ने स्थितः श्रीमानुदयस्थ इवांशुमान् ॥ ४७ ॥ विमलरजतबिन्दुशोभिताङ्गं
मणिकनकोज्ज्वलचारुभक्तिचित्रम् ॥ अयुतशतसहस्रमूर्जितानां मयमनुयाति तदा महारथानाम् ॥ ४८ ॥ इति श्रीमहाभारते
खिलेषु हरिवंशे भविष्यपर्वणि वामनप्रादुर्भावे मयस्य युद्धाभिगमनं नामैकोनपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥ ४९ ॥ वैशम्पायन उवाच ॥
पुलोमा तु महादैत्यस्तिमिराकारगह्वरम् ॥ आरुरोहायसं घोरं रथं पररथारुजम् ॥ १ ॥ उत्कर्णपर्वताकारं लोहजालान्तरान्तरम् ॥
नेमिघोषेण महता क्षुभ्यन्तमिव सागरम् ॥ २ ॥ गदापरिघनिस्त्रिंशैः सतोमरपरश्वधैः ॥ शक्तिमुद्गरसंकीर्णं सतोयमिव तोयदम् ॥ ३॥

शोभित होते थे उज्ज्वल सुवर्णकी विचित्र रचना हो रही थी सौ दश सहस्र महारथी उस मयके पीछे पीछे चले ॥ ४८ ॥ इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे भविष्यपर्वणि भाषायां वामनप्रादुर्भावे मयस्य युद्धाभिगमनं नामैकोनपंचाशत्तमोऽध्यायः ॥ ४९ ॥ वैशंपायन बोले; पुलोमा नाम महादैत्य लोहेके बने तिमिरके समान महागह्वर रथमें चढा जो रथ दूसरेके रथोंका तोडनेवाला था ॥ १ ॥ उठे पर्वतके आकारवाला लोहजालके अन्तरसे युक्त बडे भारी पहियोंके शब्दसे सागरको क्षुभित करता हुआसा ॥ २ ॥ गदा परिघ निस्त्रिंश तोमर फरशे शक्ति मुद्गरोंसे संकीर्ण जल भरे

मेघकी समान प्रकाशित ॥ ३ ॥ सहस्र ऊंट जुते वायुकी समान वेगवान् रथमें चढकर पुलोमा चला ॥ ४ ॥ इस युद्धदुर्मद महारथी पुलोमाके साथ तेजसे सुवर्णकी समान प्रकाशमान साठ सहस्र रथ चले ॥ ५ ॥ बडी भारी खड्ग और ध्वजाओंसे युक्त पर्वतमें स्थित सूर्यकी समान रथमें स्थित हुए शोभित होता था ॥ ६ ॥ सुन्दर सुवर्णकी पट्टियोंसे जटित कालकी समान वह महागदाको ग्रहण कर शत्रुके मध्यमें विराजित ऐसे हुआ मानो केतु काली लोहेकी गदा लिये पृथ्वीमें स्थित हो रहा है ॥ ७ ॥ बलवान् हयग्रीव, हयग्रीव नामक महाअसुरोंके सहित सौ सहस्र रथोंसे युक्त ॥ ८ ॥

रथमुष्ट्रसहस्रेण संयुक्तं वायुवेगिना ॥ पुलोमारुह्य युद्धाय प्रस्थितो युद्धदुर्मदः ॥ ४ ॥ षष्टिं रथसहस्राणि पुलोमानं महारथम् ॥ अन्वयुः सूर्यवर्णानि प्रदीप्तानीव तेजसा ॥ ५ ॥ खड्गध्वजेन महता तप्तकाञ्चनवर्चसा ॥ भ्राजते रथमध्यस्थः पर्वतस्थ इवांशुमान् ॥ ६ ॥ सुचारुचामीकरपट्टनद्धां महागदां कालनिभां महाबलः ॥ प्रगृह्य बभ्राज स शत्रुमध्ये कार्ष्णायसीं केतुरिवास्थितो-र्व्याम् ॥ ७ ॥ हयग्रीवस्तु बलवान् हयग्रीवैर्महासुरैः ॥ वृतः शतसहस्रेण रथानां रथिसत्तमः ॥ ८ ॥ धराधरनिभाकारं सपत्नानी-चमर्दनम् ॥ स्यन्दनं भीममास्थाय युद्धायाभिमुखः स्थितः ॥ ९ ॥ श्वेतशैलप्रतीकाशः श्वेतकुण्डलभूषणः ॥ शुशुभे रथमध्यस्थः श्वेतशृङ्ग इवाचलः ॥ १० ॥ महता सप्तशीर्षेण शोभितो नागकेतुना ॥ वैडूर्यमणिचित्रेण प्रवालाङ्कुरशोभिना ॥ ११ ॥ अमित-बलपराक्रमाकृतीनां वररथिनामनुजग्मुरूर्जितानाम् ॥ असुरगणशताभिगच्छमानं त्रिदशगणा इव वासवं प्रयान्तम् ॥ १२ ॥

पर्वतके समान आकार शत्रुकी सेनाका मर्दन करनेवाले महाभयंकर रथमें स्थित हो युद्ध करनेको चला ॥ ९ ॥ श्वेतपर्वतकी समान श्वेत कुंडल भूषण धारण किये श्वेत शृंग पर्वतकी समान रथके मध्यमें स्थित हुआ ॥ १० ॥ बडी भारी सात शिरवाली नागकेतुसे शोभित चित्र वैडूर्यमणिके अंकुरसे शोभित ॥ ११ ॥ अमित बल और पराक्रमकी आकृतिवाले बडे बडे रथी उसके साथ चले जिनके पीछे सैकडों असुरगण चलते थे जैसे इन्द्रके पीछे

देवता चलते हैं ॥ १२ ॥ सर्वशास्त्रमें विशारद महापंडित प्रह्लाद सब मायाधारी श्रीमान् सौ यज्ञका कर्ता ॥ १३ ॥ अग्निकी समान कान्तिमान् मेघोंके गर्जनाकी समान बडी भारी रथपंक्तिसे युक्त ॥ १४ ॥ उनके अमितवीर्यवान् शूर सुवर्णके कुंडल धारण करनेवाले सहस्रों दैत्योंके साथ देवतोंके सहित ब्रह्माजीकी समान प्रकाशित ॥ १५ ॥ अपने वीर्यसे अग्रगी बडे दन्त मतवाले हाथीकी समान विक्रमवाले सब देवताओंकी सेना क्षुभित करनेको स्थित हुए ॥ १६ ॥ अपने वीर्यसे सागरकी समान दीप्ताग्निकी समान प्रज्वलित तेजमें सूर्यके आकार क्षमामें पृथ्वीकी समान ॥ १७ ॥ ताल ध्वजवाले

प्रह्लादस्तु महाप्राज्ञः सर्वशास्त्रविशारदः ॥ सर्वमायाधरः श्रीमान्यष्टा क्रतुशतैरपि ॥ १३॥ समनद्युत तेजस्वी पावकार्चिःसमप्रभः ॥ रथानीकेन महता दुर्दिनाम्भोदनादिना ॥ १४ ॥ शूरेणामितवीर्येण हेमकुण्डलधारिणा ॥ वृतो दैत्यसहस्रेण देवैरिव पितामहः॥ १५॥ स्ववीर्यादग्रणीर्दन्ती मत्तवारणविक्रमः ॥ सुरसैन्यस्य सर्वस्य प्रतिक्षोभ इव स्थितः ॥ १६ ॥ स्ववीर्येणोदधेस्तुल्यः प्रदीप्ताग्निरिव ज्वलन् ॥ तेजसा भास्कराकारः क्षमया पृथिवीसमः॥ १७॥ तालध्वजेन दीप्तेन रथेनातिविराजता ॥ तं यान्तमनुयान्ति स्म दानवाः शतसंघशः ॥ १८॥ सर्वे हिरण्यकवचाः सर्वे रत्नविभूषिताः ॥ दिव्याङ्गरागाभरणाः समरेष्वनिवर्तिनः ॥ १९॥ जाम्बूनदविचित्राङ्गा वैडूर्यविकृताङ्गदाः ॥ दिव्यस्यन्दनमध्यस्थाः स्वस्था इव महाग्रहाः॥ २०॥ आचारवांश्चैव जितेन्द्रियश्च धर्मे रतः सत्यपरोऽनसूयः ॥ स्थितोऽग्नितोयाम्बुदवायुकल्पो रूपी यथा सर्वहरः कृतान्तः ॥ २१ ॥ शम्बरस्तु महामायो रथयूथपयूथपः ॥ आरुरोह रथं दिव्यं सर्वयुद्धविशारदः ॥ २२ ॥

दीप्तिमान् रथसे विराजित उनके चलनेपर अनेक दानव उनके पीछे चले ॥ १८ ॥ सब सुवर्णके कवचवाले सबही रत्नोंसे भूषित दिव्य अंगरागके आभरणवाले समरसे निवृत्त न होनेवाले ॥ १९ ॥ जाम्बूनदकी समान विचित्र अंग वैडूर्य मणिजटित बाजूबंद पहरे दिव्य स्यन्दनके मध्यमें स्थित स्वस्थ हुए महाग्रहोंकी समान स्थित ॥ २० ॥ आचारवान् जितेन्द्रिय धर्मरत सत्यमें तत्पर असूयारहित अग्नि जल वायुके समान स्थित हुए जैसे कृतान्त स्थित होता है ॥ २१ ॥ महामायी शम्बर रथी यूथपतियोंका यूथपति सब युद्धका जाननेवाला दिव्य रथपर चढा ॥ २२ ॥

वह महाबाहु लालनेत्र किये तपे सुवर्णके कुंडल धारण किये मेघकी समान वर्ण दिव्यमाला पहरे दिव्य अनुलेपन लगाये ॥ २३ ॥ बिजली और ज्योतिके समान सूर्यकान्तिवाले मुकुटसे विराजित विचित्र मणि रत्न और वैडूर्यसे शोभित ॥ २४ ॥ महातपे सुवर्णके कवचसे विराजित सन्ध्याके लाल बादलोंसे संच्छन्न पर्वतकी समान ॥ २५ ॥ तीस सहस्र चित्रयोधाओंका समूह जो बली और कालकी समान था शम्बरके पीछे चला ॥ २६ ॥ शुक्लवर्णके सहस्र रथोंसे युक्त क्रौंच ध्वजयुक्त संग्रामशोभी रथसे व्याप्त ॥ २७ ॥ जिसमें अनेक वैडूर्य मणि और सुवर्णजाल शोभित हो रहे हैं अनेक प्रकारके

लोहिताक्षो महाबाहुः प्रतप्तोत्तमकुण्डलः ॥ जीमूतघनसंकाशो दिव्यस्रगनुलेपनः ॥२३॥ विद्युज्ज्योतिर्निकाशेन मुकुटेनार्कवर्चसा ॥ मणिरत्नविचित्रेण वैडूर्यवरशोभिना ॥ २४ ॥ तपनीयेन महता कवचेन विराजता ॥ संध्याभ्रेणेव संच्छन्नः श्रीमानस्तशिलोच्चयः ॥ २५ ॥ त्रिंशच्छतसहस्राणि दैत्यानां चित्रयोधिनाम् बलिनां कालकल्पानामन्वयुः शम्बरं तदा ॥ २६ ॥ युक्तं हयसहस्रेण शुक्लवर्णेन राजता ॥ क्रौञ्चध्वजेन दीप्तेन रथेनाहवशोभिना ॥ २७ ॥ व्यासक्तवैडूर्यसुवर्णजालं नानाविहङ्गैरपि भक्तिचित्रम् ॥ विद्युत्प्रभं भीमरवं सुवेगं रथं समारुह्य रराज दैत्यः ॥ २८ ॥ इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे भविष्यपर्वणि वामनप्रादुर्भावे शम्बरादिदैत्यसन्नहनं नाम पञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥ ५० ॥ वैशम्पायन उवाच ॥ अनुह्रादश्च तत्रैव दैत्यः परमदुर्जयः ॥ हिरण्यकशिपोः पुत्रः प्रययौ युद्धलालसः ॥ १ ॥ चतुश्चक्रेण यानेन त्रिनल्वप्रतिमेन तु ॥ युक्तेनाश्वैर्महावीर्यैः सिंहवक्त्रैरजिह्मगैः ॥ २ ॥ भीमगम्भीरनादेन नेमिघोषेण वीर्यवान् ॥ चालयन्वसुधां सर्वां सशैलवनकाननाम् ॥ ३ ॥

विहंगोंकी रचना हो रही है बिजलीकी समान भीमवेगवान् रथमें वह दैत्यराज चढा ॥ २८ ॥ इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे भविष्यपर्वणि भाषायां वामनप्रादुर्भावे शम्बरादिदैत्यसन्नहनं नाम पंचाशत्तमोऽध्यायः ॥ ५० ॥ वैशंपायन बोले; परम दुर्जय अनुह्राद दैत्य हिरण्यकशिपुका पुत्र युद्ध करनेकी इच्छासे चला ॥ १ ॥ उसका रथ चार पहियेका (१२०० हाथके) विस्तारमें था सिंहके मुखवाले अकुटिल चलनेवाले घोडे उसमें जुते थे ॥ २ ॥ उसके पहियोंका शब्द बडा गम्भीर होता था शैल वन कानन सहित सब पृथ्वीको चलायमान किये देता था ॥ ३ ॥

उस समय दैत्यसमूह गर्जना करते हुए अनुह्लादके पीछे चले सुवर्णके सेकडों सहस्र रथ उनके पीछे चले ॥ ४ ॥ परिघ भिंदिपाल भल्ल पाशे परसे अनेक आयुधधारी शूल मुद्गर हाथमें लिये ॥ ५ ॥ सुवर्णजालमें लगे हुए वस्त्रोंसे अलंकृत चित्रकवच पहरे रथोंसे सज्जमान महाअसुर चले ॥ ६ ॥ उस समय बडे विशाल पर्वतकी तुल्य चित्रित अंगवाले रथमें जो उसके अनुरूपही था वह दैत्यपति स्थित हुआ जिसकी समान और रूप नहीं था ॥ ७ ॥ बलवान् अग्निकी समान कान्तिमान् विरोचन सर्व अस्त्रमें कुशल बडे भारी रथमें स्थित ॥ ८ ॥ व्यूहोंके विनियोगका जाननेवाला ज्ञानविज्ञानके

विनर्दमाना दैत्यौघा अनुह्लादं ययुः शुभाः ॥ शतं शतसहस्राणां रथानां हेममालिनाम् ॥ ४ ॥ परिघैर्भिन्दिपालैश्च भल्लैः पाशैः परश्वधैः ॥ विविधायुधहस्तास्ते शूलमुद्गरपाणयः ॥ ५ ॥ सुवर्णजालनिर्मुक्तैर्वस्त्रैश्च समलंकृताः ॥ रथैश्चित्रैश्च कवचैः सज्जमाना महासुराः ॥ ६ ॥ तदा विशालोच्छ्रितशैलरूपे बभौ रथे काञ्चनचित्रिताङ्गे ॥ दैत्याधिपः सत्त्वबलानुरूपे समास्थितस्त्वप्रतिमे सुरूपे ॥ ७ ॥ विरोचनश्च बलवान्वैश्वानरसमद्युतिः ॥ महता रथवंशेन सर्वास्त्रकुशलः शुचिः ॥ ८ ॥ व्यूहानां विनियोगज्ञो ज्ञानविज्ञानतत्त्ववित् ॥ बलेः पिता सुरवरः सुराणामिव वासवः ॥ ९ ॥ सर्वायुधसमोपेतं किङ्किणीजालभूषितम् ॥ युक्तानां वाजिमुख्यानां सहस्रेणाशुगामिनाम् ॥ १० ॥ रथमारुह्य दैत्येन्द्रो बभौ मेरुरिवापरः ॥ किङ्किणीजालपर्यन्तं गजेन्द्रध्वजशोभितम् ॥ संध्याभ्रसमवर्णाभिः पताकाभिरलंकृतम् ॥ ११ ॥ प्रवालजाम्बूनदभक्तिचित्रं व्यालं विकारान्तरनेमिघोषम् ॥ रथं समारुह्य किरीटमाली ययौ स युद्धाय महासुरेन्द्रः ॥ १२ ॥ विरोचनानुजश्चैव कुजम्भो नाम दानवः ॥ स्यन्दनैर्बहुसाहस्रैर्मणिकाञ्चनभूषितैः ॥ १३ ॥

तत्त्वका ज्ञाता बलिका पिता असुरोंमें श्रेष्ठ देवताओंमें इन्द्रकी समान ॥ ९ ॥ सम्पूर्ण आयुधोंसे युक्त किंकिणीजालसे भूषित सहस्र वेगगामी घोडोंसे युक्त ॥ १० ॥ रथमें चढ वह दैत्येन्द्र मेरुकी समान स्थित हुआ किंकिणीजाल पर्यंत महेन्द्र ध्वजसे शोभित सन्ध्याकालसे मेघकी समान पताकाओंसे शोभित ॥ ११ ॥ मूंगे और सुवर्णकी रचनासे व्याप्त सर्पके बंधसे युक्त पहियोंके महाशब्दसे युक्त किरीटधारी दैत्येन्द्र रथपर स्थित हो युद्ध करनेको चला ॥ १२ ॥ विरोचनका अनुज कुजंभ नाम दानव अनेक सहस्रों मणिकंचनसे भूषित रथसे ॥ १३ ॥

युक्त महाबली शत्रुनाशी प्रास पाश गदा हाथमें लिये युद्धाकांक्षी दानवोंके सहित ॥ १४ ॥ पर्वतकी समान आकार काले अंजनकी गुटिकाकी समान कान्तिमान् विराजमान किरीटकी कान्तिसे व्याप्त ॥ १५ ॥ सर्व रत्न जडे कवचसे युक्त बडे भारी कान्तिमान् शरीरसे रथमें सूर्यचन्द्रमाकी समान शोभित ॥ १६ ॥ बडे भारी सुवर्णके बने तालवृक्षसे शोभित रथमें मेरुमें स्थित सूर्यकी समान विराजित ॥ १७ ॥ रणपटु अतिवीर्यवान् सत्त्वबुद्धि समरमें शीघ्रतासे देवताओंके सन्मुख जानेवाले असुरगणोंसे आवृत्त कुजंभ देवताओंसे व्याप्त इन्द्रकी समान शोभित हुआ ॥ १८ ॥ इसी प्रकार पर्वत

वृतो मदबलोत्सिक्तैर्दैवारिभिरिरंदमः ॥ प्रासपाशगदाहस्तैर्दानवैर्युद्धकांक्षिभिः ॥ १४ ॥ स पर्वतनिभाकारो भिन्नाञ्जनचयप्रभः ॥ महता भ्राजमानेन किरीटेन सुवर्चसा ॥१५॥ सर्वरत्नविचित्रेण कवचेन च संवृतः ॥ महता दीप्तवपुषा रथेनेन्दुरिवांशुमान् ॥१६॥ शातकौम्भेन महता तालवृक्षेण केतुना ॥ रराज रथमध्यस्थो मेरुस्थ इव भास्करः॥१७॥ रणपटुरतिवीर्यसत्त्वबुद्धिः सुरसमराभिमुखः प्रयाति तूर्णम् ॥ असुरगणसमावृतः कुजम्भस्त्रिदशगणैरिव वृत्रहामरेन्द्रः ॥१८॥ असिलोमा च तत्रैव दानवः पर्वतायुधः ॥ दारुणं वपुरास्थाय दारुणो दारुणाननः ॥१९॥ रौद्रः शकटचक्राक्षो महाकायो महाबलः॥ कृष्णवासा महादंष्ट्रः किरीटी लोहिताननः॥२०॥ वृतो दैत्यसहस्रौघैर्गिरिपादपयोधिभिः ॥ नानारूपधरैर्हन्तैर्दैत्यैस्त्रिदशशत्रुभिः ॥ २१॥ ते शूलहस्ता गगने चरन्त इतस्ततस्तोयदवृन्द-तुल्याः ॥ खं छादयन्तस्तपनीयनिष्का यथोन्नताः प्रावृषि कालमेघाः ॥ २२ ॥ अनायुषायाः पुत्रस्तु वृत्रो नाम महासुरः ॥ देवशत्रुर्महाकायस्ताम्रास्यो निर्नतोदरः ॥ २३ ॥ दीप्तजिह्वो हरिश्मश्रुरूर्ध्वरोमा महाहनुः ॥ नीलाङ्गो लोहितमुखः किरीटी लोहिताम्बरः॥ २४ ॥

आयुधवाला असिलोमा दैत्य दारुण मुख दारुण शरीर ॥ १९ ॥ रौद्र शकट चक्राक्ष महाकायावान् महाबली कृष्ण वस्त्र धारे महाडाढसे युक्त किरीट-धारी लोहितानन ॥ २० ॥ सहस्रों दैत्योंसे व्याप्त जो गिरि और वृक्षोंसे युद्ध करते थे अनेक रूपधारी इन देवताओंके शत्रु दैत्योंके साथ ॥ २१ ॥ जो शूल हाथमें लिये आकाशगामी इधर उधर मेघोंकी समान विचरनेवाले अपनी सुवर्णतुल्य कान्तिसे आकाशको आच्छादन करते वर्षाकालके मेघकी समान उन्नत ॥ २२ ॥ और अनायुषाका पुत्र वृत्र नाम दानव देवशत्रु महाकाय ताम्रास्य निर्नतोदर ॥ २३ ॥ दीप्तजिह्व हरिश्मश्रु ऊर्ध्वरोमा महाहनु

नीलांग लोहितमुख किरीटी लोहिताम्बर ॥ २४ ॥ आजानुबाहु विकृत श्वेतदंष्ट्र बिभीषण महामाया धारण करनेवाला भीम सुवर्णकेयूर भूषणधारी ॥ २५ ॥ बडे भारी मणिजटित कवचसे युक्त हेममालाधारी रौद्र चक्रकेतु अमर्षण ॥ २६ ॥ सैकडों किंकणीजालसे युक्त सुवर्णके भूषणसे विभूषित ध्वजा पताकायुक्त सहस्र घोडे जुते रथमें ॥ २७ ॥ बहुतसी रथोंकी सेना ले युद्ध करनेको गया वह दैत्योंका आनंद बढानेवाला दिव्यरथमें स्थित हो चला ॥ २८ ॥ तपाये सुवर्णबिंदुकी समान पिंगलनेत्रवान् दितिपुत्र दैत्योंकी सेनाका रक्षक खिले कमलकी समान सुन्दर नेत्रवान् श्वेतदन्तवाला रथके

आजानुबाहुर्विकृतः श्वेतदंष्ट्रो विभीषणः ॥ महामायाधरो भीमो हेमकेयूरभूषणः ॥ २५ ॥ महता मणिचित्रेण कवचेन तु संवृतः ॥
हेममालाधरो रौद्रश्चक्रकेतुरमर्षणः ॥ २६ ॥ किङ्किणीशतसंघुष्टं तपनीयविभूषितम् ॥ युक्तं हयसहस्रेण रक्तध्वजपताकिनम् ॥ २७ ॥
रथानीकेन महता युद्धायाभिमुखो ययौ ॥ दिव्यं स्यन्दनमास्थाय दैत्यानां नन्दिवर्द्धनः ॥ २८ ॥ तपितकनकबिन्दुपिङ्गलाक्षो
दितितनयोऽसुरसैन्ययुद्धनेता ॥ विकसितकमलाभचारुचक्षुः सितदशनः शुशुभे रथासनस्थः ॥ २९ ॥ एकचक्रस्तु तत्रैव सूर्यचक्र
इवोदितः ॥ कालचक्रसमो रौद्रश्चक्रायुध इवोद्यतः ॥ सर्वायसमयं दिव्यं रथमास्थाय भासुरम् ॥ ३० ॥ वृतो दैत्यगणैर्हृष्टैः कालायस-
शिलायुधैः ॥ तस्याशीतिसहस्राणि रथिनां चित्रयोधिनाम् ॥ ३१ ॥ सर्वे कालान्तकप्रख्या रुधिराक्षा महाबलाः ॥ आयसैः काञ्चनैश्चैव
सन्नद्धा वरधार्णिनः ॥ ३२ ॥ व्यराजन्तान्तरिक्षस्था नीला इव पयोधराः ॥ सर्वे कालान्तकप्रख्या धीराः समरदुर्जयाः ॥ ३३ ॥ सागरो-
दरगम्भीरा नीलवक्त्रा दुरासदाः ॥ रेजुर्यान्तो सुरवरा वेलातीता इवार्णवाः ॥ ३४ ॥

ऊपर शोभित हुआ ॥ २९ ॥ एकचक्र दानव सूर्यचक्रकी समान उदय हुआ और कालचक्रकी समान महारौद्र चक्रायुधकी समान स्थित हुआ जिसका कान्तिमान् लोहनिर्मित रथ था उसमें स्थित हुआ ॥ ३० ॥ काले लोह और शिलाके आयुध लिये दैत्य उसके साथ हुए उसके साथ विचित्रयोधा अस्सी सहस्र रथी चले ॥ ३१ ॥ सबही कालकी समान रुधिराक्ष महाबली लोह और कांचनके बख्तर पहरे श्रेष्ठ ॥ ३२ ॥ नीले पयोधरकी समान अन्तरिक्षमें विराजमान थे सम्पूर्ण कालान्तककी समान धीर और समरदुर्जय थे ॥ ३३ ॥ सागरके उदरकी समान गंभीर नील मुख दुरासद

वे असुर वेला त्यागे हुए सागरकी समान शोभित हुए ॥ ३४ ॥ वे भीममायाके जाननेवाले बडे शरीरवाले किरीटवाले सुवर्णसे भूषित शरीर अपने आयुध उठाये दीप्तिमान् हस्तवाले पंखयुक्त पर्वतकी समान आकाशमें शोभित हुए ॥ ३५ ॥ तब बलिपुत्रने वृत्रभ्राताको देवताओंकी सेना नाश करनेकी आज्ञा दी ॥ ३६ ॥ वह तैयार हुआ सुवर्णके तालवृक्षकी समान उच्छ्रित बडी डाढोंवाला मालावान् रुचिर कुंडलोंसे युक्त ॥ ३७ ॥ लालमाला वस्त्रोंको धारे प्रचंड समरमें दुर्जय महाबली वृत्तनेत्र किरीट धनुषधारी प्रभिन्न मातंग और शार्दूलकी समान पराक्रमी ॥ ३८ ॥ महातालकी समान चाप और रुचिर

ते भीममायाः सुसमृद्धकायाः किरीटिनः काञ्चनभूषिताङ्गाः ॥ ययुस्तदा वायुधदीप्तहस्ता नभः सपक्षा इव पर्वतेन्द्राः ॥३५॥ संदिष्टो बलिपुत्रेण वृत्रभ्राता महासुरः ॥ वधाय सुरसैन्यस्य संनह्यस्वेति वीर्यवान् ॥३६॥ हेमताली महादंष्ट्रः स्रग्वी रुचिरकुण्डलः ॥ रक्तमाल्याम्बरधरश्चण्डः समरदुर्जयः ॥३७॥ सुमहावृत्तनयनः स किरीटी धनुर्धरः ॥ प्रभिन्न इव मातङ्गः शार्दूलसमविक्रमः ॥३८॥ महातालनिभं चापं तथा रुचिरसायकम् ॥ विस्फारयन्महावेगं वज्रनिष्पेषनिःस्वनम् ॥३९॥ रथेन खरयुक्तेन ध्वजेन भुजगेन ह ॥ शुशुभे स्यन्दनस्थः स संध्यागत इवांशुमान् ॥ ४० ॥ रथैस्तु बहुसाहस्रैर्हैमपट्टविभूषितैः ॥ कूटमुद्गरसंपूर्णैर्जलपूर्णैरिवाम्बुदैः ॥ स दैत्येन्द्रोऽभिचक्राम तस्मिन्युद्ध उपस्थिते ॥ ४१ ॥ पवनसमगतिर्विशालवक्षा विकसितपङ्कजचारुगर्भगौरः ॥ प्रवररथगतो ययौ स तूर्णं त्रिदशगणैरभिलक्षितप्रभावः ॥ ४२ ॥ सिंहिकातनयश्चैव राहुर्नाम महासुरः ॥ विकटः पर्वताकारः शतशीर्षा शतोदरः ॥ ४३ ॥

बाण धारे वज्रकी समान महावेगयुक्त धनुषको विस्फारण करते ॥ ३९ ॥ खरयुक्त रथ और सर्पकी ध्वजासे युक्त रथमें स्थित हुआ संध्याकालीन सूर्यकी समान स्थित हुआ ॥ ४० ॥ हेमपट्टसे विभूषित अनेकों सहस्र रथ कूट मुद्गरसे सम्पूर्ण जलपूर्ण मेघकी समान वह दैत्येन्द्र उपस्थित हो उस युद्धकी ओर चला ॥ ४१ ॥ पवनकी समान गतिमान् चौडी छातीवाला खिले हुए कमलकी समान गौरवर्ण रथपर स्थित हो वह बहुत शीघ्रतासे चला और देवताभी उसके प्रभावसे चमत्कृत थे ॥ ४२ ॥ सिंहिकापुत्र राहु नामक महाअसुर विकट पर्वताकार सौ शिर और सौ उदरवाला ॥ ४३ ॥

पीतमाला और पीतवस्त्र धारण किये सुवर्णसे बिभूषित स्निग्ध वैडूर्यमणि और कमलपत्रकी समान नेत्रवान् ॥ ४४ ॥ सम्पूर्ण काञ्चनसे युक्त मणिजालसे बिभूषित सौ पताका और परमवाजियोंसे युक्त ॥ ४५ ॥ रथमें वह महावीर्यवान् दैत्य स्थित हुआ और पृथ्वीतलको कंपित करता महानाद करने लगा ॥ ४६ ॥ मयने उसकी सुवर्णकी दिव्यकेतु निर्माण की थी और मोरपक्षकी समान दिव्य लोहका कवच निर्माण किया ॥ ४७ ॥ दूसरेभी भीमवेगवाले दिव्य रथ और अनेक प्रकारके आयुधोंसे सेव्यमान महाबली ॥ ४८ ॥ असुरगणोंका स्वामी अतिरथ महाअसुरोंका शरणदाता शत्रुओंके

पीतमाल्याम्बरधरो जाम्बूनदविभूषितः॥ स्निग्धवैडूर्यसंकाशः पद्मपत्रनिभेक्षणः॥४४॥सर्वकाञ्चनसंयुक्तं मणिजालपरिष्कृतम् ॥ पताकाशतसंकीर्णं युक्तं परमवाजिभिः॥४५॥ आरुरोह रथं दिव्यं दैत्यः परमवीर्यवान् ॥ ननाद च महानादं कम्पयन्वसुधातलम्॥४६॥ मयेन विहितो दिव्यस्तस्य केतुर्हिरण्मयः ॥ मयूरपक्षसंकाशं कवचं चायसं महत् ॥ ४७ ॥ भीमवेगरवैश्चान्यै रथैर्दिव्यैः सुरासुरैः ॥ नानाप्रहरणाकीर्णैः सेव्यमानो महाबलः ॥ ४८ ॥ असुरगणपतिर्गजेन्द्रगामी अतिरभसगतिर्महासुराणाम् ॥ अरिगणमभितो विभुः प्रयातो गिरिवरमस्तमिवांशुमान्सुदीप्तः ॥ ४९ ॥ विप्रचित्तिस्तु तत्रैव दनोर्वंशविवर्द्धनः कश्यपस्यात्मजः श्रीमान् ब्रह्मणस्तेजसा समः ॥ ५० ॥ यष्टा क्रतुसहस्राणां वेदवित्तपसान्वितः ॥ स्वयंभुवा दत्तवरो वरदश्च स्वयंभुवः ॥ ईशित्वं च महत्त्वं च वशित्वं च महाद्युतेः ॥५१॥ ऐश्वर्यगुणसंपन्नो ब्रह्मेव स्वयमूर्जितः ॥ सार्धं पुत्रैश्च पौत्रैश्च संनह्यत महाबलः ॥ ५२ ॥ सर्वे मायाधराः शूराः कृतास्त्रा रणदुर्जयाः ॥ सर्वे कमलवर्णाभा हेमकूटोच्छ्रयोच्छ्रयाः ॥ ५३ ॥

सामनेको चला जिस प्रकार सूर्य अस्ताचलको प्राप्त होते हैं ॥ ४९ ॥ इस प्रकार दनुवंशका बढानेवाला विप्रचित्ति दानव कश्यपका पुत्र तेजमें ब्रह्माकी समान ॥ ५० ॥ सहस्रों यज्ञोंका कर्ता वेदवित् तपसे युक्त ब्रह्मासे वरदान पाये स्वयं वरका देनेवाला ईशपना महत्पना और वशपना यह उस महाकान्तिमानमें था ॥ ५१ ॥ ऐश्वर्यके गुणसे सम्पन्न स्वयं ब्रह्माजीकी समान पुत्रों तथा पौत्रोंके साथ वह महाबली तैयार हुआ ॥ ५२ ॥ सब मायाधारी शूर कृतास्त्र रणदुर्जय कमलकी समान वर्णवाले सबही हेमकूटके शिखरकी समान ऊंचे ॥ ५३ ॥

सब रजतकी समान वर्णवाले कैलासशिखरकी समान उनके रथ मयने स्वयं मायासे बनाये थे ॥ ५४ ॥ वह विचरते हुए शरदके मेघकी समान शोभित हुए सब श्वेत हंसकी ध्वजावाले श्वेतदण्डसे युक्त ॥ ५५ ॥ श्वेत वस्त्र धारण करनेवाले दैत्य श्वेतमालाओंसे विभूषित सब श्वेतछत्र धारे और श्वेत कुंडल पहरे हुए थे ॥ ५६ ॥ मोतियोंके हार पहरे स्वर्गपतिकी समान शोभित होते थे महाग्रहोंकी समान शत्रुओंके लोम खडे करनेवाले ॥ ५७ ॥ लालवर्णके चित्रवस्त्र पहरे विचित्र आभरणोंसे विभूषित वह वीर्यवान् त्रैलोक्यविजय नामवाले रथमें स्थित होकर ॥ ५८ ॥ जो

सर्वे रजतसंकाशाः कैलासशिखरोपमाः ॥ मयेन निर्मितास्तेषां सर्वे मायामया रथाः ॥ ५४ ॥ विचरन्तो व्यराजन्त शारदा इव तोयदाः ॥ सर्वे हंसध्वजाः श्वेताः श्वेतदण्डसमुच्छ्रयाः ॥ ५५ ॥ श्वेताम्बरधरा दैत्याः श्वेतमाल्यविभूषिताः ॥ श्वेतातपत्राः सर्वे ते श्वेतकुण्डलमण्डिताः ॥ ५६ ॥ मुक्ताहारवृतोरस्का भान्ति नाकेश्वरा इव ॥ महाग्रहनिभाकाराः शत्रूणां लोमहर्षणाः ॥ ५७ ॥ रक्त-चित्राम्बरधराश्चित्राभरणभूषिताः ॥ त्रैलोक्यविजयं नाम रथमास्थाय वीर्यवान् ॥ ५८ ॥ कैलासशिखराकारमष्टनल्वायतान्तरम् ॥ युक्तं वाजिसहस्रेण सितेन शिववर्चसा॥पताकाशतसंच्छन्नं नानायुधविकाल्पितम्॥५९॥हिमांशुकुन्दप्रतिमं विशालं सितातपत्रं दनुजेश्वरस्य ॥ विभाति तस्योपरि धार्यमाणं श्वेताद्रिमूर्धोपगतः शशाङ्कः ॥ ६० ॥ केशी दानवमुख्यस्तु जिह्मस्ताम्राक्षदर्शनः ॥ नीलमेघचयप्रख्यः कालः पुरुषविग्रहः ॥ ६१ ॥ महाग्रहनिभाकारः शत्रूणां लोमहर्षणः ॥ चित्रमाल्याम्बरधरो रक्ताभरणभूषितः ॥ ६२ ॥ शताक्षः शतबाहुश्च हरिश्मश्रुर्महाबलः ॥ शंकुकर्णो महानादो वपुषा घोरदर्शनः ॥ ६३ ॥

कैलासके शिखरकी समान आठ नल्व (३२०० हाथका) श्वेतकान्तिमान् सहस्र घोडोंसे संयुक्त सैकडों पताका और अनेक आयुधोंसे संयुक्त थे॥५९॥ चन्द्रमा और कुंदके फूलकी समान विशाल छत्र दनुजपतिके ऊपर धारण किया गया उसकी ऐसी शोभा होती थी जैसे हिमालयके ऊपर चन्द्रमा॥६०॥ मुख्य केशी दानव जिह्म ताम्राक्ष दर्शन नीलमेघकी समान कालही मानो पुरुषशरीर धारण किये है ॥ ६१ ॥ महाग्रहके समान आकार और शत्रुओंको भयदाता चित्र माला और वस्त्र पहरे लाल आभरणमें विभूषित ॥६२॥ शताक्ष शतबाहु महाबली हरिश्मश्रु शंकुवर्ण महानाद शरीरसे घोरदर्शन॥६३॥

दिव्यमहिषोंके गलेमें बंधे अनेक घंटारव शब्दसे विराजित महावारिधरके आकारवाले रथमें स्थित हो ॥ ६४ ॥ नील केशरकी कान्तिवाले उग्रध्वजसे
शोभित अनेक प्रकारकी पताकाओंसे विराजित ॥ ६५ ॥ सौ सहस्र महाकान्तिमान् रथोंके समूह उस असुरेन्द्रके पीछे हुए जिनकी महाकान्ति
थी ॥ ६६ ॥ वे काले अंजन पर्वतकी समान उसके पीछे जाते हुए शोभित होते थे दंष्ट्रासे अर्धचन्द्रके समान प्रकाशित उनके मुख बगले सहित मेघकी
समान लक्षित होते थे ॥ ६७ ॥ वैडूर्यमणि और सुवर्णसे जटित बिजुलीकी समान सूर्यकी किरणोंकी तुल्य पर्वतपर स्थित अग्निकी समान उसका मुकुट

युक्तं महिषकैर्दिव्यैर्घण्टाकोटिकृतस्वनम् ॥ महावारिधराकारमास्थाय रथमुत्तमम् ॥ ६४ ॥ ध्वजेनोग्रेण महता नीलकेसरवर्चसा ॥
नानारागविचित्राभिः पताकाभिर्विभूषितम् ॥ ६५ ॥ द्विपञ्चाशत्सहस्राणि रथानामुग्रवर्चसाम् ॥ ययुस्तस्यासुरेन्द्रस्य प्रयातस्य
सुरान्प्रति ॥६६॥ भान्ति भिन्नाञ्जननिभाः प्रयातस्य महात्मनः ॥ दंष्ट्रार्द्धचन्द्रवदना सबलाका इवाम्बुदाः ॥ ६७ ॥ तत्तस्य वैडूर्य-
सुवर्णचित्रं विद्युत्प्रभं भास्कररश्मितुल्यम् ॥ किरीटमाभात्यसुरोत्तमस्य दावाग्निदीप्तं शिखरं यथाद्रेः ॥ ६८ ॥ वृषपर्वासुरश्चैव
श्रीमांश्च सुरसूदनः ॥ आरुरोह रथं दिव्यं मेरुशृङ्गमिवांशुमान् ॥ ६९ ॥ प्रवालजाम्बूनदचित्रकूबरं महारथं भारसहं महार्हम् ॥
स्वलंकृतं राजतहेमकुण्डलं गभस्तिनक्षत्रताडिन्निकाशम् ॥ ७० ॥ केयूरयुक्ताङ्गदनद्धबाहुः सहस्रतारेण च चर्मणा सः ॥ सांग्रामि-
केराभरणैश्च चित्रैर्मध्याह्नसूर्यप्रतिमो बभूव ॥७१॥ महाबलो बद्धतलाङ्गुलित्रो बलोत्कटः किंशुकलोहिताक्षः ॥ प्रगृह्य चामीकरचारु-
चित्रं चापं स्थितो वृत्तविशालनेत्रः ॥ ७२ ॥

शोभित होता था ॥ ६८ ॥ सुरसूदन श्रीमान् वृषपर्वा असुर मेरुशृंगपर सूर्यकी समान स्थित हुआ ॥ ६९ ॥ जिस रथका मूंगे और सुवर्णजटित कूबर
था वह महाभारका सहन करनेवाला था चांदी और सुवर्णके कुंडलोंसे अलंकृत किया गया सूर्य नक्षत्र और बिजुलीकी समान ॥ ७० ॥ केयूर अंगद
बाजूबंदोंसे शोभित भुजा सहस्र तार और चर्मसे बंधा संग्रामके विचित्र आभरणोंसे शोभित दुपहरके सूर्यकी समान लक्षित हुआ ॥ ७१ ॥
वहां बली अंगुलीत्राण बांधे बलसे उद्धत टेसूके फूलकी समान लालनेत्र सुवर्णका बडा धनुष ग्रहण किये विशाल नेत्रवाला वृत्र असुर स्थित हुआ॥ ७२ ॥

महाअसुरेन्द्र औरं महाअसुरोंसे युक्त बलि रथके ऊपर स्थित हुआ वह उसका रथ वैडूर्य मणि और सुवर्णसे जटित सोलह नल्वका था ॥ ७३ ॥ उसमें बुरे आकारवाले हाथीके मुखवाले सहस्र दानव लगे थे जिनके हृदयमें सुवर्णके भूषण थे और चौमासेके मेघोंकी समान शब्द करते थे ॥ ७४ ॥ वह महारथ देवरथकी समान सहस्र मायावाले मयने बनाया था ईहामृगोंके क्रीडाकी रचनासे युक्त दिव्यरथ कि जिसके पीछे दिव्यरथ चलते थे ॥ ७५ ॥ बडी विशाल विस्तारवाली किंकिणी सुवर्णके सैकडों कमलोंसे युक्त बलि सुवर्णकी चित्रितपुष्पोंकी माला पहरे देवताओंसे युद्ध करनेको चला ॥ ७६ ॥

महासुरेन्द्रश्च महासुरैर्वृतो बलिस्तदा स्यन्दनमारुरोह ॥ वैडूर्यहेमोपचितं विशालं विद्युत्प्रभं षोडशनल्वमात्रम् ॥ ७३ ॥ युक्तं सहस्रेण दितेः सुतानां गजाननानां विकृताकृतीनाम् ॥ चामीकरोरःस्थलभूषितानां प्रनर्दतां प्रावृषि चाम्बुदानाम् ॥ ७४ ॥ महारथं देवरथप्रकाशं सहस्रमायेन मयेन सृष्टम् ॥ ईहामृगाक्रीडितभक्तिचित्रं दिव्यं रथं दिव्यरथानुयातम् ॥ ७५ ॥ सकिङ्किणीकं विमलं सुविस्तृतं हिरण्मयैः पद्मशतैरलंकृतम् ॥ अभ्याददे वैजयिकीं जयाय स्रजं बलिर्हैमविचित्रपुष्पाम् ॥ ७६ ॥ अवध्यमालां प्रभया विचित्रां बलिस्तदा भाति भुजैर्विशालैः ॥ रराज तैः सर्वसमृद्धियुक्तैर्महार्चिषा सूर्य इवाम्बरस्थः ॥ ७७ ॥ स्रजं तदाबध्यति चास्य दुर्गां सर्वासुराणामिव हारभूताम् ॥ वैरोचनिः सर्वश्रियाभिजुष्टो विभ्राजतेऽसौ शरदीव चन्द्रः ॥ ७८ ॥ मेरोस्तटैर्वा ज्वलनप्रकाशैरादित्यसंयुक्तमिवाभ्रजालम् ॥ प्रासाश्च पाशाश्च हिरण्यबद्धा वर्माणि खड्गाश्च परश्वधाश्च ॥ ७९ ॥ धनूंषि वज्रायुधसप्रभाणि दिव्या गदा वज्रमुखाश्च शक्तयः ॥ दिव्याश्च खड्गा विशिखाश्च दीप्ता नाराचपूर्णा विविधाश्च तूणाः ॥ ८० ॥

प्रभासे विचित्र अवध्य माला पहरे समृद्धिमान् विशाल भुजाओंसे बलि ऐसे शोभित हुआ जैसे आकाशमें सूर्य अपनी किरणोंसे शोभित होता है ॥ ७७ ॥ सम्पूर्ण असुरोंकी हारभूत मालाको बांधे बलि सम्पूर्ण लक्ष्मीसे युक्त शरत्कालीन चन्द्रमाकी समान विराजमान हुआ ॥ ७८ ॥ जैसे मेरुके तटमें अपनी किरणोंमे सूर्य प्रकाशित होता है प्रास पाश सुवर्णमें बांधे वर्म खड्ग तथा परशे लिये ॥ ७९ ॥ धनु वज्र आयुध दिव्य गदा वज्रमुख शक्ति

दिव्य खड्ग विशिख दीप्त नाराच और पूर्ण विधानके तरकस ॥ ८० ॥ उस दैत्यके रथमें शस्त्र उल्कापातकी समान प्रकाशित होते थे वे चामर और पीडसे युक्त सुवर्ण मोती हेममणियोंसे प्रकाशित होते थे ॥ ८१ ॥ रथकी वेदिकाओंमें बैठे महाअसुर नम्र हुए व्यजन करते थे अयःशिर अश्वशिर बडे दुरूह शिबिर मतंग विशिर शताक्ष ॥ ८२ ॥ अय निकुंभ और क्रथन दानव यह दश उस दानव अधिपतिकी रक्षा करते थे और आगे सैकडों योधा पैदल उस दानवराजकी रक्षा करते थे ॥ ८३ ॥ शतघ्नी चक्र अशनि शक्ति हाथमें लिये वह पवनकी तुल्य वेगगामी चले उसमें उस समय घंटे

धृता रथे दैत्यवृषस्य तस्य चकाशिरे प्रज्वलिता यथोल्काः ॥ ते चामरापीडधराः सुदंष्ट्राः सुवर्णमुक्ता मणिहेमचित्राः ॥ ८१ ॥
वीज्यन्ति वालव्यजनैर्विनीता महासुराः स्यन्दनवेदिकास्थाः॥अयःशिराः अश्वशिरा दुरापः शिबिर्मतङ्गो विशिराः शताक्षः ॥८२॥
अयो निकुम्भः क्रथनश्च दानवो ररक्षिरे ते दश दानवाधिपम् ॥ पुराश्चराश्चैव सहस्रशोऽसुराः पदातयो दानवराजरक्षिणः ॥ ८३ ॥
शतघ्निचक्राशनिशक्तिपाणयः प्रजग्मुरग्रेऽनिलतुल्यवेगिनः ॥ घण्टाः सुशब्दास्तपनीयबद्धा आडम्बरागर्गरडिण्डिमाश्च ॥ ८४ ॥
महारवा दुन्दुभयश्च नेदू रथप्रयाणे दितिजेश्वरस्य ॥ तस्योत्थितः काञ्चनवेदिकाग्र्यो हिरण्मयो दिव्यमहापताकः ॥ ८५ ॥ महाध्वजो वै तपनीयनद्धो रराज वीरस्य यथा विवस्वान् ॥ समुच्छ्रितं काञ्चनमातपत्रं स्रक्काञ्चनी वक्षसि चास्य भाति ॥ ८६ ॥ समन्ततश्चाप्यसुराश्चरन्ति दैत्यर्षयः प्राञ्जलयो जयन्ति ॥ पुरोहिताः शत्रुवधे समाहितास्तथैव चान्ये श्रुतशीलवृद्धाः ॥ ८७ ॥ जपैश्च मन्त्रैश्च तथौषधीभिर्महात्मनः स्वस्त्ययनं प्रचक्रुः ॥ स तत्र वस्त्राणि शुभाश्च गावः फलानि पुष्पाणि तथैव निष्कान् ॥ ८८ ॥

और डिमडिमका शब्द बराबर होता था ॥ ८४ ॥ महाशब्दवाली दुंदुभी बजने लगी जिस समय उस दैत्याधिपतिका रथ चला, उसकी कांचन बेदीसे बडी दिव्य रथकी पताका स्थित थी ॥ ८५ ॥ वह महाध्वजा सुवर्णसे मढी सूर्यकी समान विराजमान थी सुवर्णका छत्र हो रहा था और सुवर्णकी माला इसकी छातीपर शोभित थी ॥ ८६ ॥ चारों ओर उसके असुर चले और दैत्योंके जयशब्द ऋषि करने लगे पुरोहित शत्रुवधका अनुष्ठान करने लगे इसी प्रकार और शास्त्रपाठी महात्मा स्थित थे ॥ ८७ ॥ जप मंत्र और औषधीसे इन महात्माकी स्वस्तिवाचन करने लगे वह वस्त्र गौ सुन्दर फल

फूल और अशरफी ॥८८॥ ब्राह्मणोंके निमित्त प्रदान करने लगा और कुबेरकी समान शोभित होने लगा सहस्र सूर्य समान प्रकाशित बहुत किंकिणीसे युक्त उत्कृष्ट सुवर्णसे चित्रित ॥८९॥ सहस्र चन्द्रमा और अनन्त तारकाओंकी समान तथा अग्निकी समान रथमें वह वीर दानव धनुष बाण ग्रहण कर शोभित हुआ ॥९०॥ देवताओंकी सेनाको डराता हुआ बडे भयंकर रूपको धारण करता हुआ वह वेगवान् वीर रथसमूहसे युक्त दैत्यसागर देवताओंके प्रति चला॥९१॥ जिस प्रकार महासागरमें तरंगें उठती हैं तैसे वे भयकर शरीरसे त्रिलोकके वित्रास करनेवाले वे दैत्य बालिके रथके आगे चले वे महा-

बलिर्द्विजेभ्यः प्रयतः प्रयच्छन्विराजतेऽतीव यथा धनेशः ॥ सहस्रसूर्यो बहुकिंकिणीकः परार्द्ध्यजाम्बूनदहेमचित्रः ॥ ८९ ॥ सहस्रचन्द्रायुतनारकश्च रथो बभौरग्निरिवावभाति ॥ तमास्थितो दानवसंगृहीतं महाबलः कार्मुकधृक्सबाणः ॥ ९० ॥ उद्वर्तयिष्यन् त्रिदशेन्द्रसेनामतीव रौद्रं स बिभर्ति रूपम् ॥ स वेगवान्वीररथौघसंकुलः प्रयाति देवान्प्रति दैत्यसागरः ॥ ९१ ॥ महार्णवो वीचितरङ्गसंकुलो यथा जलौघैर्युगसंक्षये तथा ॥ त्रैलोक्यवित्रासकरैर्वपुर्भिस्तान्यग्रतो यान्ति बले रथस्य ॥ महाबलान्युच्छ्रितकार्मुकाणि सपर्वतानीव वनानि राजन् ॥९२॥ इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे भविष्यपर्वणि बलेरुद्योगो नामैकपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥५१॥
वैशम्पायन उवाच ॥ श्रुतस्ते दैत्यसैन्यस्य विस्तरो जनमेजय ॥ भूयस्त्रिदशसैन्यस्य शृणु विस्तरमादितः ॥ १ ॥ सुराधिपस्तु भगवानाज्ञापयत वै सुरान् ॥ मरुद्गणांस्तथादित्यान्विश्वान्देवांश्च वासवः ॥ २ ॥ वसूनष्टौ भृशं सर्वान्यक्षरक्षोमहोरगान् ॥ विद्याधरगणान्सर्वान् गन्धर्वांश्च महाबलान् ॥ ३ ॥ महार्णवांश्च शैलांश्च तथा रुद्रान्महौजसः ॥ यमवैश्रवणौ चोभौ वरुणं च जनाधिपम् ॥ ४ ॥

बली धनुष हुए पर्वत और वनकी समान शोभित हुए ॥९२॥ इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे भविष्यपर्वणि भाषायां बलेरुद्योगो नामैकपंचाशत्तमोऽध्यायः ॥५१॥ वैशपायन बोले; हे जन्मेजय! दैत्योंकी सेनाका विस्तार सुनाया अब देवताओंकी सेनाका विस्तार सुनो ॥१॥ भगवान् इन्द्रने देवताओंको आज्ञा दी मरुद्गण आदित्य विश्वेदेवा ॥२॥ आठ वसु यक्ष रक्ष महोरग विद्याधर महाबली गंधर्व ॥ ३ ॥ महार्णव शैल रुद्र यम वरुण ॥४॥

सिद्ध महात्मा पितर मनस्वी सैकडों योगसिद्ध राजर्षि ॥ ५ ॥ सबको वीर्यवान् इन्द्रने आज्ञा दी कि आप दैत्योंके नाश करनेको तैयार हो ॥ ६ ॥ शक्रके वचन सुन सब देवता इन्द्रकी समान पराक्रमी सब तैयार हो गये ॥ ७ ॥ सब अनेक कवच और विचित्र ध्वजा धारण किये अनेक आयुध लिये मत हाथीकी समान ॥ ८ ॥ कोई व्याघ्र कोई हाथी कोई नाग और कोई वृषोंपर चढे ॥ ९ ॥ हरितनेत्र हरितश्मश्रु ऐरावतसे आवृत ध्वजा हरित वर्णके घोडोंवाले रथमें चढ इन्द्र युद्धको गया ॥ १० ॥ सूर्यकी समान वर्ण मलीनतारहित स्वच्छ त्वष्टाके बनाये हुए रथमें कि जिसमें अनेक सुवर्णके

ये तु सिद्धा महात्मानःपितरश्च मनस्विनः॥ राजर्षयश्च शतशो योगसिद्धास्तथैव च॥५॥त्रिदशाज्ञापकः शक्र आज्ञापयति वीर्यवान्॥
भवन्तो दैत्यनाशाय सन्नह्यन्तामिति प्रभुः ॥ ६ ॥ शक्रस्य वचनं श्रुत्वा ततः सर्वे दिवौकसः ॥ सन्नह्यन्ते महात्मानः शक्रस्य सम-
विक्रमाः ॥ ७ ॥ नानाकवचिनः सर्वे विचित्रकरचध्वजाः ॥ नानायुधोद्यतकरा मत्ता इव महागजाः ॥ ८ ॥ केचिदारुरुहुर्व्याघ्रान्
केचिदारुरुहुर्गजान् ॥ केचिदारुरुहुर्नागान् केचिदारुरुहुर्वृषान्॥९॥ हरिनेत्रो हरिश्मश्रुर्द्विरदैरावृतध्वजम् ॥ रथं हरिहयैर्युक्तं स प्राया-
त्समरं प्रति ॥ १० ॥ आदित्यवर्णं विरजं सुधौतं त्वष्ट्रा स्वयं निर्मितमीश्वरार्थम् ॥ जालैश्च जाम्बूनदभक्तिचित्रैरलंकृतं काञ्चनदाम-
भिश्च॥११॥ सकूबरोपस्करबन्धुरेषं विद्युत्प्रभाभिः कृतमाभिताभ्रम् ॥ कैलासशृंगोपममिन्द्रयानं सुचारुचारुप्रतिचक्रचक्रम्॥१२॥
तारासहस्रैः खचितं ज्वलद्भिर्दिवार्हमाल्यार्चितसर्वदेहम् ॥ समुच्छ्रितं श्रीध्वजमक्षयाक्षं प्रज्वालयमानं पुरुषोत्तमेन ॥ १३ ॥ आस्थाय
तं भास्करमाशुवेगं शचीपतिर्लोकपतिः सुरेशः ॥ वज्रस्य धर्त्ता भुवनस्य गोप्ता ययौ महात्मा भगवान्महेन्द्रः ॥ १४ ॥

झरोखे और सुवर्णकी माला शोभित थीं ॥ ११ ॥ कूबर उपस्करसे बिजुलीकी प्रभाकी समान शोभित थी सुन्दर पहियोंसे युक्त इन्द्रका रथ कैलासके समान प्रकाशित होता था ॥ १२ ॥ सहस्र ताराओंकी समान प्रकाशित मालाओंसे अर्चित सम्पूर्ण देह समुच्छ्रित श्री अक्षय ध्वज और पुरुषोत्तमसे प्रकाशमान ॥ १३ ॥ सूर्यकी समान वेगवान् रथमें स्थित हो शचीपति लोकपति सुरेश वज्रका धारण करनेवाला भुवनका गोप्ता महेन्द्र चला॥ १४ ॥

अग्निकी समान प्रकाशवाले सहस्र ताराओंसे युक्त वर्मको पहरकर सूर्यकी समान कान्तिमान् किरीट और जांबुनदयुक्त वैजयन्ती माला पहरे ॥ १५ ॥ त्वाष्टके किये सूर्यकी किरणकी समान तीक्ष्ण घोर धारवाले असुरोंके रुधिरसे लिप्त सौ पर्ववाले वज्रको ग्रहण कर ॥ १६ ॥ महाग्रहकी समान दो महा अशनि और अमोघ उग्रशक्ति और महाचक्र ग्रहण कर इन्द्र युद्ध करनेको चले ॥ १७ ॥ सहस्रदृक् भूतपति सनातन सनातनकेभी सनातन और खड्ग तथा व्याघ्रचर्म लेकर ॥ १८ ॥ तथा जो भूषण क्षीरसागरके मथनेसे उत्पन्न हुए थे जो देवताओंने असुरोंसे जीते थे चन्द्र सूर्य नक्षत्र बिजु-

आमुच्य वर्माथ सहस्रतारं हुताशनादित्यसमप्रभावम् ॥ सूर्यप्रभं चामुमुचे किरीटं मालां च जाम्बूनदवैजयन्तीम् ॥१५॥ त्वष्ट्रा कृतं भास्कररश्मिदीप्तं सुतीक्ष्णघोरामलतीव्रधारम् ॥ महासुराणां रुधिरार्द्रमुग्रं प्रगृह्य वज्रं शतपर्व भीमम् ॥ १६ ॥ महाशनी द्वे च महाग्रहाभे दीप्तामसोघां च स शक्तिमुग्राम् ॥ चक्रं तथेन्द्रं सुमहत्प्रतापं प्रगृह्य शक्रः प्रययौ रणाय ॥ १७ ॥ सहस्रदृग्भूतपतिः सनातनः सनातनानामपि यः सनातनः ॥ खड्गं च देवाधिपतिर्महात्मा वैयाघ्रमादाय च चर्म चित्रम् ॥ १८ ॥ क्षीरोदधिक्षोभसमुच्छ्रितानि पुरामृताडुत्तमभूषणानि ॥ देवासुराणां समानिर्जितानि सोमार्कनक्षत्रतडित्प्रभाणि ॥ १९ ॥ तत्तान्यदित्या मणिकुण्डलानि युद्धं प्रयातस्य सुरेश्वरस्य ॥ तैर्भूषितो भाति सहस्रचक्षुरुद्योतयद्वै विदिशो दिशश्च ॥ २० ॥ हरिः प्रभुर्नेत्रसहस्रचित्रो विभाति युद्धाभिमुखः सुरेन्द्रः ॥ यथा सितं शारदमभ्रकल्पं नभस्तलं ऋक्षसहस्रचित्रम् ॥ २१ ॥ स्तुवन्ति यान्तं विपुलैर्वचोभिर्जयाशिषा चोर्जितसत्त्ववीर्यम् ॥ अत्रिर्वसिष्ठो जमदग्निरुर्वो बृहस्पतिर्नारदपर्वतो च ॥ २२ ॥

लीकी समान कान्तिवाले ॥ १९ ॥ तथा युद्धमें जाते हुए अदितिके कुंडलोंसे युक्त इन्द्र इस प्रकार शोभित हुआ कि मानो दशों दिशाओंको प्रकाशित कर रहा है ॥ २० ॥ हरि प्रभु इन्द्र सहस्रनेत्रवान् युद्धके सन्मुख जाता महाशोभित हुआ जिस श्वेत शरदके मेघोंके बीचमें चित्रवर्ण आकाश तारोंसे शोभित होता है ॥ २१ ॥ इन्द्रके चलनेपर अत्रि वशिष्ठ जमदग्नि उर्व बृहस्पति नारद और पर्वत अनेक प्रकारके आशीर्वादोंसे और श्रेष्ठ वचनोंसे इन्द्रकी स्तुति करने लगे ॥ २२ ॥

उनके पीछे देवगण महेन्द्र सूर्यकी समान कान्तिमान् चले विश्वेदेवा मरुत साध्य आदित्यगण यह सब चले ॥ २३ ॥ और देवराज पुरन्दरके मातलिसे संगृहीत किये अश्व देवेश्वरको वहन कर आकाशमें पदविक्षेप करते चले ॥ २४ ॥ ब्रह्मर्षि महर्षि राजर्षि क्षीणपुण्यवाले लोक यह सब सहसा इन्द्रके पीछे तेजसे प्रकाशित होते चले ॥ २५ ॥ शूल परशे और विचित्र अशनि ग्रहण कर सूर्यकी कान्तिकी समान सुवर्णके कवच पहरे चले ॥ २६ ॥ इसी प्रकार कुबेरजी सर्व श्रेष्ठ सहस्र घोडे जुते रथमें स्थित हो दीप्तिमान् गदा हाथमें ग्रहण कर युद्ध करनेको चले ॥ २७ ॥ अग्निकी समान धूम्रवर्णवाले

तमन्वयुर्देवगणा महेन्द्रं प्रयान्तमादित्यसमानवर्चसम् ॥ विश्वे च देवा मरुतस्तथैव साध्यास्तथादित्यगणाश्च सर्वे ॥ २३ ॥ ते देवराजस्य पुरंदरस्य हयाश्च ये मातलिसंगृहीताः प्रयान्ति देवेश्वरमुद्वहन्तो नभस्तलं पद्भिरिवाक्षिपन्तः ॥ २४ ॥ ब्रह्मर्षयश्चैव महर्षयश्च राजर्षयश्चाक्षयपुण्यलोकाः ॥ सर्वेऽनुजग्मुः सहसा ज्वलन्तं तेजोऽन्वितं शक्रममित्रसाहम् ॥ २५ ॥ प्रगृह्य शूलांश्च परश्वधांश्च दीप्तानि चापान्यशनीर्विचित्राः ॥ वर्माणि चामुच्य हिरण्मयानि प्रयान्ति सूर्यांशुसमप्रभाणि ॥ २६ ॥ तथा कुबेरोऽश्वसहस्रयुक्तं श्रेष्ठं रथं सर्वसहं महार्हम् ॥ दिव्यं समारुह्य रणाय यातो धनेश्वरो दीप्तगदाग्रहस्तः ॥ २७ ॥ निशाचराः पावकधूमकाया रक्षोवृषा रुद्रसखस्य तस्य ॥ विशालनानायुधदीप्तहस्ता यान्त्यग्रतो वैश्रवणस्य राज्ञः ॥ २८ ॥ ते लोहिताक्षाः परिवार्य देवं व्रजन्ति भिन्नाञ्जनचूर्णवर्णाः ॥ यक्षोत्तमा यक्षपतिं धनेशं रक्षन्ति वै पाशगदासिहस्ताः ॥ २९ ॥ पुण्यः प्रभुः प्राणपतिर्जितात्मा वैवस्वतो धर्मभृतां वरिष्ठः ॥ तडिद्गुणाभं शतवाजियुक्तं रथं समारोहत सूर्यकल्पम् ॥ ३० ॥ तं लोकपालं पितरोऽनुजग्मुर्विविक्तपापा ज्वलितास्तपोभिः ॥ सर्वे च भूता भुवनप्रधाना नानायुधव्यग्रकराः सुभीमाः ॥ ३१ ॥

राक्षसवृष रुद्रके सखा विशाल अनेक प्रकारके आयुध हाथमें लिये कुबेरके आगे २ चले ॥२८॥ वे लालनेत्र किये देवको घेरकर भिन्न अंजनकी समान वर्णवाले चले यक्षोंमें उत्तम यक्षपति धनेशको गदा पाश खड्ग हाथमें लिये चले ॥ २९ ॥ पुण्य प्रभु प्राणपति जितात्मा वैवस्वत धर्मधारियोंमें श्रेष्ठ बिजलीकी समान प्रकाशित सौ घोडोंसे युक्त सूर्यकी समान प्रकाशित रथमें चढा ॥ ३० ॥ उनके पीछे पापरहित तपसे प्रकाशमान पितर गये यह

सब भुवनप्रधान नानाभयंकर आयुध हाथमें लिये थे ॥ ३१ ॥ यह देव महाअस्त्र दण्डको हाथमें लिये जो साक्षात् लोकके निग्रहका अंकुश था और गलेमें सुवर्णके बने हुए कमलोंकी माला पडी हुई थी ॥ ३२ ॥ अस्थि मेद आमिषसे लिप्त शरीर सब असुरोंको मारनेमें विरूप तेजोमय उग्ररूप मुद्गर हाथमें लिये उसे खैंचते धूम्रनेत्र ॥ ३३ ॥ सैकडों व्याधियोंसे युक्त हरितश्मश्रु उदारसत्त्व व्याधिपति काल महाअसुरोंके मारनेकी इच्छा करने लगे ॥ ३४ ॥ तीन शिरके सर्प उस रथको वहन करते थे सब सुवर्णनिर्मित रथ था उस रथमें कुंद और चन्द्रमाकी समान प्रकाशमान् जलेश स्थित

दण्डं महास्त्रं परिगृह्य देवो लोकाङ्कुशं निग्रहनिश्चितार्थम् ॥ हिरण्मयानां कमलोत्पलानां मालां मनोज्ञामवसृज्य कण्ठे ॥ ३२ ॥ समस्थितोऽस्थिमेदामिषलोहितार्द्रं सर्वासुराणां निधनं विरूपम् ॥ तेजोमयं मुद्गरमुग्ररूपं विकर्षमाणोऽरुणधूम्रनेत्रः ॥ ३३ ॥ समन्वितो व्याधिशतैरनेकैर्ययो हरिश्मश्रुरुदारसत्त्वः ॥ महासुराणां निधनाय बुद्धिं चक्रे तदा व्याधिपतिः कृतान्तः ॥३४॥ ततस्त्रिशीर्षैर्भुजगैर्बृहद्भिर्युक्तं रथं हेमचितं महात्मा ॥ आस्थाय कुन्देन्दुनिभं जलेशो ययौ रणायासुरदर्पहन्ता ॥ ३५ ॥ वैडूर्यमुक्तामणिभूषिताङ्गस्तेजोमयः पाशगृहीतहस्तः ॥ महासुराणां निधनाय देवः प्रयाति रूप्याङ्गदबद्धबाहुः ॥ ३६ ॥ कैलासशृङ्गप्रतिमोऽप्रमेयः समुद्रनाथोऽमृतपो महात्मा ॥ महोरगैः स्वैस्तनयैः सुगुप्तो ययौ रथेनार्कसमप्रभेण ॥ ३७ ॥ युद्धाय तं यान्तमदीनसत्त्वं नभस्तले चन्द्रमिवातिकान्तम् ॥ पश्यन्ति भूतानि महानुभावं संहृष्टरोमाणि कृताञ्जलीनि ॥३८॥ धातार्यमांशोऽथ भगो विवस्वान्पर्जन्यमित्रौ च शशी च देवः ॥ त्वष्टा तथैवोर्जितविश्वकर्मा पूषा च साक्षाद्दिवि देवराजः ॥ ३९ ॥

होकर असुरोंका दर्प चूर्ण करनेको चले ॥ ३५ ॥ वैडूर्य मुक्तामणिसे भूषित शरीर तेजोमय पाश हाथमें लिये रूप्यके बाजू हाथमें बांधे वरुणजी महासुरोंके मारनेको चले ॥ ३६ ॥ कैलासके शृंगकी समान समुद्रपति अमृत पीनेवाले महात्मा वरुण महासर्प और अपने पुत्रोंसे रक्षित हुए सूर्यकी समान रथमें स्थित हो गये ॥ ३७ ॥ युद्धके निमित्त जाते वे ऐसे शोभित हुए जैसे आकाशमें चन्द्रमा जाता है उन महानुभावको प्रसन्न चित्तसे हाथ जोडकर सब प्राणी देखने लगे ॥ ३८ ॥ धाता अर्यमा अंश भग विवस्वान् पर्जन्य मित्र शशी देव त्वष्टा ऊर्जित विश्वकर्मा पूषा और साक्षात् देव-

राज ॥ ३९ ॥ यह सब सूर्यके ढकनेवाली ध्वजा किंकिणीसे युक्त वैडूर्य और अशरफीके कंठे कंठमें बांधे इन्द्रके रथको प्रकाश करनेवाले सुन्दर घोडोंसे जुते रथमें यह देवता स्थित हुए ॥ ४० कोई सूर्यके समान आकारवाले कोई अग्निकी समान प्रभावाले कोई चन्द्रमाकी समान कान्तिमान् कोई बिजलीकी समान प्रकाशित ॥ ४१ ॥ कोई नील प्रकाशित मेघकी समान कोई कृष्णलोहकी समान दिव्यकान्तिमान् बखतर धारण किये जो उत्तम प्रकाशमान् विश्वकर्माके बनाये थे ॥ ४२ ॥ जो सुवर्णपुष्पकी माला पहरे जलपवनकी समान वेगसे चलते थे दोनों अश्विनीकुमार महानुभाव

सोरच्छदैः सध्वजकिङ्किणीकैर्वैडूर्यनिष्कैश्चितहेमकण्ठैः॥ हयैर्वरैः शक्ररथप्रकाशैर्युक्तान् रथानारुरुहुः सुरास्ते ॥४०॥ दिवाकराकार-निभानि केचिद्धुताशनार्चिःप्रतिमानि केचित् ॥ निशाकरांशुप्रतिमानि केचित्तडिद्गणोद्योतनिभानि केचित् ॥ ४१ ॥ नीलांशुमेघ-प्रतिभानि केचित्कार्ष्णायसाकारनिभानि केचित् ॥ वर्माणि दिव्यानि महाप्रभाणि त्वष्ट्रा कृतान्युत्तमभानुमन्ति ॥ ४२ ॥ आमुच्य मालाश्च सुवर्णपुष्पाः प्रयान्ति तोयानिलतुल्यवेगाः॥ द्वावश्विनौ चैव महानुभावौ रूपोत्तमौ धर्मभृतां वरिष्ठौ ॥ ४३ ॥ रथं समारुह्य सुवर्णचित्रं रणं गतौ काञ्चनतुल्यवर्णौ ॥ भानोः सुता वै वसवश्च सर्वे बलोत्कटा दैत्यवधाय देवाः ॥ ४४ ॥ रथांश्च नागांश्च महाप्र-माणानास्थाय जग्मुः सुशुभास्त्रहस्ताः ॥ रुद्राश्च सर्वेऽरुणधूमवर्णाः श्वेतैर्वृषैर्गोपतिभिर्बृहद्भिः ॥ ४५ ॥ महौजसः सर्वगुणोपपन्ना दीप्तात्मनो भाभिरिव ज्वलन्तः ॥ नानायुधव्यग्रकरैर्भुजैस्तैर्लोकान्त्समस्तानिव निर्दहन्तः ॥ ४६ ॥

रूपमें अतिश्रेष्ठ धर्म धारण करनेवालोंमें परम श्रेष्ठ ॥ ४३ ॥ कांचनकी तुल्य वर्णवाले दोनों सुवर्णके रथमें चढकर युद्ध करनेको गये भानुके पुत्र आठों वसु बली दैत्योंके वध करनेको चले ॥ ४४ ॥ यह सुन्दर अस्त्र धारण किये महाप्रमाणवाले रथ और हाथियोंमें स्थित होकर चले अरुण धूमवर्णवाले सम्पूर्ण रुद्र श्वेत प्रकाशमान वृषके ऊपर स्थित हो चले ॥ ४५ ॥ यह महापराक्रमी सम्पूर्ण गुणोंसे उत्पन्न दीप्तिमान् अपनी कान्तिसे प्रकाशित होते हुए अनेक आयुधोंसे पूर्ण भुजावाले सम्पूर्ण लोकोंको भस्म करते हुए ॥ ४६ ॥

तपनीय कवच पहरे बिजलीयुक्त बादलकी समान चले और तपसे प्रकाशमान विश्वेदेवा सूर्यकी किरणोंकी समान वर्णवाले तपसे प्रकाशित श्रेष्ठ बली ॥ ४७ ॥ आयुधोंसे दुर्निवार्य सेना साथ लेकर चले यह बडे बली सहस्र कमलोंकी माला पहरे सुवर्णके रथसे युक्त जिनमें मुक्तामणि विचित्र जटित थी ॥ ४८ ॥ वे अनेक प्रकारके आकारवाले श्वेतछत्र धारे जो तेजोमय सुवर्णसे चित्रित और निर्मल थे तथा अग्निकी समान कान्तिमान् थे ॥ ४९ ॥ हृदय आच्छादन करनेवाली वस्तु धारे ध्वजा किंकिणीसे युक्त वायुसमान वेगगामी घोडों तथा कैलासके शृंग और दिशाके हाथियोंकी

ययुः ससैन्यास्तपनीयनद्धाः सविद्युतस्तोयधरा यथेव ॥ विश्वे च देवास्तपसा ज्वलन्तो वीर्योत्तमाः सूर्यमरीचिवर्णाः ॥ ४७ ॥ ययुः ससैन्या युधि दुर्निवार्या बलोत्कटा पद्मसहस्रमालाः ॥ रथैः सुयुक्तैस्तपनीयवर्णैर्वैडूर्यमुक्तामणिदामचित्रैः ॥ ४८ ॥ नानाविधाकारसमाकुलास्ते पारिप्लवैश्चैव सितातपत्रैः ॥ तेजोमयैः काञ्चनचारुचित्रैः सुनिर्मलैः पावकसन्निभास्ते ॥४९॥ उरश्छदैः सध्वजकिङ्किणीकैर्हयैश्च वायोः समवेगवद्भिः दिशां गजैश्चैव महाबलैस्तैः कैलासशृङ्गप्रतिमैर्महद्भिः ॥ ५० ॥ प्रजग्मुरुग्रायुधचापहस्ताश्चतुर्युगान्ते ज्वलिता इवोल्काः ॥ साध्याश्च देवाः सुमहाप्रभावाः स्वाधीनचक्राः प्रतिदीप्तवक्राः ॥ प्रयान्ति जाम्बूनदभूषिताङ्गा गाङ्गौघमात्रैर्गगनैर्बलौघैः॥५१॥ विद्योतयन्तो विदिशो दिशश्च महाबलास्ते जयतां वरिष्ठाः ॥ वरिष्ठपुष्टोष्ठभुजाः सुदृप्ता वैश्वानरार्कप्रतिमप्रभावाः॥५२॥ ते ब्रह्मविद्भिश्च समस्यमानाः सपूज्यमानाश्च सुरैः सशक्रैः ॥ गन्धर्वसंघैरनुगम्यमाना वधाय तेषामसुराधिपानाम् ॥५३॥ वैडूर्यवज्रस्फटिकाग्रचित्रैर्ध्वजैः सुवर्णैश्च परिष्कृतानाम् ॥ रूपं बभौ चोत्कटभूषणानां दैत्येन्द्रनाशाय विभूषितानाम् ॥ ५४ ॥

समान महाहाथी ॥ ५० ॥ यह सब हाथमें धनुष तथा दूसरे आयुध लिये चतुर्युगके अन्तमें प्रज्वलित उल्काकी समान चले महाप्रभाववाले साध्य देवता अपनी आधीन सेनावाले प्रदीप्त मुख सुवर्णसे भूषित अंग गंगाके समूहकी समान बडी सेना लिये आकाशमें चले ॥ ५१ ॥ दशों दिशाओंको प्रकाशित करते महाबली तेजसे प्रदीप्तिमान् दृप्त पुष्ट भुजावाले सूर्य और अग्निकी समान प्रभाववाले ॥ ५२ ॥ ब्रह्मज्ञानियोंसे समस्यमान देवता तथा इन्द्रसे पूजित गंधर्वसेनाको साथ लिये दैत्योंके मारनेको चले ॥ ५३ ॥ वैडूर्य वज्र और स्फटिकमणियोंसे युक्त सुवर्णसे अलंकृत अनेक भूषण पहरे

उन दैत्योंके नाश करनेवालोंका रूप महाशोभित हुआ ॥ ५४ ॥ युद्धमें उत्कट अपनी कान्तियोंसे तथा अंधकार दूर करनेवाली कवचोंकी कान्तिसे उत्तम ध्वजा और अपने शरीरकी कान्तिसे तथा उज्ज्वल प्रभाओंसे ॥ ५५ ॥ साध्यों सहित वे देवता शंख बजाते शोभित होते थे ॥ ५६ ॥ वे महाबला महारथी देवता रथोंमें बैठकर दैत्योंसे युद्ध करनेको चले वे उग्रकाय देवता हाथोंमें महाअस्त्र लिये दैत्योंके मारनेको चले ॥ ५७ ॥ इसी प्रकार और दूसरे महाबली बलोत्कट समर करनेवाले महामेघकी समान वर्णवाले चक्र हाथमें लिये मेघकी समान शब्द करनेवाले ॥ ५८ ॥ महेन्द्रकी केतुकी

आत्मप्रभाभिश्च रणोत्कटाभिर्वर्मप्रभाभिश्च तमोनुदाभिः ॥ ध्वजोत्तमाभिः ॥ स्वशरीरभाभिर्महाप्रभाभिश्च महोज्ज्वलाभिः ॥ ५५ ॥ विभान्ति ते देववराःससाध्याः प्रध्मातशङ्खस्वनसिंहनादाः ॥५६॥ महारथस्थास्त्रिदिवौकसस्ते महाबलाः शत्रुबलं प्रयान्ति ॥ महास्त्रहस्ता ययुरुग्रकाया महासुराणां निधनाय देवाः॥५७॥ तथैव सर्वे महतोऽतिवीर्या बलोत्कटास्ते समरं प्रतीताः॥ ययुर्महामेघसमानवर्णाश्चक्रायुधास्तोयदनादनादाः ॥ ५८ ॥ महेन्द्रकेतुप्रतिमा महाबलाः प्रगृह्य सर्वासुरसूदनां गदाम् ॥ रणोत्कटा लोहितचन्दनाक्ताः सहेममाल्याम्बरभूषिताङ्गाः ॥ ५९ ॥ ते युद्धशौण्डाः सुभुजास्त्रवीर्या बलोत्कटाः क्रोधविलोडिताक्षाः ॥ ययुः सजाम्बूनदपद्ममाला यथेष्टनानाविधकामरूपाः ॥ खगप्रभाश्यामलितांसपीठाः पुरंदरं वै परिवार्य देवाः ॥ ६० ॥ वैडूर्यचामीकरचारुरूपाण्याबध्य गात्रेषु महाप्रभाणि ॥ वर्माणि दैत्यास्त्रनिवारणानि प्रयान्ति युद्धाय सपत्नसाहाः ॥ ६१ ॥ तैरुत्थितैः काञ्चनवेदिकाग्र्यैर्वरध्वजैर्भास्कररश्मिवर्णैः ॥ ययौ सुराणां पृतनोग्रभासा समुन्नदन्ती युधि सिंहनादान् ॥ ६२ ॥

समान महाबली सब असुरसंहारिणी गदाको ग्रहण करे युद्धमें बडे वीर लाल चंदन लगाये सुवर्णकी माला और श्रेष्ठवस्त्रोंसे भूषित ॥ ५९ ॥ युद्धके वीर भुजाओंमें शस्त्र लिये क्रोधसे लाल नेत्र किये सुवर्णके कमलोंकी माला पहरे कामरूप खड्गकी कान्तिसे कंधेको श्यामवर्ण किये इन्द्रको घेरे सब देवता ॥ ६० ॥ वैडूर्य मणियोंसे जडे सुवर्णके महाकान्तिमान् बख्तर पहरे दैत्योंके निवारण करनेवाले देवता युद्ध करनेको चले ॥ ६१ ॥ सुवर्णकी वेदिकाओंमें जडी सुवर्णकी ध्वजा जिनका सूर्यकी समान प्रकाश था उससे युक्त देवताओंकी सेना महासिंहनाद करती चली ॥ ६२ ॥

इस प्रकार इन्द्रकी महाप्रभावशाली सेना चली वे असुरोंके जय करनेको और उनके मारनेके निमित्त चले ॥ ६३ ॥ इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरि-
वंशे भविष्यपर्वणि भाषायां वामनप्रादुर्भावे द्विपंचाशत्तमोऽध्यायः ॥ ५२ ॥ वैशंपायन बोले; उस समय देवता और दैत्योंका विग्रह अद्भुत रूप दीखने
लगा जैसे युगान्तमें अपनी मर्यादाको त्याग कर दो समुद्र मिलते हैं ॥ १ ॥ अनेक प्रकारके आयुधोंकी ज्योतिसे प्रदीप्त शरीर महाबली धनुष चढाये
युद्धमें उत्सुक हाथीकी सूंडकी समान हाथवाले दुर्जयमेघकी समान शब्दवाले ॥ २ ॥ सहसा धनुषको चढाये सूर्यकी समान कान्तिमान् चक्र लिये

इत्येवमुक्तं त्रिदिवेश्वरस्य सैन्यं तदासीत्सुमहत्प्रभावम् ॥ युद्धं प्रयातस्य जयावहस्य वधाय तेषामसुराधिपानाम् ॥ ६३ ॥ इति श्रीम-
हाभारते खिलेषु हरिवंशे भविष्यपर्वणि वामनप्रादुर्भावे द्विपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥ ५२ ॥ वैशम्पायन उवाच ॥ ततः प्रवृत्तोऽसुर-
देवविग्रहस्तदद्भुतो भाति सुरासुराकुलः ॥ वेलामातिक्रम्य युगान्तकाले महार्णवान्योन्यमिवाश्रयन्तः ॥ १ ॥ नानायुधोद्योतविदीपि-
ताङ्गा महाबला व्यायतकार्मुकास्ते ॥ रणोत्सुका वारणहस्तहस्ताः सुदुर्जयास्तोयदनादनादाः ॥ २ ॥ विस्फारयन्तः सहसा धनूंषि
चक्राणि चादित्यसमप्रभाणि ॥ समुत्क्षिपन्तो ह्यशनीश्च घोरान्खड्गांश्च ते वज्रमुखाश्च शक्तीः ॥ ३ ॥ महागदाः काञ्चनपट्टनद्धास्तथा-
यसान्कार्मुकमुद्गरांश्च ॥ शूलांश्च वृक्षांश्च विगृह्य दीप्तान्नदन्ति शूराः शतशो रणस्थाः ॥ ४ ॥ वैशम्पायन उवाच ॥ एतस्मिन्नन्तरे
तेषामन्योन्यमभिनिघ्नताम् ॥ द्वन्द्वयुद्धान्यवर्तन्त देवानां दानवैः सह ॥ ५ ॥ मरुतां पञ्चमो यस्तु स बाणेनाभ्ययुध्यत ॥ महाबलः
सुरवरः सावित्र इति यं विदुः ॥ ६ ॥ अनायुषायाः पुत्रस्तु बलो नाम महासुरः ॥ सोऽयुध्यत रणेऽत्युग्रो ध्रुवेण वसुना सह ॥ ७ ॥

घोर अशनि फेंकते खड्ग और वज्रमुख शक्ति छोडते ॥ ३ ॥ सुवर्णकी पट्टियोंसे जडी महागदा लोहेके धनुष और मुद्गर शूल और वृक्ष ग्रहण कर
रणमें स्थित हो मत्त हुए सैकडों शूर शब्द करने लगे ॥ ४ ॥ वैशम्पायन बोले; इस समय परस्पर प्रहार करते उन देवता और दानवोंका द्वंद्व युद्ध
होने लगा ॥ ५ ॥ मरुतोंमें जो पांचवां है वह बाणके साथ युद्ध करने लगा महाबली देवताओंमें श्रेष्ठ जिसको सावित्र कहे हैं ॥ ६ ॥ अनायुषाका

पुत्र बल नाम महासुर वह महाउग्र वसुके साथ युद्ध करने लगा ॥ ७ ॥ नमुचि असुरश्रेष्ठ धरके संग युद्ध करने लगा श्रेष्ठ देवताओंके विश्वकर्मा प्रवरके संग युद्ध करने लगे ॥ ८ ॥ महादैत्य पुलोमा वायुके साथ युद्ध करने लगा वह पर्वताकार सेनासहित युद्ध करने लगा ॥ ९ ॥ हयग्रीव दितिपुत्र पूषाके साथ युद्ध करने लगा वह शूर महावीर्यवान् सूर्यकी समान कान्तिमान् थे ॥ १० ॥ महादैत्य महामाया करनेवाला महाअसुर शम्बर युद्धदुर्मद भगदेवताके साथ युद्ध करने लगा ॥ ११ ॥ शरभ और शलभ दैत्योंमें चन्द्रसूर्यकी समान सोमसे शैशिरास्त्रद्वारा युद्ध करने लगे ॥ १२ ॥ बलवान्

नमुचिश्चासुरश्रेष्ठो धरेण सह युध्यत ॥ प्रवरौ विश्वकर्माणौ ख्यातौ देवासुरेश्वरौ ॥ ८ ॥ पुलोमा तु महादैत्यो वायुना सह युध्यत ॥ ससैन्यः पर्वताकारो रणेऽयुध्यत दंशितः ॥ ९ ॥ हयग्रीवस्तु दितिजः सह पूष्णा व्ययुध्यत ॥ शूरेणामितवीर्येण भास्कराकारवर्चसा ॥ १० ॥ शम्बरस्तु महादैत्या महामायो महासुरः ॥ भगेनायुध्यत तदा सहितो युद्धदुर्मदः ॥ ११ ॥ शरभः शलभश्चैव दैत्यानां चन्द्रभास्करौ ॥ प्रयुद्धौ सह सोमेन शैशिरास्त्रेण धीमता ॥ १२ ॥ विरोचनस्तु बलवान्बलेर्बलवतः पिता ॥ विष्वक्सेनेन साध्येन देवेन च स युध्यत ॥ १३ ॥ कुजम्भस्तु महातेजा हिरण्यकशिपोः सुतः ॥ अंशेनायुध्यत तदा प्रासप्रहरणेन वै ॥ १४ ॥ असिलोमा तु बलिना मारुतेन समं विभो ॥ तदायुध्यत दीतास्यो विकृतः पर्वतायुधः ॥ १५ ॥ अनायुषायाः पुत्रस्तु वृत्रो नाम महासुरः ॥ अश्विभ्यां देववैद्याभ्यां सह युध्यत संयुगे ॥ १६ ॥ एकचक्रस्तु दितिजश्चक्रहस्तो दुरासदः ॥ सहायुध्यत देवेन साध्येन दितिजारिणा ॥ १७ ॥ बलस्तु मधुपिङ्गाक्षो वृत्रभ्राता महासुरः ॥ मृगव्याधेन रुद्रेण सहायुध्यत वीर्यवान् ॥ १८ ॥

विरोचन बलिका पिता विष्वक्सेन साध्यदेवके संग युद्ध करने लगा ॥ १३ ॥ महातेजस्वी कुजंभ हिरण्यकश्यका पुत्र प्रासप्रहारद्वारा अंशके संग युद्ध करने लगा ॥ १४ ॥ असिलोमा महाबलि मारुतके संग युद्ध करने लगा तब पर्वत आयुध लिये दीप्तमुख युद्ध करने लगा ॥ १५ ॥ अनायुषाका पुत्र वृत्रनामक महाअसुर देववैद्य अश्विनीकुमारोंके संग युद्ध करने लगा ॥ १६ ॥ एकचक्र दितिपुत्र चक्र हाथमें लिये दुरासद दैत्योंके शत्रु साध्यके साथ युद्ध करने लगे ॥ १७ ॥ मधुपिंगलनेत्र वृत्रका भ्राता बल महाबली मृगव्याध रुद्रके साथ युद्ध करने लगा ॥ १८ ॥

विकृताकार राहु शतशीर्षकासहोदर अभय हो अजेकपादके संग युद्ध करने लगा ॥ १९ ॥ दानवश्रेष्ठ केशी वर्षाकालीन मेघकी समान कान्तिमान् भीम धनेश्वरके साथ संग्राम करने लगा ॥ २० ॥ बली वृषपर्वा महारणमें निकुंभके साथ युद्ध करने लगा विश्वेदेवके संग बली विश्वेशका युद्ध होने लगा ॥ २१ ॥ महाबली प्रह्लाद अपने चार पुत्रोंसे युक्त रणमें दूसरे कालकी समान कालसे युद्ध करने लगा ॥ २२ ॥ अनुह्लाद धनद कुबेरसे संग्राम करने लगा यह गदा हाथमें लिये रिपुवाहिनीको शोभित करते युद्ध करने लगे ॥ २३ ॥ दैत्य विप्रचित्ति महात्मा वरुणके साथ दैत्योंके आनन्दका बढानेवाला रण करनेको प्रवृत्त हुआ ॥ २४ ॥

राहुस्तु विकृताकारः शतशीर्षा सहोदरः ॥ अजेकपादेन रणे सहायुध्यत दंशितः ॥१९॥ केशी तु दानवश्रेष्ठः प्रावृट्कालाम्बुदप्रभः ॥ धनेश्वरेण भीमेन सहायुध्यत संयुगे ॥२०॥ वृषपर्वा तु बलिना निकुम्भेन महारणे ॥ विश्वेदेवेन विश्वेशः सहायुध्यत वीर्यवान् ॥२१॥ प्रह्लादस्तु महावीर्यो वीरैः स्वैस्तनयैर्वृतः ॥ युयुधे सह कालेन रणे काल इवापरः ॥ २२ ॥ अनुह्लादः कुबेरेण धनदेन महारणे ॥ गदाहस्तेन युयुधे शोभयन् रिपुवाहिनीम् ॥ २३ ॥ विप्रचित्तिस्तु दैतेयो वरुणेन महात्मना ॥ प्रवृत्तो वै रणं कर्तुं दैत्यानां नन्दिवर्द्धनः ॥ २४ ॥ बलिस्तु सह शक्रेण सुरेशेन महात्मना ॥ युयुधे देवराजेन बलिना बलवान्रणे ॥ २५ ॥ शेषा देवाश्च दैत्याश्च जघ्नुरन्योन्यमाहवे ॥ विनदन्तो महानादान् प्रासासिशरशक्तिभिः ॥ २६ ॥ अदृश्यन्त महोत्पाता ये प्रोक्ता जगतः क्षये ॥ मारुताः सप्त ते क्षुब्धा व्यशीर्यन्त महीधराः ॥ २७ ॥ सप्त चैवोत्थिताः सूर्याः शोषयन्तो महार्णवान् ॥ बहुनाभिद्यत धरा वायुना मथिता यथा ॥ २८ ॥ व्युत्थिताश्च महामेघाः शक्रचापाङ्कितोदराः ॥ प्रणेदुः सर्वभूतानि सर्वाः सतिमिरा दिशः ॥ २९ ॥

महाबली राजा बली युद्धमें देवराज इन्द्रके साथ संग्राम करने लगा ॥ २५ ॥ शेष देवता और दैत्य परस्पर एक दूसरेको मारने लगे प्रास शक्ति बाण हाथमें लिये शब्द करने लगे ॥ २६ ॥ उस समय जगत्क्षयकारक अनेक उत्पात होने लगे सातों पवन वेगसे चलने लगीं सागर क्षुभित हो गये ॥ २७ ॥ महासागर सोखनेको सात सूर्य उदय हो गये और वायुसे मथित हो पृथ्वी चलायमान होने लगी ॥ २८ ॥ चक्रकी पंक्तिवाले अनेक मेघ उदय हो

गये सब भूत शब्द करने लगे और दिशाओंमें अंधकार छा गया ॥ २९ ॥ उस समय कालनिर्मित देवताओंकी घोर अजय दिखाई देने लगी युगान्त-
कालकी समान घोर उत्पात दिखाई देने लगे ॥ ३० ॥ उस समय अन्तरिक्ष दिशा भूमि सूर्य धूर उठनेके कारण नहीं दीखते थे पवन वेगसे चली जिससे
धुमेली हो दिशा अंधकारसे आच्छादित हो गई ॥ ३१ ॥ इस प्रकारसे बहुतसे उत्पात देवनिर्मित भूमि और अन्तरिक्षमें दिखाई देने लगे ॥ ३२ ॥
वह देवता और दैत्योंका भयंकर युद्ध श्रेष्ठ देवताओंको साथ लिये सुरगुरु ब्रह्माजी देखते थे ॥ ३३ ॥ अंगोंसहित चार वेद तथा चौदह विद्याओंके

देवानामजयो घोरो दृश्यते कालनिर्मितः ॥ घोरोत्पातः समुद्भूतो युगान्तसमये यथा ॥ ३० ॥ न ह्यन्तरिक्षं न दिशो न भूमिर्न
भास्करोऽदृश्यत रेणुजालैः ॥ ववुश्च वातास्तुमुलाः सुधूमा दिशश्च सर्वास्तिमिरोपगूढाः ॥ ३१ ॥ एते चान्ये च बहवो दृश्यन्ते
देवनिर्मिताः ॥ भूमौ तथान्तरिक्षे च महोत्पाताः समन्ततः ॥ ३२ ॥ तद्युद्धं देवदैत्यानां भीमानां भीमदर्शनम् ॥ अपश्यत
गुरुर्ब्रह्मा सर्वैरेव सुरैः सह ॥ ३३ ॥ वेदैश्चतुर्भिः साङ्गैश्च विद्याभिश्च सनातनः ॥ पद्मयोनिर्वृतः श्रीमान्सिद्धैश्च परमर्षिभिः ॥ ३४ ॥
नानामणिस्तम्भसहस्रचित्रमारुह्य यानं ददृशे स्वयंभूः ॥ सुभास्वरं भूतसहस्रयुक्तं प्रदीप्यमानं वपुषा वरेण ॥ ३५ ॥ सुतप्तजाम्बूनदभ-
क्तिचित्रमानन्दभेरीशतसंप्रणादम् ॥ नक्षत्रचण्डांशुभिरंशुमन्तं वैडूर्यसोमार्कविभूषिताङ्गम् ॥ ३६ ॥ तमात्मजो वै पुलहः
पुलस्त्यस्तथा मरीचिर्भृगुरङ्गिराश्च ॥ ऋक्सामभिः सम्यगभिष्टुवन्तः सेवन्ति देवं वरदं विमाने ॥ ३७ ॥ तं पावका लोकगुरुं
स्वयंभुवं सांगाश्च वेदा मखदेवताश्च ॥ सेवन्ति देवं भुवनेश्वरेशं भूतानि चान्यानि महानुभावम् ॥ ३८ ॥

सहित वह सनातन पद्मयोनि परमर्षियोंके साथ ॥ ३४ ॥ अनेक प्रकारकी मणियोंसे जटित सहस्र स्तंभवाले विमानमें स्थित होकर जो कि महाका-
न्तिमान् सहस्र भूतोंसे युक्त शरीरकी कान्तिसे प्रकाशमान् ॥ ३५ ॥ तपाये हुए सुवर्णकी भक्तिसे चित्रित अनेक भेरियोंके शब्दोंसे शब्दायमान नक्ष-
त्रोंकी प्रभासे प्रभावयुक्त वैडूर्यमणिसे युक्त चन्द्रसूर्यकी समानतासे विभूषित ॥ ३६ ॥ उनके पुत्र पुलह पुलस्त्य मरीचि भृगु अंगिरा ऋक्सामादि
वेदोंसे स्तुतिको प्राप्त हुए तथा देवताओंसे सेवित वरदाता विमानमें स्थित थे ॥ ३७ ॥ उन लोकगुरु स्वयम्भूको अग्नि अंगोंसहित वेद मख देवता

सेवन करते थे तथा औरभी प्राणी उन महानुभाव भुवनेश्वरकी सेवा करते थे ॥ ३८ ॥ यह महर्षिसमूह वैश्वानर पावकयोनिवाले देवपुरोहित यह सब देवता और दैत्योंका युद्ध देखनेकी इच्छासे गये ॥ ३९ ॥ सनक सनन्दन सनातन सनत्कुमार कपिल जैगीषव्य यह छः योगीश्वर सूर्यकी समान कान्तिमान् अनेक भूषण धारण किये तथा नर और नारायण यह आकाशमें अन्तर्हित स्थित हुए युद्ध देखने लगे ॥ ४० ॥ सम्पूर्ण चन्द्रमाकी समान कान्तिमान् मुखोंमें चारों वेद धारण किये ब्रह्माजीने शरदके चन्द्रमाकी समान सब दिशा निर्मल कर दीं॥ ४१ ॥ इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे भविष्यपर्वणि भाषायां देवासुरयुद्धे सनकादिगमनं नाम त्रिपंचाशत्तमोऽध्यायः ॥ ५३ ॥ वैशंपायन बोले, हे राजन् ! दोनों सेनाओंका फिर युद्ध होने

एते बभूवुश्च महर्षिसंघा वैश्वानराः पावकयोनयश्च ॥ सर्वे ययुर्देवपुरोहिताश्च युद्धोत्सुकाः सर्वसुरासुराणाम् ॥ ३९ ॥ योगेश्वराः षट् च दिवाकराभा विभूषणैर्भूषितसर्वदेहाः ॥ अन्तर्हिता वै ददृशुर्नभस्था नारायणश्चैव नरश्च देवाः ॥ ४० ॥ वक्त्रैश्चतुर्वेदधरैश्चतुर्भिः संपूर्णचन्द्रप्रतिमैः सुकान्तैः ॥ सर्वा दिशो निस्तिमिराश्चकार नवोदितोऽसौ शरदीव चन्द्रः ॥ ४१ ॥ इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे भविष्यपर्वणि देवासुरयुद्धे सनकादिकागमनं नाम त्रिपञ्चाशत्तमोऽध्यायः॥ ५३ ॥ वैशम्पायन उवाच ॥ उभयोः सेनयो राजन् भूयो युद्धमवर्त्तत ॥ नादेन संचालयतां त्रैलोक्यमिदमव्ययम् ॥ १ ॥ गोमुखाडम्बराणां च भेरीणां मुरजैः सह ॥ झल्लरीडिण्डिमानां च व्यश्रूयन्त महास्वनाः ॥ २ ॥ प्रवृत्तो युद्धयज्ञस्तु तुमुलो लोमहर्षणः ॥ रणमध्ये महानादः स्वर्गीयः शूरसंमतः ॥ ३ ॥ युद्धयज्ञस्य नेताभूत्प्रह्लादो दैत्यसत्तमः ॥ विरोचनस्तथाध्वर्युर्युद्धयज्ञप्रवर्त्तकः ॥ ४ ॥ होता चैवात्र नमुचिर्वृत्रः स्तोत्रोपकल्पकः ॥ मन्त्रा दैत्याः समाख्याता यज्ञकर्मणि तत्र वै ॥ ५ ॥ अनुयातश्च पितृभिरधिको वा पराक्रमैः ॥ यज्ञे तत्राभवद्बाणः संयुगे चोपतिष्ठते ॥ ६ ॥

लगा उनके नादसे त्रिलोकी चलायमान हो गई ॥ १ ॥ गोमुख आडम्बर भेरी मुरज झल्लरी डिमडिमका महाशब्द होने लगा ॥ २ ॥ वह बडा तुमुल और लोमहर्षण युद्ध यज्ञ फिर प्रवृत्त हुआ वह रणमें महानाद स्वर्गीय और शूरसम्मत हुआ ॥ ३ ॥ दैत्यश्रेष्ठ प्रह्लाद उस युद्धयज्ञका नेता हुआ और युद्ध यज्ञका प्रवृत्त करनेवाला था विरोचन अध्वर्यु हुआ ॥ ४ ॥ नमुचि होता और वृत्र स्तोत्रपाठ करनेवाला उस यज्ञकर्ममें दैत्य मंत्ररूप हुए ॥ ५ ॥ पितरोंके पीछे गमन करने वा उससेभी अधिक पराक्रमी उस युद्धरूपी यज्ञमें बाण यष्टा हुआ ॥ ६ ॥

ऐन्द्र पाशुपत और ब्रह्मा दुर्जय स्थूणाकर्ण हुआ अनुहादके प्रेरण किये मंत्र उसमें वर्तते थे ॥ ७ ॥ शत्रुओंको भय देनेवाला श्रीमान् मय उद्गाता हुआ और वह श्रेष्ठ दैत्य गर्जना कर देवताओंकी सेनाको विदीर्ण करने लगा ॥ ८ ॥ और कान्तिमान् बलि राजा जप होमसे संयुक्त हो ब्रह्मापन करते थे ॥ ९ ॥ युद्धाग्निसे प्रज्वलित घोर वैररूपी ईंधनको डालने लगा उस प्रकार वे असुर देवता और विष्णुके सहित हवन करते थे ॥ १० ॥ शंख और भेरियोंके महाशब्दही उसमें वेदके शब्द होते थे ॥ ११ ॥ बल बलक महाअसुर पुलोमा यह सम्पूर्ण रणभूमिको चमसा पात्र विधान कर भली

ऐन्द्रं पाशुपतं ब्राह्मं स्थूणाकर्णं सुदुर्जयम् ॥ मन्त्रास्तत्राभ्यवर्तन्त साध्वनुह्लादयोऽजिताः ॥ ७ ॥ उद्गाता च मयः श्रीमान् स्थितः शत्रुभयंकरः ॥ विनदन्दितिजश्रेष्ठो देवानीकं व्यदारयत् ॥८ ॥ बलिस्तु राजा द्युतिमान्स्वयं तत्र महासुरः ॥ जाप्यैर्होमैश्च संयुक्तो ब्रह्मत्वमकरोत्प्रभुः ॥ ९ ॥ रणाग्निर्ज्वलितो घोरो वैरेन्धनसमीरितः ॥ हूयते त्वसुरैस्तत्र देवो विष्णुः सुरैः सह ॥ १०॥ शङ्खशब्दैः सुतुमुलैर्भेरीणां च महास्वनैः ॥ उद्घुष्टं विमलं चैव ब्रह्मण्यं सुप्रयुज्यते ॥ ११ ॥ बलश्च बलकश्चैव पुलोमा च महासुरः ॥ प्रशस्तं च समं कृत्वा सत्रं सम्यक् प्रचक्रिरे ॥१२॥ कल्माषदण्डविमला विपुला रथपंक्तयः ॥ यूपाश्च समकल्पन्त युद्धयज्ञे महाफले ॥१३॥ कर्णनालीकनाराचा वत्सदन्तोपबृंहिकाः ॥ तोमराः सोमकलशा विचित्राणि धनूंषि च ॥ १४ ॥ अस्थीन्यत्र कपालानि पुरोडाशाः शिरांसि च ॥ आज्यं च रौद्रं रुधिरं तस्मिन्यज्ञेऽभिहूयते ॥ १५ ॥ इध्माः परिधयस्तत्र प्रस्तारा विपुला गदाः ॥ हयग्रीवोऽसिलोमा च राहुः केशी च दानवः ॥ १६ ॥ विरोचनश्च जम्भश्च कुजम्भश्च महाबलः ॥ सदस्यास्तत्र तु मखे विप्रचित्तिस्तु वीर्यवान् ॥ १७ ॥

प्रकारसे यज्ञ करते थे ॥ १२ ॥ कल्माष अर्थात् चित्र विचित्र दंडोंसे उज्ज्वल सहस्रों रथसमूह उस युद्धयज्ञमें यूपस्थानमें कल्पित थे ॥ १३ ॥ कर्णनाली और नाराच वत्सदन्त और उपबृंहिका थे तोमर और विचित्र धनुष सोमकलश थे ॥ १४ ॥ अस्थि जिसमें कपाल और शिर पुरोडाश-स्थानमें थे रुधिर घृत उस यज्ञमें हवन किया जाता था ॥ १५ ॥ सेनाका मंडल होमका काष्ठ और गदाओंका परिस्तरण होता हुआ हयग्रीव असि-लोमा राहु और केशी दानव ॥ १६ ॥ विरोचन जंभ और महाबली कुजम्भ उस यज्ञसभामें बैठनेवाले थे, और इसी प्रकार महाबली विप्रचित्ति था ॥ १७ ॥

रथोंके ध्रुवोंकी सदृश बाण स्रुवा हुए तथा धनुषकी कोटि और ज्या यज्ञकी सम्पूर्ण स्रुक् हुए ॥ १८ ॥ वृषपर्वा इसमें प्रतिप्रस्थानकर्म करता था और अपनी सेनारूप महापत्नीके सहित बलि इसमें दीक्षित था ॥ १९ ॥ दितिपुत्र शम्बर शामित्रकर्म करता था, इस प्रकार यह अतिरात्र यज्ञकर्म होनेमें ॥ २० ॥ उस यज्ञकी दक्षिणा कालनेमि महाअसुर हुआ. हे राजन्! वैतानयज्ञकर्ममें जो हव्यवाट् नामसे विख्यात है ॥ २१ ॥ वह मृतक हुए देवताओंके शरीरोंसे यज्ञाभिषेचन होने लगा उस यज्ञमें दैत्योंका निर्मित सवन होने लगा ॥ २२ ॥ दैत्य देवताओंका रुधिर पान करने लगे

इषवस्तु स्रुवास्तत्र रथाक्षसदृशाः शुभाः ॥ धनुष्कोट्यो धनुर्ज्याश्च स्रुचस्तत्र महामखे ॥ १८ ॥ प्रतिप्रास्थानिकं कर्म वृषपर्वा-करोदिह ॥ दीक्षितस्तत्र तु बलिस्तस्य पत्नी महाचमूः ॥ १९ ॥ शम्बरस्तत्र शामित्रमकरोद्दितिनन्दनः ॥ अतिरात्रे महाबाहुर्वितते यज्ञकर्मणि ॥ २० ॥ दक्षिणास्तस्य यज्ञस्य कालनेमिर्महासुरः ॥ वैताने कर्मणि विभो यः ख्यातो हव्यवाडिव ॥ २१ ॥ त्रिदशानां तु सैन्यस्य शरीरैर्गतजीवितैः ॥ तस्मिन्यज्ञे तु सवनं वर्तते दैत्यनिर्मितम् ॥ २२ ॥ देवानां रुधिरं संख्ये पपुरुग्रा दितेः सुताः ॥ नर्दमानाः प्रमुदिताः सोमपानं रणाध्वरे ॥ २३ ॥ यदा बलिर्महादैत्यो विजेता समरे सुरान् ॥ तदा ह्यवभृथो यज्ञे भविष्यति न संशयः ॥ २४ ॥ महासुरेन्द्रपतयो यज्वानो भूरिदक्षिणाः ॥ वेदवन्तो वृत्तवन्तः शूरा सर्वे तनुत्यजः ॥ २५ ॥ त्रैलोक्यहरणे सृष्टा युद्धयज्ञाय दीक्षिताः ॥ बद्धकृष्णाजिनाः सर्वे व्रतिनो मुञ्जधारिणः ॥ २६ ॥ एकनिश्चयकार्याश्च त्रैलोक्यजयकाङ्क्षिणः ॥ सुरदानव-दैत्यानां शब्दः समभवन्महान् ॥ २७ ॥ नानायुधाग्रहस्तानां त्वरितानां प्रधावताम् ॥ क्ष्वेडितोत्क्रुष्टनिनदैर्गजबृंहितनिःस्वनैः ॥ २८ ॥

वही उसका महागर्जनाके सहित सोमपान होता था ॥ २३ ॥ जिस समय महादैत्य बलि समरमें देवताओंको जीतेगा उस समय यज्ञका अवभृथ स्नान हो जायगा इसमें सन्देह नहीं ॥ २४ ॥ महाअसुरेन्द्रपति भूरिदक्षिणावाले यज्ञ करने लगा वे सब वेदके ज्ञाता व्रती शूर इस यज्ञमें शरीर त्यागनेमें तत्पर थे ॥ २५ ॥ त्रैलोक्यके हरण करनेमें तत्पर युद्धयज्ञमें दीक्षित सब कृष्णाजिन बांधे और सब व्रती मुंजधारी ॥ २६ ॥ एकही निश्चयसे कार्य कर-नेवाले त्रिलोकीके जयकांक्षी उन देवता दानव और दैत्योंका महाशब्द होने लगा ॥ २७ ॥ नाना आयुध हाथमें लिये शीघ्रतासे धावमान होनेवाले

ताल ठोकनेमें तत्पर और हाथियोंकी समान शब्द करनेवाले ॥ २८ ॥ चारों ओरसे रथके पहियोंका घरघर शब्द होने लगा कहीं शंख और दुंदुभीका शब्द कहीं घोडोंके हिंसनेका शब्द होने लगा ॥ २९ ॥ घोडेके हिंसने और दानवोंके गर्जनेसे ताल ठोकने हाथ पैरोंके पटकनेके शब्द करनेसे ॥ ३० ॥ शस्त्रवाले दानवोंकी सेना भयंकर कर्मसे प्रकाशित होने लगी ॥ ३१ ॥ तब नाग और रथ जाम्बूनदसे विभूषित बिजलीसहित मेघकी समान विराजमान होने लगे ॥ ३२ ॥ ऋष्टि शक्ति तीक्ष्ण गदा शूल शक्ति परशे यह सब पृथक् पृथक् सेनामें विराजमान होने लगे ॥ ३३ ॥

रथनेमिस्वनेर्घोरैस्तुमुलः सर्वतोऽभवत् ॥ शङ्खदुन्दुभिनिर्घोषैर्हयहेषितानिःस्वनैः ॥ २९ ॥ हयानां हेषमाणानां दानवानां च गर्जताम् ॥ क्ष्वेडितोत्क्रुष्टनिर्नादैः पाणिपादरवैस्तथा ॥ ३० ॥ दानवानां परेषां च शस्त्रवन्ति महान्ति च ॥ समरे भीमकर्माणि सैन्यानि प्रचकाशिरे ॥३१॥ ततो नागा रथाश्चैव जाम्बूनदविभूषिताः ॥ भ्राजमाना व्यराजन्त मेघा इव सविद्युतः ॥ ३२ ॥ ऋष्टिशक्तिगदास्तीक्ष्णशूलशक्तिपरश्वधाः ॥ चारु विभ्राजिरे तत्र तेष्वनीकेषु भागशः ॥३३॥ रथा बहुविधाकाराः शतशोऽथ सहस्रशः ॥ हेमप्रच्छन्नशिखरा ज्वलन्त इव पावकाः ॥३४॥ दानवानां सुराणां च समादृश्यन्त सैनिकाः ॥ काञ्चनैः कवचैः सर्वे ज्वलितार्कसमप्रभैः ॥३५॥ सन्नद्धाः समदृश्यन्त ज्योतींषि गगने यथा ॥ उद्यतैरायुधैश्चित्रैस्तलबद्धाः कलापिनः ॥३६॥ ऋषभाक्षा सुरगणाश्चमूमुखगता बभुः ॥ नानावर्णाः पताकाश्च ध्वजमालाश्च संयुगे ॥ ३७ ॥ युद्ध्यतां रणशौण्डा समीरयामास मारुतः ॥ ध्वजालंकारवस्त्राणि कवचानि च रश्मिभिः ॥३८॥ भासयामास सर्वाणि रश्मिवर्णानि रश्मिवान् ॥ सर्वेषामप्रमेयाणां बलानां पादचारिणाम् ॥ ३९ ॥

अनेक प्रकारके सैकडों रथ शिखरमें सुवर्ण जडे अग्निकी समान प्रज्वलित ॥ ३४ ॥ दानव और देवताओंके रथ सेनाके लोग देखने लगे सब कांचनके कवच सूर्यकी समान प्रकाशमान पहरे थे ॥ ३५ ॥ वह इस प्रकार दीखते थे जैसे आकाशमें तारे आयुध चित्रविचित्र उठाये तलबद्ध कलापयुक ऋषभाक्ष देवताओंके समूह सेनामें प्राप्त हो शोभित हुए ॥ ३६ ॥ अनेक वर्णकी ध्वजा पताका ध्वजसमूह युद्धमें शोभित हुए ॥ ३७ ॥ उन वीरोंका युद्ध होते २ बडा दारुण हो गया ध्वजा अलंकार वस्त्र कवचोंकी कान्तिसे ॥ ३८ ॥ सब स्थान कान्तिमान् हो गये दोनों ओरके महाबली पादच-

रियोंके ॥ ३९ ॥ युद्धसे उठी हुई रजने दिशाओंकां आच्छादन कर दिया सब दिव्य आयुधधारी और दिव्य वस्त्र पहरे हुए ॥ ४० ॥ एक दूसरेकी सेनाको स्तंभित करने लगे उस समय वे देव दानव पर्वतके कूटकी समान ऊंचे ॥ ४१ ॥ चित्रयोधी रणमें स्थित हो एक दूसरेको मारने लगे बडे रुचिर तीक्ष्ण बाण दुरासदोंसे ॥ ४२ ॥ मुद्गर मुशल शूल जो लोहनिर्मित थे तिनसे अशनिकी समान वज्र खड्ग और वृक्षोंसे ॥ ४३ ॥ उन अद्भुत पराक्रमियोंका महापराक्रमयुक्त संग्राम होने लगा तब सावित्रको मारनेके लिये बाणने धनुष धारण किया ॥ ४४ ॥ और दिव्य बाणसमूहोंसे देवताओंको

रजः प्रच्छादयामास पत्रोर्णं पाण्डुरं दिशः ॥ दिव्यायुधधराः सर्वे दीप्तायुधपरिच्छदाः ॥ ४० ॥ प्रतितस्तम्भिरेऽन्योन्यमनीकं प्रत्यनीकतः ॥ गिरिकूटोच्छ्रयाः सर्वे तदा ते देवदानवाः ॥ ४१ ॥ अन्योन्यमभिनिघ्नन्तो रणस्थाश्चित्रयोधिनः ॥ बाणैः सुरुचिरैस्तीक्ष्णैः पत्रवाजैर्दुरासदैः ॥ ४२ ॥ मुद्गरैर्मुशलैः शूलैरयस्तुण्डैरुलूखलैः ॥ वज्रैरशनिकल्पैश्च खड्गवृक्षादिभिस्तथा ॥ ४३ ॥ तथा प्रवर्तिते तेषां विमर्देऽद्भुतविक्रमे ॥ सावित्रस्य वधं प्रेप्सुर्बाणो जग्राह कार्मुकम् ॥ ४४ ॥ शरजालेन दिव्येन च्छादयानः सुरोत्तमम् ॥ मन्त्रैर्हुत इवार्चिष्मान्त्संप्रजज्वाल तेजसा ॥ ४५ ॥ सागराभां महासेनां देवानां दैत्यपुङ्गवः ॥ संशोषयाति बाणौघैरर्कांशुभिरिवार्णवम् ॥ ४६ ॥ मारुतः सुमहावेगः सावित्रः शक्तिमुत्तमाम् ॥ चिक्षेप बलिपुत्राय शक्रोऽशनिमिवाद्रये ॥ ४७॥ आपतन्ती च सा शक्तिर्महोल्का ज्वलिता इव ॥ द्विधा छिन्ना क्षुरप्रेण बाणेनाद्भुतकर्मणा ॥ ४८ ॥ हतायामथ शक्त्यां तु सावित्रो देवसत्तमः ॥ विश्वकर्मकृतं दिव्यं सुतीक्ष्णं दानवार्दनम् ॥४९॥ सुपानधारं विमलं विपुलं चन्द्रवर्चसम् ॥ अगृह्णान्निशितं खड्गमाशीविषमिवोरगम् ॥५०॥

आच्छादन करने लगा मंत्रोंसे हवन की हुई अग्निकी समान वह तेजसे जल उठा ॥ ४५ ॥ देवताओंकी समुद्रकी समान महासेनाको वह दैत्य बाणोंसे ऐसे सोखने लगा जैसे सूर्य किरणोंसे सागरको सोखता है ॥ ४६ ॥ सब सावित्र मारुतने शक्ति ग्रहण कर बडे वेगसे बलिके पुत्रके ऊपर प्रहार की जैसे पर्वतपर इन्द्रका वज्र पडे ॥ ४७ ॥ महाउल्काकी समान जलती हुई उस महाशक्तिको देख उस बाणसे क्षुरप्र बाणसे बीचमें काट दी ॥ ४८ ॥ शक्तिके हत होनेसे देवश्रेष्ठ सावित्रने विश्वकर्माके बनाये दिव्य तीक्ष्ण दानवोंके नाश करनेवाले ॥ ४९ ॥ पुष्टधारवाले उज्ज्वल चन्द्रमाकी समान कान्ति-

मान् सूर्यकी समान महाखड्गको ग्रहण किया ॥ ५० ॥ उस महाकान्तियुक्त प्रज्वलित खड्गको ग्रहण कर वह महातेजस्वी बाणासुरके आगे स्थित हुआ ॥ ५१ ॥ बाणने उसको अपने निकट स्थित देख कि महाशरीर और लाल नेत्र किये है बडा शब्द किया ॥ ५२ ॥ फिर सूर्यकी समान कान्तिमान् वज्रसरीखे सर्पकी समाने तीक्ष्ण बाणोंको धनुषपर चढाया ॥ ५३ ॥ जिनके पुंखमें सुवर्ण जडित सब प्रकारसे अलंकृत महावेगवान् उग्र बाणोंको कानपर चढाकर छोडा ॥ ५४ ॥ वे अग्निकी तुल्य बाण दृढ चापसे छोडे हुए कैलासके मेघकी समान सावित्रको आच्छादन करने लगे ॥ ५५ ॥

तं गृहीत्वा रणमुखे प्रज्वलन्तं महाप्रभम् ॥ बाणाभ्याशे महातेजाः खड्गपाणिरवस्थितः ॥ ५१ ॥ स तं स्थितमथालक्ष्य सावित्रं बलिनन्दनः ॥ लोहिताक्षं महाकायं चिक्षेप च ननाद च ॥५२॥ ततोऽर्ककिरणाकारानशनिप्रतिमाञ्छितान् ॥ संदधे चाशु बाणौघानाशीविषाशिलीमुखान् ॥ ५३ ॥ रुक्मपुंखान्प्रदीप्ताग्रानुग्रवेगानलंकृतान् ॥ आकर्णपूरांश्चिक्षेप शरानुग्रान्त्समन्ततः ॥ ५४ ॥ दृढचापप्रमुक्तास्ते शरा वैश्वानरप्रभाः ॥ सावित्रं छादयामासुः कैलासमिव तोयदाः ॥ ५५ ॥ संच्छाद्यमानः शस्त्रौघैर्बाणेन बलिसूनुना ॥ पराङ्मुखः सुरवरः प्रयातः सरथध्वजः ॥ ५६ ॥ पराजित्य स सावित्रं बाणः परमहर्षितः ॥ प्रगृह्य कार्मुकं घोरं गतः शक्ररथं प्रति ॥ ५८ ॥ बलश्चाप्यसुरश्रेष्ठः प्रगृह्य महतीं गदाम् ॥ ध्रुवाय वसवे मूर्ध्नि रौद्रां चिक्षेप दानवः ॥ ५८ ॥ तस्य निर्मथितस्त्वंसो हेमाचित्रं च वर्म वै ॥ गदावेगेन भीमेन ध्रुवस्य समरे तदा ॥५९॥ शेषाश्च वसवः सर्वे दिव्यास्त्रैर्घोरदर्शनैः ॥ प्राच्छादयन्रणे दैत्यमादित्यमिव तोयदाः ॥ ६० ॥.

बलिपुत्र बाणके अस्त्रों तथा बाणोंसे आच्छादित हो वह देवताओंमें श्रेष्ठ और रथ ध्वजाके सहित युद्धसे पराङ्मुख हो गया ॥ ५६ ॥ इस प्रकार सावित्रको पराजय कर बाणासुर परम हर्षित हुआ तथा घोर धनुष ग्रहण कर इन्द्रके रथके सन्मुख चला ॥ ५७ ॥ और असुरश्रेष्ठ बलनेभी महागदाको ग्रहण कर ध्रुव वसुके शिरपर उस गदाका प्रहार किया ॥ ५८ ॥ उससे उसका सुवर्णनिर्मित बख्तर चूर्ण हो गया। इस प्रकार भीम गदाके वेगसे ध्रुवका ॥ ५९ ॥ बख्तर चूर्ण किया तब शेष घोरदर्शन वसु रणमें दैत्योंको ऐसे आच्छादन करने लगे जैसे

सूर्यको मेघ आच्छादन करते हैं ॥ ६० ॥ तब दानवश्रेष्ठ बल बाणोंसे सम्मर्दित होने लगा और रथसे उतर गदा ले बडे वेगसे दौडा ॥ ६१ ॥ और महा असुरने वह गदा अपने शत्रुओंके शिरपर मारी उस महागदाने शत्रुओंको दिशा विदिशाओंमें पलायन करवा दिया ॥ ६२ ॥ वह ऐसी पतित हुए मानों इन्द्रने वज्र मारा उसके बिजलीकी समान शब्दको सुनकर वे सब कंपित हो गये ॥ ६३ ॥ रथोंसे भ्रष्ट हो रथी पलायन करने लगे वोह रथोंकी सेना सूर्यकी समान कान्तिमान् होकर मेघवत् शब्द करती पलायन कर गई ॥ ६४ ॥ तब फिर देवताओंने चारों ओरसे बाणवर्षा करनी आरंभ की

ततः संमर्दितो बाणैर्बलो दानवसत्तमः ॥ अवातरद्रथात्तस्माद्गदामुद्यम्य वेगवान् ॥ ६१ ॥ पातयामास शत्रूणां समाविध्य महासुरः ॥
दिशः प्राद्रावयत्सर्वांस्त्रिदशान्त्सा महागदा ॥ ६२ ॥ इन्द्राशनिरिवेन्द्रेण प्रवृद्धा सुमहास्वना ॥ तस्याः सविद्युद्घोषायास्तेन शब्देन
वेपिताः ॥ ६३ ॥ व्यद्रवन्त परिभ्रष्टा रथेभ्यो रथिनस्तदा ॥ तदुदीर्णं रथानीकं सूर्याभं मेघनिःस्वनम् ॥ ६४ ॥ देवानां शरधा-
राभिः समन्तादभ्यवर्षत ॥ क्षुरकैर्विशिखैर्भल्लैर्वत्सदन्तैः शिलीमुखैः ॥ ६५ ॥ मुहुर्मुहुर्महातेजाः प्रत्यविध्यन्महासुरान् ॥ बलाकस्तु
गदापाणिर्व्यादितास्य इवान्तकः ॥ ६६ ॥ तडिद्गणार्कसदृशो वैश्वानर इवापरः ॥ पिबन्निव शरौघांस्तान्देवचापसमुच्छ्रितान्॥६७॥
अभ्यद्रवत दैत्येन्द्रो महार्णव इवापरः॥ अवस्फूर्जन्दिशः सर्वाः स्वेन वीर्येण दानवः॥६८॥ अरुजंस्त्रिदशान्दैत्यः सिन्धुवेगान्नगा इव ॥
समुद्रस्तरसा देवान्वायुर्वृक्षानिवोजसा ॥६९॥ शामयंश्च महेष्वासान्वसुभ्यां समसज्जत ॥ आपश्चैवानिलश्चैव ववर्षतुररिन्दमौ ॥ ७० ॥

क्षुरक विशिख भल्ल वत्सदन्त बाणोंसे ॥ ६५ ॥ वह महातेजस्वी महाअसुर फिर प्रहार करने लगा और बलक दैत्य गदा हाथमें लिये कालकी समान मुख फैलाये ॥ ६६ ॥ बिजलीके समूह तथा सूर्य और अग्निकी समान उन देवताओंके छोडे हुए बाणोंको पान करता हुआ ॥ ६७ ॥ दूसरे महासागरकी समान वह दैत्येन्द्र धावमान हुआ और वह दानव अपने वीर्यसे सम्पूर्ण दिशाओंको शब्दायमान करता हुआ ॥ ६८ ॥ दैत्य देवताओंको इस प्रकार भेदन करने लगा जैसे सिंधुनदीका वेग पर्वतोंको नष्ट करता है, वा जैसे वायुका वेग वृक्षोंको भग्न करता है ॥ ६९ ॥ इस प्रकार वसुओंके छोडे

हुए बाणोंको शान्त कर फिर वह आप और अनिल नामक दो वसुओंके साथ संग्राम करने लगा ॥ ७० ॥ वह दोनों महातेजस्वी मेघोंकी समान बाण प्रहार करने लगे तत्काल उस दैत्यने उन बाणोंको अन्तरिक्षमेंही छेदन कर दिया ॥ ७१ ॥ इस कर्मको सहन न करके ध्रुव उस दैत्यके सन्मुख हुआ तब वे महाशरवर्षणसे परस्पर एक दूसरेको प्रहार करने लगे ॥ ७२ ॥ वह उत्तम शूर देवता दैत्य परम यशस्वी नखोंसे शार्दूल और दांतोंसे हाथीकी समान ॥ ७३ ॥ रथकी शक्तियोंद्वारा परस्पर एक दूसरेके ऊपर बाण प्रहार करते थे और बाणप्रहारसे एक दूसरेके शरीरको विदीर्ण करने लगे ॥ ७४ ॥

शरवर्षाणि दीप्तानि मेघाविव परंतपो ॥ क्षिप्तांस्तान्विशिखान्दीप्तानन्तरिक्षे स चिच्छिदे ॥ ७१ ॥ अमृष्यमाणस्तत्कर्म ध्रुवस्तमभिदुद्रुवे ॥ तो पृथक्क शरवर्षाभ्यामन्योन्यमभिजघ्नतुः ॥ ७२ ॥ उत्तमाभिजना शूरौ देवदैत्यो यशस्करो ॥ तो नखैरिव शार्दूलौ दन्तैरिव महाद्विपो ॥७३॥ रथशक्तिभिरन्योन्यं विशिखैश्चाप्यकृन्तताम् ॥ निर्भिन्दन्तो च गात्राणि विलिखन्तो च सायकैः ॥ ७४ ॥ स्तम्भयन्तो च बलिनो प्रतुदन्तो स्थितो रणे ॥ चरन्तो विविधान्मार्गान्मण्डलानि च भागशः ॥ ७५ ॥ मुद्गरैर्जघ्नतुः क्रुद्धावन्योन्यमभिमानिनो ॥ असिभ्यां चर्मणी दिव्ये विपुले च शरासने ॥ ७६ ॥ निकृत्याचलसंकाशो बाहुयुद्धं प्रचक्रतुः ॥ व्यूढोरस्को दीर्घभुजो नियुद्धकुशलावुभो ॥ ७७ ॥ बाहुभिः समसज्जेतामायसैः परिघैरिव ॥ तयोरासीद्भुजाघातैर्निग्रहः प्रग्रहस्तथा ॥ ७८ ॥ अतीव भीमः संह्रादो वज्रपर्वतयोरिव ॥ द्विपाविव विषाणाग्रैः शृंगैरिव महावृषो ॥ ७९ ॥

वे दोनों एक दूसरेको स्तंभित करते तथा भेदन करते अनेक प्रकारके पैतरे बदलकर विचरण करने लगे ॥ ७५ ॥ फिर दोनों अभिमानी परस्पर क्रोध कर मुद्गरोंसे मारने लगे फिर ढाल तलवार तथा दिव्य शरासन द्वारा युद्ध होने लगा ॥ ७६ ॥ फिर दो पर्वतोंकी समान बाहु युद्ध करने लगे चौडी छाती दीर्घ भुजा युद्धमें दोनों कुशल ॥ ७७ ॥ आयस अर्थात् लोहेके मुद्गरोंकी समान भुजाओंसे युद्ध करने लगे भुजाओंके आघातसे उनका निग्रह और प्रग्रह (वैरबंधन) होते हुए ॥ ७८ ॥ तथा वज्र गिरते हुए पर्वतकी समान महाघोर शब्द होता हुआ जैसे दांतोंसे दो हाथी और सींगोंसे दो बैल युद्ध करते

हों ॥ ७९ ॥ इस प्रकार परस्पर दोनोंका युद्ध सवा दो घडीतक बराबर होता रहा अन्त्यमें ध्रुव वसु, दैत्यसे पराजित हो युद्धसे पराङ्मुख हो गया ॥ ८० ॥ इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे भविष्यपर्वणि भाषायां देवासुरयुद्धे चतुष्पञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥ ५४ ॥ वैशंपायनजी बोले, फिर क्रोधको प्राप्त हुए नमुचि और धर इन दोनोंका बडा दारुण युद्ध होने लगा ॥ १ ॥ और बडी भुजाओंवाले और बडे धनुषोंको धारण करते हुए और शत्रुओंको दमन करनेवाले क्रोधको धारण करे नेत्रोंसे भस्म करते हुए परस्पर देखने लगे ॥ २ ॥ सुवर्णकी पीठवाले महाकठोर दुरासद

अन्योन्यमभिसंरब्धौ मुहूर्तं पर्यकर्षताम् ॥ ततः पराजितो देवो बलाकेन तथा ध्रुवः ॥ रथं त्यक्त्वा भयात्तस्य प्रनष्टः प्राङ्मुखो वसुः ॥ ८० ॥ इति श्रीमहाभारते हरिवंशे भविष्यपर्वणि वामनप्रादुर्भावे चतुःपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥ ५४ ॥ वैशम्पायन उवाच ॥ पुनरेव तु तत्रासीन्महायुद्धं सुदारुणम् ॥ क्रुद्धस्य नमुचेश्चैव धरस्य च महात्मनः ॥ १ ॥ संरब्धौ च महाबाहू महेष्वासावरिन्दमौ ॥ परस्परमुदैक्षेतां दहन्ताविव लोचनैः ॥२॥ विस्फार्य च महाचापं हेमपृष्ठं दुरासदम् ॥ संरम्भात्स वसुश्रेष्ठस्त्यक्त्वा प्राणानयुध्यत ॥३॥ स सायकमयैर्जालैर्धरो दैत्यरथं प्रति ॥ भानुमद्भिः शिलाधौतैर्भानोः प्राच्छादयत्प्रभाम् ॥ ४ ॥ ततः प्रहस्य नमुचिर्धरस्य च शिलाशितान् ॥ असृजत्सायकान्दीप्तान्भीमवेगान्दुरासदान् ॥ ५ ॥ महातेजा महाबाहुर्महावेगो महारथः ॥ क्रियाघातिबलो दैत्यो नवभिर्निशितैः शरैः ॥ ६ ॥ स तोत्त्रैरिव मातङ्गो वार्यमाणः पतत्रिभिः ॥ अभ्यधावच्च संक्रुद्धो नमुचिं वसुसत्तमः ॥ ७ ॥

महाधनुषको चढाकर वह धर अपने प्राणोंका मोह त्यागनकर नमुचिके संग युद्ध करने लगा ॥ ३ ॥ और प्रकाशमान शिलाकी समान निर्मल बाणरूपी जालोंको वह धर नमुचिदैत्यके रथके प्रति छोडता हुआ सूर्यकी प्रभाको आच्छादन करने लगा ॥ ४ ॥ और शिलाओंकी समान तीक्ष्ण दीप्तिमान् बडे वेगवाले असह्य बाणोंको नमुचि हँसता हुआ धरपै छोडने लगा ॥ ५ ॥ महातेजस्वी बडी भुजाओंवाले महावेगवान् महारथी और अतिरथि नमुचिने पैने २ नव बाणोंसे धरको वेधन किया ॥ ६ ॥ और जैसे अंकुशोंसे भेदन किया हुआ हस्ती क्रोधित

होता है तैसेही बाणोंके वेधनसे क्रोधित हुआ वसुश्रेष्ठ धर नमुचिके सन्मुख दौडा ॥ ७ ॥ और वेगसे आते हुए धरको वह नमुचि देख ऐसे सन्मुख धावमान हुए कि जैसे मदोन्मत्त हस्तीके प्रति मदोन्मत्त हस्ती ॥ ८ ॥ तब सौ भेरियोंके समान शब्दवाले शंखको बजाय और उछलते हुए समुद्रकी तुल्य शत्रुकी सेनाको अत्यन्त क्षोभ कर ॥ ९ ॥ और श्रेष्ठ वर्णवाले शत्रुके घोडोंसे अपने हंसकी तुल्य कांतिवाले घोडोंको मिलाता हुआ नमुचि बाणोंकी वर्षासे धरको आच्छादन करने लगा ॥ १० ॥ और नमुचि और धर इन दोनोंके रथोंको परस्परमें मिले हुए देख देवताओंकी सेना अत्यन्त

तमापतन्तं वेगेन संरम्भान्नमुची रणे ॥ दैत्यः प्रत्यसरद्देवं मत्तो मत्तमिव द्विपम् ॥ ८ ॥ ततः प्राध्मापयच्छङ्खं भेरीशतनिनादितम् ॥ विक्षोभ्य तद्बलं हर्षादुद्धूतार्णवसंप्रभम् ॥ ९ ॥ अश्वानृक्षसवर्णाभान्हंसवर्णैः सुवाजिभिः ॥ मिश्रयन्त्समरे दैत्यो वसुं प्राच्छादयच्छरैः ॥ १० ॥ समाश्लिष्टावथान्योन्यं वसुदानवयो रथौ ॥ दृष्ट्वा प्राकम्पत मुहुस्त्रिदशानां महद्बलम् ॥ ११ ॥ क्रोधसंरम्भताम्राक्षौ प्रेक्षमाणौ मुहुर्मुहुः ॥ गर्जन्ताविव शार्दूलौ प्रभिन्नाविव वारणौ ॥१२॥ महामेघोपमं रौद्रमासीद्वायोधनं तयोः ॥ रथाश्ववरसंबाधं मत्तवारणसंकुलम् ॥ १३ ॥ समाजमिव तं दृष्ट्वा प्रेक्षमाणा महारथाः ॥ आशंसन्तो जयं ताभ्यां योधा नैकत्रसंश्रयाः ॥ १४ ॥ तयोः प्रेक्ष्यन्त संरम्भं सन्निकृष्टं महास्त्रयोः ॥ सिद्धगन्धर्वमुनयो देवदानवयोस्तदा ॥ १५ ॥ तौ च्छादयन्तावन्योन्यं समरे निशितैः शरैः ॥ शरजालावृतं व्योम चक्रतुश्च महाबलौ ॥ १६ ॥

कांपने लगी ॥ ११ ॥ और क्रोधयुक्त लाल २ नेत्रोंसे परस्परमें दीखते हुए और शार्दूलोंकी तुल्य गर्जते हुए और मत्त हस्तियोंकी तुल्य भेदन करते हुए ॥ १२ ॥ इस प्रकार दोनों योद्धाओंका मनुष्य हस्ती घोडोंसे व्याप्त महामेघोंकी समान भयंकर युद्ध होने लगा ॥ १३ ॥ तिस युद्धको समाजकी नाईं देखते हुए महारथी तिन्होंके जयको कहते हुए ॥ १४ ॥ युद्धमें समूहके समूह स्थित होते हुए और सिद्ध तथा गंधर्व और मुनि ये सम्पूर्ण समीपमें प्राप्त हो और महाअस्त्रोंको धारण करते हुए उनको देवता और दानव युद्धमें देखने लगे ॥ १५ ॥ वे दोनों महाबली बाणोंकी वर्षा

करते हुए शरोंके जालोंसे आकाशको आच्छादन करने लगे, और परस्पर एक दूसरेको आच्छादन करने लगे ॥ १६ ॥ और तीक्ष्ण बाणोंसे परस्पर हनन करते हुए दोनों महारथी रणमें बाण वर्षाते जलोंकी वर्षा करते हुए मेघोंकी समान दीखते लगे ॥ १७ ॥ और वे दोनों शत्रुनाशक सुवर्णसे जटित बाणोंको छोडते हुए उल्काओंसे आकाशको सूर्यकी समान प्रकाशमान करने लगे ॥ १८ ॥ नमुचि और धर इन दोनोंके बाण आकाशमें ऐसे प्रकाशमान होने लगे कि जैसे शरदृतुके आकाशमें मतवाले सारसोंकी पंक्ति शोभित होती है ॥ १९ ॥ मरे हुए देवता घोडे हाथियोंसे पृथ्वी ऐसे

तावन्योन्यं जिघांसन्तो शरैस्तीक्ष्णैर्महारथैः ॥ प्रेक्षणीयतमावास्तां वृष्टिमन्ताविवाम्बुदौ ॥ १७ ॥ सुवर्णविकृतान्बाणान्प्रमुञ्चन्तावरिन्दमौ ॥ भास्कराभं तदाकाशमुल्काभिरिव चक्रतुः ॥ १८ ॥ तयोः शराः प्रकाशन्ते देवदानवयोस्तदा ॥ पंक्तयः शरदमत्तानां सारसानामिवाम्बरे ॥ १९ ॥ त्रिदशाश्वगजानां हि शरीरैर्गतजीवितैः ॥ क्षणेन संवृता भूमिर्मेघैरिव नभस्तलम् ॥ २० ॥ ततः सुधारं ज्वलितं सूर्यमण्डलसन्निभम् ॥ धराय वसवे मुक्तं चक्रं नमुचिना रणे ॥ पतता तेन चक्रेण धरस्य स्यन्दनोत्तमः ॥ २१ ॥ सध्वजः सायुधः साश्वो दग्धोऽर्ककिरणप्रभः ॥ स त्यक्त्वा स्यन्दनं देवः प्रदीप्तं चक्रतेजसा ॥ २२ ॥ भयात्तस्यासुरेन्द्रस्य गतः स्वगृहमुत्तमम् ॥ पराजित्य सुरं दैत्यो नमुचिर्बलगर्वितः ॥ २३ ॥ प्रयातः स्वेन सैन्येन भूयः सुरचमूं प्रति ॥ यो तो मयश्च त्वष्टा च देवदैत्येषु विश्रुतौ ॥ २४ ॥

व्याप्त हो गई कि जिस प्रकार मेघोंसे आकाश ॥ २० ॥ तब तीक्ष्ण धारवाले सूर्यके मंडलकी तुल्य कांतिमान् जलते हुए चक्रको नमुचि दैत्यने धरके सन्मुख छोडा ॥ २१ ॥ ध्वजा आयुध घोडोंसे युक्त सूर्यकी समान प्रकाशमान रथको नमुचिके चक्रने दग्ध किया; तब वह धर चक्रके तेजसे दग्ध हुए रथको त्याग ॥ २२ ॥ नमुचिके भयसे अपने घरको चला गया; तब धर देवताको जीत नमुचिदैत्य बलसे गर्वित हो ॥ २३ ॥ अपनी सेनाके संग ले फिर देवताओंकी सेनाके सन्मुख चला जो दोनों विख्यात और श्रेष्ठ देवता और दैत्योंमें श्रेष्ठ महात्मा त्वष्टा देवता और मय ॥ २४ ॥

श्रेष्ठ विश्वकर्माको सैकडों मायाके जाननेवाले दैत्य इन्होंका महाघोर दारुण युद्ध होने लगा ॥ २५ ॥ वह चिरकालसे युद्धमें एक दूसरेकी स्पर्द्धा करते हुए थे उस समय त्वष्टा तीक्ष्ण बाणोंसे बलदर्पित दैत्यको ॥ २६ ॥ तीन सौ बाणोंसे वेधन करने लगा इस प्रकार आते हुए बाणोंको देख मयनेभी बहुत तीक्ष्ण बाणोंसे त्वष्टाको विद्ध किया ॥ २७ ॥ वेगवाले वेधनेवाले सुवर्णजटित बाणोंसे मयदैत्य त्वष्टाको वेधन कर गर्जने लगा ॥ २८ ॥ त्वष्टा क्रोधित हो तीक्ष्ण बाणोंसे मयको भेदन कर दैत्योंकी सेनाके प्राणोंको खोजता हुआसा क्रोधसे सुवर्ण और मणियोंसे जटित विचित्र दंडवाली

प्रवरौ विश्वकर्माणौ मायाशतविशारदौ ॥ घोरस्तयोः संप्रहारः प्रावर्त्तत सुदारुणः ॥ २५ ॥ अन्योन्यस्पर्द्धिनोस्तत्र चिरात्प्रभृति संयुगे ॥ त्वष्टा तु निशितैर्बाणैर्दैत्यं तु बलदर्पितम् ॥ २६ ॥ पराक्रान्तं पराक्रम्य विव्याध त्रिशतैः शरैः ॥ मयस्तु प्रतिविव्याध त्वष्टारं निशितैः शरैः ॥ २७ ॥ सुघातैः सुप्रसन्नाग्रैः शातकुम्भविभूषितैः॥ ननाद दितिजश्रेष्ठो हतस्त्वष्टुः शरैर्मयः ॥२८॥ संक्रुद्धो दैत्यसैन्यस्य विचिन्वन्निव जीवितम् ॥ शक्तिं कनकवैडूर्यचित्रदण्डां महाप्रभाम् ॥ २९ ॥ देवो गृहीत्वा समरे दैत्येन्द्रं समपातयत् ॥ भीमां सर्वायसीं दृष्ट्वा पुरंदर इवाशनिम् ॥ ३० ॥ तां त्वष्टुर्भुजनिर्मुक्तामर्कवैश्वानरप्रभाम् ॥ मयश्चिच्छेद तीक्ष्णाग्रैस्तूर्णं सप्तभिराशुगैः ॥ ३१ ॥ ततः क्षुण्वन्निव प्राणांस्त्वष्टुः कोपान्महासुरः ॥ प्रेषयामास संरब्धः शरान्बार्हिणवाससः ॥ ३२ ॥ चिच्छेद बाणांस्त्वष्टा तान् ज्वलितैर्नतपर्वभिः ॥ दैत्यस्य सुमहावेगैः सुवर्णविकृतैः शरैः ॥३३॥ तौ वृषाविव नर्दंतौ बलिनौ वासितान्तरे ॥ शार्दूलाविव चान्योन्यं प्रसक्तावभिजघ्नतुः ॥ ३४ ॥

महाकान्तिवाली शक्तिको ॥२९॥ युद्धमें ग्रहण कर दैत्यपति मयके ऊपर छोडी, वह भयंकर लोहनिर्मित पुरन्दरके वज्रकी समान थी॥ ३० ॥ त्वष्टाकी भुजाओंसे छुटी हुई अग्निकी समान कांतिवाली शक्तिको मयदैत्यने वेगवान् तीक्ष्ण बाणोंसे छेदन कर दिया ॥ ३१ ॥ और त्वष्टाके प्राणोंके हरनेको मयदैत्यने क्रोधित हो तीक्ष्ण बाणोंको छोडा ॥ ३२ ॥ तब त्वष्टाने अपने प्रकाशमान बाणोंसे मयके महावेगवान् सुवर्णनिर्मित बाणोंको छेदन कर दिया ॥ ३३ ॥ महाबली वृषोंकी समान गर्जते और सिंहोंकी तुल्य पराक्रमोंको करते हुए और परस्परमें दाव देखते हुए परस्पर मारने लगे ॥ ३४ ॥

परस्पर युद्ध करते एक दूसरेके वधकी इच्छा करनेवाले विषैले सर्पकी समान परस्पर देखने लगे ॥ ३५ ॥ इस प्रकार बडे विस्तारवाले धनुषसे छोडे हुए बाणोंसे मारने लगे कि जैसे दांतोंके अग्रभागसे मदोन्मत्त हस्ती युद्ध करते हो ॥ ३६ ॥ तब बडे विस्तारवाली, प्रकाशमान सुवर्णके बाजुओंवाली सम्पूर्णोंके प्राणोंको हरनेवाली गदाको ग्रहण कर त्वष्टापर छोडी ॥ ३७ ॥ उससे क्रोधी मयदैत्यने उत्तम घोडोंवाले त्वष्टाको ताडन किया जैसे इन्द्र वज्रसे पर्वतोंको विदीर्ण करता है ॥ ३८ ॥ फिर युद्धमें क्रोधित हुआ मय दैत्य बहुतसे तीक्ष्ण बाणोंसे ॥ ३९ ॥ त्वष्टाके रथकी ध्वजाको छेदन कर

अन्योन्यं प्रतियुध्यन्तावन्योन्यवधकांक्षिणौ ॥ अन्योन्यमभिवीक्षन्तौ क्रुद्धावाशीविषाविव ॥ ३५ ॥ महागजाविवासाद्य विषाणाग्रैः परस्परम् ॥ शरैः पूर्णायतोत्सृष्टैरन्योन्यमभिजघ्नतुः ॥ ३६ ॥ ततः सुविपुलां दीप्तां मयो रुक्माङ्गदो गदाम् ॥ त्वष्टारि प्राहिणोत्क्रुद्धः सर्वप्राणहरां रणे ॥ ३७ ॥ तया जघानातिरथस्त्वष्टुरुत्तमवाजिनः ॥ गदया दानवः क्रुद्धो वज्रेणेन्द्र इवाचलान् ॥ ३८ ॥ ततः क्रुद्धो महादैत्यः क्षुराभ्यामथ संयुगे ॥ पुनर्द्वाभ्यां शराभ्यां तु निशिताभ्यां महारणे ॥३९॥ ध्वजं त्वष्टुरथ च्छित्वा सूतं निन्ये यमक्षयम् ॥ महाबलान्महावेगान्तस्याश्वान् गदयाऽहनत् ॥४०॥ दृष्ट्वा त्वष्टा हतं सूतमश्वांश्च विनिपातितान् ॥ हताश्वं रथमुत्सृज्य सूतं च पतितं भुवि ॥ ४१ ॥ विस्फारयन्महाचापं स्थितो भूमाविवाचलः ॥ हताश्वसूतं विरथं दृष्ट्वा रिपुमवस्थितम् ॥ ४२॥ जयश्रिया सेव्यमानो दीप्यमान इवानलः ॥ मयः कालान्तकप्रख्यश्चापपाणिरदृश्यत ॥ ४३॥ प्रादहद्देवसैन्यानि दावाग्निरिव काननम् ॥ त्वष्टुः सोऽक्षिपता- नुग्रान्नाराचांस्तिग्मतेजसः ॥ ४४ ॥

सारथीको यमलोकमें पहुँचा दिया, फिर बडे शरीरवाले और बडे वेगवान् श्रेष्ठ घोडोंको गदासे मारा ॥ ४० ॥ वह त्वष्टा रणमें भेदन की हुई ध्वजा और सूतको मृतक देख घोडे तथा सूतरहित रथको त्याग पृथ्वीमें स्थित हुआ ॥ ४१ ॥ युद्धके निमित्त आने महान् धनुषको टंकारता पृथ्वीमें पर्वतकी समान स्थित हुआ; घोडे सूत और रथहीन शत्रुको उपस्थित देख ॥ ४२ ॥ जयरूपी शोभाको प्राप्त हो युद्धमें दीप्तिमान् अग्नि और कालकी तुल्य प्रसिद्ध हाथमें धनुषको धारण किये मयदैत्य ॥ ४३ ॥ देवताओंकी सेनाको दग्ध करता हुआसा दीखने लगा, कि, जैसे वनको दग्ध करता

हुआ दावाग्नि तब अत्यन्त तेजवाले शिलापै पैनाये हुए ॥ ४४ ॥ अनेक प्रकारकी आकृतिवाले चौदह बाण ॥ ४५ ॥ मयदैत्यने छोडे; वे सुवर्णके गहनोंवाले बाण त्वष्टाकी सेनाके रुधिरको ऐसे पीते हुए; जैसे कालसे प्रेरणा किये हुए सर्प हों, रुधिरमें भीगे हुए वे बाण ऐसे शोभाको प्राप्त हुए ॥ ४६ ॥ कि जैसे आधे प्रवेश हुए क्रोधयुक्त बिलोंमें महान् सर्प हों, सुवर्णसे भूषित हुए बाणोंसे त्वष्टानेभी मयदैत्यको वेधन कर ॥ ४७ ॥ अत्यन्त उग्र चौदह बाणोंसे उस दैत्यकी सव्यभुजाको विदारण किया ॥ ४८ ॥ वे बाण मयदैत्यकी सव्य भुजाको भेदन कर और भूमिमें सर्पकी समान प्राप्त हुए प्रकाश

चतुर्दश शिलाधौतान्सायकान्विविधाकृतीन् ॥ ते पपुस्तस्य सैन्यस्य शोणितं रुक्मभूषणाः ॥ ४५ ॥ आशीविषा इव क्रुद्धा भुजङ्गाः कालचोदिताः ॥ ते क्षितिं समवर्तन्त शोभन्ते रुधिरोक्षिताः ॥४६॥ अर्द्धप्रविष्टाः संरब्धा बिलानीव महोरगाः ॥ तं प्रत्यविध्यत्त्वष्टा तु जाम्बूनदविभूषितैः ॥ ४७ ॥ चतुर्दशभिरत्युग्रैर्नाराचैरभिदारयन् ॥ ते तस्य दैत्यस्य भुजं सव्यं निर्भिद्य पत्रिणः ॥ ४८ ॥ विदार्य विविशुर्भूमिं पन्नगा इव वेगतः ॥ ते प्रकाशन्त नाराचाः प्रविशन्तो वसुंधराम् ॥ ४९ ॥ अस्तं गच्छन्तमादित्यं प्रविशन्त इवांशवः ॥ मयस्त्रिभिरथानर्च्छत्त्वष्टारं तु पतत्रिभिः ॥ ५० ॥ सुपर्णवेगैर्विकृतैर्ज्वलद्भिः प्राणनाशनैः ॥ त्वष्टाथ मयनिर्मुक्तैः सायकैरर्दितः प्रभुः ॥ ५१ ॥ अपयातो रणं हित्वा व्रीडयाभिसमन्वितः ॥ तं तत्र हतसूतं च भुजङ्गा इव निर्विषम् ॥ ५२ ॥ त्वष्टारं विरथं कृत्वा मुदितः स तु दानवः ॥ विस्फार्यमाणो रुचिरं चापं रुक्माङ्गदं दृढम् ॥ ५३ ॥

करने लगे ॥ ४९ ॥ जैसे अस्ताचलको जाते हुए सूर्यमें प्रवेश होती किरण; तब मयने तीन बाणोंसे त्वष्टाको भेदन किया ॥ ५० ॥ वे रुधिरको भोजन करनेवाले और अत्यन्त उग्र जलते हुए ऐसे प्राणनाशी थे और मयदानवके बाणोंसे पीडित हुआ त्वष्टा ॥ ५१ ॥ युद्धको त्याग लज्जित हुआ रणसे चला गया, सूत और घोडोंके मारनेसे विषरहित सर्पकी नांई ॥ ५२ ॥ त्वष्टाको विरथ कर मयदानव अत्यन्त आनंदको प्राप्त हुआ; और अत्यन्त सुन्दर और सुवर्णके बाजुओंवाले और अत्यन्त दृढ ऐसे धनुषको टंकारता हुआ ॥ ५३ ॥

रणमें वह दैत्य प्रकाशमान अग्निकी समान स्थित हुआ; तब बलमें श्लाघनीय मदोन्मत्त पुलोमा दानव ॥ ५४ ॥ श्वेत घोडोंवाले रथमें स्थित हो रणमें दीखा और सम्पूर्ण प्राणियोंके शरीरमें स्थित होनेवाले ॥ ५५ ॥ और कालकी तुल्य बलवान् वायुदेवताके संग युद्ध करने लगा पुलोमा दैत्यके धनुषकी ज्याके शब्दको सुन पवन देवता ॥ ५६ ॥ ऐसे नहीं सह सके कि जैसे मदोन्मत्त हस्तीके शब्दको मदोन्मत्त हस्ती और पुलोमा दैत्यके छोडे हुए बाणोंसे दशों दिशा ऐसे आच्छादन हो गईं ॥ ५७ ॥ जैसे सूर्यकी किरणोंके जालसे आकाशसहित जगत् हो जाता है; वह तांबेकेसे

रणे व्यतिष्ठद्दैत्येन्द्रो ज्वलन्निव हुताशनः ॥ पुलोमा तु बलश्लाघी दृप्तो दानवसत्तमः ॥ ५४ ॥ रथे श्वेतहयेनेह सार्द्धं युध्यति वायुना ॥ सर्वेषामेव भूतानां यः प्राणः कथ्यते द्विजैः ॥ ५५ ॥ बलिना कालकल्पेन वायुना सह संगतः ॥ पुलोम्नस्तत्र पवनः श्रुत्वा ज्यातलनिःस्वनम् ॥५६॥ नामृष्यत यथा मत्तो गजः प्रतिगजस्वनम् ॥ दैत्यचापच्युतैर्बाणैः प्राच्छाद्यन्त दिशो दश ॥५७॥ रश्मिजालैरिवार्कस्य विततं साम्बरं जगत् ॥ स ताम्रनयनः क्रुद्धः श्वसन्निव महोरगः ॥ ५८ ॥ वृतो दैत्यशतैर्वायू रश्मिवानिव भास्करः ॥ दैत्यचापभुजोत्सृष्टाः शरा बर्हिणवाससः ॥ ५९ ॥ रुक्मपुंखाः प्रकाशन्त हंसाः श्रेणीकृता इव ॥ चापध्वजपताकाभ्यः शस्त्रा दीप्तमुखाश्च्युताः ॥ ६०.॥ प्राप्तवन्तश्च दृश्यन्ते दैत्यस्यापततः शराः ॥ एवं सुतीक्ष्णान्खचराञ्छलभानिव पावके ॥ ६१ ॥ सुवर्णविकृतान् चित्रान्मुमोच दितिजः शरान् ॥ तमन्तकमिव क्रुद्धमापतन्तं स मारुतः ॥ ६२ ॥

नेत्रवाला महान् सर्पकी नांई श्वास लेता हुआ ॥ ५८ ॥ सैकडों दैत्योंसे घिरकर वायुदेवता ऐसे शोभाको प्राप्त हुआ कि जैसे किरणोंसे सूर्य और दैत्यकी भुजाओंद्वारा धनुषसे छोडे हुए मोरके पंखोंकी तुल्य वर्णवाले ॥ ५९ ॥ सुवर्णके पखोंवाले बाण हंसोंकी पंक्तिकी समान प्रकाशित हुए चाप ध्वजा पताकाओंसे निकले हुए दीप्तिमान् शस्त्र ॥ ६० ॥ वे दैत्योंके निकट प्राप्त हुए दीखने लगे; इस प्रकार तीक्ष्ण बाणोंको अग्निमें पतंगकी समान छोडता हुआ ॥ ६१ ॥ वे सुवर्णसे विकृत और चित्रविचित्र बाण छोडते क्रोधित हो कालकी समान आते हुए पुलोमा दैत्यको पवनने देख ॥ ६२ ॥

प्राणपनसे नव बाणोंसे उसे वेधन किया; तब सनातन वायुने तिसका असह्य वेग देख ॥ ६३ ॥ उत्तम पराक्रममें स्थित हो उसके बाणसमूहको नष्ट किया ॥ ६४ ॥ और बलवान् पवनने शरोंके जालको नष्ट कर पैने मुखोंवाले वीस बाणोंसे पुलोमा दैत्यको वेधन किया, और पवनोंके गणोंमें श्रेष्ठ और पराक्रमवाले दश देवता ॥ ६५ ॥ वेगसे धन्य धन्य कह सिंहनाद करने लगे; उस तुमुल और रोमहर्षको उपजानेवाले शब्दको सुन ॥ ६६ ॥ वे पौलोम संज्ञक दैत्य क्रोधमें मूर्च्छित हुए पवनके सन्मुख धावमान हुए, और पवनको प्राप्त हो शरोंकी वर्षासे आच्छादन करने लगे ॥ ६७ ॥ कि जैसे वर्षाकालमें

त्यक्त्वा प्राणानतिक्रम्य विव्याध नवभिः शरैः ॥ तस्य वेगमसंहार्यं दृष्ट्वा वायुः सनातनः ॥ ६३ ॥ उत्तमं जवमास्थाय व्यधमत्सा-
यकव्रजान् ॥ तेजो विधम्य बलवाञ्छरजालानि मारुतः ॥ ६४ ॥ विव्याध दैत्यं विंशत्या विशिखैर्नतपर्वभिः ॥ मरुद्गणानां प्रवरा
दश दिव्या महौजसः ॥ ६५ ॥ साधु साध्विति योगेन सिंहनादं प्रचक्रिरे ॥ तस्मिन्त्समुत्थिते शब्दे तुमुले लोमहर्षणे ॥ ६६ ॥
अभ्यधावन्त दितिजाः पौलोमाः क्रोधमूर्च्छिताः ॥ ते समासाद्य पवनं समावृण्वन् शरोत्तमैः ॥ ६७ ॥ पर्वतं वारिधाराभिः प्रावृषीव
बलाहकाः ॥ ते पीडयन्तः पवनं क्रुद्धाः सप्त महारथाः ॥ ६८ ॥ प्रजासंहरणे घोराः सोमं सप्त ग्रहा इव ॥ ततो दक्षिणमक्षोभ्यं
नानारत्नविभूषितम् ॥ ६९ ॥ करं गजकराकारमुद्यम्य युधि मारुतः ॥ तेषां मूर्द्धसु दैत्यानां पातयामास वीर्यवान् ॥ ७० ॥
निहता वायुवेगेन तेन सप्त महारथाः ॥ त्यक्त्वा प्राणान् पुलोमा तु विव्याध नवभिः शरैः ॥ ७१ ॥

जलोंकी धारासे पर्वतको मेघ आच्छादन करते हैं, क्रोधित हुए ऐसे सात महारथी पवनको पीडित करने लगे ॥ ६८ ॥ कि जैसे प्रलयकालमें महाघोररूप सात ग्रह चन्द्रमाको पीडित करते हैं, तब अक्षोभ्य अपने दक्षिण हाथको उठाय जो अनेक प्रकारके रत्नोंसे भूषित ॥ ६९ ॥ हस्तीकी शुंडाकी तुल्य था; युद्धमें दैत्योंके मस्तकमें उस बलीने मारा ॥ ७० ॥ अपने वायुके वेगसे सात महारथोंको फेंक दिया; और वह पुलोमा प्राणको त्याग नव

बाणोंसे वायुको वेधन करता हुआ ॥ ७१ ॥ वायुदेवताको प्रकाश करते हुए अचिंत्य बलयुक्त देख और ज्वलित होते हुए पुलोमाके बाणोंके समूहको देख उन महात्मा दानवोंके तेजोंको विदीर्ण किया, तब वे रुधिरमें भीगे हुए मुकुटोंवाले गेरुके पर्वतके समान भिन्न दीखे ॥ ७२ ॥ ७३ ॥ और छिन्न भुजा वर्म अस्थियोंवाले सम्पूर्ण दानव युद्धभूमिमें पडे हुए शोभित हुए; और भेदन किये हुए मदोन्मत्त हाथी जिस प्रकार शोभाको प्राप्त हुए कि जैसे फूले हुए वृक्ष ॥ ७४ ॥ और महात्मा दानवोंके कटे हुए शरीरोंसे रौद्ररूप बडी भयानक नदी प्रवृत्त हुई ॥ ७५ ॥ और डरनेवालोंके भयको बढानेवाली नदी

प्रदर्पितमसंहार्यं दृष्ट्वा वायुं सनातनम् ॥ असंचिन्त्य सुरौघांस्तान् ज्वलितांश्च पुलोमतः ॥ ७२ ॥ तेषां विदार्य तेजांसि दानवानां महात्मनाम् ॥ शोणिताक्लिन्नमुकुटा गैरिकाक्ता इवाद्रयः ॥७३॥ ते भिन्नवर्मास्थिभुजाः पतन्तो भान्ति दानवाः ॥ मातङ्गयूथसंभग्नाः पुष्पिता इव पादपाः ॥७४॥ तेषां विदारितैर्देहैर्दानवानां महात्मनाम् ॥ ततः प्रावर्त्तत नदी रौद्ररूपा भयावहा ॥७५॥ प्रस्रवन्ती रणे रक्तं भीरूणां भयवर्द्धिनी ॥ देवदैत्यगजाश्वानां रुधिरौघपरिप्लुता ॥ रणभूमिरभूद्रौद्रा तत्र तत्र सहस्रशः ॥ ७६॥ सभूता गतसत्त्वैश्च यक्षराक्षसखेचरैः ॥ सानुगैः सपताकैश्च सोपासङ्गरथध्वजैः ॥ ७७ ॥ शीर्णकुम्भैस्तथा नागैर्घण्टाभिस्तु विभूषितैः ॥ सुवर्णपुङ्खैर्ज्वलितैर्नाराचैस्तिग्मतेजसैः ॥ ७८ ॥ देवदानवनिर्मुक्तैः सविषैरुरगैरिव ॥ प्रासतोमरनाराचैः शक्तिखड्गपरश्वधैः ॥ ७९ ॥ सुवर्णविकृतैश्चापि गदामुशलपट्टिशैः ॥ कनकाङ्गदकेयूरैर्मणिभिश्च सकुण्डलैः ॥ ८० ॥ तनुत्रैः सतलत्रैश्च हारैर्निष्कैश्च शोभनैः ॥ हतैश्च दितिजैस्तत्र शस्त्रस्यन्दनवर्जितैः ॥ ८१ ॥ पतितैरपि विद्धैश्च शतशोऽथ सहस्रशः ॥ निपातितध्वजरथो हतवाजिरथद्विपः ॥८२॥

बहने लगी; देवता और दानव हस्ती और घोडोंके रुधिरसे वह रणभूमि बडी भयानक होती हुई सहस्रों जीवयुक्त हुई ॥ ७६ ॥ और गतप्राणोंवाले राक्षस खेचर और धनुष यक्ष और ध्वजा रथ ॥७७॥ घंटाओंसे भूषित फूटे हुए मस्तकोंवाले हस्ती और प्रकाश करते हुए सुवर्णकी पंखोंवाले बाण ॥७८॥ देव दानवोंसे छोडे हुए विषैले सर्पोंकी समान प्रास और तोमर नाराच और भाले शक्ति फरसे खड्ग ॥ ७९ ॥ सुवर्णसे जटित धनुष गदा और मुशल पट्टिश सुवर्णके बाजू मुकुट शोभायमान कुंडल ॥८०॥ तनुत्र, तलत्र, हार, धुकधुकी शस्त्र रथोंसे रहित भेदन किये हुए दैत्योंसे वह ॥८१॥ जो कि विद्ध और पतित

थे गिरे हुए ध्वजा रथ घोडे और हाथियोंसे ॥८२॥ रणभूमि शोभाको प्राप्त हुई; घोडे हस्तियोंके मरनेसे देवता और दैत्योंका युद्ध बराबर शोभाको प्राप्त हुआ; तब महाअसुरपालोंसे सहस्रों दैत्योंको साथ ले ॥८३॥ गदा और मुशलोंको धारण कर वायुदेवताको घेरता हुआ ॥८४॥ और वे दानवोंमें श्रेष्ठ एक लाख दैत्य पवनदेवताको हनन करते हुए, और तिन दैत्योंसे ताडना किया हुआ पवन अंकुशसे ताडना किये हस्तीकी समान शोभित हुआ ॥८५॥ वह महावायु पवन आठ सौ दैत्योंको मार मार्ग कर बडा शब्द करते हुए ॥ ८६ ॥ वह मार्ग अबतकभी दीखता है; उस वायुपंथा नाम मार्गको

विमर्दो देवदैत्यानां सदृशः कर्मणा बभौ ॥ अथ दैत्यसहस्रेण पौलोमेन महासुरः ॥ ८३ ॥ संवृतः पवनः श्रीमान्गदामुशलपा-
णिना ॥ ८४॥ ते जघ्नुः शतसाहस्राः पवनं दानवोत्तमाः ॥ तैर्वध्यमानः स बभौ समन्तादर्पितैः शरैः ॥८५॥ हत्वाष्टौ तत्र योधानां
शतानि पवनः प्रभुः ॥ कृत्वा मार्गं सुरश्रेष्ठो ननाद सुमहारथः ॥ ८६ ॥ अद्यापि च सुविस्तीर्णः पन्थाः संदृश्यते दिवि ॥ नाम्ना
वायुरथो नाम सिद्धाः पर्यन्ति तं दिवि ॥ ८७॥ वैशम्पायन उवाच ॥ हयग्रीवस्तु दितिजः पूषाणं प्रति वीर्यवान् ॥ ननाद सुमहानादः
सिंहनादं महारथः ॥ ८८ ॥ विस्फार्य सुमहच्चापं हेमजालविभूषितम् ॥ पूषाणं दितिजोऽपश्यत्क्रुद्धो घोरेण चक्षुषा ॥ ८९ ॥ भुजा-
भ्यामाददानस्य संदधानस्य वै शरान् ॥ मुञ्चतः कर्षतो वापि ददृशुस्तत्र नान्तरम् ॥ ९० ॥ अग्निचक्रोपमं दीप्तं मण्डलीकृत-
कार्मुकम् ॥ तदासीद्दानवेन्द्रस्य सव्यदक्षिणमस्यतः ॥ ९१ ॥ रुक्मपुंखैस्ततस्तस्य चापमुक्तैः शितैः शरैः ॥ प्राच्छाद्यन्त शिला-
धौतैर्दिशः सूर्यस्य च प्रभाः ॥ ९२ ॥

सिद्धजनही सदा देखते हैं ॥ ८७ ॥ वैशंपायनजी बोले; हे राजन् ! महाबली हयग्रीवदैत्य पूषाको प्राप्त हो सिंहकी समान नाद करने लगा ॥ ८८ ॥ सुवर्णके जालोंसे भूषित धनुषको टंकोर और क्रोधित हो घोरनेत्रोंसे पूषाको देखने लगा ॥ ८९ ॥ और बाणोंको भुजाओंसे लेता हुआ संधाता हुआ छोडता हुआ खैंचता हुआ ऐसा कर्म करने लगा कि हयग्रीवके बीचमें अंतर नहीं दीखता था ॥ ९० ॥ और दाहिने बांये हाथसे फेंके हुए बाणोंका ऐसा चक्र हो गया कि जैसे घुमाया हुआ अग्निका चक्र हो ॥ ९१ ॥ सुवर्णके पंखोंवाले शिलापै पैनाये हुए धनुषसे छोडे हुए बाणोंसे सूर्य

और दिशाओंको आच्छादन कर दिया ॥ ९२ ॥ तब सुवर्णके पंखोंवाले और पैनी धारोंवाले ऐसे बाणोंके ॥ ९३ ॥ आकाशमें उन आकाशचारि-
योंके बहुत समूह दीखने लगे; और पर्वतके शिखरकी तुल्य आकारवाले ध षसे छोडे हुए श्रेष्ठ बाण ॥ ९४ ॥ और पंक्तिरूप हुए आकाशमें जाते
हुए प्रकाश करने लगे कि जैसे आकाशमें जाते हुए क्रौंच गृध्रपक्षसे युक्त शिलापै पैनाये हुए सुवर्णसे भूषित ॥ ९५ ॥ और महावेगवाले प्रशस्त बाण
हयग्रीवने छोडे; और धनुषके बलसे घुमाये हुए सुवर्णसे भूषित ॥ ९६ ॥ और बहुत पैने बाण पूषाके शरीरको सब ओरसे आच्छादन कर सुवर्णसे

ततः कनकपुंखानां शराणां नतपर्वणाम् ॥ ९३ ॥ नभश्चराणां नभसि दृश्यन्ते बहवो व्रजाः ॥ गिरिकूटनिभाच्चापात्प्रभवन्तः
शरोत्तमाः ॥ ९४ ॥ श्रेणीभूताः प्रकाशन्ते यान्तः श्येना इवाम्बरे ॥ गृध्रपत्राञ्छिलाधौतान्कार्तस्वरविभूषितान् ॥ ९५ ॥ महा-
वेगान्प्रशस्ताग्रान्मुमोच दितिजः शरान् ॥ ततश्चापबलोद्धूताः शातकुम्भविभूषिताः ॥ ९६ ॥ देहे समवकीर्यन्त पूष्णः सन्निहिताः
शराः ॥ ते व्योम्नि रुक्मविकृताः संप्रकाशन्त सर्वशः ॥९७॥ खद्योता इव घर्मान्ते खे चरन्तः समन्ततः ॥ शिलाधौताः प्रसन्नाग्राः
पूषाणं सिषिचुः शराः ॥ ९८ ॥ पर्वतं वारिधाराभिर्यथा प्रावृषि तोयदाः ॥ ततः प्रच्छादयामास पूषाणं शरवृष्टिभिः ॥ ९९ ॥ पर्वतं
वारिधाराभिश्छादयन्निव तोयदः ॥ ततः स पूष्णो देवस्य बलं वीर्यं पराक्रमम् ॥ १०० ॥ व्यवसायं च सत्त्वं च पश्यन्ति त्रिदशा-
द्भुतम् ॥ तां समुद्रादिवोद्धूतां शरवृष्टिं समुत्थिताम् ॥ १ ॥ नाचिन्तयत्तदा पूषा दैत्यं चाभ्यद्रवद्रणे ॥ हेमपृष्ठं महानादं पूष्ण
आसीन्महाधनुः ॥ २ ॥

जटित हुए वे बाण आकाशमें ऐसे प्रकाशित हुए ॥ ९७ ॥ कि जैसे वर्षाऋतुमें आकाशमें जाते हुए सहस्रों पटबीजने, शिलापै पैनाये हुए और पैने
अग्रभागोंवाले ऐसे बाण पूषाको वेधन करने लगे ॥ ९८ ॥ जैसे वर्षाकालीन बादल पर्वतको आच्छादन करते हैं, इस प्रकार हयग्रीवने बाणोंकी
वर्षासे पूषाको आच्छादन कर दिया ॥ ९९ ॥ जलधारासे पर्वतकी समान पूषाको आच्छादन किया तब वीर्य पराक्रम ॥ १०० ॥
और परिश्रम शूरताको सम्पूर्ण देवता आश्चर्यरूप देखने लगे, हयग्रीवके धनुषसे होती हुई शरोंकी वर्षाको ॥ १ ॥ पूषा कुछभी चिंता न करता

हुआ क्रोधसे हयग्रीवके सामने धावमान हुआ; सुवर्णकी पृष्ठको बडे शब्द करनेवाले पूषाका धनुष था ॥ २ ॥ उस इन्द्रके वज्रकी समान मंडलाकार धनुषको पूषा ग्रहण कर बाणोंसे आकाशको आच्छादन करने लगा ॥ ३ ॥ पूषाके धनुषसे सुवर्णके पंखोंवाले बाणोंकी आकाशमें विस्ताररूप माला हो गई ॥ ४ ॥ जब पूषाके छोडे हुए बाणोंकी महाघोर वर्षा प्रारंभ हुई तब सब ओर आकाशमें बाणजाल विस्तारित हो गये ॥ ५ ॥ पीछे उन शरोंके जालोंको हयग्रीवने तीक्ष्ण बाणसे नष्ट किया, तब सुवर्णके पंखोंवाले और कंकणके वर्णकी समान वस्त्रोंवाले ॥ ६ ॥

विकृतं मण्डलीभूतं शक्राशनिमिवापरम् ॥ ततः शराः प्रादुरासन्पूरयन्त इवाम्बरम् ॥ ३ ॥ सुवर्णपुंखाः पूष्णस्ते प्रभवन्तः शरासनात् ॥ मालेव रुक्मपुंखानां वितता व्योम्नि पत्रिणाम् ॥ ४ ॥ प्रादुरासीन्महाघोरा बृहती पूषकार्मुकात् ॥ ततो व्योम्नि विभक्तानि शरजालानि सर्वशः ॥ ५ ॥ आहतानि व्यशीर्यन्त शरैः सन्नतपर्वभिः ॥ ततः कनकपुङ्खानां छिन्नानां कङ्कवाससाम् ॥ ६ ॥ पततां पात्यमानानां खमासीच्चावृतं रण ॥ पूषा प्रापूरयद्बाणैर्हयग्रीवं शिलाशितैः ॥ ७ ॥ नामाङ्कैरर्कसदृशैर्दिव्यहेमपरिष्कृतैः ॥ ततो व्यसृजदुग्राणि शरजालानि दानवः ॥ ८ ॥ अमर्षी बलवान् क्रुद्धो दिधक्षन्निव पावकः ॥ पूष्णस्त्वाजौ ध्वजं चैव पताकां धनुरेव च ॥ ९ ॥ रश्मीन् योक्त्राणि चाश्वानां हयग्रीवो रणेऽच्छिनत् ॥ अथाप्यश्वान्पुनर्हत्वा चतुर्भिः सायकोत्तमैः ॥ ११० ॥ सारथिं सुमहातेजा रथोपस्थादपातयत् ॥ कृतस्तु विरथः पूषा हयग्रीवेण संयुगे ॥ ११ ॥

गिरते हुए हयग्रीवके बाणोंसे आकाश आच्छादन हो गया और शिलापै पैनाये हुए ॥ ७ ॥ अपने नामसे अंकित और सूर्यके तेजकी समान तेजवाले और सुवर्णसे जटित बाणोंसे पूषा हयग्रीवपै फिर वर्षा करने लगा, तब हयग्रीवभी उग्र शरोंकी वर्षा करने लगा ॥ ८ ॥ महाक्रोधी वह दैत्य अग्निकी समान जलता हुआ संग्रामम पूषाके ध्वजा पताका और धनुष ॥ ९ ॥ रश्मी सूत घोडोंको नष्ट कर दिया और चार बाणोंसे फिर घोडोंको मार ॥ ११० ॥ उस महातेजस्वीने रथपैसे फिर सूतको पृथ्वीमें गिरा दिया, जब हयग्रीवने युद्धमें पूषाको विद्ध कर दिया ॥ ११ ॥

तब पूषा भयभीत हो उसके निकटसे चला गया; और मृत्युके मुखसे निकलेकी समान इन्द्रके रथके समीप चला गया ॥ १२ ॥ तब शंबर और भगका फिर घोर और बडा दारुण अद्भुत युद्ध होने लगा ॥ १३ ॥ सात हाथ प्रमाण बारह बिलस्त चौडा इन्द्रके वज्रकी तुल्य शब्दवाले दृढ ज्यावाले, बहुत भारको सहनेवाले धनुषको धारण कर रथके धुरेकी समान बाणोंको युद्धमें छोडने लगा ॥ १४ ॥ क्रोधसे रक्त नेत्र किये सम्पूर्ण योगके जाननेवाले शंबर दैत्यने देवताओंकी सेना त्रिासित कर दी ॥ १५ ॥ और वह सेना समुद्रकी तरंगोंकी समान कंपित हुई तब बुरे नेत्रोंवाले भयानक रूप शंबरको आता

पूषा तस्य रथाभ्याशात्स ययौ तेन वै जितः ॥ गतः शक्ररथाभ्याशं मुक्तो मृत्युमुखादिव ॥ १२ ॥ तत्राद्भुतमिदं भूयो युद्धं वर्तत दारुणम् ॥ कृतप्रतिकृतं घोरं शम्बरस्य भगस्य च ॥ १३ ॥ सप्तारत्निष्कुपरीणाहं द्वादशारत्निकार्मुकम् ॥ चापं चाशनिनिर्घोषं दृढज्यं भारसाधनम् ॥ विक्षिपन्नक्षसदृशान्व्यसृजत्सायकान्बहून् ॥ १४ ॥ क्रोधसंरक्तनयनः शम्बरः सर्वयोगवित् ॥ तेन वित्रास्यमानानि देवसैन्यानि सर्वशः ॥ १५ ॥ समकम्पन्त भीतानि सिन्धोरिव महोर्मयः ॥ तमापतन्तं संप्रेक्ष्य विरूपाक्षं विभीषणम् ॥ १६ ॥ भगः प्रस्फुरमाणोष्ठस्त्वरमाणो व्यदारयत् ॥ ततो भगो महेष्वासो दिव्यं विस्फारयन् धनुः ॥ १७ ॥ अवाकिरन्दैत्यगणाञ्छरजालेन छादयन् ॥ तमभ्यगाद्भगो दैत्यं तूर्णमस्यन्तमान्तिकात् ॥ १८ ॥ मातङ्गमिव मातङ्गो वृषं प्रति वृषो यथा ॥ तौ प्रगृह्य महावेगौ धनुषी भारसाधने ॥ १९ ॥ प्राच्छादयेतामन्योन्यं तक्षमाणौ रणे शरैः ॥ तयोः सुतुमुलं युद्धमासीद्घोरं महारणे ॥ १२० ॥ भगशम्बरयोर्भीममप्रमेयं महात्मनोः ॥ अथ पूर्णायतोत्सृष्टैः शरैः सन्नतपर्वभिः ॥ २१ ॥

देख ॥ १६ ॥ क्रोधसे होठोंको कंपायमान करते भगदेवताने शीघ्रतासे शंबर दैत्यको निवारण किया, तब बडे धनुषवाले भगदेव दिव्यधनुषको टंकोरता हुआ ॥ १७ ॥ धनुषकी ज्याके खैंचनेसे सम्पूर्ण दिशाओंको शब्दायमान करता हुआ दैत्योंपर बाणजाल विस्तार करने लगा, शंबर दैत्यके सन्मुख भग शीघ्रतासे चला ॥ १८ ॥ जैसे हस्तीके प्रति हस्ती, और वृषके प्रति वृष जाता हो; और महावेगवाले वे दोनों महाभारी धनुषोंको ग्रहण कर ॥ १९ ॥ परस्पर आच्छादन करते हुए बाणोंसे छेदन करने लगे; तब भग और शंबरका तुमुल और घोर युद्ध होने लगा ॥ १२० ॥ यह युद्ध महा-

भयंकर और अग्निमय हुआ, और बडे पैने धारवाले और बडे वेगसे छोडे हुए ऐसे बाणोंसे ॥ २१ ॥ परस्परमें हनन करने लगे; दोनोंके बख्तर टूट गये सर्वांग विकृत होनेसे रुधिरसे पूर्ण हो गये ॥ २२ ॥ भेदन किये अंगोंवाले रथोंमें बैठे हुए मदोन्मत्त हुए पैने बाणोंसे परस्परमें छेदन करते हुए दोनोंके परस्परमें देखनेको समर्थ नहीं हुए ॥ २३ ॥ और क्रोधसे लाल २ नेत्र किये कालधर्मराजकी तुल्य शीघ्रतासे शंबर दैत्यने बाणोंसे भगको भेदन किया ॥२४॥ कि जैसे महान् सर्पोंको गरुड आकाशमें पकडता हो; शंबरके प्रेरित ॥२५॥ उन बाणोंको अग्निकी समान प्रकाशमान वेगवाले और सूर्यकी

व्यदारयेतामन्योन्यं कार्ष्णौ निर्भिद्य चर्मणी ॥ तौ तु विकृतसर्वाङ्गौ रुधिरेण समुक्षितौ ॥२२॥ संप्रेक्षमाणौ रथिनावुभौ परमदुर्मदौ ॥ तक्षमाणौ सितैर्बाणैर्न वीक्षितुमशक्नुताम् ॥ २३ ॥ अथ विव्याध समरे त्वरमाणोऽसुरो भगम् ॥ नाराचैः क्रोधताम्राक्षः कालान्तकयमोपमः ॥ २४ ॥ गरुत्मानिव चाकाशे पोथयानो महोरगम् ॥ नाराचान्यपतन्देहे तूर्णं शम्बरचोदिताः ॥ २५ ॥ तानन्तरिक्षे नाराचान् भगश्चिच्छेद पत्रिभिः ॥ ज्वलन्तमचलप्रेष्यं वैश्वानरसमप्रभम् ॥ २६ ॥ ततो भगं चतुःषष्ट्या विव्याधासुरसत्तमः ॥ शिलीमुखैर्महावेगैर्जाम्बूनदविभूषितैः ॥ २७ ॥ तदा तत्सुचिरं कालं युद्धं सममिवाभवत् ॥ शम्बरस्य च मायाभिर्नादृश्यत ततोऽम्बरम् ॥ २८ ॥ दोर्भ्यां चिक्षिपतश्चापं रणे विष्टभ्य तिष्ठतः ॥ श्रूयते धनुषः शब्दो विस्फूर्जितमिवाशनेः ॥ २९ ॥ स भगस्य हयान्हत्वा सारथिं च महाहवे ॥ अभ्यवर्षच्छरैरेनं पर्जन्य इव वृष्टिमान् ॥ १३० ॥ न तस्यासीदनिर्भिन्नं गात्रे द्व्यङ्गुलमन्तरम् ॥ भगदेवस्य दैत्येन शम्बरेणास्त्रघातिना ॥ ३१ ॥

सम कांतिवाले देव भगदेवताने अपने बाणोंसे उनको आकाशमें छेदन कर दिया ॥२६॥ तब अत्यन्त तीक्ष्ण सुन्दर तीक्ष्ण मुखोंवाले अत्यन्त वेगवाले ऐसे चौंसठ बाणोंसे शंबर दैत्यने भगको वेधन किया ॥ २७ ॥ तब बहुत कालपर्यन्त मायावी शंबर और भगदेवता दोनोंका बराबर युद्ध होता रहा जिससे आकाश नहीं दीखता था ॥२८॥ और भुजाओंसे धनुषको धारण करता हुआ रणमें स्थित हुआ; वज्रकी तुल्य धनुषोंका शब्द सुना जाता था ॥२९॥ शंबर दैत्य भगके घोडे और सारथीको मारकर मेघकी समान इनपर वर्षा करने लगा ॥ १३० ॥ अस्त्रघाती शम्बर दैत्यके बाणोंसे सूर्यरूपी भगदेवताके

शरीरमें बिना छिद्रके दो अंगुलीकाभी अंतर नहीं रहा ॥ ३१ ॥ महाबली मायाधारी शंबर दैत्यके दिव्य अस्त्रको अपने दिव्य अस्त्रसे धारण करता हुआ, तब दैत्य मायायुद्धसे अन्तर्हित हुआ ॥ ३२ ॥ तब अपनी माया और लाघवतासे भगदेवताको वंचित किया; भगने उसके रथ और घोडेको बाणोंसे आच्छादन कर दिया ॥ ३३ ॥ एक सहस्र मायाओंका धारनेवाला कांतिमान् देवताओंकी सेनाको भेदन करनेवाला शंबर दैत्य सौ बाणोंसे आच्छादित दीखने लगा ॥ ३४ ॥ और वह महाबली शंबर फिर प्राणोंसे रहित हुआसा पृथ्वीमें पड़ा हुआ दीखने लगा, और फिर सौ पर्वतोंकी तुल्य युद्ध करता दीखने लगा ॥ ३५ ॥ फिर वह बली दिग्गज हस्तीपर स्थित हुआ दीखने लगा। फिर प्रादेशमात्र रूप धारण कर फिर पर्वतकी समान दीखने

दैत्यस्य चोद्धतं दिव्यमस्त्रमस्त्रेण धारयन् ॥ मायायुद्धेन मायावी शम्बरोऽस्तमयोऽभवत् ॥ ३२ ॥ अवञ्चयद्भगं दैत्यो मायाभिर्लाघवेन च ॥ भगस्तस्य रथं साश्वं शरवर्षैरवाकिरत् ॥ ३३ ॥ सहस्रमायो द्युतिमान्देवसेनां निषूदयन् ॥ अदृश्यत शरैश्छन्नः शम्बरः शतशो रणे ॥ ३४ ॥ अदृश्यत्पतितो भूमौ गतचेता इवासुरः ॥ अथ स्म युध्यते भूयः शतधा शैलसन्निभः ॥ ३५ ॥ दिशागजेन्द्रमारूढो दृश्यते स पुनर्बली ॥ प्रादेशमात्रश्च पुनः पुनर्भवति शैलवत् ॥ ३६ ॥ महामेघ इव श्रीमान् तिर्यगूर्ध्वं च सोऽभवत् ॥ पुनः कृत्वा विरूपाणि विकृतानि च सर्वशः ॥ ३७ ॥ सर्वां भीषयते सेनां देवानां भीमदर्शनः ॥ ते भीताः प्रपलायन्ते सिंहं दृष्ट्वा मृगा यथा ॥ ततः सोऽन्यं वरं देहं कृत्वा प्रांशुतरं पुनः ॥ ३८ ॥ गच्छत्यूर्ध्वगतिं घोरो दिशः शब्देन पूरयन् ॥ नभस्तलगतश्चापि वर्षते वासवो यथा ॥ ३९ ॥ संवर्त्तकाम्बुदप्रख्यः पूरयन्पृथिवीतलम् ॥ संवर्त्तकोऽनलश्चैव भूत्वा भीमपराक्रमः ॥ १४० ॥

लगा ॥ ३६ ॥ और महामेघका रूप धारण कर कभी ऊपर और कभी तिरछा दीखने लगा; और फिर घोर विरूप और विकृत भयानक रूपको धारण कर ॥ ३७ ॥ और संपूर्ण देवताओंकी सेनाको डराने लगा और देवता उसके भयसे दौडने लगे कि जैसे सिंहसे मृग और फिर वह सूक्ष्म नवीन देह धारण कर ॥ ३८ ॥ दिशाओंको शब्दसे पूर्ण करता हुआ ऊंचा बढने लगा, और आकाशमें प्राप्त हो और प्रलयकालके संवर्तकमेघकी तुल्य भूमिको जलसे पूर्ण करता हुआ ॥ ३९ ॥ इन्द्रकी तुल्य वर्षने लगा; और पराक्रमवाला सौ आवर्तोंवाले सौ शिखाओंवाले फिर संवर्तक अग्नि हो ॥ १४० ॥

फिर सम्पूर्ण देवताओंको दहन करने लगा; फिर सौ मार्गोंवाला और सौ गुफाओंवाला दो घडीमें पर्वत दीखने लगा ॥ ४१ ॥ और गिरता हुआ
आकाशमें थाँमता हुआ सौ शृंगोंके पर्वतकी समान दीखने लगा; जिससे आदित्य और साध्य और विश्वेदेवा और देवताओंके ॥ ४२ ॥ फेंके हुए
अस्त्रोंको ग्रसता हुआ और रणमें युद्ध करता हुआ और अपने रथसहित ॥ ४३ ॥ गंधर्वनगरकी समान उसी जगह अंतर्धान हो गया, तब देवता
भयभीत हो भीमपराक्रमी होकर उसे देखने लगे ॥ ४४ ॥ सहस्र मायाओंको धारण करनेवाले शंबर दैत्यको देखने लगे, शंबरके युद्धमें स्थित भगदेवताभी

शतवर्त्मा शतशिखो ददाह च पुनः सुरान् ॥ मुहूर्ताच्च महाशैलः शतशीर्षा शतोदरः ॥ ४१ ॥ अदृश्यत दिविस्तम्भः शतशृङ्ग
इवाचलः ॥ येऽन्ये दैत्याश्च साध्याश्च ये च विश्वे च देवताः ॥ ४२ ॥ क्षिपन्त्यस्त्राणि दिव्यानि तानि सोऽग्रसतासुरः ॥ युद्ध्यमानश्च
समरे सरथः सोऽसुरोत्तमः ॥ ४३ ॥ गन्धर्वनगराकारस्तत्रैवान्तरधीयत ॥ ते भीताः समुदीक्षन्त त्रिदशा भीमविक्रमाः ॥ ४४ ॥
सहस्रमायं समरे शम्बरं चित्रयोधिनम् ॥ स भगो भयसंत्रस्तो दानवेन्द्रस्य संयुगे ॥ ४५ ॥ रथं त्यक्त्वा महाभागो महेन्द्रं शरणं
गतः ॥ पराजित्य तु तं देवं दानवेन्द्रः प्रतापवान् ॥ ४६ ॥ गतो यत्र महातेजा जातवेदा महाप्रभः ॥ स वह्निर्वाग्भिरुग्राभिः क्रुद्ध-
स्तर्जयते बली ॥ भवाम्येष हि ते मृत्युरित्युक्त्वान्तरधीयत ॥ ४७ ॥ वैशम्पायन उवाच ॥ एतस्मिन्नन्तरे भूत्वा ब्राह्मणेन्द्रो
महाबलः ॥ जघान सोमः शीतास्त्रो दानवानां चमूं रणे ॥ ४८ ॥ कैलासशिखराकारो द्युतिमद्भिर्गणैर्वृतः ॥ अवधीद्दानवान् दृष्ट्वा
दण्डपाणिरिवान्तकः ॥ ४९ ॥

भयभीत हो ॥ ४५ ॥ रथ छोड इन्द्रकी शरणमें गया, और प्रतापी शंबर दैत्य युद्धमें भगदेवताको जीत ॥ ४६ ॥ प्रकाश करता हुआ अग्निदेवताके
सन्मुख गया; और अग्निदेवताको मैं तेरा मारनेवाला हूं ऐसे कठोर वचनोंसे तर्जन कर अंतर्धान हो गया ॥ ४७ ॥ वैशंपायन बोले; इसी अन्तरमें
ब्राह्मणोंका राजा महाबली शीत अस्त्रोंवाला चंद्रमा दैत्योंकी सेनाको हनन करने लगा ॥ ४८ ॥ कैलासके शिखरकी तुल्य आकारवाले महाकांतिवाले
ग्रहोंसे युक्त चंद्रमा दानवोंको दंडपाणि कालप्रभुकी समान हनन करने लगा ॥ ४९ ॥

यह प्रभु रथोंको तोडते और घोडोंको मारते दैत्योंमें प्रलयकालमें बलवंत कालकी समान विचरने लगे ॥ १५० ॥ और बडे वेगसे रथोंको तोडते हुए चंद्रमा दैत्योंको ऐसे दग्ध करने लगे जैसे वनको दावाग्नि जलाती है ॥ ५१ ॥ रथियोंसे रथी हाथियोंसे हाथी घुडसवारोंसे घुडसवार पैदलसे पैदलोंको मारकर पृथ्वीमें गिराने लगे ॥ ५२ ॥ सम्पूर्ण दानवोंकी सेनाको शीतसे हनन करने लगे कि जैसे वृक्षोंको वायु नष्ट करता है, महातेजस्वी चंद्रमा दानवोंकी सेनाको ऐसे नष्ट करने लगा ॥ ५३ ॥ और चंद्रमाका अस्त्र शत्रुओंके रुधिरसे ऐसे भीज गया कि जैसे क्रोधसे पशुओंको मारता हुआ महादे-

पोथयद्रथवृन्दानि वाजिवृन्दानि वै प्रभुः ॥ दैत्येषु विचरञ्श्रीमान्युगान्ते कालवद्बली ॥ १५० ॥ सोऽमर्षाद्रथजालानि उरुवेगेन चन्द्रमाः ॥ ददाह दानवान्सर्वान्दावाग्निरिव चोदितः ॥ ५१ ॥ मृद्नन्रथेभ्यो रथिनो गजेभ्यो गजयोधिनः ॥ सादिनश्चाश्वपृष्ठेभ्यो भूमौ चापि पदातिनः ॥ ५२ ॥ शीतेन व्यधमत्सर्वान्वायुर्वृक्षानिवौजसा ॥ चन्द्रमाः सुमहातेजा दानवानां महाचमूम् ॥ ५३ ॥ तदस्त्रमभवत्तस्य प्रदिग्धं शत्रुशोणितैः ॥ पिनाकमिव रुद्रस्य क्रुद्धस्याभिघ्नतः पशून् ॥ ५४ ॥ युगान्तकोपमः श्रीमान् दैत्येषु व्यचरद्बली ॥ आचार्यमहतीं सेनां प्राद्रवन्तीं पुनः पुनः ॥ ५५ ॥ चन्द्रं मृत्युमिवायान्तं दृष्ट्वा योधा विसिष्मियुः ॥ यतो यतः प्रक्षिपति शिशिरास्त्रं तमोनुदः ॥ ५६ ॥ ततस्ततो व्यशीर्यन्त दैत्यसैन्यानि संयुगे ॥ व्यदारयत्स सैन्यानि स्वबलेनाभिसंवृतः ॥ ५७ ॥ ग्रसमानमनीकानि व्यादितास्यमिवान्तकम् ॥ तं तथा भीमकर्माणं गृहीतास्त्रं महाहवे ॥ ५८ ॥

वका अस्त्र हो ॥ ५४ ॥ और वार २ पलायन की हुई देवताओंकी सेनाको निवारण कर कालप्रभुकी तुल्य महाबली चंद्रमा दैत्योंकी सेनामें विचरने लगा ॥ ५५ ॥ मृत्युकी नांई आता हुआ चंद्रमाको देख योधा विस्मयको प्राप्त हो गये और अंधकारको दूर करनेवाला शिशिरास्त्रको चंद्रमा जहां २ प्रेरणा करने लगा ॥ ५६ ॥ तहां २ सम्पूर्ण दैत्योंकी सेना नष्ट होने लगी; इस प्रकार अपनी सेनासे युक्त हुआ दैत्योंकी सेनाको विदारण करने लगा ॥ ५७ ॥ मुखको फाडे कालकी नांई दैत्योंकी सेनाको ग्रसते हुए और भयानक कर्म करते हुए अस्त्रोंको धारण किये महायुद्धमें ॥ ५८ ॥

आते हुए चंद्रमाको देख वे दैत्योंमें चंद्रमा और भास्कररूप तालवृक्षके प्रमाणमात्र धनुषोंको आकर्षण करते हुए ॥ ५९ ॥ महाबली दो योद्धा बाणोंसे चंद्रमाको वर्षा करते हुए महामेघकी समान आच्छादन करते और सुरासुरोंके धनुष्योंको खैंचनेसे ॥ १६० ॥ दशों दिशामें बडा शब्द हुआ, हस्तियोंके गर्जने और घोडोंके हींसनेसे ॥ ६१ ॥ भेरी शंख मृदंगके बजनेसे आकाशमें महातुमुल शब्द हुआ; युद्ध तथा जय और यशकी इच्छा करते हुए योधा ॥ ६२ ॥ परस्पर गर्जने लगे जैसे गोशालाओंमें गोवृष; और पैने बाणोंसे छेदन किये हुए दोनों सेनाओंके शिरोंकी ॥ ६३ ॥

दृष्ट्वा शशांकमायान्तं दैत्याभं चन्द्रभास्करौ ॥ तालमात्राणि चापानि कर्षमाणौ महाबलौ ॥ ५९ ॥ छादयेतां शरैश्चन्द्रं वृष्टिमन्ताविवाम्बुदौ ॥ अथ विस्फार्यमाणानां कार्मुकाणां सुरासुरैः ॥ १६० ॥ अभवत्सुमहाशब्दो दिशः सन्नादयन्निव ॥ विनद्भिर्महानागैर्हेषमाणैश्च वाजिभिः ॥ ६१ ॥ भेरीशंखनिनादैश्च तुमुलं सर्वतोऽभवत् ॥ युयुत्सवस्ते संरब्धा जयगृद्धा यशस्विनः ॥ ६२ ॥ अन्योन्यमभिगर्जन्तो गोष्ठेष्विव महावृषाः ॥ शिरसां पात्यमानानां समरे निशितैः शरैः ॥ ६३ ॥ अश्मवृष्टिरिवाकाशे ह्यभवत्सेनयोस्तयोः ॥ कुण्डलोष्णीषधारीणि जातरूपस्रजांसि च ॥ ६४ ॥ पतितानि स्म दृश्यन्ते शिरांसि रणमूर्द्धनि ॥ विशिखैर्मथितैर्गात्रैर्बाहुभिश्च सकार्मुकैः ॥ ६५ ॥ सहस्राभरणैश्चान्यैर्विच्छिन्नै रुधिरोक्षितैः ॥ कवचैरावृतैर्गात्रैरुरुभिश्चन्दनोक्षितैः ॥ ६६ ॥ मुखैश्च चन्द्रसंकाशैस्तप्तकुण्डलभूषणैः ॥ गजवाजिमनुष्याणां सर्वगात्रैः समन्ततः ॥ ६७ ॥ आसीत्सर्वा समाकीर्णा मुहूर्तेन वसुंधरा ॥ चापमेघाश्च विपुलाः शस्त्रविद्युत्प्रकाशिनः ॥ वाहनानां च निर्घोषः स्तनयित्नुसमोऽभवत् ॥ ६८ ॥

आकाशमें पत्थरकी समान वर्षा होने लगी; और कुंडल और पगडियोंको धारण करे हुए सुवर्णकी मालासे युक्त ॥ ६४ ॥ शिर रणमें पडे हुए दीखने लगे; और बाणोंसे छेदित शरीर और धनुषोंसे युक्त भुजा ॥ ६५ ॥ और रुधिरमें भीगे हुए सहस्रों भूषण और कवचोंसे युक्त शरीर और जांघ तथा चंदनसे प्रकाशमान ॥ ६६ ॥ सुवर्णके कुंडलसे शोभित मुखोंसे और हस्ती मनुष्य घोडोंके शरीरोंसे ॥ ६७ ॥ भूमि एक मुहूर्तमें भरपूर हो

गई, धनुषरूपी घटाको शस्त्रोंरूपी बिजली और वाहनोंका शब्द मेघकी समान होने लगा ॥ ६८॥ इस प्रकार युद्धमें देवता और असुरोंका वह रुधिरको वहानेवाला कठिन संग्राम होने लगा ॥ १६९॥ इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे भविष्यपर्वणि भाषायां पंचपंचाशत्तमोऽध्यायः ॥ ५५ ॥ वैशंपायन बोले; तुमुल और रोमहर्षोंको करनेवाले भयानक महायुद्धमें देवता और दानव क्रोध करते हुए बाणोंकी वर्षा करने लगे ॥ १॥ सवार हत होनेसे हस्ती बाणोंसे पीडित हुए बडे शब्द करते तथा घोडे दशों दिशाओंमें भागने लगे ॥ २ ॥ देवता और दानवोंके हाथी घोडे उस युद्धमें बाणोंकी वर्षासे पीडित

स संप्रहारस्तुमुलः कटुकः शोणितोदकः ॥ प्रावर्त्तत सुराणां च दानवानां च संयुगे ॥ १६९ ॥ इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे भविष्यपर्वणि वामनप्रादुर्भावे पञ्चपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥५५॥ वैशम्पायन उवाच ॥ तस्मिन्महाहवे रौद्रे तुमुले लोमहर्षणे ॥ ववर्षुः शरवर्षाणि संरब्धा देवदानवाः ॥ १ ॥ व्याक्रोशन्त गजास्तत्र शरघातप्रपीडिताः ॥ अश्वाश्च पर्यधावन्त हतारोहा दिशो दश ॥ २ ॥ उत्पत्य निपतन्त्यन्ये शरवर्षप्रपीडिताः ॥ देवानां दानवानां च गजाश्वरथिनां रणे ॥ ३ ॥ समरे तत्र शूराणामन्योन्यमभिधावताम् ॥ धनुषां तलशब्देन न प्राज्ञायत किंचन ॥ ४ ॥ शरशक्तिगदाभिस्ते खड्गैश्चामिततेजसः ॥ निजघ्नुर्महतीं सेनामन्योन्यस्य परंतप ॥ ५ ॥ बाहूनामुत्तमाङ्गानां कार्मुकाणां च संयुगे ॥ राशयस्तत्र दृश्यन्ते देवदैत्यसमागमे ॥ ६ ॥ अश्वानां कुञ्जराणां च रथानां च वरूथिनाम् ॥ नान्तं समभिगच्छान्ति निहतानां सुरासुरैः ॥ ७ ॥ गदाभिरसिभिः प्रासैर्भल्लैः सन्नतपर्वभिः ॥ योधास्तत्राभ्यहन्यन्त हस्त्यश्वं चामितं बहुः ॥ ८ ॥

हुए ऊपरको उछल २ कर पृथ्वीमें गिरते थे ॥ ३ ॥ रथपै चढे हुए देवता और दानवोंके ज्याके शब्दोंसे रणमें कोई जाना नहीं जाता था ॥ ४ ॥ बाण शक्ति गदा और खड्गोंसे अत्यन्त तेजवाले शूर वीर दोनों सेनाओंको हनन करने लगे ॥ ५ ॥ बहुतोंके भुजा और उत्तम अंग तथा धनुषोंके समूह पडे हुए देवता और दानवोंके युद्धमें दीखने लगे ॥ ६ ॥ देवता दैत्योंके बाणोंसे मरे हुए घोडा हस्ती और रथोंका अंत नहीं मिला था ॥ ७ ॥ गदा असि प्रास बाणोंसे योधा औरभी बहुतसे हस्ती और घोडोंको मारने लगे ॥ ८ ॥

केशरूपी शेवाल और दूबवाली; बडे वेगके तरंगोंवाली सेनाओंके मध्यमें रुधिरकी घोररूप नदी वहने लगी ॥ ९ ॥ और रणमें दानवोंसे हनन किये हुए देवताओंका महा हाहाकार शब्द होने लगा ॥ १० ॥ वैशंपायन बोले, भयको देनेवाला महाघोररूप विकृत रौद्र युद्ध देवताओंका दैत्योंके संग होने लगा ॥ ११ ॥ लाल नेत्र किये परम धनुषको धारण किये विष्वक्सेन नामवाले साध्यदेवताको रणमें विरोचनने हनन किया ॥ १२ ॥ तब विरोचनको आता देख देवताओंसे आवृत महाबली विष्वक्सेनने तीन बाण धनुषपर चढाय उसकी छातीमें मारे ॥ १३ ॥ और विष्वक्सेनके बाणोंसे अंकुशसे

प्रावर्तत नदी घोरा शोणितोघा तरङ्गिणी ॥ तदा मध्ये तु सैन्यानां केशशैवलशाड्वला ॥ ९ ॥ हाहाकारो महाशब्दो योधानामभवत्तदा ॥ दानवैर्हन्यमानानां त्रिदशानां महारणे ॥ १० ॥ वैशम्पायन उवाच ॥ तेषां तदभवद्युद्धं देवानामसुरैः सह ॥ विभीषणं महारौद्रं विकृतं भीमदर्शनम् ॥ ११ ॥ विरोचनस्तु तत्रैव विष्वक्सेनं महाहवे ॥ जघान रुधिराभाक्ष साध्यं परमधन्विनम् ॥ १२ ॥ तमायान्तमभिप्रेक्ष्य विष्वक्सेनः सुरैर्वृतः ॥ अमेयात्मा सुरश्रेष्ठः प्रत्यविध्यत् स्तनान्तरे ॥ १३ ॥ साध्यस्य बाणाभिहतस्तोत्रार्दित इव द्विपः ॥ विरोचनः प्रजज्वाल क्रोधनाग्निरिवाध्वरे ॥ १४ ॥ स कार्मुकविनिर्मुक्तैः शरैर्दानवसत्तमः ॥ विष्वक्सेनं बिभेदाजौ दीप्तैः सप्तभिराशुगैः ॥ १५ ॥ सोऽतिविद्धो बलवता दानवेन सुरोत्तमः ॥ मूर्च्छामभिजगामाशु ध्वजं चाप्याश्रयत्प्रभुः ॥ १६ ॥ ततः स पुनराश्वास्य साध्यो युद्धे मनो दधे ॥ विस्फार्य च महाचापं दैत्यमध्ये व्यवस्थितः ॥ १७ ॥ विरोचनस्तु बलवानभ्ययुध्यत सर्वशः ॥ क्षोभयन्सुरसैन्यानि समन्तान्निशितैः शरैः ॥ १८ ॥

हाथीकी समान हनन किया हुआ विरोचन क्रोधसे यज्ञमें अग्निकी समान जल उठा ॥ १४ ॥ तब प्रकाशमान वेगवाले सात बाणोंको विरोचनने अपने धनुषपर चढाय युद्धमें विष्वक्सेनको सात बाणोंसे मारा ॥ १५ ॥ वह बलवान् विरोचनसे अत्यन्त विद्ध होकर विष्वक्सेन मूर्च्छाको प्राप्त हो ध्वजाके आश्रय स्थित हुआ ॥ १६ ॥ फिर सावधान हो धनुषको टंकार दे फिर दैत्योंके मध्यमें स्थित हुआ ॥ १७ ॥ और वह विरोचन तीक्ष्ण बाणोंसे देव-

ताओंकी सेनाको क्षोभित करता हुआ सब ओर युद्ध करने लगा ॥ १८ ॥ युद्ध करते हुए विरोचन दैत्यका युद्धमें गर्जते हुए मेघकी समान बडा शब्द सुनाई आने लगा ॥ १९ ॥ तब वह विरोचन देवताओंकी सेनाको हनन करता हुआ ऐसे गर्जने लगा कि जिस प्रकार ओलोंकी वर्षा करता हुआ विजलियोंसहित चंड मेघ गर्जता हो ॥ २० ॥ युद्धमें अस्त्रोंको उठाय बाणोंकी वर्षासे सम्पूर्ण देवताओंकी सेनाको युद्धमें भगाने लगा ॥ २१ ॥ रथोंपैसे रथी घोडोंपैसे सवार, और प्यादे ये सम्पूर्ण विरोचनके भयसे भाग गये ॥ २२ ॥ वज्रके शब्दकी तुल्य धनुषके शब्दको सुन भयसे रणमें

ततस्तस्यासुरेन्द्रस्य युध्यमानस्य संयुगे ॥ श्रूयते तुमुलः शब्दो जीमूतस्येव गर्जतः ॥ १९ ॥ जगर्ज्ज च महाघोषो विनिघ्नन्देववाहिनीम् ॥ चण्डवेगाश्मवर्षी च सविद्युत्स्तनयित्नुमान् ॥ २० ॥ दिशो विद्रावयामास शस्त्रवर्षेण दानवः ॥ सर्वसैन्यानि देवानामुद्यतास्त्रो महाहवे ॥ २१ ॥ ते प्राद्रवन्त वित्रस्ता रथेभ्यो रथिनस्तदा ॥ सादिनश्चाश्वपृष्ठेभ्यो भूमौ चापि पदातयः ॥ २२ ॥ श्रुत्वा कार्मुकनिर्घोषं विस्फूर्जितमिवाशनेः ॥ सर्वसैन्यानि भीतानि विव्यलीयन्त संयुगे ॥ २३ ॥ विरोचनभयत्रस्ता रथेभ्यो रथिनस्तदा ॥ पदातीनां ययुः संघा यत्र देवः शचीपतिः ॥ २४ ॥ विष्वक्सेनस्य साध्यस्य सर्वतः सुमहाबलः ॥ पादे रक्षःसहस्राणि निजघान चतुर्दश ॥ २५ ॥ अश्ववृन्देषु नागेषु रथानीकेषु चाभिभूः ॥ पदातीनां च संघेषु विनिघ्नन् प्रत्यदृश्यत ॥ २६ ॥ वितत्य श्येनवत्पक्षौ सर्वतः स वरूथिनीम् ॥ भित्त्वा च्छित्त्वा महाबाहुः शिरांस्याजौ ह्यकृन्तत ॥ २७ ॥ सादिनश्च पदातीश्च हतशेषा रथास्तथा ॥ विष्वक्सेनेन सहिता विरोचनमथाद्रवन् ॥ २८ ॥

सम्पूर्ण देवताओंकी सेना छिप गई ॥ २३ ॥ विरोचनके भयसे डरते हुए रथी और प्यादेके समूह इन्द्रके समीप प्राप्त हुए ॥ २४ ॥ उस समय उस महाबली विरोचनने विष्वक्सेनके चौदह सहस्र पीठकी रक्षा करनेवालोंको हनन कर डाला ॥ २५ ॥ घोडे, हाथी, रथ, प्यादेके समूहमें वह विरोचन हनन करता हुआ दीखने लगा ॥ २६ ॥ और वह विरोचन सिकारीकी समान पंखोंको फैलाता हुआ देवताओंकी सेनाको मारता २ शिरोंको छेदन करने लगा ॥ २७ ॥ घोडोंके सवार और प्यादे मरनेसे बचे हुए रथी ये सम्पूर्ण विष्वक्सेनके संग हो विरोचनके सन्मुख हुए ॥ २८ ॥

खड्ग ढाल गदा शक्ति परिघ प्रास तोमर इन हथियारोंसे हनन करते हुए सिंहनाद करने लगे ॥ २९ ॥ वह विरोचन फिर अपनी तलवारको ग्रहण कर बडे वेगसे रथियोंका शिर और धनुषको काटने लगा ॥ ३० ॥ रथ हस्ती घोडोंके समूहमें स्थित और शत्रुओंको मर्दन करनेवाला विरोचन इक्कीस प्रकारके मार्गोंसे विचरने लगा ॥ ३१ ॥ और भ्रांत उद्‌भ्रांत आविद्ध आप्लुत संपात समुदीर्ण इन्होंको दिखाता हुआ ॥ ३२ ॥ कोई महात्मा विरोचनकी तीक्ष्ण तलवारसे भग्न कवचोंवाले देवता गर्जते हुए और कितने एक प्राणोंसे रहित हो पृथ्वीमें गिरे ॥ ३३ ॥ इस प्रकार महात्मा बलिसे छेदन किये

तेऽसिचर्मगदाशक्तिपरिघप्रासतोमरैः ॥ तमेकमभ्यधावन्तं सिंहनादं प्रचक्रिरे ॥ २९ ॥ ततः सोऽसिं समुद्यम्य जवमास्थाय दानवः ॥
चकर्त रथिनामाजौ शिरांसि च धनूंषि च ॥ ३० ॥ रथनागाश्ववृन्देषु बलवानरिसूदनः ॥ विरोचनश्चरन्मार्गान्प्रकारानेकविंशतिम् ॥ ३१ ॥
भ्रान्तमुद्भ्रान्तमाविद्धमाप्लुतं विप्लुतं युगम् ॥ संपातं समुदीर्णं च दर्शयामास दानवः ॥ ३२ ॥ केचिद्धरासिना रुग्णा दानवेन महात्मना ॥
विनेदुश्छन्नवर्माणो निपेतुश्च गतासवः ॥ ३३ ॥ छिन्नपृष्ठा हतारोहा दानवेन महात्मना ॥ विद्रुताः स्वान्यनीकानि जघ्नुस्त्रिदश-
वारणाः ॥ ३४ ॥ निपेतुरुर्व्यामाकाशे निकृत्ता दृढधन्विना ॥ विविधास्तोमराश्चापा महामात्रशिरांसि च ॥ ३५ ॥ प्रतीपमाहरन्नागानश्वांश्च
दृढविक्रमान् ॥ आप्लुत्य रथिनः कांश्चित्परामृश्य महाबलः ॥ ३६ ॥ सूतांश्चिच्छेद खड्गेन रथानपि च दानवः ॥ मुहुरुत्पततो दिक्षु
धावतश्च यशस्विनः ॥ ३७ ॥ मार्गांश्चरति वै चित्रान् विस्मयन्तस्ततोऽसुरान् ॥ निजघान पदा कांश्चिदाक्षिप्यान्यानपोथयत् ॥ ३८ ॥

हुए वाहनोंसे रहित किये देवताओंके हस्ती उलटे दौडते हुए अपनी सेनाको मारने लगे ॥ ३४ ॥ दृढ धनुषधारी विरोचनके छेदन किये हुए अनेक प्रकारके तोमर धनुष पीलवानोंके शिर आकाशसे भूमिमें गिरने लगे ॥ ३५ ॥ और वह विरोचन दृढविक्रमी हाथी और घोडोंको मारता हुआ कितनेक रथियोंका तिरस्कार कर ॥ ३६ ॥ और कूदके अपने खड्गसे सूत और रथोंको छेदन करने लगा, वारंवार कूदता हुआ धावमान होता हुआ यशस्वियोंके ॥ ३७ ॥ चित्र विचित्र मार्गोंको विचरने लगा ऐसे विरोचनको देख सम्पूर्ण सुर विस्मयको प्राप्त हो गये किसीको पैरसे मारकर किसीको

एक दूसरेके ऊपर दे मारा। ॥ ३८ ॥ किसीको खड्गसे छेदन कर किसीको शब्दसे भयभीत किया; और कोई ऊरुस्तंभसे गृहीत हुए विरोचनको देख प्राणोंको त्याग पृथ्वीपर गिरे ॥ ३९ ॥ और रथोंके समूह घोडे हस्ती और देवतोंके नाश होनेमें ॥ ४० ॥ दैत्योंमें श्रेष्ठ जंभ दैत्य अंशदेवतासे वृषकी समान युद्ध करने लगा ॥ ४१ ॥ पर्वतके सम रूपवाला और मत्तहस्तीकी तुल्य पराक्रमी जंभ दैत्य और वेगवन्त बहुत बाणोंसे अंशदेवताको वेधन करने लगा ॥ ४२ ॥ रथोंसे सहित देवताओंकी सहस्रोंही सेना जंभके बाणरूपी मार्गमें प्राप्त हो चलनेको समर्थ न हुई ॥ ४३ ॥ और सम्पूर्ण

खड्गेन चान्यांश्चिच्छेद नादेनान्यांश्च भीषयन् ॥ ऊरुस्तम्भगृहीताश्च निपतन्त्यपरे भुवि ॥ अपरे दैत्यमालोक्य भयात्प्राणानवासृजन् ॥ ३९ ॥ तस्मिंस्तथा वर्तमाने युद्धे महति दारुणे ॥ रथौघगजपत्तीनां सुराणां च महाक्षये ॥ ४० ॥ कुजम्भो दानवश्रेष्ठो ह्यंशुमादित्यमाहवे ॥ योधयामास समरे वृषः प्रतिवृषं यथा ॥ ४१ ॥ जघानाचलसंकाशो मत्तवारणविक्रमः ॥ स्फुरद्भिर्निशितैस्तीक्ष्णशरैर्बहुभिराशुगैः ॥ ४२ ॥ देवसैन्यसहस्राणि सरथानि महाहवे ॥ तस्य बाणपथं प्राप्य नाभ्यवर्तन्त सर्वशः ॥ ४३ ॥ प्रणेदुः सर्वभूतानि बभूवुस्तिमिरा दिशः ॥ देवानामजयः क्रूरः प्रत्यपद्यत दारुणः ॥ ४४ ॥ अंशस्तु दानवेन्द्रस्य जघानोत्तमविक्रमः ॥ अनीकं दशसाहस्रं कुञ्जराणां तरस्विनाम् ॥ ४५ ॥ आपतन्तं गजानीकं कुजम्भो वीक्ष्य दानवः ॥ गदापाणिरवारोहद्रथोपस्थादरिंदमः ॥ ४६ ॥ अद्रिसारमयीं गुर्वीं प्रगृह्य महतीं गदाम् ॥ अभ्यद्रवद्गजानीकं व्यादितास्य इवान्तकः ॥ ४७ ॥ स गजान् गदया निघ्नन्व्यचरत्समरे बली ॥ कुजम्भो दानवश्रेष्ठो गदापाणिर्बलाधिकः ॥ ४८ ॥

प्राणी दुःखसे शब्द करने लगे; और दिशा अंधकारयुक्त हो गई और देवताओंकी बडी दारुण पराजय दीखने लगी ॥ ४४ ॥ तब देवताओंमें श्रेष्ठ उत्तम पराक्रमी अंशदेवता जंभदैत्यकी बडी वेगवाली दश सहस्र हस्तियोंकी सेनाको मारने लगा ॥ ४५ ॥ और शत्रुओंको दमन करनेवाला कुजंभ दैत्य आती हुई हस्तियोंकी सेनाको देख और हाथमें गदा धारण कर अपने रथसे नीचे उतरकर स्थित हुआ ॥ ४६ ॥ पर्वतकी तुल्य सारवाली बडी गदाको ग्रहण कर हस्तियोंकी सेनामें मुख फैलाये कालकी समान दौडा ॥ ४७ ॥ और दानवोंमें श्रेष्ठ महाबली कुजंभ दैत्य अपनी गदासे हस्तियोंको हनन

करता हुआ रणमें दंडको हाथमें लिये विचरने लगा ॥ ४८॥ दानवोंमें श्रेष्ठ महाबली कुजंभ हस्तियोंके दांत और मस्तकोंको भिनभिनकर भेदन करता हुआ ॥ ४९ ॥ टूटे दांतोंवाले भेदित मस्तकोंवाले अनेक हस्ती कुजंभ दैत्यके भेदित किये हुए दशों दिशाओंमें फिरने लगे ॥ ५० ॥ और कुजंभ दैत्यके जो घोर पराक्रमी मंत्री थे वे तीक्ष्ण बाणोंकी वर्षा कर गजयोधाओंको मारने लगे ॥ ५१ ॥ क्षुर क्षुरप्र भाले दात्र और अंजलिक हथियारोंसे कुजंभ दैत्य देवताओंके अंगोंको छेदन करने लगा ॥ ५२ ॥ और गिरते हुए शिरोंकी वर्षासे आकाश ओलोंकी वर्षाके समान पूर्ण हो गया और महा-

विशीर्णदन्तांश्च बहून् भिन्नकुम्भांश्च दारुणान् ॥ अकरोद्दानवश्रेष्ठ उद्दिश्योद्दिश्य तान्बली ॥४९॥ विशीर्णदन्ता बहवो भिन्नकुम्भास्तथा परे ॥ कुजम्भेनार्दिता नागा व्यद्रवन्त दिशो दश ॥ ५० ॥ कुजम्भस्य च येऽमात्या दानवा घोरविक्रमाः ॥ नाराचैर्विविधैस्तीक्ष्णैरपास्तगजयोधिनः॥५१॥ क्षुरैः क्षुरप्रैर्भल्लैश्च पातैरञ्जलिकैः शितैः ॥ चिच्छेद चोत्तमाङ्गानि कुजम्भो दानवोत्तमः ॥५२ ॥ शिरोभिः प्रपतद्भिस्तु गगनं प्रत्यपूर्यत ॥ अश्मवृष्टिरिवाकाशे बहुभिश्च सहाङ्कुशैः॥ ५३ ॥ कृत्तोत्तमाङ्गाः स्कन्धेषु गजानां गजयोधिनः ॥ अदृश्यन्त महाराज ताला विशिरसो यथा ॥ ५४ ॥ आपतन्तं महानागमंशस्यासुरसत्तमः ॥ जघानैकेषुणा क्रुद्धस्ततः स विमुखोऽभवत् ॥ ५५ ॥ विगाह्यैवं गजानीकं कुजम्भो दानवोत्तमः ॥ विनिघ्नन्प्रवरान्सैन्यान्गदया बलिनां वरः ॥ ५६ ॥ एकप्रहाराभिहतान्कुजम्भेन महागजान् ॥ अपश्यन्त सुराः सर्वे पर्वतानिव पातितान् ॥५७॥ कुजम्भस्य च मार्गेषु विशीर्णास्ते महागजाः ॥ वज्राहता इवेन्द्रेण विशीर्णा इव पर्वताः ॥ ५८ ॥

अंकुशोंसे हत ॥ ५३ ॥ हस्तियोंपै बैठे हुए देवता शिरोंसे रहित ऐसे दीखने लगे कि जैसे शिरोंविना तालके वृक्ष ॥ ५४ ॥ सन्मुख आते हुए मदोन्मत्त अंशदेवताके हस्तीको जंभ दैत्यने एक बाणसेही ऐसा वेधन किया कि वह हस्ती पीछे फिर गया ॥ ५५ ॥ दानवोंमें श्रेष्ठ गदायुद्धका जाननेवाला कुजंभ दैत्य हस्तियोंकी सेनाको मर्दन कर और गदासे देवताओंको हनन करने लगा ॥ ५६ ॥ कुजंभके एकही प्रहारसे मारे हुए पर्वतकी समान पडे हुए हस्तियोंको सम्पूर्ण देवता देखने लगे ॥ ५७ ॥ कुजंभके आगे हस्ती ऐसे वेधित हुए कि जैसे इन्द्रके वज्रसे पर्वत विदीर्ण हो ॥ ५८ ॥

और देवता उसको मूर्तिमान् कालकी समान देखने लगे और सिंहसे] जैसे मृग डरते हैं इस प्रकार उससे हस्ती डरने लगे ॥ ५९ ॥ हस्तियोंके रुधिरसे भीगी हुई लोहेकी गदाको धारण करे मुखको फाडे कुजंभ दैत्य क्रोधकर बडा भयानक रूप धारण कर गर्जने लगा ॥ ६० ॥ प्रलयकालमें प्रजाके नाशके अर्थ कालकी समान क्रोधित कुजंभ अपनी गदासे रणमें क्रीडा करने लगा ॥ ६१ ॥ गोपालकी समान दंडको धारण किये हस्तियोंको दौडाता और बडे पराक्रमी दंडको उठाये ॥ ६२ ॥ कुजंभ दैत्यको सम्पूर्ण देवता क्रोधित कालकी समान

अपश्यंस्त्रिदशाः सर्वे मूर्तिमन्तमिवान्तकम् ॥ गजास्तथा व्यदीर्यन्त सिंहस्येवेतरे मृगाः ॥ ५९ ॥ स बभौ तां गदां बिभ्रत्प्रोक्षितां गजशोणितैः ॥ व्यादितास्यो नदत्क्रुद्धो रौद्ररूपो भयानकः ॥ ६० ॥ यथा हि भगवान् क्रुद्धः प्रजानां संक्षये पुरा ॥ विक्रीडमानो गदया रणमध्ये महासुरः ॥ ६१ ॥ गोपाल इव दण्डेन कालयन्स महागजान् ॥ क्रुद्धं कालमिवाकाले दण्डमुद्यम्य दानवम् ॥ ६२ ॥ अपश्यन्त सुराः सर्वे कुजम्भं भीमविक्रमम् ॥ हतारोहास्तु तत्रान्ये प्रभिन्ना वारणोत्तमाः ॥ ६३ ॥ ते हन्यमाना गदया बाणैश्च भृशविक्षताः ॥ असहन्तः कुजम्भस्य गदावेगं महाहवे ॥ ६४ ॥ स्वान्यनीकानि गृह्णन्तः प्राद्रवन्तः महागजा ॥ महावात इवाभ्राणि विधमन्गदया गजान् ॥ अतिष्ठत्समरे दैत्यः कालः संवर्त्तको यथा ॥ ६५ ॥ इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे भविष्यपर्वणि कुजम्भोत्कर्षवर्णनं नाम षट्पञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥ ५६ ॥ वैशम्पायन उवाच ॥ ततः सर्वाणि सैन्यानि देवराजस्य शासनात् ॥ अभ्यद्रवन्त दितिजान्नदन्तो भैरवान्रवान् ॥ १ ॥ तं बलौघमपर्यन्तं देवानां सुदुरासदम् ॥ रथनागाश्वकलिलं शंखदुन्दुभिनिस्वनम् ॥ २ ॥

देखने लगे, आरोही और हाथी अनेक नष्ट हो गये ॥ ६३ ॥ वे गदासे हन्यमान और बाणोंसे महापीडित हो कुजंभके वेगको संग्राममें सहनेको समर्थ न हुए ॥ ६४ ॥ अपनी सेनाको मारते हुए हाथी दौडे; वह गदासे हाथियोंको ऐसे भगाने लगा जैसे पवन मेघको भगाती है वह दैत्य रणमें कालकी समान स्थित हुआ ॥ ६५ ॥ इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे भविष्यपर्वणि भाषायां षट्पंचाशत्तमोऽध्यायः ॥ ५६ ॥ वैशंपायनजी बोले, तब सम्पूर्ण देवताओंकी सेना बडे भयानक शब्दोंको करती हुई और दैत्योंके सन्मुख इन्द्रकी आज्ञासे चली ॥ १ ॥ असह्यरथ, हस्ती घोडेसे व्याप्त शंख

नक्कारोंसे शब्दायमान वेगसे आती हुई देवताओंकी अपार और दुस्सह सेना दीखी ॥ २ ॥ धूलिसे सब ओर व्यान दुष्पार सेनाको आता देख वह सैन्य
सागर अक्षोभ्य वेलावाले समुद्रकी समान दीखी ॥ ३ ॥ आश्चर्यरूप अंतरहित बडी अद्भुत रथ हस्ती घोडोंसे व्याप्त देवताओंकी उदीर्ण महासेनाको ॥ ४ ॥
रोक वह महाबली कुजंभ रणमें सुमेरु पर्वतकी समान स्थित हुआ ॥ ५ ॥ और कुजंभसे गदाद्वारा निवारण की हुई देवताओंकी सेना विह्वल और
निरुद्यम हो गई ॥ ६ ॥ उस दारुण संग्रामके वर्तमान होनेमें दानवोंका अधिपति असिलोमा ॥ ७ ॥ और देवताओंकी सेनाको धूमकेतुकी समान उदय

आपतन्तं सुदुष्पारं रजसा सर्वतो वृतम् ॥ सैन्यसागरमक्षोभ्यं वेलेव मकरालयम् ॥ ३ ॥ तदाश्चर्यमपश्यन्त अश्रद्धेयमिवाद्भुतम् ॥
उदीर्णां पृतनां सर्वां साश्वां सरथकुञ्जराम् ॥ ४ ॥ आचार्यः समरेऽतिष्ठत्कुजम्भस्तरसा बली ॥ सैन्यार्णवं देवतानां गिरिर्मेरुरि-
वाचलः ॥ ५ ॥ अभीकिनीं कुजम्भस्तु गदया स न्यवारयत् ॥ सा तथा वारिता सेना विह्वला भून्निरुद्यमा ॥ ६ ॥ तस्मिंस्तथा
वर्तमाने संप्रहारे सुदारुणे ॥ असिलोमा तु बलवान्दानवो दानवाधिपः ॥ ७ ॥ देवसैन्यस्य सर्वस्य धूमकेतुरिवोत्थितः ॥ तमांस्यर्क
इवापोह्यत्सुरसैन्यानि संयुगे ॥ ८ ॥ सहस्ररश्मिप्रतिमो दानवस्य रथोत्तमः ॥ शरैर्मेघ इवावर्षद्देवानीकं प्रतापवान् ॥ ९ ॥ शरोघर-
श्मिभिर्दीप्तैः प्रतप्तो घोरविक्रमः ॥ रौद्रः क्रूरो दुराधर्षो दुरापो ध्वजिनीमुखे ॥ १० ॥ युध्यते देवतैः सार्द्धं ग्रसमान इव प्रभुः ॥
उग्रेषुरुग्रवदनः समारुह्य महागजम् ॥ ११ ॥ सुराणामुत्तमाङ्गानि प्रचिनोति महाबलः ॥ ग्रसन्देवतसैन्यानि शरदंष्ट्रः प्रतापवान् ॥ १२ ॥

होता हुआ महाक्रोध कर दैत्य देवताओंकी सेनाको ऐसे नष्ट करने लगा कि जैसे अंधकारको सूर्य नष्ट करता है ॥ ८ ॥ सहस्र सूर्योंकी तुल्य कांति-
वाला मायारूपी प्रतापी असिलोमा दैत्यका रथ देवताओंकी सेनापर मेघकी समान शरोंकी वर्षा करने लगा ॥ ९ ॥ बाणरूपी रश्मियोंसे प्रदीप्त प्रतप्त
घोर दर्शनवाला रुद्ररूप सेनामें वह दुःखसे निवारण होनेवाला क्रूर ॥ १० ॥ कालकी समान ग्रसता हुआ असिलोमा देवतोंके संग युद्ध करने लगा भयानक
मुखवाले हाथीपर चढ महान् हस्तियोंका मर्दन करने लगा ॥ ११ ॥ महाबलि असिलोमा दैत्य देवताओंके एक शिरका ऊंचा ढेर बनाने लगा तथा

देवताओंको ग्रसता हुआ शरोंकेसी डाढोंवाली महाप्रतापी ॥ १२ ॥ तलवारकी समान जीभवाला धनुषकी समान मुख फाडे फरसेको धारण किये मृदं-
गके तुल्य शब्द करता हुआ ॥ १३ ॥ और दानवोंमें व्याघ्ररूप असिलोमा रणमें स्थित हुआ, मौर्वीका शब्द मेघरूप और बडा महान् हुआ और
सेनाका समूह घोर समुद्ररूप हुआ ॥ १४ ॥ धनुषकी ज्याका कंपित होना बिजलीरूप महामेघकी समान चाप और बाणरूपी घोर सागर और भुजा-
रूपी घोर ग्राह ॥ १५ ॥ कार्मुकरूपी तरंगें बाणोंका आवर्त तलावरूप गदा तलवार मचछरूप धनुषकी ज्या तटहर ॥ १६ ॥ और पदाति मीनरूपमें
इस प्रकार महागर्जता हुआ सेनारूपी समुद्रमें घोडे हस्ती प्यादे रथ शूर वीर बहुत महारथोंको ॥ १७ ॥ वह दानवेश्वर असिलोमा युद्धमें

असिजिह्वश्चक्रहस्तश्चापव्यात्ताननोऽसुरः ॥ परश्वधनखः श्रीमान्मृदङ्गापूरितध्वनिः॥ १३ ॥ तिष्ठते दानवश्रेष्ठः संयुगे व्याघ्रवद्बली ॥
मौर्वीघोषः स्तनयित्नुः पृषत्कः प्रथितो महान् ॥ १४ ॥ धनुर्विद्युद्गणश्चापो महामेघ इवापरः ॥ इष्वस्त्रसागरो घोरो बाहुग्राहो
दुरासदः ॥१५॥ कार्मुकोर्मितरङ्गौघैर्बाणावर्तमहाह्रदः ॥ गदासिमकरो रौद्रो ज्यावेलः शिक्षयोद्धतः ॥ १६ ॥ पदातिमीनः सुमहान्
गर्जितोत्कुष्टघोषवान् ॥ हयान् गजान् पदातींश्च रथांश्च सहसा बहून् ॥ १७ ॥ न्यमज्जयत समरे परवीरान्महारथान् ॥ आप्लावयत्स
देवौघान् दारुणो दानवेश्वरः॥१८॥ प्रावर्तत युधि श्रीमान् युधि श्रेष्ठो युधिष्ठिरः॥ अपश्यंस्त्रिदशाः सर्वे शुद्धजाम्बूनदप्रभम् ॥१९॥
सन्नद्धं तत्र युध्यन्तं ज्वलन्तमिव पावकम् ॥ मध्यंदिनगतं सूर्यं ज्वलन्तमिव तेजसा ॥ २० ॥ न शेकुः सर्वभूतानि दानवं प्रसमीक्षि-
तुम् ॥ यथा प्ररूढं घर्मान्ते दहेत्कक्षं हुताशनः ॥ २१ ॥ तथासुरवरो दैत्यो दहति स्म सुतेजसा ॥ देवानां दानवानां च बलं मर्दति
दारुणम् ॥ २२ ॥ विरूढमभवत्सर्वमाकुलं च समन्ततः ॥ शूराश्च ते बलोदग्रा हस्त्यश्वरथधूर्गताः ॥२३ ॥

अपने शत्रुओंको डुबोता हुआ, इस प्रकार दारुण दैत्यने देवसमूहोंको प्लावित किया ॥ १८ ॥ श्रीमान् दैत्योंमें श्रेष्ठ महाबली असिलोमाको
सम्पूर्ण देवता शुद्ध सुवर्णकी तुल्य कांतिवाले कवचको धारण किये युद्ध करते ॥ १९ ॥ अग्निकी तुल्य जलते हुए मध्याह्नकालके
सूर्यकी समान तेजसे युक्त न देख सके ॥ २० ॥ तब असिलोमा दैत्यको सम्पूर्ण सेना देखनेको समर्थ नहीं हुई; और ग्रीष्मऋतुमें बढा
हुआ अग्नि जैसे फूसको जलाता है ॥ २१ ॥ तैसेही देवताओंको असिलोमा अपने तेजसे दहन करने लगा ॥ २२ ॥ और देवता और दानवोंकी

सेना मर्दन करने लगा, तब सेना भयानक शब्द करने लगी; और सम्पूर्ण शूर वीर व्याकुल और मूढ हो गये; हस्ती रथ घोडेपर स्थित हुए ॥ २३ ॥ श्रेष्ठ बुद्धिमें स्थित हो वे शूर वीर रणको नहीं त्यागते हुए, वह व्याकुलरूप और रोमोंको उपजानेवाला दारुण युद्ध हुआ ॥ २४ ॥ रुधिरकी नदी और कीच देवता और दानवोंके महाघोर युद्धमें हो गई; और भयरूपी ग्राहसे पीडित हुए सम्पूर्ण दिशाको न जान सके ॥ २५ ॥ अनेक प्रकारसे किये हुए दानवोंके शस्त्रपातको न जानकर महारणमें मूढचित्त और व्याकुल हुए परस्पर हनन करने लगे शस्त्रोंके तेजसे विमूढ हुए अपने और परायोंको

आर्यां बुद्धिं समास्थाय न त्यजन्ति महारणम् ॥ तदुत्पिञ्जलकं युद्धमभवद्रोमहर्षणम् ॥२४॥ देवदानवयोः संख्ये रुधिरस्रावकर्दमम् ॥ न दिशः प्रत्यजानन्त भयग्राहनिपीडिताः ॥ २५ ॥ शस्त्रपातांश्च विविधान् दानवानां महारणे ॥ अन्योन्यं मूढचित्तास्ते निजघ्नुर्व्याकुलीकृताः ॥ स्वान्परान्नाभिजानन्ति विमूढाः शस्त्रपाणयः ॥ २६ ॥ शिरोरुहेषु संगृह्य कश्चिच्छूरस्य संयुगे ॥ शूरश्छिनत्ति मूर्द्धानं संदष्टौष्ठपुटाननम् ॥२७॥ बाहुभिर्मुष्टिभिश्चैव वज्रकल्पैः सुदारुणैः॥ प्रहरन्ति रणे वीरा आत्तशस्त्राः परस्परम् ॥२८॥ योधप्राणहरे रौद्रे स्वर्गद्वारे नृपावृते ॥ संकुले तुमुले युद्धे वर्तमाने महाभये ॥ २९ ॥ हयो हयं गजो नागं वीरो वीरं महाहवे ॥ अभ्यद्रवञ्जिघांसन्तो ह्यसमञ्जसमाहवे ॥ असुराश्च सुराश्चैव विक्रमाढ्या महारथाः ॥ ३० ॥ जुहुवुः समरे प्राणान्निजघ्नुरितरेतरम् ॥ मुक्तकेशा विकवचा विरथाश्छिन्नकार्मुकाः ॥ ३१ ॥ हस्तैः पादैश्च युध्यन्ते दानवास्त्रिदशैः सह ॥ हरिस्तु निशितं भल्लं प्रेषयामास संयुगे ॥ ३२ ॥ स तस्य धनुषः कोटिं छित्त्वा भूमावपातयत् ॥ पुनश्चापि पृषत्कानां शतानि नतपर्वणाम् ॥ ३३ ॥

नहीं जानते हुए ॥२६॥ कोईक शूर वीर होठोंको दाबते हुए किसी शूरवीरके केशोंको ग्रहण कर युद्धमें शिरको छेदन करने लगे ॥२७॥ और शस्त्रोंको त्याग वज्रकी तुल्य महादारुण भुजा और मुष्टियोंसे रणमें प्रहार करने लगे ॥ २८ ॥ इस प्रकार संकुल तुमुल भयके उपजानेवाले महायुद्धमें ॥ २९ ॥ घोडे घोडोंको हस्ती हस्तियोंको शूरवीर शूरवीरोंको बडे वेगसे भगाने लगे इस प्रकार असुर और देवता महापराक्रमी और महारथी ॥ ३० ॥ प्राणोंको त्यागते हुए परस्पर हनन करने लगे; खुले केशोंवाले कवचोंसे और रथोंसे रहित छिन्न धनुषोंवाले ॥ ३१ ॥ दानव देवताओंके संग हाथ और पैरोंसे युद्ध करते हुए; तब हरिने अपने पैने भाले युद्धमें फेंके ॥ ३२ ॥ वह भाला उसके धनुषकी कोटीको छेदन कर पृथ्वीमें गिरा, फिर पैनी धारों-

वाले सौ बाण ॥ ३३ ॥ असिलोमाके ऊपर छोडे और छोडे हुए ॥ ३४ ॥ वे बाण पवनके वेगसे बडे वेगवंत हुए असिलोमाके देहमें गडे हुए बिलमें अर्ध मग्न सर्पकी समान शोभित हुए तब उसके छेदित शरीरसे रुधिर गिरने लगा ॥ ३५ ॥ उन अंगोंसे वह असिलोमा ऐसे शोभायमान हुआ जैसे गैरिकादि धातुओंको त्यागता हुआ सुमेरु पर्वत, तब फिर और बडे तीक्ष्ण बाण उसके ऊपर प्रहार किये ॥ ३६ ॥ तब असिलोमा क्रोधित हो और फिर अन्य धनुषको धारण कर सुवर्णके पंखोंवाले बहुत पैने बाणोंको हरिके ऊपर छोडने लगा ॥ ३७ ॥ सर्प अग्नि और विषकी तुल्य बाणोंसे हरिके मर्मको वेधन कर ऐसे आच्छादन करता हुआ जैसे पर्वतको मेघ ढकते हैं ॥ ३८ ॥ और कालकी समान सुवर्णकी पंखोंवाले सूर्यकी तुल्य कांतिवाले सौ

प्राहिणोत्सहसा तस्य दानवेन्द्रस्य संयुगे ॥ तस्य देहविमुक्तास्ते मारुतेन समीरिताः ॥ ३४ ॥ मग्नार्द्धकाया विविशुः पन्नगा इव पर्वते ॥ स तैर्निपतितैर्गात्रैः क्षरद्भिरसृगावलीः ॥ ३५ ॥ बभौ दैत्यो महाबाहुर्मेरुर्धातुमिवोत्सृजन् ॥ पुनश्चापि पृषत्कानां शतानि नतपर्वणाम् ॥ ३६ ॥ ततोऽसिलोमा संक्रुद्धः प्रगृह्यान्यन्महाधनुः ॥ रुक्मपुङ्खांश्च निशितान् प्रेषयामास सायकान् ॥ ३७ ॥ तैस्तु मर्मसु विव्याध सर्पानलविषोपमैः ॥ गात्रं संच्छादयामास महाभ्रैरिव पर्वतम् ॥ ३८ ॥ भूयः संधाय च शरं मुमोचान्तकसंनिभम् ॥ सुपुङ्खं सूर्यसंकाशं बाणमप्रतिमं रणे ॥ ३९ ॥ तेन बाणप्रहारेण संयुगे भीमकर्मणा ॥ मुमोह सहसा देवो भूमौ चापि पपात ह ॥ ४० ॥ ततो हाहाकृताः सर्वे देवे भूतलमाश्रिते ॥ जगत्सदेवमाविग्नं यथार्कपतनं तथा ॥ ४१ ॥ परिवारं तु समरे तस्य हत्वा महासुरः ॥ एकत्रिंशत्सहस्राणि योधानां दानवोत्तमः ॥ ४२ ॥ जयश्रिया सेव्यमानो दीप्यमान इवाचलः ॥ प्रगृह्य कार्मुकं घोरं गतः शक्ररथं प्रति ॥ ४३ ॥

बाणोंको फिर धनुष्यपर संधान कर हरिके ऊपर छोडे ॥ ३९ ॥ तिन बाणोंके प्रहारसे युद्धमें वेधित हुए हरि मोहको प्राप्त हो पृथ्वीमें गिरे ॥ ४० ॥ तिस समय सब देवता हाहाकार करने लगे और सूर्यके गिरनेकी समान जगत् भग्न हुआ ॥ ४१ ॥ उस दानवोंमें श्रेष्ठ असिलोमाने इकतीस हजार हरिके परिवाररूप देवताओंको मार डाला ॥ ४२ ॥ और जयरूपी शोभासे सेवित हुआ अग्निकी तुल्य प्रकाशमान अपने घोर धनुष्यको धारण कर इन्द्रके रथके प्रति गया ॥ ४३ ॥

और उसी युद्धमें दोनों अश्विनीकुमार देवताओंके शत्रु महाबली वृत्रासुरसे युद्ध करने लगे ॥ ४४ ॥ तर्कश धनुष धारण करे युद्धमें प्राणोंको त्यागने-
वाला वृत्रासुर अश्विनीकुमारोंको प्राप्त हो युद्धमें पर्वतकी समान अचल स्थित हुआ ॥ ४५ ॥ युद्धमें शत्रुओंके रोमोंको खडा करनेवाले शंखको
बजाकर धनुषकी ज्याके शब्दोंसे सम्पूर्ण प्राणियोंको मोहित करता हुआ ॥ ४६ ॥ हर्षित रोमोंवाले यक्ष और देवताओंके समूह ये सम्पूर्ण समुद्रके
शब्दकी तुल्य शब्दवाले शंखके शब्दको सुनते हुए ॥ ४७ ॥ गदा परिघ अस्त्र शक्ति त्रिशूल फरसा ये सम्पूर्ण हथियार यक्ष राक्षसोंकी भुजाओंमें

तथैव तु महायुद्धे ससैन्यावश्विनावुभौ ॥ प्रयुद्धौ सह वृत्रेण बलिना देवतारिणा ॥ ४४ ॥ बाणखड्गधनुष्पाणिः समरे त्यक्तजीवितः ॥
आसाद्य सोऽश्विनौ दैत्यः स्थितो गिरिरिवाचलः ॥ ४५ ॥ ततः शंखमुपाध्माय द्विषतां लोमहर्षणम् ॥ ज्याघोषतलशब्दैश्च सर्व-
भूतान्यवेजयत् ॥ ४६ ॥ ततः संहृष्टरोमाणः शंखशब्दं विशुश्रुवुः ॥ यक्षराक्षसदेवौघा वृत्रस्यापि च निःस्वनम् ॥ ४७ ॥ गदा-
तोमरनिस्त्रिंशशूलशक्तिपरश्वधाः ॥ प्रगृहीता व्यराजन्त यक्षराक्षसबाहुभिः ॥ ४८ ॥ तैः प्रमुक्तान्महाकायैः शूलशक्तिपरश्वधान् ॥
भल्लैर्वृत्रपरिच्छेदभीमवेगरवैस्तथा ॥ ४९ ॥ अन्तरिक्षचराणां च भूमिस्थानां च गर्जताम् ॥ शरैर्विव्याध गात्राणि देवानां प्रियद-
र्शिनाम् ॥ ५० ॥ वृत्रासुरभुजोत्सृष्टैर्बहुधा यक्षरक्षसाम् ॥ निकृत्तान्येव दृश्यन्ते शरीराणि शिरांसि च ॥ ५१ ॥ अथ रक्तमहावृ-
ष्टिरभ्यवर्षत मेदिनीम् ॥ गदापरिघभिन्नानां देवानां गात्रसंभवा ॥ ५२ ॥ प्रच्छादयन्तं बाणौघैर्वृत्रं भीमपराक्रमम् ॥ ददृशुः सर्वभू-
तानि भानुमन्तमिवांशुभिः ॥ ५३ ॥

शोभाको प्राप्त होने लगे ॥ ४८ ॥ बडे शरीरोंवाले योधाओंकी तिन भुजाओंसे फेंके हुए त्रिशूल शक्ति फरसा हथियारोंको वह वृत्रासुर अपने बडे
वेग और शब्दोंको करनेवाले भालोंसे भेदन करने लगे ॥ ४९ ॥ और वह वृत्रासुर आकाश और पृथ्वीमें विचरते हुए और गर्जते हुए देवताओंके
शरीरोंको छेदन करने लगे ॥ ५० ॥ वृत्रासुरकी भुजाओंसे छोडे हुए बाणोंसे छेदन किये हुए बहुतसे यक्ष और राक्षसोंके शरीर और शिर पृथ्वीपै
दीखने लगे ॥ ५१ ॥ गदा परिघोंसे भेदन किये हुए देवताओंके शरीरोंसे रुधिरकी महावर्षा पृथ्वीको सेचन करने लगी ॥ ५२ ॥ और बडे भीम

पराक्रमवाले वृत्रासुरको सम्पूर्ण प्राणी देवताओंके समूहोंसे ऐसे आच्छादित देखने लगे कि जैसे मेघोंसे सूर्य ॥ ५३ ॥ और महाबली सूर्यकी समान तपता हुआ
वृत्रासुर मर्मवेधी बाणोंसे अश्विनीकुमारोंको वेधन करने लगे ॥ ५४ ॥ और देवताओंके बाणोंसे वेधित होकर अनेक प्रकारके शब्दोंको करते हुए वृत्रासुरको
भयभीत देवता कुछभी नहीं देखते हुए ॥ ५५ ॥ और खड्ग शक्ति गदा परिघ प्रास तोमर फरसा त्रिशूल हथियारोंकी वे सम्पूर्ण देवता वृत्रासुरपर वर्षा करने
लगे ॥ ५६ ॥ तब सत्यपराक्रमी महाबली तिन बाणोंसे वेधित हुआ वृत्रासुर क्रोधित हो और सम्पूर्ण देवताओंपर बाणोंकी वर्षा करने लगा ॥ ५७ ॥
वेधन किये हुए महाआयुधोंसे आच्छादित महारथी देवता वृत्रासुरके भयसे पीडित हुए और घोर आर्तनाद करने लगे ॥ ५८ ॥ गदा शक्ति त्रिशूल खड्ग

तीक्ष्णरश्मिरिवादित्यः प्रतपन्सर्वदेवताः ॥ अश्विनोर्बलवान् क्रुद्धः सायकैर्मर्मभेदिभिः ॥ ५४ ॥ नदतो विविधान्नादानर्दितस्यापि सायकैः ॥
न मोहमसुरेन्द्रस्य ददृशुस्त्रिदशा रणे ॥ ५५ ॥ तेऽसिचर्मगदाभिश्च परिघप्रासतोमरैः ॥ परश्वधैश्च शूलैश्च प्रववर्षुर्महारथाः ॥ ५६ ॥
ततो वृत्रः सुसंक्रुद्धस्तैस्तदाभ्यर्दितो बली ॥ अभ्यवर्षच्छितैर्बाणैस्तान्सर्वान्सत्यविक्रमः ॥ ५७ ॥ तेन वित्रासिता देवा विप्रकीर्णमहा-
युधाः ॥ घोरमार्त्तस्वरं चक्रुर्वृत्रासुरभयार्दिताः ॥ ५८ ॥ उत्सृज्य ते गदाशक्तिशूलर्ष्टिपरिघाशनीन् ॥ उत्तरां दिशमाजग्मुस्त्रासिता
दृढधन्विना ॥ ५९ ॥ शूलशक्तिगदापाणिर्व्यूढोरस्को महाभुजः ॥ प्रावर्त्तत रणे वृत्रस्त्रासयानश्चराचरान् ॥ ६० ॥ तत्रैकस्तु महा-
बाहुरसिशूलधरः प्रभुः ॥ अभ्यधावत दैत्येन्द्रं वृत्रमप्रतिमं रणे ॥ ६१ ॥ तमापतन्तं संप्रेक्ष्य निर्भिन्नमिव वारणम् ॥ वत्सदन्तैस्त्रिभिः
पार्श्वे विव्याध सुरसत्तमम् ॥ ६२ ॥ सोऽतिविद्धो महेष्वासः शरैरमितविक्रमः ॥ गदां जग्राह बलवान् गदायुद्धविशारदः ॥ ६३ ॥

परसा हथियारोंको त्याग वृत्रासुरके त्राससे सम्पूर्ण देवता उत्तरदिशामें चले गये ॥ ५९ ॥ दीर्घ छातीवाला महाभुजाओंवाला त्रिशूल गदाको हाथमें धारण
किये वृत्रासुर चराचरसहित सम्पूर्ण देवताओंको त्रास देता हुआ विचरने लगा ॥ ६० ॥ और रणमें धीर्यतासे स्थित हुआ; तब महाभुजावाले त्रिशूलको
धारण किये अश्विनीकुमार रणमें स्थित हुए और दैत्योंका अधिपति तुल्यतासे रहित वृत्रासुरके उनके सन्मुख दौडा ॥ ६१ ॥ भेदित किये हस्तीकी
समान अश्विनीकुमारने धनुष धारण कर बछडेके दांतके तुल्य तीक्ष्ण तीन बाणोंसे वृत्रासुरको पार्श्वमें वेधन किया ॥ ६२ ॥ वह महाबली बाणोंसे

महाविद्व होकर युद्धमें गदायुद्ध जाननेके कारण गदा ग्रहण करता हुआ ॥ ६३ ॥ पर्वतकी तुल्य सारवाली और बडी दृढ और भयानक गदाको ग्रहण कर उसके वेगसे अश्विनीकुम ारको ताडन किया ॥ ६४ ॥ प्रकाशमान दीर्घ दृढ और रोमहर्षोंको उपजानेवाले त्रिशूलको अश्विनीकुमारने धारण कर वृत्रासुरको रा ॥ ६५ ॥ उस गदायुद्धको जाननेवाला वृत्रासुर अपनी गदाके अग्रभागसे त्रिशूलको भेदन कर वेगसे अश्विनीकुमारके ऊपर दौडा, जैसे सर्पके प्रति गरुड ॥ ६६ ॥ वृत्रासुरने आकाशमें कूद पर्वतके शिखरकी तुल्य गदाको घुमाय अश्विनीदेवताकी छातीमें मारी ॥ ६७ ॥

तां प्रगृह्य महाभीमामयःसारमयीं दृढाम् ॥ अश्विनौ सहसागम्य ताडयामास वीर्यवान् ॥ ६४ ॥ दीप्यमानं ततः शूलमश्वी सुविपुलं दृढम् ॥ प्रासृजद्वृत्रेदैत्याय सहसा रोमहर्षणम् ॥ ६५ ॥ भङ्क्त्वा शूलं गदाग्रेण गदायुद्धविशारदः ॥ अश्विनं सहसाभ्यर्च्य गरुत्मानिव पन्नगम् ॥ ६६ ॥ सोऽन्तरिक्षात्समुत्पत्य विधूय महतीं गदाम् ॥ नासत्योपरि चिक्षेप गिरिशृङ्गोपमां बली ॥ ६७ ॥ गदयाभिहतः सोऽश्वस्त्यक्त्वा शूलमनुत्तमम् ॥ प्रयातः सहसा तत्र यत्र युद्ध्याति वासवः ॥ ६८ ॥ पराजित्य तु संग्रामे अश्विनं भीमविक्रमम् ॥ जयश्रिया सेव्यमानो वृत्रो युद्धे व्यवस्थितः ॥ ६९ ॥ इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे भविष्यपर्वणि वृत्रासुरोत्कर्षवर्णनं नाम सप्तपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥ ५७ ॥ वैशम्पायन उवाच ॥ तत्रैव तु महायुद्धे रणाजिर्देवसत्तमः ॥ युध्यते सह दैत्येन एकचक्रेण धीमता ॥ १ ॥ प्रच्छाद्य रथपन्थानमुत्क्रोशंश्च महाबलः ॥ एकचक्रस्य सैन्यं तच्छरवर्षैरवाकिरत् ॥ २ ॥ महासुरा महावीर्या महापट्टिशयोधिनः ॥ शूलानि च भुशुंडीश्च क्षिपन्ति स्म महारणे ॥ ३ ॥

तब गदासे हनन हुआ अश्विनीदेवता त्रिशूलको त्याग वेगसे वहां गया जहां इन्द्र युद्ध करता था ॥ ६८ ॥ इस प्रकार बडे पराक्रमी अश्विनीदेवताको रणमें जीत जयरूप शोभासे सेवित हुआ वृत्रासुर युद्धमें स्थित हुआ ॥ ६९ ॥ इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे भविष्यपर्वणि भाषायां सप्तपंचाशत्तमोऽध्यायः ॥ ५७ ॥ वैशंपायनजी बोले; हे जनमेजय! देवताओंमें श्रेष्ठ रणाजि नाम देवता तिसी युद्धमें एकचक्र दैत्यके संग युद्ध करने लगा ॥ १ ॥ वह रणाजि रथके पंथको रोक बडे शब्दोंको करनेवाली एकचक्रकी सेनाको बाणोंकी वर्षासे आच्छादित करने लगा ॥ २ ॥ महावीर्यवाले और महापट्टि-

शोंसे युद्ध करनेवाले महासुर त्रिशूल भुशुंडी शस्त्रोंको रणमें देवताओंके सन्मुख फेंकने लगे ॥ ३ ॥ गदाशक्तिसे मिली हुई अकल्याणरूप दैत्योंकी की हुई ऐसी त्रिशूलकी वर्षा चराचरको दुर्निवार्य होने लगी ॥ ४ ॥ और महापर्वतोंके शिखरोंकी तुल्य आकारवाले, महापराक्रमोंवाले महारथी देवता और असुर परस्पर सन्मुख हो युद्ध करने लगे ॥ ५ ॥ एकचक्र दैत्य रथमें सैकडों घोडे युक्त कर हिरण्यकशिपुके रथकी तुल्य रथमें स्थित हो युद्ध करने लगा ॥ ६ ॥ घोडोंके पैरोंसे और रथके पहियोंके शब्दसे एकचक्रके बाणोंसे सैकडों देवता मृत्युको प्राप्त हो गये ॥ ७ ॥ छोटे चित्रविचित्र और

तच्छूलवर्षं सुमहद्गदाशक्तिसमाकुलम् ॥ अविशद्दितिजैर्मुक्तं दुर्निवार्यं चराचरैः ॥ ४ ॥ अन्योन्यमभिवर्तन्ते देवासुरगणा युधि ॥
महाद्रिशिखराकारा वीर्यवन्तो महाबलाः ॥५॥ तुरङ्गमाणां तु शतं युक्तं तस्य महारथे ॥ महासुरवरस्येव हिरण्यकशिपोर्युधि ॥ ६ ॥
तेषां चरणपातेन चक्रनेमिस्वनेन च ॥ तस्य बाणनिपातैश्च हता वै शतशः सुराः ॥७॥ ततः स लघुभिश्चित्रैः शरैः सन्नतपर्वभिः ॥
सायुधानच्छिनत्क्रुद्धः शतशोऽथ सहस्रशः ॥ ८ ॥ वध्यमानाः शरैस्तीक्ष्णै रथद्विरदवाजिनः ॥ गमिताः प्रक्षयं केचित्त्रिदशैर्दानवा
रणे ॥९॥ ततः प्रक्षीयमाणांस्तानुपप्रेक्ष्य दितेः सुताः॥ त्यक्त्वा बाणान्न्यवर्तन्त प्रगृहीतवरायुधाः॥१०॥ ते दिशो विदिशश्चैव प्रति-
युद्धप्रहारिणः ॥ अभ्यघ्नन्निशितैः शस्त्रैर्देवान्दितिसुता रणे ॥११॥ रणाद्विचलितं घोरं परमं तिग्मतेजसम् ॥ मुमोचास्त्रं महाबाहुर्मथनं
नाम संयुगे ॥ १२ ॥ ततः शस्त्राणि शूलानि निशितानि सहस्रशः ॥ अतिवीर्येण महता दितिजः संप्रचिच्छिदे ॥ १३ ॥

मोटी गांठोंवाले बाणोंसे वह रणाजि देवता सैकडों हजारहों योधाओंको छेदन करने लगे ॥ ८ ॥ देवताओंके तीक्ष्ण बाणोंसे वध किये हुए हस्ती घोडे दानव मृत्युको प्राप्त हो गये ॥ ९ ॥ क्षीयमाण दैत्योंको देख और धनुषोंको धारण करते हुए अन्य दैत्य देवताओंको निवृत्त करते हुए ॥ १० ॥ प्रहार करते हुए दैत्य दिशा और विदिशाओंमें स्थित हो और पैने २ बाणोंसे देवताओंको हनन करने लगे ॥ ११ ॥ जलते हुए अत्यन्त तेजवाले घोररूप मथन नाम अस्त्रको रणाजि दैत्योंपर छोडता हुआ ॥ १२ ॥ तब अस्त्र और त्रिशूल सहस्रों हथियारोंको वह एकचक्र अपने अस्त्रसे छेदन करने लगे ॥ १३ ॥

और सम्पूर्ण त्रिशूलोंको छेदन कर वह एकचक्र महासुर पैने २ दश बाणोंसे तिस रणाजिको वेधन करता हुआ ॥ १४ ॥ और वह एकचक्र शस्त्रोंके वेगका हनन कर जलते हुए वेगवान् अस्त्रोंसे देवताओंके सहस्रों सेनापतियोंका मारने लगा ॥ १५ ॥ छेदन किये हुए तिन्होंके शरीरसे रुधिर निकलने लगा कि जैसे वर्षाकालमें पर्वतोंके शिखरपरसे जल गिरता हो ॥ १६ ॥ और इन्द्रके वज्रकी तुल्य स्पर्शवाले वेगवंत कुटिलतारहित ऐसे दैत्योंसे हनन किये हुए देवता त्रासको प्राप्त हो गये ॥ १७ ॥ एकचक्रके रथमें स्थित गजयूथको देखते हुए जो सम्पूर्ण आभूषणोंसे शब्दायमान और समुद्रके शब्दकी

छित्त्वा शूलेन तान्सर्वानेकचक्रो महासुरः ॥ अभ्यविध्यत तं साध्यं दशभिर्निशितैः शरैः ॥ १४ ॥ अस्त्रवेगेन हत्वैव सोऽस्त्रैस्तस्याशु-सैनिकान् ॥ ज्वलितैरपरैः शीघ्रैस्तानविध्यत्सहस्रशः ॥१५॥ तेषां छिन्नानि गात्राणि विसृजन्ति स्म शोणितम् ॥ प्रावृषीवाम्बुवृष्टीनि शृङ्गाणि धरणीभृताम् ॥ १६ ॥ इन्द्राशनिसमस्पर्शैर्निपतद्भिरजिह्मगैः ॥ दितिजैर्वध्यमानास्ते वित्रेसुः सुरसत्तमाः ॥ १७ ॥ एकचक्रे रथे तिष्ठन्नपश्यद्गजयूथपम् ॥ वराभरणनिह्रादान्तसमुद्रस्वनानिःस्वनान् ॥ १८ ॥ मत्तान्सुविहितान् दृप्तान्महामात्रैराधिष्ठितान् ॥ कुलीनान्वीर्यसंपन्नान् प्रति द्विरदघातिनः ॥ १९ ॥ शिक्षितान् गजशिक्षायामैरावतसमान्युधि ॥ न्यहनत्सुरसैन्यस्य गजान् गज इवासुरः ॥ २० ॥ विक्षरन्तो महानागान्भीमवेगांस्त्रिधा मदम् ॥ मेघस्तनितनिर्घोषान्महाद्रीनिव चोत्थितान् ॥ २१ ॥ सहस्रसंमितान् दिव्याञ्जाम्बूनदपरिष्कृतान् ॥ सुवर्णजालैर्विततांस्तरुणादित्यवर्चसः ॥ २२ ॥ एकचक्रो गदापाणिर्बलवान्गदिनां वरः ॥ उत्सारयामास गजान्महाभ्राणीव मारुतः ॥ २३ ॥

तुल्य शब्दवाले ॥ १८ ॥ मदोन्मत्त और श्रेष्ठ पीलवानोंसे युक्त अच्छे कुलोंमें उत्पन्नवाले और बडे पराक्रमोंवाले दूसरे हाथियोंको मारनेवाले ॥ १९ ॥ और गजशिक्षामें निपुण ऐरावत हस्तियोंकी तुल्य हस्तियोंको वह एकचक्र अपने फरसों और शरोंसे हनन करने लगा कि जैसे हस्तीको हस्ती मारता है ॥ २० ॥ और भयानक रूपवाले तीन जगहसे मदोंको झिरते हुए मेघके गर्जितकी समान शब्द करने लगे, और पर्वतकी नई ऊंचे ॥ २१ ॥ सहस्रों श्रेष्ठ और सुवर्णके गहनोंवाले, और तरुण सूर्यकी तुल्य कांतिवाले ॥ २२ ॥ हस्तियोंको गदायुद्ध करनेवालोंमें श्रेष्ठ हाथमें गदाको धारण किये एकचक्र

ऐसे भगाने लगा जैसे मेघोंको वायु ॥ २३ ॥ हस्तियोंको हनन करनेवाला एकचक्र गदासे सम्पूर्ण हस्तियोंको हनन कर फिर घोडोंके समूहको देखने लगा ॥ २४ ॥ तोतेकी समान वर्णवाले ऋच्छ मोरकी तुल्य वर्णोंवाले कबूतर और हंसके सम वर्णोंवाले ॥ २५ ॥ मल्लिकाकी तुल्य नेत्रोंवाले और क्रौंचकी तुल्य वर्णोंवाले मनकी तुल्य वेगवाले घोडोंकी सेनाको वह महाबाहु ॥ २६ ॥ एकचक्र अपनी गदासे भेदन करने लगा; और रणाजि रणमें एकचक्रके कर्मको देख ॥ २७ ॥ वह श्रीमान् अचिन्त्यपराक्रमी रणमें उपरामको प्राप्त हो देवताओंकी सेनामें गया; गदायुद्धमें कुशल रथोंके समूहोंका पति ॥ २८ ॥

निहत्य गदया सर्वांस्तान्गजान्गजमर्द्दनः॥ भूयोऽश्वसंघान्त्स बली निरैक्षत महासुरः ॥२४॥ शुकवर्णानृष्यवर्णान्मयूरसदृशांस्तथा ॥ पारावतसवर्णांश्च हंसवर्णांस्तथैव च॥२५॥मल्लिकाक्षान्विरूपाक्षान् क्रौञ्चवर्णान्मनोजवान्॥अश्वसैन्यं महाबाहुस्तदप्रतिमपौरुषः॥२६॥ निषूदयामास बली गदया भीमविक्रमः ॥ रण॥जिस्तरय समरे सर्वान्दृष्ट्वा सुरद्विषः ॥ २७ ॥ अचिन्त्यविक्रमः श्रीमानभ्ययाद्देववाहिनीम् ॥ गदायुद्धेषु कुशलो रथेन रथयूथपः ॥ २८ ॥ दृष्टसैन्यो महाबाहुः प्रस्थितः शक्रसन्निधौ ॥ त्रिंशच्छतसहस्राणि रथानां विनिहत्य सः ॥ २९ ॥ रणेऽतिष्ठत दैत्येन्द्रो विधूम इव पावकः ॥ तस्मिन्नेव तु संग्रामे बलहन्तो महासुरः ॥ ३० ॥ मृगव्याधं महात्मानं योधयत्यजितं रणे ॥ मृगव्याधस्य रुद्रस्य महापारिषदास्तथा ॥ ३१ ॥ समुत्पेतुर्बलं दृष्ट्वा हुताग्निसमतेजसः ॥ गजैर्मत्ते रथैर्दिव्यैर्वाजिभिश्च महाजवैः ॥३२॥ अस्त्रैश्च निशितैर्बाणैः शरैश्चानलसन्निभैः ॥ ददृशुस्ते ततो वीरा दीप्यमानं महासुरम् ॥३३॥ रश्मिवन्तमिवोद्यन्तं सुतेजोरश्मिमालिनम् ॥ संग्रामस्थं महावेगं महासत्त्वं महाबलम् ॥ ३४ ॥

महाबाहु रणाजि इन्द्रके समीप गया; और वह एकचक्र तीस सहस्र योधाओंको मार ॥ २९ ॥ रणमें ऐसे स्थित हुआ कि जैसे धूमरहित अग्नि, और उसी संग्राममें बलनाम दैत्य ॥ ३० ॥ मृगव्याध महात्मा रुद्रके संग युद्ध करने लगा; और होमी हुई अग्निके तुल्य तेजवाले मृगव्याधके पार्षद ॥ ३१ ॥ हुताग्निकी समान तेजवाले मनकी समान वेगवान् हस्ती रथ घोडोंसे सवार हो और बलको देख सन्मुख दौडे ॥ ३२ ॥ पैने अस्त्र और तीक्ष्ण भालेसे युक्त हुए उस महाबली असुरको देवता देखने लगे ॥ ३३ ॥ प्रकाशमान् सूर्यकी समान उदय होते हुए सूर्यकी किरणोंके तुल्य महावेगवान् महाबली ॥ ३४ ॥

और महामति बडे उत्साहयुक्त बडे शरीर और बडे रथवाले महायोधा सम्पूर्ण दिशाओंमें स्थित बल दैत्यको देख ॥ ३५ ॥ एकवार चारों ओरसे संप्रहार करने लगे; और सब प्रकार लोहेके बने पीतरंगवाले तीक्ष्ण मुखोंवाले ॥ ३६ ॥ बाणोंको वह मृगव्याध बलके महापर्वतकी समान शिरमें मारता हुआ, और शिरमें मारे हुए सात बाणोंसे वेधित हुआ ॥ ३७ ॥ बल दैत्य दशों दिशाओंको शब्दायमान करता हुआ आकाशमें उछला तब धनुषको चढाये महाबली रथमें स्थित मृगव्याधने ॥ ३८ ॥ प्रसन्न हो आकाशमें बलके पीछे गमन किया; और तिस बलको आकाशमें बाणोंकी वर्षासे ऐसे आच्छादन

महामतिं महोत्साहं महाकायं महारथम् ॥ समीक्ष्य तं महायोधं दिक्षु सर्वास्ववस्थितम् ॥ ३५ ॥ ततः प्रहरणैर्घोरैरभिपेतुः समन्ततः ॥ तस्य सर्वायसास्तीक्ष्णाः शराः पीतमुखाः शिताः ॥ ३६ ॥ शिरस्यद्रिप्रतीकाशे मृगव्याधेन पातिताः ॥ तैश्च सप्तभिराविष्टाः शरैः शिरसि चार्पितैः ॥ ३७ ॥ उत्पपात तदा व्योम्नि दिशो दश विनादयन् ॥ ततस्तं त्रिदशो वीरः सरथः सज्जकार्मुकः ॥ ३८ ॥ अनुवव्राज संहृष्टः खे तदा स महाबलः ॥ असुरं छादयामास तं व्योम्नि शरवृष्टिभिः ॥ ३९ ॥ वृष्टिमानिव जीमूतो निदाघान्ते धराधरम् ॥ अर्द्यमानस्ततस्तेन मृगव्याधेन दानवः ॥ ४० ॥ चकार निनदं घोरमम्बरे जलदो यथा ॥ स दूरं सहसोत्पत्य मृगव्याधरथं प्रति ॥ ४१ ॥ निपपात महावेगः पक्षवातैर्गिरिर्यथा ॥ बभञ्ज च ततो दैत्यो भग्नेषाकूबरं रथम् ॥ ४२ ॥ मृगव्याधः परित्यज्य स्थितो भूमौ महाबलः ॥ विरथं प्रेक्ष्य रुद्रं तु तस्य पारिषदाः शुभाः ॥ ४३ ॥ उत्थिता घोररक्ताक्षा व्योम्नि मुद्गरपाणयः ॥ स तु तैः सहसोत्थाय वेष्टितो विमलेऽम्बरे ॥ ४४ ॥

करता हुआ ॥ ३९ ॥ कि जैसे ग्रीष्मकालके अंतमें पर्वतको मेघ आच्छादन करते हैं; मृगव्याधसे पीडित हुआ वह बल दैत्य ॥ ४० ॥ आकाशमें मेघकी तुल्य बडा शब्द कर बल दैत्य आकाशमें ऊंचे चढ और मृगव्याधके रथपर ऐसे गिरा ॥ ४१ ॥ कि जैसे पंखोंवाला पर्वत गिरता हो, उससे मृगव्याधका रथ चूर्ण हो गया ॥ ४२ ॥ और टूटे हुए रथका परित्याग कर वह मृगव्याध भूमिमें स्थित हुआ, उनके पार्षद रुद्रको विरथ देख ॥ ४३ ॥ हाथोंमें मुद्गरोंको धारण करे क्रोधयुक्त लाल २ नेत्रोंवाले आकाशमें कूदे; और वह बलभी शीघ्र उठकर आकाशमें युद्ध करने लगा ॥ ४४ ॥

और उनके मुद्गरोंसे ऐसे मर्दित हुआ जैसे फरसोंसे वृक्ष, और गरुडकी समान पराक्रमवाला वह बल दैत्य तिन गणोंके वेगसे हनन हुआ ॥ ४५ ॥ फिर भूमिमें गिरा वह बल शाखाओंसे युक्त सालवृक्षको उखाड ॥ ४६ ॥ और सम्पूर्ण रुद्रके गणोंको हनन करने लगा और तिन गणोंसे छेदन किया हुआ और रुधिरके समूहोंसे युक्त हुआ ॥ ४७ ॥ उदय होते हुए बालसूर्यकी समान दानव शोभित हुआ और मृग सर्प वृक्षसहित पर्वतके शिखरको उखाड ॥ ४८ ॥ वह दानव बलसे पूर्ण रुद्रके पार्षदोंको हनन करने लगा; तब उन महापार्षदोंके नष्ट होनेसे ॥ ४९ ॥ वह वीर्यवान् शेष सेनाको नाश करने लगा;

मुद्गरैर्मर्दितो भीमैर्वृक्षः परशुभिर्यथा ॥ तेषां वेगवतां वेगं निहत्य स महारथः ॥ ४५ ॥ निपपात पुनर्भूमौ सुपर्णसमविक्रमः ॥ स सालवृक्षमुत्पाट्य महाशाखं महाबलः ॥ ४६ ॥ सर्वान्पारिषदान्संख्ये सूदयामास दानवः ॥ स तैर्विजितदेहस्तु रुधिरौघपरिप्लुतः ॥ ४७ ॥ शुशुभे दानवश्रेष्ठो बालसूर्य इवोदितः ॥ अथोत्पाट्य गिरेः शृङ्गं समृगव्यालपादपम् ॥ ४८ ॥ जघान तान्पारिषदान्समरे दानवेश्वरः ॥ ततस्तेषु च भग्नेषु महापारिषदेषु वै ॥ ४९ ॥ बलं तदवशेषं तु नाशयामास वीर्यवान् ॥ अश्वैरश्वान्गजैर्नागान्याधान्योधे रथान्रथैः ॥ ५० ॥ दानवः सूदयामास युगान्तेऽन्तकवत्प्रजाः ॥ हतैरश्वैश्च नागैश्च भग्नाक्षैश्च महारथैः ॥ ५१ ॥ त्रिदशैश्चाभवद्भूमी रुद्धमार्गा समन्ततः ॥ एवं बलः स दैत्येन्द्रो मृगव्याधश्च वीर्यवान् ॥ ५२ ॥ युधि प्रवृद्धौ बलिनौ प्रभिन्नाविव वारणौ ॥ ५३ ॥ वैशम्पायन उवाच ॥ तत्रैव युध्यते रुद्रो द्वितीयो राहुणा सह ॥ विश्रुतस्त्रिषु लोकेषु क्रोधात्मा ह्यज एकपात् ॥ ५४ ॥ तद्यथा सुमहद्युद्धं तुमुलं लोमहर्षणम् ॥ आसीत्प्रतिभयं रौद्रं वीराणां जयमिच्छताम् ॥ ५५ ॥

घोडोंसे घोडोंको हस्तियोंसे हस्तियोंको और योधाओंसे योधाओंको रथोंसे रथोंको ॥ ५० ॥ वह बल ऐसे हनन करने लगा कि जैसे प्रलयकालमें प्रजाको काल मारता है; और हनन किये हुए घोडे हस्ती रथोंसहित ॥ ५१ ॥ देव दानवसे सम्पूर्ण पृथ्वी भयानक मार्गवाली होती हुई; इस प्रकारसे बल दैत्य मृगव्याध रुद्र ये दोनों बली ॥ ५२ ॥ रणमें ऐसे युद्ध करने लगे जैसे मतवाले दो हाथी लडते हों ॥ ५३ ॥ वैशंपायन बोले; तीनों लोकोंमें विख्यात क्रोधकी मूर्ति और एक पैरवाला दूसरा अज नाम रुद्र तिसी रणमें राहुके संग युद्ध करने लगा ॥ ५४ ॥ उस समय जयकी इच्छा

करते हुए तिन दोनों शूरवीरोंका बडा तुमुल और रोमहर्षोंकी उपजानेवाला भयानक रौद्र युद्ध होने लगा ॥ ५५ ॥ देवता और दानवोंके शरीरोंसे वडी दुस्तर और केशरूपी दूबोंको वहानेवाली शरीरोंके समूहोंको वहाती हुई रुधिरकी नदी वहने लगी ॥ ५६ ॥ भयानक आकृतिवाले समर्थ क्रोधित हुए रुद्र शत्रुओंकी सेनाको विदारण करनेवाले सौ मुखोंवाले राहुको युद्धमें हनन करने लगे ॥ ५७ ॥ और दैत्योंके बाणोंसे क्रोधित हुए श्रीमान् रुद्र राहुके घोडे सारथिसहित सुवर्णजटित रथको भेदन करते हुए ॥ ५८ ॥ महाबली एक रुद्रके पार्षदने प्रसन्न हो रणमें अपनी शक्तिसे राहुकी छातीमें वेधन किया ॥ ५९ ॥ और दानवोंमें श्रेष्ठ क्रोधसे मूर्च्छित भिन्नगात्र राहु आते हुए रुद्रके रथको ॥ ६० ॥ तलप्रहारसे क्रोधित और मूर्च्छित हो

देवदानवदेहैस्तु दुस्तरा केशशाद्वला ॥ शरीरसंघातवहा प्रसृता लोहितापगा ॥ ५६ ॥ आजघानाथ संक्रुद्धो रुद्रो रौद्राकृतिः प्रभुः ॥ राहुं शतमुखं युद्धे शत्रुसैन्यनिवारणम् ॥ ५७ ॥ तस्य काञ्चनचित्राङ्गं रथं साश्वं ससारथिम् ॥ जघान समरे श्रीमान् क्रुद्धो दैत्यस्य सायकैः ॥ ५८ ॥ तस्य पारिषदस्त्वेकः शरशक्त्या महाबलः ॥ बिभेद समरे हृष्टो दानवं तं स्तनान्तरे ॥ ५९ ॥ स भिन्नगात्रो रुद्रेण तथा पारिषदैरपि ॥ रुद्रस्य रथमायान्तं स राहुर्दानवोत्तमः ॥ ६० ॥ प्रममाथ तलेनाशु सहसा क्रोधमूर्च्छितः ॥ भिन्नगात्रं शरैस्तीक्ष्णैर्मेरुं सूर्य इवांशुभिः ॥ ६१ ॥ हतैर्दानवमुख्यैस्तु रुद्रेणामिततेजसा ॥ रुद्रपारिषदान्सर्वान्निजघान महासुरः ॥ ६२ ॥ वर्त्तमाने महाघोरे संग्रामे लोमहर्षणे ॥ रुधिरौघा महावेगा महानद्यः प्रसुस्रुवुः ॥ ६३ ॥ दानवं समरे रुद्रो नीलाञ्जनचयोपमम् ॥ निर्बिभेद शरैस्तीक्ष्णैर्मेरुं सूर्य इवांशुभिः ॥ ६४ ॥ हतैर्दानवमुख्यैश्च शक्तिशूलपरश्वधैः ॥ पतितैः पर्वताभैश्च दानवैः कामरूपिभिः ॥ ६५ ॥

उसने मथन किया वह सूर्यकी किरणोंके समान तीक्ष्ण बाणोंसे भिन्न शरीर हो गया ॥ ६१ ॥ राहुने तीक्ष्ण बाणोंसे रुद्र और रुद्रके पार्षदोंको वेगसे वेधन किया ॥ ६२ ॥ और रोमहर्षोंको उपजानेवाले रौद्र वर्तमान युद्धमें रुधिरके समूहोंको वहनेवाली बहुतसी महानदी वेगसे वहने लगीं ॥ ६३ ॥ और नीले पर्वतकी समान राहु दानवने तीक्ष्ण बाणोंसे रुद्रको ऐसे वेधन किया कि जैसे किरणोंसे मेरुपर्वतको सूर्य ढकता है ॥ ६४ ॥ और त्रिशूल शक्ति फरसेसे हनन हुए पर्वतकी समान पृथ्वीमें गिरे हुए इच्छापूर्वक विचरनेवाले ॥ ६५ ॥

दानवोंमें मुख्य दानवोंसे किया हुआ रोमहर्षोंको उपजानेवाला महाघोर युद्ध हुआ. उसमें दैत्य टेसूके फूलकी समान दीखने लगे; महामेरु, मृदंग, पणव ॥ ६६ ॥ शंख और पटहसे मिलकर महाशब्द हो गया; और शब्दको करते हुए मरे हुए दैत्य ॥ ६७ ॥ और देवतोंका उस रणमें दारुण शब्द सुनाई आने लगा, और घोडोंको सुम और रथकी पुट्ठीसे उठी हुई ॥ ६८ ॥ पृथ्वीकी रज सम्पूर्ण योधाओंका मार्ग और नेत्रोंको रोकती हुई सब पृथ्वी उस समय शस्त्ररूपी पुष्पोंके उपहारवाली हो गई ॥ ६९ ॥ दुःखपूर्वक दर्शनवाली और दुःखसे प्राप्त होनेको योग्य मांसरुधिरकी कीचवाली रणभूमि हो गई; और

वर्तमाने महाघोरे संग्रामे लोमहर्षणे ॥ विरेजुस्ते तदा दैत्याः पुष्पिता इव किंशुकाः॥ महाभेरीमृदङ्गानां पणवानां च निःस्वनः॥६६॥ शङ्खवेणुस्वनोन्मिश्रः संबभूवाद्भुतोपमः ॥ हतानां स्वनतां तत्र दैत्यानां चापि निःस्वनः ॥६७॥ देवानां च तथा तत्र शुश्रुवे दारुणो महान् ॥ तुरङ्गमखुरोत्कीर्णं रथनेमिसमुत्थितम् ॥ ६८ ॥ रुरोध मार्गं योधानां चक्षूंषि च धरारजः ॥ शस्त्रपुष्पोपहरा सा तत्रासीद्युद्धमेदिनी ॥६९॥ दुर्दर्शा दुर्विगाह्या च मांसशोणितकर्दमा ॥ भग्नैः खड्गैर्गदाभिश्च शक्तितोमरपट्टिशैः ॥ ७० ॥ अपविद्धैश्च भग्नैश्च रथैः सांग्रामिकैर्हतैः ॥ निहतैः कुञ्जरैर्मत्तैस्तथा त्रिदशदानवैः ॥ ७१ ॥ चक्राक्षयुगशस्त्रैश्च भग्नैरवनिपातितैः ॥ बभूवायोधनं घोरं पिशिताशनसंकुलम् ॥ ७२ ॥ उत्पेतुश्च कबन्धानि दिक्षु सर्वासु संयुगे ॥ अन्योन्यबद्धवैराणां दैत्यानां जयगृद्धिनाम् ॥ ७३ ॥ संप्रहारस्तथा युद्धे वर्त्ततेऽतिभयंकरः ॥ सैन्यानां संप्रयुद्धानां शूराणामनिवर्त्तिनाम् ॥ ७४ ॥ अजस्य चैकपादस्य राहोश्चैव महात्मनः ॥ तेषां तु तत्र पततां क्रुद्धानामतिनिःस्वनः ॥ ७५ ॥

भाला, खड्ग, गदा, शक्ति, तोमर, पट्टिश ॥ ७० ॥ हथियारोंसे हनन हुए संग्रामके करनेवाले सैकडों रथ और मतवाले हस्ती और देवता दानव ॥ ७१ ॥ चक्रशस्त्रसे भग्न और निपातित हुए; मांसके भोजन करनेवालोंसे व्याप्त और महाघोर युद्ध हो गया ॥ ७२ ॥ जयकी इच्छा करते हुए परस्पर बद्ध-वैरोंवाले शूरवीरोंके सम्पूर्ण शिरोंसे रहित कबन्ध दिशाओंमें उछलने लगे ॥ ७३ ॥ और युद्धमें पीठ न देनेवाले सम्यक् प्रकारसे युद्ध करनेवाले शूरवीरोंका बडा भयंकर प्रहार होने लगा ॥ ७४ ॥ एकपैरवाले अज और महात्मा युद्धमें बल प्रकाश करने लगे सम्पूर्ण सेनाका शब्द होने

लगा ॥ ७५ ॥ जैसे प्रलयकालमें मर्यादाको छोडे हुए समुद्रोंका होता है, उनमें एक महाबली और बडा भीम ऐसा धूम्राक्ष नाम रुद्र ॥ ७६ ॥ गदा परिघ शूल धारण किये युद्धमें केशीको भेदन करता हुआ; और अनेक प्रकारसे प्रहार करनेवाले और भयानक दर्शनोंवाले ॥ ७७ ॥ रुद्रके प्यारे पार्षद केशीके सम्मुख दौडने लगे; और शोभायमान तपे हुए सुवर्णके कुंडलोंवाला दानव रथमें स्थित हो ॥ ७८ ॥ दानवोंसे युक्त दुर्जय केशी रुद्रसे; युद्ध करने लगा; और संग्राममें चतुर उग्र पराक्रमवाला युद्ध करता हुआ ॥ ७९ ॥ केशीके मुखसे विस्तार करती हुई अग्निकी ज्वाला निकलती हुई सिंहकी तुल्य ऊंचे

उद्वृत्ते इव भूतानां समुद्राणां तु शुश्रुवे ॥ तत्रैकस्तु सुधूम्राक्षः श्रीमान् रुद्रो मुनीश्वरः॥७६॥विभेद केशिनं शक्त्या गदापरिघशूलभृत्॥ नानाप्रहरणा घोरा भीमाख्या भीमविक्रमाः ॥ ७७ ॥ निष्पेतू रुद्रदयिता महापारिषदास्तथा ॥ रथमास्थाय च श्रीमांस्तप्तकाञ्चन-कुण्डलः ॥ ७८ ॥ दानवैः संवृतः केशी युध्यते युद्धदुर्जयैः ॥ तस्य संग्रामशौण्डस्य संग्रामेषु युयुत्सतः ॥ ७९ ॥ निपेतुरुग्रवीर्यस्य ज्वाला हि प्रसृता मुखात् ॥ स तु सिंहर्षभस्कन्धः शार्दूलसमविक्रमः॥८०॥ महाजलदसंकाशो मृदङ्गध्वानिनिःस्वनः॥ तस्य निष्पत-मानस्य दानवैः संवृतस्य च ॥८१॥ बभूव सुमहानादः क्षोभयंस्त्रिदिवं यथा ॥ तेन शब्देन वित्रस्ता त्रिदशानां महाचमूः ॥ ८२ ॥ द्रुमशैलप्रहरणा योद्धुमेवाभ्यवर्त्तत ॥ तेषां च देवदैत्यानां युयुत्सूनां परस्परम् ॥ सन्निपातः सुतुमुलो रौद्रो लोकभयावहः ॥ ८३ ॥ तेषां युद्धं महाघोरं संजज्ञे लोमहर्षणम् ॥ देवदानवसंघानां प्राणांस्त्यक्त्वा महाहवे ॥ सर्वे ह्यतिबलाः शूराः सर्वे पर्वतसन्निभाः ॥८४॥

कंधेवाला शार्दूलकी समान पराक्रमी ॥८०॥ महामेघकी तुल्य कांतिमान् और मृदंगके तुल्य शब्दवाला दानवोंसे युक्त युद्धके सन्मुख आता हुआ केशी दैत्यका ॥ ८१ ॥ स्वर्गको क्षोभ कराता हुआ महान् शब्द होता हुआ उस शब्दसे देवताओंकी सेना डर गई ॥ ८२ ॥ पहाड और पर्वतोंके प्रहारवाला महायुद्ध हुआ उन देवता और दैत्योंके परस्पर लडनेका तुमुल शब्द होने लगा; और लोकोंको भयका देनेवाला हो गया ॥ ८३ ॥ तिन्होंका युद्ध महाघोर और रोमोंको हर्ष करानेवाला हो गया; तिस महान् युद्धमें देवता और दानवोंके समूहके प्राणोंका नाश होने लगा; वे सब अतिबलवाले

शूरवीर पर्वतके समान कांतिवाले ॥ ८४ ॥ सब अस्त्रविद्याओंमें निपुण सब शस्त्रोंको उठाये हुए देवता और दानव आपसमें मारनेकी इच्छा करनेवाले प्राप्त हुए; तिन्होंके गर्जनेका शब्द मेघके गर्जनेकी समान होने लगा ॥ ८५ ॥ और महाघोर शब्द जंगम और स्थावर जगत्को कंपानेवाला सुनाई आने लगा; रक्तकांतिवाली भयंकर धूलि उत्पन्न हुई; और तिन देवते और दैत्योंके समूहोंसे उठी हुई रजसे दशों दिशा रुकती हुई ॥ ८६ ॥ रेशमी वस्त्रकी समान लाल और पांडुवर्णवाली तिस धूलीसे ॥ ८७ ॥ और बहुतरूपसे ढकनेसे कुछ न दीखा, न ध्वजा न पताका न वर्म न घोडा ॥ ८८ ॥ न

सब सर्वास्त्रविद्वांसः सर्वे सर्वायुधोद्यताः ॥ त्रिदशा दानवाश्चैव परस्परजिघांसवः ॥ तेषां वै नदतां शब्दः संयुगे मेघनिःस्वनः ॥ ८५ ॥
शुश्रुवेऽतिमहाघोरश्चरस्थावरकम्पनः ॥ रेणुश्चारुणसंकाशो भीमः स समपद्यत ॥ ८६ ॥ उद्धतो देवदैत्यौघः संरुरोध दिशो दश ॥
अन्योन्यं रजसा तेन कौशेयारुणपाण्डुना ॥ ८७ ॥ संवृता बहुरूपेण ददृशुर्न च किंचन ॥ न ध्वजो न पताकाश्च न वर्म तुरगोऽपि
वा ॥ ८८ ॥ आयुधं स्यन्दनो वापि दृश्यते नैव सारथिः ॥ स शब्दस्तुमुलस्तेषामन्योन्यं समधावताम् ॥ ८९ ॥ निपेतुरुग्रवीर्यस्य
ज्वाला हि प्रसृता मुखात् ॥ सतु सिंहर्षभस्कन्धः शार्दूलसमविक्रमः ॥ ९० ॥ तस्य निष्पतमानस्य दानवैः संवृतस्य च ॥ श्रूयते
तुमुलः शब्दो न रूपाणि चकाशिरे ॥९१॥ दानवास्तत्र संक्रुद्धा दानवानेव जघ्निरे ॥ त्रिदशास्त्रिदशांश्चैव निजघ्नुस्तुमुले तदा॥९२॥
न (ते) परांश्च विनिघ्नन्तः स्वांश्च युद्धे महासुरान् ॥ रुधिरार्द्रां तथा चक्रुर्मेदिनीं च महासुराः ॥ ९३ ॥ ततस्तु रुधिरौघेण संसि-
क्तमुदितं रजः ॥ शरीरशतसंकीर्णं बभूव धरणीतलम् ॥ ९४ ॥

आयुध, न रथ, न सारथी दीखता था केवल आपसमें दौडते हुओंका शब्द सुनाई देता था ॥ ८९ ॥ और उस उग्रवीर्यके मुखसे अग्नि निकलने लगी; वह सिंहकी समान कंधेवाला शार्दूलकी समान पराक्रमी ॥ ९० ॥ दानवोंसे युक्त युद्धमें झपटा तब बडा तुमुल शब्द हुआ जिससे रूप प्रकाशित न हुए ॥ ९१ ॥ और क्रोध कर आपसमें दैत्यही दैत्योंको मारने लगे; और देवतेही देवतोंको काटने लगे ॥ ९२॥ ऐसे देवते और दैत्य दूसरोंको न मार अपनोंहीपर प्रहार कर रुधिरसे गीली पृथ्वीको करते हुए ॥ ९३ ॥ पीछे लोहूके समूहसे भीजी हुई धूलि कोमल हो गई, और पृथ्वीतलमें सैकडों शव

गिर गईं ॥ ९४ ॥ शूल शक्ति गदा तलवार परिघ प्रास तोमरोंसे देवते और दैत्य आपसमें काटने लगे ॥ ९५ ॥ और परिघोंके आकार बाहुओंसे
रुद्रके पार्षद दैत्योंको पीडित करने लगे और दानवभी बडे २ वृक्ष पत्थर और सूर्यकी समान प्रकाशित शस्त्रोंसे ॥ ९६ ॥ रुद्रके पार्षदोंको काटने लगे
इसी अंतरमें क्रोधी हुआ दैत्य ॥ ९७ ॥ संग्राममें महावीर अपनी सेनाको प्रसन्न करता हुआ परम क्रोध कर वज्रास्त्र लेकर ॥ ९८ ॥ दिव्यरूप वज्रा-
स्त्रसे रुद्रके पार्षदोंको काटने लगा ॥ ९९ ॥ तब पीडित और भ्रांत हुए रुद्रके पार्षद पृथ्वीमें ऐसे गिरे जैसे वज्रसे हत हुए पर्वत और छिन्न वृक्ष गिरते

शूलशक्तिगदाखङ्गपरिघप्रासतोमरैः ॥ त्रिदशा दानवाश्चैव जघ्नुरन्योन्यमाहवे ॥ ९५ ॥ बाहुभिः परिघाकारैर्निघ्नन्तः परिघैस्तथा ॥
रुद्रपारिषदान्सर्वान्त्सूदयन्ति स्म दानवाः ॥ रुद्रपारिषदाश्चैव महाद्रुममहाश्मभिः ॥९६॥ व्यदारयन्नतिक्रम्य शस्त्रैश्चादित्यसंनिभैः ॥
एतस्मिन्नन्तरे क्रुद्धः केशी दानवसत्तमः ॥ ९७ ॥ संग्राममर्षी घोरः स स्वान्यनीकानि हर्षयन् ॥ तेषां परमसंक्रुद्धो वज्रमस्त्रमुदी-
रयत ॥ ९८ ॥ वज्रेणास्त्रेण दिव्येन शस्त्रेण च महात्मना ॥ महापारिषदाः सर्वे निहता युधि दुर्जयाः ॥ ९९ ॥ वज्रास्त्रपीडिता भ्रान्ता
रुद्रपारिषदा युधि ॥ विप्रकीर्णद्रुमाः पेतुः शैला वज्रहता इव ॥ १०० ॥ एवं सुतुमुलं युद्धमभवल्लोमहर्षणम् ॥ केशिनः सह रुद्रेण
तदद्भुतमिवाभवत् ॥१०१॥ इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे भविष्यपर्वणि वामनप्रादुर्भावे केशिरुद्रयुद्धकथनं नामाष्टपञ्चा-
शत्तमोऽध्यायः ॥ ५८ ॥ वैशम्पायन उवाच ॥ वृषपर्वा तु दैत्येन्द्रो विश्वमद्भुतदर्शनम् ॥ निष्कुम्भं योधयामास लोहितार्कसमद्यु-
तिम् ॥ १ ॥ क्रोधमूर्च्छितवक्त्रस्तु धुन्वन्परमकार्मुकम् ॥ धनूंषि प्रेक्ष्य शत्रूणां सारथिं त्वरितोऽब्रवीत् ॥ २ ॥ ॥१३८॥

हों ॥ १०० ॥ इस प्रकार केशीका रुद्रके साथ तुमुल और रोमहर्षण युद्ध हुआ यह बडा युद्ध हुआ ॥ १०१ ॥ इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे
भविष्यपर्वणि वामनप्रादुर्भावे अष्टपंचाशत्तमोऽध्यायः ॥ ५८ ॥ वैशंपायन बोले; हे जनमेजय ! वृषपर्वा दैत्योंका राजा लालसूर्यके समान कांतिवाले
निष्कुंभसे युद्ध करने लगा ॥ १ ॥ क्रोधसे मूर्च्छित मुख वृषपर्वा अपने धनुषको कँपाता हुआ शत्रुकी सेनाको देख सारथीसे वेगसे कहने लगा ॥ २ ॥

हे सारथे! इस मेरे रथको यहीं तुम प्राप्त करो; यह सब देवते मेरी सेनाका नाश करते हैं ॥ ३ ॥ इस कारण युद्धमें श्लाघावाले इन देवताओंको मैं मारनेकी इच्छा करता हूं और इन्हीं देवताओंने दानवोंकी सेनामें बडा छिद्र कर दिया है ॥ ४ ॥ तब अतिवेगवाले रथमें स्थित हुआ वह श्रेष्ठ रथी दैत्य बाणोंसे शत्रुओंको मारने लगा ॥ ५ ॥ तब देवते सन्मुख ठहरनेको समर्थ न हुए युद्धकी तौ कौन कहे; वृषपर्वाके बाणोंसे हत हुए देवते भागने लगे ॥ ६ ॥ तब मृत्युके वशमें प्राप्त हुए तिन देवताओंको देख जातियोंको पीडित विचारके महाबलवाला निष्कुंभ युद्ध करनेको तैयार हुआ ॥ ७ ॥ तिस निष्कुंभको

अत्रैव तावत्त्वरितं नय मे सारथे रथम् ॥ एते देवाश्च सहिता घ्नन्ति नः समरे बलम् ॥ ३ ॥ एतान्निहन्तुमिच्छामि समरश्लाघिनो रणे ॥ एतैर्हि दानवानीकं कृतच्छिद्रमिदं महत् ॥ ४ ॥ ततः प्रजविताश्वेन रथेन रथिनां वरः ॥ अरीनभ्यहनत्क्रुद्धः शरजालैर्महासुरः ॥ ५ ॥ न स्थातुं देवताः शक्ताः किं पुनर्योद्धुमाहवे ॥ वृषपर्वेषुनिर्भिन्नाः सर्व एवाभिदुद्रुवुः ॥ ६ ॥ तान्मृत्युवशमापन्नान्वैवस्वतवशं गतान् ॥ समीक्ष्य निहतान् ज्ञातीनवतस्थे महासुरः ॥ ७ ॥ दृष्ट्वा तं तत्र निष्कुम्भं सर्वे ते त्रिदशोत्तमाः ॥ समेत्य सहिताः सर्वे द्रुतं तं पर्यवारयन् ॥ ८ ॥ व्यवस्थितं तु निष्कुम्भं दृष्ट्वा त्रिदशसत्तमम् ॥ बभूवुर्बलवन्तो वै तस्यास्त्रबलतेजसा ॥ ९ ॥ वृषपर्वा तु शैलाभं निष्कुम्भं समरे स्थितम् ॥ महेन्द्र इव धाराभिः शरवर्षैरवाकिरत् ॥ १० ॥ अचिन्तयित्वा तु शराञ्छरीरे पतितान्बहून् ॥ स्थितश्च प्रमुखे श्रीमान्स्वसैन्यः स महाबलः ॥ ११ ॥ संप्रहस्य महातेजा वृषपर्वाणमाहवे ॥ अभिदुद्राव वेगेन कम्पयन्निव मेदिनीम् ॥ १२ ॥ तस्य त्वाधावमानस्य दीप्यमानस्य तेजसा ॥ बभूव रूपं दुर्धर्षं दीप्तस्येव विभावसोः ॥ १३ ॥

देख बहुतसे देवता इकट्ठे हो निष्कुंभके चारों तरफ सहायता करने लगे ॥ ८ ॥ तब उस निष्कुंभको देवताओंमें श्रेष्ठ स्थित देख उसके अस्त्रबलके तेजसे सब देवते बलवाले होने लगे ॥ ९ ॥ तब पर्वतके समान स्थित हुए निष्कुंभको वृषपर्वा देख बाणोंकी वर्षा इस प्रकार करने लगा जिस तरह पर्वतपर जलधारा गिरती हो ॥ १० ॥ तब शरीरमें लगते हुए बाणोंको विचारकर सेनाके मुखमें स्थित हुआ महाबली निष्कुंभ ॥ ११ ॥ महातेजस्वी हँसकर पृथ्वीको कँपाता हुआ वेगसे वृषपर्वाकी ओर दौडने लगा ॥ १२ ॥ उस तेजसे दीप्तिमान् दौडते हुए निष्कुंभका रूप प्रकाशमान अग्निकी समान

प्रकाशित हुआ ॥ १३ ॥ उस महातेजस्वीने रथको त्याग क्रोधको प्राप्त हो बडी शाखावाले और बहुत ऊंचे वृक्षको उखाडकर ॥ १४ ॥ वृषपर्वाकी ओर फेंका, दानवने तिस वृक्षको एकही हाथसे ग्रहण कर ॥ १५ ॥ बहुतसा शब्द कर उसे भ्रमाके वृषपर्वाके हाथी पीलवान रथ और रथमें बैठनेवाले ॥ १६ ॥ देवताओंको दानवने मारा; उस प्राणोंके हरनेवाले क्रोधी धर्मराजके समान ॥ १७ ॥ वृषपर्वाको प्राप्त हो सब देवते भागने लगे, और देवतोंको भय देनेवाले वृषपर्वाको आते हुए ॥ १८ ॥ देखकर धनुषधारी निष्कुंभ शब्द करने लगा; और क्रोधको प्राप्त हो मर्मको भेदन करनेवाले पैने तीक्ष्ण

रथं त्यक्त्वा महातेजाः सक्रोधः समपद्यत ॥ वृक्षमुत्पाटयामास महातालं महोच्छ्रयम् ॥ १४ ॥ ततश्चिक्षेप तं वृक्षं निष्कुम्भो वृषपर्वणः ॥ तं गृहीत्वा महावृक्षं पाणिनैकेन दानवः ॥ १५ ॥ विनद्य सुमहानादं भ्रामयित्वा च वीर्यवान् ॥ सगजान्सगजारोहा सरथान्रथिनस्तथा ॥ १६ ॥ जघान दानवस्तेन शाखिना त्रिदशांस्तदा ॥ तमन्तकमिव क्रुद्धं समरे प्राणहारिणम् ॥ १७ ॥ वृषपर्वाणमासाद्य त्रिदशा विप्रदुद्रुवुः ॥ तमापतन्तं संक्रुद्धं त्रिदशानां भयावहम् ॥ १८ ॥ आलोक्य धन्वी निष्कुम्भश्चुक्रोध च ननाद च ॥ स तत्र निशितैर्बाणैस्तीक्ष्णैर्मर्मभेदिभिः ॥ १९ ॥ निर्बिभेद महावीर्यो निष्कुम्भो दानवाधिपः ॥ शरशक्तिभिरुग्राभिर्दैत्यानामाधिपं प्रभुम् ॥ २० ॥ विद्धः समरमध्यस्थो रुधिरं प्रास्रवद्बहु ॥ उद्विग्ना मुक्तकेशास्ते भग्नदर्पाः पराजिताः ॥ २१ ॥ श्वसन्तो दुद्रुवुः सर्वे भयाद्वै वृषपर्वणः ॥ अन्योन्यं प्रममन्थुस्ते त्रासिता वृषपर्वणा ॥ २२ ॥ पृष्ठवक्त्राः सुसंविग्नाः प्रेक्षमाणा मुहुर्मुहुः ॥ त्यक्तप्रहरणाः सर्वे कृतास्ते वृषपर्वणा ॥ २३ ॥ संग्रामे युद्धशौण्डेन तदा निष्कुम्भसैनिकाः ॥ तत्रैव तु महावीर्यः प्रह्लादः कालमाहवे ॥ २४ ॥

बाणोंसे ॥ १९ ॥ वृषपर्वा महाबली दानवपतिको निष्कुंभने विद्ध किया और उग्र शर शक्तिसे दैत्योंके अधिपतिको विद्ध किया ॥ २० ॥ तब पीडित हुआ निष्कुंभ युद्धमें शरीरसे बहुतसा रुधिर बहाने लगा; वे उद्विग्न और छूटे बालोंवाले गर्वसे रहित और पराजित ॥ २१ ॥ श्वासको लेते हुए देवते वृषपर्वा दैत्यके भयसे भागने लगे, और वृषपर्वासे दुःखित किये देवते आपसमें विलोडन करने लगे ॥ २२ ॥ दुःखमे मूढ हुए पीछेको वारंवार देखने लगे ऐसे युद्धमें वृषपर्वाने सब देवतोंके शस्त्र गिरा दिये ॥ २३ ॥ उसी काल संग्रामयुद्धमें निष्कुंभके सैनिक स्थित हुए, उसी समय और महावीर्यवान् ॥ २४ ॥

॥१३९॥

हिरण्यकशिपुका पुत्र प्रह्लाद लाल नेत्र किये युद्ध करने लगा और उस दानव वीर प्रह्लादके हाथसे युद्धकालमें जय प्राप्त किया ॥ २५ ॥ शुक्राचार्य जयको देनेवाली क्रिया बहुत शीघ्रतासे करने लगे, और अग्निमें हवन करनेसे और ब्राह्मणोंको नमस्कार करनेसे ॥ २६ ॥ उस समय अग्निके गंधको वहनेवाली सुंदर पवन चलने लगी, जयके अर्थ अभिमंत्रित कर अनेक प्रकारकी मालाओंको ॥ २७ ॥ स्वयं शुक्राचार्यने प्रह्लादके शुभ शिरपर बांधी; उस महात्माके युद्धके समय ॥ २८ ॥ अतिवीर्यवाले प्रह्लादके निमित्त शुक्राचार्य शांतिकर्म करने लगे; अर्थात् शुक्राचार्यके दश हजार शिष्य महात्मा

योधयामास रक्ताक्षो हिरण्यकशिपोः सुतः ॥ तस्य दानववीरस्य युद्धकाले जयक्रियाः ॥ २५ ॥ चकार त्वरया युक्तो भार्गवो विजयावहाः ॥ हुताशनं तर्पयतो ब्राह्मणांश्च नमस्यतः ॥ २६ ॥ आज्यगन्धप्रतिवहो मारुतः सुरभिर्ववौ ॥ स्रजश्च विविधाश्चित्रा जयार्थमभिमन्त्रिताः ॥ २७ ॥ प्रह्लादस्य शुभे मूर्धन्याबबन्धोशना स्वयम् ॥ कालेन सह संग्रामे प्रयुद्धस्य महात्मनः ॥ २८ ॥ प्रह्लादस्यातिवीर्यस्य शान्तिं चक्रे स भार्गवः ॥ दश शिष्यसहस्राणि भार्गवस्य महात्मनः ॥ २९ ॥ यानि दानववीराणां जेपुः शान्तिमनुत्तमाम् ॥ अथर्वाणमथो दिव्यं ब्रह्मसंस्तवचोदितम् ॥ ३० ॥ रणप्रवेशसदृशं कर्म वैजयिकं कृतम् ॥ ततः सर्वास्त्रविदुषः समरेष्वनिवर्तिनः ॥ ३१ ॥ विद्यया तपसा युक्ताः कृतस्वस्त्ययनक्रियाः ॥ धनुर्हस्ताः कवचिनो वेगेनाप्लुत्य दानवाः ॥ बलिमभ्यर्च्य राजानं प्रह्लादं पर्यवारयन् ॥ ३२ ॥ आस्थाय परमं दिव्यं रथं पररथारुजम् ॥ नानाप्रहरणाकीर्णं सवज्रमिव पर्वतम् ॥ ३३ ॥

दानव वीरकी ॥ २९ ॥ दैत्योंकी जयके अर्थ शांतिकर्म जाप करने लगे; दिव्य और ब्रह्माकी स्तुतिसे प्रेरित अथर्ववेदके मंत्रसे ॥ ३० ॥ विजयका देनेवाला रणप्रवेशकी समान वेदकी रीतिसे कर्म करवाता था, तब सब अस्त्रोंको जाननेवाले और युद्धसे नहीं भागनेवाले ॥ ३१ ॥ विद्यावृत्तिसे युक्त; और कल्याणरूप कर्मोंसे युक्त स्वस्तिवाचन किये और धनुषोंको हाथोंमें धारण करनेवाले और कवचोंको पहने हुए सब दैत्य बलि राजाकी पूजा कर प्रह्लादके चारों ओर स्थित हुए ॥ ३२ ॥ तब दिव्य और शत्रुके रथको भय देनेवाले नानाप्रकारके शस्त्रोंसे आकीर्ण वज्रसहित पवनकी समान रथमें

स्थित हुए ॥ ३३ ॥ तब एक मुहूर्तमें सेनाका कोलाहल होने लगा; जैसे मेघके आगममें मेरुके शिखरपर बिजली प्रकाशित होती है ॥ ३४ ॥ तब अनेक प्रकारकी सेना प्रकाशित होने लगी; तब कमलके फूलोंकी मालाओंसे विभूषित दैत्य युद्ध करनेके अर्थ अपने २ भ्राताओंसे मिलकर तैयार होते रणमें आये कारण कि ये रणप्रिय थे ॥ ३५ ॥ और बडे २ शस्त्रोंके धारण करनेवाला श्रीमान् सुन्दर कवचको धारण करनेवाला; झिलम टोप पहने धनुषको हाथमें लिये परमदुर्जय ॥ ३६ ॥ सेनासे संयुक्त और रथोंके बाजेसहित सहस्रों दैत्य उसके आगे चलने लगे ॥ ३७ ॥ उसके परम दुर्जय रथ

तद्बभूव मुहूर्तेन क्ष्वेडितास्फोटिताकुलम् ॥ मेरोः शिखरमाकीर्णं द्यौरिवाम्बुधरागमे ॥३४॥ स्रजः पद्मपलाशानामामुच्य सुविभूषिताः ॥
बान्धवान्संपरित्यज्य निपतन्ति रणप्रियाः ॥ ३५ ॥ महायुधधरः श्रीमाञ्छुभचर्मधरः प्रभुः ॥ शिरस्त्राणतनुत्राणी धन्वी परमदु-
र्जयः ॥ ३६ ॥ सिंहशार्दूलदर्पाणां गदतां किङ्किणीकिनाम् ॥ तस्य दैत्यसहस्राणि प्रयान्त्यग्रे महारणे ॥ ३७ ॥ सैन्यपक्षहतास्तस्य
रथाः परमदुर्जयाः ॥ सप्ततिर्वै सहस्राणि गजास्तावन्त एव च ॥ ३८ ॥ मध्ये व्यूहोदरस्थस्तु कालनेमिर्महासुरः ॥ धनुर्विस्फारया-
मास ननाद प्रजहास च ॥ ३९ ॥ तस्मिन् शतसहस्राणि पुरो यान्ति महाद्युतेः ॥ दानवानां बलवतां शक्रप्रतिमतेजसाम् ॥ ४० ॥
स समं वर्तमानस्तु पक्षाभ्यां विस्तृतो महान् ॥ अभवद्दानवव्यूहो दुर्भेद्यः सर्वदेवतैः ॥४१॥ षष्टी रथसहस्राणि दानवानां धनुर्भृताम् ॥
नानाप्रहरणानां च परिमाणं न विद्यते ॥ ४२ ॥ गदापरिघनिस्त्रिंशैः शूलमुद्गरपट्टिशैः ॥ प्रगृहीतैर्व्यराजन्त दानवाः पर्वतोपमाः ॥ ४३ ॥

शत्रुकी सेनाको मारने लगे; और सत्तर सहस्र रथ और सत्तर सहस्र हाथीके ॥ ३८ ॥ मध्यमें स्थित धनुषको कँपाता हुआ कालनेमि दैत्य शब्द करने और हँसने लगा ॥ ३९ ॥ उस महाद्युतिमान्के आगे इन्द्रकी समान बली सैकडों दानव चलने लगे ॥ ४० ॥ यह पक्षोंसे महावि-स्तारको प्राप्त हो एकसाथ वर्तमान होता हुआ दानवोंका व्यूह सब देवतोंको दुर्भेद्य हो गया ॥ ४१ ॥ साठ सहस्र रथी संग्राममें नहीं लौटनेवाले धनुष-धारी दैत्योंका परिमाण नहीं था ॥ ४२ ॥ गदा, परिघ, निस्त्रिंश, शूल, पट्टिश, मुद्गरोंको ग्रहण किये दैत्य पर्वतकी समान शोभित होने लगे ॥ ४३ ॥

शब्द करते हुए पुकारते हुए और महावीर्यवाले दैत्य युद्ध करने लगे ॥ ४४ ॥ सहस्रों प्रकारके बाजे बजने लगे; अतिवेगवाले घोडे और हाथियोंके गर्जनेसे ॥४५ ॥ और नकारोंके बजनेसे आकाशके गर्जनेके समान शब्द होने लगा; और नक्कारे भेरी आदिके शब्द सुनाई देने लगे ॥ ४६ ॥ उस शंख और भेरी तूर्यके शब्द तथा रथोंके शब्दोंसे आकाश शब्दित होने लगा ॥ ४७ ॥ सागरके समान सेनासे परिवृत और कालके समान प्रह्लाद युद्ध करने लगा ॥ ४८ ॥ तब महापराक्रमी प्रह्लादके घोर शब्द करके प्राणी और त्रिलोकी विकृत स्वरसे हाहाकार करने लगे ॥ ४९ ॥

गर्जन्तो विनदन्तश्च विक्रोशन्तः पुनः पुनः ॥ अयुध्यन्त महावीर्याः समरेष्वनिवर्तिनः ॥४४॥ तत्र तूर्यसहस्राणि भेरीशङ्खरवाणि च ॥ हयानां च गजानां च गर्जतामतिवेगिनाम् ॥ ४५ ॥ दुन्दुभीनां च निर्घोषः पर्जन्यनिनदोपमः ॥ शुश्रुवे शङ्खशब्दश्च पटहानां च निःस्वनः ॥४६॥ तेन शंखनिनादेन भेरीतूर्यरवेण च ॥ निर्घोषेण रथानां च क्रोशतीव नभस्तलम् ॥ ४७ ॥ सागरप्रतिमोघेन बलेन महता वृतः ॥ प्रह्लादोऽयुद्ध्यत रणे कालान्तकयमोपमः ॥ ४८ ॥ तस्य नादेन रौद्रेण घोरेणाप्रतिमौजसः ॥ विनेदुः सर्वभूतानि त्रैलोक्यविकृतैः स्वनैः ॥ ४९ ॥ अन्तरिक्षात्परं त्यक्त्वा वायुश्च परुषो ववौ ॥ वमन्त्यः पावकं घोरं शिवाश्चैव ववासिरे ॥ ५० ॥ प्रह्लादस्तु महावीर्यः प्रहसन्युद्धदुर्मदः ॥ उवाच वचनं श्रीमांस्तत्कालक्षममुत्तमम् ॥ ५१ ॥ अद्याहं दर्शयिष्यामि स्वबाहुबलमूर्जितम् ॥ अद्य मद्बाणनिहतान्देवान्द्रक्ष्यथ संयुगे ॥ ५२ ॥ बान्धवा निहता येषां त्रिदशैरिह संयुगे ॥ अद्य निर्वर्तयिष्यन्ति शत्रुमांसानि दानवाः ॥ ५३ ॥

आकाशसे उल्का गिरने लगीं, कठिन वायु चलने लगा, अग्निको प्रगट करती हुई शिवाभी प्रकाशित होने लगी ॥ ५० ॥ तब महावीर्यवान् दुर्मद श्रीमान् प्रह्लाद हँसकर उस कालके योग्य उत्तम वचन कहने लगा ॥ ५१ ॥ अब मैं अपनी बाहुके बलको दिखाऊंगा; हे दैत्यो ! अब मेरे बाणोंसे मरे हुए देवताओंको तुम देखोगे ॥ ५२ ॥ जिन दैत्योंके बांधव देवतोंने मारे हैं अब उन शत्रुओंके मांसोंको वह दैत्य खावेंगे ॥ ५३ ॥

इस युद्धमें जो यह उठी हुई धूलि, उसको शत्रुओंके लोहूके छिडकनेसे शांत करूंगा ॥ ५४ ॥ अंधेराके समूहसे हत हुए सूर्य; और सेनाकी धूलिसे लोहित हुए आकाशमें पटवीजनेके समान मेरे बाण गिरेंगे ॥ ५५ ॥ और हे दैत्यो ! अब तुम सब प्रसन्न होकर देवताओंसे भयको त्यागो, और अब मैं कालरूपी इन्द्रको अपने धनुषसे मारूंगा ॥ ५६ ॥ और उग्रबाणोंकरके सब देवताओंको युद्धमें जीतूंगा ॥ ५७ ॥ क्योंकि मेरे पास तूण और सर्पोंके समान बाण अक्षयरूप हैं और मेरे अगाडी युद्धमें जीनेकी इच्छावाले कौन ठहरनेको समर्थ हैं ॥ ५८ ॥ शत्रुओंके समूहको मारकर

इममद्य समुद्भूतं रेणुं समरमूर्द्धनि ॥ अहं तु शमयिष्यामि शत्रुशोणितविस्रवैः ॥ ५४ ॥ तिमिरौघहतार्कं तु सैन्यरेणवरुणीकृतम् ॥ आकाशं संपतिष्यन्ति खद्योता इव मे शराः ॥ ५५ ॥ हृष्टाः संपरिमोदध्वं देवेभ्यस्त्यज्यतां भयम् ॥ अद्याहं निहनिष्यामि कालेन्द्रं धनुषा रणे ॥ ५६ ॥ तोषयिष्यामि राजानं बलिं बलवतां रणे ॥ त्रिदशान्त्सगणान्हत्वा रणे चान्तकमन्तिकात् ॥ ५७ ॥ अक्षयाः सन्ति मे तूणाः शराश्चाशीविषोपमाः ॥ स्थातुं मे पुरतः शक्ताः के रणे जीवितेप्सवः ॥ ५८ ॥ हत्वा रिपुगणांस्तुष्टिरनुरागश्च राजसु ॥ हतस्य त्रिदिवे वासो नास्ति युद्धसमा गतिः ॥ ५९ ॥ तद्भयं पृष्ठतः कृत्वा रणे दानवसत्तमाः ॥ निहत्येमानरीन्त्सर्वान्मोदध्वं नन्दने वने ॥ ६० ॥ एवमुक्त्वा महत्सैन्यं प्रह्लादो दानवोत्तमः ॥ कालसैन्यं महारौद्रं तरसामर्दतासुरः ॥ ६१ ॥ सर्वास्त्रविद्वान्वीरश्च नित्यं चाप्यपराजितः ॥ युद्धे ह्यभिमुखो नित्यं स्वबाहुबलदर्पितः ॥ ६२ ॥ षष्टिं रथसहस्राणि विविधायुधधारिणाम् ॥ प्रह्लादस्यातिवीर्यस्य ते तस्य तनया निजाः ॥ ६३ ॥

राजाकी प्रसन्नता करूंगा और युद्धमें मरे हुओंका स्वर्गलोकमें वास होता है इस कारण युद्धके समान उत्तम गति नहीं है ॥ ५९ ॥ इस कारण सब दैत्य भयको छोडकर शत्रुओंको मारकर नंदनवनमें आनंद करो ॥ ६० ॥ ऐसे दानवश्रेष्ठ प्रह्लाद दैत्य अपनी सेनासे कहकर वेगसे कालकी महारौद्र सेनाको मर्दित करने लगा ॥ ६१ ॥ सब अस्त्रोंको जाननेवाला शूर नित्य अपराजित युद्धमें सन्मुख रहनेवाला और अपनी बाहुके बलसे गर्वित ॥ ६२ ॥ प्रह्लादके युद्धमें सन्मुख खडे होनेमें नानाप्रकारके शस्त्रोंको धारण करनेवाले दैत्योंके साठ सहस्र रथ स्थित हुए और बहुवसे प्रह्लादके पुत्र स्थित हुए ॥ ६३ ॥

नानाप्रकारके यज्ञोंके करनेसे क्षमावाले और धर्म करनेवाले और नित्यप्रति व्रतोंमें परायण ॥ ६४ ॥ दाता और प्रिय वचनको कहनेवाले और शास्त्रोंको जाननेवाले अपनी स्त्रियोंमें रत और इन्द्रियोंको जीतनेवाले दाता ब्राह्मणभक्त, सत्य बोलनेवाले ॥ ६५ ॥ नित्यप्रति यज्ञ करनेवाले बाण और अस्त्र-विद्यामें चतुर बहुतसे पराक्रमवाले दृढ विक्रमी ॥ ६६ ॥ और मदवाले हाथीकी समान चलनेवाले और शत्रुकी सेनाको मर्दन करनेवाले, अपने चरणोंसे वृक्षोंको विदीर्ण करनेवाले ॥ ६७ ॥ युद्ध करनेकी इच्छावाले क्रोधसे रंजित नेत्रोंवाले और अपने २ ओष्ठके पुटोंको दशनेवाले; अपनी २

तेस्तु क्रतुशतैरिष्टं विपुलैराप्तदक्षिणैः ॥ क्षान्ता धर्मपरा नित्यं सत्यव्रतपरायणाः ॥६४॥ दातारः प्रियवक्तारो वक्तारः शास्त्रवस्तुषु ॥ स्वदारनिरता दान्ता ब्रह्मण्याः सत्यसङ्गराः ॥ ६५ ॥ यष्टारः क्रतुभिर्नित्यं नित्यं चाध्ययने रताः ॥ इष्वस्त्रकुशलाः सर्वे बहुशो दृढविक्रमाः ॥६६॥ मत्तवारणविक्रान्ताः शत्रुसैन्यप्रमर्दकाः ॥ दारयन्तः पदाक्षेपैः सुघोरान्वातरेचकान् ॥६७॥ युद्धोत्सुकधिया नित्यं क्रोधरञ्जितलोचनाः ॥ संदष्टोष्ठपुटा दैत्या विनेदुर्भीमविक्रमाः ॥ क्ष्वेडितास्फोटितरवैरन्योन्यं समहर्षयन् ॥ ६८ ॥ वेणुशंखरवैश्चैव सिंहनादैश्च पुष्कलैः ॥ आप्लुत्याप्लुत्य सहसा रणे वव्रुरनेकशः ॥६९॥ तालमात्राणि चापानि विकृष्य सुमहाबलाः ॥ अमृष्यमाणाः सहसा दानवाश्चापपाणयः ॥७०॥ सुरासुरैरप्यजितं योधयन्ति रणेऽन्तकम् ॥ प्रतप्तहेमाभरणाः सर्वे ते श्वेतवाससः ॥ ७१॥ दानवा मानिनः सर्वे सर्वे स्वर्गाभिकांक्षिणः ॥ सर्वे जयैषिणो वीराः सर्वे शत्रुवधोद्यताः ॥ ७२ ॥

भुजाओंको बजाकर परस्पर प्रसन्न होनेवाले महापराक्रमी दैत्य शब्द करने लगे ॥ ६८ ॥ शंख वेणु आदि अनेक प्रकारके शब्दों और बडे २ सिंहनादोंको करके कूद २ दो युद्धमें प्राप्त हो गर्जने लगे ॥ ६९ ॥ और कितनेक दैत्य ताडवृक्षके समान लम्बे २ धनुषोंको खैंचने लगे; और कितनेक धनुषबाणोंको हाथमें लिये असहनशील ॥ ७० ॥ सुरअसुरोंसे अजित कालसे युद्ध करनेमें प्रवृत्त हुए; और तपाये हुए सोनेके गहनोंको धारण किये वे सब सफेद वस्त्रोंको धारण किये ॥ ७१ ॥ अभिमानी और स्वर्गकी इच्छा और जयकी इच्छा करनेवाले शत्रुओंके मारनेमें पुरुषार्थ करने-

वाले कालसे युद्ध करने लगे ॥ ७२ ॥ तब पताका ध्वजा मालासे संयुक्त हाथी घोडे रथोंसे पूर्ण और स्वर्गके मार्गकी इच्छा करनेवाली गर्वित दैत्योंकी सेना शोभायमान हुई ॥ ७३ ॥ तब भीमपराक्रमी बहुत शब्द करता हुआ बडे शरीरवाला और बहुतसी व्याधियोंसे युक्त काल चला ॥ ७४ ॥ उसने बलवान् गर्वसे पूर्ण सन्मुख गर्जनेवाले दैत्योंकी बडी सेनाको देखा ॥ ७५ ॥ और तिस दैत्योंकी वेगवान् सेनाको आती हुई देख व्याधियोंके सहित कालने प्रतिलोम प्रकारसे घेर लिया ॥ ७६ ॥ तब दैत्योंकी सेनामें प्रवेश कर लोहूके समान लाल नेत्र किये अपनी सेनासे युक्त कालने दैत्योंकी

शुशुभे सा चमूर्दीप्ता पताकाध्वजमालिनी ॥ गजाश्वरथसंबाधा स्वर्गमार्गाभिकांक्षिणी ॥ ७३ ॥ ततः कालः सुनिर्यातो भीमो भीमपराक्रमः ॥ निनदन्सुमहाकायो व्याधिभिर्बहुभिर्वृतः ॥ ७४ ॥ ददर्श महतीं सेनां दानवानां बलीयसाम् ॥ अभिसंजातदर्पाणां कालं समभिगर्जताम् ॥ ७५ ॥ तदायान्तं तदानीकं दानवानां तरस्विनाम् ॥ प्रतिलोमं चकाराशु व्याधिभिः सहितोऽन्तकः ॥ ७६ ॥ प्रविश्य ध्वजिनीं चैषां पातयामास दानवान् ॥ कालो रुधिररक्ताक्षः स्वेनानीकेन संवृतः ॥ ७७ ॥ प्रह्लादबलमत्युग्रं प्रह्लादं च महाबलम् ॥ आजघान रणे कालो दण्डमुद्गरपट्टिशैः ॥ ७८ ॥ शरशक्त्यृष्टिखड्गांश्च शूलानि मुशलानि च ॥ गदाश्च परिघाश्चैव विचित्राश्च परश्वधाः ॥ ७९ ॥ धनूंषि च विचित्राणि शतघ्नीश्च स्थिरायसीः ॥ पात्यन्ते व्याधिभिर्युद्धे दानवानां चमूमुखे ॥ ८० ॥ बहवो व्याधयो युद्धे बहूनसुरपुङ्गवान् ॥ व्याधीनपि च दैत्यौघा निजघ्नुर्बहवो बहून् ॥ ८१ ॥

सेनाका नाश किया ॥ ७७ ॥ और सेनाको आनंद देनेवाले प्रह्लाद दैत्यको दंड मुद्गर पट्टिशसे मारने लगा ॥ ७८ ॥ शर शक्ति ऋष्टि तलवार शूल मुशल गदा परिघ विचित्र फरसा ॥ ७९ ॥ धनुष विचित्र लोहेकी बनी शतघ्नियोंसे सब व्याधियें दैत्योंकी सेनाको मारने लगीं बहुतसी व्याधी युद्धमें दैत्योंको मारने लगीं और बहुतसे दैत्यभी बहुतसी व्याधियोंको मारने लगे ॥ ८० ॥ कोई शूलसे और कोई कोई फरसोंसे और परमायुध ॥ ८१ ॥

परिघसे, कोई तलवारसे कटे हुए तडफते पृथ्वीमें गिरे ॥ ८२ ॥ इस प्रकार व्याधियोंने दानवोंको अनेक अस्त्रोंसे विदीर्ण किया; और वेभी अनेक आयुधोंसे व्याधियोंको मारने लगे, वे दैत्य उत्तम आयुधवाली व्याधियोंसे ॥ ८३ ॥ खड्ग मुशल तीक्ष्ण प्रास तोमर मुद्गरोंसे जर्जरित हो फरसोंसे कट पृथ्वीमें गिरने लगे ॥ ८४ ॥ कितनेक मुद्गरोंसे आर कितनेक पट्टिशोंसे कटे हुए, कितनेक शस्त्रोंसे कटे हुए और कितनेक मुक्कोंसे मथित हुए ॥ ८५ ॥ और कितनेक दैत्य नेत्रोंसे रहित हुए लोहूकी धार मुखसे वहाने लगे; तब कितनेक आर्त शब्द करने लगे; कितनेक सिंहकी समान गर्जने लगे ॥ ८६ ॥

शूलैः प्रमथिताः केचित्केचिच्छिन्नाः परश्वधैः ॥ परिघैराहताः केचित्केचिच्च परमायुधैः ॥ केचिद्द्विधा कृताः खड्गैः स्फुरन्तः पतिता भुवि ॥ ८२ ॥ व्याधयो दानवैरेव नानाशस्त्रैर्विदारिताः ॥ ते चापि व्याधिभिः सर्वे विविधैरायुधोत्तमैः ॥ ८३ ॥ खड्गैश्च मुशलैस्तीक्ष्णैः प्रासतोमरमुद्गरैः ॥ भिन्नाश्च दानवाः सर्वे निकृत्ताश्च परश्वधैः ॥ ८४ ॥ मुद्गरैः पट्टिशैश्चैव व्याधिभिश्च महाबलैः ॥ कृत्त्वा शस्त्रैरनेकैश्च मुष्टिभिश्च हता भृशम् ॥ ८५ ॥ वेमुः शोणितमन्योन्यं विष्टब्धदशनेक्षणाः ॥ आर्तस्वरं च नदतां सिंहनादं च गर्ज्जताम् ॥ ८६ ॥ बभूव तुमुलः शब्दः संग्रामे लोमहर्षणे ॥ मुष्टिभिश्चोत्तमाङ्गानि तलैर्गात्राणि चासकृत् ॥ ८७ ॥ सादितानि महीं जग्मुस्तिष्ठतामेव संयुगे ॥ अस्रफेना ध्वजावर्त्ता च्छिन्नबाहुमहोरगा ॥ ८८ ॥ शूलशक्तिमहामत्स्या चापग्राहसमाकुला ॥ रथोपलसंबन्धा ध्वजद्रुमलतावृता ॥ ८९ ॥ सशब्दघोरविस्तारा लोहितोदा भवन्नदी ॥ स्वधनुःशक्रधनुषौ काञ्चनाङ्गदविद्युतौ ॥ ९० ॥ तौ दैत्यकालजलदौ शरधारां व्यमुञ्चताम् ॥ तौ महामेघसंकाशौ रथनागगतौ तदा ॥ ९१ ॥

उनको युद्धमें लोमहर्षण उग्रशब्द होने लगा; कितनेक मुक्कोंकी मारसे शिरहीन हो पृथ्वीतलमें गिरे ॥ ८७ ॥ तब आस्नरूपी झागोंवाली और ध्वजारूप भँवरवाली कटे हुए बाहुरूप सर्पोंवाली ॥ ८८ ॥ शूल शक्तिरूप महामच्छोंवाली, धनुषरूप ग्राहोंसे संयुक्त रथरूपी पत्थरोंसे संयुक्त ध्वजारूप वृक्षोंसे पूर्ण भूमि हो गई ॥ ८९ ॥ अपने कांचनांगद बिजलीकी समान तथा शक्रधनुषकी समान दोनों धनुषोंको ॥ ९० ॥ धारण कर काल और

प्रह्लाद बाणोंकी वर्षा करने लगे; वे दोनों महामेघकी समान रथ और हाथीपर चढे ॥ ९१ ॥ जलभरे बादलकी समान क्रुद्ध हुए तप्तसुवर्णके बने बख्तर दिव्यहारसे भूषित ॥ ९२ ॥ सूर्य और वैश्वानर अग्निकी समान शोभित हुए वे दोनों महाबली सेनामें एक दूसरेको ॥ ९३ ॥ वज्रके समान बाणोंसे काटने लगे; परस्परके सम्मर्दसे वह युद्ध दारुण हो गया ॥ ९४ ॥ तब दोनोंके युद्धमें योधाओंकेभी यह निश्चय हुआ कि अब जीना कठिन है तब कितनेक बाणोंसे कटे हुए सब अंगोंवाले और कितनेक प्राणोंसे रहित; और कितनेक लोहूसे भीगी हुई छातीवाले योधा पृथ्वीमें गिरने लगे ॥ ९५ ॥

बभूवतुरभिक्रुद्धौ साम्बुगर्भाविवाम्बुदौ ॥ तप्तकाञ्चनसन्नाहौ दिव्यहारविभूषितौ ॥ ९२ ॥ तौ विरेजतुरायत्तौ सूर्यवैश्वानरोपमौ ॥ तौ महाबलसंकाशावन्योन्यस्य चमूमुखे ॥ ९३ ॥ शक्राशनिसमस्पर्शैर्बाणैर्जघ्नतुराहवे ॥ परस्परं समाघ्नन्त तयोर्युधि दुरासदम् ॥९४॥ नाशंसन्त तदा योधा जीवितान्यपि संयुगे ॥ शरैर्विभिन्नसर्वाङ्गा युधि प्रक्षीणबान्धवाः॥ निपेतुर्योधमुख्यास्तु रुधिरोक्षितवक्षसः॥९५॥ पतितैर्निष्पतद्भिश्च पात्यमानैश्च संयुगे॥ बभूव भूः समाकीर्णा योधैरुद्गतजीवितैः॥९६॥ अगृह्णन्त शरान्घोरांस्ते च संदधतोस्तयोः ॥ अन्तरं ददृशे कश्चित्प्रयतादपि संयुगे ॥९७॥ लघुत्वाच्च महाबाहू युद्धशौण्डौ महाबलौ ॥ मण्डलीभूतधनुषौ सकृदेव बभूवतुः॥९८॥ प्रह्लादस्य च बाणौघैर्दुद्रावान्तकवाहिनी ॥ उह्यमाना बलवता वायुनेवाभ्रमण्डलम् ॥ ९९ ॥ हतदर्पं तु विज्ञाय प्रह्लादः कालमाहवे ॥ अपयातं च समरे द्विषन्तं संप्रतर्क्य तम् ॥१००॥ मत्वा वशगतं चैव प्रह्लादो युद्धदुर्मदः ॥ तत्रैवान्यां चमूं भूयः संममर्द महासुरः ॥१॥

गिरने गिरानेवालोंके गिरने गिरानेसे उन प्राणरहितोंसे पृथ्वी समाकीर्ण हो गई ॥ ९६ ॥ कोईभी उस समय उन दोनोंका यह अन्तर नहीं देख सका; कि वे कब धनुष चढाते और बाण छोडते हैं ॥ ९७ ॥ शीघ्रतासे दोनों महाबाहु महाबलवाले मंडलाकार धनुषोंको धारण करे एकसेही दीखने लगे॥९८॥ प्रह्लादके बाणोंके समूहसे कालकी सेना कटती हुई भागने लगी जैसे वायुसे मेघसमूह भागते हैं ॥ ९९ ॥ तब प्रह्लादने कालको हतदर्प जानकर कि अब समरसे भागा चाहता है और द्वेषयुक्त है ऐसा उसको विचार कर ॥ १०० ॥ अपने वशमें जानकर युद्धमें दुर्मद प्रह्लाद धर्मराजकी सेनाको फिर

मर्दन करने लगा ॥ १ ॥ काल और प्रह्लादका परस्पर ऐसा युद्ध होने लगा कि न कभी पहले हुआ और न कभी अगाडी होगा ॥ २ ॥ अद्भुतवीर्यवाला महारणमें प्रहार करनेवाला प्रह्लाद वृद्धिको प्राप्त हुआ; और काल युद्धसे चला गया ॥ ३ ॥ इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे भविष्यपर्वणि भाषायां वामने देवासुरयुद्धे एकोनषष्टितमोऽध्यायः ॥ ५९ ॥ वैशम्पायन कहने लगे; प्रह्लादका छोटा भ्राता अनुह्लाद अपनी सेनाको ले यक्षोंकी सेनाको क्षोभित करता हुआ कुबेरके संग युद्ध करने लगा ॥ १ ॥ अर्थात् बहुतसी सेनाको ले अति प्रतापवाला धनाध्यक्ष कुबेरको पीडित करने लगा ॥ २ ॥ और शस्त्रोंको

कालप्रह्लादयोर्युद्धमभवद्यादृशं पुरा ॥ तादृशं सर्वलोकेषु न भूतं न भविष्यति ॥ २ ॥ एवमद्भुतवीर्यौजा महारणकृतव्रणः ॥ प्रह्लादस्त्वथ वृद्धोऽत्र कालस्त्वपसृतो रणात् ॥ १०२ ॥ इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे भविष्यपर्वणि कालप्रह्लादयुद्धे एकोनषष्टितमोऽध्यायः ॥ ५९ ॥ वैशम्पायन उवाच ॥ धनाध्यक्षमनुह्लादः प्रह्लादस्यानुजो बली ॥ ससैन्यं योधयामास क्षोभयन्यक्षवाहिनीम् ॥ १ ॥ महता च बलौघेन त्वनुह्लादोऽसुरोत्तमः ॥ अर्दयामास संक्रुद्धो धनाध्यक्षं प्रतापवान् ॥ २ ॥ अमृष्यमाणांस्त्रिदशानाहवस्थानुदायुधान ॥ चकार कदनं घोरं धनुष्पाणिर्महासुरः ॥ ३ ॥ आवर्त इव संजज्ञे बलस्य महतो महान् ॥ क्षुभितस्याम्भेवस्य सागरस्येव संप्लवः ॥ ४ ॥ त्रिदशानां शरीरैस्तु दानवानां च मेदिनी ॥ बभूव निचिता घोरैः पर्वतैरिव संप्लुवे ॥ ५ ॥ मेरुपृष्ठं तु रक्तेन रञ्जितं संप्रकाशते ॥ सर्वतो माधवे मासि पुष्पितैरिव किंशुकैः ॥ ६ ॥ हतैर्वीरैर्गजैरश्वैः प्रावर्तत महानदी ॥ शोणितोघा महाघोरा यमराष्ट्रविवर्द्धिनी ॥ ७ ॥ शकृन्मेदोमहापङ्का संप्रकीर्णान्त्रशैवला ॥ छिन्नकायशिरोमीना अङ्गावयवशाड्वला ॥ ८ ॥

धारण करनेवाले और युद्धमें स्थित देवताओंको नहीं सहता हुआ अनुह्लाद दैत्य धनुषको हाथमें लेकर देवताओंकी सेनाको काटने लगा ॥ ३ ॥ उस समय सेनाका बडा घमसान हुआ; जैसे प्रलयमें सागर क्षुभित हो जाता है ॥ ४ ॥ तब देवते और दैत्योंके शरीरोंसे पृथ्वी पर्वतोंकी समान व्याप्त हो गई ॥ ५ ॥ और मेरुपर्वतका पृष्ठभाग लोहूसे रंगा हुआ प्रकाशित होने लगा जैसे वैशाखमें टेसूके फूलोंसे चारों ओर प्रकाश होता है ॥ ६ ॥ तब मरेहुए वीर हाथी और घोडोंसे व्याप्त महाघोर यमराष्ट्रकी नदी प्रवृत्त हुई ॥ ७ ॥ विष्ठा और मेदरूप कीचवाली और आंतरूपी शैवालसे युक्त

छिन्नकायावाले शिररूप मछलियोंसे व्याप्त अंगके अवयवरूप शाड्वलसे पूर्ण ॥ ८ ॥ कंक सारस आदि पक्षियोंसे शब्दित वसारूप झागोंसे आकीर्ण और मेघोंके समान शब्द करनेवाली ॥ ९ ॥ कायर पुरुषोंको दुष्पार लोहूकी नदी गरमीके अवसानमें हंससमूहसे युक्त दीखने लगी ॥ १० ॥ उस नदीको दैत्य और देवते तिरने लगे, जैसे पद्मरजसे ध्वस्त हुई कमलिनीको हाथी तरते हैं ॥११॥ पीछे बाणोंको छोडनेवाले रथमें स्थित और यक्षोंकी सेनाको मारनेवाले अनुह्लादको देखकर ॥ १२ ॥ क्रोधको प्राप्त हो कुबेर दैत्योंकी सेनाको काटने लगा जैसे वायु आकाशसे मेघोंको भगाती है ॥ १३ ॥

गृध्रहंससमाकीर्णा केकिसारसनादिता ॥ वसाफेनसमाकीर्णा प्रोत्कृष्टस्तनितस्वरा ॥९॥ तां कापुरुषदुस्तारां युद्धभूमौ महानदीम् ॥ नदीमिवातपापाये हंससंघोपशोभिताम् ॥ १० ॥ त्रिदशा दानवाश्चैव तेरुस्ते दुस्तरां नदीम् ॥ यथा पद्मरजोध्वस्तां नलिनीं गजयूथपाः ॥ ११ ॥ ततः सृजन्तं बाणौघाननुह्लादं रथे स्थितम् ॥ ददर्श तरसा देवो निघ्नन्तं यक्षवाहिनीम् ॥ १२ ॥ क्रुद्धस्ततो दैत्यबलं सूदयामास वित्तपः ॥ विक्षिपन्निव खे वायुर्महाभ्रपटलं बलात् ॥ १३ ॥ समीक्ष्य तुमुलं युद्धमनुह्लादश्च वीर्यवान् ॥ रथेनादित्यवर्णेन कुबेरमभिदुद्रुवे ॥ १४ ॥ स धनुर्धन्विनां श्रेष्ठो विकृष्य रणमूर्धनि ॥ उत्ससर्ज शिताान्बाणान्वित्तेशस्य महात्मनः ॥१५॥ कुबेरं प्राप्य ते बाणा निर्भिद्य सुसमाहिताः ॥ अपरान्पृष्ठतो जघ्नुर्व्यासक्तान्यक्षराक्षसान् ॥ १६ ॥ देवः शरैरभिहतो निशितैर्ज्वलनोपमैः ॥ अनुह्लादं प्रत्युदियात्संक्रुद्धः परमाहवे ॥ १७ ॥ ततो वैश्रवणो राजा क्रुद्धो यक्षगणैः सह ॥ ववर्ष शरवर्षाणि दानवं प्रति वीर्यवान् ॥ १८ ॥ तद्यथा शारदं वर्षं गोवृषः शीघ्रमागतम् ॥ अपारयन्वारयितुं प्रतिगृह्णन्निमीलितः ॥ १९ ॥

तब तिस उग्र युद्धको देख अनुह्लाद दैत्य आदित्य वर्णवाले रथमें स्थित हो कुबेरके सन्मुख चला ॥ १४ ॥ धनुषविद्यावालोंमें श्रेष्ठ अनुह्लाद युद्धमें धनुष खैंचकर पैने २ बाणोंकी वर्षा महात्मा कुबेरके ऊपर करने लगा ॥ १५ ॥ तब वे बाण कुबेरको वेधकर पृष्ठभागमें स्थित हुए यक्षराक्षसोंकोभी मारने लगे ॥१६॥ अग्निके समान प्रकाशवाले और पैने बाणोंसे हत हुए कुबेरजी युद्धमें क्रोधको प्राप्त हो अनुह्लाद दैत्यके सन्मुख धावमान हुए ॥ १७॥ तब बहुतसी यक्षोंकी सेनासे युक्त अतिवीर्यवान् दानवपर कुबेर बाणोंकी वर्षा करने लगा ॥ १८॥ पीछे जैसे शरदृतुमें वर्षाकी बूंदोंको गाय और बैल

शिरपर सहते हैं तैसे वह अनुह्राद दैत्य बाणोंकी वर्षाको नेत्र मीच सहन करने लगा ॥ १९ ॥ इस प्रकार वह महाअसुर कुबेरकी दारुण बाणवर्षाको सहसा नेत्र मीचकर सहन करने लगा ॥ २० ॥ तब बाणोंकी वर्षासे क्रोधको प्राप्त हुआ अनुह्राद दैत्य अपने सन्मुख इन्द्रकी केतुके समान प्रकाशवान् ॥ २१ ॥ बडी हुई शाखाओंवाले फलोंसे युक्त वृक्षको देख उसी समय उखाड हाथमें ग्रहण कर ॥ २२ ॥ महात्मा कुबेरके अतिवेगवाले घोडोंको मारता हुआ; तब अनुह्रादके इस महत् कर्मको देखकर सब महाअसुर ॥ २३ ॥ सिंहोंके समान शब्द करने लगे, पीछे अनुह्राद और कुबे-

एवमेव कुबेरस्य शरवर्षं महासुरः ॥ निमीलिताक्षः सहसा दैत्यः संहति दारुणम् ॥२०॥ रोषितः शरवर्षेण धनदेन महासुरः ॥ इन्द्रकेतुप्रतीकाशमभितोऽपश्यत द्रुमम् ॥२१॥ प्रवृद्धशाखाविटपं तरुणाङ्कुरपल्लवम् ॥ उत्पाट्य कुपितो दैत्यस्तरुं फलसमन्वितम् ॥२२॥ निजघान हयाञ्छ्रेष्ठान्कुबेरस्य महात्मनः ॥ तस्य कर्म महाघोरं दृष्ट्वा सर्वे महासुराः ॥२३॥ सिंहनादं नदन्ति स्म अनुह्रादप्रहर्षिताः॥ तयोस्तु तुमुलं युद्धं संजज्ञे देवदैत्ययोः ॥ २४ ॥ ततस्तौ क्रोधरक्ताक्षावन्योन्यवधकाङ्क्षिणौ ॥ अन्योन्यं विविधैः शस्त्रैर्घोरैरजघ्नतुराहवे ॥ २५ ॥ त्रिदशा दानवान्सर्वे मथित्वा प्राणदंस्तदा ॥ दानवैस्त्रिदशाश्चापि क्रुद्धैर्भुवि निपातिताः ॥ २६ ॥ दानवास्त्वथ संक्रुद्धास्त्रिदशान्निशितैः शरैः ॥ विव्यधुर्वज्रसंकाशैः कङ्कपत्रैरजिह्मगैः ॥२७॥ विदार्यमाणा दैत्यौघैस्त्रिदशास्तु महाबलाः ॥ अमर्षिततराश्चक्रुर्युद्धकर्माण्यभीतवत् ॥२८॥ ते गदाभिः सुभीमाभिः पट्टिशैः शूलमुद्गरैः ॥ परिघैश्च सुतीक्ष्णाग्रैर्दानवाः पीडिताः शरैः॥२९॥

रका दारुण युद्ध परस्पर होने लगा ॥ २४ ॥ तब क्रोधसे लालनेत्रोंवाले परस्पर मारनेकी इच्छावाले दोनों नानाप्रकारके घोरशस्त्रोंसे युद्धमें काटने लगे ॥ २५ ॥ बलवाले देवताओंने बहुतसे दैत्य मार दिये; और क्रोधको प्राप्त हुए दैत्योंने बहुतसे देवते पृथ्वीतलमें गेर दिये ॥ २६ ॥ क्रोधको प्राप्त हुए दैत्य अग्निके समान प्रकाशवाले और कंकपक्षीकी पांखोंसे संयुक्त टेढे नहीं चलनेवाले पैने बाणोंसे देवतोंको बींधने लगे ॥ २७ ॥ तब दैत्योंके समूहसे कटते हुए देवता क्रोध कर भयसे रहित हो कर्म करने लगे ॥ २८ ॥ भयंकर गदा पट्टिश शूल मुद्गर तीक्ष्ण परिघ बाणोंसे दैत्योंको पीडा देने

लगे ॥ २९ ॥ बाणोंसे भिन्न शरीर छातीवाले शस्त्रोंसे पीडित हुए दैत्य पत्थर और वृक्षोंको ग्रहण कर ॥ ३० ॥ वारंवार वीर्यसे लाखों देवताओंको तर्जन कर सहस्रों लाखोंको मर्दन करने लगे ॥ ३१ ॥ तब बडे २ पत्थर और बडे २ वृक्षोंसे उनका घोर युद्ध होने लगा ॥ ३२ ॥ परिघ पट्टिश भिंदिपाल फरसोंसे कितनोंके शिर काटे गये; और कितनोंके शरीर काटे गये ॥ ३३ ॥ और कितनेक मरके लोहूसे भीगे हुए पृथ्वीमें गिरे, और कितनेक परस्पर भाजते हुए ॥ ३४ ॥ और कितनोंके हृदय कटते हुए; और कितनेक पैरोंके कट जानेसे पृथ्वीमें गिरे, कोई त्रिशूल लगनेसे प्राणरहित

शरनिर्भिन्नगात्राश्च खड्गविच्छिन्नवक्षसः ॥ जगृहुस्ते शिलाश्चैव द्रुमांश्चासुरसत्तमाः ॥ ३० ॥ ते भीमसंगा दितिजा नर्दमानाः पुनः पुनः॥ ममन्थुस्त्रिदशान्वीर्याच्छतशोऽथ सहस्रशः ॥३१॥ ततस्तु तुमुलं युद्धं तेषां समभिवर्त्तत ॥ शिलाभिर्विपुलाभिश्च शतशश्चैव पादपैः ॥ ३२ ॥ परिघैः पट्टिशैर्भल्लैर्भिण्डिपालैः परश्वधैः ॥ केचिन्निकृत्तशिरसाः केचिच्च विदलीकृताः ॥ ३३ ॥ केचिद्विनिहता भूमौ रुधिरार्द्राः सुरासुराः ॥ केचिद्रणाजिराद्भ्रष्टाः परस्परवधार्दिताः ॥ ३४ ॥ विभिन्नहृदयाः केचिच्छिन्नपादाश्च शेरते ॥ विदारितास्त्रिशूलैश्च केचित्तत्र गतासवः ॥ ३५ ॥ तत्सुभीमं महद्युद्धं देवदानवसंकुलम् ॥ बभूव तुमुलं युद्धं शिलापादपसंकुलम् ॥ ३६ ॥ धनुर्ज्यातन्त्रिमधुरं हिक्कातालसमन्वितम् ॥ आर्त्तस्तनितघोषाढ्यं युद्धं गान्धर्वमाबभौ ॥ ३७ ॥ कुबेरः स धनुष्पाणिर्दानवान् रणमूर्द्धनि ॥ दिशो विद्रावयामास संक्रुद्धः शरवृष्टिभिः ॥ ३८ ॥ कुबेरेणार्दितं सैन्यं विद्रुतं प्रेक्ष्य दानवः ॥ अभ्यद्रवदनुह्लादः प्रगृह्य महतीं शिलाम् ॥ ३९ ॥ क्रोधाद्द्विगुणरक्ताक्षः पितृतुल्यपराक्रमः ॥ शिलां तां पातयामास कुबेरस्य रथोत्तमे ॥ ४० ॥

हुए ॥ ३५ ॥ इस प्रकार देवता और दैत्योंका शिलावृक्षोंसे महाघोर युद्ध हुआ ॥ ३६ ॥ तन्त्रीकी समान शब्दायमान धनुषकी ज्या हिचकीरूपी ताल आर्तस्वरसे वह युद्ध गांधर्वकी समान शोभित हुआ ॥ ३७ ॥ तब कुबेर धनुषको धारण कर क्रोधको प्राप्त हो बाणोंकी वर्षासे दैत्योंको दिशाओंमें भगाने लगा ॥ ३८ ॥ तब कुबेरसे पीडित भागती हुई सेनाको देख अनुह्लाद एक बडी शिला ग्रहण कर ॥ ३९ ॥ क्रोधसे दुगुने लालनेत्र कर

और पिता हिरण्यकशिपुके समान पराक्रमीने उस शिलाको ग्रहण कर कुबेरके उत्तम रथपर फेंका ॥ ४० ॥ तब गदाको धारण करनेवाले कुबेर आती हुई शिलाको देख वेगसे रथसे कूद पृथ्वीमें प्राप्त हुए ॥ ४१ ॥ तब चक्र कूबर ध्वजा घोडे शरासन आदिसे संयुक्त रथको तोड वह शिला पृथ्वीमें गिरी ॥ ४२ ॥ इस प्रकार कुबेरके रथको तोड अनुह्राद दैत्य वृक्षोंसे देवताओंकी सेनाको मारने लगा ॥ ४३ ॥ तब कटे हुए शिरोंवाले लोहूसे भीजे हुए बहुतसे देवता पृथ्वीमें गिरे ॥ ४४ ॥ इस प्रकार देवताओंकी सेनाको काटकर पर्वतके बडे शृंगोंको ग्रहण कर अनुह्राद कुबेरके ऊपर

आपतन्तीं शिलां दृष्ट्वा गदापाणिर्धनाधिपः ॥ रथादाप्लुत्य वेगेन वसुधायां व्यतिष्ठत ॥ ४१ ॥ सचक्रकूबरहयं सध्वजं सशरासनम् ॥ भङ्क्त्वा रथोत्तमं तस्य निपपात शिला भुवि ॥ ४२ ॥ विमथ्य तु कुबेरस्य प्रह्लादस्यानुजो रथम् ॥ शूराणां कदनं चक्रे सस्कन्धविटपैर्द्रुमैः ॥ ४३ ॥ निर्भिन्नशिरसो भग्नास्त्रिदशाः शोणितोक्षिताः ॥ द्रुमप्रव्यथितांगाश्च निपेतुर्धरणीतले ॥ ४४ ॥ विद्राव्य विपुलं सैन्यमनुह्रादो महासुरः ॥ गिरिशृंगं गृहीत्वा तु कुबेरमभिदुद्रुवे ॥ ४५ ॥ तमापतन्तं धनदो गदामुद्यम्य वीर्यवान् ॥ विनदित्वाह्वयामास दानवेन्द्रं महाबलम् ॥ ४६ ॥ तस्य दैत्यस्य संक्रुद्धो गदां तां बहुकण्टकाम् ॥ न्यपातयत वित्तेशो दानवस्योरसि प्रभो ॥ ४७ ॥ दैत्यः संक्रोधताम्राक्षस्तं प्रहारमचिन्तयत् ॥ वित्तेशस्योपरि तदा गिरिशृङ्गमपातयत् ॥ ४८ ॥ स विह्वलितसर्वाङ्गो गिरिशृंगेण ताडितः ॥ पपात सहसा भूमौ विशीर्ण इव पर्वतः ॥४९॥ वित्तेशं विह्वलं दृष्ट्वा सर्वे ते यक्षराक्षसाः ॥ परिवार्य महात्मानं ररक्षुर्भीमविक्रमाः ॥५०॥ मुहूर्तं विह्वलो भूत्वा पुनर्विश्रवसः सुतः ॥ उपतस्थे च सहसा धनदः क्रोधमूर्च्छितः ॥५१॥

झपटा ॥ ४५ ॥ उस आते हुए दैत्योंको देख गदाको धारण कर कुबेरने उस दानवेन्द्रको बुलाया ॥ ४६ ॥ और क्रोधकर उस दैत्यकी बहुत कांटोंसे युक्त गदाको कुबेरने दानवके ऊपर प्रहार किया ॥४७॥ दैत्यने क्रोधकर उस प्रहारको न विचारकर कुबेरके ऊपर गिरि शृंगका प्रहार किया ॥ ४८ ॥ तब पर्वतके शृंगसे ताडित और विह्वल हो पीले नेत्रोंवाले कुबेर पृथ्वीमें गिरे जैसे छिन्न पर्वत ॥ ४९ ॥ तब विह्वलरूप कुबेरको देख सब यक्ष और राक्षस चारों तरफसे महात्माको घेर रक्षा करते हुए ॥ ५० ॥ दो घडीतक विह्वल रहकर विश्रवसके पुत्र वेगसे क्रोधकर उठे ॥ ५१ ॥

और त्रिलोकीको शब्दित करता हुआ 'कुबेर फिर शब्द करने लगा जिससे पर्वत कंपित होने लगे ॥ ५२ ॥ उस कुबेरके फिर उठनेसे और अपनी ओर आया देख अवध्यरूप जानकर दानव पलायन कर गये ॥ ५३ ॥ तिन भागते हुए दैत्योंसे अनुह्लाद कहने लगा कि दर्पयुक्त कालनेमि सुनेमि महानेमि दैत्योंको ॥ ५४ ॥ अपनेको अपने वीर्यको और अपने कुलको भूलकर भयसे प्राकृत मनुष्योंकी समान कहां भागे जाते हो ॥ ५५ ॥ हे महावीर्यो ! कहां गमन करते हो लौट आओ, क्या प्राणोंकी रक्षा करते हो, यह कुबेर युद्धके अर्थ समर्थ नहीं

स ननाद महानादं त्रैलोक्यमभिनादयन्॥ जनयन्निव निर्घोषं विधमन्निव पर्वतान् ॥५२॥ तमवध्यं तु विज्ञाय निहन्तुं पुनरुत्थितम् ॥ प्रेक्ष्य पिङ्गाक्षमायान्तं दानवा विप्रदुद्रुवुः ॥ ५३ ॥ तांस्तु विद्रवतो दृष्ट्वानुह्लादो ह्यसुरो ब्रवीत् ॥ कालनेमिं दानवं च वीर्यदर्पसमन्वितम् ॥ ५४ ॥ आत्मानं चैव वीर्यं च विस्मृत्याभिजनं तथा ॥ क्व गच्छथ भयत्रस्ताः प्राकृता इव दानवाः ॥ ५५ ॥ निवर्तध्वं महावीर्याः किं प्राणान् परिरक्षथ ॥ नालं युद्धाय यक्षोऽयं महतीयं विभीषिका ॥५६॥ एतां विभीषिकामद्य दानवानां समुत्थिताम् ॥ विक्रम्य विधमिष्यामि निवर्त्तध्वं महासुराः ॥ ५७ ॥ तेऽसुराः सन्निवृत्ताश्च समदा इव कुञ्जराः ॥ निजघ्नुः परमक्रुद्धा देवसैन्यं महासुराः ॥ ५८ ॥ क्षीणप्रहरणाः केचिन्महामेघनिभस्वनाः ॥ दर्पोत्कटा भुजैरेव संप्रहारं प्रचक्रिरे ॥ ५९ ॥ प्रांशुभिश्चैव काष्ठैश्च शिलाभिश्च महाबलाः ॥ बाहुभिश्च तथान्योन्यमाक्षिपन्ति स्म वेगिताः ॥ ६० ॥ मुष्टिभिश्च तलैश्चैव नखपातैर्महाबलाः ॥ पादपैश्च महाशाखैरयुध्यन्त रणाजिरे ॥ ६१ ॥

है ॥ ५६ ॥ और यह हमारी सेना बडी भय मानती है; अपने पराक्रमसे दानवोंको भयदायक इस महाभयको विक्रम करके मारूंगा तुम सब चले आओ ॥ ५७ ॥ तब सब दैत्य उलटे फिरकर क्रोधको प्राप्त हो मतवाले हाथीकी समान देवताओंकी सेनाको मारने लगे ॥ ५८ ॥ और जब युद्धमें शस्त्र टूट गये तब गर्वके प्रतापसे भुजाओंके द्वारा प्रहारकर महामेघकी समान गर्जने लगे ॥ ५९ ॥ और कितनेक धूलि और कितनेक काष्ठोंसे और कितनेक हाथोंसे वेगसे मारने लगे ॥ ६० ॥ और कितनेक मुक्कों, कितनेक नखों और कितनेक महाशाखावाले वृक्षोंसे दैत्य और देवते युद्ध करने

लगे ॥ ६१ ॥ तब क्रोधको प्राप्त हुआ अनुह्राद दैत्य देवताओंकी महासेनाको वनकी अग्निकी समान जलाने लगा ॥ ६२ ॥ तब लोहूसे भीजे हुए बहुतसे योधा गिरने लगे और लाल फूलवाले वृक्षोंकी समान पृथ्वीमें गिरे ॥ ६३ ॥ कुबेरने क्रोधकर सर्पोंके समान बाणोंसे अनुह्राद दैत्यको बींधा, तब अनुह्रादके मुखसे बहुतसी अग्नि निकलने लगी ॥ ६४॥ पीछे अनुह्राद दैत्य कुबेरको सहस्रों बाणोंसे क्रोधकर कालके समान बींधने लगा ॥६५॥ तब बाणोंसे बींधे हुए और चारों तरफसे लोहूसे भीजे हुए कुबेरके शरीरसे बहुतसा लोहू पर्वतके झरनेकी समान झरने लगा ॥ ६६ ॥ ६७ ॥ तब

अनुह्रादस्तु संक्रुद्धो देवतानां महाचमूम् ॥ ममन्थ परमायत्तो वनान्यग्निरिवोत्थितः ॥६२॥ रुधिरार्द्रास्तु बहवः शेरते योधसत्तमाः॥ विकृताः पतिता भूमौ ताम्रपुष्पा इव द्रुमाः ॥ ६३ ॥ अनुह्रादश्च विक्रान्तो देवांस्त्वाशीविषोपमान् ॥ युध्यमानस्य समरे व्यसृजन्नि-शिताञ्छरान् ॥६४॥ धनाधिपेन विद्धस्य अनुह्रादस्य संयुगे ॥ अङ्गारमिश्राः क्रुद्धस्य मुखान्निश्चेरुरर्चिषः ॥६५॥ अथ बाणसहस्रेण वित्तेशं दानवोत्तमः ॥ विव्याध स शरैः क्रुद्धो दण्डपाणिरिवान्तकः ॥ ६६ ॥ कुबेरस्तु शरैर्भिन्नः समन्तात्क्षतजोक्षितः ॥ रुधिरं परिसुस्राव गिरिः प्रस्रवणैरिव ॥६७॥ लब्ध्वा स तु पुनः संज्ञां रोषरक्तेक्षणः सुरः ॥ गदामथ समासाद्य भीमां भीमपराक्रमः ॥ चिक्षेप दैत्यमुद्दिश्य बलात्क्रोधेन मूर्च्छितः॥६८॥ आप्राप्तामन्तरे सोऽथ तां गदां गदयासुरः॥ बभञ्ज विनदन् क्रुद्धस्तदाश्चर्यमभूत्तदा ॥६९॥ प्रगृह्य तु गदां भूयो ह्यभिदुद्राव दानवम् ॥ तमापतन्तं दृष्ट्वैव अनुह्रादो महाबलः ॥ ७० ॥ गिरिशृङ्गमिवोत्पाट्य कैलासाचलस-न्निभम् ॥ धनाधिपं प्रदुद्राव व्यादितास्य इवान्तकः ॥ ७१ ॥

फिर संज्ञाको प्राप्त हो महापराक्रमी कुबेरने गदाको ग्रहण कर लाल आंखें कर बडे क्रोधसे दैत्यके गदा मारी ॥ ६८ ॥ तब अनुह्रादने अपनी गदासे वह गदा मार्गमेंही तोड दी; और महाशब्द किया यह बडा आश्चर्य हुआ ॥ ६९ ॥ फिर दूसरी गदाको ग्रहण कर कुबेर दैत्यके सन्मुख जाने लगे महाबली अनुह्राद उसे आता देख ॥ ७० ॥ तब कैलासपर्वतके समान कांतिवाले पर्वतके शृंगको ग्रहणकर अनुह्राद कुबेरके सन्मुख मुख फैलाये कालकी समान

चला ॥ ७१ ॥ सम्पूर्ण देवताओंसे अजेय कालकी समान उसे आता देख कुबेर युद्ध छोड इन्द्रके निकट गये ॥ ७२ ॥ ७३ ॥ इस प्रकार कुबेर उस महाकर्मको देख भयसे इन्द्रके समीप चला गया ॥ ७४ ॥ इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे भविष्यपर्वणि भाषायां वामने देवासुरयुद्धे षष्टितमोऽध्यायः ॥ ६० ॥ वैशंपायन बोले; दैत्योंका स्वामी विप्रचित्ति दैत्य प्रकाशरूप और सर्पोंके समान बाणोंसे अविनाशी वरुणको वींधने लगा ॥ १ ॥ तब दैत्यके बाणोंसे दग्ध होते हुए वरुणने युद्धमें कर्तव्यको नहीं जाना ॥ २ ॥ जैसे सर्वलोकके स्वामी विष्णुके अगाडी ब्रह्माजी स्थित

तमन्तकमिवायान्तमजेयं सकलैः सुरैः ॥ ग्रसन्तमिव तं दैत्यं त्रैलोक्यमखिलं रुषा ॥ ७२ ॥ तमालोक्य तथाभूतं धनाध्यक्षो रणं भयात् ॥ अपहाय ययौ तत्र यत्र शक्रः सुराधिपः ॥ ७३ ॥ तस्य चापि महत्कर्म दृष्ट्वा वित्तपतिस्तदा ॥ जगाम भयसंत्रस्तो यत्र देवः शचीपतिः ॥ ७४ ॥ इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे भविष्यपर्वणि वामनप्रादुर्भावे अनुह्रादकुबेरयुद्धवर्णनं नाम षष्टितमोऽध्यायः ॥ ६० ॥ वैशम्पायन उवाच ॥ विप्रचित्तिस्तु वरुणं दैत्यानामादिरव्ययम् ॥ जघानेषुगणैः क्रुद्धो दीप्तैरिव महोरगैः ॥ १ ॥ स दह्यमानो दैत्येन दीप्तैः शरगभस्तिभिः ॥ नाभ्यजानत कर्तव्यं संग्रामे स जलेश्वरः ॥२॥ सर्वलोकेश्वरस्येव परमेष्ठी प्रजापतिः ॥ न शक्नोत्यग्रतः स्थातुं विप्रचित्तेर्जलाधिपः ॥ ३ ॥ वज्रो नाम महाव्यूहो निर्भयः सर्वतोमुखः ॥ तं व्यूह्य प्रत्ययुध्यन्त दानवा देववाहिनीम् ॥ ४ ॥ वह्निज्वालासमं तत्र रविमण्डलसन्निभम् ॥ मुखमाभाति दैत्यस्य विप्रचित्तेर्महात्मनः ॥ ५ ॥ वरुणस्तु महातेजा विप्रचित्तिं महासुरम् ॥ प्रदहन्निव तेजोभिर्जिगीषुः प्रत्यवेक्षत ॥ ६ ॥

होनेको समर्थ नहीं है, तैसे विप्रचित्ति दैत्यके सन्मुख वरुण स्थित होनेको समर्थ नहीं हुए ॥ ३ ॥ और वज्रनाभ व्यूहको रचकर सब दैत्य देवताओंकी सेनाके संग युद्ध करने लगे ॥ ४ ॥ और अग्निकी लटाके समान प्रकाशित और सूर्यके मंडलके समान तेजवान् विप्रचित्ति दैत्यका मुख उस समयमें हो गया ॥ ५ ॥ तब महातेजवाले वरुण विप्रचित्ति दैत्यको अपने नेत्रोंके तेजसे दग्ध करते

हुए; और जीतनेकी इच्छासे दैत्यके सन्मुख दीखने लगे ॥ ६ ॥ और मालाआदियोंसे भूषित केयूर अंगदवाले दैत्यने पांच अंगुलके अंतरसे युक्त और कैलासपर्वतके शिखरकी समान परिघ ग्रहण किया ॥ ७ ॥ जो सोनेकी डोरियोंसे बंधा हुआ धर्मराजके दंडके समान दैत्योंके भय दूर करनेवाला था ॥ ८ ॥ उस परिघशस्त्रको जो इन्द्रध्वजकी समान था क्रोधसे विप्रचिति दैत्य ग्रहण कर भ्रमाने लगा और मुख फैलाकर शब्द करने लगा ॥ ९ ॥ तब कंठमें स्थित धुकधुकी और भुजाओंमें स्थित बाजुओंसे और विचित्ररूप कुंडलों और विचित्र मालाओंसे ॥ १० ॥ इस प्रकार भूषण और तिस

स्रग्दाममालाभरणः केयूराङ्गदभूषणः ॥ जग्राह परिघं दैत्यः कैलासशिखरोपमम् ॥ ७ ॥ पिनद्धं काञ्चनैः पट्टैर्हेममालिनमायसम् ॥ यमदण्डोपमं घोरं दैत्यानां भयनाशनम् ॥ ८ ॥ भ्रामयामास संक्रुद्धो महाशक्रध्वजोपमम् ॥ विननाद विवृत्तास्यो विप्रचित्तिर्महासुरः ॥ ९ ॥ स कण्ठस्थेन निष्केण भुजस्थैरपि चाङ्गदैः ॥ कुण्डलाभ्यां विचित्राभ्यां भ्राजते काञ्चनस्रजा ॥ १० ॥ दानवो भूषणैर्भाति परिघेणायसेन च ॥ यथेन्द्रधनुषा मेघः सविद्युत्स्तनयित्नुमान् ॥ ११ ॥ प्रस्फुरत्परिघास्त्रेण वातस्कन्धान्महास्वनः ॥ जज्वाल च सधूमार्चिः साङ्कर्षण इवानलः ॥ १२ ॥ विद्याधरगणैः सार्द्धं गन्धर्वनगरैरपि ॥ सह चैवामरावत्या सिद्धलोकैस्तथा सह ॥ १३ ॥ ग्रहनक्षत्ररचितं सार्कचन्द्रविभूषितम् ॥ दैत्येन्द्रपरिघोद्भूतं भ्रमतीव नभस्तलम् ॥ १४ ॥ दुरासदः सुसंजज्ञे परिघाभरणक्षमः ॥ सुरेन्धनोऽसुरेन्द्राग्निर्युगान्ताग्निरिवोत्थितः ॥ १५ ॥

लोहेके परिघसे विप्रचित्ति शोभित होने लगा जैसे इन्द्रके धनुष बिजली और गर्जनसे मेघ शोभित हों ॥ ११ ॥ उस महापरिघास्त्रसे स्फुरायमान पवनकी समान महाशब्दायमान होता हुआ प्रलयाग्निकी समान क्रोधसे जल उठा ॥ १२ ॥ तब आकाशचारी विद्याधरोंके समूह गंधर्वनगर और अमरावती और सिद्धलोकोंके सहित ॥ १३ ॥ ग्रहनक्षत्रसे रचित सूर्य और चंद्रमासे विभूषित आकाश विप्रचित्तिसे परिघसे फेंकनेसे भ्रमने लगा ॥ १४ ॥ वह परिघ बडा दुरासद हो गया कोई उसको धारण न कर सका; देवतारूपी ईंधनको जलानेवाली असुरोंकी अग्नि कालाग्निकी समान स्थित हुई ॥ १५ ॥

तब वरुण और सब देवते भयसे वहां ठहरनेको समर्थ न हुए; तहां अकेला इन्द्रही निर्भय हो स्थित रहा सूर्यके समान तेजवाले घोर क्रूर दर्शन उस परिघको विप्रचित्ति दैत्यने ॥ १६ ॥ वरुणकी सेनापर फेंका, वह संग्राममें गिरकर महात्मा वरुणकी ॥ १७ ॥ एक लक्ष सेनाको नष्ट करता हुआ अर्थात् देवतोंके शरीरोंके सहस्रों टुकडे हो गये ॥ १८ ॥ और विशीर्यमाण हुए आकाशमें उल्काकी समान प्रकाशित हुए तब फिर घुमाकर वरुणपर फेंका ॥१९॥ तब तिस प्रकारके पडनेसे वरुणके शरीरसे वह टूट गया; और वरुणका शरीर क्षत विक्षत हो गया ॥ २० ॥ उसके लगनेसे वरुण चलायमान न हुआ.

त्रिदशा वरुणश्चैव न शेकुः स्पन्दितुं भयात् ॥ तत्रासीन्निर्भयस्त्वेकः कौशिको वासवः प्रभुः ॥ भास्करप्रतिमं घोरं परिघं रौद्रदर्शनम् ॥ १६ ॥ पातयामास सेनायां जलेशस्य स दानवः ॥ पतता तेन संग्रामे जलेशस्य महात्मनः ॥ १७ ॥ भूतानां शतसाहस्रं परिघेण समाहतम् ॥ तेषां गात्राणि चासाद्य व्यशीर्यन्त सहस्रशः ॥ १८ ॥ विशीर्यमाणं विबभावुल्काशतमिवाम्बरे ॥ भूयश्चैनं तदाभ्राम्य वरुणाय न्यपातयत् ॥१९॥ पात्यमाने तदा तस्मिञ्छरीरे वारुणे तदा ॥ स भिन्नः परिघो घोरो देवगात्रे व्यशीर्यत॥२०॥ शीर्यमाणस्य चूर्णानि खद्योता इव चाम्बरे ॥ स तु तेन प्रहारेण न चचाल जलाधिपः ॥ २१ ॥ परिघेण हतः संख्ये यथा वज्रहतोऽचलः॥ स्वसैन्येष्वपि भग्नेषु भिन्नदेहेषु चाहवे ॥ २२ ॥ मुहूर्त्तमभवत्क्षोभ्यनपाम्पतिरमर्षणः ॥ सोऽमर्षं च समापन्नो वरुणोऽमितविक्रमः ॥ २३ ॥ सर्वसंहारमकरोत्स्वपक्षस्यारिमर्दनः ॥ स सागरैश्चतुर्भिश्च वृतो दीप्तैश्च पन्नगैः ॥ २४ ॥ शङ्खमुक्तामणिचितो बिभ्रत्तोयमयं वपुः ॥ पाण्डुरोद्धूतवसनो नानारत्नविभूषितः ॥ २५ ॥

जैसे भूमिकंपमें पर्वत ॥ २१ ॥ और वह युद्धमें परिघसे वज्रसे हत हुए पर्वतकी समान ताडित हुए तब संग्राममें अपनी सेनाको भिन्न देखकर ॥ २२ ॥ दो घडीतक अतिबलवान् वरुण क्रोधको प्राप्त हो महापराक्रमी जलपति ॥ २३ ॥ शत्रुओंका संहार करने लगे, और चार समुद्रोंसे परिवृत बहुतसे प्रकाशवान् सर्पोंसे युक्त ॥ २४ ॥ शंख मोती मणिसे शोभित जलमय शरीरको धारण किये सफेद वस्त्रोंको धारण किये नानाप्रकारके रत्नोंसे जटित ॥२५॥

बाजुबंधको धारण किये फांसियोंको लिये कछुवे और मच्छियोंसे युक्त वरुण क्रोधको प्राप्त हो अपनी सेनाको देख ॥ २६ ॥ कहने लगे कि हे देवताओ ! दैत्योंको मारनेकी इच्छा करके युद्ध करो; और मैं इस विप्रचित्तिको मारूंगा. इस कारण भयको त्यागकर लडो ॥ २७ ॥ तब वे समुद्रमें बसनेवाले सब सर्प युद्धमें दैत्योंको मारने लगे और शब्द करने लगे ॥ २८ ॥ नालीक बाण गदा मूसलोंसे प्रसन्न हो वरुणकी सेना दैत्योंको काटने लगी ॥ २९ ॥ तब क्रोधको प्राप्त हो महाबली पराक्रमी विप्रचित्ति दैत्य सर्पोंके शरीरोंको धुनने लगा ॥ ३० ॥ गरुड अस्त्र तथा सर्पोंके खानेवाले गरुडोंसे समरमें वह दानवश्रेष्ठ सर्पोंको

वरुणः पाशधृक् श्रीमान्कूर्ममीनसमाकुलः ॥ वरुणस्तु तदा क्रुद्धस्तान्निरीक्ष्य स्वसैनिकान् ॥ २६ ॥ उवाच हृष्टा युध्यध्वं दानवानां जिघांसया ॥ अहमेनं हनिष्यामि भयं मुक्त्वा तु युध्यत ॥ २७ ॥ ततस्ते पन्नगाः सर्वे महार्णवजलाश्रयाः ॥ जघ्नुर्दैत्यान्रणमुखे नदन्तो जयवृद्धिनः ॥ २८ ॥ ते तु नालीकनाराचैर्गदाभिर्मुशलैस्तथा ॥ अभ्यघ्नन्दानवान् हृष्टा मुदिता वरुणानुगाः ॥ २९ ॥ विप्रचित्तिस्तु संक्रुद्धो महाबलपराक्रमः ॥ पन्नगानां शरीराणि व्यधमद्युद्धदुर्मदः ॥ ३० ॥ गारुडेनापि चास्त्रेण पन्नगान्दानवोत्तमः ॥ समरे घातयामास गरुडैः पन्नगाशनैः ॥ ३१ ॥ स शरैः सूर्यसंकाशैः शातकुम्भविभूषितैः ॥ पन्नगान्समरे वीरः प्रममाथ सुदुर्जयान् ॥ ३२ ॥ समरे भिन्नगात्रास्ते पन्नगाः शरपीडिताः ॥ पेतुर्मथितसर्वाङ्गा गजा इव महागजैः ॥ ३३ ॥ तपन्तं तमिवादित्यं दीप्तैर्बाणगभस्तिभिः ॥ अभ्यधावत संक्रुद्धः समरे वरुणः प्रभुः ॥ ३४ ॥ ततस्तु दानवास्तत्र भिन्नदेहाः सहस्रशः ॥ व्यथिता विद्रवन्ति स्म दिशो दश विचेतसः ॥ ३५ ॥

मारने लगा ॥ ३१ ॥ वे सुवर्णसे भूषित सूर्यकी समान प्रकाशमान बाणोंसे युद्धमें दुर्जय सर्पोंको मथन करने लगा ॥ ३२ ॥ तब बाणोंसे पीडित सर्वांगसे मथित कटे हुए शरीरोंवाले सर्प पृथ्वीमें गिरने लगे; जैसे अतिबलवाले हाथियोंसे मथित हो अल्पबलवाले हाथी गिरते हैं ॥ ३३ ॥ पीछे दीप्तरूप बाणोंको लिये क्रोधको प्राप्त हो वरुण सूर्यकी समान तपते हुए युद्धमें विप्रचित्तिके ऊपर चला ॥ ३४ ॥ तब वरुणके बाणोंसे कटे हुए सहस्रों दैत्य दशों दिशामें

अचेत हो भागने लगे ॥ ३५ ॥ इस प्रकार पराक्रमी वरुण इन्द्रके निमित्त युद्ध करता हुआ; और वरुणके युद्धमें शब्द करते हुए युद्ध करने लगे ॥ ३६ ॥ तब वरुणके सर्प समरमें उत्कंठ हो पत्थरोंसे और मुक्कोंसे विप्रचित्ति दैत्यको चारों तरफ मारने लगे ॥ ३७ ॥ तब अनेक प्रकारके शस्त्र और पत्थरोंसे महातेजस्वी विप्रचित्ति दैत्यभी वरुणकी सेनाको भगाने लगा ॥ ३८ ॥ तब अग्निके समान प्रकाशवाले शीघ्र चलनेवाले ऐसे बाणोंसे महावेगवाले वरुणके घोडोंको विप्रचित्ति दैत्यने बींधा ॥ ३९ ॥ तिस कर्मसे विप्रचित्ति दैत्यका तेज ऐसे बढाता हुआ जैसे घृतकी आहुतिसे

इन्द्रस्यार्थे पराक्रम्य वरुणस्त्यक्तजीवितः ॥ विनर्दमानो युयुधे समरे पाशभृद्वरः ॥३६॥ वरुणः पन्नगाश्चैव मुष्टिभिः समरोत्कटाः ॥ अभ्यवर्तन्त समरे विप्रचित्तिं महासुरम् ॥ ३७ ॥ ततोऽस्त्रैश्च शिलाभिश्च प्राहरत्स बलोत्कटः ॥ व्यपोहत महातेजा विप्रचित्ति-र्महासुरः ॥ ३८ ॥ ततः पावकसंकाशैः स मुक्तैः शीघ्रगामिभिः ॥ वरुणस्य महावेगान्बिभेद समरे हयान् ॥ ३९ ॥ कर्मणा तेन महता विप्रचित्तेर्महात्मनः ॥ अग्नेराज्याहुतस्येव तेजः समभिवर्धत ॥ ४० ॥ स शरैः सूर्यसंकाशैः सुमुक्तैः शीघ्रगामिभिः ॥ वारुणीं तां महासेनां निर्ममन्थ महाबलः ॥ ४१ ॥ क्षीणास्त्रां सायकाक्रान्तां शरजालेन मोहिताम् ॥ शूलशक्त्यृष्टिभिन्नां च चकार रुधिरोक्षिताम् ॥ ४२ ॥ स शरैर्वह्निसंकाशैः सुमुक्तैर्नतपर्वभिः ॥ वरुणस्य महावेगात् बिभेद समरे हयान् ॥ ४३ ॥ अभिद्रु-तोऽथ दैत्येन ससैन्यः सलिलाधिपः ॥ महेन्द्रं शरणं प्राप्तो विप्रचित्तेर्भयार्दितः ॥ ४४ ॥ इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे भवि-ष्यपर्वणि वामने विप्रचित्तियुद्धं नामैकषष्टितमोऽध्यायः ॥ ६१ ॥

अग्निका तेज बढता है ॥ ४० ॥ पीछे सूर्यकी समान प्रकाशवाले शीघ्रगामी बाणोंसे महाबली विप्रचित्ति दैत्य वरुणकी सब सेनाको मथने लगा ॥ ४१ ॥ तब क्षीणशस्त्रवाली बाणोंसे आक्रांत और बाणोंके जालसे मोहित शूल शक्ति ऋष्टि इन्होंसे कटी हुई लोहूसे भीजी हुई वरुणकी सेना हो गई ॥ ४२ ॥ अग्निकी समान प्रकाशमान छोडे हुए श्रेष्ठ बाणोंसे बडे वेगसे वरुणके घोडोंको मार डाला ॥ ४३ ॥ तब दैत्यसे भयमान अपनी सेनाके सहित वरुण भाग-कर इन्द्रकी शरणमें जाकर स्थित हुआ ॥ ४४ ॥ इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे भविष्यपर्वणि भाषायां वामने देवासुरयुद्धे एकषष्टितमोऽध्यायः ॥ ६१ ॥

वैशंपायन बोले; देवताओंके पराजयको देख ब्रह्मर्षियोंसे स्तुति किये देवताओंमें उत्तम अग्नि दैत्योंके मारनेको मन करते हुए ॥ १ ॥ अर्थात् स्वयंप्रभा नामवाली शांडिलीका पुत्र और हव्यको वहनेवाला और हिरण्यरूप वीर्यवान् पीले नेत्रोंवाले और देवदूत आहुतिको खानेवाले ॥ २ ॥ और लाल रंगवाले और लाल ग्रीवावाले, हर्ता, दाता, हवि और कवि पावक और विश्वभुक् देव इन नामोंवाले और सब देवताओंके मुख एक राजा ॥ ३ ॥ प्रभु, ब्रह्मात्मा, सुवर्चस सहस्रार्चि विभावसु कृष्णवर्त्मा चित्रभानु देवराट् ॥ ४ ॥ देवाग्रचित्र लोकसाक्षी ब्राह्मणके हाथकी आहुति

वैशम्पायन उवाच ॥ पराजयं तु देवानां दृष्ट्वाग्निर्दैवसत्तमः ॥ चकार बुद्धिं दैत्यानां वधे ब्रह्मर्षिभिः स्तुतः ॥ १ ॥ स्वयंप्रभायाः शाण्डिल्या यः पुत्रो हव्यवाहनः ॥ हिरण्यरेताः पिङ्गाक्षो देवदूतो हुताशनः ॥ २ ॥ रोहितो लोहितग्रीवो हर्ता दाता हविः कविः ॥ पावको विश्वभुग्देवः ॥ सर्वदेवाननः प्रभुः ॥ ३ ॥ सुब्रह्मात्मा सुवर्चस्कः सहस्रार्चिर्विभावसुः ॥ कृष्णवर्त्मा चित्रभानुर्देवानामपि देवराट् ॥ ४ ॥ लोकसाक्षी द्विजहुतः सदार्चिष्मान्वषट्कृतः ॥ हव्यभक्षः शमीगर्भः स्वयोनिः सर्वकर्मकृत् ॥ ५ ॥ पावनः सर्वभूतानां त्रिदशानां तपोनिधिः ॥ शमनः सर्वपापानां लेलिहानस्तपोमयः ॥ ६ ॥ प्रदक्षिणावर्तशिखः शुचिरोमा मखाकृतिः ॥ हव्यभुक् भूत-भव्येशो यज्ञभागहरो हरिः ॥ ७ ॥ सोमपः सुमहातेजा भूतेशः सुमहातपाः ॥ अधृष्यः पावको भूतिर्भूतात्मा वै स्वधाधिपः ॥ ८ ॥ स्वाहापतिः सामगीतः सोमपूताशनोऽद्रिधृक् ॥ देवदेवो महाक्रोधो रुद्रात्मा ब्रह्मसंभवः ॥ ९ ॥ लोहिताश्वं वायुचक्रं रथमास्थाय भूतधृक् ॥ धूमकेतुर्धूमशिखो नीलवासाः सुरोत्तमः ॥ १० ॥

प्रेमसे ग्रहण करनेवाले अर्चिष्मान् वषट्कृत हव्यभक्ष शमीगर्भ स्वयोनि और सब कर्मोंको करनेवाला ॥ ५ ॥ और सब भूतोंको पवित्र करनेवाला और देवताओंकी तपकी खान और सबके पापोंको शांत करनेवाला और लेलिहान और तपोमय ॥६॥ और प्रदक्षिणावर्त शिखा शुचिरोमा मखाकृति हव्यभुक् भूत भव्येश हव्यभागहर हरि ॥७॥ सोमप महातेजा भूतेश महातपस्वी सर्वभूतपात और अधृष्य और पावकभूती भूतात्मा स्वधाधिप ॥८॥ स्वाहापति सामगीत सोमपूताशन अर्चिधृक् देवदेव महाक्रोध रुद्रात्मा ब्रह्मसंभव ॥ ९ ॥ धूमकेतु धूमशिख सुरोत्तम नामोंवाला अग्नि लालघोड़ोंसे

जुता हुआ और वायुके समान पहियोंवाले रथमें नीले वस्त्रोंको पहनकर बैठा ॥ १० ॥ और दिव्य आग्नेय अस्त्रको ग्रहणकर अग्निदेव दैत्योंके सहस्र लाख अर्व ॥ ११ ॥ सेनाको प्रलयकालकी अग्निके समान जलाने लगा; और सब प्राणियोंका प्राणरूप होकर देहमें पांच प्रकारसे स्थित होनेवाला ॥१२॥ अग्निकी सारथी और मित्र प्रभु ईश्वर सब लोकोंका प्रभंजनरूप और युगान्तमें सबोंको नाशनवाला ॥१३॥ जिसकी योनि सात स्वरोंके द्वारा वाणीसे उच्चारित की जाती है; और आकाशमें रहनेवाला और दूर गमन करनेवाला और शब्दके उपजानेवाला ॥ १४ ॥ और कर्ता, विकर्ता,

उद्यम्य दिव्यमाग्नेयं शस्त्रं देवो रणे महान् ॥ दानवानां सहस्राणि प्रयुतान्यर्बुदानि च ॥११॥ ददाह भगवान्वह्निः संक्रुद्धः प्रलये यथा॥ प्राणो यः सर्वभूतानां देहे तिष्ठति पञ्चधा ॥ १२ ॥ यन्ता यश्च हुताशश्च सखा च प्रभुरीश्वरः ॥ प्रभञ्जनेयो लोकानां युगान्ते सर्वनाशनः ॥ १३ ॥ सप्तस्वरगता यस्य योनिर्गीर्भिरुदीर्यते ॥ यो ह्याकाशमयो देवो दूरगः सर्वसंभवः ॥ १४ ॥ यश्च कर्ता विकर्त्ता च गतिर्गतिमतां प्रभुः॥ वेदकर्ता समो लोके ब्रह्मणा यः सनातनः॥१५॥ अमूर्तिमन्तं यं प्राहुर्महाभूतं महत्तरम् ॥ सोऽग्निं समीरयामास शर्मीगर्भं समीरणः ॥ १६ ॥ त्रिदिवारोहिभिर्ज्वालैर्जृम्भमाणो दिशो दश ॥ दानवानामभावाय युगान्ताग्निरिवोत्थितः ॥ १७ ॥ मेदोमज्जामहापङ्कां केशशैवलशालिनीम् ॥ योधशीर्षोपलवहां मृताद्विपतटोत्कटाम् ॥ १८ ॥ शोणितोदां रणे दृष्ट्वा संग्रामसरितं विभुः ॥ वह्निः प्रस्कन्दयामास दैत्यानां भयवर्द्धनः ॥ १९ ॥ ततोऽग्निर्दितिजान्सर्वान्प्रह्लादप्रमुखांस्तथा ॥ पराजयानः स विभुः क्रोशमानो महामृधे ॥ २० ॥

और गतिवालोंकी गति और वेदकर्ता और ब्रह्माके समान लोकमें सनातन ॥ १५ ॥ जिसको मूर्तिसे रहित महाभूत कहते हैं वह वायु अग्निकी सहायता करता हुआ ॥ १६ ॥ स्वर्गको प्राप्त होनेवाली ज्वालाओंसे दशों दिशाओंमें जृंभमाण अग्नि दैत्योंके नाशके अर्थ प्रलयकी अग्निके समान हो उठा ॥ १७ ॥ तब मेद मज्जारूप कीचडवाली केशरूप हरियाई और काईसे संयुक्त और योद्धाओंके शिररूप पत्थरोंसे संयुक्त और मरे हुए हाथीरूप तटसे संयुक्त ॥ १८ ॥ लोहूकी वहती हुई नदीको देखकर दैत्योंको भय देनेवाला अग्निदेव बल करने लगा ॥१९॥ तब प्रह्लाद आदि सब दैत्योंको यह

अग्नि जीतने लगा; और युद्धमें महाशब्द करने लगा ॥२०॥ कितने एक दैत्य जलते हुए केशोंसे संयुक्त और कितनेएक दैत्य जलते हुए सम्पूर्ण अंगोंसे संयुक्त होने लगे; और कितनेक दैत्योंके हाथ मुख जलने लगे ॥ २१ ॥ कितनेएक दैत्योंकी जांघ जलने लगी, और कितनेएक दैत्योंके छत्र ध्वजा रथ जलने लगे इस प्रकाशित हुए अग्निसे सब दैत्य दग्ध होने लगे ॥ २२ ॥ तब भयसे पीडित दैत्य सब प्रकारके शस्त्र ध्वजा रथादिको छोड अग्निसे पराजित हो दशों दिशाओंको भागने लगे ॥२३॥ और युद्धमें प्रकाशमान अग्निको नहीं देखते हुए दानव दिशा आकाश पृथ्वी मेघ इन सबोंको जलते हुए

केचित्प्रदीप्तैर्मुकुटैः केचिद्दीप्तैः शिरोरुहैः ॥ केचित्प्रदीप्तवसनैः केचिद्दीप्तैर्भुजाननैः ॥ २१ ॥ केचित्प्रदीप्तैरुरुभिः केचिच्छत्रैर्ध्वजे रथैः ॥ असुरास्तत्र दृश्यन्ते प्रदीप्तेनाग्निना वृताः ॥ २२ ॥ त्यक्त्वायुधानि सर्वाणि सध्वजांश्च रथोत्तमान् ॥ प्रयान्ति समरे भीताः पावकेन पराजिताः ॥ २३ ॥ न च पश्यन्ति ते वह्निं प्रदीप्तध्वजिनीमुखे ॥ दिशः खं ग च मेघांश्च दीप्तान्पश्यन्ति दानवाः ॥ २४ ॥ ध्रुवः स्वयंभुवा सृष्टो युगान्तस्तोययोनिना ॥ इत्येवं दानवाः सर्वे मेनिरे त्रस्तचेतसः॥२५॥ मयश्च शम्बरश्चैव महामायाधरो तदा ॥ पार्जन्यवारुणी माये सृजतां वारिविक्षरे ॥ २६ ॥ ताभ्यां वह्निः स मायाभ्यां सिच्यमानः समन्ततः ॥ तोयोघैः पर्वतनिभैर्मृद्वर्चिरभवद्रणे ॥ २७ ॥ शाम्यमाने तु समरे पावके दैत्यनाशिनि ॥ बृहत्कीर्तिबृहत्तेजा वह्निमाह बृहस्पतिः ॥ २८ ॥ गुरुरुवाच ॥ हिरण्यरेतः सुमुख ज्वलनाह्वय सर्वभुक् ॥ सप्तजिह्वानन क्षाम लेलिहान महाबल ॥ २९ ॥

देखने लगे ॥ २४ ॥ तब सब दैत्य व्याकुल हो कहने लगे कि निश्चय ब्रह्माजीने यह युगान्त अग्नि रचा है ॥ २५ ॥ तब मय और शंबर महामायावाले दैत्य पानीको झिरानेवाली पार्जन्य और वारुणी नामोंवाली दो मायाओंको रचते हुए ॥ २६ ॥ तब तिन दोनों मायाओंके प्रतापसे पर्वतके समान पानीकी धारासे सिच्यमान हो अग्नि युद्धमें कोमलतेजवाला होने लगा ॥ २७ ॥ तब दैत्योंको नाशनेवाले युद्धमें कोमलतेज होनेवाले अग्निसे बडी कीर्तिवाले अतितेजस्वी बृहस्पतिजी कहने लगे ॥ २८ ॥ गुरु बोले; हे हिरण्यरेत ! हे सुशिख ! हे ज्वलन ! हे अक्षय ! हे सर्वभुक् ! हे सप्त-

जिह्व ! हे अनल ! हे क्षाम ! हे लेलिहान ! हे महाबल ! ॥ २९ ॥ हे विभो ! तेरा वायु आत्मा है घास तेरा शरीर है और जल तेरी योनि है और जलकी तू योनि है ॥ ३० ॥ हे महाभाग ! तेरी लटा ऊपरको व नीचेको व पार्श्वको व चारों तरफ विचरती हैं ॥ ३१ ॥ हे अग्ने ! सर्वरूप तूही है और तेरे विषय सब यह जगत् है और सर्वप्राणियोंको धारण करनेवाला तूही है ॥ ३२ ॥ और इस संसारको भरनेवालाभी तूही है; और परम हविरूप द्रव्यभी तूही है; और यज्ञोंमें तुझेही सब कालमें संत पूजते हैं ॥ ३३ ॥ और तूही प्राणियोंके शरीरोंमें अन्नको खाता है, और जलको

आत्मा वायुस्तव विभो शरीरं सर्ववीरुधः ॥ योनिरापश्च ते प्रोक्ता योनिस्त्वमसि चाम्भसः ॥ ३० ॥ ऊर्ध्वं चाधश्च गच्छन्ति संचरन्ति च पार्श्वतः ॥ अर्चिषस्ते महाभाग सर्वतः प्रभवन्ति च ॥ ३१ ॥ त्वमेवाग्ने सर्वमासि त्वयि सर्वमिदं जगत् ॥ त्वं धारयसि भूतानि भुवनं त्वं बिभर्षि च ॥ ३२ ॥ त्वमग्ने हव्यवाडेकस्त्वमेव परमं हविः ॥ यजन्ति च सदा सन्तस्त्वामेव परमाध्वरे ॥ ३३ ॥ त्वमन्नं प्राणिनां भुङ्क्षे जग्धपीतासि त्वं प्रभो ॥ त्वयि प्रवृत्तो विजयस्त्वयि लोकाः प्रतिष्ठिताः ॥ ३४ ॥ सर्वांल्लोकांस्त्रीनिमान् हव्यवाह प्राप्ते काले त्वं पचस्येव दीप्तः ॥ त्वमेवैकस्तपसे जातवेदो नान्यस्त्वत्तो विद्यते गोषु देव ॥ ३५ ॥ वृषाकपिः सिन्धुपतिस्त्वमग्ने महामखेष्वग्र्यहरस्त्वमेव ॥ विश्वस्य भूमस्त्वमसि प्रसूतिस्त्वं च प्रतिष्ठा भगवन् प्रजानाम् ॥ ३६ ॥ सृजस्यपो रश्मिभिर्जातवेदस्तथौषधीरोषधीनां रसांश्च ॥ विश्वं त्वमादाय युगान्तकाले स्रष्टा भवस्यानल सर्गकाले ॥ ३७ ॥

पीता है; और तेरेसेही यह विजय प्रवृत्त हुआ है और तेरे विषे यह सब लोक प्रतिष्ठित हैं ॥ ३४ ॥ इन तीन लोकोंके रचनेके समयपै पकानेवाला तूही है, और तपके अर्थ जातवेद नामसे विख्यातभी तूही है; और तेरे सिवाय अन्नतप्ता कोई भी नहीं है ॥ ३५ ॥ तूही शिवरूप और तूही समुद्रोंका पति है और यज्ञोंमें अग्रभागकोभी हरनेवाला तूही है; और तुझसे संसार उपजा है तेरेहीमें सम्पूर्ण संसार स्थित होता है ॥ ३६ ॥ हे अग्ने ! अपनी किरणोंसे जलको रचे है और औषधीभी तूही है और औषधियोंका रसभी तूही है और

प्रलयकालमें इस संसारको तूही ग्रहण करता है और उत्पत्तिकालमें तूही इस जगत्को रचनेवाला है ॥ ३७ ॥ हे अग्ने ! सब प्राणियोंकी योनि तूही वेदमें गाया गया है; सो देवताओंके कल्याणके अर्थ तैंने बहुतसे दैत्योंका नाश किया है ॥ ३८ ॥ तू इस जलसे उपजा है सो यज्ञकी कांतिवाले पावक जलको प्राप्त हो क्यों शिथिल होता है ॥ ३९ ॥ हे देवसत्तम ! इन देवताओंको दैत्योंके भयसे रक्षा कर और हे युगांताग्ने अर्थात् प्रलयकी अग्निके समान, हे दैत्योंका नाश करनेवाले, विश्वकर्म, सहस्रभुक्, पिंगाक्ष; लोहितग्रीव, कृष्णवर्त्म, हुताशन, हे अग्ने ! तूही रक्षा करनेके योग्य है ॥ ४० ॥ इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे भविष्यपर्वणि भाषायां देवासुरयुद्धे द्विषष्टितमोऽध्यायः ॥ ६२ ॥ वैशंपायनजी बोले; बृहस्पतिजीके सत्यवचनको

त्वमग्ने सर्वभूतानां योनिर्वेदेषु गीयते ॥ त्वया देव हितार्थाय निहता दानवा रणे ॥३८॥ स्वयोनिस्ते महातेजस्तोयं मखशताचितम्॥
तां स्वयोनिं समासाद्य किं विषीदसि पावक ॥ ३९ ॥ त्रायस्व समरे देवान्दैत्येभ्यः सुरसत्तम ॥ पिङ्गाक्ष लोहितग्रीव कृष्णवर्त्मन्
हुताशन ॥ ४० ॥ इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे भविष्यपर्वणि वामनेऽग्निस्तवो नाम द्विषष्टितमोऽध्यायः ॥ ६२ ॥ वैशम्पायन
उवाच ॥ बृहस्पतेस्तु वचनं श्रुत्वा सत्यं समीरितम् ॥ भूयः प्रजज्वाल रणे हविषेव महामखे ॥ १ ॥ हतास्तु माया दैत्यानां प्रदी-
प्तेनाग्निना रणे ॥ हतमाया हतबला बलिं ते समुपस्थिताः ॥ २ ॥ पराजितेषु दैत्येषु वह्निनाद्भुतकर्मणा ॥ प्रह्लादस्तूत्तरं वाक्यमाह
दैत्यपतिं बलिम् ॥ ३ ॥ भवानग्निश्च वायुश्च भास्करः सलिलं शशी ॥ नक्षत्राणि दिशो व्योम भूश्च दानवसत्तम ॥ ४ ॥ भविष्यं
चैव भूतं च भवच्चासुरसत्तम ॥ दत्तं चैतद्भगवता वरदेन स्वयंभुवा ॥ ५ ॥

सुनकर युद्धमें फिर अग्नि प्रज्वलित हुआ जैसे घृतसे यज्ञमें प्रज्वलित होता है ॥ १ ॥ तब अग्निने सब दैत्योंकी माया नाश कर दी; तब माया और सेनासे रहित बहुतसे दैत्य बलिराजाके पास प्राप्त हुए ॥ २ ॥ अद्भुतकर्मवाले अग्निने जब सब दैत्य जीत लिये तब प्रह्लाद दैत्योंका राजा राजा बलिसे कहने लगा ॥ ३ ॥ हे दैत्यसत्तम ! तूही अग्नि है तूही वायु है तूही सूर्य है, तूही जल है और तूही चंद्रमा है, और तूही नक्षत्ररूप है और तूही आकाशरूप है ॥ ४ ॥ तूही दिशारूप है तूही पृथ्वीरूप है, तुमही भूत हो और तुमही वर्तमान हो. हे महाभाग ! ब्रह्माजीने तुम्हें वरदान दिया है ॥५॥

तिससे तुम इन्द्रपनेको और अमरपनेको और युद्धमें जीतकर ऐश्वर्यको और सबको वशमें करनेको और अपरिमित बलको तुम प्राप्त हुए हो ॥ ६ ॥
हे दैत्यराज ! सब भूतोंका ईश्वर तुममेंही प्राप्त है; और सब कालमें प्रभुभी तुमही हो, और महायोगियोंके ईश्वरभी तुमही हो और युद्धमें शूरवीरभी
तुमही हो ॥ ७ ॥ और सात्त्विक गुणभी तुमही हो, ऐसे तुम इन्द्र और सब देवताओंको जीतो ॥ ८ ॥ कारण कि ब्रह्माजीने जैसे कहा है. हे
राजन् ! तैसेही होगा और अन्यथा नहीं होगा; तब प्रह्लादके वचनको सुन परमप्रसन्न हो बलिराज अपने रथपर चढा ॥ ९ ॥ जहां इन्द्रका रथ खडा

इन्द्रत्वं चामरत्वं च युद्धे चाप्यपराजयः ॥ ईशित्वं च वशित्वं च बलं चैवामितं शुभम् ॥ ६ ॥ सर्वभूतेश्वरत्वं च दैत्यराज सदा तव ॥
महायोगीश्वरत्वं च शूरत्वं च महामृधे ॥ ७ ॥ अणिमा लघिमा चैव ये चान्ये सात्त्विका गुणाः ॥ तत्पराजित्य दैत्येन्द्र देवान्सर्वांश्च
सानुगान् ॥ ८ ॥ यथोक्तं ब्रह्मणा राजंस्तत्तथा न तदन्यथा ॥ तस्य तद्वचनं श्रुत्वा प्रह्लादस्य महात्मनः ॥ बलिः परमसंहृष्टः प्रायाच्छक्ररथं प्रति ॥ ९ ॥ ततः प्रयान्तं त्रिदशेन्द्रसन्निभो महासुरेन्द्रं बलिमुत्तमश्रियम् ॥ तमञ्जसा जग्मुरभिप्रदक्षिणं द्विजाश्च पुण्याः
पशवश्च सत्तमाः ॥ १० ॥ महाजटाभारधरास्तपस्विनस्तदा तमाहुर्विधिमन्त्रमङ्गलैः ॥ अभिष्टुवन्तः कवयः स्वलंकृतं बलिं प्रयान्तं
रणमूर्द्धनि स्थिताः ॥ ११ ॥ प्रतप्तजाम्बूनदचित्रभूषणैर्दिव्यैश्च रत्नैर्विविधैरलंकृतः ॥ विराजमानः परमेण वर्चसा रणे विभात्याग्निशिखेव दानवः ॥ १२ ॥ स वै तदा शत्रुबलार्दितं बलं बलिर्ददर्शोत्तमसत्त्ववीर्यवान् ॥ जलागमे श्रीमदिवाभ्रमण्डलं विशीर्यमाणं
नभसीव वायुना ॥ १३ ॥

था तहां जाकर प्राप्त हुए; जब इन्द्रके समीपमें दैत्योंका इन्द्र और उत्तम शोभावाला बलिराजा गमन करने लगा तब बलिराजाकी मंगलरूप पक्षी और
मंगलरूप पशु परिक्रमा करने लगे ॥ १० ॥ और गमन करनेके समय बडी जटाको धारण करनेवाले तपस्वी और कवि नानाप्रकारके मंगलरूप मंत्रोंसे
बलिराजाकी स्तुति करने लगे ॥ ११ ॥ तपायमान सुवर्णके चित्रभूषण और नानाप्रकारके दिव्य रत्नसे अलंकृत और उत्तमतेजसे शोभित ऐसा बलि
राजा अग्निके समान प्रकाशित होने लगा ॥ १२ ॥ तब उत्तम वीर्य और पराक्रमवाले बलिराजाने शत्रुओंकी सेनासे पीडित अपनी सेनाको देखा; जैसे

वायुसे आकाशमें बादल नष्ट होते हैं ॥ १३ ॥ चारों ओरसे युद्धमें अग्निसे रक्षित देवताओंकी सेनाको देख बडे उच्छ्रित और शीघ्रतासे प्रहार होनेवाले पर्वसंधिमें समुद्रके वेगकी समान ॥ १४ ॥ शूल बरछी ऋष्टि गदा तलवार बाणोंको शत्रुओंकी सेनामें फेंकने लगा, और मदोन्मत्त हाथीकी तरह शब्द करने लगा; जैसे वर्षाके समयमें बादल शब्द करते हैं ॥ १५ ॥ पीछे दिव्य अस्त्ररूप धूमवाला और भुजाओंके वेगरूप वायुवाला महाबली पौरुष और पराक्रमरूप इन्धनयुक्त बली घोररूप अग्निके समान युद्धमें प्रकाशित हुआ, जैसे प्रजाको दग्ध करनेवाले कालाग्नि हो ॥ १६ ॥ इति श्रीमहाभारते

ततो ददर्शाथ बलानि सर्वतो रणे प्रगुप्तानि हुताशनेन वै ॥ समुच्छ्रितान्युग्रतराणि तत्र वै समुद्रवेगानिव पर्वसन्धिषु ॥ १४ ॥ सशूलशक्त्यृष्टिगदासिसायकान् क्षिपन् रिपूणां समरे महात्मनाम् ॥ ननाद सिंहर्षभमत्तनागवज्जलागमे तोयदवच्च वीर्यवान् ॥ १५ ॥ दिव्यास्त्रधूमः सुभुजोऽग्रवायुर्महाबलः पौरुषविक्रमेन्धनः ॥ प्रजा दिधक्षन्निव कालवह्निः सुघोररूपो विबभौ रणे बलिः ॥ १६ ॥ इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे भविष्यपर्वणि वामनप्रादुर्भावे त्रिषष्टितमोऽध्यायः ॥ ६३ ॥ वैशम्पायन उवाच ॥ बलिना तु सुराः सर्वे वर्जयित्वा सुराधिपम् ॥ रणे शरशतैर्भिन्नाः ससैन्या वै पराजिताः ॥ १ ॥ विमुखा याति दैत्येन्द्रैर्वध्यमाना महाचमूः ॥ जितास्तु बलिना देवाः शक्रमाहुर्महाबलम् ॥ २ ॥ देवा ऊचुः ॥ भवानिन्द्रश्च धाता च लोकानां प्रभुरव्ययः ॥ त्वमप्रतिमकर्मा च तथैवानुपमद्युतिः ॥ ३ ॥ विद्रुतानीह सैन्यानि सहास्माभिः सुरेश्वर ॥ रथचक्रध्वजाक्षाणि विभिन्नानि महासुरैः ॥ ४ ॥

खिलेषु हरिवंशे भविष्यपर्वणि भाषायां वामने देवासुरयुद्धे त्रिषष्टितमोऽध्यायः ॥ ६३ ॥ वैशंपायन बोले, तब बलिराजाने एक इन्द्रके विना सैकडों बाणोंसे सब देवते बींधे और सेनासहित जीत लिये ॥ १ ॥ तब दैत्योंसे मरते हुए और बलिके जीते हुए सब देवते महाबलवाले इन्द्रसे कहने लगे॥ २ ॥ देवता बोले कि, हे इन्द्र ! तुमही हमारे इन्द्र हो और तुमही धाता हो और लोकोंके प्रभुभी तुमही हो ॥ ३ ॥ और तुमही अविनाशी हो और अप्रतिम कर्म करनेवालेभी तुमही हो और उत्तमकीर्तिवालेभी तुमही हो ॥ ४ ॥

सो हे देवताओंके ईश्वर ! सब देवताओंसहित सेना भागी जाती है और रथ हाथी घोडे योधा सहस्रों प्यादे गदा मूशल पट्टिशोंसे सैकडों छिन्नभिन्न कर दिये हैं ॥ ५ ॥ बलिराजाने ऐसा भयानक रूप कर्म युद्धमें किया है; सो दैत्योंसे मरती हुई अपनी सेनाको अब क्यों त्यागते हैं ॥ ६ ॥ हे देवश्रेष्ठ ! हे शरण्य ! शरणको प्राप्त हुए देवताओंकी रक्षा करो, इन्द्र देवताओंके वचनको सुन ॥ ७ ॥ संवर्तक अग्निके समान क्रोधको प्राप्त हो सब दैत्योंको दग्ध करने लगा, अर्थात् सूर्यकी किरणोंके समान प्रकाशवाले मुकुटको धारण करनेवाले ॥ ८ ॥ और वैडूर्य रत्नके समान कांतिवाले और

रथहस्त्यश्वयोधाश्च पदाताश्च सहस्रशः ॥ भिन्नाश्छिन्नाश्च शतशो गदामुशलपट्टिशैः ॥ ५ ॥ महाभैरवरूपं हि दैत्येन्द्रेण कृतं रणे ॥ किमुपेक्षसि दैत्येन्द्रैर्हन्यमानां महाचमूम् ॥ ६ ॥ त्रायस्व त्रिदशश्रेष्ठ शरण्यः शरणागतान् ॥ श्रुत्वा तु वचनं तेषां देवानाममराधिपः ॥ ७ ॥ संवर्त्ताग्निसमक्रुद्धः सर्वान्दहति दानवान् ॥ दिवाकरकराकारं किरीटं धारयन्प्रभुः ॥ ८ ॥ वैडूर्यवर्णसंकाशो नानारत्नचिताङ्गदः ॥ मयूररोमा रक्ताक्षः शतबाहुः सहस्रदृक् ॥ ९ ॥ हरिरेको हरिश्मश्रुर्नानाकेतुर्महाबलः ॥ वज्रप्रहरणः श्रीमान्योगी शतशिरोधरः ॥ १० ॥सधनुर्बद्धसन्नाहः शतादित्यसमप्रभः ॥ देवगन्धर्वयक्षौघैरनुयातः सहस्रशः ॥ ११ ॥ सामगैश्च जपैश्चापि स्तूयमानो महर्षिभिः ॥ शतपर्वं महारौद्रं स्फोटनं सर्वतोमुखम् ॥ १२ ॥ प्रगृह्य रुचिरं वज्रं दीप्तं रौद्राट्टहासिनम् ॥ दैत्यानयोधयत्सर्वान्महेन्द्रः पाकशासनः ॥ १३ ॥

अनेक प्रकारके रत्नोंसे जटित बाजबंदको धारण करनेवाले और धूम्रनेत्रोंवाले और सौ बाहु और सहस्र नेत्रोंवाले ॥ ९ ॥ अकेले हरि डाढीवाले अनेक केतुध्वजावाले महाबली वज्रका प्रहार करनेवाले, योगी सौ शिरोंको धारण करनेवाले ॥ १० ॥ धनुष कवचको धारण करनेवाले; सौ सूर्योंके समान तेजवाले देवते गंधर्व यक्षोंके समूहसे परिवृत ॥ ११ ॥ सामवेदके गाने और जाप करनेवाले महर्षियोंसे स्तुति किये और सौ पर्वोंसे संयुक्त महारुद्र सब तर्फको मुखवाले ॥ १२ ॥ महाकांतिमान् रौद्र हासयुक्त वज्रको धारण करनेवाले पाकरिपु इन्द्र सब दैत्योंसे युद्ध करने लगे ॥ १३ ॥

सब भूतोंसे अदृश्य अदितिके प्रियपुत्र थे तैयार हुए बलि और इन्द्रका आपसमें उग्र युद्ध होने लगा ॥ १४ ॥ वह दोनोंका संग्राम बडा अद्भुत हुआ वह दोनों बडे वीर मदसे उदग्र थे इस कारण बडा तुमुल संग्राम हुआ ॥ १५ ॥ तब प्रह्लाद दैत्यने सैकडों स्तुतिरूप जयके देनेवाले कर्मोंसे बलिराजाको प्रबोधित किया, तब वह अग्निके समान प्रकाशित हुए ॥ १६ ॥ इन्द्र और बलिराजाके लोमहर्षण युद्धको देख दैत्य और देवताओंका फिर युद्ध होने लगा ॥ १७ ॥ फिर अस्त्रोंसे इन्द्र बलिको बींधने लगे, तब बलिराजाने शस्त्रोंके सौ सौ टुकडे कर दिये ॥ १८ ॥ पीछे क्रोधको प्राप्त हो बली इन्द्रने

अधृष्यः सर्वभूतानामदित्या दयितः सुतः ॥ ततः प्रवृत्तः संग्रामो बलिवासवयोस्तदा ॥ १४ ॥ उभाभ्यां देवदैत्याभ्यामाचिरान्महद्द्भुतः ॥ अतिवीर्यबलोदग्रस्तुमुलो लोमहर्षणः ॥ १५ ॥ प्रह्लादेन स्तुतिशतैः कर्मभिर्जयसंमतैः ॥ प्रबोधितो दैत्यपतिरग्निरिद्ध इवाबभौ ॥ १६ ॥ सुरासुरेन्द्रयोर्दृष्ट्वा संग्रामं लोमहर्षणम् ॥ देवानां दानवानां च भूयो युद्धमभूत्तदा ॥ १७ ॥ ततोऽविध्यन्महेन्द्रस्तं बलिमस्त्रैर्महाबलम् ॥ तान्यस्त्राणि महाबाहुश्चिच्छेद शतधा रणे ॥ १८ ॥ ततः क्रुद्धः पुनस्तत्र निजघ्ने दानवं महत् ॥ आग्नेयमथ शत्रुघ्नं चिक्षेपेन्द्रो महाबलः ॥ तं दृष्ट्वा खे समागच्छत्प्रलयानलसन्निभम् ॥ १९ ॥ पातयामास तच्चेन्द्रं वारुणास्त्रेण धीमता ॥ संक्रुद्धो मघवा वज्रमगृह्णात्पर्वतोपयम् ॥ २० ॥ हंतुकामो रणश्लाघी बलिं दैत्याधिपं रणे ॥ ततः शुश्राव देवेन्द्रः कौशिको हरिवाहनः॥२१॥ अशरीरां शुभां वाणीं तस्मिन्महति वैशसे ॥ निवर्तस्व महाबाहो सुराणां नन्दिवर्धन ॥ २२ ॥ पुरंदर सुरश्रेष्ठ न जेष्यासि रणे बलिम् ॥ तपसात्युत्तमो दैत्यो वरदानेन चाधिकः ॥ २३ ॥

दुर्वारणरूप आग्नेयास्त्रको बलिके ऊपर छोडा; प्रलयकी अग्निके समान अस्त्रको आते हुए आकाशमें देख वारुणास्त्रसे उसे बलिने गिरा दिया ॥ १९ ॥ फिर क्रोधको प्राप्त हो इन्द्रने बलिराजाके मारनेको पर्वतके समान वज्रको ग्रहण किया ॥ २० ॥ जब बलिके मारनेको वज्र उठाया तब हरिवाहन इन्द्रने आकाशवाणी सुनी ॥ २१ ॥ आकाशसे अशरीरिणी शुभवाणी कहने लगी. हे अदितिनंदन ! युद्धसे निवृत्त हो ॥ २२ ॥ इस बलिराजाको युद्धमें तुम नहीं जीत सकोगे; कारण कि तपसे बलिराजा तुमसे उत्तम है, और ब्रह्माजीके वरदानसे ॥ २३ ॥

स्वयंभूके परितोषसे सत्य बोलनेसे और धर्मोंके करनेसे बलिराजा तुमसे अधिक है. हे देवेश ! सब देवताओंसहित तुम इसको नहीं जीत सकते ॥ २४ ॥ जो इसको जीतनेवाला सनातन है तिनको तुम श्रवण करो; जो ब्रह्माका सर्वस्व और देवताओंकी परम गति है ॥ २५ ॥ धर्मका परम रहस्य और परेसे परे श्रीमान् गतिरूप, व्यक्त और अव्यक्त महाभूत और भूत भविष्य वर्तमानक जाननेवाला ॥ २६ ॥ सहस्रों शिरोंवाला, सहस्र पैरोंवाला, सहस्रों नेत्रोंवाला शंख चक्र गदा पद्मको धारण करनेवाला पीले वस्त्रोंको धारण करनेवाला और दैत्योंको मारनेवाला ॥ २७ ॥

स्वयंभूः परितोषाच्च सत्यधर्माच्च वासव ॥ नैष शक्यस्त्वया जेतुं त्रिदशैर्वा सुरेश्वर ॥ २४ ॥ यो ह्यस्य जेता भगवांस्तं शृणुष्व समाहितः ॥ ब्रह्मणः स हि सर्वस्वं देवानां चैव सा गतिः ॥ २५ ॥ परं रहस्यं धर्मस्य परस्य च परा गतिः ॥ परात्परतरः श्रीमान् परावरगतिः प्रभुः ॥ २६ ॥ सहस्रशीर्षा पुरुषः सहस्राक्षः सहस्रपात ॥ शङ्खचक्रगदापाणिः पीतवासाः सुरारिहा ॥ २७ ॥ जेता जेयो जयः श्रीमान्योऽस्य जेता भविष्यति ॥ श्रुत्वा दिव्यां तु मधुरां वाणीं तामशरीरिणीम् ॥ २८ ॥ अपयातो रणाच्छक्रः सार्द्धं सर्वैः सुरोत्तमैः ॥ अपयाते तु देवेन्द्रे कौशिके हरिवाहने ॥ २९ ॥ सिंहनादो महानासीद्दानवानां महामृधे ॥ ततः किलकिलाशब्दः क्ष्वेडितास्फोटितस्वनः ॥ ३० ॥ शंखानां निनदश्चात्र योधानां वल्गितस्वनः ॥ वादित्राणां च निर्घोषस्तुमुलश्चाभवत्तदा ॥ ३१ ॥ जयशब्दरवाश्चैव देवानां तु पराजये ॥ ससैन्यो दैत्यराजस्तु स्तूयमानः सुहृद्गणैः ॥ बलीन्द्रो विबभौ दैत्यो हिरण्यकशिपुर्यथा ॥ ३२ ॥ इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे भविष्यपर्वणि वामने देवासुरसंग्रामो नाम चतुःषष्टितमोऽध्यायः ॥६४ ॥

और सबको जीतनेवाला और आप किसीसे जीतमें नहीं आनेवाला पुरुष इस बलिराजाको जीतेगा; तब ऐसी दिव्यरूप वाणीको सुनकर ॥ २८ ॥ सब देवताओंके सहित इन्द्र युद्धसे निवृत्त हो गया हरिवाहन इन्द्र जब चला गया ॥ २९ ॥ तब सब दैत्य युद्धमें उग्र सिंहनाद करने लगे; अर्थात् किलाकिलशब्द और अपने २ भुजाओंको बजानेका शब्द ॥ ३० ॥ शंखोंके शब्द और योधाओंकी टेढी बोलीके शब्द और अनेक प्रकारके बाजोंके महाशब्द होने लगे ॥ ३१ ॥ पीछे देवताओंके हारनेमें जयजय शब्द करते हुए दैत्योंसे संयुक्त स्तुतिको प्राप्त हो बलिराजा अपने स्थानमें प्राप्त हुए; और हिरण्यकशिपु दैत्यके समान प्रकाशित होने लगे ॥ ३२ ॥ इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे भविष्यपर्वणि भाषायां वामने देवासुरयुद्धे शक्रा-

पयाने चतुःषष्टितमोऽध्यायः ॥ ६४ ॥ वैशंपायन बोले, जब देवता प्रयत्नसे रहित हो गये और त्रिलोकी दैत्योंसे रक्षित हुई और मय शंबर तथा बलवाले बलिकी जय हुई ॥ १ ॥ सब दिशा शुद्ध हो गई, और धर्म कर्म प्रवृत्त होने लगे, और अधर्मके मार्ग दूर होने लगे ॥ २ ॥ प्रह्लाद शंबर मय अनुह्लाद इन्होंसे चारों दिशा रक्षित होने लगीं; और सब दैत्योंसे आकाशकी पालना होने लगी ॥ ३ ॥ और अपनी प्रकृतिमें लोक स्थित होने लगा और सन्मार्ग प्रवृत्त होने लगा ॥ ४ ॥ और सब पापोंका अभाव होने लगा और भावकी स्थिरता होने लगी और सिद्धोंका तप प्रवृत्त होने

वैशम्पायन उवाच ॥ निष्प्रयत्नेषु देवेषु त्रैलोक्ये दैत्यपालिते ॥ जये बलेर्बलवतो मयशम्बरयोस्तथा ॥ १ ॥ सुसाधु दिक्षु सर्वासु प्रवृत्ते धर्मकर्मणि ॥ अप्रवृत्ते चन्द्रमसि अयनस्थे दिवाकरे ॥ २ ॥ प्रह्लादशम्बरमयैरनुह्लादेन चैव हि ॥ दिक्षु सर्वासु गुप्तासु गगने दैत्यपालिते ॥३॥ दैत्येषु मखशोभाश्च स्वर्गार्थं दर्शयत्सु च ॥ प्रकृतिस्थे तदा लोके वर्त्तमाने च सत्पथे ॥ ४ ॥ अभावे सर्वपापानां भावे चैव तथा स्थिते ॥ भावे तपसि सिद्धानां सर्वत्राश्रमरक्षिषु ॥ ५ ॥ चतुष्पादे स्थिते धर्मे अधर्मे पादविग्रहे ॥ प्रजापालनयुक्तेषु भ्राजमानेषु राजसु ॥ ६॥ स्वधर्मसंप्रयुक्तेषु सर्वाश्रमनिवासिषु ॥ अभिषिक्तोऽसुरैः सर्वैर्दैत्यराजो बलिस्तदा ॥ ७ ॥ हृष्टेष्वसुरसंघेषु नदत्सु मुदितेषु च ॥ अथाभ्युपगता लक्ष्मीर्बलिं पद्मासने स्थिता ॥ ८ ॥ पद्मोद्यतकरा देवी वरदाऽसुरमोहिनी ॥ श्रीरुवाच ॥ बले बलवतां श्रेष्ठ महाराज महाद्युते ॥ ९ ॥

लगा और पापकर्मवालोंका अभाव होने लगा ॥ ५ ॥ और चार पैरवाला धर्म स्थित होने लगा; और एक पैरवाला पाप स्थित होने लगा; और प्रजाकी पालना करनेमें युक्त राजा होने लगे ॥ ६ ॥ और सब आश्रमनिवासी अपने २ धर्मोंमें स्थित होने लगे ऐसे कालमें देवराज्यपै दैत्योंने बलिराजाका अभिषेक किया ॥ ७ ॥ असुरोंके प्रसन्न होकर शब्द करनेमें पद्मासनमें स्थित और पद्मोंको हाथमें धारण करनेवाली लक्ष्मी देवी ॥ ८ ॥ और वरके देनेवाली और शूरवीरको सेवनेवाली लक्ष्मी बलिराजाको प्राप्त होकर कहने लगी. श्री बोली; हे बलवालोंमें श्रेष्ठ ! महाकान्तिमान् दैत्यराज ॥ ९ ॥

देवताओंके पराजयसे मैं तुमपर प्रसन्न हुई हूं तुम्हारा मंगल प्राप्त होगा; तुमने अपने बलसे युद्धमें इन्द्रको जीत लिया ॥ १० ॥ तब तुम्हारे उत्तम बलको देखकर मैं तुम्हारे पास आपही प्राप्त हुई हू. हे दैत्यश्रेष्ठ ! हिरण्यकशिपुके कुलमें उपजे हुए तेरे ऐसे कर्मोंमें आश्चर्य नहीं ॥ ११ ॥ सुरेंद्रको जय करनेवाला तुम्हारा कर्म है. हे राजन् ! तुम्हारे पितामह हिरण्यकशिपुने ॥ १२ ॥ यह संपूर्ण त्रिलोकी भोगी है. परन्तु तिससे तुम धर्ममार्गमें विशेष हो ॥ १३ ॥ इस कारण तुमभी इस त्रिलोकीको भोगोगे, ऐसे कह वर देनेवाली और सौम्य लक्ष्मी बलि राजाके शरीरमें प्रविष्ट हुई ॥ १४ ॥

प्रीतास्मि तव भद्रं ते देवतानां पराजये ॥ यस्त्वया युधि विक्रम्य देवराजः पराजितः ॥ १० ॥ दृष्ट्वा ते परमं सत्त्वं ततोऽहं स्वयमागता ॥ नाश्चर्यं दानवश्रेष्ठ हिरण्यकशिपोः कुले ॥ ११ ॥ प्रसूतस्यासुरेन्द्रस्य तव कर्मेदमीदृशम् ॥ विशेषतस्त्वया राजन्दैत्येन्द्रः प्रपितामहः ॥ १२ ॥ येन भुक्तं हि निखिलं त्रैलोक्यमिदमव्ययम् ॥ विशेषतस्तव विभो सर्वे धर्मपथे स्थिताः ॥ १३ ॥ तेन त्रैलोक्यमुख्येन भोक्ष्यस्यमितविक्रम ॥ एवमुक्त्वा तु सा देवी लक्ष्मीर्दैत्यपतिं बलिम् ॥ १४ ॥ प्रविष्टा वरदा सौम्या सर्वभूतमनोरमा ॥ शिष्टाश्च देव्यः प्रवरा ह्रीः कीर्तिर्द्युतिरेव च ॥ १५ ॥ प्रभा धृतिः क्षमा भूतिर्नीतिर्विद्या दया स्मृतिः ॥ स्मृतिर्लज्जा तथा मेधा लक्ष्मीरीहा गतिस्तथा ॥ १६ ॥ श्रुतिः प्रीतिरिला कीर्तिः शान्तिः पुष्टिः क्रियास्तथा ॥ सर्वाश्चाप्सरसो दिव्या नृत्यगीतविशारदाः ॥ १७ ॥ पतिं प्राप्ताः सुदैतेयं त्रैलोक्ये सचराचरे ॥ प्राप्तमैश्वर्यममितं बलिना ब्रह्मवादिना ॥ १८ ॥ इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे भविष्यपर्वणि वामनप्रादुर्भावे पञ्चषष्टितमोऽध्यायः ॥ ६५ ॥

जब वह सौम्या सब प्राणियोंका जो मनोहर रूप उसमें प्रविष्ट हुई, तब शेष देवी और ह्री कीर्ति द्युति ॥ १५ ॥ प्रभा धृति क्षमा भूति नीति दया मति स्मृति मेधा तुष्टि मुक्ति ॥ १६ ॥ श्रुति प्रीति इला कीर्ति शान्ति पुष्टि यह सब और दिव्य अप्सरा नृत्य और गीतमें कुशल ॥ १७ ॥ अपने पति बलि राजाको प्राप्त हुई. इस प्रकार ब्रह्मवादी बलि राजाने दैत्योंके संग चराचर त्रिलोकीका ऐश्वर्य प्राप्त किया ॥ १८ ॥ इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे

भविष्यपर्वणि भाषायां वामने देवासुरयुद्धे पंचषष्टितमोऽध्यायः ॥ ६५ ॥ जन्मेजय बोले; कि हे ब्राह्मणो! दैत्योंसे पराजित हुए देवता क्या करने लगे? और देवताओंने फिर स्वर्गलोक कैसे प्राप्त किया ॥ १ ॥ वैशम्पायनजी बोले; कि तिस आकाशवाणीको इन्द्र सुनकर देवताओंको संग ले अदितिके उत्तम स्थानमें प्राप्त होनेके लिये पूर्व दिशामें अदितिके स्थानमें गया ॥ २ ॥ पीछे अदितिके स्थानको प्राप्त हो जो युद्धमें आकाशवाणीके मुखसे सुना था, वह सब वृत्तान्त अदितिसे कहने लगा ॥ ३ ॥ तब अदिति कहने लगी कि; हे पुत्र! जो ऐसा है तो तुमसे विरोचनका पुत्र बलिराजा युद्धमें नहीं

जनमेजय उवाच ॥ पराजिताः सुरा दैत्यैः किमकुर्वत वै मुने ॥ कथं च त्रिदिवं लब्धं भूयो देवैर्द्विजोत्तम ॥ १ ॥ वैशम्पायन उवाच ॥ श्रुत्वा वाणीं तु तां दिव्यां सह देवैः सुराधिपः ॥ प्राग्दिशं प्रस्थितः श्रीमानदित्यालयमुत्तमम् ॥२॥ प्राप्यादित्यालयं शक्रः कथयामास तां गिरम् ॥ आदित्यां सा यथा युद्धे तेन वाणी पुरा श्रुता ॥ ३ ॥ अदितिरुवाच ॥ यद्येवं पुत्र युष्माभिर्न शक्यो हन्तुमाहवे ॥ बलिर्विरोचनसुतः सर्वैश्चैव मरुद्गणैः ॥ ४ ॥ सहस्रशिरसा हन्तुं केवलं शक्यतेऽसुरः ॥ तेनैकेन सहस्राक्ष न ह्यन्येन शतक्रतो ॥ ५ ॥ तद्वः पृच्छस्व पितरं कश्यपं सत्यवादिनम् ॥ पराजयार्थं दैत्यस्य बलेस्तस्य महात्मनः ॥ ६ ॥ ततोऽदित्या सह सुराः संप्राप्ताः कश्यपान्तिकम् ॥ अपश्यन्कश्यपं तत्र मुनिं दिव्यतपोनिधिम् ॥७॥ आद्यं देवं गुरुं दिव्यं क्षिप्रं त्रिषवणाम्बुभिः ॥ तेजसा भास्कराकारं गौरमग्निशिखाप्रभम् ॥ ८ ॥ न्यस्तदण्डं तपोयुक्तं बद्धकृष्णाजिनोत्तरम् ॥ वल्कलाजिनसंवीतं प्रदीप्तं ब्रह्मवर्चसा ॥ ९ ॥ हुताशमिव दीप्यन्तमाज्यमन्त्रपुरस्कृतम् ॥ स्वाध्यायनिरतं शान्तं वपुष्मन्तमिवानलम् ॥ १० ॥

मर सकता है ॥ ४ ॥ वह सहस्राक्ष सहस्र मस्तकवाले परमेश्वरके हाथसे निश्चय मरेगा अन्यसे नहीं ॥ ५ ॥ सो मैं महात्मा बलिराजाके पराजयके निमित्त ब्रह्मवादी कश्यपजी तुम्हारे पिताके समीप जाकर पूछती हूं ॥ ६ ॥ तब अदितिके सहित सम्पूर्ण देवता कश्यपजीके निकट प्राप्त हो दीप्त तपके निधि ॥ ७ ॥ आद्य और देवताओंके गुरु दिव्य तेजसे सूर्यके आकार और अग्निकी शिखाके समान कान्तिवाले ॥ ८ ॥ और न्यस्तदंड तपसे युक्त कृष्णमृगछालाको कांधेपर धारण करनेवाले वृक्षके वल्कलोंको शरीरपर धारण करनेवाले और जटाके समूहसे भूषित ॥ ९ ॥ आज्य मंत्रपुरस्कृतरूप अग्निकी

समान दीप्यमान और स्वाध्यायमें रत और साक्षात् अग्निके समान प्रकाशित ॥ १० ॥ ब्रह्मवादियोंमें श्रेष्ठ देव व दैत्योंके गुरु और तपते हुए सूर्यकी समान तेजवाले मरीचि ऋषिके पुत्र ॥ ११ ॥ और सर्व प्राणियोंके रचनेवाले प्रजाके पति आत्मभावसे विशेष करके तीसरे प्रजापति ॥ १२ ॥ कश्यपजीको देखते हुए. पीछे अदिति सहित सब देवता प्रणाम कर अंजलि बांध वचन कहने लगे जैसे ब्रह्माजीसे ब्रह्माजीके पुत्र कहते हैं॥ १३॥ और जो युद्धमें आकाशवाणीसे इन्द्रने श्रवण किया था कि सब देवताओंसे बलि दैत्य जीतनेमें नहीं आ सकता. यह सब वृत्तान्त कहते हुए ॥ १४ ॥ तब तिन पुत्रोंके वचनको

तं ब्रह्मवादिनां श्रेष्ठं सुरासुरगुरुं प्रभुम् ॥ प्रतपन्तमिवादित्यं मारीचं दीप्ततेजसम् ॥ ११ ॥ यः स्रष्टा सर्वभूतानां प्रजानां पतिरुत्तमः॥ आत्मभावविशेषेण तृतीयो यः प्रजापतिः ॥ १२ ॥ ततः प्रणम्य ते वीराः सहादित्याः सुरर्षभाः ॥ ऊचुः प्राञ्जलयः सर्वे ब्रह्माणमिव मानसाः ॥ १३ ॥ तच्छ्रुतं युधि शक्रेण सरस्वत्या समीरितम् ॥ अजेयस्त्रिदशैः सर्वैर्बलिर्दानवसत्तमः ॥ १४ ॥ श्रुत्वा तु वचनं तेषां पुत्राणां कश्यपस्तदा ॥ चकार गमने बुद्धिं ब्रह्मलोकाय लोककृत् ॥ १५ ॥ कश्यप उवाच ॥ गच्छाम ब्रह्मसदनं ब्रह्मघोषनिनादितम् ॥ यथाश्रुतं च तत्रैव ब्रह्मणे वदतानघाः ॥१६॥ वैशम्पायन उवाच ॥ ततोऽदित्या सह सुरा यान्तं कश्यपमन्वयुः ॥ प्रस्थितं ब्रह्मसदनं देवर्षिगणसेवितम् ॥ १७ ॥ ते मुहूर्तेन संप्राप्ता ब्रह्मलोकं दिवौकसः ॥ दिव्यैः कामगमैर्यानैर्महार्हैः सुमनोहरैः ॥ १८ ॥ दिदृक्षवस्ते ब्रह्माणं तपसो राशिमव्ययम् ॥ अभ्यगच्छन्त विस्तीर्णां ब्रह्मणः परमां सभाम् ॥ १९॥ षट्पदोद्गीतनिनदां सामगीतविमिश्रिताम् ॥ श्रेयस्करीमामित्रघ्नीं दृष्ट्वा संजहृषुर्मुदा ॥ २० ॥

सुनकर लोकोंके रचनेवाले कश्यपमुनि ब्रह्मलोकमें गमन करनेके लिये बुद्धि करने लगे ॥ १५॥ कश्यप मुनि कहने लगे; हे पुत्रो ! ब्रह्मलोकमें हम सब चलेंगे, सो जैसे तुमने आकाशवाणीसे सुना है वह सब ब्रह्माजीके सन्मुख वर्णन करना ॥ १६॥ वैशंपायन बोले; देवर्षिगणोंसे सेवित ब्रह्मलोकको कश्यपजीके संग अदिति और संपूर्ण देवता गमन करने लगे ॥ १७॥ तब दिव्यरूप विमानमें बैठकर वे सब देवता एक मुहूर्तमें ब्रह्मलोकमें जाकर प्राप्त हुए ॥ १८॥ तब यथायोग्य तपकी राशि और अविनाशी ब्रह्माजीको देखनेके लिये बडी विस्तारवाली ब्रह्माजीकी सभामें गये॥ १९॥ भौंरोंके गानसे संयुक्त और सामवेदके

गानसे मिली हुई कल्याणको करनेवाली और शत्रुओंको नाशनेवाली ब्रह्माजीकी सभाको देखकर प्रसन्न हुए ॥२०॥ वेद और वेदाङ्गके पारको जानने-वाले ऋच और बहृच यज्ञसंबंधी नामोंसे विख्यात ब्राह्मणोंके विस्तारित किये अक्षर ॥ २१॥ कर्मोंमें अनेक प्रकारकी वाणीको श्रवण करते और यज्ञ वेदांग आदि कर्मको जाननेवाले तथा पदके क्रमको जाननेवाले ॥ २२ ॥ ब्रह्मर्षियोंके शब्दसे शब्दित होते हुए और यज्ञकी स्तुतिको जाननेवाले और शिक्षावाले ॥ २३ ॥ २४ ॥ और शब्दके यथार्थ अर्थको जाननेवाले और संपूर्ण विद्याओंमें कुशल और मीमांसारूप वाक्योंको जाननेवाले और सब

ब्राह्मणैश्च महाभागैर्वेदवेदाङ्गपारगैः ॥ ऋचो बह्वृचमुख्यैश्च शिक्षाविद्भिस्तथा द्विजैः ॥ शब्दनिर्वचनार्थं च प्रेर्यमाणपदाक्षराः ॥२१॥ शुश्रुवुस्तेऽमरव्याघ्रा विततेषु च कर्मसु ॥ यज्ञवेदाङ्गविदुषां पदक्रमविदां तथा ॥ २२ ॥ घोषेण परमर्षीणां सा बभूव निनादिता ॥ यज्ञसंस्तवविद्भिश्च शिक्षाविद्भिस्तथा द्विजैः ॥ २३ ॥ शब्दनिर्वचनार्थज्ञैः सर्वविद्याविशारदैः ॥ मीमांसाहितवाक्यज्ञैः सर्ववादविशारदैः ॥ २४ ॥ हृष्टपुष्टस्वरैस्तत्र द्विजेन्द्रैर्वल्गुवादिभिः ॥ नादितं ब्रह्मसदनं प्रवरं देवसद्मवत् ॥ २५ ॥ ते तत्र समनुप्राप्य शृण्वन्तो वै ध्वनिं सुराः ॥ पूतान्यात्मशरीराणि मेनिरे तु न संशयः ॥ २६ ॥ तूर्ष्णींभूता एकचित्ता ब्रह्मण्यगतमानसाः ॥ विस्मयोत्फुल्लनयना निरीक्षन्तः परस्परम् ॥ २७ ॥ नमस्कुर्वन्ति च पुनर्गुरुं लोकगुरुं प्रभुम् ॥ मनसैव सुरश्रेष्ठाः पुरस्कृत्य तु कश्यपम् ॥ २८ ॥ पुनः संपूज्य परमं वेदोच्चारणनिःस्वनम् ॥ गम्भीरोदारमधुरं सुस्वरं हंसगद्गदम् ॥ २९ ॥ ऐक्यनानात्वसंयोगसमवायविशारदैः ॥ लोकायतिकमुख्यैश्च शुश्रुवुः स्वनमीरितम् ॥ ३० ॥

प्रकारके वेदोंके वादको जाननेवाले ॥२५॥ हृष्ट पुष्ट स्वरवाले ब्राह्मणोंके शब्दोंसे शब्दित वह ब्रह्मलोक देवलोककी समान शब्दायमान हो रहा था ॥२६॥ ऐसे उत्तम ब्रह्मलोकमें वेदोंकी ध्वनिको सुनते हुए सब देवता पहुँचे और सब देवता अपने अपने शरीरको पवित्र मानते हुए इसमें संशय नहीं ॥ २७ ॥ पीछे मौनको धारण करनेवाले और ब्रह्माजीमें मनको लगाये आश्चर्यसे फूले हुए नेत्रोंवाले देवता आपसमें देखने लगे ॥ २८ ॥ इसके उपरान्त मनसे प्रसन्न हुए सब देवता कश्यपजीको आगे कर जगत्के स्वामी ब्रह्माजीको प्रणाम करने लगे ॥ २९ ॥ ऐक्य और नानाप्रकार संयोग समवायके जाननेवाले

शब्दाभिमानी देवताओंके अनेक प्रकारके शब्दोंको श्रवण करते हुए ॥ ३० ॥ जहां तहां ब्रह्मलोकमें उत्तम व्रतको धारण करनेवाले और जप होम आदि कर्मोंको करनेवाले ब्राह्मणोंको देखने लगे ॥ ३१ ॥ इस सभामें लोकके पितामह देवता और दैत्योंके गुरु और दिव्य मायासे सेवित विधिपूर्वक उपास्यमान थे ॥ ३२ ॥ तिस ब्रह्माजीको प्रजापति दक्ष प्रचेता पुलह मरीचि ब्राह्मण ॥ ३३॥ भृगु, अत्रि, वसिष्ठ, गौतम, नारद, मनु, आकाश, वायु, तेज, जल, पृथ्वी ॥ ३४ ॥ शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गंध, प्रकृति, विकृति और सब प्रकारके पृथ्वीके कारण ॥ ३५ ॥ अंग उपांगोंसहित चारों वेद सब

तत्र तत्र च विप्रेन्द्रान्नियतान् संशितव्रतान् ॥ जपहोमपरान्मुख्यान्ददृशुः कश्यपात्मजाः ॥ ३१ ॥ तस्यां सभायामास्ते स्म ब्रह्मा लोकपितामहः ॥ सुरासुरगुरुः श्रीमान्विधिवद्देवमायया ॥ ३२ ॥ उपासते च तत्रैनं प्रजानां पतयः प्रभुम् ॥ दक्षः प्रचेताः पुलहो मरीचिश्च द्विजोत्तमः ॥ ३३ ॥ भृगुरत्रिर्वसिष्ठश्च गौतमो नारदस्तथा ॥ मनुर्द्यौरन्तरिक्षं च वायुस्तेजो जलं मही ॥ ३४ ॥ शब्दस्पर्शौ च रूपं च रसो गन्धस्तथैव च ॥ प्रकृतिश्च विकाराश्च यच्चान्यत्कारणं महत् ॥ ३५ ॥ साङ्गोपाङ्गाश्चतुर्वेदाः सरहस्य-पदक्रमाः ॥ क्रियाश्च क्रतवश्चैव संकल्पः प्राण एव च ॥ ३६ ॥ एते चान्ये च बहवः स्वयंभुवमुपस्थिताः ॥ अर्थो धर्मश्च कामश्च द्वेषो दर्पश्च नित्यदा ॥ ३७ ॥ शुक्रो बृहस्पतिश्चैव संवर्त्तो बुध एव च ॥ शनैश्चरोऽथ राहुश्च ग्रहाः सर्वे ह्यशेषतः ॥ ३८ ॥ मरुतो विश्वकर्मा च नक्षत्राणि च भारत ॥ दिवाकरश्च सोमश्च ब्रह्माणं समुपासते ॥ सावित्री दुर्गतरणी वाणी सप्तविधा तथा ॥ ३९॥ सर्वाणि श्रुतिशास्त्राणि गाथाश्च नियमास्तथा ॥ भाष्याणि सर्वशास्त्राणि देहवन्ति विशांपते ॥ क्षणा लवा मुहूर्त्ताश्च दिवा रात्रिश्च भारत ॥ ४० ॥

क्रिया, सब यज्ञ, संकल्प प्राण ॥ ३६ ॥ इसके अतिरिक्त औरभी स्वयम्भूके निकट उपस्थित हुए अर्थ, धर्म, काम, द्वेष, दर्प ॥ ३७॥ शुक्र, बृहस्पति, संवर्त्त, बुध, शनैश्चर, राहु, शेष रहे सब ग्रह ॥ ३८ ॥ मरुत, विश्वकर्मा, सब नक्षत्र, सूर्य, चंद्रमा, यह सब ब्रह्माजीकी उपासना करते हैं गायत्री, सात प्रकारकी वाणी ॥ ३९ ॥ सब स्मृति, शास्त्र, सब गाथा, सब निगम, देहवाले सब भाष्यरूप, शास्त्र, और क्षण, लव, मुहूर्त, दिन, रात्रि ॥ ४० ॥

पक्ष मास, छः ऋतु, संवत्सर, कृतयुग, त्रेतायुग, द्वापर, कलियुग, संध्या, महीना, रात ॥ ४१ ॥ दिव्य कालचक्र, ये सब और अन्यभी दिव्य बहुतसे ब्रह्माजीके समीपमें स्थित थे ॥ ४२ ॥ ऐसी दिव्यरूप और सब कामना देनेवाले ब्रह्मसभामें अपने धर्मात्मा पुत्र देवताओंसहित कश्यप ऋषि प्रविष्ट हुए ॥ ४३ ॥ वह सब प्रकारके तेजसे संयुक्त दिव्य और ब्रह्मर्षिगणोंसे सेवित ब्रह्माके योग्य लक्ष्मीसे प्रकाशित, चिन्ता और ग्लानिसे रहित ॥ ४४ ॥ और परम आसनपर स्थित ब्रह्माजीको देख शिरसे प्रणाम करने लगे ॥ ४५ ॥ अपने अपने शिरोंसे ब्रह्माजीके चरणोंका स्पर्श कर सब पापोंसे विमुक्त शांतरूप कश्य-

अर्धमासाश्च मासाश्च ऋतवः षट् तथैव च ॥ संवत्सराश्चतुर्युगं मासा रात्रिश्चतुर्विधा ॥ ४१ ॥ कालचक्रं च यद्दिव्यमनित्यं ध्रुवमव्ययम् ॥ एते चान्ये च बहवः स्वयंभुवमुपास्थिताः ॥ ४२ ॥ ते प्रविष्टाः सभां दिव्यां ब्रह्मणः सर्वकामदाम् ॥ कश्यपस्त्रिदशैः सार्द्धं पुत्रैर्धर्मविशारदैः ॥ ४३ ॥ सर्वतेजोमयीं दिव्यां ब्रह्मर्षिगणसेविताम् ॥ ब्राह्म्या श्रिया दीप्यमानमचिन्त्यं विगतक्लमम् ॥ ४४ ॥ ब्रह्माणं वीक्ष्य ते सर्वे आसीनं परमासने ॥ जग्मुर्मूर्ध्ना शुभौ पादौ ब्रह्मणस्ते दिवौकसः ॥ ४५ ॥ शिरोभिः स्पृश्य चरणौ तस्य ते परमेष्ठिनः ॥ विमुक्ताः सर्वपापेभ्यः शान्ता विगतकल्मषाः ॥ ४६ ॥ दृष्ट्वा तु तान्सुरान्सर्वान्कश्यपेन सहागतान् ॥ आह ब्रह्मा महातेजा देवानां प्रभुरीश्वरः ॥४७॥ इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे भविष्यपर्वणि वामनप्रादुर्भावे षट्षष्टितमोऽध्यायः ॥ ६६ ॥ ब्रह्मोवाच ॥ यदर्थमिह संप्राप्ता भवन्तः सर्व एव हि ॥ विजानाम्यहमव्यग्र एतत्सर्वं महाबलाः ॥ १ ॥ भविष्याति च वः सोऽर्थः कांक्षितो यः सुरोत्तमाः ॥ बलेर्दानवमुख्यस्य यो विजेता भविष्याति ॥ २ ॥

पसहित सब देवता हो गये ॥ ४६ ॥ तब कश्यपके सहित सब देवताओंके आगमनको देख अति तेजवान् और सब देवताओंके ईश्वर ब्रह्माजी कहने लगे ॥ ४७ ॥ इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे भविष्यपर्वणि भाषायां वामने ब्रह्मलोकगमने षट्षष्टितमोऽध्यायः ॥ ६६ ॥ ब्रह्माजी बोले, हे देवताओ ! जिस प्रयोजनके अर्थ तुम यहां आनकर प्राप्त हुए हो. हे महाबलवालो ! तिस अर्थको मैं यथार्थ जानता हूं ॥ १ ॥ तुम्हारा वांछित मनोरथ होगा, बलिदैत्यको जीतनेवाला उत्पन्न होगा ॥ २ ॥

सो सब दैत्योंकाही जीतनेवाला नहीं, किन्तु त्रिलोकीका जीतनेवाला और देवताओंमें श्रेष्ठ ॥ ३ ॥ और सब प्राणियोंको पालनेवाला, विश्वकी योनि, सनातन जिसके पूर्वदेहको हिरण्यगर्भ कहते हैं ॥ ४ ॥ और सबोंसे बडा और किसीकी जीतमें नहीं आनेवाला विभु ॥ ५ ॥ और अतिवीर्यवाले बलिराजाको और विश्वको जीतनेवाला ॥ ६ ॥ सबका उत्पत्तिकारण मुझसेभी पूर्व होनेवाला, इस जगत्की उत्पत्ति करनेवाला और अचिन्त्य और विश्वात्मा और योगयुक्त तपस्वी जिसको महाभाग देवताभी नहीं जान सकते कि कौन है. यह वेदात्मा विश्व और पुरुषोत्तम रूप है॥७॥

न खल्वसुरसंघानामेको जेता स विश्वकृत् ॥ त्रैलोक्यस्यापि जेतासौ देवानामपि चोत्तमः ॥ ३ ॥ धाता चैव हि लोकानां विश्वयोनिः सनातनः ॥ पूर्वदेहं सदा प्राहुर्हैमगर्भनिदर्शनम् ॥ ४ ॥ आत्मा देवेन विभुना कृतो जेयो महात्मना ॥ बलेरसुरमुख्यस्य विश्वस्य जगतस्तथा ॥ ५ ॥ प्रभवः स हि सर्वेषामस्माकमपि पूर्वजः ॥ अचिन्त्यः स हि विश्वात्मा योगयुक्तः परंतपः ॥६॥ तं देवापि महात्मानं न विदुः कोऽप्यसाविति ॥ वेदात्मानं च विश्वं च स देवः पुरुषोत्तमः ॥ ७ ॥ तस्यैव तु प्रसादेन प्रवक्ष्येऽहं परां गतिम् ॥ यत्र योगं समास्थाय तपश्चरति दुश्चरम् ॥ ८ ॥ क्षीरोदस्योत्तरे कूले उदीच्यां दिशि देवताः ॥ अमृतं नाम परमं स्थानमाहुर्मनीषिणः ॥ भवन्तस्तत्र वै गत्वा तपसा संशितव्रताः ॥ ९ ॥ अमृतं स्थानमासाद्य तपश्चरत दुश्चरम् ॥ तत्र श्रोष्यथ विस्पष्टां स्निग्धगम्भीरानिःस्वनाम् ॥ १० ॥ उष्णगे तोयपूर्णस्य तोयदस्य समस्वनाम् ॥ युक्ताक्षरपदस्निग्धां रम्यामभयदां शिवाम् ॥ ११ ॥

तिसके प्रसादसे परमगतिको मैं कहता हूं. जिससे योगको प्राप्त हो दुश्चर तप किया जाता है ॥ ८ ॥ क्षीर सागरके उत्तर कूलपै उत्तर दिशामें अमृत-नामसे विख्यात जिस देवका स्थान है वहां तुम सब व्रतधारी जाके ॥ ९ ॥ अमृतस्थानमें प्राप्त हो घोर तप करो, वहां तुम विस्पष्ट स्निग्ध और गंभीर शब्दवाली ॥ १० ॥ और गरमीमें समुद्रकी समान गर्जनेवाली दिव्य, स्पष्ट अक्षर और पदोंसे युक्त रमणीय अभयकी देनेवाली और पवित्र ॥ ११ ॥

और सत्य और परम संस्कारसे युक्त दिव्य और सब पापोंको नाशनेवाली वरदायक ॥ १२ ॥ साक्षात् अवतार लेनेवाला देवादिदेव ईश्वरकी कही हुई वाणीको तप व्रतके अन्तमें तुम श्रवण करोगे ॥ १३ ॥ उन विश्वके देव महात्माकी यह अमोघ वाणी होगी कि हे देवताओ ! तुम्हारा आगमन मेरे निकट सफल है ॥ १४॥ सो मैं किसके अर्थ किस वरको दूं ? और वरको देनेवाला मैं स्थित हूं. तब अदिति और कश्यप देवसे यह वर मांगें ॥ १५॥ उनके चरणोंमें शिरसे प्रणाम करके कहें. हे देव योगात्मा ! तुम साक्षात् हमारे पुत्र हो जाओ इसमें संदेह न हो ॥ १६ ॥ तब वह देव यही वरदान

वाणीं परमसंस्कारां वरदां ब्रह्मवादिनीम्॥दिव्यां सरस्वतीं सत्यां सर्वकिल्बिषनाशिनीम्॥ १२॥सर्वदेवाधिदेवस्य भाषितां भावितात्मनः॥ तस्य व्रतसमाप्तौ तु यावद्व्रतविसर्जनम् ॥ १३ ॥ अमोघस्य तु देवस्य विश्वेदेवा महात्मनः ॥ स्वागतं वः सुरश्रेष्ठा मत्सकाशे व्यवस्थिताः ॥ १४ ॥ कस्य किं वा वरं देवा ददामि वरदः स्थितः ॥ तं कश्यपोऽदितिश्चैव वरं गृह्णीत वै ततः ॥ १५ ॥ प्रणम्य शिरसा पादौ तस्मै योगात्मने तदा ॥ भवानेव च नः पुत्रो भवत्विति न संशयः ॥ १६ ॥ उक्तश्च परया भक्त्या तथास्त्विति स वक्ष्यति ॥ देवा ब्रुवन्तु तं सर्वे भ्राता नस्त्वं भवेति ह ॥ १७ ॥ तथास्त्विति च स श्रीमान्वक्ष्यते सर्वलोककृत् ॥ १८ ॥ तस्मादेवं गृहीत्वा तु वरं त्रिदशसत्तमाः ॥ कृतकृत्याः पुनः सर्वे गच्छध्वं स्वं स्वमालयम् ॥ १९ ॥ तथास्त्विति सुराः सर्वे कश्यपोऽदितिरेव च ॥ वन्दित्वा ब्रह्मचरणौ गताः सौम्यां दिशं प्रति ॥ २० ॥ ते चिरेणैव संप्राप्ताः क्षीरोदस्योत्तरं तटम् ॥ यथोद्दिष्टं भगवता ब्रह्मणा ब्रह्मवादिना ॥ २१ ॥ तेऽतीत्य सागरान्सर्वान्पर्वतांश्च बहूनक्षणात् ॥ नद्यश्च विविधा दिव्याः पृथिव्यां सुरसत्तमाः ॥ २२ ॥

देंगे और सब देवता उनसे कहैं कि आप हमारे भ्राता हो ॥ १७ ॥ सब लोकके रचनेवाले भगवान् उनसे तथास्तु कहेंगे ॥ १८ ॥ तिस ईश्वरसे वरको प्राप्त हो कृतकृत्य हुए सब देवता अपने अपने स्थानोंको गमन करें ॥ १९ ॥ ऐसेही हो, यह कहके सब देवता और कश्यप अदिति यह सब ब्रह्माजीके चरणारविन्दोंमें नमस्कार कर उत्तर दिशाको जाने लगे ॥ २० ॥ और थोडेसेही कालमें ब्रह्मवादी ब्रह्माजीके कहे हुए क्षीरसागरको प्राप्त हुए ॥ २१ ॥ वे बहुतसे समुद्र, पर्वत, वन, दिव्यरूप नदीको क्षणमें उल्लंघन कर अनेक प्रकारकी नदी और पृथ्वी देखते हुए ॥ २२ ॥

तथा घोर रूप और सब प्राणियोंसे वर्जित सूर्यके प्रकाशसेभी रहित, मर्यादाहीन, अंधेरेसे आच्छादित दिशाको देखते कश्यपसहित सब देवता
अमृतस्थानको प्राप्त हुए ॥ २३ ॥ कश्यपजीके सहित सब देवता दीक्षाको ग्रहण कर व्रतको सहस्रों वर्षोंतक धारण किये रहे ॥ २४ ॥
देवताओंका ईश, योगरूप और नारायण देव सहस्रनेत्रोंवाले ईश्वरको प्रसन्न करनेको ब्रह्मचर्य मौनस्थान आसन शान्ति दमसे देवता उग्र तप करने
लगे ॥ २५ ॥ और महात्मा कश्यपजी उस ईश्वरको प्रसन्न करनेके अर्थ वेदोक्त उत्तम स्तोत्रको कहने लगे, जिसको परम स्तव कहते हैं ॥ २६ ॥

पश्यन्ति च सुघोरां वै सर्वसत्त्वविवर्जिताम् ॥ अभास्कराममर्यादां तमसा संवृतां दिशम् ॥ अमृतं स्थानमासाद्य कश्यपेन सुरैः सह॥२३॥
दीक्षिताः कामदं दिव्यं व्रतं वर्षसहस्रकम् ॥ प्रसादार्थं सुरेशाय तस्मै योगाय धीमते ॥ नारायणाय देवाय सहस्राक्षाय धीमते ॥२४॥
ब्रह्मचर्येण मौनेन स्थानवीरासनेन च ॥ दमेन च सुराः सर्वे तपो दुश्चरमास्थिताः ॥ २५ ॥ कश्यपस्तत्र भगवान्प्रसादार्थं महा-
त्मनः ॥ उदीरयति वेदोक्तं यमाहुः परमं स्तवम् ॥ २६ ॥ इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे भविष्यपर्वणि वामनप्रादुर्भावे सप्त-
षष्टितमोऽध्यायः ॥ ६७ ॥ कश्यप उवाच ॥ नमोस्तु १ देवदेवेश एकशृङ्ग वराह वृषार्चिष ४ वृषसिन्धो ५ वृषाकपे सुरवृषभ सुर
निर्मित अनिर्मित भद्रकपिल विष्वक्सेन ध्रुव धर्म धर्मराज वैकुण्ठ त्रेतावर्त्त १७ अनादिमध्यनिधन धनंजय शुचिश्रवः अग्निज २१
वृष्णिज अज अजय मृतेशय सनातन विधातस्त्रिकाम त्रिधाम त्रिककुत् ३० ककुद्मिन् दुन्दुभे ३२ महानाभ लोकनाभ पद्मनाभ
विरिञ्चे वरिष्ठ बहुरूप विरूप विश्वरूपाक्षयाक्षय सत्याक्षर हंसाक्षर ४३ हव्यभुक् खण्डपरशो शुक्र मुञ्जकेशो हंस महाहंस महद्-

इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे भविष्यपर्वणि भाषायां वामने सप्तषष्टितमोऽध्यायः ॥ ६७ ॥ अब वेदोक्त स्तोत्र कहा जाता है. कश्यप उवाच ।
नमोस्तु १ ते देवदेवेश एकशृंग वराह वृषार्चिष (धर्मके खंभ) ४ वृषसिंधो (धर्मसागर) ५ वृषाकपे सुरवृषभ सुरनिर्मित अनिर्मित भद्र कपिल विष्व-
क्सेन ध्रुव धर्म धर्मराज वैकुंठ त्रेतावर्त्त (श्रौतकर्मसे त्रेतायुगके प्रवर्त्तक) १७ अनादिमध्यनिधन धनंजय शुचिश्रवः अग्निज (कार्तिकेय) २१
वृष्णिज अज अजय मृतेशय सनातन विधातस्त्रिकाम त्रिधाम त्रिककुत् (धर्म, ज्ञान, वैराग्यके स्कंध) ३० ककुद्मिन् दुन्दुभे (विजयके शब्द-
वाले) ३२ महानाभ लोकनाभ पद्मनाभ विरंचे वरिष्ठ बहुरूप विरूप विश्वरूपाक्ष, क्षयाक्षय सत्याक्षर हंसाक्षर (अजपामंत्र) ४३ हव्यभुक्; खण्ड-

परशो, शुक्रमुंजकेश, हंस महाहंस, महदक्षर, हृषीकेश सूक्ष्म, परमसूक्ष्म तुराषाट् विश्वमूर्त्त सुराग्रज, नील, निस्तमो, विरजस्तमोरजः सत्त्वधाम, सर्व लोक सर्वलोकप्रतिष्ठ शिपिविष्ट सुतप, तपोग्र, अग्र, अग्रज, धर्मनाभ गभस्तिनाभ, धर्मनेम, सत्यधाम, सत्याक्षर, गभस्तिनेमे विपाप्मन् चन्द्ररथ (समष्टिमनोधिरूढ विराडात्मा) ७४ विपाप्मन् त्वमेव समुद्रवास (आपही समुद्रमें निवास करते हो) अजैकपाद् सहस्रशीर्ष सहस्रसंमित, महाशीर्ष, सहस्रदृक्, सहस्रपात् अधोमुख, महामुख महापुरुष, पुरुषोत्तम, सहस्रबाहो, सहस्रमूर्त, सहस्रास्य, सहस्राक्ष, सहस्रभुज, सहस्रभुव, सहस्रशस्त्वामाहुर्वेदाः (वेदआपके सहस्रों रूप कहता है) विश्वदेव, विश्वसंभव, सर्वेषामेव देवानां सोभग आदो गतिः (धर्मरूप) ९७ विश्वं त्वमाप्यायनः विश्वं त्वामाहुः (तुम विश्वरूप हो)

क्षर हृषीकेश सूक्ष्म परसूक्ष्म तुराषाट् विश्वमूर्तं सुराग्रज नील निस्तमो विरजस्तमोरजः सत्त्वधाम सर्वलोकप्रतिष्ठ शिपिविष्ट सुतपस्तपोग्र अग्र अग्रज धर्मनाभ गभस्तिनाभ धर्मनेम सत्यधाम सत्याक्षर गभस्तिनेमे विपाप्मन् चन्द्ररथ ७४ त्वमेव समुद्रवासाः अजैकपात् सहस्रशीर्षं सहस्रसंमित महाशीर्षं सहस्रदृक् सहस्रपात् अधोमुख महामुख महापुरुष पुरुषोत्तम सहस्रबाहो सहस्रमूर्ते सहस्रास्य सहस्राक्ष सहस्रभुज सहस्रभुव सहस्रशस्त्वामाहुर्वेदाः विश्वदेव विश्वसंभव सर्वेषामेव देवानां सोभग आदो गतिः ९७ विश्वं त्वमाप्यायनः विश्वं त्वामाहुः पुष्पहास परमवरदस्त्वमेव त्वमेव वौषट् ओंकारवषट्कारं त्वामेकमाहुरग्र्यं मखभागप्राशिनम् शतधार १०५ सहस्रधार १०६ भूर्द भुवर्द स्वर्द भूर्भुवःस्वर्द त्वमेव भूतं भुवनं त्वं स्वधा त्वमेव ब्रह्मेशय ब्रह्ममय ब्रह्मादिस्त्वमेव द्योरसि पृथिव्यासि पूषासि मातरिश्वासि धर्मोसि मघवासि होता पोता नेता हन्ता मन्ता होम्यहोता। परात्परस्त्वम् होम्यहोता त्वमेव आपोसि विश्ववाक् धात्रा परमेण धाम्ना त्वमेव दिग्भ्यः स्रुक् १३२ स्रुग्भाण्ड १३३ त्वं गण इष्टोसि इज्योसि ईड्योसि

पुष्पहास परमवरदस्त्वमेव (तुमही परम वरदाता हो) त्वमेव वौषट् ओंकारवषट्कारं त्वामेकमाहुरग्र्यं मखभागप्राशिनम् (आपहीको अग्र और यज्ञभागका भोक्ता कहते हैं) शतधार १०५ सहस्रधार १०६ भूर्द भुवर्द स्वर्द भूर्भुवःस्वर्द त्वमेव भूतं भुवनं त्वं स्वधा त्वमेव ब्रह्मेशय ब्रह्ममय ब्रह्मादिस्त्वमेव द्यौरसि पृथिव्यासि (स्वर्ग पृथ्वी तुम हो) पूषासि मातरिश्वासि (पवन हो) धर्म्मोसि मघवासि (इन्द्र हो) होता पोता नेता हन्ता मन्ता होम्यहोता परात्परस्त्वं होम्य होता त्वमेव (होमकी वस्तू और होता तुम हो) आपोसि विश्ववाक् धात्रा परमेण धाम्ना त्वमेव दिग्भ्यः स्रुक् १३२ स्रुग्भाण्ड१३३ त्वं

गण इष्टोसि इज्योसि ईड्योसि त्वष्टा त्वमसि समिद्धस्त्वमेव गतिर्गतिमतामसि (गतिवालोंकी आप गति हो) मोक्षोसि योगोसि गुह्योसि सिद्धोसि धन्योसि धातासि परमोसि यज्ञोसि सोमोसि यूपोसि दक्षिणासि दीक्षासि विश्वमसि स्थविष्ठ स्थविर विश्वतुराषाट् हिरण्यगर्भ हिरण्यनाभ हिरण्यनारायण नारायणांतर, नृणामयन आदित्यवर्ण आदित्यतेजः महापुरुष सुरोत्तम आदिदेव, पद्मनाभ, पद्मेशय, पद्माक्ष पद्मगर्भ, हिरण्याग्रकेश शुक्र, विश्वेदेव, विश्वतोमुख, विश्वाक्ष, विश्वसंभव, विश्वभुक त्वमेव (यह सब आपही हो) भूरिविक्रम, चक्रक्रम, त्रिभुवन सुविक्रम स्वर्विक्रम, बभ्रु, सुविभुः प्रभाकर, शम्भुः

त्वष्टा त्वमसि समिद्धस्त्वमेव गतिर्गतिमतामसि मोक्षोसि योगोसि गुह्योसि सिद्धोसि धन्योसि धातासि परमोसि यज्ञोसि सोमोसि यूपोसि दक्षिणासि दीक्षासि विश्वमसि स्थविष्ठ स्थविर विश्व तुराषाट् हिरण्यगर्भ हिरण्यनाभ हिरण्यनारायण नारायणान्तर नृणामयन आदित्यवर्ण आदित्यतेजः महापुरुष सुरोत्तम आदिदेव पद्मनाभ पद्मेशय पद्माक्ष पद्मगर्भ हिरण्याग्रकेश शुक्रविश्वदेव विश्वतोमुख विश्वाक्ष विश्वसंभव विश्वभुक्त्वमेव भूरिविक्रम चक्रक्रम त्रिभुवन सुविक्रम स्वर्विक्रम बभ्रु सुविभुः प्रभाकर शंभुः स्वयंभूश्च भूतादिः भूतात्मन् महाभूत विश्वभुक्त्वमेव विश्वगोप्तासि विश्वंभर पवित्रमसि हविर्विशारद हविकर्मा अमृतेन्धन सुरासुरगुरो महादिदेव नृदेव ऊर्ध्वकर्मन् २०२ पूतात्मन् अमृतेश दिवस्पृक् विश्वस्य पते घृताच्यासि २०७ अनन्तकर्मन् २०८ द्रुहिणवंश स्ववंश विश्वपास्त्वं त्वमेव विश्वं बिभर्षि वरार्थिनो नस्त्रायस्वेति २१३ ॥ इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे भविष्यपर्वणि वामनप्रादुर्भावे अष्टषष्टितमोऽध्यायः ॥ ६८ ॥

स्वयम्भूश्च, भूतादिः भूतात्मन्, महाभूत, विश्वभुक् त्वमेव विश्वगोप्तासि (आपही संसारके रक्षक हो) विश्वंभर, पवित्रमसि, हविर्विशारद, हविःकर्मा अमृतेन्धन, सुरासुरगुरो महादिदेव नृदेव ऊर्ध्वकर्मन् २०२ पूतात्मन् अमृतेश दिवस्पृक् विश्वस्य पते घृताच्यसि २०७ अनन्तकर्मन् २०८ द्रुहिणवंश स्ववंश विश्वपास्त्वं त्वमेव विश्वं बिभर्षि वरार्थिनो नस्त्रायस्वेति ॥ इस स्तोत्रके पाठसे हे देव ! तू हमारी रक्षा कर २१३ ॥ इति श्रीम० खिलेषु ह०

भविष्यपर्वणि भाषायां वामने महापुरुषस्तवे अष्टषष्टितमोऽध्यायः ॥ ६८ ॥ वैशम्पायनजी बोले; कि वेदको जाननेवाले कश्यपजीके मुखसे कहे हुए इस स्तोत्रको सुनकर भगवान् नारायण ॥ १ ॥ मेघके समान शब्दवाले और स्निग्ध गंभीर रूप ऐसे देवताओंके शब्दको सुनकर प्रीतियुक्त मनसे स्पष्टरूप ॥ २ ॥ वचनको महात्मा देवताओंके प्रति कहने लगे वह वाणी स्वच्छ पद अक्षरयुक्त थी; आकाशसे शब्द सुनने लगा और विष्णुका साक्षात् दर्शन नहीं हुआ, वह श्रीमान् देव विष्णु प्रसन्न हो कहने लगे ॥ ३ ॥ भगवान् बोले; कि हे देवताओ ! तुम्हारे निश्चयसे मैं तुम्हारे ऊपर प्रसन्न हुआ

वैशम्पायन उवाच ॥ नारायणस्तु भगवाञ्छ्रुत्वैतत्परमं स्तवम् ॥ ब्रह्मज्ञेन द्विजेन्द्रेण कश्यपेन समीरितम् ॥ १ ॥ स्निग्धगम्भीरनिर्घोषजीमूतस्वननिःस्वनम् ॥ मनसा प्रीतियुक्तेन विबुधानां महात्मनाम् ॥ २॥ उवाच वचनं सम्यग् हृष्टपुष्टपदाक्षरम् ॥ आकाशाच्छुश्रुवे शब्दो दर्शनं नोपलभ्यते ॥ श्रीमान् प्रीतमना देवः प्रोवाच प्रभुरीश्वरः ॥ ३ ॥ विष्णुरुवाच ॥ प्रीतोऽस्मि वः सुरश्रेष्ठाः सर्वे मत्तो विनिश्चयम् ॥ वरं वृणुत भद्रं वो वरदोऽस्मि सुरोत्तमाः ॥ ४ ॥ कश्यप उवाच ॥ यदेव भगवान् प्रीतः सर्वेषाममरोत्तमः ॥ तदेव कृतकृत्याः स्म त्वं हि नः परमा गतिः ॥ ५ ॥ यदि प्रसन्नो भगवान् दातव्यो वा वरो यदि ॥ वासवस्यानुजो भ्राता ज्ञातीनां नन्दिवर्द्धनः ॥ ६ ॥ अदित्यां वामनः श्रीमान् भगवानस्तु वै सुरः ॥ वैशम्पायन उवाच ॥ अदितिर्देवमाता च एतमेवार्थमुत्तमम् ॥ पुत्रार्थं वरदं प्राह भगवन्तं वरार्थिनी ॥ ७ ॥ अदितिरुवाच ॥ याचे त्वां पुत्रकामा वै भवान्पुत्रो भवत्विति ॥ निःश्रेयसाय सर्वेषां देवानां हि महात्मनाम् ॥ ८ ॥

हूं, सो वर मांगो, तुम्हारा कल्याण हो मैं तुमको वर देनेवाला हूं ॥ ४ ॥ कश्यपऋषि बोले; कि हे देवश्रेष्ठ ! जो इस सबोंपर तुम प्रसन्न हुए हो तो हमभी सब कृतकृत्य हुए कारण कि तुमही हमारी परमगति हो ॥ ५ ॥ जो आप प्रसन्न होकर वर देना चाहते हो तो इन्द्रके छोटे भ्राता देवताओंके आनंदको वढानेवाले ॥ ६ ॥ तुम मेरे पुत्र वामननामसे अदितिके शरीरमें जन्म लो. वैशम्पायन बोले; कि देवताओंकी माता अदितिभी पुत्र होनेके निमित्त वर मांगने लगी ॥ ७ ॥ अदिति बोली; कि हे देव ! तुम मेरे पुत्र हो जाओ और संपूर्ण देवताओंका मंगल करो ॥ ८ ॥

देवा ऊचुः ॥ भ्राता भर्ता चैं दाता च शरणं च भवस्व नः ॥ अदित्याः पुत्रतां याते त्वयि देवाः सवासवाः ॥ देवशब्दं वहिष्यन्ति
कश्यपस्यात्मजो भव ॥ ९ ॥ वैशम्पायन उवाच ॥ ततस्तानब्रवीद्विष्णुर्देवान् कश्यपमेव च ॥ एवं भवतु भद्रं वो यथेष्टं काममा-
प्नुत ॥ सर्वेषामेव युष्माकं ये भविष्यन्ति शत्रवः ॥ १० ॥ मुहूर्तमपि ते सर्वे न स्थास्यन्ति ममाग्रतः ॥ हत्वासुरगणान्सर्वान्ये
चान्ये देवशत्रवः ॥ ११ ॥ करिष्ये देवताः सर्वा यज्ञभागाग्रभोजिनः ॥ हव्यादांश्च सुरान्सर्वान् कव्यादांश्च पितॄनपि ॥ १२ ॥
करिष्ये विबुधश्रेष्ठाः पारमेष्ठ्येन कर्मणा ॥ यथागतेन मार्गेण निवर्त्तध्वं सुरोत्तमाः ॥ १३ ॥ देवमातुस्तथादित्याः कश्यपस्यामि-
त्मनः ॥ यथामनीषितं कर्ता गच्छध्वं स्वं स्वमालयम् ॥ १४ ॥ वैशम्पायन उवाच ॥ एवमुक्ते तु वचने विष्णुना प्रभविष्णुना ॥
देवाः प्रहृष्टमनसः पूजयन्ति स्म सर्वशः ॥ १५ ॥ विश्वेदेवा महात्मानः कश्यपोऽदितिरेव च ॥ साध्या मरुद्गणाश्चैव शक्रश्चैव महा-
बलः ॥ नमस्कृत्य सुरेशाय तस्मै देवाय रंहसे ॥ १६ ॥

महात्मा देवता कहने लगे कि हमारे कल्याणके अर्थ हे देव ! हमारे भ्राता, स्वामी, भर्ता, धाता और शरण तुमही हो. हे देव ! जब तुम अदितिके पुत्र-भावको प्राप्त होंगे, तब इन्द्र आदि सब देवता तुमको देव कहकर बोलेंगे, इस कारण तुम कश्यपजीके पुत्र हो ॥ ९ ॥ वैशम्पायन कहने लगे; कि इन पूर्वोक्त वचनोंको सुन विष्णुभगवान् देवता और कश्यपमुनिसे कहने लगे कि, ऐसेही होगा, और तुम्हारे मंगलकी प्राप्ति होगी ॥ १० ॥ तुम मनोवांछित कामनाको प्राप्त होगे और जो तुम्हारे शत्रु हैं, वे सब एक मुहूर्तभी मेरे सन्मुख स्थित नहीं रहेंगे, सब दैत्योंके समूहको और शेष रहे देवशत्रुओंको मारके देवताओंको यज्ञभागमें अगाडी भोजन करनेवाला करूंगा ॥ ११ ॥ और हे देवश्रेष्ठो ! हव्यके खानेवाले देवताओंको और कव्यके खानेवाले पितरोंको करूंगा ॥ १२ ॥ यह कार्य प्राजापत्य विधानसे करूंगा. हे देवताओ ! जिस मार्गसे तुम आये हो उसी मार्गके द्वारा तुम गमन करो ॥ १३ ॥ देवता-ओंकी माता अदितिका और महात्मा रूप कश्यपजीका मनोवांछित सफल करूंगा इस कारण तुम अपने अपने स्थानको प्राप्त हो ॥ १४ ॥ वैशम्पायन बोले; विष्णु भगवान्के यह वचन सुनकर प्रसन्न हुए देवता भली प्रकारसे विष्णुको पूजने लगे ॥ १५ ॥ फिर विश्वेदेवा, कश्यपजी, अदिति, साध्य देवता

मरुद्गण महाबली इन्द्र यह सब तिस विष्णुदेवको प्रणाम कर ॥ १६ ॥ पूर्वदिशामें कश्यपजीके आश्रममें प्राप्त हुए तब ब्रह्मर्षिगणोंसे सेवित कश्यपजीके आश्रममें जाकर वेदशास्त्रका पाठ करते इस इच्छासे सब देवता विचरने लगे कि अदिति कब गर्भको धारण करेगी ॥ १७ ॥ तब देवताओंकी माता अदितिने भूतात्मा महात्मा अतितेजवाले गर्भको दिव्य सहस्र वर्षोंतक धारण किया ॥ १८ ॥ जब दिव्य सहस्र वर्ष पूर्ण हो गये तब देवताओंके भयको दूर करनेवाले और दैत्योंको नाशनेवाले ॥ १९ ॥ उत्तम गर्भको जनाती हुई और गर्भस्थित विष्णुने त्रिलोकीके तेजोंको ग्रहण कर

प्रयाताः प्राग्दिशं दिव्यं विपुलं कश्यपाश्रमम् ॥ गत्वा त आश्रमं तत्र ब्रह्मर्षिगणसेवितम् ॥ चेरुः स्वाध्यायनियता अदित्या गर्भमीप्सवः ॥ १७ ॥ अदितिर्देवमाता च गर्भं दध्रेऽतितेजसम् ॥ भूतात्मानं महात्मानं दिव्यं वर्षसहस्रकम् ॥ १८ ॥ पूर्णे वर्षसहस्रे तु प्रसूता गर्भमुत्तमम् ॥ सुराणां शरणं देवमसुराणां विनाशनम् ॥ १९ ॥ गर्भस्थेन तु देवेन परित्राताः सुरास्तदा ॥ आददानेन तेजांसि त्रैलोक्यस्य महात्मना ॥ २० ॥ तस्मिन् जाते तु देवेशे त्रैलोक्यस्य सुखावहे ॥ भयदे दैत्यसंघानां सुराणां नन्दिवर्द्धने ॥ २१ ॥ इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे भविष्यपर्वणि वामनप्रादुर्भावे एकोनसप्ततितमोऽध्यायः ॥ ६९ ॥ वैशम्पायन उवाच ॥ प्रजानां पतयः सप्त सप्त चैव महर्षयः ॥ तस्य देवस्य जातस्य नमस्कारं प्रचक्रिरे ॥ १ ॥ भारद्वाजः कश्यपो गौतमश्च विश्वामित्रो जमदग्निर्वसिष्ठः ॥ यश्चोदितो भास्करे संप्रणष्टे सोऽप्यत्रात्रिर्भगवानाजगाम ॥ २ ॥ मरीचिराङ्गिराश्चैव पुलस्त्यः पुलहः क्रतुः ॥ दक्षप्रजापतिश्चैव नमस्कारं प्रचक्रिरे ॥ ३ ॥

सब देवताओंकी रक्षा की ॥ २० ॥ जब त्रिलोकीके आनंददाता नारायणने जन्म लिया तब देवताओंको आनंद और दैत्योंको महाभय हुआ ॥ २१ ॥ इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे भविष्यपर्वणि भाषायां वामने वामनप्रसूतौ एकोनसप्ततितमोऽध्यायः ॥ ६९ ॥ वैशम्पायन कहने लगे; कि जब वामनजीका जन्म हुआ तब सात प्रजापति और सात महर्षि उनको नमस्कार करने लगे ॥ १ ॥ भरद्वाज, कश्यप, गौतम, विश्वामित्र, जमदग्नि, वसिष्ठ और भास्करके कर्ता अत्रि आये ॥ २ ॥ मरीचि, अंगिरा, पुलस्त्य, पुलह, क्रतु, दक्ष प्रजापति नमस्कार करने लगे ॥ ३ ॥

वसिष्ठका पुत्र, और्व, स्तम्ब, कश्यप, कपीवान्, अकपीवान्, दत्तात्रेय, अत्रि, च्यवन ॥ ४ ॥ वासिष्ठ नामसे विख्यात सात वसिष्ठके पुत्र हिरण्यगर्भके पुत्र ॥ ५ ॥ तेजस्वी गार्ग्य, पृथु, अन्यजन्य, वामन, देवबाहु, यदुध्र, सोमको पुत्र पर्जन्य ॥ ६ ॥ हिरण्यरोमा, वेदशिरा, सत्यनेत्र, विश्वेदेवा, अतिविश्व, दूसरा च्यवन, सुधामा, विरजा ॥ ७ ॥ अतिनाम, सहिष्णु, यह सब नमस्कार करने लगे और प्रकाशमान शरीरवाले और संपूर्ण गहनोंसे

और्वो वसिष्ठपुत्रश्च स्तम्बः कश्यप एव च ॥ कपीवानकपीवांश्च दत्तोऽत्रिश्च्यवनस्तथा ॥ ४ ॥ वसिष्ठपुत्राः सप्तासन्वासिष्ठा इति विश्रुताः ॥ हिरण्यगर्भस्य सुताः पूर्वजाताः सुतेजसः ॥ ५ ॥ गार्ग्यः पृथुस्तथैवान्यो जन्यो वामन एव च ॥ देवबाहुर्यदुध्रश्च पर्जन्यश्चैव सोमजः ॥ ६ ॥ हिरण्यरोमा वेदशिराः सप्तनेत्रस्तथैव च ॥ विश्वोऽतिविश्वश्च्यवनः सुधामा विरजास्तथा ॥ ७ ॥ अतिनामा सहिष्णुश्च नमस्कारमकुर्वत ॥ उद्योतमाना वपुषा सर्वाभरणभूषिताः ॥ ८ ॥ उपनृत्यन्ति देवेशं विष्णुमप्सरसां वराः ॥ ततो गन्धर्वतूर्येषु प्रणदत्सु विहायसि ॥ ९ ॥ बहुभिः सह गन्धर्वैः प्रागायत च तुम्बुरुः ॥ महाश्रुतिश्चित्रशिरा ऊर्णायुरनघस्तथा ॥ १० ॥ गोमायुः सूर्यवर्चाश्च सोमवर्चाश्च सप्तमः ॥ युगपस्तृणपः कार्ष्णिर्नन्दिश्च त्रिशिरास्तथा ॥ ११ ॥ त्रयोदशः शालिशिराः पर्जन्यश्च चतुर्दशः ॥ कलिः पञ्चदशश्चात्र तत्रैव तु महीपते ॥ १२ ॥ दश पञ्च त्विमे प्रोक्ता नारदश्चैव षोडशः ॥ हाहा हूहूश्च गन्धर्वौ हंसश्चैव महाद्युतिः ॥ १३ ॥

भूषित ॥ ८ ॥ अप्सराओंके गणभी नृत्य करने लगे और गन्धर्व अपने बाजोंको बजाने लगे ॥ ९ ॥ और आकाशमें गंधर्वोंके संग तुंबरु गंधर्व गान करने लगा और महाश्रुति, चित्रशिरा, ऊर्णायु, अनघ ॥ १० ॥ गोमायु, सूर्यवर्चा, सोमवर्चा, सप्तम युगप, तृणप, कार्ष्णि, नंदि, त्रिशिरा ॥ ११ ॥ तेरहवां शालिशिरा, चौदहवां पर्जन्य, कलि पन्द्रहवां ॥ १२ ॥ यह पन्द्रह और सोलहवें नारदजी, हाहा हूहू गंधर्व और अतिकीर्तिवाले हंस ॥ १३ ॥

यह देव, गन्धर्व, केशवका गान करने लगे और प्रसन्न हुई और सब प्रकारके गहनोंसे भूषित ऐसी अप्सरा ॥ १४ ॥ सुंदर शरीर, सुन्दर जंघावाली, सर्वांग शुभ्र दर्शनवाली बडे नेत्रोंवाली नृत्य और गान करने लगीं ॥ १५ ॥ अनेक सुमध्या, चारुमध्या, प्रिया, मुख्या, वरानना, अनूका, जामी, मिश्रकेशी, अलंबुषा ॥ १६ ॥ मरीचि, शुचिका, विद्युत्पर्णा, तिलोत्तमा, अद्रिका, लक्ष्मणा, रम्भा, मनोरमा ॥ १७ ॥ असिता, सुबाहु, सुप्रिया, सुभगा, उर्वशी, चित्रलेखा, सुग्रीवी, सुलोचना ॥ १८ ॥ पुण्डरीका, सुगंधा और सुरथा, प्रमाथिनी, नन्दा, शारद्वती औरभी

सर्वे ते देवगन्धर्वा उपगायन्ति केशवम् ॥ तथैवाप्सरसो हृष्टाः सर्वालंकारभूषिताः ॥ १४ ॥ वपुष्मन्तः सुजघनाः सर्वाङ्गशुभ-दर्शनाः ॥ ननृतुश्च महाभागा जगुश्चायतलोचनाः ॥ १५ ॥ सुमध्याश्चारुमध्याश्च प्रियमुख्या वराननाः ॥ अनूकाथ तथा जामी मिश्रकेशी त्वलम्बुषा ॥ १६ ॥ मरीचिशुचिकाश्चैव विद्युत्पूर्णा तिलोत्तमा ॥ अद्रिका लक्षणा चैव रम्भा तद्वन्मनोरमा ॥ १७ ॥ असिता च सुबाहुश्च सुप्रिया सुभगा तथा ॥ उर्वशी चित्रलेखा च सुग्रीवा च सुलोचना ॥ १८ ॥ पुण्डरीका सुगन्धा च सुरथा च प्रमाथिनी ॥ नन्दा शारद्वती चैव तथान्यास्तत्र संघशः ॥ १९ ॥ मेनका सहजन्या च पर्णिका पुञ्जिकस्थला ॥ एताश्चाप्सर-सोऽन्याश्च प्रनृत्यन्ति सहस्रशः ॥ २० ॥ धातार्यमा च मित्रश्च वरुणोंऽशो भगस्तथा ॥ इन्द्रो विवस्वान् पूषा च त्वष्टा च सविता तथा ॥ २१ ॥ कथितो विष्णुरित्येवं काश्यपेयो गणस्तथा ॥ इत्येते द्वादशादित्या ज्वलन्तः सूर्यवर्चसः ॥ २२ ॥ चक्रुस्तस्य सुरेशस्य नमस्कारं महात्मनः ॥ मृगव्याधश्च सर्पश्च निर्ऋतिश्च महाबलः ॥ २३ ॥ अजेकपादहिर्बुध्न्यः पिनाकी चापराजितः ॥ दहनोऽथेश्वरश्चैव कपाली च विशांपते ॥ २४ ॥

अनेकों ॥ १९ ॥ मेनका, सहजन्या, पर्णिका, पुंजिकस्थला यहभी और अन्यभी सहस्रों अप्सरा नृत्य करने लगीं ॥ २० ॥ धाता, अर्यमा, मित्र, वरुण, अंश, भग, इन्द्र, पूषा, विवस्वान्, त्वष्टा, सविता ॥ २१ ॥ विष्णु, यह काश्यपगण कहा है और अग्निके समान तेजवाले बारह सूर्य ॥ २२ ॥ उन जन्मे हुए सुरेशको नमस्कार करने लगे और मृगव्याध सर्प निर्ऋति ॥ २३ ॥ अजैकपाद, अहिर्बुध्न्य,

पिनाकी, अपराजित, दहन, ईश्वर, कपाली ॥ २४ ॥ स्थाणु भव भगवान् रुद्र स्थित हुए और दोनों अश्विनीकुमार, आठ वसु महाबलवाले
मरुत ॥ २५ ॥ विश्वेदेवा, साध्य यह हाथ जोडकर स्थित हुए और शेषनागजीके छोटे भ्राता महाभाग वासुकी आदि ॥ २६ ॥ अपहर्ता, महाबली
तक्षक अधस नामोंवाले महाक्रोधी महाबलवाले सर्प ॥ २७ ॥ औरभी बहुतसे सर्प सब अंजली बांधकर तिन जन्मे हुए ईश्वरको नमस्कार करने लगे
तार्क्ष्य, अरिष्टनेमि और महाबली गरुड ॥ २८ ॥ और अरुण, आरुणि, गरुड अंजली बांधकर स्थित हुए और लोककर्ता श्रीमान् ब्रह्माजीभी स्वयं

स्थाणुर्भगश्च भगवान्रुद्रास्तत्रावतस्थिरे ॥ अश्विनौ वसवश्चाष्टौ मरुतश्च महाबलाः ॥ २५ ॥ विश्वेदेवाश्च साध्याश्च तस्य प्राञ्जलयः
स्थिताः ॥ शेषानुजा महाभागा वासुकिप्रमुखास्तथा ॥ २६ ॥ कच्छपश्चापहर्त्ता च तक्षकश्च महाबलः ॥ अधृष्टास्तेजसा युक्ता
महाक्रोधा महाबलाः ॥ २७ ॥ एते नागा महात्मानस्तस्मै प्राञ्जलयः स्थिताः ॥ तार्क्ष्यश्चारिष्टनेमिश्च गरुडश्च महाबलः ॥ २८ ॥
अरुणश्चारुणिश्चैव वैनतेया ह्युपस्थिताः ॥ पितामहश्च भगवान्स्वयमागम्य लोककृत् ॥ प्राह चैवं गुरुः श्रीमान्सह सर्वैर्महात्मभिः ॥ २९ ॥
ब्रह्मोवाच ॥ यस्मात्प्रसूयते लोकः प्रभविष्णुः सनातनः ॥ तस्माल्लोकेश्वरः श्रीमान्विष्णुरेव भवत्वयम् ॥ ३० ॥ एवमुक्त्वा तु भग-
वान्सार्द्धं देवर्षिभिः प्रभुः ॥ नमस्कृत्वा सुरेशाय जगाम त्रिदिवं पुनः ॥ ३१ ॥ स तु जातः सुरेशानः कश्यपस्यात्मजः प्रभुः ॥ नव-
दुर्दिनमेघाभो रक्ताक्षो वामनाकृतिः ॥ ३२ ॥ श्रीवत्सेनोरसि श्रीमान् रोमजातेन राजता ॥ उत्फुल्ललोचनाः सर्वाः पश्यन्त्यप्सरस-
स्तदा ॥ ३३ ॥ दिवि सूर्यसहस्रस्य भवेद्युगपदुत्थिता ॥ यदि भाः सदृशी सा स्याद्भासा तस्य महात्मनः ॥ ३४ ॥

सब महात्माओंके संग आकर तहां कहने लगे ॥ २९ ॥ ब्रह्माजी बोले; कि जिससे यह लोक उत्पन्न होता है वह सनातन विष्णु यही है और लोकोंके
ईश्वर श्रीमान् विष्णुभी यही है ॥ ३० ॥ यह कहकर देवर्षियोंके सहित ब्रह्माजी नमस्कार कर स्वर्गको चले गये ॥ ३१ ॥ और देवताओंके स्वामी
कश्यपके पुत्र नवीन दुर्दिनमें मेघके समान कान्तिवाले लालनेत्रवाले वामनरूपको धारण किये ॥ ३२ ॥ श्रीवत्ससे शोभित वामनजी उत्पन्न हुए; तब
उत्फुल्लनेत्रोंवाली सब अप्सरा उनको देखने लगीं ॥ ३३ ॥ यदि आकाशमें सहस्र सूर्योंसे एकवेर जो कान्ति उपजती हैं; तैसीही कान्ति उन महात्माकी

॥१६३॥

थी ॥ ३४ ॥ और देवर्षियोंके समान श्रीमान् भूत भविष्यत् वर्त्तमानको जाननेवाले, शुद्धरोमोंवाले, बडी छाती सब प्रकारके तेजोंसे संयुक्त ॥ ३५ ॥ पुण्यशीलोंके गतिरूप, पापकर्मशालोंको अगतिरूप, योगको जाननेवाले ॥ ३६ ॥ महात्मा जिनको जानते हैं आठ गुणोंवाले देवताओंमें श्रेष्ठ और मोक्षकी इच्छावाले ब्राह्मण जिनको प्राप्त हो ॥ ३७ ॥ भवभीरु जन्म और मरणसे छूट जाते हैं, और सब आश्रमनिवासी जिसको तप कहते हैं ॥ ३८ ॥ और जिसको उग्र व्रत करनेवाले मुनि सेवते रहते हैं, और सर्पोंमें अनन्त नामसे विख्यात और सब प्रकारके सर्पोंकरके सेवित ॥ ३९ ॥ सहस्र शिरो-

सुरर्षिप्रतिमः श्रीमान्भूर्भुवो भूतभावनः ॥ शुचिरोमा महास्कन्धः सर्वतेजोमयः प्रभुः॥३५॥ या गतिः पुण्यकीर्तीनामगतिः पापकर्म-णाम् ॥ योगसिद्धा महात्मानो यं विदुर्योगमुत्तमम् ॥ ३६ ॥ यस्याष्टगुणमैश्वर्यं यमाहुर्देवसत्तमम् ॥ यं प्राप्य शाश्वतं विप्रा नियता मोक्षकाङ्क्षिणः ॥ ३७ ॥ जन्मनो मरणाच्चैव मुच्यन्ते भवभीरवः ॥ यदेतत्तप इत्याहुः सर्वाश्रमनिवासिनः ॥ ३८ ॥ सेवन्ते यं यताहारा दुश्चरं व्रतमास्थिताः ॥ योऽनन्त इति नागेषु सेव्यते सर्वभोगिभिः ॥ ३९ ॥ सहस्रमूर्धा रक्ताक्षः शेषादिभिरनुत्तमैः ॥ यो यज्ञ इति विप्रेन्द्रैरिज्यते स्वर्गलिप्सुभिः ॥४०॥ नानास्थानगतः श्रीमानेकः कविरनुत्तमः ॥ यं वेदा गान्ति वेत्तारं यज्ञभागप्रदा-यिनम् ॥ ४१ ॥ वृषार्चिश्चन्द्रसूर्याक्षं देवमाकाशविग्रहम् ॥ स प्राह त्रिदशान्सर्वान्वाचा वै परया विभुः ॥ ४२ ॥ जानन्नपि महातेजा गतो योगेन बालताम् ॥ किं करोमि सुरश्रेष्ठाः कं वरं च ददामि वः ॥ ४३ ॥ यत्काङ्क्षितं वै सर्वेषां तद्वै ब्रूत मुदा युताः ॥ तस्य तद्वचनं श्रुत्वा वामनस्य महात्मनः ॥ ४४ ॥

वाले लाल नेत्रोंवाले, स्वर्गके अर्थ इच्छा करनेवाले ब्राह्मणोंसे पूजित यज्ञरूप ॥ ४० ॥ नानाप्रकारके स्थानोंमें प्राप्त श्रीमान् अतिउत्तम कवि जिसको वेदवेत्ता कहते हैं और सबके अर्थ यज्ञभागको प्राप्त करनेवाले ॥ ४१ ॥ चन्द्रमा सूर्यरूप दो नेत्रोंवाला, धर्मकान्ति, देव और आकाश विग्रहवाले मधु-रवाणीसे सब देवताओंसे कहने लगे वह जानकरभी योगभावसे बालभावको प्राप्त हुए बोले; कि हे देवश्रेष्ठो ! मैं क्या करूं ? और किस वरको तुम्हारे अर्थ दूं ? ॥ ४२ ॥ जो तुमको वांछित हो, वह प्रसन्न होकर तुम कहो तब उन महात्मा वामनजीके वचनको सुनकर ॥ ४३ ॥ प्रसन्नमन हो इन्द्र

आदि सम्पूर्ण देवता अंजलि बांधकर वामनजीसे कहने लगे ॥ ४४ ॥ ४५ ॥ ब्रह्माजीके वरदानसे और तप और बडे पराक्रमसे बलिराजाने हमारा यह संपूर्ण जगत् हर लिया है ॥ ४६ ॥ और वह बलिराजा हम सबोंसे अवध्य है, दैत्योंमें मुख्य और महात्मा है ॥ ४७ ॥ सो तुम उसका तिरस्कार करनेके योग्य हो, अन्य कोई नहीं, इस कारण हम सब तुम्हारी शरण हैं; आप सब देवताओंका भय हरनेवाले हैं ॥ ४८ ॥ हे सुरेश्वर ! ऋषियोंके व लोकोंके हितके अर्थ अदिति और कश्यपके प्यारके अर्थ ॥ ४९ ॥ पितरोंको कव्य और देवताओंको हव्य प्रवृत्त करनेको और हे महाबाहो ॥ ५० ॥

सर्वे ते हृष्टमनसो देवाः कश्यपनन्दनम् ॥ ऊचुः प्राञ्जलयो विष्णुं सुराः शक्रपुरोगमाः ॥ ४५ ॥ ब्रह्मणो वरदानेन हृतं नो निखिलं जगत् ॥ तपसा महता चैव विक्रमेण दमेन च ॥ ४६ ॥ बलिना दैत्यमुख्येन सर्वज्ञेन महात्मना ॥ अवध्यः किल सोऽस्माकं सर्वेषां देवसत्तम ॥४७॥ भवान्प्रभवते तस्य नान्यः कश्चन सुव्रत ॥ यत्प्रपद्यामहे सर्वे भवन्तं शरणार्थिनः ॥ शरण्यं वरदं देवं सर्वदेवभयापहम् ॥ ४८ ॥ ऋषीणां च हितार्थाय लोकानां च सुरेश्वर ॥ प्रियार्थं च तथादित्याः कश्यपस्य तथैव च ॥ ४९ ॥ कव्यं पितॄणामुचितं सुराणां हव्यमुत्तमम् ॥ प्रवर्तंत महाबाहो यथापूर्वं सुरोत्तम ॥ ५० ॥ आनृण्यार्थं सुरेशस्य वासवस्य महात्मनः ॥ प्रत्यानय महेन्द्रस्य त्रैलोक्यमिदमव्ययम् ॥५१॥ क्रतुना वाजिमेधेन यजते स हि दानवः ॥ यत्प्रत्यानयने युक्तं लोकानां तद्विचिन्तय ॥५२॥ वैशम्पायन उवाच ॥ एवमुक्तस्तदा देवैर्विष्णुर्वामनरूपधृक् ॥ प्रहर्षयन्नुवाचाथ सर्वान्देवानिदं वचः ॥ ५३ ॥ विष्णुरुवाच ॥ तस्य यज्ञसकाशं मां महर्षिर्वेदपारगः ॥ बृहस्पतिर्महातेजा नयत्वङ्गिरसः सुतः ॥ ५४ ॥

आप प्रवृत्त हूजिये महात्मा इन्द्रका ऋण दूर करनेको इस त्रिलोकीको इन्द्रके अर्थ फिर प्राप्त कीजिये ॥ ५१ ॥ इस समयमें बलिराजा अश्वमेध यज्ञ करता है, सो जिस प्रकार लोकोंका फिर राज्य इन्द्रको मिले, ऐसा चिन्तवन करो ॥ ५२ ॥ वैशंपायनजी बोले; कि इस प्रकार संपूर्ण देवताओंके वचनको श्रवण कर सर्व देवताओंको प्रसन्न करनेवाले वामनरूपको धारण कर विष्णु वचन कहने लगे ॥ ५३ ॥ विष्णु बोले; कि हे देवताओ ! वेदके

पारको जाननेवाले बडे ऋषि और उग्रतेजवाले अंगिरा ऋषिके पुत्र बृहस्पति मुझे बलिके यज्ञमें ले चले ॥ ५४ ॥ तहां मैं प्राप्त होकर यथायोग्य त्रिलोकीके हरनेके लिये यज्ञभूमिमें विचरण करूंगा ॥ ५५ ॥ वैशंपायन बोले; कि तब श्रीमान् बृहस्पति जहां बलिराजाका यज्ञ हो रहा था, वहां वामनजीको लाये ॥ ५६ ॥ अर्थात् मूंजकी तागडी धारण किये यज्ञोपवीत धारण करे छत्र, दण्ड, मृगछाला, धूम्र और लालरंग नेत्रोंवाले, बालकरूप धारण किये वामनजी ॥ ५७ ॥ उस ब्रह्मर्षिगणोंसे सेवित यज्ञवाटमें जाकर भगवान् स्वयं उस यज्ञका वर्णन करने लगे ॥ ५८ ॥ लोकेश्वरोंकेभी ईश्वर ब्रह्मादि देवताओंके भेजे हुए बालक होकरभी बूढोंके समान कर्म करनेवाले ॥ ५९ ॥ इस प्रकार वह अचिन्त्यात्मा वामनजी दैत्योंके पति विरोचन बलिराजाके

तस्याहं समनुप्राप्तो यज्ञवाटं सुरोत्तमाः ॥ विचरिष्ये यथायुक्तं त्रैलोक्यहरणाय वै ॥ ५५ ॥ वैशम्पायन उवाच ॥ ततो बृहस्पतिर्धीमाननयद्वामनं प्रभुम् ॥ यज्ञवाटं महातेजा दानवेन्द्रस्य धीमतः ॥ ५६ ॥ मौञ्जी यज्ञोपवीती च छत्री दण्डी ध्वजी तथा ॥ वामनो धूम्ररक्ताक्षो भगवान्बालरूपधृक् ॥५७॥ तं गत्वा यज्ञवाटं च ब्रह्मर्षिगणसंकुलम् ॥ आत्मना चैव भगवान्वर्णयामास तं क्रतुम्॥५८॥ लोकेश्वरेश्वरः श्रीमान्सुरैर्ब्रह्मपुरोगमैः ॥ अध्यास्यमानो भगवानवृद्धोऽप्यथ वृद्धवत् ॥५९॥ दानवाधिपतेस्तस्य बलेर्वैरोचनस्य च ॥ यज्ञवाटमचिन्त्यात्मा जगाम सुरसत्तमः ॥ ६० ॥ पालितोऽपि हि दैतेयैः सांग्रामिकपरिच्छदैः ॥ द्वारे दानवसंबाधे सहसैव विवेश ह ॥ ६१ ॥ ऋषिभिश्चैव मन्त्राद्यैः सर्वतः परिवारितम् ॥ दैत्यदानवराजेन्द्रमुपतस्थे बलिं बली ॥६२॥ वर्णयित्वा यथान्यायं यज्ञं यज्ञसनातनः ॥ विस्तरेण नरश्रेष्ठ प्रयोगैर्विविधैस्तथा ॥६३॥ शुक्रादीनृत्विजश्चापि यज्ञकर्मविचक्षणान् ॥ सर्वानेव निजग्राह चकार च निरुत्तरान् ॥ ६४ ॥ आरादथ बलेस्तस्य ऋत्विजामभितस्तथा ॥ यज्ञमात्मानमेवासौ हेतुभिः कारणं विभुः ॥ ६५ ॥

यज्ञस्थानमें प्राप्त हुए ॥ ६० ॥ युद्धके योग्य सामग्रीवाले दैत्योंसे आच्छादित यज्ञद्वारमेंभी वामनजी वेगसे प्रवेश कर गये ॥ ६१ ॥ तहां मंत्रोंको उच्चारण करनेवाले ऋत्विक् जनोंसे चारों ओर परिवारित, दैत्योंके बलिराजा बलिके समीपमें वह बली स्थित हुए ॥ ६२ ॥ और ब्रह्मर्षिगणोंसे सेवित स्थित तिस यज्ञभूमिमें प्राप्त हो यज्ञकी सराहना करने लगे और यथायोग्य यज्ञका वर्णन कर विस्तारपूर्वक नानाप्रकारके प्रयोगोंसे ॥ ६३ ॥ शुक्राचार्य आदि यज्ञकर्मके जाननेवाले ऋत्विजोंको वामनजी अपने वाक्योंसे उत्तर देनेको असमर्थ करते हुए ॥ ६४ ॥ पीछे सब ऋत्विक् बलिराजाके समीपमें

आत्मारूप इस यज्ञको कारणसहित विभु ॥ ६५ ॥ अप्रकाशरूप वैदिक मंत्रोंसे ऋषिके समूहोंके प्रत्यक्ष वर्णन करने लगे ॥ ६६ ॥ तब सब वृद्धरूप उपाध्याय और मुनियोंको जब बालकरूप महाबली वामनजीने उत्तर देनेको असमर्थ कर दिया ॥ ६७ ॥ तब विरोचनके पुत्र बलिने वामनजीको अद्भुत माना और मस्तकसे अंजलिको बांध विस्मित हो बलि कहने लगा ॥ ६८ ॥ कि तुम कहांसे आये और कौन हो ? किसके शिष्य हो और यहां किस प्रयोजनसे आये हो ? ऐसे उत्तम ज्ञानवाले ब्राह्मण पहले कभी मैंने नहीं देखे; बालक और बुद्धिमानोंमें श्रेष्ठ, ज्ञान और विज्ञानको जाननेवाला ॥ ६९ ॥ बुद्धिवालोंमें श्रेष्ठ ज्ञानविज्ञानमें श्रेष्ठ हो, शिष्टोंकी वाणी और रूपसे संपन्न मनोहर और प्रियदर्शन हो ॥ ७० ॥ इस प्रकारके पुत्र

वैदिकैरप्रकाशैश्च पुनरप्यथ भारत ॥ प्रत्यक्षमृषिसंघानां वर्णयामास चित्रगुः ॥६६॥ ततो निरुत्तरान्दृष्ट्वा सोपाध्यायानृषींश्च तान् ॥ अवृद्धेनापि वृद्धांस्तान्वामनेन महौजसा ॥ ६७ ॥ अद्भुतं चापि मेने स विरोचनसुतो बली ॥ मूर्ध्ना कृताञ्जलिश्चेदमब्रवीद्विस्मितो वचः ॥ ६८ ॥ कुतस्त्वं कोऽसि कस्यासि किं ते ह्यस्ति प्रयोजनम् ॥ नैवंविधः परिज्ञातोऽदृष्टपूर्वो मया द्विजः ॥ ६९ ॥ बालो मतिमतां श्रेष्ठो ज्ञानविज्ञानकोविदः ॥ शिष्टवाग्रूपसंपन्नो मनोज्ञः प्रियदर्शनः ॥ ७० ॥ नेदृशाः सन्ति देवानामृषीणामपि सूनवः ॥ न नागानां न यक्षाणां नासुराणां न रक्षसाम् ॥७१॥ न पितॄणां न सिद्धानां गन्धर्वाणां तथैव च ॥ योऽसि सोऽसि नमस्तेऽस्तु ब्रूहि किं करवाणि ते ॥ ७२ ॥ वैशम्पायन उवाच ॥ उक्त एवं ह्यचिन्त्यात्मा बलिना वामनस्तदा ॥ प्रोवाचोपायतत्त्वज्ञः स्मितपूर्वमिदं वचः ॥ ७३ ॥ इति श्रीमहाभारते हरिवंशे भविष्यपर्वणि वामनप्रादुर्भावे सप्ततितमोऽध्यायः ॥ ७० ॥

देवता और ऋषियोंकेभी नहीं हैं. नाग, यक्ष, दैत्य, राक्षस, पितर और गंधर्वोंकेभी पुत्र तेरे समान नही हैं ॥ ७१ ॥ जैसा तुम्हारा रूप है ऐसा पितर सिद्ध और गंधर्वोंका नहीं होता, तुम जो कोईभी हो मैं तुमको नमस्कार करता हूं कहो तुम्हारा क्या प्रिय करूं ? ॥ ७२ ॥ वैशम्पायनजी बोले; कि इस प्रकार बलिराजाके वचन श्रवण कर उपायके तत्त्वको जाननेवाले वामनजी मंद मुसकान सहित कहने लगे ॥ ७३ ॥ इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे भविष्यपर्वणि भाषायां वामनप्रादुर्भावे सप्ततितमोऽध्यायः ॥ ७० ॥

विष्णु बोले; कि बहुत खानेके पदार्थोंसे युक्त और सुंदर संस्कारोंसे व्याप्त असुरेश बलिराजाका यज्ञ हो रहा है ॥ १ ॥ यह अति अद्भुत है; जैसे पहले ब्रह्माजीका यज्ञ हुआ था तथा असुरेशशत्रु इन्द्र, वरुण, यमके यज्ञ थे. हे दैत्येन्द्र बलिराजा ! देवताओंके स्वामी इन्द्र, यम, वरुणकेभी यज्ञोंसे तैंने विशेष यज्ञ किये हैं ॥ २ ॥ और स्वर्गमार्गको दिखानेवाले सब यज्ञोंमें उत्तम अश्वमेध यज्ञसे सब पापोंके नाशके अर्थ तुम पूजा करते हो ॥ ३ ॥ सो ब्रह्मवादियोंने सर्व कामनासे संयुक्त और संपूर्ण यज्ञोंमें उत्तम और अश्वमेध नामसे विख्यात तुम्हारा यज्ञ माना है, यह श्रुति है कि अश्वमेध सब

विष्णुरुवाच ॥ अहो यज्ञोऽसुरेशस्य बहुभक्षः सुसंस्कृतः ॥ पितामहस्येव पुरा यजतः परमेष्ठिनः ॥ १ ॥ सुरेशस्य च शक्रस्य यमस्य वरुणस्य च ॥ विशेषितस्त्वया यज्ञो दानवेन्द्र महाबल ॥ २ ॥ यजता वाजिमेधेन क्रतूनां प्रवरेण तु ॥ सर्वपापविनाशाय त्वया स्वर्गप्रदर्शिना ॥ ३ ॥ सर्वकाममयो ह्येष संमतो ब्रह्मवादिनाम् ॥ क्रतूनां प्रवरः श्रीमानश्वमेध इति श्रुतिः ॥ ४ ॥ सुवर्णशृङ्गो हि महानुभावो लोहक्षुरो वायुजवो महारयः ॥ स्वर्गेक्षणः काञ्चनगर्भगौरः स विश्वयोनिः परमो हि मेध्यः ॥ ५ ॥ आस्थाय वै वाजिनमश्वमेधमिष्ट्वा नरा दुष्कृतमुत्तरन्ति ॥ आहुश्च यं वेदविदो द्विजेन्द्रा वैश्वानरं वाजिनमश्वमेधम् ॥ ६ ॥ यथाश्रमाणां प्रवरो गृहाश्रमो यथा नराणां प्रवरा द्विजातयः ॥ यथाऽसुराणां प्रवरो भवानिह तथा क्रतूनां प्रवरोऽश्वमेधः ॥ ७ ॥ वैशम्पायन उवाच ॥ एतच्छ्रुत्वा तु वचनं वामनेन समीरितम् ॥ मुदा परमया युक्तः प्राह दैत्यपतिर्बलिः ॥ ८ ॥

यज्ञोंसे उत्तम है ॥ ४ ॥ सुवर्णके शृंगोंसे संयुक्त महानुभाववाला और वायुके समान वेगवान्, महात्मा लोहक्षुरनामक वायुके समान वेगगामी और सत्यरूप नेत्रोंवाला सुवर्णके गर्भकी समान गौर वर्ण और विश्वयोनि परम अश्वमेध है अर्थात् पवित्र है ॥ ५ ॥ और अश्वमेध यज्ञसे मनुष्य पापोंको तिरते हैं, अश्वमेधयज्ञके घोडेको वेदके जाननेवाले ब्राह्मण अग्निरूप कहते हैं ॥ ६ ॥ जैसे सब आश्रमोंमें उत्तम गृहाश्रम है, जैसे सब मनुष्योंमें उत्तम ब्राह्मण है, जैसे सब दैत्योंमें उत्तम तुम हो. तैसेही संपूर्णयज्ञोंमें उत्तम यह अश्वमेध यज्ञ है ॥ ७ ॥ वैशंपायनजी बोले; कि इस प्रकार वामनजीके कहे

वचनोंको श्रवण कर आनंदसे प्रसन्न हुआ दैत्योंका पति बलिराजा कहने लगा ॥ ८ ॥ बलि बोले; कि हे ब्रा णोंमें श्रेष्ठ ! तुम किसके शिष्य हो ? और क्या इच्छा करते हो, जो मैं तुमको वर दूं, तुम्हारा मंगल हो; मुझसे वर मांगो. मुझसे तुम मनवांछित लको प्राप्त होगे ॥ ९ ॥ वामन कहने लगे; मैं राज्य असवारी; रत्न भार्याको नहीं मांगता हूं जो तुम मुझपर प्रसन्न हो और धर्ममें बुद्धि है ॥ १० ॥ तो गुरुके प्रयोजन सिद्ध करनेके लिये मुझे तीन चरण पृथ्वी दो, यही परम वर है यह वामनजीके वचन सुन दैत्यराज बलिराजा कहने लगा ॥ १ ॥ कि हे विप्रेन्द्र ! तीन पैग पृथ्वीसे

बलिरुवाच ॥ कस्यासि ब्राह्मणश्रेष्ठ किमिच्छसि ददामि ते ॥ वरं वरय भद्रं ते यथेष्टं काममाप्नुहि ॥ ९ ॥ वामन उवाच ॥ न राज्यं न च यानानि न रत्नानि न च स्त्रियः ॥ कामये यदि तुष्टोऽसि धर्मे च यदि ते मतिः ॥ १० ॥ गुर्वर्थं मे प्रयच्छस्व पदानि त्रीणि दानव ॥ त्वमग्निशरणार्थाय एष मे प्रवरो वरः ॥ वामनस्य वचः श्रुत्वा प्राह दैत्यपतिर्बलिः ॥ ११ ॥ बलिरुवाच ॥ त्रिभिः किं तव विप्रेन्द्र पदैः प्रवदतां वर ॥ शतं शतसहस्राणां पदानां मार्गतां भवान् ॥ १२ ॥ शुक्र उवाच ॥ मा ददस्व महाबाहो न त्वं वेत्सि महासुर ॥ एष मायाप्रतिच्छन्नो भगवान्प्रवरो हरिः ॥ १३ ॥ वामनं रूपमास्थाय शक्रप्रियहितेप्सया ॥ त्वां वञ्चयितुमायातो बहुरूपधरो विभुः ॥ १४ ॥ एवमुक्तः स शुक्रेण चिरं संचिन्त्य वै बलिः ॥ प्रहर्षेण समायुक्तः किमतः पात्रमिष्यते ॥ १५ ॥ प्रगृह्य हस्ते संभ्रान्तो भृङ्गारं कनकोद्भवम् ॥ बलिरुवाच ॥ विप्रेन्द्र प्राङ्मुखस्तिष्ठ स्थितोऽस्मि कमलेक्षण ॥ १६ ॥

तुम्हें क्या लाभ होगा, दश वीस लाख पैग पृथ्वीको मांगो ॥ १२ ॥ तब शुक्राचार्य कहने लगे; हे राजन् ! हे महाबाहो ! ! पृथ्वीका दान तुम मत करो, इनको तुम नहीं जानते हो, यह मायासे आच्छादित साक्षात् विष्णु हैं ॥ १३ ॥ सो वामनरूपको धारण कर इन्द्रका प्रिय करनेके निमित्त तुझे ठगनेके अर्थ बालकका रूप धर आये हैं, यह विभु बहुरूपधारी हैं ॥ १४ ॥ इस प्रकार शुक्राचार्यके वचनको श्रवण कर बहुत कालतक चिन्ता कर आनंदित हुआ बलिराजा वामनजीसे अधिक अन्य पात्रको न जानकर ॥ १५॥ हाथमें सुवर्णकी झारीको ले बलिराजा कहने लगा. बलि बोले;

कि हे विप्रेन्द्र ! कमलनेत्र ! मैं पूर्वको मुख करे स्थित हूं ॥ १६ ॥ और आप उत्तरको मुख कीजिये. और तीन पैग पृथ्वीका ग्रहण करनेके अर्थ मेरे हाथसे जलकी प्राप्ति करो, क्योंकि तेरे गुरुकी वांछा पूर्ण होनी चाहिये ॥ १७ ॥ तब फिर शुक्राचार्य कहने लगे; कि हे दैत्य ! इसके अर्थ पृथ्वीका दान मत दे, मैंने जान लिया कि यह साक्षात् विष्णु हैं, सो तुझको ठगता है. तुम ठगाईमें मत आओ ॥ १८ ॥ तब बलिराजा बोला; कि इस यज्ञमें साक्षात् आप आनकर प्राप्त हो गये हैं. जिस बातकी इच्छा यह विष्णु भगवान् करेंगे, सोही मैं दूंगा ॥ १९ ॥ क्योंकि इस विष्णुसे

प्रतीच्छ देहि किं भूमि का (किं) मात्रा भोः पदत्रयम् ॥ दत्तं च पातय जलं नैव मिथ्या भवेद्गुरुः ॥ १७ ॥ शुक्र उवाच ॥ भो न देयं कुतो दैत्य विज्ञातोऽयं मया ध्रुवम् ॥ कोऽयं विष्णुरहो प्रीतिर्वञ्चितस्त्वं न वञ्चितः ॥ १८ ॥ बलिरुवाच ॥ कथं स नाथोऽयं विष्णुर्यज्ञे स्वयमुपस्थितः ॥ दास्यामि देवदेवाय यद्यदिच्छत्ययं विभुः ॥ १९ ॥ को वान्यः पात्रभूतोऽस्माद्विष्णोः परतरो भवेत् ॥ एवमुक्त्वा बलिः शीघ्रं पातयामास वै जलम् ॥२०॥ वामन उवाच ॥ पदानि त्रीणि दैत्येन्द्र पर्याप्तानि ममानघ ॥ यन्मया पूर्वमुक्तं हि तत्तथा न तदन्यथा ॥ २१ ॥ वैशम्पायन उवाच ॥ इत्येतद्वचनं श्रुत्वा वामनस्य महौजसः ॥ कृष्णाजिनोत्तरीयं स कृत्वा वैरोचनिस्तदा ॥ २२ ॥ एवमस्त्विति दैत्येशो वाक्यमुक्त्वारिसूदनः ॥ ततो वारिसमापूर्णं भृङ्गारं स परामृशत् ॥ २३ ॥ वामनो ह्यसुरेन्द्रस्य चिकीर्षुः कदनं महत् ॥ क्षिप्रं प्रसारयामास दैत्यक्षयकरं करम् ॥ २४ ॥

उपरान्त अन्य उत्तम कौन पात्र है, इस प्रकार कह उस समय बलिराजाने अपने हाथमें जल ग्रहण किया ॥ २० ॥ तब वामनजी कहने लगे; कि हे दैत्येन्द्र ! मेरे पैरोंसे नापी हुई तीन पैग पृथ्वी मुझको दो. अन्य पदार्थकी अभिलाषा नहीं है ॥ २१ ॥ वैशम्पायन बोले; कि इस प्रकार वामनजीके वचनको श्रवण करके काले मृगकी छालाको कंधेपर धारण करनेवाले बलिराजा कहने लगे ॥ २२ ॥ ऐसेही होगा, तब जलसे पूरित झारीको अच्छी प्रकार हाथमें धारण कर लिया ॥२३॥ तब बलिराजाके राज्यको खोनेकी इच्छासे वामनजीने तिसी समय अपना दैत्यका क्षय करने-

वाला हाथ फैलाया ॥ २४ ॥ जब पूर्वको मुखकर बलिराजाने मनसे झारीसहित जलको वामनजीके हाथमें दिया ॥ २५ ॥ तब तिस अचिन्त्य अतिपराक्रम करनेवाले और बलिराजाकी लक्ष्मीको हरनेवाले महात्मा वामनजीके अद्भुतरूपको देख ॥ २६ ॥ लक्षणोंको जाननेवाले बुद्धिमान् प्रह्लाद वचन कहने लगे. प्रह्लाद बोले; कि हे राजन् ! वामनरूप धारण करनेवाले इस बालकके हाथमें जल मत दो ॥ २७ ॥ यह वही विष्णु हैं; जिसने तुम्हारे प्रपितामह हिरण्यकशिपुको मारा है सोई तुमको ठगनेके लिये इस स्थानमें प्राप्त हुए हैं ॥ २८ ॥ बलिराजा बोले; कि इस देवके अर्थ मैं प्रतिग्रह दूंगा

प्राङ्मुखश्चापि दैत्येशस्तस्मै सुमनसा जलम् ॥ दातुकामः करे यावत्तावत्तं प्रत्यषेधयत्॥ २५ ॥ तस्य तद्रूपमालोक्य ह्यचिन्त्यं च महात्मनः ॥ अभूतपूर्वं च हरेर्जिहीर्षोः श्रियमासुरीम् ॥ २६ ॥ इङ्गितज्ञोऽग्रतः स्थित्वा प्रह्लादस्तत्रवीद्वचः ॥ प्रह्लाद उवाच ॥ मा ददस्व जलं हस्ते बटोर्वामनरूपिणः ॥ २७ ॥ स त्वसौ येन ते पूर्वं निहतः प्रपितामहः ॥ विष्णुरेष महाप्राज्ञस्त्वां वञ्चयितुमागतः ॥ २८ ॥ बलिरुवाच ॥ हन्त तस्मै प्रदास्यामि देवायेमं प्रतिग्रहम् ॥ अनुग्रहकरं देवमीदृशं जगतः प्रभुम् ॥ २९ ॥ ब्रह्मणोऽपि गरीयांसं पात्रं लप्स्यामहे वयम् ॥ अवश्यं चासुरश्रेष्ठ दातव्यं दीक्षितेन वै॥ ३० ॥ इत्युक्त्वासुरसंघानां मध्ये वैरोचनिस्तदा॥ देवाय प्रददौ तस्मै पदानि त्रीणि विष्णवे ॥ ३१ ॥ प्रह्लाद उवाच ॥ दानवेश्वर मा दास्त्वं विप्रायास्मै प्रतिग्रहम् ॥ नेमं विप्रशिशुं मन्ये नेदृशो भवति द्विजः ॥ ३२ ॥ रूपेणानेन दैत्येन्द्र सत्यमेवं ब्रवीमि ते ॥ नारसिंहमहं मन्ये तमेवं पुनरागतम् ॥ ३३ ॥

और यदि यह साक्षात् विष्णु हैं, तो बडी अच्छी बात है ॥ २९ ॥ ब्रह्माजीसेभी उत्तम यह पात्र हमको प्राप्त हुआ. हे असुरश्रेष्ठ ! दीक्षित पुरुषको अवश्य दान देना चाहिये ॥ ३० ॥ इस प्रकार दैत्योंके समूहमें कह बलिराजा तीन पैग पृथ्वी वामनजीके अर्थ दान करने लगे ॥ ३१ ॥ जिस समय वामनजीके हाथमें बलिराजा जल देने लगा, तब प्रह्लाद बोला; कि हे दैत्यराज ! इस बालकके अर्थ प्रतिग्रह मत दो, इस बालकको मैं ब्राह्मणका पुत्र नहीं जानता, ऐसा ब्राह्मण नहीं होता है ॥ ३२ ॥ और हे दैत्येन्द्र ! इस रूपसे फिर मैं तिस नृसिंहजीके आगमनको मानता हूं, यह मैं सत्यही कहता

हूं ॥ ३३ ॥ बलिराजा हँसकर घुडकता हुआ प्रह्लादसे कहने लगा; कि हे दैत्यजी ! ब्राह्मण दानकी याचना करे, और दाता दान नहीं दे; तब दोनोंकी अलक्ष्मी यजमानके शरीरमें प्रवेश करती है ॥ ३४ ॥ ३५ ॥ जो यजमान ब्राह्मणके अर्थ प्रतिज्ञा करके प्रतिग्रह नहीं देता है, वह पापी मित्र गोत्रसे संयुक्त नरकमें जाता है ॥ ३६ ॥ इस कारण अलक्ष्मीके भयसे भयभीत हुआ मैं इस पृथ्वीका दान करता हूं, इस ब्राह्मणसे अधिक कोई दान लेने-वाला नहीं है ॥ ३७ ॥ इस कारण इसे अवश्य दान दूंगा. हे दानव ! इस समय मेरा हृदय अत्यन्त प्रसन्न है ॥ ३८ ॥ वामनरूपको धारण करनेवाले

एवमुक्तस्तदा तेन प्रह्लादेनामितौजसा ॥ प्रह्लादमब्रवीद्वाक्यमिदं निर्भर्त्सयन्निव ॥ ३४ ॥ बलिरुवाच ॥ देहीति याचते यो हि प्रत्या-ख्याति च योऽसुर ॥ उभयोरप्यलक्ष्म्या वै भागस्तं विशते नरम् ॥ ३५ ॥ प्रतिज्ञाय तु यो विप्रे न ददाति प्रतिग्रहम् ॥ स याति नरकं पापी मित्रगोत्रसमन्वितः ॥ ३६ ॥ अलक्ष्मीभयभीतोऽहं ददाम्यस्मै वसुन्धराम् ॥ प्रतिग्रहीता चाप्यन्यः कश्चिदस्माद्द्विजोऽथ वै ॥ ३७ ॥ नाधिको विद्यते यस्मात्तद्ददामि वसुंधराम् ॥ हृदयस्य च मे तुष्टिः परा भवति दानव ॥ ३८ ॥ दृष्ट्वा वामनरूपेण याचन्तं द्विजपुङ्गवम् ॥ एष तस्मात्प्रदास्यामि न स्थास्यामि निवारितः ॥ ३९ ॥ भूयश्च प्राब्रवीदेवं वामनं विप्ररूपिणम् ॥ स्वल्पैः स्वल्पमते किं ते पदैस्त्रिभिरुत्तमम् ॥ ४० ॥ कृत्स्नां ददामि ते विप्र पृथिवीं सागरैर्वृताम् ॥ वामन उवाच ॥ न पृथ्वीं कामये कृत्स्नां संतुष्टोऽस्मि पदैस्त्रिभिः ॥ एष एव रुचिष्यो मे वरो दानवसत्तम ॥ ४१ ॥ वैशम्पायन उवाच ॥ तथास्त्विति बलिः प्रोच्य स्पर्शयामास दानवः ॥ पदानि त्रीणि देवाय विष्णवेऽमिततेजसे ॥ ४२ ॥

इस उत्तम ब्राह्मणको देखकर अभी मैं दान देता हूं, किसीके कहनेसे मैं निवारित नहीं हूंगा ॥ ३९ ॥ इस प्रकार कहकर फिर वामनजीसे बलिराजा कहने लगे; कि हे स्वल्पमते ! तीन पैग पृथ्वीसे तुमको क्या होगा ॥ ४० ॥ सब समुद्रोंसे परिवृत इस संपूर्ण पृथ्वीको मैं तुम्हारे अर्थ देता हूं लो, तब वामनजी कहने लगे; कि संपूर्ण पृथ्वीको लेनेकी मेरी इच्छा नहीं है, मैं तीन पैग पृथ्वीमें प्रसन्न हूं हे दानवश्रेष्ठ ! यह वरदान मुझे देना चाहिये ॥ ४१ ॥ वैशम्पायनजी बोले, कि ऐसेही होगा, यह वचन बलिराजा कह तीन पैग पृथ्वी वामनजीके अर्थ देनेको अपने हाथसे दक्षिणासहित जलको वामन-

जीके हाथमें छोडते हुए ॥ ४२ ॥ जब वामनजीके हाथमें जलका स्पर्श हुआ, तब वामनजीने वामनरूपको त्याग सर्वदेवमय रूपको दिखाया ॥ ४३ ॥ अर्थात् पृथ्वी दोनों चरण, आकाश मस्तक, चन्द्रमा और सूर्य नेत्र, पिशाच पैरोंकी अंगुली, गुह्यक हाथोंकी अंगुलि ॥ ४४ ॥ और विश्वेदेवा जानु गोद, साध्य देवता और यक्ष नख, अप्सरा लेख और बिजली दृष्टि, सूर्यकी किरणें केश ॥ ४५ ॥ ४६ ॥ रोम विदिशा, दिशा कान, दोनों अश्विनीकुमार कानके भीतर सुननेका शब्द, वायु नासिका ॥ ४७ ॥ चंद्रमा प्रसाद, धर्म मन, सत्य वाणी, सरस्वती

तोये तु पतिते हस्ते वामनोऽभूदवामनः ॥ सर्वदेवमयं रूपं दर्शयामास वै विभुः ॥ ४३॥ भूः पादौ द्यौः शिरश्चास्य चन्द्रादित्यौ च चक्षुषी ॥ पादाङ्गुल्यः पिशाचाश्च हस्ताङ्गुल्यश्च गुह्यकाः ॥ ४४ ॥ विश्वेदेवाश्च जानुस्था जङ्घे साध्याः सुरोत्तमाः ॥ यक्षा नखेषु संभूता लेखाश्चाप्सरसस्तथा ॥४५॥ ताडिद्वृष्टिः सुविपुला केशाः सूर्यांशवस्तथा ॥ तारका रोमकूपाणि रोमाणि च महर्षयः॥४६॥ बाहवो विदिशश्चास्य दिशः श्रोत्रे तथैव च ॥ अश्विनौ श्रवणौ चास्य नासा वायुर्महाबलः ॥ ४७ ॥ प्रसादश्चन्द्रमाश्चैव मनो धर्मस्तथैव च ॥ सत्यमस्याभवद्वाणी जिह्वा देवी सरस्वती ॥ ४८॥ ग्रीवादितिर्महादेवी तालुः सूर्यश्च दीप्तिमान् ॥ द्वारं स्वर्गस्य नाभिर्वै मित्रस्त्वष्टा च वै भ्रुवौ ॥ ४९ ॥ मुखं वैश्वानरश्चास्य वृषणौ तु प्रजापतिः ॥ हृदयं भगवान्ब्रह्मा पुंस्त्वं वै विश्वतोमुनिः ॥ ५० ॥ पृष्ठेऽस्य वसवो देवा मरुतः पादसंधिषु ॥ सर्वच्छन्दांसि दशना ज्योतींषि विमलाः प्रभाः ॥ ५१ ॥ ऊरू रुद्रो महादेवो धैर्यं चास्य महार्णवः ॥ उदरे चास्य गन्धर्वा भुजगाश्च महाबलाः ॥ ५२ ॥ लक्ष्मीर्मेधा धृतिः कान्तिः सर्वविद्या च वै कटिः ॥ ललाटमस्य परमं स्थानं च परमात्मनः ॥ ५३ ॥

जिव्हा ॥ ४८ ॥ अदिति ग्रीवा, प्रकाशमान् सूर्य तालु, स्वर्गका द्वार नाभि, मित्र और त्वष्टा दोनों भृकुटी ॥ ४९ ॥ अग्नि मुख, दक्षप्रजापति वृषण, ब्रह्मा हृदय, कश्यपजी पुरुषपन ॥ ५० ॥ पृष्ठभागमें वसु देवता, मरुत देवता सब संधियोंमें, और सब छंद दांतोंके स्थानमें और ज्योतिर्गण प्रभा ॥ ५१ ॥ महादेव ऊरु, समुद्र धैर्य, गंधर्व और दिव्य बली सर्प उदरमें ॥ ५२ ॥ लक्ष्मी मेधा धृति कान्ति विद्या ये कटिमें, और परमात्माका परम स्थान

मस्तक है ॥ ५३ ॥ सब ज्योति तप और देवताओंका राजा इन्द्र उन महात्माका तेज है ॥ ५४ ॥ स्तन और कांखमें चारों वेद, पशुबंध तथा ब्राह्मणोंकी चेष्टा दृष्टि है ॥ ५५ ॥ इस प्रकार उन विष्णुके रूपको देख क्रोधको प्राप्त हुए महादैत्य समीपमें प्राप्त होने लगे जैसे पतंग अग्निमें जाते हैं ॥ ५६ ॥ इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे भविष्यपर्वणि भाषायां वामने विश्वरूपप्रकाशे एकसप्ततितमोऽध्यायः ॥ ७१ ॥ वैशम्पायन बोले; कि हे जन्मेजय! तिन दैत्योंके नाम रूप आभरण और मुख्य शस्त्रोंको श्रवण करो ॥ १ ॥ विप्रचित्ति, शिबि, शंकु, अयःशंकु, अयःशिरा, अश्वशिरा, बली, हयग्रीव ॥ २ ॥

सर्वज्योतींषि यानीह तपः शक्रस्तु देवराट् ॥ तस्य देवाधिदेवस्य तेजो ह्याहुर्महात्मनः ॥ ५४ ॥ स्तनौ कक्षौ च वेदाश्च ओष्ठौ चास्य मखाः स्थिताः ॥ इष्टयः पशुबन्धाश्च द्विजानां चेष्टितानि च ॥ ५५ ॥ तस्य देवमयं रूपं दृष्ट्वा विष्णोर्महासुराः ॥ अभ्यसर्पन्त संक्रुद्धाः पतङ्गा इव पावकम् ॥ ५६ ॥ इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे भविष्यपर्वणि वामनप्रादुर्भावे एकसप्ततितमोऽध्यायः॥७१॥ वैशम्पायन उवाच ॥ शृणु नामानि सर्वेषां रूपाण्यभिजनानि च॥आयुधानि च मुख्यानि दानवानां महात्मनाम् ॥१॥ विप्रचित्तिः शिबिः शङ्कुरयः शङ्कुस्तथैव च ॥ अयःशिरा अश्वशिरा हयग्रीवश्च वीर्यवान् ॥ २ ॥ वेगवान्केतुमानुग्रः सोग्रव्यग्रो महासुरः ॥ पुष्करः पुष्कलश्चैव साश्वोऽश्वपतिरेव च ॥ ३ ॥ प्रह्लादोऽश्वशिराः कुम्भः संह्लादो गगनप्रियः ॥ अनुह्लादो हरिहरौ वाराहः संहरोरुजः ॥ ४ ॥ वृषपर्वा विरूपाक्षो अतिचन्द्रः सुलोचनः ॥ निष्प्रभः सुप्रभः श्रीमांस्तथैव च निरूदरः ॥ ५ ॥ एकवक्रो महावक्रो द्विवक्रः कालसंनिभः ॥ शरभः शलभश्चैव कुणपः कुलपः क्रथः ॥ ६ ॥ बृहत्कीर्तिर्महागर्भः शङ्कुकर्णो महाध्वनिः ॥ दीर्घजिह्वोऽर्कवदनो मृदुबाहुर्मृदुप्रियः ॥ ७ ॥

वेगवान्, केतुमान्, उग्र, सोग्र, व्यग्र, पुष्कर, पुष्कल, साश्व, अश्वपति ॥ ३ ॥ प्रह्लाद, अश्वशिरा, कुंभ, संह्लाद, गगनप्रिय, अनुह्लाद, हरि, हर, वराह, संहर, अरुज ॥ ४ ॥ वृषपर्वा, विरूपाक्ष, सुनींद्र, चंद्रलोचन, निष्प्रभ, सुप्रभ, निरुदर ॥ ५ ॥ एकवक्र, द्विवक्र, महावक्र, कालसन्निभ, शरभ, शलभ, कुणप, कुलप, क्रथ ॥ ६ ॥ बृहत्कीर्ति, महागर्भ, शंकुकर्ण, महाध्वनि, दीर्घजिह्व, अर्कवदन, मृदुबाहु, मृदुप्रिय ॥ ७ ॥

वायु, गविष्ठ, नमुचि, शम्बर, महान् विक्षर, चंद्रहंता, क्रोधहंता, क्रोधवर्द्धन ॥ ८ ॥ कालक, कालकाक्ष, वृत्र, क्रोध, विमोक्षण, गरिष्ठ, हविष्ठ, प्रलंब, नरक, पृथु ॥ ९ ॥ चन्द्रतापन, वातापी, केतुमान्, बलदर्पित, असिलोमा, पुलोमा, बाष्कल, प्रमद ॥ १० ॥ मद, शृगालवदन, कराल, केशि, एकाक्ष, एकबाहु, तुहुंड, सृमल, सृप ॥ ११ ॥ इनको आदि ले औरभी बहुतसे दैत्य महाविष्णुको घेरकर स्थित हुए ॥ १२ ॥ कितनेही फांसीको हाथमें लिये और कोई मुखको फैलाये, कितनेही गधेके समान शब्द करनेवाले, कितनेही शतघ्नी, वज्र और चक्रको हाथोंमें लिये ॥ १३ ॥

वायुर्गविष्ठो नमुचिः शम्बरो विक्षरो महान् ॥ चन्द्रहन्ता क्रोधहन्ता क्रोधवर्द्धन एव च ॥ ८ ॥ कालकः कालकाक्षश्च वृत्रः क्रोधो विमोक्षणः ॥ गविष्ठश्च हविष्ठश्च प्रलम्बो नरकः पृथुः ॥९॥ चन्द्रतापनवातापी केतुमान्बलदर्पितः ॥ असिलोमा पुलोमा च बाष्कलः प्रमदो मदः ॥ १० ॥ शृगालवदनश्चैव करालः केशिरेव च ॥ एकाक्षश्चैकबाहुश्च तुहुण्डः सृमलः सृपः ॥ ११ ॥ एते चान्ये च बहवः क्रममाणं त्रिविक्रमम् ॥ उपतस्थुर्महात्मानं विष्णुं दैत्यगणास्तदा ॥ १२॥ प्रासोद्यतकराः केचिद्व्यादितास्याः खरस्वनाः ॥ शतघ्नी-चक्रहस्ताश्च वज्रहस्तास्तथा परे ॥ १३ ॥ खड्गपट्टिशहस्ताश्च परश्वधधराः परे ॥ प्रासमुद्गरहस्ताश्च तथा परिघपाणयः ॥ १४ ॥ महाशनिव्यग्रकरा मौशलास्तु महाबलाः ॥ महावृक्षोद्यतकरास्तथैव च धनुर्धराः ॥ १५ ॥ गदाभुशुण्डिहस्ताश्च वज्रहस्तास्तथा परे ॥ महापट्टिशहस्ताश्च तथा परिघपाणयः ॥ १६ ॥ असिकम्पनहस्ताश्च दानवा युद्धदुर्मदाः ॥ नानाप्रहरणा घोरा नानावेषा महाबलाः ॥ १७ ॥ कूर्मकुक्कुटवक्त्राश्च हस्तिवक्त्रास्तथा परे ॥ खराश्ववदनाश्चैव वराहवदनास्तथा ॥ १८ ॥

और कितनेही खड्ग, पट्टिश, फरशेको धारण किये, कितनेही प्रास, मुद्गर, परिघोंको हाथोंमें लिये ॥ १४ ॥ और कोई महाअशनि, शिला, मूशल और महावृक्षोंको तथा महाधनुष्योंको हाथोंमें धारण करनेवाले ॥ १५ ॥ गदा भुशुण्डी हाथमें लिये, वज्र लिये, महापट्टिश परिघ लिये ॥ १६ ॥ कितनेही तलवारोंको हाथोंमें फिरानेवाले, कितनेही अनेक प्रकारके प्रहारोंको धारण करनेवाले और कितनेही युद्धमें दुर्मद, कितनेही अनेक प्रकारके वेषोंको धारण करनेवाले ॥ १७ ॥ कितनेही कछुए तथा मुरगेके मुखके समान मुखवाले,

कितनेही हाथीके समान मुखवाले, कितनेही गधे और ऊंटके समान मुखवाले कितनेही शूकरके समान मुखवाले ॥ १८ ॥ कितनेही भयंकर मुख मच्छके समान मुखवाले और कितनेही शिशुमार, मच्छके समान मुखवाले ॥ १९ ॥ कोई बिडाव तोतेके समान दीर्घमुखवाले ॥ २० ॥ कोई मूषक, मृग ऊंटसे दीर्घमुख, नकुल, कबूतर ॥ २१ ॥ क्रौंच, चकवा, गोधा, मत्स्य, ऋक्ष, शार्दूल, गेंडा, सिंह, भेड, भैंसके समान मुखवाले ॥ २२ ॥ और कितनेही हाथीके चर्मके वस्त्रोंको ओढे, कितनेही मृगछालाके वस्त्रोंवाले कितनेही चीररूप वस्त्रोंवाले और कितनेही वृक्षोंके वक्कलोंके वस्त्रों-

भीमा मकरवक्त्राश्च शिशुमारमुखास्तथा ॥ मार्जारशुकवक्त्राश्च दीर्घवक्त्राश्च दानवः ॥ १९ ॥ गरुडाननाः खड्गमुखा मयूरवदना-स्तथा ॥ अश्ववक्त्रा बभ्रुवक्त्रा घोरा मृगमुखास्तथा ॥ २० ॥ उष्ट्रशल्यकवक्त्राश्च दीर्घवक्त्राश्च दानवाः ॥ नकुलस्येव वक्त्राश्च पारावतमुखास्तथा ॥ २१ ॥ चक्रवाकमुखाश्चैव गोधवक्त्रास्तथा परे ॥ तथा मृगाननाः शूरा गोजादिमहिषाननाः ॥ २२ ॥ कृक-लासमुखाश्चैव व्याघ्रवक्त्रास्तथा परे ॥ ऋक्षशार्दूलवक्त्राश्च सिंहवक्त्रास्तथा परे ॥ २३ ॥ गजेन्द्रचर्मवसनास्तथा कृष्णाजिनाम्बराः ॥ चीरसंवृतगात्राश्च तथा फलकवाससः ॥ २४ ॥ उष्णीषिणो मुकुटिनस्तथा कुण्डलिनोऽसुराः ॥ किरीटिनो लम्बशिखाः कम्बुग्रीवाः सुवर्चसः ॥ २५ ॥ नानावेषधरा दैत्या नानामाल्यानुलेपनाः ॥ स्वान्यायुधानि दीप्तानि प्रगृह्यासुरसत्तमाः ॥ २६ ॥ क्रममाणं हृषीकेशमुपातिष्ठन्त दानवाः ॥ प्रमथ्य सर्वान्दैतेयान्पादहस्ततलैः प्रभुः ॥ २७ ॥ रूपं कृत्वा महाकायं जहाराशु स मेदिनीम् ॥ त्रैलोक्यं क्रममाणस्य द्युतिरादित्यसंभवा ॥ २८ ॥

वाले ॥ २३ ॥ कितनेही पगडी बांधनेवाले कितनेही मुकुटको धारण करनेवाले, कितनेही कुण्डलोंको पहरनेवाले, कितनेही दीर्घ चोटीवाले, कितनेही शंखके समान ग्रीवावाले, और कितनेही सुंदर तेजवाले थे ॥ २४ ॥ २५ ॥ कितनेही अनेक प्रकारके वेषोंको धारण करनेवाले, कितनेही अनेक प्रकारकी माला और चंदन आदि अनुलेपोंको धारण करनेवाले सब दैत्य अनेक प्रकारके प्रकाशितरूप अपने शस्त्रोंको ग्रहण कर ॥ २६ ॥ पैरोंसे पृथ्वीको नापनेवाले विष्णुके समीपमें प्राप्त हुए, तब पैर और हाथोंके तलवोंसे प्रभुने सब दैत्योंको मथकर ॥ २७ ॥ तब वह महाकायरूप करके

पृथ्वीको हरण करते हुए, त्रिलोकीको हरनेके समय विस्तृतरूपवाले विष्णुकी कान्ति सूर्यके समान हुई ॥ २८ ॥ और पृथ्वीको विक्रमण करनेके समय चंद्रमा और सूर्य विष्णुके दोनों स्तनोंके मध्यस्थानमें स्थित हुए और आकाशमें प्रक्रमण करनेके समय विष्णुके सक्थिदेशमें चंद्रमा और सूर्य स्थित हुए, अर्थात् कटिके नीचे आकाश स्थित हुआ ॥ २९ ॥ विष्णुके अतिविक्रमण करनेके समय चन्द्रमा और सूर्य पादमूलमें स्थित हुए ऐसे अमितवीर्यवाले विष्णुके यशको ब्राह्मण कहते हैं कि सब लोकोंको जीतकर और बहुतसे दैत्योंको मारकर ॥ ३० ॥ लोकनमस्कृत विष्णु भगवान् इन्द्रको पृथ्वी देते भये और पृथ्वीतलके नीचे सुतल नामक पाताल ॥ ३१ ॥ बलवान् विष्णु भगवान्‌ने बलिराजाके निवासको दिया, तब बलि-

तस्य विक्रमतो भूमिं चन्द्रादित्यौ स्तनान्तरे ॥ नभः प्रक्रममाणस्य सक्थिदेशे व्यवस्थितौ ॥ परं विक्रममाणस्य जानुदेशे व्यवस्थितौ ॥ २९ ॥ विष्णोरमितवीर्यस्य वदन्त्येवं द्विजातयः ॥ जित्वा लोकत्रयं कृत्स्नं हत्वा चासुरपुङ्गवान् ॥ ३० ॥ ददौ शक्राय वसुधां हरिर्लोकनमस्कृतः ॥ सुतलं नाम पातालमधस्ताद्वसुधातले ॥ ३१ ॥ बलेर्दत्तं भगवता विष्णुना प्रभविष्णुना ॥ तदवाप्या-सुरश्रेष्ठश्चकार मतिमुत्तमाम् ॥ ३२ ॥ रसातलतले वासमकरोदसुराधिपः ॥ तत्रस्थश्च महातेजा ध्यानं परममास्थितः ॥ ३३ ॥ उवाच वचनं धीमान् विष्णुं लोकनमस्कृतम् ॥ किं मया देव कर्त्तव्यं ब्रूहि सर्वमशेषतः ॥ ततो दैत्याधिपं प्राह देवो विष्णुः सुरो-त्तमः ॥ ३४ ॥ विष्णुरुवाच ॥ ददामि ते महाभाग परितुष्टोऽस्मि तेऽसुर ॥ वरं वरय भद्रं ते यथेष्टं काममाप्नुहि ॥ ३५ ॥ मा च शक्रस्य वचनं प्रतिहासीः कथंचन ॥ अहमाज्ञापयामि त्वां श्रेयश्चैवमवाप्स्यसि ॥ ३६ ॥

राजा उत्तम मतिको प्राप्त हो पातालमें वास करने लगे ॥ ३२ ॥ और तहां परम ध्यानमें स्थित हुआ बलिराजा ॥ ३३ ॥ लोकनमस्कृत विष्णु भगवान्‌से वचन कहने लगा; कि हे देव ! मुझे क्या करना चाहिये ? सो आप विस्तारसे कहिये तब बलिराजासे विष्णु भगवान् कहने लगे ॥ ३४ ॥ हे महाभाग ! तेरे निमित्त वर दूंगा, तू वरको मांग मैं प्रसन्न हुआ हूँ तेरा कल्याण हो और मनोवांछित फलको प्राप्त हो ॥ ३५ ॥ और इन्द्रके वचनको कभीभी न हँसना, मैं तुझे आज्ञा देता हूं. तू सुखको प्राप्त होगा ॥ ३६ ॥

इस प्रकार कहकर फिर बलिराजाको मधुरवाणीसे सान्त्वन करनेवाले और सर्व लोकको करनेवाले वरेण्य विष्णु कहने लगे ॥ ३७ ॥ जो तैंने अपने हाथसे जल दिया और मैंने वह जल ग्रहण किया, इस कारण दैत्य और देवताओंसे तुमको भय न होगा ॥ ३८ ॥ हे महाअसुर ! सुतलनामक पाताल लोकमें सब दैत्यगणोंके संग तुम मेरे प्रसादसे वास करो ॥ ३९ ॥ और देवताओंके देव अतितेजस्वी इन्द्रकी शिक्षाका कभी नाश नहीं करना, यह मेरी आज्ञा मानना ॥ ४० ॥ हे महासुर ! तुमको सब देवताओंकी पूजा करनी योग्य है. हे महाभाग !

अथ दैत्याधिपं प्राह विष्णुर्देवाधिपानुजः ॥ वाचा परमया देवो वरेण्यः प्रभुरीश्वरः ॥ ३७ ॥ यत्त्वया सलिलं दत्तं गृहीतं पाणिना मया ॥ तस्मात्ते दैत्यदेवेभ्यो नास्ति जातु भयं क्वचित् ॥ ३८ ॥ सुतलं नाम पातालं तत्र त्वं सानुगो वस ॥ सर्वैर्दैत्यगणैः सार्द्धं मत्प्रसादान्महासुर ॥३९॥ न च ते देवदेवस्य शक्रस्यामिततेजसः ॥ शासनं प्रतिहन्तव्यं स्मरता शासनं मम ॥ ४० ॥ देवताश्चापि ते सर्वाः पूज्या एव महासुर ॥ भोगांश्च विविधान्सम्यक् यज्ञांश्च सहदक्षिणान् ॥ ४१ ॥ प्राप्स्यसे च महाभाग दिव्यान्कामान्यथेप्सितान् ॥ इह चामुत्र चाक्षय्यान्विविधांश्च परिच्छदान् ॥ ४२ ॥ दैत्याधिपत्यं च सदा मत्प्रसादादवाप्स्यसि ॥ यदा चेतां मया प्रोक्तां मर्यादां चालयिष्यसि ॥ वधिष्यन्ति तदा हि त्वां नागपाशैर्महाबलाः ॥ ४३ ॥ नमस्कार्याश्च ते नित्यं महेन्द्राद्या दिवौकसः ॥ मम ज्येष्ठः सुरश्रेष्ठः शासनं प्रतिगृह्यताम् ॥ ४४ ॥ बलिरुवाच ॥ देवदेव महाभाग शङ्खचक्रगदाधर ॥ सुरासुरगुरो श्रेष्ठ सर्वलोकमहेश्वर ॥ तत्रासतो मे पाताले भागं ब्रूहि सुरोत्तम ॥ ४५ ॥

तुम दक्षिणासहित यज्ञके फलको प्राप्त होगे ॥ ४१ ॥ मनोवांछित रूप दिव्यकामनाओंको तुम प्राप्त होगे और इस लोकमें तथा परलोकमें सुखको और अनेक प्रकारके स्थानोंको ॥४२॥ दैत्योंके राजपनेको और अनेक प्रकारके भोगोंको तुम मेरे प्रसादसे प्राप्त होगे, और जब तुम मेरी कही इस मर्यादाको उल्लंघन करोगे तो तुमको अतिबलवाले सर्प अपने फणोंसे मारेंगे ॥४३॥ इस कारण तुम महेन्द्रादिकोंको नित्य नमस्कार करना, मेरे बडे भ्राता देवताओंमें श्रेष्ठ इन्द्रकी शिक्षा सब कालमें ग्रहण करनी चाहिये ॥४४॥ बलि कहने लगा; कि हे देवदेव ! हे महाभाग ! हे शंख चक्र गदाधर ! हे सुरासुरगुरुश्रेष्ठ !

हे सर्वलोकमहेश्वर ! पातालमें वास करनेवाले मुझे भागकी कल्पना कीजिये ॥ ४५ ॥ और किस प्रकार मैं तहां स्थिति करूं ? मुझे भोजनके लिये क्या मिलेगा जिससे मेरी अक्षय तृप्ति होवे. विष्णु भगवान् बोले ॥ ४६ ॥ हे दैत्यसत्तम ! वेदके जाननेवालेके विना श्राद्ध किया और व्रतके विना वेदका पाठ किया और दक्षिणारहित यज्ञ और ऋत्विकके विना हवन और श्रद्धाके विना दान किया और संस्कारके रहित हविर्द्रव्य यह छः भाग तुम्हारे हैं, इनका फल तुझको मिलेगा ॥ ४७ ॥ मुझसे वैर करनेवालोंका और मेरे भक्तोंसे वैर करनेवालोंका पुण्य और क्रयविक्रय करते अग्निहोत्रियोंका

ममान्नमशनं देव प्राशनार्थमरिंदम ॥ तद्ददस्व सुरश्रेष्ठ तृप्तिर्येन ममाक्षया ॥ ४६ ॥ श्रीभगवानुवाच ॥ अश्रोत्रियं श्राद्धमधीतमव्रतमदक्षिणं यज्ञमनृत्विजा हुतम् ॥ अश्रद्धया दत्तमसंस्कृतं हविरेते प्रदत्तास्तव दैत्य भागाः ॥४७॥ पुण्यं मद्द्वेषितं यच्च मद्भागद्वेषिणां तथा ॥ क्रयविक्रयसक्तानां पुण्यं यच्चाग्निहोत्रिणाम् ॥ ४८ ॥ अश्रद्धया च यद्दानं ददतां यजतां तथा ॥ तत्सर्वं तव दैत्येन्द्र मत्प्रसादाद्भविष्यति ॥ ४९ ॥ वैशम्पायन उवाच ॥ एतच्छ्रुत्वा तु वचनं बलिर्विष्णोर्महात्मनः ॥ एवमस्त्विति तं प्रोक्त्वा पातालमसुरोत्तमः ॥ ५० ॥ प्रविवेश महानादो देवाज्ञां प्रतिपालयन् ॥ भगवानपि राज्यानां प्रविभागांश्चकार ह ॥ ५१ ॥ ददौ पूर्वां दिशं चैन्द्रीं शक्रायामिततेजसे ॥ याम्यां यमाय देवाय पितृराज्ञे महात्मने ॥५२॥ पश्चिमां तु दिशं प्रादाद्वरुणाय महात्मने ॥ उत्तरां च कुबेराय यक्षाधिपतये दिशम् ॥५३॥ अधस्थां नागराजाय सोमायोर्ध्वां दिशं ददौ ॥ एवं विभज्य त्रैलोक्यं विष्णुर्बलवतां वरः ॥ ५४ ॥

पुण्य ॥ ४८ ॥ और श्रद्धासे रहित दान और पूजन यह सब हे दैत्येन्द्र ! मेरे प्रसादसे तेरा भाग होगा ॥ ४९ ॥ वैशंपायन कहने लगे कि इस प्रकार विष्णुके वचनको सुनकर "ऐसेही हो" इस वचनको कहकर असुरश्रेष्ठ ॥ ५० ॥ विष्णुकी आज्ञाको प्रतिपालन कर बलि पाताललोकमें प्रवेश कर गया और विष्णुने देशोंका विभाग किया ॥ ५१ ॥ अर्थात् इन्द्रकी पूर्व दिशाको अमिततेजवाले इन्द्रके अर्थ देते हुए और दक्षिणदिशाको पितरोंके राजा धर्मराजके अर्थ दिया ॥ ५२ ॥ और पश्चिम दिशा वरुणजीको दी, उत्तर दिशा यक्षोंके राजा कुबेरको दी ॥ ५३ ॥ और नीचेके लोक शेष-

नागको दिये, और ऊर्ध्वदिशाको चंद्रमाके अर्थ दिया, इस प्रकार बलवालोंमें उत्तम विष्णुजी त्रिलोकीका विभाग कर ॥ ५४ ॥ देवताओंके शोकको दूर कर सब प्राणियोंमें इन्द्रकी प्रतिष्ठा कर महर्षियोंसे पूज्यमान सर्वश्रेष्ठ वामनजी स्वर्गको गये ॥ ५५ ॥ अतितेजस्वी दुर्धर्ष वामनजी जब चले गये तब सब देवता इन्द्रको आगे कर आनंदित हुए ॥ ५६ ॥ वैशंपायनजी बोले; कि जब वामनजी बलिराजाको सात शिरोंवाले और कंबल अश्वतर आदि सर्पोंसे बांधकर स्वर्गमें चले गये ॥ ५७ ॥ तब नागोंके बंधनसे पीडित हो बलिराजाके समीपमें यदृच्छासे नारद मुनि प्राप्त हुए ॥ ५८ ॥ तब

जगाम त्रिदिवं देवः पूज्यमानो महर्षिभिः ॥ वामनः सर्वभूतेशः प्रतिष्ठाप्य च वासवम् ॥ ५५ ॥ तस्मिन्प्रयाते दुर्धर्षे वामनेऽमिततेजसि ॥ सर्वे मुमुदिरे देवाः पुरस्कृत्य शतक्रतुम् ॥ ५६ ॥ वैशम्पायन उवाच ॥ गते तु त्रिदिवं कृष्णे बद्धा वैरोचनिं बलिम् ॥ नागैः सप्तशिरोभिश्च कम्बलाश्वतरादिभिः ॥ ५७ ॥ नागबन्धनदुःखार्त्तं बलिं वैरोचनिं ततः ॥ यदृच्छयागतो देवर्षिर्नारदः प्रत्यपद्यत ॥ ५८ ॥ स तं कृच्छ्रगतं दृष्ट्वा कृपयाभिपरिप्लुतः ॥ उवाच दानवश्रेष्ठं मोक्षोपायं ददामि ते ॥ ५९ ॥ स्तवं देवाधिदेवस्य वासुदेवस्य धीमतः ॥ अनादिनिधनस्यास्य अक्षयस्याव्ययस्य च ॥ ६० ॥ तमधीष्वाथ दैत्येन्द्र विशुद्धेनान्तरात्मना ॥ तद्गतस्तन्मना भूत्वा द्रुतं मोक्षमवाप्स्यसि ॥ ६१ ॥ ततो विरोचनसुतः प्रयतः प्राञ्जलिः शुचिः ॥ मोक्षविंशकमव्यग्रो नारदात्समधीतवान् ॥ ६२ ॥ तमधीत्य स्तवं दिव्यं नारदेन समीरितम् ॥ पृथिवी चोद्धृता येन तं जजाप महासुरः ॥ ६३ ॥

संकटमें बलिराजाको देख दयासंयुक्त नारदमुनि कहने लगे; कि हे दानवश्रेष्ठ ! मैं तेरे अर्थ इस पीडासे छूटनेका उपाय देता हूं ॥ ५९ ॥ देवादिदेव वासुदेवका स्तव कहता हूं वह आदि और अंतरहित अक्षय अविनाशी है ॥ ६० ॥ हे दैत्यराज ! उसे तुम शुद्ध अंतरात्मासे मनको लगाय पाठ करो. तत्काल इस दुःखसे छूट जाओगे ॥ ६१ ॥ तब विरोचनका पुत्र बलिराजा अंजलि बांध मोक्षविंशक स्तोत्रको नारदजीसे पढने लगा ॥ ६२ ॥ उस नारदजीके कहे दिव्य स्तोत्रको पढकर उन पृथ्वीके उद्धार करनेवालेका स्तोत्र जपने लगे ॥ ६३ ॥

जिस करके इस पृथ्वीका उद्धार हुआ था अब जिस स्तोत्रको बलिराजाने जपा है वह स्तोत्र वर्णन किया जाता है, ॐ अनन्तपति अक्षय महात्मा जलशायी पद्मनाभ विष्णुके लिये नमस्कार है ॥ ६४ ॥ आप सात सूर्यकी समान शरीर करके त्रिलोकीको आक्रमण किये हो. हे भगवन् ! आप कालकेभी काल हो. इस सत्यसे मुझे छुडाओ ॥ ६५ ॥ चन्द्र, सूर्य, आकाश, यज्ञ, तप, क्रियाके नष्ट होनेसे आप फिर लोकोंकी चिन्ता करते हो, इस सत्यसे मुझे छुडाओ ॥ ६६ ॥ ब्रह्मा, रुद्र, इन्द्र, वायु, अग्नि, सरित, भुजंग, पर्वत, द्विजेन्द्रने यह आपमें स्थित देखा. इस सत्यसे छुडाओ ॥ ६७ ॥ पहले

ॐ नमोऽस्त्वनन्तपतये अक्षयाय महात्मने ॥ जलेशयाय देवाय पद्मनाभाय विष्णवे ॥ ६४ ॥ सप्तसूर्यवपुः कृत्वा त्रीँल्लोकान् क्रान्तवानसि ॥ भगवान्कालकालस्त्वं तेन सत्येन मोक्षय ॥ ६५ ॥ नष्टचन्द्रार्कगगने क्षीणयज्ञतपःक्रिये ॥ पुनश्चिन्तयसे लोकांस्तेन सत्येन मोक्षय ॥ ६६ ॥ ब्रह्मरुद्रेन्द्रवाय्वग्निसरिद्भुजगपर्वताः ॥ त्वत्स्था दृष्टा द्विजेन्द्रेण तेन सत्येन मोक्षय ॥ ६७ ॥ मार्कण्डेन पुरा कल्पे प्रविश्य जठरं तव ॥ चराचरगतं दृष्टं तेन सत्येन मोक्षय ॥ ६८ ॥ एको विद्यासहायस्त्वं योगी योगमुपागतः ॥ पुनस्त्रैलोक्यमुत्सृज्य तेन सत्येन मोक्षय ॥ ६९ ॥ जलशय्यामुपासीनो योगनिद्रामुपागतः ॥ लोकांश्चिन्तयसे भूयस्तेन सत्येन मोक्षय ॥ ७० ॥ वाराहं रूपमास्थाय वेदयज्ञपुरस्कृतम् ॥ धरा जलोद्धृता येन तेन सत्येन मोक्षय ॥ ७१ ॥ उद्धृत्य दंष्ट्रया यज्ञांस्त्रीन् पिंडान्कृतवानसि ॥ त्वं पितॄणामपि हरे तेन सत्येन मोक्षय ॥ ७२ ॥ प्रदुद्रुवुः सुराः सर्वे हिरण्याक्षभयार्दिताः ॥ परित्रातास्त्वया देव तेन सत्येन मोक्षय ॥ ७३ ॥

कल्पमें मार्कण्डेय आपके शरीरमें प्रविष्ट हुए थे. और आपमें चराचर जगत् देखा था उस सत्यसे मुझे छुडाओ ॥ ६८ ॥ एक आप योगी विद्यासहाय होकर योगको प्राप्त हुए हो, फिर त्रिलोकी छोडते हो. उस सत्यसे मुझे छुडाओ ॥ ६९ ॥ जलशय्यामें बैठे योगनिद्राको प्राप्त हुए फिर आप लोककी चिन्ता करते हो उस सत्यसे मुझे छुडाओ ॥ ७० ॥ आपने वाराहरूप धारण कर वेदयज्ञको आगे कर जिस सत्यसे पृथ्वी उद्धार की उससे मुझे छुडाओ ॥ ७१ ॥ आपने दंष्ट्रासे उद्धार कर यज्ञके तीन पिंड किये तुम पितरोंके उद्धारक हो उस सत्यसे मुझे छुडाओ ॥ ७२ ॥ सब देवाता हिरण्या-

क्षके भयसे भागे थे, हे देव ! आपनेही उनकी रक्षा की थी उस सत्यसे मुझे छुडाओ ॥ ७३ ॥ दीर्घमुखवाले रूपसे युद्धमें हिरण्याक्षका चक्रसे शिर काटा उस सत्यसे मुझे छुडाओ ॥ ७४ ॥ पहले हिरण्यकश्यप भिन्न शिर अस्थि होकर गिरा था उसे आपने हुंकारसे नष्ट किया उस सत्यसे मुझे बचाओ॥ ७५॥ जब ब्रह्माके देखते दानवोंने वेदका हरण किया. हे देव ! तब आपनेही उसे छुडाया उस सत्यसे मुझे छुडाइये ॥ ७६॥ आपने हयशिररूप धारण कर मधुकैटभको मार ब्रह्माको वे वेदादि दिये, उस सत्यसे मुझे छुडाओ ॥ ७७ ॥ देव, दानव, राक्षस, यक्ष, सिद्ध, महोरग तुम्हारा अन्त कोई

दीर्घवक्त्रेण रूपेण हिरण्याक्षस्य संयुगे ॥ शिरो जहार चक्रेण तेन सत्येन मोक्षय ॥ ७४ ॥ भग्नमूर्द्धास्थिमस्तिष्को हिरण्यकशिपुः पुरा ॥ हुंकारेण हतो दैत्यस्तेन सत्येन मोक्षय ॥ ७५ ॥ दानवाभ्यां हृता वेदा ब्रह्मणः पश्यतः पुरा ॥ परित्रातास्त्वया देव तेन सत्येन मोक्षय ॥ ७६॥ कृत्वा हयशिरोरूपं हत्वा तु मधुकैटभौ ॥ ब्रह्मणे तेऽर्पिता वेदास्तेन सत्येन मोक्षय ॥७७॥ देवदानवगन्धर्वा यक्षसिद्धमहोरगाः ॥ अन्तं तव न पश्यन्ति तेन सत्येन मोक्षय ॥ ७८ ॥ अपांतरतमा नाम जातो देवस्य वै सुतः ॥ कृताश्च तेन वेदार्थास्तेन सत्येन मोक्षय ॥७९॥ वेदयज्ञाग्निहोत्राणि पितृयज्ञहवींषि च ॥ रहस्यं तव देवस्य तेन सत्येन मोक्षय॥८०॥ ऋषिर्दीर्घतमा नाम जात्यन्धो गुरुशापतः ॥ त्वत्प्रसादाच्च चक्षुष्मांस्तेन सत्येन मोक्षय ॥ ८१ ॥ ग्राहग्रस्तं गजेन्द्रं च दीनं मृत्युवशं गतम् ॥ भक्तं मोक्षितवांस्त्वं हि तेन सत्येन मोक्षय ॥ ८२ ॥ अक्षयश्चाव्ययश्च त्वं ब्रह्मण्यो भक्तवत्सलः ॥ उच्छ्रितानां नियन्तासि तेन सत्येन मोक्षय ॥ ८३ ॥

नहीं देखते. उस सत्यसे मुझे छुडाओ ॥ ७८ ॥ अपांतरतमा नामवाला देवपुत्र हुआ था. उसने वेदार्थ किया था उस सत्यसे मुझे छुडाओ ॥ ७९ ॥ वेद, अग्निहोत्र, पितृ, यज्ञ, हवि और जो वेदमें आपका रहस्य है. उस सत्यसे मुझे छुडाओ ॥ ८० ॥ दीर्घतमा नामक ऋषि गुरुके शापसे अंधजाति आपकेही प्रसादसे नेत्रवान् हुआ उसी सत्यसे मुझे बचाओ ॥ ८१ ॥ ग्राहसे गृहीत मृत्युके वशीभूत अपने भक्त गजेन्द्रको आपने छुडाया उस सत्यसे मुझे छुडाओ ॥ ८२ ॥ आप अक्षय अविनाशी ब्रह्मण्य भक्तवत्सल हो आप उच्छ्रितोंके नियंता हो उस सत्यसे मुझे छुडाओ ॥ ८३ ॥

शंख, चक्र, गदा, तूण, शार्ङ्ग धनुष और गरुडको मैं शिरसे प्रणाम करता हूं. वे इससे मुझे छुडावें ॥ ८४॥ शंख, चक्र, गदा, तूण, शार्ङ्ग, गरुडादिक यह सब बंधनसे बलिको छुडानेके निमित्त भगवानूसे प्रार्थना करने लगे ॥ ८५ ॥ तब भगवानूने प्रसन्न हो गरुडजीको राजा बलिके बंधन खोलनेकी आज्ञा दी ॥ ८६ ॥ तब अतुलपराक्रमी गरुड पंखोंको फैलाये हुए जहां बलिराजा स्थित था. उस पृथ्वीके मूलमें प्राप्त हुए ॥ ८७ ॥ तब गरुडजीके आगमनको जान बलिराजाको छोडकर गरुडजीके भयसे पीडित सब सर्प भोगवती पुरीमें प्राप्त हुए ॥ ८८ ॥ फिर विष्णुके प्रसादसे छुटे हुए

शङ्खं चक्रं गदां पद्मं शार्ङ्गं गरुडमेव च ॥ प्रसादयामि शिरसा ते बन्धान्मोक्षयन्तु माम् ॥ ८४ ॥ शङ्खचक्रगदातूणशार्ङ्गं च गरुडादयः ॥ प्रसादयामासुर्हरिं बलिं मोक्षय बन्धनात् ॥ ८५ ॥ ततः प्रसन्नो भगवानादिदेश खगेश्वरम् ॥ गरुडं नागहन्तारं बलिं मोक्षय बन्धनात् ॥ ८६ ॥ ततो विक्षिप्य गरुडः पक्षावतुलविक्रमः ॥ जगाम वसुधामूलं यत्रास्ते संयतो बलिः ॥ ८७ ॥ आगमं तस्य विज्ञाय नागा मुक्त्वा महासुरम् ॥ ययुः पुरीं भोगवतीं वैनतेयभयार्दिताः ॥ ८८ ॥ मुक्तं कृष्णप्रसादेन चिन्तयानमधोमुखम् ॥ भ्रष्टश्रियमुवाचेदं गरुत्मान्पन्नगाशनः ॥ ८९ ॥ गरुड उवाच ॥ दानवेन्द्र महाबाहो विष्णुस्त्वामब्रवीत्प्रभुः ॥ मुक्तो निवस पाताले सपुत्रजनबान्धवः ॥ ९० ॥ इतस्त्वया न गन्तव्यं गव्यूतिमपि दानव ॥ समयं यदि भिन्द्यास्त्वं मूर्द्धा ते शतधा भवेत् ॥ ९१ ॥ पक्षीन्द्रवचनं श्रुत्वा दानवेन्द्रोऽब्रवीदिदम् ॥ स्थितोऽस्मि समये तस्य अनन्तस्य महात्मनः ॥ ९२ ॥ जीवोपायं तु भगवान्मम किंचित्करोतु सः ॥ इहस्थोऽहं सुखासीनो येनाप्याये खगेश्वर ॥ ९३ ॥

विष्णुको चिन्तवन करते लक्ष्मीसे भ्रष्ट सर्पोंके बंधनसे रहित बलि राजासे गरुडजी कहने लगे ॥ ८९ ॥ हे दानवेन्द्र ! हे महाबाहो ! विष्णुने तुमसे कहा है कि तुम मुक्त होकर पुत्र जन बांधवोंसहित पातालमें वास करो ॥ ९० ॥ और यहांसे हे दानव ! तुम इस देशसे दो कोश आगेभी न जाना, जो इस प्रतिज्ञाको भेदन करोगे तो तुम्हारे मस्तकके सौ सौ टुकडे होंयगे ॥ ९१ ॥ गरुडजीके वचन सुन बलिराजा कहने लगे, कि मैं विष्णुकी आज्ञाको माने समयपर स्थित हूं ॥ ९२ ॥ परन्तु वे ईश्वर मेरे जीवनके अर्थ भोजनकाभी उपाय करेंगे,

जिससे यहीं स्थित हुआ मैं पुष्ट होता रहूंगा ॥ ९३ ॥ बलिके वचन सुन गरुडजी कहने लगे; कि हे राजन् ! तुम्हारे जीवनका उपाय पहलेही विष्णुने कर दिया है ॥ ९४ ॥ अर्थात् विधिको नहीं जाननेवाले, और प्रायश्चित्तको नहीं जाननेवाले तथा ऋत्विक्संज्ञासे भिन्न ब्राह्मण जो यज्ञको करेंगे वह यज्ञभाग तुम्हें है ॥ ९५ ॥ अर्थात् तिस यज्ञभागको देवता नहीं ग्रहण करेंगे इस करके पुष्ट हुए तुम सुखपूर्वक यहां रहो ॥ ९६ ॥ हे दानवेन्द्र ! इस प्रकारसे त्रिलोकभावन विष्णुने तुमको संदेशा दिया है ॥ ९७ ॥ वैशम्पायनजी बोले; कि इस प्रकार यह पापनाशक पूर्वोक्त स्तोत्र

बलेस्तु वचनं श्रुत्वा गरुत्मानिदमब्रवीत् ॥ पूर्वमेव कृतस्तेन जीव्योपायो महात्मना ॥ ९४ ॥ वर्त्तयिष्यन्ति ये यज्ञा विधिहीना न ऋत्विजः ॥ प्रायश्चित्तमजानन्तो यज्ञभागस्ततस्तव ॥ ९५ ॥ न तेषां यज्ञभागं वै प्रतिगृह्णन्ति देवताः ॥ अनेनाप्यायितश्चैकः सुखमात्रं निवत्स्यासि ॥ ९६ ॥ वैशम्पायन उवाच ॥ संदेशमेतं भगवान्दत्तवान्कश्यपात्मजः ॥ दानवेन्द्रं महाबाहो विष्णुस्त्रैलो-क्यभावनः॥ ९७ ॥ इमं स्तवमनन्तस्य सर्वपापप्रमोचनम् ॥ यः पठेन्नरो भक्त्या तस्य नश्यति किल्बिषम् ॥९८॥ गोहत्यायाः प्रमुच्येत ब्रह्मघ्नो ब्रह्महत्यया ॥ अपुत्रो लभते पुत्रं कन्या चेप्सितं पतिम् ॥ ९९ ॥ सद्यो गर्भात्प्रमुच्येत गर्भिणी जनयेत्सुतम् ॥ ये च मोक्षैषिणो लोके योगिनः सांख्यकापिलाः ॥ १०० ॥ स्तवेनानेन गच्छन्ति श्वेतद्वीपमकल्मषाः ॥ सर्वकामप्रदो ह्येष स्तवोऽ-नन्तस्य कीर्त्यते ॥ १ ॥ यः पठेत्प्रातरुत्थाय शुचिः प्रयतमानसः ॥ सर्वान्कामानवाप्नोति मानवो नात्र संशयः ॥ २ ॥

जो पढेगा, तिसके सब पाप नाशको प्राप्त होंगे ॥ ९८ ॥ गायका मारनेवाला गोहत्यासे छूट जायगा. ब्राह्मणका मारनेवाला ब्रह्महत्यासे छूट जायगा और जिसके पुत्र नहीं होता हो वह पुत्रको प्राप्त होगा और कन्या वांछित वरको प्राप्त होगी ॥ ९९ ॥ और लग्नगर्भवाली स्त्री गर्भसे छूट जायगी और गर्भिणी स्त्री पुत्रको जनेगी, और इस स्तोत्रके प्रतापसे मोक्षकी इच्छावाले योगी कपिलशास्त्र सांख्यके ज्ञाता ॥ १०० ॥ इससे पापरहित हो श्वेतद्वीपमें जायकर प्राप्त होंगे. यह विष्णुका स्तोत्र सब कामनाओंका देनेवाला है ॥ १ ॥ पवित्र हो जो मनुष्य प्रातः उठकर इस स्तोत्रका पाठ

करेगा, वह मनुष्य सब कामनाओंको प्राप्त होगा इसमें संशय नहीं ॥ २ ॥ यह वामन अवतार वेदको जाननेवाले ब्राह्मणोंसे कहने योग्य है, वेदवादी ब्राह्मण इसका पाठ करते हैं ॥ ३ ॥ इस वामनजीके दिव्य आख्यानको पर्वकालमें भक्तिसहित नित्य श्रवण करे तो ॥ ४ ॥ राजा सुनकर शत्रुओंको निश्चय जीते, जैसे महाबली विष्णुने जय की इससे उत्तम यश और बढे धनको प्राप्त होता है ॥ ५ ॥ वह सद्गतिको प्राप्त हो सब प्राणियोंका प्रिय होता है, धन धान्य और सद्गुणी पुत्रोंकी वृद्धि होती है, तथा आरोग्यता होती है ॥ ६ ॥ और इस स्तोत्रके पठन करनेवाले मनुष्यपर सब कामनाओंको देनेवाले विष्णु भगवान् प्रसन्न हो जाते हैं ऐसे वेदव्यासजीने कहा है ॥ १०७ ॥ इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे भविष्यपर्वणि भाषायां वामनप्रादुर्भावो नाम द्विसप्ततितमोऽध्यायः ॥ ७२ ॥ धन्य उपाख्यानसे आरंभ कर बाणासुरके जयपर्यन्त श्रीकृ-

एष वै वामनो नाम प्रादुर्भावो महात्मनः ॥ वेदविद्भिर्द्विजैरेव पठ्यते वैष्णवं यशः॥३॥ यस्त्विमं वामनं दिव्यं प्रादुर्भावं महात्मनः ॥
शृणुयान्नियतो भक्त्या सदा पर्वसु पर्वसु॥४॥परान् विजयते राजा यथा विष्णुर्महाबलः॥यशो विमलमाप्नोति विपुलं चाप्नुते वसु॥५॥
प्रियो भवति भूतानां सर्वेषां वामनो यथा ॥ पुत्रपौत्राश्च वर्द्धन्ते आरोग्यं गुणसंपदः ॥ ६ ॥ प्रीयते पठतश्चास्य देवदेवो जनार्दनः ॥
सर्वकामयुतश्चैव कृष्णद्वैपायनोऽब्रवीत् ॥ १०७ ॥ इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे भविष्यपर्वणि वामनप्रादुर्भावो नाम द्विसप्ततितमोऽध्यायः ॥७२॥ जनमेजय उवाच ॥ किमर्थं भगवान्विष्णुर्देवदेवो जनार्दनः ॥ गतः कैलासशिखरमालयं शंकरस्य च ॥ १ ॥

ष्णकी उत्कर्षता। वर्णन की उनके प्रादुर्भावमें उनके निर्गुण सगुण स्वरूपका व्याख्यान कर भारत श्रवण फलश्रुति दर्शनपर्यन्त समाप्त किया, बाणयुद्धमें हरिहरका अभेद कहा (स च ममात्मा भद्रसेन इतिवत्) इनका अत्यन्त अभेद माननेसे शास्यशासकभाव सिद्ध नहीं होता इसीसे वह अभेद औपचारिक है ऐसा माननेवाला मंदमति पुरुषोंकी मतिको शोधन करनेके लिये अब कैलासयात्रा और त्रिपुरवधतक ग्रंथ आरंभ करते हैं उन दोनोंकी संवोत्तमता वर्णन करके जैसे योगीके कायव्यूह देहके विद्यमान होनेमें ऐकात्म्यता सिद्ध होती है, देहभेदसे ऐकात्म्य नष्ट नहीं होता. क्योंकी सर्वोत्तम अद्वैत योग्य है. सो अनुशासनपर्वमें श्रीकृष्ण शंकरका आराधन करनेको कैलास गये, यह संक्षेपसे कहकर अब विस्तारसे कहते हैं कि सच्चिदानंद

कैसे अल्पसुखके लिये तप करनेके लिये गये थे हम पूछते हैं जन्मेजय कहने लगे; कि देवताओंके देवता विष्णु भगवान् महादेवके आलयरूप कैलासशिखरमें किस कारण प्राप्त हुए ॥ १ ॥ नारद आदि तपोवर्धित तपस्विवर्योंने नीललोहित शंकर महादेवको देखा ॥ २ ॥ और हे विप्र ! उत्तम तपको करनेवाले देवदेव केशव भगवान्ने महादेवका पूजन व तप किया है, यह मैंने सुना है ॥ ३ ॥ पुरातन जगन्नाथ महादेव और विष्णुकी इन्द्र आदि देवताओंने पूजा करी है ॥ ४ ॥ एक आत्मावाले जगत्की योनि सृष्टि और संहार करनेवाले वह दोनों एकही दो रूपसे दीखते हैं ॥ ५ ॥ परस्परके समावेशसे जगत्की पालनामें स्थित हरि और महादेव इन दोनोंका जैसे कैलासपर्वतमें वृत्तान्त

नारदाद्यैस्तपोवृद्धैर्मुनिभिस्तत्त्वदर्शिभिः ॥ तत्र दृष्टो महादेवः शंकरो नीललोहितः॥ २ ॥ केशवेन पुरा विप्र कुर्वता तप उत्तमम् ॥ अर्चितो देवदेवेन शंकरश्चेति नः श्रुतम् ॥ ३ ॥ देवौ तत्र जगन्नाथौ दृष्टवन्तौ पुरातनौ ॥ अर्चयांचक्रिरे देवा इन्द्राद्याः शंकरं हरिम् ॥ ४ ॥ तौ हि देवौ महादेवावेकीभूतौ द्विधा कृतौ ॥ एकात्मानौ जगद्योनी सृष्टिसंहारकारकौ ॥ ५ ॥ परस्परसमावेशाज्जगतः पालने स्थितौ ॥ तयोस्तत्र यथावृत्तं कैलासे पर्वतोत्तमे ॥६॥ ऋषयः किमचेष्टन्त दृष्ट्वा तौ पुरुषोत्तमौ ॥ एतत्सर्वमशेषेण वक्तुमर्हसि सत्तम ॥ ७ ॥ यथा गतो हरिर्विष्णुः कृष्णो जिष्णुः पुरातनः ॥ तथा च शंकरः साक्षात्कृतवान्नागभूषणः ॥ एतत्सर्वं विप्रवर्य ब्रूहि तत्त्वेन यत्नतः ॥ ८ ॥ वैशम्पायन उवाच ॥ शृणुष्वावहितो राजन्यथा कृष्णो गतो नगम् ॥ यथा च दृष्टो देवेशः शंकरो वृषवाहनः ॥ ९ ॥ यथा चचार स तपो यथा त मुनयो गताः ॥ एवं तयोर्यथा वृत्तं तथा शृणु नरोत्तम ॥ १० ॥

हुआ है ॥ ६ ॥ और इन दोनों पुरुषोत्तमोंको देखकर सब ऋषियोंने क्या चेष्टा की ? हे श्रेष्ठ ! यह सब विशेषकर तुम हमसे कहो ॥ ७ ॥ जैसे पुरातन विष्णुरूप कृष्ण कैलासमें प्राप्त हुए और जैसे सर्पोंके भूषणवाले महादेवजीने कुछ कर्त्तव्य किया, यह सब यत्नसे वर्णन करो ॥ ८ ॥ वैशम्पायन बोले; कि हे राजन् ! जिस प्रकार कृष्ण भगवान् कैलासको प्राप्त हुए और जैसे महादेवजीको देखा. तिस वृत्तान्तको तुम सावधान होकर सुनो ॥ ९ ॥ और जैसे कृष्ण भगवान्ने तप किया; और जैसे मुनिजनभी प्राप्त हुए; ऐसे इन दोनोंके वृत्तान्तको हे नरोत्तम ! श्रवण करो ॥ १० ॥

जैसे वेदव्यासजीने मुझसे कहा है, उन गरुडवाहनवाले श्रीकृष्णचंद्रको नमस्कार कर मैं कहता हूं ॥ ११ ॥ यह आख्यान यथाशक्ति जैसा सुना है, कहता हूं, शुश्रूषासे रहित और नृशंस व तपसे रहित ॥ १२ ॥ तथा मूर्खके आगे यह पुण्यकथा कहनी उचित नहीं है, और यह आख्यान पुण्यवानोंको पुण्यरूप है. स्वर्ग और यशका देनेवाला धन्य सब कालमें बुद्धि और शुद्धिका करनेवाला है ॥ १३ ॥ पुण्यात्माओंको नित्यप्रति ध्यान करने योग्य है, कारण कि यह वेदके अर्थोंसे निश्चित है, उपनिषदोंमें इसका वर्णन है, जिसकी महात्मा जन आलोचना करते हैं कार्यकारणमें प्राप्त हुए हरिहरको जीवेशरूपसे वर्णन करते हैं, जीवईश्वरमें सर्वथा अभेद शास्त्रोंमें प्रतिपादन किया है, किसी पुराणमें विष्णु, किसीमें शिव पक्ष लेकर वर्णन

द्वैपायनोऽथ भगवान्यथा प्रोवाच मां तथा ॥ नमस्कृत्य प्रवक्ष्यामि केशवं खगवाहनम् ॥ ११ ॥ यथाशक्ति यथाप्रज्ञं शृणु यत्नेन सुव्रत ॥ न चाशुश्रूषवे वाच्यं नृशंसायातपस्विने ॥ १२ ॥ नानधीताय वक्तव्यं पुण्यं पुण्यवतां सदा ॥ स्वर्ग्यं यशस्यं धन्यं च बुद्धिशुद्धिकरं सदा ॥ १३ ॥ ध्येयं पुण्यात्मनां नित्यमिदं वेदार्थनिश्चितम् ॥ अनेकारण्यसंयुक्तं सेवन्ते नित्यमीदृशम् ॥ १४ ॥ मुनयो वेदनिरता नारदाद्यास्तपोधनाः ॥ अत्यद्भुतं महापुण्यं वृत्तं कैलासपर्वते ॥ १५ ॥ शिवयोर्देवयोस्तत्र हरेश्चैव भवस्य ह ॥ हतेष्वसुरसंघेषु नरकादिषु भूमिप ॥ १६ ॥ हतेष्वथ नृपेष्वेवं किंचिच्छिष्टेषु शत्रुषु ॥ शासति स्म सदा विष्णुः पृथिवीं पुरुषोत्तमः ॥ १७ ॥ द्वारवत्यां जगन्नाथो वसन्वृष्णिभिरीश्वरः ॥ रुक्मिण्या संगतो देवो वसंस्तत्र पुरे हरिः ॥ १८ ॥ कदाचिच्च तया सार्द्धं शेते रात्रौ जगत्पतिः ॥ विहरंश्च यथायोगं प्रीतः प्रीतियुजा तथा ॥ १९ ॥

किया है, इसमें विष्णु जीवरूप और शिव ईश्वररूपसे प्रतिपादन किया जाता है ॥ १४ ॥ इस आख्यानको वेदनिरत नारद आदि मुनि नित्य सेवते हैं, और कैलासपर्वतमें ॥ १५ ॥ विष्णुका और शिवका अद्भुतरूप वृत्तान्त हुआ है, जब नरकासुर आदि दैत्योंके समूह मारे गये ॥ १६ ॥ और राजाओंके मरनेपर कुछेक शत्रु बाकी रह गये, तब श्रीकृष्ण पुरुषोत्तम भगवान् पृथ्वीमें शिक्षा देने लगे ॥ १७ ॥ और द्वारकापुरीमें वृष्णियोंके साथ वह जगन्नाथ वास करते रुक्मिणीके संग रहने लगे ॥ १८ ॥ किसी समयमें रुक्मिणीके संग रात्रिमें क्रीडा करनेवाले और प्रसन्न हुए जगत्पति

विष्णु शयन करने लगे ॥ १९ ॥ उस समय सुवर्णके भूषण पहरे रुक्मिणी कहने लगी कि हे देवेश ! हे माधव ! सोनेके गहनोंको धारण करनेवाले, आनन्दके देनेवाले ॥ २० ॥ अतिबलवान् और रूपसे संपन्न तुम्हारे समान रूपवाले वृष्णिवंशवालोंके नेता और अतिवीर्यवान् और तपोनिधि ॥ २१ ॥ सब शास्त्रके अर्थमें दक्ष और राजविद्यामें प्रवीण आदि गुणोंसे युक्त पुत्रकी इच्छा करती हूं, सो हे श्रेष्ठ ! सो तुम देनेको योग्य हो ॥ २२ ॥ आपमें सबका दातृत्व स्थित है, तुम सब जगत्के कर्ता हो, दाता हो भोक्ता हो, और जगत्पति हो ॥ २३ ॥ विशेषकर शुश्रूषा करनेवाले भृत्योंके तुमही

अथोवाच तदा देवी रुक्मिणी रुक्मभूषणा ॥ पुत्रमिच्छामि देवेश त्वत्तो माधव नन्दनम् ॥ २० ॥ बलिनं रूपसंपन्नं त्वयेव सदृशं प्रभो ॥ वृष्णीनामपि नेतारं वीर्यवन्तं तपोनिधिम् ॥ २१ ॥ सर्वशास्त्रार्थकुशलं राजविद्यापुरस्कृतम् ॥ एवमादिगुणैर्युक्तं दातुमर्हसि सत्तम ॥२२ ॥ त्वयि सर्वस्य दातृत्वं नित्यमेव प्रतिष्ठितम् ॥ त्वं हि सर्वस्य कर्ता च दाता भोक्ता जगत्पतिः ॥ २३ ॥ विशेषतस्तु भृत्यानां शुश्रूषा नियतात्मनाम् ॥ वक्तव्यं किमु देवेश यदि भक्तास्मि केशव ॥ २४ ॥ अनुग्रहो यदि स्यान्मे देवदेव जगत्पते ॥ दातुमर्हसि पुत्रं त्वं वीर्यवन्तं जनार्दन ॥२५॥ वैशम्पायन उवाच ॥ इत्युक्तो देवदेवेशः प्रियया प्रीयमाणया ॥ तया महिष्या रुक्मिण्या रुक्मिशत्रुर्यदूद्वहः ॥ २६ ॥ प्रोवाच वचनं काले रुक्मिणीं यादवेश्वरः ॥ दातास्मि तादृशं पुत्रं यं त्वमिच्छसि भामिनि ॥ २७ ॥ नित्यं भक्तासि मे देवि नात्र कार्या विचारणा ॥ अवश्यं तव दास्यामि पुत्रं शत्रुनिबर्हणम् ॥ २८ ॥ पुत्रेण लोकान् जयति सतां कामदुघा हि ये ॥ नरकं पुदिति ख्यातं दुःखं च नरकं विदुः ॥ २९ ॥

स्वामी हो, हे देवेश ! विशेष क्या कहूं, आपमें मेरी पूर्ण भक्ति है ॥ २४ ॥ यदि मुझपर अनुग्रह है तो हे जनार्दन ! वीर्यवाले पुत्रको तुम देनेको योग्य हो ॥ २५ ॥ वैशंपायनजी बोले, कि इस प्रकार प्रिया रुक्मिणीके वचन सुन रुक्मके शत्रु और यदुवंशमें उत्पन्न होनेवाले ॥ २६ ॥ श्रीकृष्ण रुक्मिणीसे समयके अनुसार कहने लगे कि हे भामिनी ! जैसे पुत्रकी तुम इच्छा करती हो वैसेही पुत्रको मैं तुम्हें दूंगा ॥ २७ ॥ तुम मेरी नित्य भक्तिवाली हो इसमें संशय नहीं कर निश्चयही शत्रुओंको जीतनेवाला तुम्हें पुत्र दूंगा ॥ २८ ॥ पुत्रसे उत्तम लोकोंमें मनुष्य प्राप्त होते

हैं, पुत्र सत्पुरुषोंको कामधेनु है, और पुन्नाम नरकका है अथवा दुःखका है ॥ २९ ॥ तिससें जो रक्षा करे तिसको पुत्र कहते हैं, ऐसे पुत्रको इस लोकमें और परलोकमें चाहते हैं. हे प्रिये ! पुत्रवाले पुरुषको अनन्त शुभरूप लोक प्राप्त होते हैं ॥ ३० ॥ और प्रथम पति भार्यामें प्रवेश करता है, फिर माताके पेटमें गर्भरूप होकर रहता है, फिर नये रूपको धारण कर दशवें महीनेमें जन्मता है ॥ ३१ ॥ पुत्रवाले मनुष्यसे इन्द्रभी भय मानता है, और पुत्रसे रहित मनुष्य उत्तम लोकोंको नहीं प्राप्त हो सकता, परन्तु कुपुत्रसे वंध्या भार्या रहनी उत्तम है ॥ ३२ ॥ कुपुत्रसे नरक होता है, और सुपुत्रसे

पुन्नाम्नस्त्राणात्ततः पुत्रमिहेच्छति परत्र च ॥ अनन्ताः पुत्रिणो लोकाः पुरुषस्य प्रिये शुभाः ॥ ३० ॥ पतिर्जायां प्रविशति गर्भो भूत्वा स मातरम् ॥ तस्यां पुनर्नवो भूत्वा दशमे मासि जायते ॥ ३१ ॥ पुत्रवन्तं बिभेतीन्द्रः किन्तु तेनाजितं भवेत् ॥ नापुत्रो विन्दते लोकान्कुपुत्राद्वन्ध्यता वरा ॥ ३२ ॥ कुपुत्रो नरके यस्मात्सुपुत्रात्स्वर्ग एव हि ॥ तस्माद्विनीतं सत्पुत्रं श्रुतवन्तं दयापरम् ॥ ३३ ॥ विद्यया विनयो यस्माद्विद्यायुक्तं सुधार्मिकम् ॥ इच्छेत्पुत्रं पुत्रकामः पुरुषो यत्नवान्बुधः ॥ ३४ ॥ तस्माद्दास्यामि ते पुत्रं विद्यावन्तं सुधार्मिकम् ॥ एष गच्छामि पुत्रार्थं कैलासं पर्वतोत्तमम् ॥३५॥ तत्रोपास्य महादेवं शंकरं नीललोहितम् ॥ ततो लब्धास्मि पुत्रं ते भवाद्भूतहिते रतात् ॥ ३६ ॥ तपसा ब्रह्मचर्येण भवं शंकरमव्ययम् ॥ तोषयित्वा विरूपाक्षमादिदेवमजं विभुम् ॥ ३७ ॥ गमिष्याम्यहमद्यैव द्रष्टुं शंकरमव्ययम् ॥ स च मे दास्यते पुत्रं तोषितस्तपसा मया ॥ ३८ ॥

स्वर्ग होता है, इस कारण विनीत श्रुतवाला दयावान् हो ॥ ३३ ॥ विद्यासे विनय होती है, इसलिये विद्यावान् धार्मिक पुत्रकी पुरुष इच्छा करे ॥ ३४ ॥ इस कारण विद्यावान् धार्मिक पुत्रको तुम्हें दूंगा, अब पुत्रकी प्राप्तिके अर्थ पर्वतोंमें उत्तम कैलासपर्वतको जाता हूं ॥ ३५ ॥ तहां नीललोहितरूप महादेवजीकी उपासना कर प्राणियोंपर दया करनेवाले महादेवजीसे पुत्रको प्राप्त करूंगा ॥ ३६ ॥ और तपसे ब्रह्मचर्यसे अविनाशी विरूपाक्ष आदिदेव अज विभुको प्रसन्न करूंगा ॥ ३७ ॥ अविनाशी महादेवजीके देखनेको मैं अभी गमन करता हूं, तपसे प्रसन्न हो महादेवजी मुझे पुत्र देंगे ॥ ३८ ॥

तहां जाय पार्वतीसहित महादेवको नमस्कार कर पवित्र मुनियोंसे युक्त तपोमयी ॥ ३९ ॥ अग्निहोत्रोंसे आकुल, दिव्य गंगाजलसे प्लावित मृग और पक्षियोंसे युक्त, सिंह और हाथियोंके समूहसे व्याप्त ॥ ४० ॥ झडबेरीके फलोंसे पूरित और वानरोंसे शोभित वृक्षोंवाली, तथा नेत्र आदिसे आरूढ महावृक्षोंवाली, केलोंसे मण्डित ॥ ४१ ॥ वेदोंके तत्त्वार्थके विचारमें निपुण और प्रमाणमें कुशल ॥ ४२ ॥ मुनियोंसे युक्त यह एक है और यह तत्त्व है, ऐसे निश्चित मनवाले मुनियोंसे उपास्यमान ॥ ४३ ॥ और इतिहास पुराणके जाननेवाले महर्षि और सिद्धोंसे सेव्यमान और स्वर्गको जानेके

तत्र गत्वा महादेवं नमस्कृत्य सहोमया ॥ प्रविश्य बदरीं पुण्यां मुनिजुष्टां तपोमयीम् ॥ ३९ ॥ अग्निहोत्राकुलां दिव्यां गङ्गाम्बुप्लावितां सदा ॥ मृगपक्षिसमायुक्तां सिंहद्विपशताकुलाम् ॥ ४० ॥ बदरीफलसंपूर्णां वानरक्षोभितद्रुमाम् ॥ वेत्रारूढमहावृक्षां कदलीखण्डमण्डिताम् ॥ ४१ ॥ मुनिभिर्वेदतत्त्वार्थविचारनिपुणैः सदा ॥ वेदनिश्चिततत्त्वार्थैः प्रमाणकुशलैर्युताम् ॥ ४२ ॥ इदमेकमिदं तत्त्वमितिनिश्चितमानसैः ॥ उपास्यमानामन्यत्र सिद्धैः सिद्धार्थतत्परैः ॥ ४३ ॥ इतिहासपुराणज्ञैः सेव्यमानां महर्षिभिः ॥ गच्छद्भिः स्वर्गनिलयं परित्यज्य कलेवरम् ॥४४॥ प्रसिद्धां महतीं देवीं यास्यामि सुकृतालयाम् ॥ इत्युक्त्वा विररामैव देवदेवो जनार्दनः ॥४५॥ इति श्रीम० खिलेषु हरिवंशे भवि० कैलासयात्रायां त्रिसप्ततितमोऽध्यायः ॥७३ ॥ वैशम्पायन उवाच ॥ प्रभातायां तु शर्वर्यां गन्तुमेच्छज्जनार्दनः॥ हुताग्निः कृतकल्याणः समाप्तवरदक्षिणः ॥१॥ गाश्च दत्त्वाथ विप्रेभ्यो नमस्कृत्य द्विजोत्तमान् ॥ आस्थानमण्डपं कृष्णः प्रविवेश जगत्पतिः ॥२॥ आसनं महदास्थाय वृष्णीनाहूय सर्वशः ॥ बलभद्रं शिनेः पुत्रं हार्दिक्यं शुकसारणौ ॥ ३ ॥

समय इस शरीरको ॥ ४४ ॥ त्यागनेवाले जनोंसे पूर्ण प्रसिद्ध सुकृत देवस्थानरूप बदरीपुरीमें प्रवेश कर स्थित हूंगा, इस प्रकार कहकर देवदेव जनार्दन श्रीकृष्ण विरामको प्राप्त हुए ॥ ४५ ॥ इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे भविष्यपर्वणि भाषायां कैलासयात्रायां त्रिसप्ततितमोऽध्यायः ॥ ७३ ॥ वैशंपायनजी बोले; कि जब रात्रि व्यतीत हो गई, प्रभात हुआ, तब गमन करनेकी इच्छावाले श्रीकृष्ण अग्निमें हवन कर और दक्षिणा दान दे ॥ १ ॥ ब्राह्मणोंको गोदान देकर ब्राह्मणोंको नमस्कार कर जगत्पति श्रीकृष्ण अपने बैठनेके स्थानमें प्रवेश करते हुए ॥ २ ॥ तहां सुंदर आसनपर स्थित हो

सब वृष्णिवंशको और बलदेव, सात्यकि, कृतवर्मा, शुक, सारण ॥ ३ ॥ उग्रसेन और नीतिमें कुशल महाबुद्धिमान् उद्धव कि जिसकी बुद्धिके आश्रय हो सब यादव सुखपूर्वक जीते हैं ॥ ४ ॥ सब यदु और सब वृष्णियोंके नेता और धर्ममें तत्पर और जिस महात्माकी नीतिसे देवताभी भय मानते हैं ॥ ५ ॥ जिसकी बुद्धिके वशसे विष्णु सब पृथ्वीको शिक्षित करते हुए उन वृष्णियोंमें श्रेष्ठ वीर और देवताओंकी समान कान्तिवाले उद्धव ॥ ६ ॥ और अन्यभी सब यादवोंसे श्रीकृष्ण भगवान् कहने लगे; कि हे यादवो ! मेरे वचनको तुम सब श्रवण करो. हे उद्धव ! मेरे पिताने जो मेरे अर्थ वचन कहा है, वहभी

उग्रसेनं महाबुद्धिमुद्धवं नीतिमत्तरम् ॥ यस्य बुद्धिं समाश्रित्य जीवन्ते यादवाः सुखम् ॥ ४ ॥ नेता च यदुवृष्णीनां स तु धर्मपरो यदा ॥ यस्य बिभ्यति देवाश्च नीतेस्तस्य महात्मनः ॥५॥ यस्य बुद्धिवशाद्विष्णुः शशास पृथिवीं सदा ॥ तं च वृष्णिवरं वीरमुद्धवं देवसुप्रभम् ॥ ६ ॥ अन्यानपि यदून्सर्वानुवाच भगवान् हरिः ॥ शृण्वन्तु मम वाक्यानि यादवाः सर्व एव हि ॥ शृणु चापि वचो मह्यं पितुरुद्धव मे सखे ॥ ७ ॥ बाल्यात्प्रभृति यो यत्नो मम दुष्टनिबर्हणे ॥ प्रत्यक्षं भवता दृष्टं पूतनानिधनं नृप ॥ ८ ॥ केशी च निहतो बाल्ये मया बालेन यादवाः ॥ गोवर्द्धनोद्धृतः शैलो गावश्च परिपालिताः ॥ ९ ॥ अभिषिक्तोऽस्मि शक्रेण देवानामग्रतः स्थितः ॥ कंसोऽपि निधनं नीतो मया चाणूरमुष्टिकौ ॥१०॥ उग्रसेनोऽभिषिक्तश्च कृता द्वारवती मया ॥ अन्ये चापि नृपा राजन्बलिनो निहता मया ॥ ११ ॥ योऽपि वीरो जरासन्धो निगृहीतो बलान्मया ॥ भीमेन बालिना राजन्नयेन मम यादवाः ॥ १२ ॥ शृगालो निहतः संख्ये गोमन्ताद्गच्छता मया ॥ योऽपि वीरो दुरात्माऽसौ दानवो नरको हतः ॥ १३ ॥

सुनो ॥ ७ ॥ मैंने दुष्टोंके निग्रह करनेमें बाल्यअवस्थासे यत्न किया है सो प्रथम पूतना मारी है, यह प्रत्यक्ष आपने देखा है ॥ ८ ॥ पीछे केशी मैंने बालकपनेमें मारा, गोवर्द्धन पर्वत धारण किया है, और गायोंकी पालना की ॥ ९ ॥ फिर इन्द्रने मेरा अभिषेक किया है, इसके पीछे चाणूर मुष्टिक करके सहित कंसभी मारा है ॥ १० ॥ और उग्रसेनका अभिषेक कर द्वारकापुरी बसाई, औरभी बहुतसे बलवाले राजा मैंने मारे ॥ ११ ॥ और जरासंध राजाभी बलवाले भीमसेनके हाथसे मैंने मरवा दिया ॥ १२ ॥ गोमंतपर्वतसे गमन करते मैंने युद्धमें शृगालराजाकोभी मारा, बडे वीर दुरात्मा

नरकासुरकोभी मैंने मारा ॥ १३ ॥ इस प्रकार यह लोक मैंने निष्कण्टक कर दिया है, परन्तु भौमासुरका सखा वीर नृप हुआ है ॥ १४ ॥ वह पौंड्र वीर्य्यवालोंका नेता और सब कालमें मेरा वैरी, द्रोणाचार्यका शिष्य, और बली ब्रह्मास्त्रको जाननेवाला पण्डित ॥ १५ ॥ शास्त्रोंको जाननेवाला, नीतिमान्, सबोंका नेता और यत्नवाला योधा, युद्धप्रिय, दूसरे परशुरामजीकी समान ॥ १६ ॥ हमारा एकांत द्वेषी, सब कालमें मेरे छिद्रको ढूंढनेवाला पौंड्र राजा छिद्रको प्राप्त होतेही हमारी पुरीको पीडित करेगा ॥ १७ ॥ और वह अल्पसाध्य राजा नहीं है, वह बडा बली पुंड्रेश है. उससे

निष्कण्टकमिमं लोकं कृतवान्राजसत्तमाः ॥ किं तु वीरो नृपो यज्ञे सखा भौमस्य यादवाः ॥ १४ ॥ पौण्ड्रो वीर्यवतां नेता द्वेष्टा चासौ सदा मम ॥ शिष्यो द्रोणस्य राजेन्द्रो बली ब्रह्मास्त्रवित्कृती ॥ १५ ॥ शास्त्रज्ञो नीतिमान्त्साक्षान्नेता सर्वस्य यत्नवान् ॥ योद्धा युद्धप्रियो राजा जामदग्न्य इवापरः ॥ १६ ॥ एकान्तशत्रुरस्माकं छिद्रान्वेषी सदा मम ॥ बाधिष्यते पुरीं योद्धा च्छिद्रं यदि लभेत सः ॥ १७ ॥ न ह्यल्पसाध्यो बलवान् पुण्ड्रस्येशो नृपोत्तमाः ॥ यत्ता भवन्तस्तिष्ठन्तु प्रगृहीतशरासनाः ॥ १८ ॥ यथा न बाधते राजा पुरीं यदुकुलाश्रयाम् ॥ अहं तु यास्ये कैलासं कुतश्चित्कारणान्नृपाः ॥ १९ ॥ शंकरं द्रष्टुकामोऽस्मि भूतभावनभावनम् ॥ यावदागमनं मह्यं तावद्यत्ता भवन्त्विह ॥ २० ॥ मया विरहितां चेमां यदि जानाति पुण्ड्रकः ॥ आगमिष्यति राजेन्द्रो योत्स्यते च पुरीमिमाम् ॥२१॥ इमां निर्यादवीं कर्तुं शक्नोतीति च मे मतिः ॥ यत्ता भवत राजेन्द्राः खड्गैः पाशैः परश्वधैः ॥२२॥

हे यादवो ! तुम धनुष बाण आदिसे सावधान रहियो ॥ १८ ॥ जिससे पौंड्रक राजा इस द्वारकापुरीको बाधा नहीं दे. हे यादवो ! मैं किसी कारणसे कैलासको ॥ १९ ॥ भूतभावन महादेवजीके देखनेको जाता हूं, जबतक मेरा आगमन हो, तबतक सावधान रहो ॥ २० ॥ मुझरहित यदि इस पुरीको जान लेगा तो पौंड्रराजा इस पुरीमें आकर युद्ध करेगा ॥ २१ ॥ और वह राजा इस पुरीको यादवोंसे रहित कर सकता है, यह मैं मानता हूं, इस कारण तलवार, पाश, फरसा, भिंदिपाल, पाषाण कर्षक मंत्रादिसे स्वस्तिकादिसे तैयार हो. शस्त्रोंको धारण कर सदा सावधान रहो ॥ २२ ॥

द्वारकापुरीके सब दरवाजोंको किवाडोंसे बंद कर दो ॥ २३ ॥ एक बडे द्वारको जाने आनेके निमित्त खुला रखो और जो राजाके सन्मुख गमन करे, वह छापा लगवाकर गमन कर सके ॥ २४ ॥ और छापेसे रहित द्वारपालके देखते कोईभी प्रवेश नहीं कर सके, जबतक मेरा आगमन न हो, तबतक ऐसे होना चाहिये ॥ २५ ॥ और न शिकार खेलनेको जाना चाहिये और न पुरीसे बाहर क्रीडा करनी चाहिये और आनेजानेमें अपने पराये पुरुषको सदा जानना चाहिये ॥ २६ ॥ जबतक मेरा आगमन हो, तबतक यह सब करना इस प्रकार सब यादवोंसे कहकर फिर सात्यकिसे कहने लगे ॥ २७ ॥

पाषाणैः कर्षणीयैश्च सन्नद्धा भवत स्वकैः ॥ पिधाय च कपाटानि महाद्वाराणि यत्नतः ॥ २३ ॥ एक एव महाद्वारो गमनागमने सदा ॥ मुद्रया सह गच्छन्तु राज्ञो ये गन्तुमीप्सवः ॥ २४ ॥ न चामुद्रः प्रवेष्टव्यो द्वारपालस्य पश्यतः ॥ यावदागमनं मह्यं तावदेवं भविष्यति ॥ २५ ॥ मृगया नात्र कर्तव्या न च क्रीडा बहिः पुरात् ॥ ज्ञातव्याश्च परे स्वे च गमनागमने सदा ॥ २६ ॥ एवमादिक्रिया कार्या यावदागमनं मम ॥ इत्युक्त्वा यादवान्सर्वान् सात्यकिं पुनराह च ॥ २७ ॥ इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे भविष्यपर्वणि कैलासयात्रायां चतुःसप्ततितमोऽध्यायः ॥ ७४ ॥ श्रीभगवानुवाच ॥ सात्यके शृणु मद्वाक्यं यत्तो भव युधांवर ॥ त्वं तु खड्गी गदी भूत्वा चापपाणिस्तनुत्रवान् ॥ १ ॥ तिष्ठ यत्नेन रक्षस्व पुरीं बहुनृपाश्रयाम् ॥ न च निद्रा त्वया कार्या रात्रौ यदुवृषप्रभो ॥ २ ॥ न च व्याख्या त्वया कार्या शास्त्राणां शास्त्रतत्पर ॥ न च वादस्त्वया कार्यो वादिभिः सह वृष्णिप ॥ ३ ॥ त्वं हि योद्धा बलिर्ज्ञाता धनुर्वेदाख्यवेदवित् ॥ तथा कुरु यथा वीर नोपहास्या भवेदियम् ॥ ४ ॥

इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे भविष्यपर्वणि भाषायां कैलासयात्रायां चतुःसप्ततितमोऽध्यायः ॥ ७४ ॥ श्रीकृष्ण भगवान् बोले कि हे सात्यके ! मेरे वाक्यको श्रवण करो. हे युधांवर ! सावधान हो और तलवार गदा धनुष आदि हथियारोंको ग्रहण करो ॥ १ ॥ इस यत्नसे पुरीकी रक्षा करो और हे प्रिय यदुश्रेष्ठ ! तुम रात्रिमें शयन न करना ॥ २ ॥ हे शास्त्रकुशल ! उस समय शास्त्रकी व्याख्याभी न करना हे, वृष्णिपति ! वादीजनोंके संग वादभी न करना ॥ ३ ॥ और तुमही योद्धा हो, तुमही बली हो और तुमही धनुर्वेदको जाननेवाले हो हे वीर ! तैसे करना जिस प्रकार हम उपहास्यताको प्राप्त न हो ॥ ४ ॥

तब सात्यकि बोला कि हे जनार्दन! अपनी शक्तिपूर्वक तुम्हारे वचनोंको करूंगा. हे जगन्नाथ! तुम्हारी आज्ञा मैं सब कालमें धारण करूंगा ॥ ५ ॥ हे माधव! बलदेवजीके भृत्यके समान होकर विचरूंगा और जबतक आपका आगमन होगा तबतक यत्नसे रहूंगा ॥ ६ ॥ हे गोविंद ! तुम्हारी कृपा जो मुझपर रहेगी, तो शत्रुओंके निग्रह करनेमें मुझे कुछभी दुस्साध्य नहीं ॥ ७ ॥ जो इन्द्र, धर्मराज, कुबेर, वरुण यह आवें तो इन देवताओंकोभी जीत सकता हूं फिर एक मनुष्यरूप पौंड्रराजाके जीतनेकी कौन कथा है ॥ ८ ॥ हे प्रिय ! तुम अपने कार्यको गमन करो. मैं निरन्तर सावधान हूं

सात्यकिरुवाच ॥ करिष्यामि वचस्तुभ्यं यथाशक्ति जनार्दन ॥ आज्ञा तव जगन्नाथ धार्या यत्नेन मे सदा ॥५॥ भृत्यवत्प्रचरिष्यामि कामपालस्य माधव ॥ यावदागमनं तुभ्यं तावत्स्थास्यामि यत्नतः ॥ ६ ॥ प्रसादस्तव गोविन्द यदि स्यान्मयि माधव ॥ किं नाम मे च दुःसाध्यं शत्रूणां निग्रहे रणे ॥ ७ ॥ यदि शक्रं यमं वापि कुबेरमपि पाशिनम् ॥ सर्वानेतान्विजेष्यामि किमु पौण्ड्रं नृपोत्तमम् ॥ ८ ॥ गच्छ कार्यं कुरुष्वेदं यत्तोऽहं सततं हरे ॥ उद्धवं पुनराहेदं कृष्णः पद्मनिभेक्षणः ॥ ९ ॥ शृणूद्धव त्वं वाक्यं मे कुर्यास्त्वेतत्प्रयत्नवान् ॥ रक्ष्या नयेन राजेन्द्र पुरी द्वारवती त्वया ॥ १० ॥ यत्तो भव सदा तात कुरु साहाय्यमत्र नः ॥ लज्जा मम समुत्पन्ना वदतस्तव साम्प्रतम् ॥ ११ ॥ त्वं हि नेता समस्तस्य विद्यापारस्य सर्वतः ॥ को नु शक्ष्यति मेधावी वक्तुं विद्यावतः पुरः ॥ १२ ॥ यत्कार्यं तद्भवान्वेत्ति ह्यकार्यं वापि सर्वतः ॥ अतोऽहं विरमे तात वक्तुं संप्रति वृष्णिप ॥ १३ ॥ उद्धव उवाच ॥ किमिदं तव गोविन्द वर्त्तते मां प्रति प्रभो ॥ अहो प्रसन्नता मह्यं किं तु प्रीतिरियं तव ॥ १४ ॥

फिर कमललोचन श्रीकृष्ण उद्धवजीसे कहने लगे ॥ ९ ॥ हे उद्धव! तुम यत्नपूर्वक मेरे वचन करना नीतिपूर्वक इस पुरीकी रक्षा करना तुमको उचित है ॥ १० ॥ हे तात! सावधान होकर हमारी सहाय करना और तुम्हारे आगे कहनेमें मुझे लाज आती है ॥ ११ ॥ क्योंकि सब विद्याके पारगामी तुमही नेता हो, इस कारण विद्यावालेके सन्मुख कौन शिक्षा देनेको समर्थ है ॥ १२ ॥ कार्य और अकार्यको तुम भली भांतिसे जानते हो. हे वृष्णिपाल ! इस कारण आपके सन्मुख कुछ विशेष कहना उचित नहीं ॥ १३ ॥ उद्धवजी बोले कि हे गोविंद ! यह आप कैसे वचन मुझसे

कहते हो या तौ आपकी प्रसन्नता है, या प्रीतिसे कहते हो ॥ १४ ॥ हे जगन्नाथ ! आपके विस्तारको मैं जानता हूं. जिसपर तुम प्रसन्न होते हो तिसको क्या नहीं होता, तुम मुझपर प्रसन्न होनेसे यह कहते हो ॥ १५ ॥ तुमही सब जगत्के कर्ता और हर्ता हो, तथा सब कार्योंके उत्पत्ति-स्थान हो. वक्ता श्रोता और प्रमाणको जाननेवाले धाता ध्यानमय और ध्येय ऐसा तुमको ब्रह्म जाननेवाले कहते हैं आप शत्रुओंके जीतनेवाले और देवताओंकी रक्षा करनेवाले हो ॥ १६ ॥ १७ ॥ तुम्हारीही कृपासे हतवैरी होकर हम जीते हैं नीतिको जाननेवालेभी तुम हो, और सब कार्योंके

जानाम्यहं जगन्नाथ प्रसादस्यैष विस्तरः ॥ यस्य प्रसन्नो भवसि तस्य किं नास्ति केशव ॥ १५ ॥ त्वं हि सर्वस्य जगतः कर्ता हर्ता प्रधानतः ॥ प्रभवः सर्वकार्याणां वक्ता श्रोता प्रमाणवित् ॥ १६ ॥ ध्याता ध्यानमयो ध्येय इति ब्रह्मविदो विदुः ॥ जेता देवरिपूणां च गोप्ता नाकसदां भवान् ॥ १७ ॥ त्वंनाथा वयमेवेति जीवामो निहतद्विषः ॥ इयं नीतिरहं मन्ये नेता नीतेर्यतो भवान् ॥ १८ ॥ को नु नाम नयो वेद त्वां विना साम्प्रतं वद ॥ नीतिस्त्वं सर्वकार्याणामिति मे निश्चिता मतिः ॥ १९॥ दुर्गाढो नवमार्गोऽयमित्याहुस्तद्विदो जनाः ॥ चतुर्द्धा प्रोच्यते नीतिः सामदाने जनार्दन॥२०॥दण्डो भेदो मनुष्याणां निग्रहावग्रहे सदा ॥ दण्ड्येषु दण्डमिच्छन्ति सामान्यं तु नये हरे ॥ २१ ॥ बलवत्स्वथ दानं तु त्रयाणामप्यगोचरे ॥ प्रयोक्तव्यो महाभेद इति नीतिमतां मतम् ॥ २२ ॥ तेषु तेष्वथ सर्वेषु प्रमाणं त्वां विदुर्बुधाः ॥ किमत्र बहुनोक्तेन सर्वं त्वयि समर्पितम् ॥ २३ ॥

नीतिरूप आप तुम हो ॥ १८ ॥ और तुम्हारे सिवाय नीतिको जाननेवाला कौन है सो तो आप कहिये आप सब कार्योंकी नीति हो, यह मेरी निश्चित मति है ॥ १९ ॥ यह नीतिमार्ग दुर्घट है ऐसा नीतिके जाननेवाले कहते हैं. हे जनार्दन ! चार प्रकारसे नीति कही है साम, दान ॥ २० ॥ दण्ड, भेद, यह मनुष्योंके निग्रह अवग्रहमें प्रयोग किया जाता है, दंडके देने योग्योंको दंड देना उचित है, और सामान्यको साम उचित है ॥ २१ ॥ और बलवानोंमें दानका देना उचित है और इन तीनोंसे जो वशमें नहीं आवे तौ भेद करना उचित है, ऐसे नीतिवालोंका मत है ॥ २२ ॥ और तहां तहां सब कार्योंमें विद्वान् आपको प्रमाणरूप मानते हैं, बहुत कहनेसे क्या है. सब कार्य आपहीमें समर्पित है ॥ २३ ॥

वैशम्पायनजी बोले; कि इस प्रकार कह नीतिको जाननेवाले उद्धवजी शान्त हो गये तब भगवान् श्रीकृष्ण ॥ २४ ॥ यादवोंकी सभामें बडी भुजावाले बल-
देवजी और राजा उग्रसेनसे कहने लगे ॥ २५ ॥ पीछे फिर श्रीकृष्ण बलदेवजीसे कहने लगे कि आप प्रमाद नहीं करना सब कालमें यत्नवान् रहना ॥ २६ ॥
हे महाबाहो ! जहां तुम स्थित रहोगे, तहां जगत्को क्या पीडा हो सकती है ? इस कारण हे आर्य ! सब कालमें गदाको धारण करना, क्रीडा न
करना ॥ २७ ॥ सब यत्नसे इस द्वारकापुरीकी रक्षा करो और जैसे हम उपहास्यताको प्राप्त न हों तैसे करो गदा ग्रहण करो ॥ २८ ॥ और सब कालमें उत्साह

वैशम्पायन उवाच ॥ इत्युक्त्वा विररामैव उद्धवो नीतिमत्तरः ॥ ततः स भगवान्विष्णुरेवमेव नृपोत्तम ॥ २४ ॥ कामपालं महाबा-
हुमुवाच यदुसंसदि ॥ उग्रसेनं नृपं राजंस्तथा हार्दिक्यमेव च ॥ २५ ॥ कामपालं पुनर्विष्णुरिदं प्रोवाच तत्त्ववित् ॥ न प्रमादस्त्वया
कार्यः सर्वदा यत्नवान् भव ॥ २६ ॥ स्थिते त्वयि महाबाहो का पीडा जगतो भवेत् ॥ गदी भव सदा त्वार्य न क्रीडा सर्वदा भवेत् ॥ २७ ॥
रक्ष त्वं सर्वदा यत्नात्पुरीं द्वारवतीं प्रभो ॥ नोपहास्या यथा स्याम तथा कुरु गदी भव ॥ २८ ॥ उत्साहः सर्वदा कार्यो
निरुत्साहो न यत्नतः ॥ बाढमित्यब्रवीद्रामः कृष्णं वृष्णिकुलोद्भवम् ॥ २९ ॥ वृष्णयः सर्व एवैते स्वं स्वं सद्म समाययुः ॥ गन्तु-
मैच्छज्जगन्नाथः कैलासं पर्वतोत्तमम् ॥ ३० ॥ इति श्रीम० खिलेषु हरिवंशे भविष्यपर्वणि कैलासयात्रायां पञ्चसप्ततितमोऽध्यायः ॥ ७५ ॥
वैशम्पायन उवाच ॥ ततः संचिन्तयामास गरुडं पक्षिपुङ्गवम् ॥ आगच्छ त्वरितं तार्क्ष्य इति विष्णुर्जगत्पतिः ॥ १ ॥ ततः स
भगवांस्तार्क्ष्यो वेदराशिरिति स्मृतः ॥ बलवान्विक्रमी योगी शास्त्रनेता कुरूद्वह ॥ २ ॥

करना और यत्नसे भी उत्साहका त्याग न करना, इस वचनको सुन बलदेवजी श्रीकृष्णसे कहने लगे कि आपका कहना ठीक है सब किया जायगा ॥ २९ ॥
इसके उपरान्त सब यादव अपने अपने स्थानको चले गये तब श्रीकृष्ण भगवान् कैलासपर्वतमें गमन करनेकी इच्छा करने लगे ॥ ३० ॥
इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे भविष्यपर्वणि भाषायां कैलासयात्रायां पंचसप्ततितमोऽध्यायः ॥ ७५ ॥ वैशम्पायन कहने लगे; तदनंतर श्रीकृष्णने
पक्षियोंमें श्रेष्ठ गरुडजीको स्मरण किया अर्थात् यह विचार जगत्पतिने किया कि हे गरुड ! शीघ्र आ ॥ १ ॥ हे राजन् ! उसी समय वेदोंके जानने-

वाले अतिबलवान् और योगशास्त्रके जाननेवाले ॥ २ ॥ यज्ञमूर्ति, पुराणात्मा, साममूर्द्धा और पवित्र ऋग्वेदरूप पंखोंवाले पिंगल और जटिलकी आकृतिवाले ॥ ३ ॥ तांबेके समान तुंडवाले अमृतको हरनेवाले शत्रुओंको जीतनेवाले महाशिरवाले और सर्पोंके वैरी कमलके फूलोंकी समान नेत्रोंवाले साक्षात् दूसरे विष्णु भगवान् ॥ ४ ॥ विष्णु श्रीकृष्णके वाहन दैत्योंकी स्त्रियोंकी गर्भको खंडन करनेवाले राक्षस और दैत्योंके समूहको पंखोंके बलसे जीतनेवाले ॥ ५ ॥ महाबली गरुडजी श्रीकृष्णके आगे प्रगट हो गोडोंसे पृथ्वीमें पड बोले, हे विष्णु ! हे जगत्पते ! ॥६॥ हे देवदेवेश ! हे स्वामिन् !

यज्ञमूर्तिः पुराणात्मा साममूर्द्धा च पावनः ॥ ऋग्वेदपक्षवान्पक्षी पिङ्गलो जटिलाकृतिः ॥ ३ ॥ ताम्रतुण्डः सोमहरः शक्रजेता महाशिराः ॥ पन्नगारिः पद्मनेत्रः साक्षाद्विष्णुरिवापरः ॥ ४ ॥ वाहनं देवदेवस्य दानवीगर्भकृन्तनः ॥ राक्षसासुरसंघानां जेता पक्षबलेन यः ॥ ५ ॥ प्रादुरासीन्महावीर्यः केशवस्याग्रतस्तदा ॥ जानुभ्यामपतद्भूमौ नमो विष्णो जगत्पते ॥६॥ नमस्ते देवदेवेश हरे स्वामिन्निति ब्रुवन् ॥ पस्पर्श पाणिना कृष्णः स्वागतं तार्क्ष्यपुङ्गवम् ॥ ७ ॥ इत्युवाच तदा तार्क्ष्यं यास्ये कैलासपर्वतम् ॥ शूलिनं द्रष्टुमिच्छामि शंकरं शाश्वतं शिवम् ॥ ८ ॥ बाढमित्यब्रवीत्तार्क्ष्य आरुह्यैनं जनार्दनः ॥ तिष्ठध्वमिति होवाच यादवान्पार्श्ववर्तिनः ॥९॥ ततो ययौ जगन्नाथो दिशं प्रागुत्तरां हरिः ॥ रवेण महता तार्क्ष्यस्त्रैलोक्यं समकम्पयत ॥ १० ॥ सागरं क्षोभयामास पद्भ्यां पक्षी व्रजंस्तदा ॥ पक्षेण पर्वतान्सर्वान्वहन्देवं जनार्दनम् ॥ ११ ॥

हे हरे ! इस प्रकार कहते हुए नमस्कार करने लगे तब श्रीकृष्णने अपने हाथसे स्पर्श कर कहा; हे गरुड ! तुम्हारा सुंदर आगमन हुआ ॥ ७ ॥ और हे प्रिय ! मैं महादेवजीके देखनेको कैलासपर्वतमें गमन करूंगा. उन शाश्वत शूलधारी शिवके देखनेकी इच्छा करता हूं ॥ ८ ॥ तब गरुडजीने कहा बहुत अच्छा तब श्रीकृष्ण गरुडपर चढ समीपमें खडे हुए यादवोंसे कहने लगे कि हे प्रियो ! तुम स्थित रहो ॥ ९ ॥ तब ऐशान्य दिशाको भगवान् गमन करने लगे गरुडजी बडे वेगसे त्रिलोकीको कंपायमान करते हुए चले ॥ १० ॥ पैरोंसे गरुडजीने समुद्रको क्षोभित किया और पंखोंसे सब पर्वतोंको

॥१८०॥

कंपाते श्रीकृष्णको वहन करने लगे ॥ ११ ॥ गरुडजी समुद्रको क्षोभित करते चले तब आकाशमें स्थित देवता और गंधर्व इष्टरूप वाणियोंसे श्रीकृष्णकी स्तुति करने लगे ॥ १२ ॥ जय देव जगन्नाथ जय जगत्पति विष्णु, हे अजेय ! आपकी जय हो. हे भूतभावन ॥ १३ ॥ परमसिंहरूप दैत्यदानवोंके मारनेवाले हो आपको नमस्कार है हे अजेय ! योगिध्येय परागते ! आपकी जय हो ॥ १४ ॥ नारायण देव हरे कृष्ण जगत्पते आदिकर्ता पुराणात्मन् ब्रह्मयोनि सनातन ॥ १५ ॥ सबके ईश निर्गुण गुणात्मा भक्तिप्रिय दानवनाशक भक्तके निमित्त नमस्कार है ॥ १६ ॥ अचिन्त्यमूर्ति

ततो देवाः सगन्धर्वा आकाशेऽधिष्ठितास्तदा ॥ तुष्टुवुः पुण्डरीकाक्षं वाग्भिरिष्टाभिरीश्वरम् ॥ १२ ॥ जय देव जगन्नाथ जय विष्णो जगत्पते ॥ जयाजेय नमो देव भूतभावनभावन ॥ १३ ॥ नमः परमसिंहाय दैत्यदानवनाशन ॥ जयाजेय हरे देव योगिध्येय परागते ॥ १४ ॥ नारायण नमो देव कृष्ण कृष्ण हरे हरे ॥ आदिकर्तः पुराणात्मन् ब्रह्मयोने सनातन ॥ १५ ॥ नमस्ते सकलेशाय निर्गुणाय गुणात्मने ॥ भक्तिप्रियाय भक्ताय नमो दानवनाशन ॥ १६ ॥ अचिन्त्यमूर्तये तुभ्यं नमस्ते सकलेश्वर ॥ इत्यादिभिस्तदा देवं वाग्भिरीशानमव्ययम् ॥ १७ ॥ तुष्टुवुर्देवगन्धर्वा ऋषयः सिद्धचारणाः ॥ शृण्वन्नेव जगन्नाथः स्तुतिवाक्यानि तानि च ॥ १८ ॥ ययौ सार्द्धं सुरगणैर्मुनिभिर्वेदपारगैः ॥ यत्र पूर्वं स्वयं विष्णुस्तपस्तेपे सुदारुणम् ॥ १९ ॥ लोकवृद्धिकरः श्रीमाँल्लोकानां हितकाम्यया ॥ वर्षायुतं तपस्तप्तं विष्णुना प्रभविष्णुना ॥ २० ॥ यत्र विष्णुर्जगन्नाथस्तपस्तप्त्वा सुदारुणम् ॥ द्विधाकरोत्स्वमात्मानं नरनारायणाख्यया ॥ २१ ॥ गङ्गा यत्र सरिच्छ्रेष्ठा मध्ये धावति पावनी ॥ यत्र शक्रः स्वयं हत्वा वृत्रं वेदार्थतत्त्वगम् ॥ २२ ॥

सबके ईश्वर आपके निमित्त नमस्कार है. इस प्रकारकी वाणियोंसे अविनाशी ईशान देवकी ॥ १७ ॥ देवता, गंधर्व, ऋषि, सिद्ध, चारण, श्रीकृष्णकी स्तुति करते हुए जनार्दन देव इस प्रकार स्तुति वाक्योंको सुनते हुए ॥ १८ ॥ श्रीकृष्ण देवता और मुनियोंके संग गये, जहां पहले दारुण तप किया था ॥ १९ ॥ लोकोंके हितकी कामनासे लोकवृद्धिके निमित्त श्रीमान् समर्थ विष्णुने स्वयं दशसहस्र वर्षतक उग्र तप करके ॥ २० ॥ अर्थात् जहां जगन्नाथ विष्णुने दारुण तप करके नर नारायण नामसे अपनी आत्माको दो प्रकारसे किया ॥ २१ ॥ जहां सब नदियोंमें श्रेष्ठ पवित्र गंगाजी मध्य-

भागमें चलती है, और जहां वेदार्थोंके तत्त्वको जाननेवाले वृत्रासुरको इन्द्रने मारकर ॥ २२ ॥ ब्रह्महत्या दूर करनेको दश सहस्र वर्षोंतक तप किया था और जहां विष्णुका ध्यानकर असिद्ध सिद्ध होते हैं ॥ २३ ॥ और जहां लोक दुःखदाई रावणको मारकर रामचन्द्रजीने शिक्षा देनेको इच्छासे घोर तप किया था ॥ २४ ॥ जहां पवित्ररूप देवता और मुनि सिद्धिको प्राप्त होते हैं और जहां नित्यप्रति साक्षात् केशव विष्णु वसते हैं ॥ २५ ॥ जहां मुनिगणोंके सहित यज्ञ होते हैं; और जिसके स्मरण करनेसे मनुष्य स्वर्गको गमन करते हैं ॥ २६ ॥ जिसको मुनिजन

ब्रह्महत्याविनाशार्थं तपो वर्षायुतं चरत ॥ यत्र सिद्धाश्च सिद्धाः स्युर्ध्यात्वा देवं जनार्दनम् ॥ २३ ॥ यत्र हत्वा रणे रामो रावणं लोकरावणम् ॥ एतच्छासनमिच्छंश्च तपो घोरमतप्यत ॥ २४ ॥ देवाश्च मुनयश्चैव सिद्धिं यान्ति शुचिव्रताः ॥ यत्र नित्यं जगन्नाथः साक्षाद्वसति केशवः ॥ २५ ॥ यत्र यज्ञाः प्रवर्तन्ते नित्यं मुनिगणैः सह ॥ यस्याः स्मरणमात्रेण नरः स्वर्गं गमिष्यति ॥ २६ ॥ स्वर्गसोपानमिच्छन्ति यां पुण्यां मुनिसत्तमाः ॥ शत्रवो मित्रतां यान्ति यत्र नित्यं नृपोत्तम ॥ २७ ॥ यामाहुः पुण्यशीलानां स्थानमुत्तमधर्मिणाम् ॥ यत्र विष्णुं समाराध्य देवाः स्वर्गं समाययुः ॥ २८ ॥ सिद्धक्षेत्रमिदं प्राहुर्ऋषयो वीतमत्सराः ॥ विशालां बदरीं विष्णुस्तां द्रष्टुं सकलेश्वरः॥२९॥सायाह्ने चामरगणैर्मुनिभिस्तत्त्वदर्शिभिः ॥ प्रविवेश महापुण्यमृषिजुष्टं तपोवनम् ॥ ३० ॥ अग्निहोत्राकुले काले पक्षिव्याहारसंकुले ॥ नीडस्थेषु विहंगेषु दुह्यमानासु गोषु च ॥३१॥ ऋषिष्वप्यथ तिष्ठत्सु मुनिर्वीरेषु सर्वतः ॥ समाधिस्थेषु सिद्धेषु चिन्तयत्सु जनार्दनम् ॥ ३२ ॥

साक्षात् स्वर्गकी सीढी मानते हैं, और जहां वास कर शत्रुभी मित्रभावको प्राप्त हो जाते हैं ॥ २७ ॥ जो पुण्यशीलोंका और उत्तमधर्मवालोंका परम स्थान है, और जहां विष्णुकी आराधना कर देवता स्वर्गमें प्राप्त हुए हैं ॥२८॥ और जिसको मत्सरता रहित मुनिजन सिद्धक्षेत्र कहते हैं; ऐसी विशाला बदरीको देखनेके अर्थ ॥ २९ ॥ सबके ईश्वर विष्णु सायंकालमें देवताओंके गण और तत्त्वोंको जाननेवाले मुनियोंके संग ऋषियोंसे जुष्ट और महापवित्र तपोवनमें प्रवेश करते हुए ॥३०॥ जो अग्निहोत्रोंसे आकुल पक्षियोंके बोलनेसे संकुल है, सब पक्षी अपने अपने घोसलोंमें स्थित हो रहे हैं, और गायें दुही जाती हैं ॥ ३१ ॥ अपने आसनोंपर मुनिजन स्थित हो रहे हैं, और समाधिमें स्थित होनेवाले मुनिजन विष्णुके चिंतवन करनेमें लग रहे हैं जहां

घृत गरम हो रहा है, जहां अग्नि प्रज्वलित हो रहा है और जहां चारों ओर अग्निमें हवन हो रहा है ॥ ३२ ॥ और जहां अतिथिकी पूजा हो रही है, ऐसे संध्यासमयमें देवताओंके संग श्रीकृष्ण ॥ ३३॥ मुनियोंसे जुष्ट और तपोमयी ऐसी बदरीपुरी अर्थात् बद्रिकाश्रममें प्रवेश करने लगे ॥ ३४ ॥ तब आश्रमके मध्यभागमें श्रीकृष्ण प्रवेश कर ॥ ३५ ॥ गरुडजीसे उत्तर दीपिकाओंसे दीपित प्रदेशमें प्रवेश कर देवताओंके साथ स्थित हुए ॥ ३६ ॥ इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे भविष्यपर्वणि भाषायां कैलासयात्रायां षट्सप्ततितमोऽध्यायः ॥ ७६ ॥ वैशंपायन बोले; कि तब देवताओंके देवता

अधिश्रितेषु हविषु ज्वाल्यमानेषु चाग्निषु ॥ हूयमानेषु तत्रैव पावकेषु समन्ततः ॥३२॥ अतिथौ पूज्यमाने च संध्याविष्टे जगन्मये ॥ स तस्यामथ वेलायां देवैः सह जनार्दनः ॥ ३४ ॥ विवेश बदरीं विष्णुर्मुनिजुष्टां तपोमयीम् ॥ आश्रमस्याथ मध्यं तु प्रविश्य हरिरीश्वरः ॥३५॥ गरुडादवरुह्याथ दीपिकादीपिते तदा ॥ प्रदेशे पुण्डरीकाक्षः स्थितस्तावत्सहामरैः ॥ ३६ ॥ इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे भविष्यपर्वणि कैलासयात्रायां षट्सप्ततितमोऽध्यायः ॥ ७६ ॥ वैशम्पायन उवाच ॥ ततो मुनिगणा दृष्ट्वा देवदेवमुपास्थितम् ॥ समाप्य चाग्निहोत्राणि संपूज्यातिथिसत्तमान् ॥ १ ॥ मुनयो दीर्घतपसः समाधौ कृतनिश्चयाः ॥ जटिनो मुण्डिनः केचिच्छिराधमनिसंतताः ॥ २ ॥ निर्मज्जा नीरसाः केचिद्वेताला इव केचन ॥ अश्मकुट्टाशनपराः पर्णभक्षास्तथा परे ॥ ३ ॥ वेदविद्याव्रतस्नाता निराहारा महातपाः॥ स्मरन्तः सर्वदा विष्णुं तद्भक्तास्तत्परायणाः ॥ ४॥ आसन्नमुक्तयः केचित्केचिद्ध्यानैकतत्पराः ॥ ध्यानेन मनसा विष्णुं दृष्टवन्तस्तपोधनाः ॥ ५ ॥

श्रीकृष्णको आया देख मुनिगण अग्निहोत्रोंको समाप्त कर और अतिथियोंका पूजन कर ॥ १ ॥ दीर्घकालसे तप करनेवाले, कोई समाधिमें निश्चय करनेवाले, जटाको धारण करनेवाले, मुंडोंको मुंडानेवाले और कोई नसोंसे व्याप्त ॥ २ ॥ कितनेही मज्जासे रहित, कितने रससे रहित, कितनेही वेतालोंकी समान रहनेवाले, कितनेही पत्थरसे कूटे हुए पदार्थको खानेवाले, और कितनेही परभिक्षा करनेवाले ॥ ३ ॥ कितनेही वेदविद्याव्रतोंसे स्नात किये, कितनेही भोजनको नहीं करनेवाले और कितनेही सब कालमें विष्णुका स्मरण कर उनमें भक्ति करनेवाले ॥ ४ ॥ और कितनेही निकट मुक्तिवाले,

कितनेही ध्यानयें तत्पर, कितनेही ध्यानमें मनसे विष्णुको देखनेवाले, कोई तपकोही धन माननेवाले ॥ ५ ॥ और कितनेही एकवर्षमें भोजन करनेवाले, कितनेही जलमें विचरनेवाले, और कितनेही इन्द्रकोभी भय देनेवाले और कितनेही श्रुतिस्मृतिमें परायण ॥ ६ ॥ वसिष्ठ, वामदेव, रैभ्य, धूम्र, जावालि, कश्यप, कण्व, भरद्वाज, गौतम, ॥ ७ ॥ अत्रि, अश्वशिरा, भद्र, शंखनिधि, कुणि, वेदव्यास, पवित्राक्ष, महाशन, याज्ञवल्क्य ॥ ८ ॥ कक्षीवान्, अंगिरा, दीर्घतपा, असित, देवल और महातप करनेवाले वाल्मीकि ॥ ९ ॥ इनके सिवाय औरभी मुनि अर्घको ग्रहण कर श्रीकृष्णके देखनेको अपनी

संवत्सराशिनः केचित्केचिज्जलविचारिणः॥ शक्रस्य भयदातारः श्रुतिस्मृतिपरायणाः ॥६॥ वसिष्ठो वामदेवश्च रैभ्यो धूम्रस्तथैव च ॥
जाबालिः कश्यपः कण्वो भरद्वाजोऽथ गौतमः ॥ ७ ॥ अत्रिरश्वशिरा भद्रः शङ्खः शङ्खनिधिः कुणिः ॥ पाराशर्यः पवित्राक्षो याज्ञव-
ल्क्यो महामनाः ॥ ८ ॥ कक्षीवानङ्गिराश्चैव मुनिर्दीर्घतपास्तथा ॥ असितो देवलस्तात वाल्मीकिश्च महातपाः ॥ ९ ॥ एते चान्ये
च मुनयो द्रष्टुमीश्वरमव्ययम् ॥ आदायार्घ्यं यथायोग्यमुटजात्स्वात्स्वनाययुः ॥ १० ॥ ते च गत्वा हरिं कृष्णं विष्णुमाशु जनार्दनम् ॥
भक्तिनम्रास्तदा देवं प्रणेमुर्भक्तवत्सलम् ॥ ११ ॥ नमोऽस्तु कृष्ण कृष्णेति देव देवेति केशवम् ॥ प्रणवात्मन् जगन्नाथ नताः
स्म शिरसा हरे ॥ १२ ॥ कृष्ण विष्णो हृषीकेश केशवेति च सर्वदा ॥ प्रणामप्रवणा विप्राः प्राहुरित्थं जगत्पतिम् ॥ १३ ॥
इदमर्घ्यमिदं पाद्यमिदं विष्टरमेव च ॥ कृतार्थाः सर्वदा देव प्रसन्नो नो जगत्पतिः ॥ १४ ॥ किं कुर्मः किं नु नः कृत्यं कश्चिद्दोषः
प्रभो हरे ॥ इति प्राञ्जलयः सर्वे प्राहुर्देवस्य पश्यतः ॥ १५ ॥

अपनी कुटियोंसे आये ॥ १० ॥ भक्तिसे नम्र हुए मुनि भक्तवत्सल ईश्वर, विष्णु, जनार्दन श्रीकृष्णको प्रणाम करते हुए ॥ ११ ॥ कहने लगे; हे कृष्ण! हे कृष्ण! हे देवदेव! हे प्रणवात्मन्! हे जगन्नाथ! हे हरे! हम शिरसे नमस्कार करते हैं ॥१२॥ हे कृष्ण! हे कृष्ण! हे विष्णु! हे केशव! हे हृषीकेश! तुमको सब मुनि जगत्का पति मानते हैं; और प्रणाम करते हैं ॥ १३ ॥ यह अर्घ्य, यह पाद्य और यह आसन ग्रहण करो. तुमने हम सबको कृत कृत्य कर दिया इस कारण हे देव! हमपर प्रसन्न रहो ॥ १४॥ और हम क्या करें? क्या हमारा कृत्य है? क्या हमसे कोई दोष हुआ है? इस प्रकार

सब हाथ जोड श्रीकृष्णके देखते हुए कहने लगे ॥ १५ ॥ तब सब देवताओंसे युक्त श्रीकृष्ण कहने लगे कि, हे मुनिवरो ! तुम लोगोंने सब सुकृत किया है, इस कारण तुम्हारा उत्तम तप बढता रहे ॥ १६ ॥ इस प्रकार कहते हुए तिन गरुडजीके संग प्रसन्न हुए रात्रिमें श्रीकृष्ण आसनको प्राप्त हुए ॥ १७ ॥ फिर सब मुनियोंसे अग्निहोत्रमें, तपमें, भृत्योंमें कुशल पूछने लगे ॥ १८ ॥ तब सब मुनि श्रीकृष्णसे कुशल कहते हुए ॥ १९ ॥ इसके उपरान्त नीवार धान्य, फल, मूल, आदिसे सब देवताओंका और विशेष कर श्रीकृष्णका मुनिजन आतिथ्य करने लगे. सो आतिथ्यको प्राप्त होकर

कृष्णोऽपि तद्यथायोगमुपयुज्य सहामरैः ॥ कृतं सर्वं मुनिवरा वर्द्धतां तप उत्तमम् ॥ १६ ॥ इति ब्रुवन् पुराणात्मा प्रीतस्तेन गरुत्मता ॥ आसनं लम्भयामास रात्रौ देवो जनार्दनः ॥ १७ ॥ कुशलं पृष्टवान् भूयो मुनीनां भावितात्मनाम् ॥ अग्निहोत्रेषु तपासि तथा भृत्येषु सर्वतः ॥ १८ ॥ एवमादि जगन्नाथः पृष्टवानीश्वरस्तदा ॥ सर्वत्र कुशलं तेऽत्र ब्रुयुः कृष्णस्य सर्वतः ॥ १९ ॥ आतिथ्यं चक्रिरे ते तु नीवारैः फलमूलकैः ॥ देवानामथ सर्वेषां विष्णोः कृष्णस्य यत्नतः ॥ आतिथ्यमुपयुञ्जानस्ततः प्रीतोऽभवद्धरिः ॥ २० ॥ इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे भविष्यपर्वणि कैलासयात्रायां सप्तसप्ततितमोऽध्यायः ॥ ७७ ॥ वैशम्पायन उवाच ॥ ततः स भगवान्विष्णुर्दुर्विज्ञेयगतिः प्रभुः ॥ तत्र पूर्वं तपस्तप्तमात्मना यादवेश्वरः ॥ १ ॥ गङ्गायाश्चोत्तरे तीरे देशं द्रष्टुमुपागतः ॥ स्वयमेव हरिः साक्षात्प्रविवेश तपोवनम् ॥ २ ॥ प्रविश्य सुचिरं देशं ददर्श च मनोरमम् ॥ निषसाद ततस्तस्मिन्नाश्रमे पुण्यवर्द्धनः ॥ ३ ॥ समाधौ योजयामास मनः पद्मनिभेक्षणः ॥ किमप्येष जगन्नाथो ध्यात्वा देवेश्वरः स्थितः ॥ ४ ॥

श्रीकृष्ण अतिप्रसन्न हुए ॥ २० ॥ इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे भविष्यपर्वणि भाषायां कैलासयात्रायां सप्तसप्ततितमोऽध्यायः ॥ ७७ ॥ वैशंपायन कहने लगे कि; तब अलक्ष्यगति विष्णु भगवान्‌ने जहां पहले तप किया था ॥ १ ॥ गंगाजीके उत्तर तीरपर तिस देशके देखनेको साक्षात् हरि भगवान्‌ने तपोवनमें प्रवेश किया ॥ २ ॥ तहां मनोरम देशमें प्रवेश कर उत्तम आश्रममें पुण्य बढानेवाले स्थित हुए ॥ ३ ॥ कमललोचन श्रीकृष्णने समा-

धिमें मनको युक्त कर तब देवताओंके ईश्वर श्रीकृष्ण ध्यानमें कुछ विचारने लगे ॥ ४ ॥ जब देवगुरु समाधिमें दीपककी नांई प्रकाशित हुए. तब महाघोररूप शब्द चारों ओरसे होने लगा ॥ ५ ॥ कि खाओ खाओ प्रसन्न हो इन मृगोंको प्राप्त हो. और श्रीकृष्णके प्रसादसे सब कुत्तोंको मैं प्रेरता हूं ॥ ६ ॥ यह विष्णु कृष्ण हरि ईश अच्युत स्थित है. हे विष्णो ! हे देवेश ! हे स्वामिन् ! हे माधव ! हे केशव ! तुमको नमस्कार हो ॥ ७ ॥ इत्यादि महारात्रिमें घोर शब्द प्रगट हुआ फिर दौडते हुए मृगोंके पीछे भागते हुए व्याधेका ॥ ८ ॥ कुत्तोंका और भयवाले मृगोंका और ऋक्षोंका

स्थिते देवगुरौ तत्र समाधौ दीप्तवद्धरौ ॥ तत्र शब्दो महाघोरः प्रादुरासीत्समन्ततः ॥ ५ ॥ खाद खादत मोदेत यात यात मृगानिमान् ॥ प्रेषयेह पुनः सर्वान्प्रसादाच्छार्ङ्गधन्वनः ॥ ६ ॥ एष विष्णुरयं कृष्णो हरिरीशः स्मृतोऽच्युतः ॥ नमोऽस्तु विष्णो देवेश स्वामिन् माधव केशव ॥ ७ ॥ इत्यादिशब्दः सुमहानाविरासीत्तदा निशि ॥ ततश्च सुमहानादः सिंहानां मृगविद्विषाम् ॥ ८ ॥ धावतां च शुनां राजन्मृगाननुविनर्दताम् ॥ मृगाणां भीतियुक्तानामृक्षाणां द्वीपिनां तथा ॥ ९ ॥ गजानां नदतां राजन्बृंहितं च ततस्ततः ॥ महावातसमुद्भूतक्षुभितस्येव वारिधेः ॥ १० ॥ नादस्त्रैलोक्यवित्रासः प्रादुरासीत्तदा निशि ॥ श्रुत्वा शब्दं हरिर्देवस्ताद्दृशं तत्र धिष्ठितः ॥ ११ ॥ समाधिक्षोभमासाद्य विश्वस्य च जगत्पतिः ॥ ततः संचिन्तयामास कोऽयमेष महास्वनः ॥ १२ ॥ कस्यायमीद्दृशः शब्दः स्तुतियुक्तो मम त्विति ॥ अहोऽस्मिन्मृगयाशब्दः शुनां संचरतां वने ॥ १३ ॥ मृगाणामथ सर्वेषां नादश्च सुमहानयम् ॥ व्यामिश्रस्तुतियुक्ताभिर्वाग्भिर्मम समन्ततः ॥ १४ ॥

गैंडोंका ॥ ९ ॥ और गर्जनेवाले हाथियोंका जहां तहांसे बढता हुआ और महावायुसे क्षुभित हुए समुद्रके शब्दकी समान ॥ १० ॥ त्रिलोकीमें त्रासका देनेवाला शब्द रात्रिमें प्रगट होने लगा तब समाधिमें स्थित श्रीकृष्ण यह शब्द सुन ॥ ११ ॥ समाधिके क्षोभको प्राप्त हो जगत्पति श्वास ले चिन्ता करने लगे कि यह महाशब्द क्या है ॥ १२ ॥ मेरी स्तुतिसे संयुक्त यह किसका ऐसा शब्द है ? और आश्चर्य है कि इस वनमें शिकारके अर्थ विचरते हुए कुत्तोंका शब्द ॥ १३ ॥ सब मृगोंका शब्द और मेरी स्तुतिसे मिला हुआ शब्द चारों ओर हो रहा है ॥ १४ ॥

इस प्रकार मनमें चिन्ता कर सब दिशाओंको चारों ओरसे देख उसका कारण देखनेको स्थित हुए ॥ १५ ॥ तब जहां श्रीकृष्ण स्थित थे. तहां भागते हुए मृग आये और तिनके पीछे कुत्तोंका समूह भागता हुआ आया ॥ १६ ॥ जहां सैकडों सहस्रों दीपकोंसे चांदना हो रखा था. इस कारण अंधेरेका नाश हो दिनका समय हो गया ॥ १७ ॥ तब भूतोंके समूह सब ओर दीखने लगे और महाघोर पिशाच शब्द करने लगे ॥ १८ ॥ और मांसको भक्षण करते हुए लोहूको पीते हुए और विकृत मुखोंवाले महाघोर पिशाच प्रगट हुए ॥ १९ ॥

इति संचिन्त्य मनसा दिशो विप्रेक्ष्य सर्वतः ॥ तत आस्ते हरिस्तत्र ज्ञातुं तस्य समुद्भवम् ॥ १५ ॥ ततो मृगाः समाधावन्यत्र तिष्ठति केशवः ॥ तांश्चैवानुचरो राजन् सगणः समपद्यत ॥ १६ ॥ अथ वै दीपिका राजञ्छतशोऽथ सहस्रशः ॥ ततस्तमोऽपि व्यनशद्दिवेव समपद्यत ॥ १७ ॥ ततो नु भूतसंघाश्च समदृश्यन्त तत्र ह ॥ पिशाचाश्च महाघोरा नदन्तो बहु विस्वनम् ॥ १८ ॥ भक्षयन्तोऽथ पिशितं पिबन्तो रुधिरं बहु ॥ प्रादुरासन्महाघोराः पिशाचा विकृताननाः ॥ १९ ॥ हन्यमाना हता राजन्पतन्तः पतिता मृगाः ॥ इतश्चेतश्च धावन्तो बाणैर्विद्धा मृगा द्विपाः ॥ २० ॥ ततो मृगसहस्राणि समुदीर्णानि भारत ॥ यत्रासौ तिष्ठते देवस्तत्र याता निरन्तरम् ॥२१॥ अन्तरीकृत्य देवेशं स्थितानीत्यनुशुश्रुम ॥ पिशाच्यो विकृताकाराः कराला रोमहर्षणाः ॥२२॥ पुत्रवत्यः समापेतुर्यत्र तिष्ठति केशवः ॥ श्वगणस्तत्र राजेन्द्र चरत्येवं ततस्ततः ॥ २३ ॥ ततः स भगवान्विष्णुः सर्वमालोक्य वेष्टितः ॥ विस्मयं परमं गत्वा पश्यन्नास्ते स्म केशवः ॥ २४ ॥

और जहां तहांसे भयसे भागते हुए बाणोंसे विंधे हुए मरनेके तुल्य और मृतक हुए मृग पडने लगे ॥ २० ॥ हे राजन् ! तब सहस्रों मृग तहां प्राप्त हुए जहां देव श्रीकृष्ण स्थित थे ॥ २१ ॥ और श्रीकृष्णको चारों ओरसे घेरकर स्थित हुए यह हमने सुना है विकृत आकारवाली पिशाचनी करालरूप-वाली जिनको देखनेसे रोमावली अर्थात् रुए खडे हो जांय ॥ २२ ॥ पुत्रवती पिशाचोंकी स्त्रियें श्रीकृष्णके निकट प्राप्त हुईं हे राजेन्द्र ! तहां चारों ओरसे कुत्तोंके गण विचरने लगे ॥ २३ ॥ तब श्रीकृष्ण भगवान् सबोंको घेरा हुआ देख परम आश्चर्यको प्राप्त हो उन्हें देखते तहांही स्थित

रहे ॥ २४ ॥ और कहने लगे किसका यह विस्तारपूर्वक शब्द है और किसका यह कुटुम्ब यहां प्राप्त हुआ है, और कौन मेरी भक्ति व स्तुति कर रहा है किसपे मैं प्रसन्न हूंगा ॥ २५ ॥ और जब मैं प्रसन्न हुआ, तब किसको मुक्ति दुर्लभ है. इस प्रकार चिन्ता करके मनुष्यकी चेष्टासे भगवान् स्थित हुए ॥ २६ ॥ इति श्रीमहाभारते खिलेषु भविष्यपर्वणि भाषायां कैलासयात्रायां अष्टसप्ततितमोऽध्यायः ॥ ७८ ॥ वैशम्पायनजी बोले; कि तब उनके पीछे विकृत मुखवाले और धूरिको उडानेवाले पिंगलरोमोंवाले लम्बी जिव्हा और बडी ठोडीवाले ॥ १ ॥ लम्बे केश, विरूप नेत्र, हीहीं हाहा

कस्यैष विस्तृतो नादः कस्य वायं जनोऽपतत् ॥ को नु मां स्तोति भक्त्या वै भविष्ये प्रीतिमान् नु ॥ २५ ॥ कस्य मुक्तिः समायाता प्रीते मयि सुदुर्लभा ॥ इति संचिन्त्य भगवानास्ते प्राकृतवद्धरिः॥२६॥ इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे भविष्यपर्वणि अष्टसप्ततितमोऽध्यायः ॥ ७८ ॥ वैशम्पायन उवाच ॥ तेषामनु महाघोरो पिशाचो विकृताननो ॥ पांशू पिङ्गलरोमाणो दीर्घजिह्वो महाहनू ॥ १ ॥ लम्बकेशो विरूपाक्षो हा हा हा इति वादिनो ॥ खादन्तो मांसपिटकं पिबन्तो रुधिरं बहु ॥ २ ॥ आन्त्रवेष्टितसर्वाङ्गो दीर्घो कृशकृतोदरो ॥ लम्बमानमहाप्रान्तशूलप्रोतशिरोधरो ॥ ३ ॥ कर्षन्तो शवयूथानि बाहुभ्यां तत्र तत्र ह ॥ हसन्तो विविधं हासं स्वजातिसदृशं नृप ॥ ४ ॥ वदन्तो बहुरूपाणि वचांसि प्राकृतानि च ॥ कम्पयन्तो महावृक्षानुरुपादप्रघट्टनैः ॥ ५ ॥ सृक्किणी लेहिहन्तो च दन्तान्कटकटायिनो ॥ अस्थिस्नायुसमाकीर्णौ धमनीरज्जुसंततो ॥ ६ ॥

बोलनेवाले मांसकी पेटीको खानेवाले बहुतसे रुधिरको पीनेवाले ॥ २ ॥ आंतोंसे वेष्टित अंगोंवाले लम्बे और कृश उदरवाले. लम्बायमान शूल प्रोतवत् शिरको धारण करनेवाले ॥ ३ ॥ दोनों भुजाओंसे मुरदोंके शिरोंको खैंचनेवाले और अनेक प्रकारके हास्यको करते अपनी जातिके सदृश चेष्टा करनेवाले ॥ ४ ॥ बहुतसे रूपोंसे संयुक्त प्राकृत वचनोंको कहनेवाले, अपनी जंघाओंसे बडे बडे वृक्षोंको कँपानेवाले ॥ ५ ॥ और सृक्किणी अर्थात् अपने ओष्ठप्रांत देशको अपनी जीभसे चाटनेवाले, दांतोंको चबानेवाले, अस्थि और नसोंसे आकीर्ण धमनीरूप रज्जुमे विस्तृत ॥ ६ ॥

हे कृष्ण ! हे कृष्ण ! हे माधव ! इन वचनोंको सदा कहनेवाले और किस समय विष्णु दीखेंगे, वह विष्णु अब कहां स्थित हैं ॥ ७ ॥ हमारे स्वामी श्रीकृष्ण कहां स्थित हैं. कैसे देखनेको हम यत्न करें ? और किस देशमें वह देवेशरूप ईश्वर वसते हैं ॥ ८ ॥ कमलके पत्तोंकी सदृश नेत्रोंवाले साक्षात् इन्द्रके छोटे भ्राता कहां है ? जिसको ब्रह्मके जाननेवाले विद्वान् साक्षात् ब्रह्म कहते हैं ॥ ९ ॥ उन जन्मसे रहित और विश्वके रचनेवाले ईश्वरके देखनेको हम यत्न करते हैं और अंतकालमें इसी ईश्वरमें तीनों जगत् लय होते हैं ॥ १० ॥ उस अज विश्वके कर्त्ताको अब कहां देखेंगे जिनका विस्तार किया यह

वदन्तो कृष्ण कृष्णेति माधवेति स संततम् ॥ कदा नु द्रक्ष्यते विष्णुः स इदानीं क तिष्ठति ॥ ७ ॥ स्वामिनः कुत्र वसतिः कुतो द्रष्टुं यतामहे ॥ अत्र वा कुत्र देवेशः कुतो नु स्थास्यते हरिः ॥ ८ ॥ कुतः पद्मपलाशाक्षः साक्षादिन्द्रानुजो हरिः ॥ यमाहुः पुण्डरीकाक्षं ब्रह्म ब्रह्मविदो जनाः ॥ ९ ॥ तमजं पुरुषं विष्णुं द्रष्टुमभ्युद्यता वयम् ॥ अन्तकाले जगन्नाथं प्रविवेश जगत्त्रयम् ॥ १० ॥ तमजं विश्वकर्तारं कुतो द्रक्ष्याम साम्प्रतम् ॥ यस्य विस्तार एवैष लोकः प्राणिनिवासिनः ॥ ११ ॥ तं द्रष्टुं देवमीशानं यतामः साम्प्रतं हरिम् ॥ दशा घोरतमा लोके विद्विष्टा सर्वजन्तुभिः ॥ १२ ॥ पैशाचीयं समुत्पन्ना कथं नो भ्रातृशिङ्खलात् ॥ नरमांसास्थिकलुषा सर्वभीतिप्रदायिनी ॥ १३ ॥ अहो नो दुष्कृतं कर्म प्राक्तनं कर्मसंचये ॥ अत्रैव महती प्रीतिर्वर्तते सर्वदा तथा ॥ १४ ॥ यावन्नो दुष्कृतं कर्म तावत्स्थास्यति तादृशी ॥ दशा सा सर्वविद्विष्टा प्राणिपीडनकारिणी ॥ १५ ॥

लोक प्राणियोंका निवासरूप है ॥ ११ ॥ ऐसे ईश्वरको शीघ्र हम कैसे देखेंगे, कैसे जतन करेंगे संसारमें हमारी दशा बडी घोर है; और सब जंतुओंसे त्यागी हुई है ॥ १२ ॥ और पिशाचोंके योग्य मनुष्योंके मांस और हाड आदिको ग्रहण करानेवाली और सब प्रकारके भयको देनेवाली ऐसी बुरी दशा बलसे कैसे हमारेको प्राप्त हुई आश्चर्य है ॥ १३ ॥ पूर्वजन्ममें हम लोगोंने बहुत बुरे कर्म किये हैं, जिससे इन पूर्वोक्त बुरे कर्मोंमेंभी हमारी प्रीति सब कालमें बनी रहती है ॥ १४ ॥ और जबतक हम उन दोनोंसे किया बुरा कर्म स्थिर रहेगा तबतक प्राणियोंको पीडा करनेवाली और सबोंसे त्यागी

हुई दशा हमारी रहेगी ॥ १५ ॥ बहुत जन्मोंमें हमसे बुराही कर्म बन आया है, इस कारण यह घोररूप फल अबभी निवृत्त नहीं होता ॥ १६ ॥ क्योंकि कुत्तोंके समूहोंके संग प्राणियोंको मारनेके अर्थ हम सावधान हैं, और बाल्य अवस्थासेही इसमें रत हैं ॥ १७ ॥ अज्ञानसे आवृत चित्तवाले प्राणी कृत्य और अकृत्यको नहीं जानते और यौवन अवस्थामें विषयोंसे भ्रमित हुए ॥ १८ ॥ चित्तवाले मनुष्य अपने कल्याणके लिये यत्न नहीं करते कारण कि उनके चित्त विषयवासनामें रत हैं ॥ १९ ॥ और वृद्ध अवस्थामें घोररूप दुःखदाता ज्वर आदि अनेक

सर्वथा दुष्कृतं कर्म बहुभिर्जन्मसंचयैः ॥ तथा हि तत्फलं घोरमद्यापि न निवर्त्तते ॥ १६ ॥ यताः स्म प्राणिनो हन्तुं श्वगणैः सह साम्प्रतम् ॥ तथा हि प्राणिनो लोके बाल्यमादौ समास्थिताः॥ १७ ॥ अज्ञानावृतचित्ताश्च कृत्याकृत्यं न जानते ॥ तथा यौवनिनो भ्रान्ता विषयैर्बहुलीकृताः ॥ १८ ॥ यतन्ते श्रेयसे नैव ततो विषयसंस्थिताः॥ विषयाविष्टचित्ता हि मनुष्या न विजानते ॥ १९ ॥ तथा च वृद्धभावे तु व्याधिभिर्बहुभिर्वृताः ॥ ज्वरादिभिर्महाघोरैर्नानादुःखविधायिभिः ॥ २० ॥ यतन्ते न हि वै श्रेयो विनष्टेन्द्रियगोचराः ॥ ततो मृता गर्भवासे वसन्ति सततं नराः ॥ २१ ॥ विण्मूत्रकलिले घोरे दुःखैर्बहुभिराचिताः ॥ च्यवन्ते तु ततो घोराद्भ्रमन्ति संसारमण्डले ॥ २२ ॥ परस्परं विहिंसन्तः कुर्वन्तः कर्मसंचयम् ॥ महत्येवं सदा घोरे संसारे दुःखसंकुले ॥ २३ ॥ पापानि बहुरूपाणि कुर्वतेऽज्ञानतस्तदा ॥ संसारस्यैष महिमा विस्तृतः सर्वजन्तुषु ॥ २४ ॥ अच्छेद्यः शस्त्रसंपातैरुपायैर्बहुभिः सदा ॥ एतस्मान्न निवर्तन्ते मर्त्याः प्राकृतबुद्धयः ॥ २५ ॥

प्रकारकी व्याधियोंसे पीडित ॥ २० ॥ नष्ट इन्द्रियोंवाले होकर मनुष्य कल्याणके अर्थ यत्न नहीं करते हैं, फिर मरकर गर्भवास करते हैं अर्थात् ॥ २१ ॥ विष्ठा और मूत्रसे युक्त गर्भमें निरंतर वसते हैं, पीछे बहुतसे दुःखोंसे व्याप्त हुए घोर रूप गर्भसे संसारमण्डलमें जन्मते हैं ॥ २२ ॥ अब परस्परमें हिंसा करते हुए और कर्मका संचय करते हुए इस दुःखयुक्त घोरसंसारमें ॥ २३ ॥ अज्ञानसे बहुतसे पापोंको करते हैं, ऐसे संसारकी महिमा प्राणियोंमें विस्तृत है ॥ २४ ॥ यह शस्त्र आदि अनेक प्रकारके उपायोंसे अच्छेद्य अर्थात् कटनेके योग्य नहीं है, इस कारण प्राकृत बुद्धिवाले मनुष्य इस

संसारसे निवृत्त नहीं होते ॥ २५ ॥ इस मनुष्येन्द्रको मारकर मैं इसके धनको हरूं और इसके धनको चुराकर मैं अपना बना लूं ॥ २६ ॥ और इस शतरूप मनुष्यको झिडककर धनको हरूंगा; इत्यादि मनोरथोंसे व्याकुल हुए मूर्ख प्राणियोंको पीडा देनेके अर्थ यत्न करते हैं ॥ २७ ॥ इस दुःखके मूलरूप संसारकी सब कालमें शंख चक्र गदाको धारण करनेवाले नारायणही औषधी है ॥ २८ ॥ कारण कि वह आदिदेव पुराणात्मा और ब्रह्म जाननेवाले आत्मा, विष्णु हैं, इस कारण हम सब यत्नसे तिन विष्णुको देखेंगे ऐसे बोलते हुए दोनों पिशाच विष्णुके आगे प्रगट हुए ॥ २९ ॥

इमं हत्वा मनुष्येन्द्रमिदमस्माद्धराम्यहम् ॥ चोरयित्वा धनमिदं हरिष्याम्याददाम्यहम् ॥ २६ ॥ निर्भर्त्स्यैनमिमं शान्तं हरिष्यामि धनं बली ॥ इत्यादिव्याकुला मूर्खा यतन्ते प्राणिपीडनम् ॥ २७ ॥ अस्यैव दुःखमूलस्य संसारस्य सदा हरिः ॥ भेषजं सर्वथा देवः शङ्खचक्रगदाधरः॥२८॥ आदिदेवः पुराणात्मा आत्मा ब्रह्मविदां सदा ॥ ते वयं सर्वयत्नेन द्रक्ष्यामः सर्वथा हरिम् ॥ इत्थं पिशाचो भाषान्तो प्रादुरास्तां हरेः पुरः ॥ २९ ॥ इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे भविष्यपर्वणि केलासयात्रायामेकोनाशीतितमोऽध्यायः ॥ ७९ ॥ वैशम्पायन उवाच ॥ ततः स भगवान्विष्णुः पिशाचो मांसभक्षको ॥ ददर्शाथ महाघोरो दीपिकाधारिणो हरिः ॥ १ ॥ विलोकयांचक्रतुस्तौ पिशाचो देवकीसुतम् ॥ स्थितं सुखासने विष्णुं दृष्ट्वा लोकेश्वरेश्वरम् ॥ २ ॥ तौ च गत्वा समुद्देशं पिशाचो केशवस्य ह ॥ ततस्तावूचतुर्विष्णुमन्तरीकृत्य केशवम् ॥ ३ ॥

इति श्रीम० खिलेषु ह० भ० भाषायां कैलासयात्रायामेकोनाशीतितमोऽध्यायः ॥ ७९ ॥ वैशंपायन बोले कि; इसके उपरान्त विष्णु भगवान्‌ने मांसको भक्षण करनेवाले और दीपकको धारण करनेवाले महाघोर रूप दो पिशाचोंको देखा ॥ १ ॥ और वह दोनों पिशाच सुंदर आसनपर स्थित हुए देवकी पुत्र लोकेश्वर विष्णुको देखते हुए ॥ २ ॥ तब लोकेश्वरोंके ईश्वररूप विष्णुको देखकर और विष्णुके समीपमें जायकर और विष्णुको मध्यमें

कर दोनों पिशाच कहने लगे ॥ ३ ॥ हे मनुष्य ! तुम कौन हो और किसके शिष्य हो ? और कहांसे आये हो ? मृगोंसे व्याप्त ॥ ४ ॥ और मनुष्योंसे रहित हाथियोंसे आकृत, पिशाचगणोंसे सेवित और श्वापदप्राणियोंसे और सिंहोंसे सेव्यमान ॥ ५ ॥ वनमें तुम किस कारण आये हो ? कुमारअवस्थायुक्त सुंदर अंगवाले साक्षात् दूसरे विष्णुकी समान पद्मके पत्रोंकी समान नेत्रोंवाले श्याम और कपड़ेके समान कांतिवाले और स्वयं लक्ष्मीपति ॥ ६ ॥ हमसे प्रीति करनेवाले हो तुम देव, यक्ष, गंधर्व वा, किन्नर हो ॥ ७ ॥ वा इन्द्र, कुबेर, यम वा वरुण हो, ध्यानार्पित मनवालेकी समान

को भगवान्कस्य वा मर्त्यः कुतश्चागम्यते त्वया ॥ किमर्थमिह संप्राप्तो वने घोरे मृगाकुले ॥ ४ ॥ निर्मनुष्ये द्वीपिवृते पिशाचगणसेविते ॥ श्वापदैः सेव्यमाने च विपिने व्याघ्रसंकुले ॥ ५ ॥ सुकुमारोऽनवद्याङ्गः साक्षाद्विष्णुरिवापरः ॥ पद्मपत्रेक्षणः श्यामः पद्माभिः श्रीपतिः स्वयम् ॥ ६ ॥ अस्मात्प्रीतिकरः साक्षात्प्राप्तो विष्णुरिवापरः ॥ देवो वा यदि वा यक्षो गन्धर्वः किन्नरोऽपि वा ॥ ७ ॥ इन्द्रो वा धनदो वापि यमोऽथ वरुणोऽपि वा ॥ एकाकी विपिने घोरे ध्यानार्पितमना इव ॥ ८ ॥ ब्रूहि मर्त्य यथातत्त्वं ज्ञातुमिच्छामि मानद ॥ एवं पृष्टः पिशाचाभ्यामाह विष्णुरुरुक्रमः ॥ ९ ॥ क्षत्रियोऽस्मीति मामाहुर्मनुष्याः प्रकृतिस्थिताः ॥ यदुवंशे समुत्पन्नः क्षात्रं वृत्तमनुष्ठितः ॥ १० ॥ लोकानामथ पातास्मि शास्ता दुष्टस्य सर्वदा ॥ कैलासं गन्तुकामोऽस्मि द्रष्टुं देवमुमापतिम् ॥ ११ ॥ इत्येवं मम वृत्तान्तः कथ्यतां कौ युवामिति ॥ युवामिह समायातौ किमर्थं ब्राह्मणाश्रमम् ॥ १२ ॥ एषा हि महती पुण्या नानाविप्रनिषेविता ॥ बदरीयं समाख्याता न क्षुद्रैराश्रिता क्वचित् ॥ १३ ॥

इस वनमें अकेले तुम कैसे हो ? ॥ ८ ॥ हे मनुष्य ! यथार्थ वर्णन करो. मैं जाननेकी इच्छा करता हूं इस प्रकार पिशाचोंने पूछे हुए महापराक्रमी श्रीकृष्ण कहने लगे ॥ ९ ॥ कि यदुवंशमें उत्पन्न होनेवाले और क्षात्रवृत्तमें अनुष्ठित मैं क्षत्रिय हूं ऐसा प्रकृतिमें स्थित मनुष्य कहते हैं ॥ १० ॥ लोकोंकी रक्षा करनेवाला और सब कालमें दुष्टोंको शिक्षा देनेवाला मैं क्षत्रिय हूं. सो महादेवजीको देखनेके लिये कैलासपर्वतको गमन करनेवाला हूं ॥ ११ ॥ यह मेरा वृत्तान्त है, परंतु तुम दोनों कौन हो ? यह कहो. और इस ब्राह्मणाश्रममें तुम किस कारण आये हो ? ॥ १२ ॥ पवित्र और

॥१८६॥

अनेक प्रकारके विप्रोंसे सेवित यह बदरीपुरी विख्यात है, यह क्षुद्र पुरुषोंसे कहींभी सेवित नहीं हो सकती ॥ १३ ॥ तपस्वियोंसे जुष्ट और सिद्धोंसे सेवित यह बदरिकाश्रम है यहां कुत्तोंके गण और मांसको भोजन करनेवाले पिशाच नहीं दीखते हैं ॥ १४ ॥ और यहां मृग मारनेके योग्य नहीं हैं, और यहां शिकार नहीं खेला जाता है. और क्षुद्र कृतघ्न नास्तिकोंका प्रवेश यहां नहीं हो सकता है ॥ १५ ॥ और इस देशका मैं रक्षा करनेवाला हूं, इसमें संशय नहीं; जो व्यतिक्रम करेगा, मैं यत्नसे उसकी शिक्षा करूंगा ॥ १६ ॥ तुम दोनों कौन हो ? कहां जाते हो और किसकी यह बडी सेना है ? और यहांसे अगाडी तुम प्रवेश नहीं करना, कारण कि ऋषिजन बसते हैं ॥ १७ ॥ और तपस्वियोंके तपमें विघ्न हो सकता है. इस कारण प्रथम

तपस्विभिस्तपोयुक्तैर्जुष्टा सिद्धनिषेविता ॥ श्वगणा नात्र दृश्यन्ते पिशाचा मांसभोजनाः ॥ १४ ॥ न हन्तव्या मृगाश्चात्र मृगया नात्र वर्तते ॥ न तु क्षुद्रैः प्रवेष्टव्या न कृतघ्नैर्न नास्तिकैः ॥ १५ ॥ अहमस्य तु देशस्य रक्षिता नात्र संशयः ॥ व्यतिक्रमो यदि भवेत्तस्य शास्तास्मि यत्नतः ॥ १६ ॥ को भवन्तौ क्व नु युवां कस्येयं महती चमूः ॥ नातः परं प्रवेष्टव्यमृषयस्तत्र संस्थिताः ॥ १७ ॥ विघ्नस्तत्र प्रवर्तेत तपस्सु च तपस्विनाम् ॥ इहैव स्थीयतां तावद्वक्तव्यं च ततः सुखम् ॥ १८ ॥ अन्यथाहं निषेद्धा स्यां बलाद्वाक्यै-स्तथैव च ॥ वैशम्पायन उवाच ॥ एवं पृष्टौ पिशाचौ तु वक्तुमेवोपचक्रतुः ॥ १९ ॥ तयोरेको महाघोरः पिशाचो दीर्घबाहुकः ॥ उवाच वचनं तत्र यथा हृदि समर्पितम् ॥ २० ॥ पिशाच उवाच ॥ श्रूयतामभिधास्यामि समाहितमना भव ॥ नमस्कृत्य जगन्नाथं हरिं कृष्णं जगत्पतिम् ॥ २१ ॥ आदिदेवमजं विष्णुं वरेण्यमनघं शुचिम् ॥ वक्ष्यामि सकलं यद्वृत्तं तथा शृणु यदीच्छसि ॥ २२ ॥

यहीं स्थित रहो और फिर सुखपूर्वक बोलो ॥ १८ ॥ और यदि मेरे वचनको नहीं मानोगे तो बलसे और वाक्यसे रोक दूंगा. वैशंपायन बोले; कि इस प्रकार पूछे हुए दोनों पिशाच कहनेको समीपमें पहुंचे ॥ १९ ॥ परन्तु तिन दोनोंमें जो एक महाघोर, दीर्घ भुजाओंवाला पिशाच था; वह हृदयमें स्थित वचन कहने लगा ॥ २० ॥ पिशाच कहने लगा, जगत्के नाथ और जगत्के पति हरि कृष्णको नमस्कार कर मैं वर्णन करता हूं, तुम सावधान मन होकर सुनो ॥ २१ ॥ आदिदेव अज वरेण्य अनघ और पवित्र विष्णुका ध्यान कर मैं सब कहूंगा. जो तुम्हारी इच्छा है वो सुनो ॥ २२ ॥

मांस खानेवाला, घोर दर्शन, विकृत घोर मृत्युके समान मानो दूसरी मृत्यु मैं घंटाकर्ण नाम पिशाच हूं ॥ २३ ॥ महादेवके मित्र साक्षात् कुबेरका अनुचर हूं, और यह मेरा छोटा भाई है और मैं अंतककाभी अंतक हूं ॥ २४ ॥ और यह बडी मृगया विष्णुकी पूजाके अर्थ है, और यह मेरी सेना है, और कुत्तोंका गणभी मेराही है ॥ २५ ॥ और मैं भूतसेवित कैलासपर्वतसे आया हूं, पाप करनेवाला मैं पिशाचके वेषसे युक्त हूं ॥ २६ ॥ पूर्व कालमें मैं निरन्तर विष्णुको दूषित करता हुआ दोनों कानोंमें घंटे बांधकरके कि मेरे कानोंमें विष्णुका नाम प्रवेश न करे, इस प्रकार विचार

घण्टाकर्णोऽस्मि नाम्नाहं पिशाचो घोरदर्शनः ॥ मांसादो विकृतो घोरः साक्षान्मृत्युरिवापरः ॥ २३ ॥ धनदस्यानुगन्ताहं साक्षाद्रुद्रसखस्य च ॥ ममायमनुजः साक्षादन्तकस्यान्तको ह्यहम् ॥ २४ ॥ मृगयेयं सुमहती विष्णोः पूजार्थमित्युत ॥ ममेयं वर्त्तते सेना श्वगणोऽपि ममेव तु ॥ २५ ॥ आगतोऽहं महाशैलात्कैलासाद्भूतसेवितात् ॥ अहं पिशाचवेषेण संविष्टः पापकर्मकृत् ॥ २६ ॥ सततं दूषयन्विष्णुं घण्टामाबध्य कर्णयोः ॥ मम न प्रविशेन्नाम विष्णोरिति विचिन्तयन् ॥ २७ ॥ अहं कैलासनिलयमासाद्य वृषभध्वजम् ॥ आराध्य तं महादेवमस्तुवं सततं शिवम् ॥ २८ ॥ ततः प्रसन्नो मामाह वृणीष्वेति वरं हरः ॥ ततो मुक्तिर्मया तत्र प्रार्थिता देवसन्निधौ ॥ २९ ॥ मुक्तिं प्रार्थयमानं मां पुनराह त्रिलोचनः ॥ मुक्तिप्रदाता सर्वेषां विष्णुरेव न संशयः ॥ ३० ॥ तस्माद्गत्वा च बदरीं तत्राराध्य जनार्दनम् ॥ मुक्तिं प्राप्नुहि गोविन्दान्नरनारायणाश्रमे ॥ ३१ ॥ इत्युक्तो देवदेवेन शूलिना ज्ञातवानहम् ॥ तमेव परमं मत्वा गोविन्दं गरुडध्वजम् ॥ ३२ ॥

कर ॥ २७ ॥ कैलासपर्वतमें जायकर महादेवजीकी आराधना कर निरंतर महादेवजीकी स्तुति करने लगा ॥ २८ ॥ तब प्रसन्न हुए महादेव मुझसे कहने लगे कि वर मांग, तब मैंने महादेवके समीपमें मुक्तिकी प्रार्थना करी ॥ २९ ॥ तब मुक्तिकी प्रार्थना करनेवाले मुझसे महादेव कहने लगे कि सबको मुक्तिका देनेवाला विष्णु है, इसमें संशय नहीं ॥ ३० ॥ इस कारणसे बद्रिकाश्रममें नरनारायणके आश्रममें जायकर विष्णु भगवान्‌की आराधना करनेसे तू मुक्तिको प्राप्त होगा ॥ ३१ ॥ इस प्रकार महादेवजीके कहनेसे तिसी विष्णुको परम मानकर गरुडध्वजरूप गोविन्दको जानता

हुआ ॥ ३२ ॥ तिनसे मुक्तिकी प्रार्थना करनेवाला मैं इस देशमें प्राप्त हुआ हूं, औरभी मेरा कार्य सुनो. जो तुमको सुननेकी अभिलाषा है ॥ ३३ ॥ पश्चिमसमुद्रके तटपर यदुवृष्णियोंसे आकीर्ण और समुद्रकी तरंगोंसे आकुल द्वारवती पुरी है ॥ ३४ ॥ तिस पुरीमें हरि भगवान् पुरुषोत्तम लोकोंका हित करनेके निमित्त बसते हैं. तिनको देखनेके अर्थ ॥ ३५ ॥ इन अनुचरोंके संग निकलकर प्राप्त हुए हैं, सो सबोंके ईश्वररूप विष्णुको अब हम देखेंगे ॥ ३६ ॥ लोकोंके उत्पत्तिस्थान और संसारकी रक्षा करनेवाले, कर्त्ता, हर्त्ता और जगत्के पति और आदिकेभी आदि सबोंके उत्पत्तिस्थान और कारण ॥ ३७ ॥ सबोंकी रक्षा करनेवाले, सबोंके पापोंको हरनेवाले, पुरातन प्रभुओंकेभी प्रभु और

तस्मात्प्रार्थयमानस्त्वन्मुक्तिं देशमसुं गतः ॥ अन्यच्च शृणु मे कार्यं यदि कौतूहलं तव ॥ ३३ ॥ पुरी द्वारवती नाम पश्चिमस्योदधेस्तटे ॥ यदुवृष्णिसमाकीर्णा सागरोर्मिसमाकुलाम् ॥३४॥ अध्यास्ते स हरिर्विष्णुस्तां पुरीं पुरुषोत्तमः ॥ द्रष्टुं लोकहितार्थाय वसन्तं द्वारकापुरे ॥ ३५ ॥ निर्गताः साम्प्रतं मर्त्ये वयमेतैः सहानुगैः ॥ विष्णुः सर्वेश्वरः साक्षाद्द्रष्टव्योऽस्माभिरद्य वै ॥ ३६ ॥ लोकानां प्रभवः पाता कर्त्ता हर्ता जगत्पतिः ॥ आदिः स हि समस्तस्य प्रभवः कारणं हरिः ॥ ३७ ॥ कर्ता समस्तस्य हरिः पुरातनः प्रभुः प्रभूणामपि यः सदात्मकः ॥ तदादिदेवं वरदं वरेण्यं द्रष्टुं हरिं संप्रति संयताः स्मः ॥३८॥ यस्य प्रसादाज्जगदेवमासीत्स्वप्राणिगन्धर्वमहोरगौघम् ॥ देवं जगद्योनिमजं जनार्दनं द्रष्टुं हरिं संप्रति संयताः स्मः ॥ ३९ ॥ यस्योदयाद्विश्वमिदं प्रभूतं लयं च तस्मिन्समुपैति कल्पे ॥ तस्यैव साक्षाद्वशवर्ति विश्वं द्रक्ष्याम देवं पुरुषोत्तमं हरिम् ॥ ४० ॥

सत्यआत्मावाले, वर देनेवाले, आदिदेव विष्णुको देखनेके अर्थ अब हम सब यत्न कर रहे हैं ॥ ३८ ॥ और जिसके प्रसादसे प्राणी गंधर्व महासर्पके समूहरूप जगत् हो गया है, देव और जगत्के योनि, अजन्मा और दुष्टजनोंके पीडा देनेवाले विष्णुको देखनेके लिये अब हम यत्न कर रहे हैं ॥ ३९ ॥ और जिसके उदरसे यह विश्व उत्पन्न हुआ है, और प्रलयमें जिसके शरीरमें यह जगत् लय होगा, और जिसके साक्षात् वशवर्ती संसार है, ऐसे पुरुषोत्तमरूप विष्णुको देखेंगे ॥ ४० ॥ और जो सब संसारके रचनेवाले पालनेवाले देव हर्त्ता और भुवनके ईश्वर हरि पुरातन और आद्यमें होनेवाले अवि-

नाशी विष्णुको हम देखेंगे ॥ ४१ ॥ ब्रह्मा आदिको करनेवाले, भुवनके रक्षक पृथ्वीके कर्त्ता एकही नारायण जिनकी कृपासे योगियोंको शुद्ध बुद्धिकी प्राप्ति होती है, उन नारायणका दर्शन हम करेंगे ॥ ४२ ॥ वह जगत्पति इस संपूर्ण जगत्को निगलकर साक्षात् बालककी समान होकर शयन कर बडके पत्रमें स्थित हो पैरोंके चलाते हैं, और हाथोंको कँपाते हैं ॥ ४३ ॥ जिसके उदरमें पुरातन मार्कण्डेय मुनि प्रवेश कर मायासहित सब लोकोंके देखते हुए और फिर बाहर आकरभी यह सब कुछ देखते हुए ॥ ४४ ॥ वही महात्मा जगत्के आदि कालमें संसारको पेटमें रखकर शयन कर जाते

स्रष्टा च योऽसौ सकलस्य देवः पाता च हर्ता च हरिः स एव ॥ द्रक्ष्याम नित्यं भुवनेश्वरं हरिं पुराणमाद्यं प्रभविष्णुमव्ययम् ॥ ४१ ॥
अजस्य कर्ता भुवनस्य गोप्ता भुवश्च कर्ता हरिरेक एव ॥ तं योगिनो योगविशुद्धबुद्धिं लभेम तेनैव मतिः समाकुला ॥४२ ॥ निगीर्य
विश्वं सकलं जगत्पतिः शेते शिशुत्वं समवाप्य साक्षात् ॥ वटस्य पत्रे जगतां निवासः पादौ च विक्षिप्य करौ विधुन्वन् ॥४३॥यस्यो-
दरे देवमुनिः पुरातनो ददर्श लोकानखिलान्स मायया ॥ प्रविश्य विश्वं सकलं यथावद्बहिर्यथा भूतमभूदिदं महत् ॥ ४४ ॥ निगीर्य
विश्वं जगदादिकाले शेते महात्मा जलधेर्जलौघे ॥ देव्या श्रिया चामरलोलहस्तया निषेव्यमाणः पुरुषोत्तमस्तदा ॥ ४५ ॥ नाभेश्च
यस्याविरभूत्सपत्रं पद्मं महत्काञ्चनसप्रभं प्रभोः ॥ जन्मास्पदं लोकगुरोर्यदासीद्विस्तारि पद्मं जगदादिसृष्टौ ॥ ४६ ॥ दधार यो
भूतपतिर्महान्महीं दंष्ट्राग्रसंस्थापितरूढमूलाम् ॥ नदन्महामेघ इवादिकाले कुर्वन्वराहो मुनिगीतमूर्तिः ॥४७॥ हरिः पुराणः पुरुषोत्तमः
प्रभुः कर्ता समस्तस्य समस्तसाक्षी ॥ यज्ञात्मको यज्ञपतिर्जगत्पतिर्द्रष्टुं तमीशं वयमुद्यताः स्मः ॥ ४८ ॥

हैं, उस समय सागरमें देवी लक्ष्मी चमर हाथमें लिये उन पुरुषोत्तमकी सेवा करती है ॥ ४५ ॥ और जिसकी नाभिसे सुवर्णकी सदृश कान्तिवाला पत्रोंसहित कमल प्रगट हुआ, तिस विस्तारित कमलमें जगत्की सृष्टिके अर्थ ब्रह्माजी जन्मे हैं ॥ ४६ ॥ और भूतपति जो अपनी दाढके अग्रभागपर पृथ्वीको दृढ स्थापित कर महामेघकी समान शब्द करते हुए वाराहजी पृथ्वीको धारण करते हुए जिनकी कीर्ति मुनि गाते हैं ॥ ४७ ॥ और वही वाराह हरि पुराण पुरुषोत्तम प्रभु सबके करनेवाले, सबके साक्षी, यज्ञात्मक, यज्ञपति, जगत्पति हैं, उनको देखनेके लिये हम उद्यत हुए हैं ॥ ४८ ॥

किसनेही इस देवको बहुतरूपोंसे वर्णन करते हैं. और वेदान्त करके संस्थापित सत्त्वसंयुक्त तिस ईश्वरके देखनेको हम उद्यत होते हैं ॥ ४९ ॥ और श्रुति, स्मृति, न्यायसे निविष्ट चित्तवाले बहुतसे बहुत प्रकारसे कहते हैं, और अजन्मा साक्षात् आत्मा है, ईश्वरके देखनेको हम सब उद्यत हुए हैं ॥ ५० ॥ जो आद्य वरका देनेवाला, श्रेष्ठ प्रकाशवाला और एकांत तत्त्ववाला सब प्राणियोंमें स्थित और देव, दुष्टोंको पीडा देनेवाला है. जिसको पुरातन मुनि ऐसा कहते हैं, ऐसे ईश्वरके हम देखनेको यत्न करते हैं ॥ ५१ ॥ और आदिकालमें जिस जगत्पतिमें यह विश्व स्थित है तिसके देखनेको हम साव-

केचिद्बहुत्वेन वदन्ति देवमेकात्मना केचिदिमं पुराणम् ॥ वेदान्तसंस्थापितसत्त्वयुक्तं द्रष्टुं तमीशं वयमुद्यताः स्मः ॥४९॥ अनेकमेकं बहुधा वदन्ति श्रुतिस्मृतिन्यायनिविष्टचित्ताः ॥ आहुर्यमात्मानमजं पुराविदो द्रष्टुं तमीशं वयमुद्यताः स्मः ॥ ५० ॥ यं प्राहुरीड्यं वरदं वरेण्यमेकान्ततत्त्वं मुनयः पुरातनाः ॥ यं सर्वगं देवमजं जनार्दनं द्रष्टुं हरिं संप्रति संयताः स्मः ॥ ५१ ॥ यस्मिन्विश्वमिदं प्रोतमादिकाले जगत्पतौ ॥ तं द्रष्टुमभिसंवृताः किं नु वक्ष्याम साम्प्रतम् ॥५२ ॥ गच्छामो वयमन्यत्र गच्छ त्वं काममन्यतः ॥ नियमोऽप्यस्ति नो मर्त्य यथेष्टं गच्छ साम्प्रतम् ॥५३ ॥ रात्रिमध्यमनुप्राप्तं नात्र कार्या विचारणा ॥ इत्युक्त्वा घोररूपोऽसौ पिशाचो विकृताननः ॥ ५४ ॥ तस्मिन्नेव समे देशे पीत्वा च रुधिरं बहु ॥ भक्षयित्वा यथाकामं मांसराशिं विचक्षणः ॥ ५५ ॥ अपः संस्पृश्य तत्रैव पार्श्वे संस्थाप्य साधनम् ॥ आन्त्रपाशं महाघोरं संस्थाप्य विपुलं महत् ॥ ५६ ॥

धान हैं, और अब हम क्या कहें ॥ ५२ ॥ हे मनुष्य ! अब हम अन्य जगह गमन करते हैं. और तू अन्य जगह गमन कर और जिधर इच्छा हो, उस यथेष्ट देशको चला जा ॥ ५३ ॥ बहुत घोर रात्रि है, इसका विचार न करना इस प्रकार कहकर विकृत मुखवाला घोररूप पिशाच ॥ ५४ ॥ इस देशमें बहुतसे रुधिरका पान कर और यथायोग्य मांसके समूहका भक्षण कर ॥ ५५ ॥ और जलके कुल्ले कर और समीपमें सब प्रकारके साधन और महाघोर रूप अंत्रपाशको स्थापन कर ॥ ५६ ॥

कुशके आसनोंको बिछा, पानीसे आप पवित्र हो और सब कुत्तोंके गणोंको त्याग बडे यत्नसे ॥५७॥ आसनपर स्थित हो समाधिके लिये यत्न करने लगा. फिर एकाग्रचित्त होकर विष्णुको नमस्कार कर घोररूप पिशाच भक्तवत्सल भगवान्‌के इस मंत्रका पाठ करने लगा ॥ ५८ ॥ भगवान्‌को नमस्कार है. वासुदेव और चक्रगदाको धारण करनेवालेको नमस्कार है ॥५९॥ ॐ नारायणके अर्थ नमस्कार है, विष्णु और प्रभविष्णुको नमस्कार है, हे केशव ! तुम्हारे कीर्त्तनसे मेरे आत्माकी शुद्धि हो ॥ ६० ॥ और यह घोररूप जन्म मेरे मत हों. हे गोपते ! तुम्हारे स्मरणसे मैं देवदूत हो जाऊं ॥ ६१ ॥

आसनं कुशसंयुक्तं कृत्वा चाभ्युक्ष्य वारिणा ॥ उत्सार्य श्वगणान् सर्वान्यत्नेन महता तदा ॥५७॥ सुखासनं समास्थाय समाधौ यतते श्वपः ॥ एकचित्तस्तदा भूत्वा नमस्कृत्य च केशवम् ॥ इमं मन्त्रं पठन्घोरः पिशाचो भक्तवत्सलम् ॥ ५८ ॥ नमो भगवते तस्मै वासुदेवाय चक्रिणे ॥ नमस्ते गदिने तुभ्यं वासुदेवाय धीमते ॥ ५९ ॥ ओं नमो नारायणाय विष्णवे प्रभविष्णवे ॥ मम भूयान्मनः-शुद्धिः कीर्त्तनात्तव केशव ॥ ६० ॥ जन्मेदमीदृशं घोरं मा भून्मम दुरासदम् ॥ देवदूतो भविष्यामि स्मरणात्तव गोपते ॥ ६१ ॥ तव चक्रप्रहारेण कायो नश्यतु मामकः ॥ मम भूयो भवो मा भूदेषा मे प्रार्थना विभो ॥ ६२ ॥ अर्थिनां कल्पवृक्षोऽसि दाता सर्वस्य सर्वदा ॥ यत्र यत्र भवेज्जन्म तत्र तत्र भवान्हृदि ॥६३॥ वर्त्ततां मम देवेश प्रार्थनैषा ममापरा ॥ नमस्तुभ्यं नमस्तुभ्यं भवत्वेवं सदा मम ॥६४॥ निर्विघ्ना प्रार्थना देव नमस्तेऽस्तु सदा मम ॥ यदा मे मरणं भूयात्तदा मा भूत्स्मृतिभ्रमः ॥ ६५ ॥ दिने दिने क्षणं चित्तं त्वयि संस्थं भवत्विति ॥ एवं प्रेरय मां देव मा भूत्ते चित्तमीदृशम् ॥ ६६ ॥

और तुम्हारे चक्रके प्रहारसे मेरा शरीर नष्ट हो जाय और फिर मुझे यह संसार न मिले हे विभो ! यह मेरी प्रार्थना है ॥ ६२ ॥ आप अर्थियोंके कल्पवृक्ष हो और सब कालमें सबोंके दाता तुमही हो. हे देव ! जहां जहां मेरा जन्म हो, तहां तहां मेरे हृदयमें तुम स्थित रहो ॥ ६३ ॥ यह दूसरी मेरी प्रार्थना है, सो पूरी हो. तुम्हें मेरा वारंवार नमस्कार है ॥ ६४ ॥ हे देव ! विघ्नोंसे रहित सदा मेरी प्रार्थना हो, तुम्हें नमस्कार है. जब मेरी मृत्यु हो जाय. तबभी स्मृति बनी रहे ॥ ६५ ॥ दिनरात्रिमें और क्षणक्षणमें मेरा चित्त तुममें स्थित रहे. हे देव !

ऐसे मेरेको प्रेरित कर और ऐसा तुम्हारा चित्त न हो कि ॥ ६६ ॥ यह नृशंसरूप पिशाच है, इसपर क्या दया करनी उचित है. हे देव ! आप इस बातका विचार करो यह हमारा दास है ॥ ६७ ॥ हे विभो ! मेरा मन पराई पीडाके अर्थ मत्त न हो. हे भगवन् ! हे प्रभो ! आपको नमस्कार है. और सब इन्द्रियें इन्द्रियोंके अर्थोंको न भजें ॥ ६८ ॥ हे केशव ! तुम्हारे प्रसादसे अंतकालमें यह हो, पृथ्वी मेरी नासिकाकी रक्षा करे, और जल मेरी जिह्वा रक्षा करे ॥ ६९ ॥ सूर्य मेरे नेत्र रक्षा करे और वायु मेरे स्पर्शकी रक्षा करो, आकाश मेरे कानोंकी रक्षा करो और

नृशंसोऽयं पिशाचोऽयं दयास्मिन्का भवेदिति ॥ एवं चिन्तय मां देव भृत्यो मह्यमिति प्रभो ॥ ६७ ॥ परपीडा न मत्तोऽस्तु नमस्ते भगवन्प्रभो ॥ इन्द्रियाणीन्द्रियार्थेषु मा भूवन् साम्प्रतं हि मे ॥ ६८॥ अन्तकाले ममाप्येवं प्रसादात्तव केशव ॥ पृथिवी यातु मे घ्राणं रसनां यातु मे पयः ॥ ६९ ॥ सूर्यश्च यातुमे चक्षुः स्पर्शो यातु च मारुतः ॥ श्रोत्रमाकाशमप्येतु मनः प्राणं च गच्छतु ॥ ७० ॥ जलं मां रक्षतां नित्यं पृथिवी रक्षतां हरे ॥ सूर्यो मां रक्षतां विष्णो नमस्ते सूर्यतेजसे ॥ ७१ ॥ वायुर्मां रक्षतां दुःखादाकाशं च जनार्दन ॥ न मनः सर्वगं देव रक्षतां विषयान्तरे ॥ ७२॥ मनो विपर्यये घोरे पुरुषान् हन्ति नित्यशः ॥ पापेषु योजयेत्पुंसः परपीडात्मकेषु च ॥ ७३ ॥ मनस्तद्रक्षतां देव भूयो भूयो जनार्दन ॥ मा भून्मनासि कालुष्यं मनो मे निर्मलं भवेत ॥ ७४ ॥ कलुषं तस्य यच्चित्तं नरके पातयत्यमुम् ॥ बाह्यानि निर्मलान्येवमिन्द्रियाणि भवन्त्युत ॥ ७५ ॥

मन मेरे प्राणोंकी रक्षा करो ॥ ७० ॥ जल, पृथ्वी, सूर्य, वायु, आकाश दुःखोंसे मेरी रक्षा करो. सूर्यके समान तेजस्वी ! आपको नमस्कार है ॥ ७१ ॥ हे जनार्दन ! वायु और आकाश दुःखसे मेरी रक्षा करें. हे देव ! मेरा मन विषयोंमें नहीं लगे. ऐसी मेरी रक्षा करो ॥ ७२ ॥ मनके विपर्यय होनेसे पुरुषोंका नाश होता है, और यही मन मनुष्यको पापोंमें और परपीडामें युक्त करता है ॥ ७३ ॥ इस कारण हे देव ! वारंवार मेरे मनकी रक्षा करो. मेरे मनमें कालिमा मत रहो और मेरा मन निर्मल हो जाय ॥ ७४ ॥ जिसका चित्त

कालिससे संयुक्त होता है वह नरकमें वास करता है. और बाह्यइन्द्रियें तो निर्मल होतीही हैं ॥ ७५ ॥ परन्तु जिसका मन कालिससे संयुक्त होता है, तहां यह इन्द्रियें कुछ कार्य नहीं कर सकतीं, जिसकी बुद्धिमें अपवित्र वस्तु है उसकी अंगशुद्धि क्या करेंगे ॥ ७६ ॥ हे केशव ! उसके बाहरसे स्नान करनेसे क्या है ? उसका बाह्यगोचर स्नान व्यर्थ है ॥ ७७ ॥ इस कारण हे जनार्दन ! सब प्रकार मेरे चित्तकी तुम रक्षा करो. हे देव ! यह इन्द्रियोंका समूह बलवान् है, इसके विषयोंकोभी निवारण करो ॥ ७८ ॥ हे जगन्नाथ ! परवादसे वाणीकी रक्षा करो. और हे जनार्दन ! पराये

न तानि कार्यवन्तीह मनश्चेत्कलुषं भवेत् ॥ नाङ्गानि मुष्टिना मेध्यं गृहीत्वा यो व्यवस्थितः ॥७६॥ बहिः प्रक्षालनं कुर्वंश्च किं भवेत्तस्य केशवः ॥ व्यर्थो हि केवलं तस्य प्रग्रहो बाह्यगोचरः ॥ ७७ ॥ तस्मात्सर्वप्रयत्नेन चित्तं रक्ष जनार्दन ॥ बलवानिन्द्रियग्रामो वारयैनं जनार्दन ॥ ७८ ॥ परीवादाज्जगन्नाथ वाचं रक्ष दुरुद्वहाम् ॥ परद्रव्यान्मनो रक्ष परदाराज्जनार्दन ॥ सर्वत्र मे दया भूयात्प्रसादात्तव केशव ॥ ७९ ॥ त्वय्येव भक्तिरचला भूयाद्भूतेषु मे दया ॥ बहुनात्र किमुक्तेन शृणुध्वेदं वचो मम ॥ ८० ॥ सुखे दुःखे च रागे च भोजने गमने तथा ॥ जाग्रत्स्वप्नेषु सर्वत्र त्वय्येव रमतां मनः ॥ ८१ ॥ मामकं देवदेवेश नमस्तेऽस्तु जनार्दन ॥ इति ब्रुवन्घोरतमो जात्या हीनो न चिन्तितः ॥ ८२ ॥ पिशाचो भगवद्भक्तः समाधिं समपद्यत ॥ दृढं बद्धात्मनः काममान्त्रपाशेन मांसपः ॥ ८३ ॥ निश्चलेनैव मनसा सुखमास्ते स्म संयतः ॥ ध्यायन् हरिं जगद्योनिं विष्णुं पीताम्बरं शिवम् ॥ ८४ ॥

द्रव्यसे और पराई स्त्रीसे मेरी रक्षा करो. हे केशव ! तुम्हारे प्रसादसे सब जगह दया ॥ ७९ ॥ तुममें अचलरूप भक्ति रहे. और बहुत कहनेसे क्या है हे भगवन् ! तुम मेरे एक वचनको सुनो ॥ ८० ॥ सुख, दुःख, प्रीति, भोजन, गमन, जागने और सोने, इन सबमें मेरा मन तुममेंही लगा रहे ॥ ८१ ॥ और हे जनार्दन देवदेवेश ! आपको नमस्कार है ऐसा कह घोरतम जातिहीन विचार छोड ॥ ८२ ॥ वह पिशाच भगवत्का भक्त होकर समाधिको प्राप्त हुआ अर्थात् आर्तोंकी फांसीसे अपने शरीरको दृढ बांध ॥ ८३ ॥ निश्चलरूप मन करके सुखपूर्वक बैठा हुआ हरि जगद्योनि विष्णु पितांबर

शिव ॥ ८४ ॥ मुकुंद, आदिपुरुष एककार्य अनामय नित्यशुद्ध, ज्ञानगम्य, सब प्राणियोंके कारण ॥ ८५ ॥ श्रीकृष्णका ध्यान करता हुआ और ओंकाररूप सनातन वेदको पढता हुआ. नासिकाके अग्रभागको देखता हुआ निर्वाण दीपकी समान अचल हो ओंकार उच्चारण करता ॥ ८६ ॥ निरंतर एकाग्र चित्तको विष्णुमें समर्पित करके ॥ ८७ ॥ विकल्पसे रहित चित्तको हृदयके मध्यमें प्राप्त कर कमलरूप हृदयमें जगत्पति विष्णुको स्थापन कर ॥ ८८ ॥ और तीन प्रकारसे सनातन विष्णुको जपता हुआ मांसभक्षी पिशाच सुखपूर्वक महायोगी होकर स्थित हुआ ॥ ८९ ॥ इति श्रीम-

मुकुन्दमादिपुरुषमेकाकारमनामयम् ॥ नित्यं शुद्धं ज्ञानगम्यं कारणं सर्वदेहिनाम् ॥ ८५ ॥ नासिकाग्रं समालोक्य पठन् ब्रह्म सनातनम् ॥ निर्वातस्थो यथा दीपः प्रोच्चरन् प्रणवं सदा ॥८६॥ प्रणवं वाचकं मत्वा वाच्यं ब्रह्मेति निश्चितः॥ एकाग्रं सततं कृत्वा चित्तं विष्णौ समर्पितम् ॥ ८७ ॥ विकल्परहितं चित्तं हृदि मध्ये न्यवेशयत् ॥ पुण्डरीके शुभदले समावेश्य जगत्पतिम् ॥ ८८ ॥ आस्ते सुखं महायोगी पिशिताशस्तदा महान् ॥ त्रिधामानं जपंस्तत्र स्मरन्विष्णुं सनातनम् ॥ ८९ ॥ इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे भविष्यपर्वणि कैलासयात्रायां घण्टाकर्णचित्तसमाधिर्नामाशीतितमोऽध्यायः ॥ ८० ॥ वैशम्पायन उवाच ॥ ततः स भगवान् विष्णुः पिशाचं दृष्टवांस्तदा ॥ चिन्तयन्तं स्वमात्मानं शुद्धिबुद्धिसमन्वितम् ॥१॥ आत्मन्यवस्थितं साक्षात्पठन्तं प्रणवं सकृत् ॥ प्रार्थयन्तं स्वमात्मानमेकान्ते नियतं हरिः ॥ २ ॥ अचिन्तयज्जगन्नाथः कारणं पुण्यसंचये ॥ ध्यात्वा तु सुचिरं विष्णुः कारणं पुण्यकर्मणः ॥ ३ ॥

हाभारते खिलेषु हरिवंशे भविष्यपर्वणि भाषायां कैलासयात्रायां घंटाकर्णसमाधिर्नामाशीतितमोऽध्यायः ॥ ८० ॥ वैशम्पायन बोले; इस प्रकार भगवान् विष्णुने पिशाचको देखा कि अपने आत्माको चिन्तवन करता, शुद्ध और बुद्धिसे युक्त ॥ १ ॥ आत्मामें स्थित अकेले ओंकारको पढता और अपने आत्मासे प्रार्थना करनेवाला था, उसे देख हरि ॥ २ ॥ जगन्नाथ उसके पुण्यसंचयका कारण विचारने लगे और चिरकालमें ध्यान कर ॥ ३ ॥ कि

कुबेरके उपदेशसे यह पृथ्वीमें यह शब्द पढता है मुझे पृथ्वीमें वासुदेव, कृष्ण, माधव नामसे पुकारते हैं ॥ ४ ॥ जनार्दन, हरि, विष्णु, भूतभावन, भावन, नरकारि, जगन्नाथ, नारायण, परायण, ॥ ५ ॥ इन नामोंसे दिनरात सोता हुआ, जागता हुआ स्थित हुआ भोजन करता हुआ, गमन करता हुआ और कहता हुआ ॥ ६ ॥ मेरा जप करता है और मांसकी बोटीको खाता हुआ, लोहूको पीता हुआ और बहुतसे मृगोंको मारता हुआ ॥ ७ ॥ मारनेमें, भोजन करनेमें, जागने सोनेमें सब कार्योंमें मैंही करता हूं, ऐसे मानता है ॥ ८ ॥ सो इस घोर कर्मका पाक यही है, इस प्रकार निश्चय

धनदस्योपदेशेन पठन्भुवहुशः क्षितौ ॥ वासुदेवेति कृष्णेति माधवेति च मां सदा ॥ ४ ॥ जनार्दन हरे विष्णो भूतभावन भावन ॥ नमस्कारि जगन्नाथ नारायण परायण ॥ ५ ॥ इति मां नामभिर्नित्यं पठत्येव दिवानिशम् ॥ स्वपन् जाग्रंस्तथा तिष्ठन् भुञ्जन् गच्छंस्तथा वदन् ॥ ६ ॥ भक्षयन्मांसपिटकं पिबञ्छोणितमेव वा ॥ बाधमानं च सुचिरं हत्वा चापि मृगान्बहून् ॥ ७ ॥ हनने भोजने चैव जाग्रत्स्वप्ने तथैव च ॥ सर्वेष्वपि च कार्येषु कर्त्ताहमिति मन्यते ॥ ८ ॥ एतस्य कर्मणः पाक एष घोरस्य कर्मणः ॥ निश्चित्यैवं जगन्नाथः प्रीतस्तस्य बभूव ह ॥ ९ ॥ अदर्शयत्स्वमात्मानमनन्तस्य जगत्पतिः ॥ शुद्धेऽन्तःकरणे तस्य पिशाचस्यापि भूमिप ॥ १० ॥ स च घोरः पिशाचोऽपि ददर्शात्मानि केशवम् ॥ पीतकौशेयवसनं पद्माक्षं श्यामलं हरिम् ॥ ११ ॥ शङ्खिनं चक्रिणं विष्णुं स्रग्विणं गदिनं विभुम् ॥ किरीटिनं कौस्तुभिनं श्रीवत्साच्छादितोरसम् ॥ १२ ॥ नीलमेघनिभं कान्तं गरुडस्थं प्रभञ्जनम् ॥ चतुर्भुजं शुभगिरं निश्चलं सर्वगं शिवम् ॥ १३ ॥

कर जगन्नाथ अर्थात् श्रीकृष्ण प्रसन्न होकर ॥ ९ ॥ अपने स्वरूपको दिखाते हुए. हे राजन् ! उस पिशाचका अंतःकरण शुद्ध हो गया था. इससे दर्शन पाया ॥ १० ॥ जब वह घोररूप पिशाच अपनेही आत्मामें पीले रेशमी वस्त्रोंको धारण करनेवाले कमलके समान नेत्रोंवाले और श्याम रंगवाले ॥ ११ ॥ शंख, चक्र, गदा, माला, मुकुट, कौस्तुभमणिको धारण करनेवाले और श्रीवत्सचिन्हसे आच्छादित छातीवाले ॥ १२ ॥ नीलमेघके समान कांतिमान्, प्रकाशित और गरुडपर स्थित और चार भुजावाले सुंदर वाणीवाले और निश्चल सर्वगत और कल्याणरूप ॥ १३ ॥ आदि-

अंतरहित, नित्य और मायावी, मायासे रहित सत्यरूप, सब कालमें शुद्ध और बुद्धिमें प्राप्त होनेके योग्य और सब कालमें मलसे रहित ॥ १४ ॥ श्रीकृष्णको अनेक प्रकारसे मनमें देखकर फिर नेत्रोंको बंदकर मैं कृतार्थ हुआ. ऐसा मानता हुआ ॥ १५ ॥ और कहने लगा कि अब साक्षात् विष्णुको मैंने देखा और विष्णु मुझसे प्रसन्न हैं, इस कारण मुझे विष्णुके दर्शन हुए हैं ॥ १६ ॥ और मेरे जन्मका कृत्य सिद्ध हुआ. इसके उपरान्त मेरे कोईभी कृत्य नहीं है मेरे हृदयकी ग्रन्थी छूट गई है, वशमें मेरी इन्द्रियें वशी हो गई हैं ॥ १७ ॥ और विशेष करके मैंने मनभी जीत लिया है,

अनादिनिधनं नित्यं मायाविनममायिनम् ॥ सत्ययुक्तं सदा शुद्धं बुद्धिगम्यं सदामलम् ॥ १४ ॥ मनस्येवं जगन्नाथं दृष्ट्वा विष्णुमनेकधा ॥ अनुमील्यैव नयने कृतार्थोऽस्मीत्यमन्यत ॥ १५ ॥ अथ दृष्टो हरिर्विष्णुः साक्षात्सर्वत्रगः शुभः ॥ प्रसन्नो हि हरिर्मह्यं तेनाहं दृष्टवान्हरिम् ॥ १६ ॥ सिद्धं मे जन्मनः कृत्यं किमतः कृत्यमस्ति मे ॥ ग्रन्थयो मम निर्भिन्ना वश्यान्येवेन्द्रियाणि मे ॥ १७ ॥ प्रायेण जितमित्येव मनो मन्ये स्मृते हरौ ॥ ईषणा च निरस्ता मे प्रसन्नोऽहं तथाभवम् ॥ १८ ॥ एतेभ्योऽपि पिशाचेभ्यो निर्मुक्तः साम्प्रतं तथा ॥ योऽसौ ममानुजः साक्षात्स च भक्तस्तथा हरौ ॥ १९ ॥ कालेन चैव निर्मुक्तो विष्णोः सायुज्यमाप्नुयात् ॥ इत्येवं चिन्तयित्वा स आन्त्रपाशं विभिद्य च ॥ २० ॥ क्रमेण प्राणानुन्मुच्य विलोक्य च दिशस्तथा ॥ शरीरं सुगमं कृत्वा प्राविशत्स सुखेन ह ॥ २१ ॥ इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे भविष्यपर्वणि कैलासयात्रायां पिशाचस्य विष्णुसाक्षात्कारो नाम एकाशीतितमोऽध्यायः ॥ ८१ ॥ वैशम्पायन उवाच ॥ पिशिताशो जगन्नाथं ददर्शाथ जगद्गुरुम् ॥ समाधौ च यथादृष्टं भूमौ चापि तथा हरिम् ॥ १ ॥

और मेरी इच्छा दूर हो गई है, और मैं प्रसन्न हो गया हूं ॥ १८ ॥ और इन पिशाचोंसेभी मैं अलग हो गया हूं. और जो मेरा छोटा भ्राता है, वहभी मेरी समान विष्णु भगवान्‌का भक्त है ॥ १९ ॥ और समय पाकर निर्मुक्त हुआ मैं विष्णुके समीप प्राप्त हूंगा, ऐसा विचार कर आंत्रपाशको भेदन कर ॥ २० ॥ क्रमसे अपने प्राणोंको छोड और सब दिशाओंको देख और शरीरको समरूप कर सुखसे संयुक्त हुआ ॥ २१ ॥ इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे भविष्यपर्वणि भाषायां कैलासयात्रायां घंटाकर्णस्य विष्णुसाक्षात्कारो नाम एकाशीतितमोऽध्यायः ॥ ८१ ॥ वैशम्पायन बोले; कि जैसे

उग्र पिशाचने समाधिमें श्रीकृष्णको देखा. तैसेही पृथ्वीमेंभी स्थित हुए श्रीकृष्णको देखा ॥ १ ॥ "यह विष्णु है यह विष्णु है" इस प्रकार वह पिशाच कहने लगा, जैसा समाधिमें देखा था वैसा प्रत्यक्ष देखता हूं इस प्रकार कह नाचता और हँसता हुआ फिर बोला ॥ २ ॥ कि चक्र शर शार्ङ्ग धनुष ध्वजा गदा रथ तूणयुक्त शस्त्रोंको हाथमें धारण किये, सहस्रशिरोंवाले और सब देवताओंके स्वामी जगत्के निवास विष्णु भगवान् यही हैं ॥ ३ ॥ सर्वोंको जीतनेवाले, जगत्के स्वामी, पुरातन पुरुषोंमें उत्तम, विश्वके ईश और विश्वके कर्त्ता सनातन विष्णु यही हैं ॥ ४ ॥ इन्हीं विष्णुके दोनों स्तनोंके

अयं विष्णुरयं विष्णुरित्यूचे पिशिताशनः ॥ समाधौ च यथा दृष्टः सोऽयमत्रापि दृश्यते ॥ इत्युक्त्वा च पुनर्ब्रूते नृत्यान्निव हसन्निव ॥२॥ अयं स चक्री शरशार्ङ्गधन्वा गदी रथी सध्वजतूणपाणिः ॥ सहस्रमूर्द्धा सकलामरेशो जगत्प्रसूतिर्जगतां निवासः ॥३॥ विष्णुर्जिष्णुर्जगन्नाथः पुराणः पुरुषोत्तमः ॥ विश्वात्मा विश्वकर्ता यः सोऽयमेष सनातनः ॥ ४ ॥ अस्यैव देवस्य हरेः स्तनान्तरे विराजते कौस्तुभरत्नदीपः ॥ यस्य प्रसादाज्जगदेतदादौ विराजते चन्द्रमसेव रात्रिः ॥ ५ ॥ योऽसौ पृथ्वीं दधाराशु दंष्ट्रया जलसंचयात् ॥ योऽयमेव हरिः साक्षाद्वाराहं वपुरास्थितः ॥ ६ ॥ बद्ध्वा तथा दानवमुग्रपौरुषं ददौ च शक्राय ततोऽनु राज्यम् ॥ बलिं बलादेष हरिः स वामनः स्तुतश्च भक्त्या मुनिभिः पुरातनैः ॥ ७ ॥ दंष्ट्राकरालः सुमहान् हत्वा यो दानवान्रणे ॥ निःशोकमखिलं लोकं चकारासौ जनार्दनः ॥ ८ ॥ आदौ दधारैकभुजेन मन्दरं निर्जित्य सर्वानसुरान्महार्णवे ॥ ददौ च शक्राय सुधामयं महान् स एष साक्षादिह मामवस्थितः ॥ ९ ॥

बीचमें कौस्तुभमणि विराजमान है, जिससे चंद्रमाकी समान रात्रि प्रकाशित हो रही है ॥ ५ ॥ जिन्होंने जलके समूहसे पृथ्वीको अपनी डाढपर रखकर बाहर निकला था. वह साक्षात् वाराहरूपको धारण करनेवाले विष्णु यही हैं ॥ ६ ॥ इन्हीं भगवान्ने उग्र पौरुषवाले बलि दैत्यको बांधकर इन्द्रके अर्थ उनका राज्य दिया. उस समय पुरातन मुनियोंसे स्तुतिको प्राप्त हुए बली विष्णु यही हैं ॥ ७ ॥ जो बडी डाढोंवाले कराल बडे रूपको धारण करनेवाले युद्धमें दैत्योंको मार शोकसे रहित इस लोकको करते हुए वह विष्णु यही हैं ॥ ८ ॥ जो आदिमें एकभुजासेही मंदराचल पर्वतको

धारण कर समुद्रके सब दैत्योंको जीत इन्द्रको अमृत देते हुए वह विष्णु यही स्थित हैं ॥ ९ ॥ मधुकैटभ दैत्यको वधकर समुद्रमें शेषनागरूप शय्यापर शयन करते हैं ॥ १० ॥ जिसको विद्वान् आद्य जगत्पति सबका धाता अजन्मा अन्योंको जीतनेवाला सूक्ष्मसे सूक्ष्म और स्थूलसे स्थूल कहते हैं, वह विष्णु यही हैं ॥ ११ ॥ और संहार कालमें यह जगत् जिसमें स्थित होता है, और आदिमें जिससे उत्पन्न होता है वह विष्णु यही हैं ॥ १२ ॥ और जिसकी इच्छासे यह जगत् प्रवृत्त और निवृत्त हो जाता है, सो पुरुषोत्तम शिव यादवेश्वर विष्णु यही मेरे समीप स्थित हैं ॥ १३ ॥ जो भृगुवं-

यः शेते जलधौ नागे देव्या लक्ष्म्या सुखावहे ॥ हत्वा तौ दानवौ घोरौ मधुकैटभसंज्ञितौ ॥ १० ॥ यमाहुराद्यं विबुधा जगत्पतिं सर्वस्य धातारमजं जनित्रम् ॥ अणोरणीयांसमतिप्रमाणं स्थूलात्स्थविष्ठं हरिमेव विष्णुम् ॥ ११ ॥ यत्र स्थितमिदं सर्वं प्राप्ते लोकस्य नाशने ॥ आदौ यस्मात्समुत्पन्नं सोऽयं विष्णुरिति स्थितः॥१२॥ यस्येच्छया सर्वमिदं प्रवृत्तं प्रवर्तते चापि जनार्दनस्य ॥ अयं स विष्णुः पुरुषोत्तमः शिवः प्रवर्तते मामिह यादवेश्वरः॥१३॥ भृगोर्वंशे समुत्पन्नो जामदग्न्य इति श्रुतः ॥ शिष्यत्वं समवाप्येव मृगव्याधस्य यः स्थितः ॥ १४ ॥ जघान वीर्याद्बलिनं महारणे कुठारशस्त्रेण गिरीशशिष्यः ॥ सहस्रबाहुं कृतवीर्यसंभवं हयैर्गजैश्चैव रथैश्च निर्मितम् ॥ १५ ॥ कुरुक्षेत्रं समासाद्य यश्चकार पितृक्रियाम् ॥ निःक्षत्रियमिमं लोकं कृतवानेकविंशतिः ॥ १६ ॥ रघोरथ कुले जातो रामो नाम जनार्दनः ॥ सीतया च श्रिया युक्तो लक्ष्मणानुचरः कृती ॥ १७ ॥ कृत्वा च सेतुं जलधौ जनार्दनो हत्वा च रक्षःपतिमाशुगैः शरैः ॥ दत्त्वा च राज्यं स विभीषणाय दशाश्वमेधैरयजच्च योऽसौ ॥ १८ ॥

शमें जमदग्निके पुत्र परशुराम नामसे उत्पन्न हो जो मृगव्याधके शिष्यत्वको प्राप्त हो अर्थात् ॥ १४ ॥ महादेवजीके शिष्य होकर युद्धमें फरसा ले महाबली कृतवीर्यके पुत्र, घोडे, हाथी, रथमें बैठनेवाले सहस्रबाहुको मारते हुए ॥ १५ ॥ पीछे इक्कीसवार इस लोकको क्षत्रियोंसे रहित कर कुरुक्षेत्रमें प्राप्त हो पितृक्रिया की वह विष्णु यही है ॥ १६ ॥ जो रघुवंशमें उत्पन्न हो सीता और शोभासे संयुक्त अनुगामी लक्ष्मण भ्रातासे संयुक्त विद्वान् ॥ १७ ॥ रामचंद्र समुद्रमें सेतुको बनाय और तीक्ष्ण बाणोंसे रावणको मार और विभीषणको राज्य दे पीछे दश अश्वमेधयज्ञ करते हुए, वह विष्णुजी यही हैं ॥ १८ ॥

और वसुदेवके कुलमें जन्म लेनेवाले वासुदेव नामसे विख्यात जो बलदेवजीके संग गोकुलमें क्रीडा करते थे ॥ १९ ॥ सीधे शयन करते बालकरूप धारण करनेवाले श्रीकृष्ण पूतनाके दिये हुए स्तनको पी पूतनाको मारकर फिर सुखपूर्वक वास करते हुए ॥ २० ॥ दूधके पीने और नैनीघृतके खानेसे क्रोधको प्राप्त हुई माताने रस्सीसे इन विष्णुको बांध दिया ॥ २१ ॥ तब दृढरूप रस्सीसे बंधे हुए यमलार्जुन वृक्षोंको गिराया और गोकुलमें वास कर गोपियोंके संग मुख और स्तनको आच्छादित कर क्रीडा करी ॥ २२ ॥ विष्णु भगवान् वृन्दावनमें गोकुलवासियोंके साथ निवास करते केशीनामक अश्व (घोडे) को

वसुदेवकुले जातो वासुदेवेति शब्दितः ॥ गोकुले क्रीडते योऽसौ संकर्षणसहायवान् ॥ १९ ॥ उत्तानशायी शिशुरूपधारी पीत्वा
स्तनं पूतनिकाप्रदत्तम् ॥ व्यसुं चकाराशु जनार्दनस्तदा दनोः सुतां तामवसत्सुखं हरिः ॥ २० ॥ पयःपानं तथा कुर्वन् भक्षयन्दधि-
पिण्डकम् ॥ दाम्ना बद्धोदरो विष्णुर्मात्रा रुषितया दृढम् ॥ २१ ॥ ततश्च दाम्ना सुदृढेन बद्धो जघान योऽसौ यमलार्जुनौ च ॥
क्रीडन्हरिर्गोकुलवासवासी गोपीभिरास्वाद्य मुखं स्तनं च ॥ २२ ॥ वृन्दावने वसन्विष्णुर्गोपैर्गोकुलवासिभिः ॥ तत्र हत्वा हयं राजन्
विरराजांशुमानिव ॥ २३ ॥ यः क्रीडते नागफणौ जनार्दनो निषेव्यमाणः सह गोपदारकैः ॥ महाह्रदे नागपतिं जगत्पतिर्ममर्द वीर्या
तिशयं प्रदर्शयन् ॥ २४ ॥ यो धेनुकं तालवने तत्फलैः सममच्छिनत् ॥ हत्वा दानवमुग्रं तं गोपान्विस्मापयत्यसौ ॥ २५ ॥ दधार
यो गोधरमुग्रपौरुषान्महामतिर्मेघसमागमे सति ॥ विडम्बयञ्छक्रबलं प्रमोदयन् गोपांश्च गोपीश्च स गोकुलं हरिः ॥ २६ ॥ गोपीनां
स्तनमध्ये तु क्रीडते काममीश्वरः ॥ योऽसौ पिबंस्तदधरं मायामानुषदेहवान् ॥ २७ ॥

मार सूर्यकी समान प्रकाशित हुए ॥ २३ ॥ गोपोंके बालकोंके संग यमुनामें कालियसर्पके फनोंपर क्रीडा करी और वीर्यके अतिशयको दिखानेके लिये कालियसर्पको जगन्नाथने नाथा ॥ २४ ॥ और तालवनमें उग्ररूप धेनुक दानवको तिसी वनके फलोंसे मार गोपोंको आश्चर्य दिखाया ॥ २५ ॥ जब इन्द्रने क्रोधकर व्रजपर जल वरसाया. तब श्रीकृष्णने उनकी रक्षा की. और गोप गोपी गोकुलको आनंदित किया और उग्ररूप गोवर्द्धन पर्वतको धारण किया ॥ २६ ॥ और मायासे मनुष्यदेहको धारण करनेवाले गोपियोंके अधरामृतको पीनेवाले तथा गोपियोंके स्तनोंमें इच्छापूर्वक क्रीडा करने-

वाले ॥ २७ ॥ तथा गोपियोंके अधरामृतका पान कर उनके संग एकान्तस्थानमें शयन करनेवाले उनके स्तनोंके आलिंगनसे प्रसन्न हुए ॥ २८ ॥ अक्रूरके संग बुलाये हुए मार्गमें चलनेके समय अक्रूरने यमुनाके जलमें जो ईश्वर देखे वही रथमें देखे ॥ २९ ॥ मथुरापुरीमें चलते हुए बलवान् जनार्दन मार्गमें अपने बलसे उग्ररूप रजक (धोबी) को मारकर वह ईश्वर मनोवांछित वस्त्रोंको ग्रहण कर बलदेवजीके संग मथुरापुरीमें विचरे ॥ ३० ॥ और मालाकारकी बहुतसी मालाओंको ग्रहण कर तिसको वरदान दे कुब्जासे सुंदर अनुलेपन ग्रहण कर उसको सुंदर रूपवाली बना दिया ॥ ३१ ॥

गोपीभिरास्वाद्यमुखं विविक्ते शेते स्म रात्रौ सुखमेव केशवः॥ स्तनान्तरेष्वेव तदा च तासां कामी च कान्ताधरपल्लवं पिबन् ॥२८॥ अक्रूरेण समाहूतस्तेन गच्छन् हि यामुने ॥ जले यो ह्यर्चितस्तेन नागलोके स एव हि ॥ २९ ॥ ततश्च गच्छन्बलवान् जनार्दनो हत्वा तमुग्रं रजकं बलात्पथि ॥ हृत्वा च वस्त्राणि यथेष्टमीश्वरो ययौ सरामो मथुरां पुरीं हरिः ॥ ३० ॥ लब्ध्वा च दामानि बहूनि कामदो दत्त्वा वरं माल्यकृते महान्तम् ॥ लब्ध्वानुलेपं सुरभिं च यादवः कुब्जां चकाराशु महार्हरूपाम् ॥३१॥ योऽसौ चापं समादाय मध्ये च्छित्त्वा महद्धनुः ॥ सिंहनादं महांश्चक्रे कल्पान्ते जलदो यथा ॥ ३२ ॥ हत्वा गजं घोरमुदग्ररूपं विषाणमादाय ततोऽनु केशवः ॥ ननर्त रङ्गे बहुरूपमीश्वरः कंसस्य दत्त्वा भयमुग्रवीर्यः ॥ ३३ ॥ योऽसौ हत्वा महामल्लं चाणूरं निहतद्विषम् ॥ यादवेभ्यो ददौ प्रीतिं कंसस्यैव तु पश्यतः ॥ ३४ ॥ जघान कंसं रिपुपक्षघातिनं पितृद्विषं यादवनामधेयम् ॥ संस्थाप्य राज्ये हरिरुग्रसेनं सान्दीपिनं काश्यमुपागतो यः ॥ ३५ ॥ विद्यामवाप्य सकलां दत्त्वा पुत्रं महामुनेः ॥ साग्रजोऽथ जगामाशु मथुरां यादवीं पुरीम् ॥ ३६ ॥

इसके उपरान्त रंगसमाजमें जाकर धनुषको ग्रहण कर बीचसे तोड सिंहके शब्दकी समान शब्द कर कि जिस प्रकार कल्पके अंतमें मेघोंका शब्द होता है ॥३२॥ फिर उदग्र रूपवाले कुवलयापीड हाथीको मार तिसके दांतोंको ग्रहण कर रंगसमाजमें विचरते हुए केशवने कंसको अति भय दिखाया ॥३३॥ फिर कंसके देखते हुए महामल्ल चाणूरको मारकर यादवोंको प्रसन्न किया ॥ ३४ ॥ तिसके पीछे शत्रुके पक्षको मारनेवाले पिताके वैरी कंसको मार उग्रसेन राजाको राज्यपर स्थित कर सांदीपिनी नामक गुरुके समीप प्राप्त हुए ॥ ३५ ॥ तहां संपूर्ण विद्याको प्राप्त हो दक्षिणामें गुरुको पुत्रका दान दे

बलदेवजीके संग श्रीकृष्ण मथुरामें प्राप्त हुए ॥ ३६ ॥ और निशुंभ नरकासुर दैत्यको मारकर और दैत्योंको पीडा देकर संग्राम कर ब्राह्मण मुनियोंके समूह देवतोंकी जगत्पतिने रक्षा की ॥ ३७ ॥ ऐसे विष्णु भगवान्‌को अब मैंने देखा है सो कृतकृत्य हुआ और मैं मोक्षको प्राप्त हूंगा ॥ ३८ ॥ कारण कि जिसने साक्षात् विष्णुको देख लिया, उसके हाथमें मुक्ति स्थित है, वह यह विष्णु मेरे सन्मुख स्थित है ॥ ३९ ॥ निश्चयही मैंने पूर्वजन्ममें बहुत धर्मका संचित किया जिससे यह विष्णु भगवान्‌का दर्शन मुझे प्राप्त हुआ है ॥ ४० ॥ सर्वथा मैं पुण्यवान् हूं मेरे संसारके बंधन नष्ट हो गये, और क्या

हत्वा निशुम्भं नरकं महामतिः कृत्वा सुघोरं कदनं जनार्दनः ॥ ररक्ष विप्रान्मुनिवीरसंघान्देवांश्च सर्वान् जगतो जगत्पतिः ॥ ३७ ॥ स एष भगवान्विष्णुरद्य दृष्टो जनार्दनः ॥ कृतकृत्योऽस्मि संजातः सायुज्यं प्राप्तवानहम् ॥ ३८ ॥ येन दृष्टो हरिः साक्षात्तस्य मुक्तिः करे स्थिता ॥ सोऽयमेष हरिः साक्षात्प्रत्यक्षमिह वर्तते ॥ ३९ ॥ नूनं जन्मान्तरे पूर्वं धर्मः संचित एव मे ॥ यस्य पाकः समुत्पन्नो येनासौ दृश्यते मया ॥ ४० ॥ सर्वथा पुण्यवानस्मि नष्टसंसारबन्धनः ॥ किमस्मै दीयते वस्तु किं नु वक्ष्यामि साम्प्रतम् ॥ करिष्ये किमहं विष्णो वदस्वाद्य यथेप्सितम् ॥ ४१ ॥ वैशम्पायन उवाच ॥ इत्युक्त्वा विस्तरं नादं ननर्द बहुशस्तदा ॥ जहास विकृतं भूयो ननर्त पिशिताशनः ॥ ४२ ॥ नमो नमो हरे कृष्ण यादवेश्वर केशव ॥ प्रत्यक्षं च हरेस्तत्र ननर्त विविधं नृप ॥ ४३ ॥ इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे भविष्यपर्वणि कैलासयात्रायां घण्टाकर्णस्तुतिर्नाम द्व्यशीतितमोऽध्यायः ॥ ८२ ॥

वस्तु मैं इनको दूं ? क्या अब कहूं ? ॥ ४१ ॥ हे विष्णो ! मैं अब क्या करूं ? जो अब वांछित हो सो कहो ॥ ४२ ॥ वैशंपायनजी बोले कि, इस प्रकार ऊंचे स्वरसे कहकर वह पिशाच फिर बडे वेगसे गर्जकर नाचने लगा ॥ ४३ ॥ हे हरे ! हे केशव ! हे कृष्ण ! हे यादवेश्वर ! तुम्हारे अर्थ नमस्कार है. ऐसे कहता हुआ श्रीकृष्णके सन्मुख नानाप्रकारसे नाचने लगा ॥ ४४ ॥ इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे भविष्यपर्वणि भाषायां कैलासयात्रायां घंटाकर्णकृतस्तुतिर्नाम द्व्यशीतितमोऽध्यायः ॥ ८२ ॥

वैशंपायन बोले कि इस प्रकार वह पिशाच वारंवार हँसकर फिर मरे हुए ब्राह्मणके शरीरको लाकर ॥ १ ॥ उसके दो भागकर उस महाघोर बालयुक्तको ले पानीसे शुद्ध कर ॥ २ ॥ सुंदर पात्रमें धर श्रीकृष्णको नमस्कार कर अंजलि बांध नम्र हो देवेशसे योग्य इस प्रकार कहने लगा ॥ ३ ॥ हे जगन्नाथ ! हे प्रभो ! तुम्हारे योग्य यह भक्ष्य पदार्थ है. इसको ग्रहण कीजिये और हे हरे ! तुम्हारे सरीखोंको यह पदार्थ सब प्रकारसे ग्रहण करना चाहिये आप सर्वात्मा हो ॥ ४ ॥ हे विष्णो ! हम भक्तिसे नम्र हैं. इसमें विचार नहीं करना चाहिये. जो भक्तिनम्र

वैशम्पायन उवाच ॥ विहस्य विकृतं भूयः प्रनृत्य च यथाबलम् ॥ ब्राह्मणस्य हतस्याथ शवमादाय सत्वरः ॥ १ ॥ द्विधाकृत्य महाघोरं पिशितं केशशाद्वलम् ॥ ततः खण्डं समादाय अद्भिरभ्युक्ष्य यत्नतः ॥ २ ॥ विधाय पात्रे सुशुभे नमस्कृत्य जनार्दनम् ॥ इदं प्रोवाच देवेशं प्राञ्जलिः प्रणतः स्थितः ॥ ३ ॥ गृहाण मे जगन्नाथ भक्ष्यं योग्यं तव प्रभो ॥ भवादृशैर्जगन्नाथ ग्राह्यं सर्वात्मना हरे ॥ ४ ॥ भक्तिनम्रा वयं विष्णो नात्र कार्या विचारणा ॥ दत्तं यद्भक्तिनम्रेण ग्राह्यं तत्स्वामिना हरे ॥ ५ ॥ नवं सुसंस्कृतं भक्ष्यं ब्रह्मण्यं शवमुत्तमम् ॥ अस्माकं पिशिताशानां शास्त्रे नियतमेव हि ॥ ६ ॥ तस्माद्गृहाण भगवन्यदि दोषो न विद्यते ॥ इत्युक्त्वा विकृतं भूयो विहस्य स तु कामतः ॥ ७ ॥ दातुमैच्छत्तदा खण्डमस्पृश्यं तु शवस्य ह ॥ ततः प्रीतोऽभवत्तस्मै मनसापूजयच्च तम् ॥ ८ ॥ अहोऽस्य स्नेहकारुण्यं मयि सर्वत्र वर्त्तते ॥ इति संचिन्त्य मनसा प्रोवाच यदुपुङ्गवः ॥ ९ ॥

पुरुष है, वह स्वामीको ग्रहण करना उचित है ॥ ५ ॥ नवीन अच्छी प्रकार संस्कारित किया ब्राह्मणका शरीररूप मुरदा भक्ष्य हमारे शास्त्रमें उत्तम कहा है ॥ ६ ॥ इस कारण हे भगवन् ! जो दोष नहीं हो तो आप ग्रहण कीजिये, इस प्रकार वारंवार विकृत कहकर और हँसकर ॥ ७ ॥ नहीं स्पर्श करनेके योग्य उस मुरदेके टुकडेको श्रीकृष्णके लिये देनेकी इच्छा करने लगा तब तिस पिशाचके अर्थ प्रसन्न हुए श्रीकृष्ण तिसको मनसे पूजते हुए ॥ ८ ॥ कहने लगे कि आश्चर्य है ! इसका स्नेह मेरे विषे सब स्थानोंमें है इस प्रकार मनमें चिंतवन करके श्रीकृष्ण कहने लगे ॥ ९ ॥

हे पिशाच ! इसको मुझे मत दो, मुझ सरीखे मनुष्य ब्राह्मणकी शवका स्पर्श नहीं करते ॥ १० ॥ कारण कि धर्मकी आकांक्षावाले सब मनुष्योंकी सब कालमें ब्राह्मण पूजने योग्य है, और घोरकर्मवाले पिशाच ब्राह्मणके मारनेमें यत्न करते हैं ॥ ११ ॥ किसी कालमेंभी ब्राह्मण मारनेके योग्य नहीं है, क्योंकि ब्राह्मणके मारनेसे निश्चय नरक होता है इस कारण हमको यह मुरदा स्पर्श करना योग्य नहीं है, इसमें संशय नहीं करना ॥ १२ ॥ परन्तु तेरा कल्याण हो. मैं तेरी प्रीतिसे प्रसन्न हुआ, और जिस भक्तिसे तेरा मन निर्मल हुआ. और जिसका मन शुद्धिको प्राप्त हो, तिसपर मैं प्रसन्न हो जाता हूं ॥ १३ ॥ और इस कीर्त्तनसे निरंतर तेरा अंतःकरण शुद्ध प्रतीत होता है, सो मैं तुझसे अति प्रसन्न हूं,

अलमेतेन सर्वत्र पिशाच पिशिताशन ॥ अस्पृश्यं मादृशैरेतद्ब्राह्मण्यं शवमुत्तमम् ॥ १० ॥ ब्राह्मणः सर्वथा पूज्यो जन्तुभिर्धर्मकाङ्क्षिभिः॥ पिशाचा घोरकर्माणो यतन्ते ब्रह्महिंसने ॥११॥ न हन्तव्याः सदा विप्रास्तद्धिंसा नरकावहा ॥ तस्मादस्पृश्यमस्माभिर्नात्र कार्या विचारणा ॥१२॥ भक्त्या प्रीतोऽस्मि भद्रं ते मनोनिर्मलता मया ॥ मनःशुद्धिं यदा यत्नं ततः प्रीतोऽस्मि मांसप ॥ १३ ॥ अस्मात्संकीर्त्तनाच्छश्वच्छुद्धं हि करणं तव ॥ अतीव मनसा प्रीत इत्युक्त्वा भगवान् हरिः ॥१४॥ पस्पर्शाङ्गं तदा विष्णुः पिशाचस्याथ सर्वतः ॥ करेण मृदुना देवः पापान्निर्मोचयद्धरिः ॥ १५ ॥ ततस्तस्याभवद्रूपं कामरूपसमप्रभम् ॥ दीर्घकुञ्चितकेशाढ्यो दीर्घबाहुः सुलोचनः ॥ १६ ॥ समाङ्गुलिः समनखः समवक्त्रः समुन्नसः ॥ पद्माक्षः पद्मवर्णाभः पद्मकेसरभूषणः ॥ १७ ॥ केयूरी चाङ्गदी चैव कौशेयवसनस्तदा ॥ ज्ञानवान्सत्त्वसंपन्नः साक्षादिन्द्र इवापरः ॥ १८ ॥

ऐसे कहकर भगवान् हरि ॥ १४ ॥ श्रीकृष्ण उस पिशाचके सब अंगोंको चारों ओरसे कोमल हाथसे स्पर्श करते हुए और पापोंसे उस पिशाचको छुडाते हुए ॥ १५ ॥ तब उसका रूप कामदेवके समान कांतिमान् लंबे केशोंवाला लम्बी भुजाओंवाला और सुंदर नेत्रोंवाला ॥ १६ ॥ समान अंगुलियोंवाला और समान नखोंवाला समान मुख सम्यक् प्रकारसे ऊंची नासिकावाला और कमलके समान नेत्रवाला और कमलके वर्णकी समान कांति और कमलके केशरकी समान भूषित ॥ १७ ॥

और केयूर बाजूबंदको धारण करनेवाला, रेसमी कपडोंको पहने हुए, ज्ञानमाला और सत्वगुणोंसे संयुक्त, साक्षात् इन्द्रके समान मानो दूसरा इन्द्र ॥ १८ ॥ गंधर्वके समान गानेवाला और सिद्धके समान सिद्ध वह पिशाच होता हुआ अर्थात् श्रीकृष्णके कोमल हाथके छूनेसे ॥ १९ ॥ जैसा रूप उस पिशाचको मिला, तैसे रूपको उग्रतप करनेवाले मुनिजनभी प्राप्त नहीं हो सकते ॥ २० ॥ जो बडा घोर परमदारुण तप करके रूप प्राप्त होता है, यह उस पिशाचने पाया ॥ २१ ॥ हे राजन् ! ऐसा कौन जन है जो श्रीकृष्णके आश्रित होकर दुःखी रहे, वह सर्वत्र कल्याणको प्राप्त होता है, जो नित्य जनार्दनको ॥ २२ ॥ नित्यप्रति ध्यान करता पढता जप करता है. तो ऐसी क्या वस्तु है, जिसकी उसे प्राप्ति नहीं हो सकती है,

गन्धर्व इव गायंस्तु सिद्धः सिद्ध इव स्वयम् ॥ साक्षात्स्पृष्टं तदा विष्णोः करेण मृदुपूर्वकम् ॥ १९ ॥ न नूनं तादृशं रूपमासीत् कालान्तरेष्वपि ॥ अद्यापि नैव मुनयो लभन्ते तादृशं वपुः ॥ २० ॥ कृत्वा सुबहुशो घोरं तपः परमदारुणम् ॥ यच्च लब्धं तदा तेन पिशाचेन नृपोत्तम ॥२१॥ को नु नाम जगन्नाथमाश्रितः सीदते नृप ॥ स हि सर्वत्र कल्याणो यो हि नित्यं जनार्दनम् ॥२२॥ ध्यायन्पठन् जपन्वापि तस्य किं नास्ति भूपते ॥ ततः प्रोवाच भगवान् स्थितं काममिवापरम् ॥ २३ ॥ अक्षयः सर्ववासस्ते यावदिन्द्रो वसिष्यति ॥ तावत्स्वर्गी भवानस्तु शासनान्मम नान्यतः॥ २४ ॥ नष्टे शक्रे ततः स्वर्गात्सायुज्यं मम गच्छतु ॥ योऽयं भ्राता तव स्वर्गी यावदिन्द्रो भवेत्तदा॥२५॥वरं वरय भद्रं ते यस्ते मनसि वर्त्तते ॥ दातास्मि सर्वं सर्वत्र नात्र कार्या विचरणा॥२६॥ घण्टाकर्ण उवाच ॥ यश्चेमं संगमं देव संस्मरन्नियतात्मवान् ॥ भक्तिस्तस्याचला देव त्वयि भूयाज्जनार्दन ॥ २७ ॥ मनःशुद्धिर्भवे-त्तस्य मा भूत्कलुषता हरे ॥ कालुष्यं मनसस्तस्य मा भूदेष वरो मम ॥ २८ ॥

कामदेवके समान रूपको धारण करनेवाले पिशाचसे श्रीकृष्ण कहने लगे ॥ २३ ॥ कि जबतक इन्द्र स्वर्गमें वास करेगा तबतक तूभी स्वर्गमें वसेगा यह मेरी आज्ञा है, इसमें अन्यथा न होगा ॥ २४ ॥ और जब इन्द्र नष्ट हो जायगा. तब तू मेरे समीपमें प्राप्त होगा और तेरा भ्राताभी तेरे संग स्वर्गमें वास करेगा ॥ २५ ॥ तेरा कल्याण हो. जो तेरे मनमें हो सो तू मांग और मैं सब जगह सब वरोंको दूंगा, इसमें संशय नहीं ॥ २६ ॥ घंटाकर्ण बोला, हे देव ! जो निरंतर इस मेरे तुम्हारे संगमका स्मरण करे, उस मनुष्यकी तुममें अचल भक्ति हो ॥ २७ ॥ तिसके मनकी शुद्धि रहे

और तिसके मनमें क्लेश न रहे, उसके मनमें कलुषता न हो. यही वर दो ॥ २८ ॥ तब श्रीकृष्ण कहने लगे कि ऐसेही होगा और तू स्वर्गमें गमन कर और इन्द्रका अतिथि हो जा. अर्थात् तुझे देखकर इन्द्र प्रसन्न होगा ॥२९॥ इस प्रकार कह श्रीकृष्णने उस ब्राह्मणको जो पिशाचने पहले भेंटमें दिया था उसको जिवाया और उस ब्राह्मणसे स्तुतिको प्राप्त हो श्रीकृष्ण उस ब्राह्मणको पूजकर ॥३०॥ फिर उस देशसे उठ श्रीकृष्ण जहां अग्निहोत्र करनेवाले सिद्ध और मुनि वास करते थे, तहां प्राप्त हुए ॥ ३१ ॥ और वह घंटाकर्णभी श्रीकृष्णकी आज्ञासे स्वर्गमें प्राप्त हुआ. इस कारण हे राजन्! यदि तुम मनकी

एवमस्त्विति देवेशः स्वर्गं गच्छेति केशवः ॥ इन्द्रातिथिर्भवानस्तु त्वां प्रतीक्ष्य हरिः स्थितः २९ ॥ इत्युक्त्वा भगवान् कृष्ण उत्थाप्य ब्राह्मणं तदा ॥ तेन स्तुतो जगन्नाथः पूजयित्वा च तं द्विजम् ॥ ३० ॥ ततो विसृज्य गोविन्दस्तस्माद्देशादुपागमत् ॥ यत्र ते मुनयः सिद्धा अग्निहोत्रसमन्विताः ॥ ३१ ॥ स च स्वर्गी ततः स्वर्गमाज्ञया केशवस्य ह ॥ तस्मात्पठ सदा राजन् मनःशुद्धिं यदिच्छसि ॥ मनश्च शुद्धं भवति पठतस्ते जगत्पते ॥ ३२॥ इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे भविष्यपर्वणि घण्टाकर्णमुक्तिप्रदानं नाम त्र्यशीतितमोऽध्यायः ॥ ८३ ॥ वैशम्पायन उवाच ॥ ततः स भगवान्विष्णुर्मुनिभ्यस्तत्त्वमादितः ॥ कथयामास यद्वृत्तं पिशाचस्य महात्मनः ॥ १ ॥ तच्छ्रुत्वा मुनयः सर्वे विस्मयं परमं गताः ॥ अहोऽस्य कर्मणः पाकस्तव संदर्शनादिति ॥ २ ॥ अर्चितो मुनिभिः सर्वैः प्रीतः प्रीतिमतां प्रियः ॥ ततः प्रभाते विमले सूर्ये चाभ्युदिते सति ॥ ३ ॥

शुद्धिकी इच्छा करते हो. तो सब कालमें इस आख्यानका पाठ करो इसके पाठ करनेसे निश्चय मन शुद्ध हो जाता है ॥ ३२ ॥ इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे भविष्यपर्वणि भाषायां कैलासयात्रायां घंटाकर्णमोक्षे त्र्यशीतितमोऽध्यायः ॥ ८३ ॥ वैशंपायन बोले; तब श्रीकृष्णने पिशाचके संग जो वृत्तान्त हुआ, वह सब मुनियोंसे कहा ॥ १ ॥ तब सब मुनियोंने सुनकर अतिआश्चर्य माना और बोले आपके दर्शनसे उस पिशाचका जन्म सफल हुआ. यह अतिउत्तम हुआ ॥ २ ॥ पीछे सब मुनिजनोंसे अर्चित किये श्रीकृष्णजी अत्यन्त प्रसन्न हुए फिर प्रातःकाल सूर्यके उदय होनेपर ॥ ३ ॥

गरुडपर चढ विष्णु कैलासपर्वतको गये और मुनिजनोंसे कहने लगे कि, तुमकोभी तहां गमन करना योग्य है ॥ ४ ॥ जहां तप करनेवाले विश्वके ईश्वर सिद्ध वास करते हैं और जहां साक्षात् कुबेर महादेवजीकी उपासना करते हैं ॥ ५ ॥ जहां मानससरोवर नामक हंसोंका स्थान है और जहां भृंगीरिटि शिवकी उपासना करके ॥ ६ ॥ गणोंके स्वामिभावको प्राप्त होकर महादेवजीके समीपमें विचरते हैं, और जहां सिंह, वराह, हाथी, गैंडा, मृग ॥ ७ ॥ यह परस्पर मित्रभावसे क्रीडा करते हैं और जहां समुद्रमें जानेवाली गंगा आदिक नदियें उत्पन्न हुई हैं ॥ ८ ॥ जहां महादेवजीने

आरुह्य गरुडं विष्णुर्ययो कैलासमुत्तमम् ॥ भवद्भिस्तत्र गन्तव्यमित्युक्त्वा मुनिसत्तमान् ॥ ४ ॥ यत्र विश्वेश्वराः सिद्धास्तपस्यन्ति यतव्रताः ॥ यत्र वैश्रवणः साक्षादुपास्ते शंकरं सदा ॥ ५ ॥ यत्र तन्मानसं नाम सरो हंसालयं महत् ॥ यत्र भृङ्गीरिटिर्देवमुपास्ते शंकरं शिवम् ॥ ६ ॥ गाणपत्यमवाप्याथ हरपार्श्वचरः सदा ॥ यत्र सिंहा वराहाश्च द्विपद्वीपिमृगैः सह ॥ ७ ॥ क्रीडन्ति वन्यरतयः परस्परहिते रताः ॥ यत्र नद्यः समुत्पन्ना गंगाद्याः सागरंगमाः ॥८॥ यत्र विश्वेश्वरः शम्भुरच्छिनद्ब्रह्मणः शिरः ॥ यत्रोत्पन्ना महानेत्रा भूतानां दण्डतां ययुः ॥ ९ ॥ उमया यत्र सहितः शंकरो नीललोहितः ॥ ऋषिभिः प्रार्थितः पूर्वं ददौ यत्र गिरिः सुताम् ॥ १० ॥ शंकराय जगद्धात्रे शिवाय जगतीपते ॥ यत्र लेभे हरिश्चक्रमुपास्य बहुभिर्दिनैः ॥ ११ ॥ पुष्करैः शतपत्रैश्च नेत्रेण च जगत्पतिम् ॥ गुहां यत्र समाश्रित्य क्रीडन्ते सिद्धकिन्नराः ॥ १२ ॥ प्रियाभिः सह मोदन्ते पिबन्ते मधु चोत्तमम् ॥ यमुद्धृत्य भुजैः सर्वैः पौलस्त्यो विरराम ह ॥ १३ ॥ तमारुह्य महाशैलं देवकीनन्दनो हरिः ॥ मानसस्योत्तरं तीरं जगाम यदुनन्दनः ॥ १४ ॥

ब्रह्माजीके पंचम शिरको छेदन किया था और जहां उत्पन्न हुए बडे बडे नेत्र प्राणियोंकी दण्डताको प्राप्त होते हैं ॥ ९ ॥ और जहां पार्वतीके संग नीललोहित महादेवजी वास करते हैं, और जहां ऋषियोंकी प्रार्थनासे हिमाचलने जगद्धाता शंकर महादेवजीके अर्थ अपनी पुत्रीको दिया ॥ १० ॥ जहां बहुत दिनोंतक कमलोंसे महादेवजीकी उपासना कर एकनेत्र चढाय विष्णु भगवान्ने चक्र पाया था जिसकी गुफाओंमें आश्रित हो सिद्ध किन्नर क्रीडा करते हैं ॥ ११ ॥ १२ ॥ अपनी अपनी भार्याओंके संग क्रीडा करते और आनंदित हो उत्तम मधुका पान करते हैं, और जिसको रावण सब भुजाओंसे उठा नहीं सका ॥ १३ ॥ ऐसे कैलास पर्वतमें आरोहण कर देवकीनंदन हरि मानस सरोवरके उत्तर तीरपर गये ॥ १४ ॥

पीछे केशोंको बढाये चीर वसन धारे. मनुष्य शरीर धारण किये ॥ १५ ॥ तपमें मन लगाये श्रीकृष्ण वेदसंमत गरुडसे उतर कर पृथ्वीमें स्थित हुए ॥ १६ ॥
तब हरिने बारह वर्षतक तप करनेका मनमें विचार किया ओर शुद्ध भूमिमें स्थित हुए फाल्गुनके महीनेमें श्रीकृष्णने तपका आरंभ किया ॥ १७ ॥
शाकोंका भोजन करनेवाले मंत्रोंको जपनेमें तत्पर वेदोंके अध्ययनमें तत्पर विष्णु किस उद्देशसे तप करते हैं ॥ १८ ॥ उसे कोई यथेष्ट न जान सका ईश्वरकी
चिन्तना दुर्ज्ञेय है, इस प्रकार भूतसेवित पर्वतमें श्रीकृष्णके तप करनेपर ॥ १९ ॥ कश्यपके पुत्र गरुड तप करते हुए श्रीकृष्णके समीपमें होम करनेके

तपश्चर्तुं किल हरिर्विष्णुः सर्वेश्वरः शिवः ॥ जटी चीरी जगन्नाथो मानुषं वपुरास्थितः ॥ १५ ॥ तपसे धृतचित्तस्तु शुचौ भूमावुपा-
विशत् ॥ अवरुह्य ततो यानाद्गरुडाद्वेदसंमितात् ॥ १६ ॥ द्वादशाब्दं तपश्चर्तुं मनो दध्रे ततो हरिः ॥ फाल्गुनेन तु मासेन समारेभे
जगत्पतिः ॥ १७ ॥ शाकभक्षः कृतजपो वेदाध्ययनतत्परः ॥ किमुद्दिश्य जगन्नाथस्तपश्चराति मानवः ॥ १८ ॥ तं न विद्मो
यथाकामं दुर्ज्ञेयेश्वरचिन्तना ॥ तपस्यति तदा विष्णौ पर्वते भूतसेविते ॥ १९ ॥ गरुडः कश्यपसुत इन्धनानि समाचिनोत् ॥ होमार्थं
वासुदेवस्य चरतस्तप उत्तमम् ॥ २० ॥ चक्रराजोऽथ पुष्पाणि संचिनोति तदा हरेः ॥ दिक्षु सर्वासु सर्वत्र ररक्ष जलजस्तदा ॥ २१ ॥
खड्ग आहृत्य यत्नेन कुशान्सुबहुशस्तदा ॥ गदा कौमोदकी चैव परिचर्यां चकार ह ॥ २२ ॥ धनुःप्रवरमत्युग्रं शार्ङ्गं दानवभीषणम् ॥
स्थितं हि पुरतस्तस्य यथेष्टं भृत्यवत्स्वयम् ॥ २३ ॥ जुहोति भगवान्विष्णुरेधोभिर्बहुभिः सदा ॥ आज्यादिभिस्तदा हव्यैरग्निं
संपूज्य माधवः ॥ २४ ॥ सप्तार्चिषः समाप्तिं च समस्तव्यस्ततः कृती ॥ एकस्मिन्नेकदा मासे भुञ्जानो नियतात्मवान् ॥ २५ ॥

लिये ईंधनोंको इकट्ठा करने लगे ॥ २० ॥ सुदर्शन चक्र श्रीकृष्णके समीपमें पुष्पोंको इकट्ठे करने लगा, और संपूर्ण दिशाओंमें पांचजन्य शंख रक्षा करने
लगा ॥ २१ ॥ और यत्नसे नंदक खड्ग बहुतसी कुशाओंको श्रीकृष्णके समीप लाकर गेरता था कौमोदकी गदा श्रीकृष्णकी सेवा करती थी ॥ २२ ॥
और दैत्योंको भय देनेवाला शार्ङ्ग धनुष श्रीकृष्णके सन्मुख यथेष्ट भृत्यके समान स्थित हुआ ॥ २३ ॥ भगवान् विष्णु अनेक प्रकारके
काष्ठों और घृतआदिसे हवन कर अग्निकी पूजा करने लगे ॥ २४ ॥ वह सूर्यकी समान कांतिवाले कृतकृत्य एक महीनेमें एक दिन भोजन करते

थे ॥ २५ ॥ फिर दो महीनेके उपरान्त फिर तीन चार पांच छेः महीने पीछे भोजन करते थे फिर एक वर्षमें एक दिन ऐसे भोजन किया इस प्रकार जगत्पति श्रीकृष्ण एक महीना कम बारह वर्षतक ॥ २६ ॥ २७ ॥ अग्निमें हवन कर मंत्रका पाठ करते हुए महादेवजीका ध्यान करते हुए. आरण्यक विधिको पढते हुए साक्षात् सर्वेश्वर हरि ओंकारका विचार करते हुए ध्यानमें तत्पर हो स्थित हुए ॥ २८ ॥ इति श्रीम० खिलेषु० ह० भविष्यपर्वणि भाषायां कैलासयात्रायां चतुरशीतितमोऽध्यायः ॥ ८४ ॥ वैशंपायनजी बोले कि; तब साक्षात् इन्द्र ऐरावत हाथीपर चढकर तप करनेवाले

द्वितीये त्वथ पर्याये भुञ्जन्नेकेन केशवः ॥ एकस्मिन्वत्सरे भुञ्जंस्तथैवैकेन केनचित् ॥ २६ ॥ समाप्य तत्तपः सर्वमेवमेव जगत्पतिः ॥ द्वादशाब्दे तथा पूर्णे ऊनमासे जगत्पतिः ॥ २७ ॥ जुह्वन्नग्निं समास्थाय पठन्मत्रं जनार्दनः ॥ आरण्यकं पठन्विष्णुः साक्षात्सर्वेश्वरो हरिः ॥ आस्ते ध्यानपरस्तत्र पठन्प्रणवमुत्तमम् ॥ २८ ॥ इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे भविष्यपर्वणि कैलासयात्रायां कृष्ण तपोवर्णनं नाम चतुरशीतितमोऽध्यायः ॥ ८४ ॥ वैशम्पायन उवाच ॥ तत इन्द्रः स्वयं तत्र आरुह्य गजमुत्तमम् ॥ द्रष्टुं सर्वेश्वरं विष्णुं तपस्यन्तं समाययौ ॥ १ ॥ ततो यमस्तु भगवानारुह्य महिषं वरम् ॥ किंकरैश्च स्वयं साक्षादाययौ नगमुत्तमम् ॥ २ ॥ प्रचेता हंसमारुह्य वारुणैश्च समन्वितः ॥ श्वेतच्छत्रसमायुक्तः श्वेतव्यजनवीजितः ॥ ३ ॥ ययौ कैलासशिखरं द्रष्टुं केशवमञ्जसा ॥ अन्ये चापि तथा देवा आदित्या वसवस्तथा ॥ ४ ॥ रुद्राश्चैव तथा राजन्द्रष्टुं केशवमाययुः ॥ सिद्धाश्च मुनयश्चैव गन्धर्वा यक्षकिन्नराः ॥ ५ ॥ सर्वाश्चाप्सरसो राजन्नृत्यगीतविशारदाः ॥ ततो देवगणाः सर्वे कैलासं समपद्यत ॥ ६ ॥

विष्णुके देखनेको प्राप्त हुआ ॥ १ ॥ इसके उपरान्त भैंसेपर चढकर धर्मराज अपने दूतोंसहित कैलासपर्वतमें प्राप्त हुए ॥ २ ॥ फिर श्वेतछत्रको लगानेवाला और श्वेत वीजनासे वीजित वरुणजी हंसपर चढ ॥ ३ ॥ अपने भृत्योंके सहित श्रीकृष्णके देखनेको कैलासपर्वतमें प्राप्त हुए. हे राजन् ! अन्यभी देवता आदित्य, सब वसु ॥ ४ ॥ और सब रुद्र श्रीकृष्णके देखनेको आये , सिद्ध, मुनि, गंधर्व, यक्ष, किन्नर ॥ ५ ॥ नृत्यगीतमें विशारद

अप्सरा और सब देवता कैलासपर्वतमें आये ॥ ६ ॥ पर्वत, नारदऋषि और दूसरे मुनिजन विस्मयसे चलायमान नेत्रवाले ऋषि और देवगण ॥ ७ ॥ यह सब श्रीकृष्णके देखनेको कैलासपर्वतमें आये और सब कहने लगे कि ऐसा आश्चर्य है कि न हुआ न होगा, तिसको देखो कि योगिजनोंको ध्यान करनेके योग्य और सबके बडेभी श्रीकृष्ण आप तप करते हैं ॥ ८ ॥ ऐसा समय कब होगा. ऐसे सब गण मानने लगे जब जगत्पतिको बारह वर्ष तप करते पूर्ण हो गये तब सब जगत्के ईश्वर महादेव पार्वती और भूतसंघके संग लोकहितकारी श्रीकृष्णके देखनेको आये ॥ ९ ॥ कुबेर गुह्यकोंके संग

पर्वतो नारदश्चैव तथान्ये मुनिसत्तमाः ॥ विस्मयास्थितलोलाक्षाः सर्वदेवगणास्तथा ॥ ७ ॥ आश्चर्यं खलु पश्यध्वं न भूतं न भविष्यति ॥ योगिध्येयः स्वयं कृष्णो यत्तप्यति गुरुः स्वयम् ॥ ८ ॥ कोऽन्वत्र समयो भूयादिति ते मेनिरे गणाः ॥ ततः समाप्ते सकले जगत्पतेर्व्रते समूले सकलेश्वरः शिवः ॥ द्रष्टुं हरिं लोकहितैषिणं प्रभुं ययौ भवान्या सह भूतसंघैः॥९॥ सार्द्धं कुबेरेण सगुह्यकेन सख्या प्रियेण प्रभुरीश्वरः शिवः ॥ स्वयं जटी भूतपिशाचसंवृतः शरी च खड्गी शशिखण्डशेखरः ॥ १० ॥ करेण बिभ्रत्सह दर्भकुण्डिकां करेण साक्षादपरेण दीपिकाम् ॥ अन्येन बिभ्रन्महतीं स डिण्डिमां शूलं च बिभ्रन्नपरेण बाहुना ॥ ११ ॥ गुणांश्च रुद्राक्षकृतान्समुद्वहन् जटाभिरापिङ्गलताम्रमूर्तिः ॥ विराजमानः प्रभुरिन्दुशेखरो वृषेण युक्तः स सितेन शंकरः ॥ १२ ॥ उमास्तनद्वन्द्वसमर्पिताननस्तया समाश्लिष्य निपीडिताधरः ॥ गङ्गाम्बुविक्षालितचन्द्रशेखरस्तां चापि वीक्षन्बहुशस्तदा शिवः ॥ १३ ॥

सखिके प्रिय जटाको धारण करनेवाले पिशाचोंसे परिवृत शर और खड्गको धारण करनेवाले और चन्द्रमाको मस्तकमें धारण किये ॥ १० ॥ एक हाथमें डाभके समूहको धारण किये दूसरेमें दीपिका लिये तीसरे हाथमें बडी डिंडिमा धारे और चौथे हाथमें त्रिशूलको लिये ॥ ११ ॥ रुद्राक्षोंकी मालाओंको पहरे पीली जटाओंको धारे पार्वतीसे संयुक्त, ताम्रमूर्ति सफेद रंगके बैलसे संयुक्त, विराजमान चन्द्रशेखर ॥ १२ ॥ और पार्वतीजीके दोनों स्तनोंके बीचमें मिलापकर अधरामृतको पीवन करनेवाले गंगाजलसे क्षालित शिर और पार्वतीजीकी ओर वारंवार देखते हुए ॥ १३ ॥

भस्म आदि मुखपर लेप किये और महासर्पोंसे जटाओंको बांधे, नरके शिरोंकी माला धारे, शिवजी केशवके देखनेको आये ॥ १४ ॥ जिसको सांख्यवादी अन्य महापुरुष पुरातन कहते हैं और चित्तके उत्तम चौवीस तत्त्वगुण हैं, उस देवके संपूर्ण गुण कौन जान सकता है ॥ १५ ॥ और जिसको एक पुरातन पुरुष कणाद अज महेश्वर कहते हैं, जिसने दक्षके यज्ञका नाश कर देवता और दैत्योंको मारा जो सनातन हैं ॥ १६ ॥ भूतोंके तत्त्वोंको जाननेवाला भूतेश, भूतभावन, वामदेव, विरूपाक्ष जिसको तत्त्व जाननेवाले कहते हैं ॥ १७ ॥ महादेव, सहस्राक्ष, कालमूर्ति, चतुर्भुज, रुद्र, रोदन, विश्वेश्वर, शिव

भस्माङ्गरागैरनुलेपिताननो महोरगैर्बद्धजटः सनातनः ॥शिरः कपालैः परिशोभितस्तदा द्रष्टुं हरिं केशवमभ्ययाच्छिवः ॥ १४॥ यमाहुरग्र्यं पुरुषं महान्तं पुरातनं सांख्यनिबद्धदृष्टयः॥ यस्यापि देवस्य गुणान्समग्रांस्तत्त्वांश्चतुर्विंशतिमाहुरेके ॥ १५ ॥ यमाहुरेकं पुरुषं पुरातनं कणादनामानमजं महेश्वरम् ॥ दक्षस्य यज्ञं विनिहत्य यो वै विनाश्य देवानसुरान् सनातनः ॥१६॥ यं विदुर्भूततत्त्वज्ञं भूतेशं भूतभावनम् ॥ वामदेवं विरूपाक्षमाहुस्तत्त्वविदो जनाः ॥१७॥ महादेवं सहस्राक्षं कालमूर्तिं चतुर्भुजम् ॥ रुद्रं रोदननामानमाहुर्विश्वेश्वरं शिवम् ॥१८॥ अप्रमेयमनाधारमाहुर्माहेश्वरा जनाः॥ नग्नं नग्नपरीतं तु नागिनं त्वग्निवर्चसम्॥१९॥ आहुर्विश्वेश्वरंशान्तं शिवमादिं सनातनम् ॥ तस्य मूर्तिरिमाः सर्वा धराद्याः सकला नृप ॥२०॥ भूमिरापोनलो वायुः खं सूर्यश्च तथा शशी ॥ अग्निश्च यजमानश्च प्रकृतिश्चेत्यमष्टधा ॥२१॥ महादेवो महायोगी गिरिशो नीललोहितः॥ आदिकर्त्ता महाभर्त्ता शूलपाणिरुमापतिः॥ द्रष्टुं विश्वेश्वरं विष्णुं भूतसंघैः समाययौ ॥ २२ ॥ इति श्रीम० खिलेषु हरिवंशे भवि० कैलासयात्रायां शिवागमनकथनं नाम पञ्चाशीतिमोऽध्यायः ॥ ८५ ॥

नाम जिनको कहते हैं ॥ १८ ॥ सब महात्मा जिनको अप्रमेय अनाधार नग्न नागोपवीत, नागी, अग्निवर्चा ॥ १९ ॥ शांत, विश्वेश्वर, शिव, आदि सनातन कहते हैं. हे जनार्दन ! जिसकी मूर्ति यह पृथ्वी आदि सब पदार्थ हैं ॥ २० ॥ अर्थात् पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु, आकाश, सूर्य, चन्द्रमा, यजमान यह उसकी आठ प्रकृति हैं ॥ २१ ॥ महादेव महायोगी, गिरीश, नीललोहित, आदिकर्त्ता, महीकर्त्ता, शूलपाणि, उमापति महादेव भूतगणोंके संग विश्वके ईश्वररूप विष्णुके देखनेको आये ॥ २२ ॥ इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे भविष्यपर्वणि भाषायां कैलासयात्रायां शिवागमनकथनं नाम

पंचाशीतितमोऽध्यायः ॥ ८५ ॥ वैशंपायनजी बोले कि; उन महादेवजीके अगाडी सहस्रों भूतोंके समूह और घंटाकर्ण, विरूपाक्ष, कुंडधार, कुमुद्वह ॥ १ ॥ दीर्घरोमा, दीर्घभुज, दीर्घबाहु, निरंजन, उरुवक्र, शतमुख, शतग्रीव शतोदर ॥ २ ॥ कुंडोदर, महाग्रीव, स्थूलजिह्व, द्विबाहुक, पार्श्ववक्र, सिंहमुख, उन्नतांस, महाहनु ॥ ३ ॥ त्रिबाहु, पंचबाहु, व्याघ्रवक्र, शतानन इत्यादि बहुतसे दीर्घमुखोंवाले और दीर्घभुजोंवाले और दीर्घनेत्रोंवाले ॥ ४ ॥ नृत्य करते हुए हँसते हुए परस्पर स्फोटन करते हुए और कितनेही घोररूप कितनेही विकृतमुखोंवाले ॥ ५ ॥ प्रेतोंके भक्षण करनेवाले और प्रेतोंको वहानेवाले, मांस और रुधिरका भोजन करनेवाले बहुतसे मुरदोंको भक्षण करनेवाले ॥ ६ ॥ घोररूप लोहूको पीनेवाले और बहुतसे मुरदोंको खण्डित करनेवाले, कराल, विस्तृत, लम्बी नाडी और नसोंसे व्याप्त ॥ ७ ॥ नानाप्रकारकी आकृतिवाले वीर शूलके अग्रभागमें मनुष्योंको लटकाये और शिरोंकी मालाको पहरनेवाले, कितनेही आंत्रपाशको धारण करनेवाले ॥ ८ ॥ और डिंडिम तथा अट्टहासोंसे इस पृथ्वीको शब्दित करते, कपालोंको धारण करनेवाले भय देनेवाले; जटाधारी, मुंड मुंडाये हुए ॥ ९ ॥ बहुत प्रकारके घोरमुख पिशाच महादेवजीके अगाडी स्थित हो रहे हैं और बहुतसे मुनिजन परमेश्वरका ध्यान कर व्रती हुए ॥ १० ॥

वैशम्पायन उवाच ॥ तस्याग्रे समपद्यन्त भूतसंघाः सहस्रशः ॥ घण्टाकर्णो विरूपाक्षः कुण्डधारः कुमुद्वहः ॥ १ ॥ दीर्घरोमा दीर्घभुजो दीर्घबाहुर्निरञ्जनः ॥ उरुनेत्रः शतमुखः शतग्रीवः शतोदरः ॥ २ ॥ कुण्डोदरो महाग्रीवः स्थूलजिह्वो द्विबाहुकः ॥ पार्श्ववक्त्रः सिंहमुख उन्नतांसो महाहनुः ॥ ३ ॥ त्रिबाहुः पञ्चबाहुश्च व्याघ्रवक्त्रः सितानन: ॥ एते चान्ये च बहवो दीर्घास्या दीर्घलोचनाः ॥४॥ नृत्यन्तः प्रहसन्तश्च स्फोटयन्तः परस्परम् ॥ तथान्ये घोररूपाश्च तथान्ये विकृताननाः ॥ ५ ॥ प्रेतभक्षाः प्रेतवाहा मांसशोणितभोजनाः ॥ शवानि सुबहून्याशु भक्षयन्तस्ततस्ततः ॥ ६ ॥ पिबन्तो रुधिरं घोरं खण्डयन्तः शवान्बहून् ॥ कराला वितता दीर्घा धमनिस्नायुसंतताः ॥ ७ ॥ नानाविधाः सुवीराश्च शूलाग्रप्रोतमानुषाः ॥ शिरोमालावृताः केचिदान्त्रपाशावपाशिताः ॥ ८ ॥ डिण्डिमैरट्टहासैश्च नादयन्तो वसुन्धराम् ॥ कपालिनो भैरवाश्च जटिला मुण्डिनस्तथा ॥ ९ ॥ एवं बहुविधा घोराः पिशाचा विकृताननाः ॥ तथान्ये मुनिवीराश्च ध्यायन्तः परमेश्वरम् ॥ १० ॥

देव और वेदके अंगोंका विधिपूर्वक पठन करनेवाले कोई कुंडिका और कोई कुशाके चीरोंको धारण किये ॥ ११ ॥ कोई कौपीनमात्र वस्त्रोंको धारण किये और कितनेही काषाय वस्त्रोंको धारण किये. कितनेही भक्तिसे माहेश्वरके स्तोत्रोंसे महादेवजीकी स्तुति करते मुनिजनोंके गण और महादेवजीके गण और सिद्ध अपनी अपनी स्त्रियोंको लिये ॥ १२ ॥ यह और वे मुनिगण दूसरी ओर दूसरे गण अपनी स्त्रियोंके साथ ॥ १३ ॥ गंधर्व तथा नृत्यकर्म और गायनकर्ममें चतुर कन्या, विद्याधर यह सब महादेवजीकी स्तुति गान कर रहे हैं ॥ १४ ॥ और गमन करते हुए महादेवजीके आगे अप्सरा-

पठन्तो वेदवाक्यानि सांगानि विविधानि च ॥ कुण्डिकास्थकराः केचित्केचित्कुशविचारिणः ॥ ११ ॥ कौपीनवसनाः केचित्के-चित्काषायसंवृताः ॥ स्तुवन्तः शंकरं भक्त्या स्तोत्रैर्माहेश्वरैस्तथा ॥ १२॥ एकत्र ते मुनिगणा अपरत्र गणास्तथा ॥ अन्यत्र सिद्ध-गन्धर्वाः प्रियाभिः सह संगताः ॥ १३ ॥ नृत्यान्ति नृत्यकुशला गायन्ति स्म च कन्यकाः ॥ विद्याधरास्तथान्यत्र स्तुवन्तः शंकरं शिवम् ॥ १४ ॥ ननृतुस्तस्य पुरतो गच्छन्तोऽप्सरसां गणाः ॥ एवमेतैर्महाघोरैः पिशाचैर्भूतकिन्नरैः ॥१५॥ मुनिभिश्चैव प्रमथैः समं शर्वः समाययौ ॥ यत्र विश्वेश्वरो विष्णुस्तपस्तेपे सुदारुणम् ॥१६॥ यत्र ते लोकपालाश्च तिष्ठिन्ति स्म दिदृक्षया ॥ उमया लोकभा-विन्या गंगया चन्द्रशेखरः ॥ १७ ॥ स सर्वलोकप्रभवो भवो विभुर्जटी च साक्षात्प्रणवात्मकः कृती ॥ द्रष्टुं हरिं विष्णुमुदारविक्रमो ययौ यथेष्टं पिशिताशनैर्वृत्तः ॥ १८ ॥ इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे भविष्यपर्वणि कैलासयात्रायां महादेवागमने षडशी-तितमोऽध्यायः ॥ ८६ ॥ वैशम्पायन उवाच ॥ एवं बहुविधैर्भूतैः पिशाचैरुरगैः सह ॥ आगत्य भगवान्रुद्रः शंकरो वृषवाहनः ॥ १ ॥

ओंके गण नाच रहे हैं इस प्रकार महाघोर पिशाच भूत, किन्नर ॥ १५ ॥ मुनि, प्रमथगण, आदिके सहित शिवजी, जहां विष्णु दारुण तप करते थे, वहां आये ॥ १६ ॥ जहां वे लोकपाल महादेवजीके देखनेकी इच्छासे स्थित थे वहां लोकभाविनी उमा और गंगाको साथ लिये ॥ १७ ॥ सब लोकके उत्पन्न करता विभु जटाधारी साक्षात् ओंकारात्मक ज्ञानी उदार विक्रम पिशाचादिके सहित विष्णुके देखनेको आये ॥ १८ ॥ इति श्रीमहा-भारते खिलेषु हरिवंशे भविष्यपर्वणि भाषायां कैलासयात्रायां महादेवागमने षडशीतितमोऽध्यायः ॥ ८६ ॥ वैशंपायन बोले; इस प्रकार बहुतसे भूत

पिशाच व सर्पोंको संग लिये बैलपर चढे भगवान् महादेवजीने आनकर ॥ १ ॥ उत्तम तप तपते देवताओंके पति पवित्र हव्यका अग्निमें हवन करते ॥ २ ॥ और गरुडजीसे हवनके काष्ठको इकट्ठे कराये हुए, जटा और पुराने वस्त्रको धारण किये चक्रसे पुष्पोंको इकट्ठा कराते, खड्गसे कुशाको संग्रह कराते ॥ ३ ॥ गदासे समाचारको कराते हुए और इन्द्र आदिक देवताओंके समूहसे और मुनिगणोंसे युक्त ॥ ४ ॥ सब जीवोंको अचिन्त्य, कुछेक ध्यान करते हुए विष्णुको वृषभपर स्थित भूतभावन भगवान् शिवने देखा ॥ ५ ॥ तब प्रसन्न हुए प्रसन्नात्मा, मस्तकमें तीसरे नेत्रवाले उमापति प्राप्त हुए, तब, भूत, पिशाच, राक्षस, गुह्यक ॥ ६ ॥ ब्राह्मणोंमें श्रेष्ठ मुनि यह सब जयशब्द करने लगे. हे देव ! हे जगन्नाथ ! हे देव रुद्र ! हे

ददर्श विष्णुं देवेशं तपन्तं तप उत्तमम् ॥ जुह्वानमग्नौ विधिवद्द्रव्यैर्मेध्यैर्जगत्पतिम् ॥ २ ॥ गरुडाहृतकाष्ठं तु जटिलं चीरवाससम् ॥
चक्रेणानीतकुसुमं खड्गानीतकुशं तथा ॥ ३ ॥ गदाकृतसमाचारं देवदेवं जनार्दनम् ॥ इन्द्राद्यैर्देवसंघैश्च वृतं मुनिगणैः सह ॥ ४ ॥
अचिन्त्यं सर्वभूतानां ध्यायन्तं किमपि प्रभुम् ॥ अवरुह्य वृषाच्छर्वो भगवान् भूतभावनः ॥ ५ ॥ ततः प्रीतः प्रसन्नात्मा ललाटाक्ष
उमापतिः ॥ ततो भूतपिशाचाश्च राक्षसा गुह्यकास्तथा ॥ ६ ॥ मुनयो विप्रवर्याश्च जयशब्दं प्रचक्रिरे ॥ जय देव जगन्नाथ जय रुद्र
जनार्दन ॥ ७ ॥ जय विष्णो हृषीकेश नारायण परायण ॥ जय रुद्र पुराणात्मन् जय देव हरेश्वर ॥ ८ ॥ आदिदेव जगन्नाथ जय
शंकर भावन ॥ जय कौस्तुभदीप्तांग जय भस्मविराजित ॥ ९ ॥ जय चक्रगदापाणे जय शूलिंस्त्रिलोचन ॥ जय मौक्तिकदीप्तांग
जय नागविभूषण ॥ १० ॥ इति ते मुनयः सर्वे प्रणामं चक्रिरे हरिम् ॥ तत उत्थाय भगवान् दृष्ट्वा देवमवस्थितम् ॥ ११ ॥

जनार्दन ! आपकी जय हो ॥ ७ ॥ हे विष्णो ! हे इन्द्रियोंके ईश ! हे पुण्यात्मन् ! हे हरेश्वर ! आपकी जय हो ॥ ८ ॥ हे आदिदेव जगन्नाथ ! हे शंकर भावन ! हे कौस्तुभमणिको धारण करनेवाले ! हे भस्मविराजित ! आपकी जय हो ॥ ९ ॥ चक्र गदा हाथमें लिये आपकी जय हो त्रिशूलधारी त्रिलोचन आपकी जय हो. मोतियोंसे प्रकाशित अंगवाले आपकी जय हो नागोंके आभूषण धारण करनेवाले देव तुम्हारी जय हो ॥ १० ॥ इस प्रकार वह सब मुनि हरिभगवान्की स्तुति करने लगे (इन विशेषणोंसे यहां अभेद दिखाया है) ऐसे स्तुति श्रवण कर विष्णु भगवान् उठकर स्थित हुए

भगवान् ॥ ११ ॥ वृषध्वजावाले, विरूपाक्ष, शंकर नीले व रक्त वर्णवाले शिवजीको देख प्रसन्न हो स्तुति करने लगे ॥ १२ ॥ श्रीभगवान् बोले, हे शितिकंठ,! हे नीलग्रीव !हे वेधा ! हे शोचिष ! हे उपवासिन् ! तुमको नमस्कार है ॥ १३ ॥ हे मीढुष ! हे गदिन् ! हे गदाधारी हर ! तुमको नमस्कार है. हे विश्वतनु ! हे वृषरूपी ! आपको नमस्कार है ॥ १४ ॥ हे अमूर्त्तदेव ! हे पिनाकिन् कुब्ज कूप शिव ! शिवरूपिन् ! आपके अर्थ नमस्कार है ॥ १५ ॥ हे तुष्ट्य ! हे तुंड ! हे तुटितुंड ! आपके अर्थ नमस्कार है, और शांतरूपी शिव गिरीश आपके अर्थ नमस्कार है, और पर्वतमें

वृषध्वजं विरूपाक्षं शंकरं नीललोहितम् ॥ ततो हृष्टमना विष्णुस्तुष्टाव हरमीश्वरम् ॥१२॥ श्रीभगवानुवाच ॥ नमस्ते शितिकण्ठाय नीलग्रीवाय वेधसे ॥ नमस्ते शोचिषे अस्तु नमस्ते उपवासिने ॥ १३ ॥ नमस्ते मीढुषे अस्तु नमस्ते गादिने हर ॥ नमस्ते विश्वतनवे वृषाय वृषरूपिणे॥१४॥ अमूर्त्ताय च देवाय नमस्तेऽस्तु पिनाकिने ॥ नमः कुब्जाय कूपाय शिवाय शिवरूपिणे॥१५॥ नमस्तुष्ट्याय तुण्डाय नमस्तुटितुटाय च ॥ नमः शिवाय शान्ताय गिरिशाय च ते नमः ॥ १६ ॥ नमो हराय विप्राय नमो हरिहराय च ॥ नमोऽघोराय घोराय घोरघोरप्रियाय च ॥ १७ ॥ नमोऽघण्टाय घण्टाय नमो घटिघटाय च ॥ नमः शिवाय शान्ताय गिरिशाय च ते नमः ॥ १८ ॥ नमो विरूपरूपाय पुराय पुरहारिणे ॥ नम आद्याय बीजाय शुचयेऽष्टस्वरूपिणे ॥ १९ ॥ नमः पिनाकहस्ताय नमः शूलासिधारिणे ॥ नमः खट्वाङ्गहस्ताय नमस्ते कृत्तिवाससे ॥ २० ॥

शयन करनेवाले आपके अर्थ नमस्कार है ॥ १६ ॥ हे हर ! हे विप्र ! हे हरिहर! हे घोर ! हे अघोर ! हे घोरघोरप्रिय ! तुम्हारे अर्थ नमस्कार है ॥ १७ ॥ घंटा अघंटारूप, घटिघटरूप तुम्हारे अर्थ नमस्कार है, शांतरूप सर्वरूप भूतोंके अधिपति आपको नमस्कार है ॥ १८ ॥ विरूपवान् रूपवान्, पुररूप, पुरनाशक, आद्य, विप्र, शुचि, अष्टस्वरूपी आपको नमस्कार है ॥ १९ ॥ पिनाक धनुष और शूल खड्गको धारण करनेवाले, और खट्वाके अंग अर्थात् पाया आदिको हाथमें धारण करनेवाले, और चर्मके वस्त्रोंको धारण करनेवाले तुम्हारे अर्थ नमस्कार है ॥ २० ॥

हे देव देव आकाशमूर्ति ! हे हरिरूप ! हे हर तीक्ष्णतेजको धारण करनेवाले ! आपके अर्थ नमस्कार है ॥ २१ ॥ हे भक्तप्रिय ! भक्तोंको वर देनेवाले ! भक्त आकाशमूर्ति देव ! हे अभ्रमूर्ति जगत्की मूर्तिको धारण करनेवाले ! तुम्हारे अर्थ नमस्कार है ॥ २२ ॥ हे चंद्रदेव ! हे सूर्यदेव ! हे प्रधानदेव ! हे भूतपति ! आपके अर्थ नमस्कार है ॥ २३ ॥ हे कराल ! हे मुंडरूप ! हे विकृतजटाको धारण करनेवाले ! हे अज ! हे भूतभावन ! तुम्हारे अर्थ नमस्कार है ॥ २४ ॥ हे हरिकेश ! हे पिंगलरूप ! हे अभीषु अर्थात् अश्वादिकोंकी रश्मिको हाथमें धारण करनेवाले हर ! तुम्हारे अर्थ नमस्कार है

नमस्ते देवदेवाय नम आकाशमूर्त्तये ॥ हराय हरिरूपाय नमस्ते तिग्मतेजसे ॥ २१ ॥ भक्तप्रियाय भक्ताय भक्तानां वरदायिने ॥ नमोऽभ्रमूर्त्तये देव जगन्मूर्तिधराय च ॥२२॥ नमश्चन्द्राय देवाय सूर्याय च नमो नमः॥ नमः प्रधानदेवाय भूतानां पतये नमः॥२३॥ करालाय च मुण्डाय विकृताय कपर्दिने ॥ अजाय च नमस्तुभ्यं भूतभावनभावन ॥ २४ ॥ नमोऽस्तु हरिकेशाय पिङ्गलाय नमो नमः ॥ नमस्तेऽभीषुहस्ताय भीरुभीरुहराय च ॥ २५ ॥ हराय भीतिरूपाय घोराणां भीतिदायिने ॥ नमो दक्षमखघ्नाय भगनेत्रापहारिणे ॥ २६ ॥ उमापते नमस्तुभ्यं कैलासनिलयाय च ॥ आदिदेवाय देवाय भवाय भवरूपिणे ॥ २७ ॥ नमः कपालहस्ताय नमोऽजमथनाय च ॥ त्र्यम्बकाय नमस्तुभ्यं त्र्यक्षाय च शिवाय च ॥ २८ ॥ वरदाय वरेण्याय नमस्ते चन्द्रशेखर ॥ नम इध्माय हविषे ध्रुवाय च कृशाय च ॥ २९ ॥ नमस्ते शक्तियुक्ताय नागपाशप्रियाय च ॥ विरूपाय सुरूपाय मद्यपानप्रियाय च ॥ ३० ॥

है ॥ २५ ॥ भयंकर रूपको धारण करनेवाले हर घोरपुरुषोंको भय देनेवाले और दक्ष प्रजापतिके यज्ञनाशक, भगके नेत्रोंके हरनेवाले तुम्हारे लिये नमस्कार है ॥ २६ ॥ हे उमापति ! तुम्हारे अर्थ नमस्कार है. और कैलासमें स्थान करनेवाले आदिदेव और भवरूपी तुम्हारे लिये नमस्कार है ॥ २७ ॥ कपाल हाथमें रखनेवाले त्र्यंबक त्र्यक्ष शिव तुम्हारे लिये नमस्कार है ॥ २८ ॥ वर देनेवाले, वरेण्य, चन्द्रशेखर, इच्छारूप, हविरूप, ध्रुव, कृष्ण तुम्हारे अर्थ नमस्कार है ॥ २९ ॥ शक्तियुक्तके अर्थ नमस्कार है, नागफांसीके प्रिय विरूप सुरूप, मद्यपानप्रिय तुम्हारे अर्थ नमस्कार है ॥ ३० ॥

नित्य स्मशानमें प्रीति करनेवाले और जयशब्दके प्रिय, स्वरप्रिय वामनरूप स्वर स्वररूपी आपके अर्थ नमस्कार है ॥ ३१ ॥ भद्रप्रिय, भद्र, भद्ररूपको धारण करनेवाले तुम्हारे अर्थ नमस्कार है, और विरूप, स्वरूप, महाघोर ॥ ३२ ॥ घट, घटभूषी, घंटेका आभूषण करनेवाले तीव्र तीव्ररूप और तीव्रप्रिय तुम्हारे अर्थ नमस्कार है ॥ ३३ ॥ और नग्न, नग्नरूप, नग्नरूपप्रिय, भूतवास, आपको नमस्कार है; सब आवासरूप आपको नमस्कार है ॥ ३४ ॥ सर्वात्मा भूतिदायक, आपके अर्थ नमस्कार है और वामदेव महादेव आपके अर्थ नमस्कार है ॥ ३५ ॥ हे स्तुतिमतांवर ! तुम्हारी स्तुति

श्मशानरतये नित्यं जयशब्दप्रियाय च ॥ स्वरप्रियाय सर्वाय स्वराय स्वररूपिणे ॥ ३१ ॥ भद्रप्रियाय भद्राय भद्ररूपधराय च ॥ विरूपाय सुरूपाय महाघोराय ते नमः ॥ ३२ ॥ घण्टाय घण्टभूषाय घण्टभूषणभूषिणे ॥ तीव्राय तीव्ररूपाय तीव्ररूपप्रियाय च ॥ ३३ ॥ नग्नाय नग्नरूपाय नग्नरूपप्रियाय च ॥ भूतवास नमस्तुभ्यं सर्वावास नमो नमः ॥ ३४ ॥ नमः सर्वात्मने तुभ्यं नमस्ते भूतिदायक ॥ नमस्ते वामदेवाय महादेवाय ते नमः ॥ ३५ ॥ का नु वाक् स्तुतिरूपा ते को नु स्तोतुं प्रशक्नुयात् ॥ कस्य वा स्फुरते जिह्वा स्तुतौ स्तुतिमतां वर ॥ ३६ ॥ क्षमस्व भगवन्देव भक्तोऽहं त्राहि मां हर ॥ सर्वात्मन् सर्वभूतेश त्राहि मां सततं हर ॥ ३७ ॥ रक्ष देव जगन्नाथ लोकान् सर्वात्मना हर ॥ त्राहि भक्तान् सदा देव भक्तप्रिय सदा हर ॥ ३८ ॥ इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे भविष्यपर्वणि कैलासयात्रायां विष्णुकृतेश्वरस्तुतिर्नाम सप्ताशीतितमोऽध्यायः ॥ ८७ ॥ वैशम्पायन उवाच ॥ ततो वृषध्वजो देवः शूली साक्षादुमापतिः ॥ करं करेण संस्पृश्य विष्णोश्चक्रधरस्य ह ॥ १ ॥

करने योग्य कौन वाणी है ? और कौन तुम्हारी स्तुति करनेको समर्थ है. और तुम्हारी स्तुति करनेमें किसकी जिह्वा फुरती है ॥ ३६ ॥ हे हर ! क्षमा करो, मैं तुम्हारा भक्त हूं, मेरी रक्षा करो. हे सर्वात्मन् ! हे सर्वभूतेश ! मेरी सदा रक्षा करो ॥ ३७ ॥ हे देव ! हे जगन्नाथ ! तुम सर्वात्मा होकर लोकोंकी रक्षा करो. हे महादेव ! हे भक्तप्रिय ! तुम निरंतर भक्तोंकी रक्षा करो ॥ ३८ ॥ इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे भविष्यपर्वणि भाषायां कैलासयात्रायां ईश्वरस्तुतौ सप्ताशीतितमोऽध्यायः ॥ ८७ ॥ वैशंपायनजी बोले, तब वह वृषध्वज शूली सत्स्वरूप

उमापति शिव चक्रको धारण करनेवाले विष्णु भगवान्‌के हाथको हाथसे स्पर्श करके ॥ १ ॥ भगवान् रुद्र सब देवता और भावितात्मावाले मुनियोंके सुनते हुए गरुडध्वज केशवसे कहने लगे ॥ २ ॥ हे देवदेव ! हे चक्रपाणे ! हे जनार्दन ! यह क्या है किस कारण यह तपश्चर्या तुम करते हो ! और हे विभो ! तुम्हारी क्या प्रार्थना है ॥ ३ ॥ तुम आप विष्णु हो. हे हरे ! आपही तप हो हे देव ! हे जनार्दन ! तुम्हारी यह तपश्चर्या पुत्रके निमित्त है ॥ ४ ॥ सो हे जगत्पते ! मैंने पहले तुमको पुत्र दिया है. हे कारणात्मक ! इसमें कारण सुनो ॥ ५ ॥ हे हरे ! प्रथम सतयुगमें मैं किसी समय

प्रोवाच भगवान्रुद्रः केशवं गरुडध्वजम् ॥ शृण्वतां सर्वदेवानां मुनीनां भावितात्मनाम् ॥ २ ॥ किमिदं देवदेवेश चक्रपाणे जनार्दन ॥ तपश्चर्यां किमर्थं ते प्रार्थना तव कां विभो ॥ ३ ॥ स्वयं विष्णुर्भवान्नित्यस्तपस्त्वं तपसा हरे ॥ पुत्रार्थं यदि ते देव तपश्चर्यां जनार्दन ॥ ४ ॥ पुत्रो दत्तो मया देव पूर्वमेव जगत्पते ॥ शृणु तत्रापि भगवन्कारणं कारणात्मक ॥ ५ ॥ तपश्चर्तुं प्रवृत्तोऽहं कुतश्चित्कारणाद्धरे ॥ वर्षायुतं महाघोरं पुरा कृतयुगे तदा ॥ ६ ॥ भवानी तत्र मे देव परिचर्तुं तदाभवत् ॥ पित्रा नियुक्ता देवेश उमेषा वरवर्णिनी ॥ ७ ॥ भीत इन्द्रस्तदा देव मारं मां प्रेषयत्तदा ॥ मधुना सह संयुक्तो मारो मामागतस्तदा ॥ ८ ॥ लक्ष्यं मामकरोत्तत्र बाणस्यं प्रेषितस्य ह ॥ एषा मां सेवते तत्र दानात्पुष्पादिनां हरे ॥ ९ ॥ ततः क्रुद्धोऽहमभवं दृष्ट्वा मारं तथाविधम् ॥ क्रुद्ध्यतो मम देवेश नेत्रादग्निः पपात ह ॥ १० ॥ सोऽयमग्निस्तदा मारं भस्मसात्कृतवान् हरे ॥ अचिन्तयं तदा विष्णो शक्रस्यैतच्चिकीर्षितम् ॥ ११ ॥

दशसहस्र वर्षतक महाघोर तप करनेको प्रवृत्त हुआ ॥ ६ ॥ और हे देव ! पिता हिमाचलसे दी हुई वह वरवर्णिनी उमा पार्वती मेरी परिचर्या करने लगी ॥ ७ ॥ हे देव ! तब भयभीत हुए इन्द्रने मेरे प्रति कामदेवको प्रेरण किया फिर वह कामदेव पुष्परसोंसे संयुक्त हुआ मेरे सन्मुख आया ॥ ८ ॥ फिर अपने पुष्परूपी बाणोंसे लक्ष्य कर मुझको मारने लगा तब यह पार्वती मुझको पुष्पादिकोंसे सेवने लगी ॥ ९ ॥ तब मैं तिस प्रकार विधिवाले कामदेवको देख क्रोधित हुआ तो मेरे क्रोध करते हुए नेत्रोंसे अग्नि निकली ॥ १० ॥ हे हरे ! फिर उस अग्निने कामदेवको भस्म कर दिया. हे विष्णो !

पीछे वह इन्द्रका कर्तव्य मुझको विदित हुआ ॥ ११ ॥ हे देवेश ! तब मुझको दया आने लगी और हे विष्णु ! फिर मैंने प्रसन्न हो ब्रह्माको प्रेरित
किया ॥ १२ ॥ हे जगत्पते ! तब मैंने पुरुषरूप करके तुम्हारा बडा पुत्र उसे विधान किया है और वह प्रद्युम्ननामसे विख्यात है ॥ १३ ॥ सो हे
देव ! उसको तुम कामदेव जानो. इसमें संदेह नहीं. इस प्रकार वह शिवजी कहकर फिर अपने देहको याथात्म्य दिखानेकी इच्छा करते हुए याथात्म्य ॥ १४ ॥
सुननेकी इच्छावाले मुनियोंके मध्यमें विष्णुको उद्देश लेकर हाथोंमें अंजली बांधकर ॥ १५ ॥ पार्वतीके संग शिवजी यथार्थ आत्माके वर्णन करनेकी

ततः प्रभृति देवेश दया तं प्रति वर्तते ॥ ब्रह्मणा च नियुक्तोऽस्मि प्रीतस्तत्र जनार्दन ॥ १२ ॥ नियुक्तः पुत्ररूपेण स ते देव जगत्पते॥
ज्येष्ठस्तव सुतो देव प्रद्युम्नेत्यभिविश्रुतः ॥ १३ ॥ स्मरं तं विद्धि देवेश नात्र कार्या विचारणा ॥ इत्युक्त्वा पुनराहेदं याथात्म्यं
दर्शयन्निव ॥ १४ ॥ मुनीनां श्रोतुकामानां याथात्म्यं तत्र सत्तमः ॥ अञ्जलिं संपुटं कृत्वा विष्णुमुद्दिश्य शंकरः ॥ १५ ॥ उमया
सार्द्धमीशानो याथात्म्यं वक्तुमैहत ॥ हरे कुर्वंति तत्रैवमञ्जलिं कुरुसत्तम ॥ १६ ॥ मुनयो देवगन्धर्वाः सिद्धाश्च सहकिन्नराः ॥ अञ्जलिं
चक्रिरे विष्णो देवदेवेश्वरे हरौ ॥ १७ ॥ महेश्वर उवाच ॥ यत्तत्कारणमाहुस्तत्सांख्याः प्रकृतिसंज्ञकम् ॥ ततो महान् समुत्पन्नः प्रकृति-
र्यस्य कारणम् ॥ १८ ॥ त्रिधा भूतं जगद्योनिं प्रधानं कारणात्मकम् ॥ सत्त्वं रजस्तमो विष्णो जगदण्डं जनार्दन ॥ १९ ॥ तस्य
कारणमाहुस्त्वां सांख्यप्रकृतिसंज्ञकम् ॥ तद्रूपेण भवान्विष्णो परिणम्याधितिष्ठति ॥ २० ॥

इच्छा करने लगे. हे कुरुश्रेष्ठ ! उस समय नारायणको हाथ जोडकर ॥ १६ ॥ मुनि देव गंधर्व सिद्ध किन्नर यह सब देवदेवेश्वर विष्णुकी अंजली
बांधने लगे ॥ १७ ॥ शिवजी बोले; जो कुछ प्रकृतिसंज्ञक कारण सांख्यके जाननेवाले कहते हैं. उससे महान् उत्पन्न हुआ जो प्रकृतिका कारण
है ॥ १८ ॥ तीन प्रकार जगत्की योनि प्रधान कारणात्मक कहते हैं और सत्त्वगुण, रजोगुण, तमोगुणको इस जगत्रूपी अण्डका कारण कहते हैं.
हे जनार्दन ! ॥ १९ ॥ इन सबोंके कारण सांख्यके जाननेवाले तुम्हींको कहते हैं तिसी रूपसे तुम विष्णु परिणामके अधिष्ठाता हो ॥ २० ॥

तिससे महाघोर अधिष्ठातासे अहंकार उत्पन्न हुआ सो हे जगन्नाथ ! तुम आदिमें जगत्के परिणाम हो ॥ २१ ॥ हे प्रभो ! अहंकारसे महान् कारण उत्पन्न हुए हैं और पश्चात् तन्मात्रा हुई हैं और पंचतत्त्व हुए हैं ॥ २२ ॥ सो हे जगत्पते ! तिन पांच तत्त्वोंको तुम्हाराही रूप कहते हैं पृथ्वी, वायु, आकाश, जल, अग्नि ये पांच तत्त्व हैं ॥ २३ ॥ चक्षु, घ्राण, स्पर्श, जिह्वा, श्रोत्र यह पांच इन्द्रियें हैं और हे देव ! इनका प्रेरनेवाला छठा मन है ॥ २४ ॥ हे जनार्दन ! वाक् आदिक अन्य कर्मेन्द्रियें हैं, उन सबोंको नियंता आत्मा होकर नियन्ता तुमही हो ॥ २५ ॥ हे हरे ! अपने अपने

तस्मात्तु महतो घोरादहंकारो महानभूत् ॥ स त्वमादौ जगन्नाथ परिणामस्तथा हि सः ॥२१॥ अहंकारात्प्रभो देव कारणानि महान्ति च ॥ तन्मात्राणि तथा पञ्च भूतानि प्रभवन्त्युत ॥२२॥ तानि त्वामाहुरीशानं भूतानीह जगत्पते ॥ पृथिवी वायुराकाशमापो ज्योतिश्च पञ्चमम् ॥ २३ ॥ चक्षुर्घ्राणं तथा स्पर्शो रसनं श्रोत्रमेव च ॥ मनः षष्ठं तथा देव प्रेरकं तत्र तत्र ह ॥ २४ ॥ कर्मेन्द्रियाणि चान्यानि वागादीनि जनार्दन ॥ त्वमेव तानि सर्वाणि करोषि नियतात्मवान् ॥ २५ ॥ स्वेषु स्वेषु जगन्नाथ विषयेषु तथा हरे ॥ निवेशयसि देवेश योग्यामिन्द्रियपद्धतिम् ॥ २६ ॥ यदा त्वं रजसा युक्तस्तदा भूतानि सृष्टवान् ॥ यदा च सत्त्वयुक्तोऽसि तदा पाता जगत्त्रयम् ॥ २७ ॥ तदा त्वं तमसाक्रुष्टस्तदा संहरसे जगत् ॥ त्रिभिरेव गुणैर्युक्तः सृष्टिरक्षाविनाशने ॥ २८ ॥ वर्तसे विविधां भूतिमादाय नियतात्मवान् ॥ इन्द्रियाणीन्द्रियार्थेषु नियोजयसि माधव ॥ २९ ॥

विषयोंमें इन इन्द्रियोंको तुम प्रवेश करते हो ॥ २६ ॥ जब तुम रजोगुणसे युक्त होते हो. तब जीवोंको रचते हो और जब सत्त्वगुणसे युक्त होते हो, तब तीनों लोकोंकी पालना करते हो ॥ २७ ॥ और जब तमोगुणसे युक्त होते हो तब जगत्का संहार करते हो, इस प्रकार तीन गुणोंसे युक्त हुए तुम सृष्टिकी रक्षा और विनाश करते हो ॥ २८ ॥ हे माधव ! नियत आत्मावाले तुम तीन प्रकारके ऐश्वर्यको प्राप्त होकर इन्द्रियोंको इंद्रियके अर्थमें नियुक्त करते हो ॥ २९ ॥

हे जगद्गुरो ! प्राणियोंके उपभोगको अन्न रचकर फिर सब भोगोंवाले तुम सब जीवोंमें वर्त्तते हो ॥ ३० ॥ सृष्टिकालमें तुम ब्रह्मा हो और स्थितिकालमें विष्णु हो जाते हो और संहारसमय तुम रुद्र नामवाले हो. ऐसे तुम तीन धामवाले हो ॥ ३१ ॥ हे देव ! पृथ्वी, वायु, जल, अग्नि, आकाश, मन, बुद्धि, यह तुम्हारी प्रकृति मुझसे सर्वत्र भिन्न है ॥ ३२ ॥ सहस्र पुरुष अर्थात् ईश्वर और सहस्रनेत्र, सहस्रचरण, सहस्र प्रकार, सहस्र मुख, सहस्रात्मा और स्वर्गके पति हो ॥ ३३ ॥ तुम इस सब भूमिको व्याप्त होकर और सातों द्वीप व सागरोंमें व्याप्त हो और सूक्ष्मरूपसे सब जगह दशांगुल परिमित

प्राणिनामुपभोगार्थमन्तः स्थित्वा जगद्गुरो ॥ तस्मात्सर्वत्र भूतेषु वर्त्तसे सर्वभोगवान् ॥ ३० ॥ ब्रह्मा त्वं सृष्टिकाले तु स्थितौ
विष्णुरसि प्रभो ॥ संहारे रुद्रनामासि त्रिधामा त्वमसि प्रभो ॥ ३१ ॥ भूमिरापोऽनलो वायुः खं मनो बुद्धिरेव च ॥ एताः प्रकृतयो
देव भिन्नाः सर्वत्र ते हरे ॥ ३२ ॥ सहस्रशीर्षा पुरुषः सहस्राक्षः सहस्रपात् ॥ सहस्रधारः साहस्री सहस्रात्मा दिवस्पतिः ॥ ३३ ॥
भूमिं सर्वामिमां प्राप्य सप्तद्वीपां ससागराम् ॥ अणुः सर्वत्रगो भूत्वा अत्यतिष्ठद्दशाङ्गुलम् ॥ ३४ ॥ त्वमेवेदं जगत्सर्वं यद्भूतं
यद्भविष्यति ॥ त्वत्तो विराट् प्रादुरभूत्सम्राट् चैव जनार्दन ॥३५॥ तव वक्त्राज्जगन्नाथ ब्राह्मणो लोकरक्षकः ॥ प्रादुरासीत्पुराणात्मन्
षट्कर्मनिरतः सदा ॥ ३६ ॥ राजन्यस्तु तथा बाह्वोरासीत्संरक्षणे रतः ॥ ऊर्वोर्वैश्यस्तथा विष्णोः पादाच्छूद्र उदाहृतः ॥ ३७ ॥
एवं वर्णा जगन्नाथ तव देहाज्जनार्दन ॥ मनसस्तव देवेश चन्द्रमाः समपद्यत ॥ ३८ ॥ सुखकृत्सर्वभूतानां शीतांशुरमितप्रभः ॥
अक्ष्णोः सूर्यः समुत्पन्नः सर्वप्राणिविलोचनः ॥ ३९ ॥

देशमें स्थित हो ॥ ३४ ॥ जो जगत् हो गया है. और जो होगा, सो तुम्ही हो. हे जनार्दन ! तुमहीसे विराट्रूप उत्पन्न है. और तुमसेही सम्राट्रूप उत्पन्न है ॥ ३५ ॥ हे जगन्नाथ ! तुम्हारे मुखसे लोककी रक्षा करनेवाले षट्कर्मोंमें रत ब्राह्मण उत्पन्न हुए हैं ॥ ३६ ॥ और रक्षा करनेमें तत्पर क्षत्री तुम्हारी भुजाओंसे हुए हैं, और जांघोंसे वैश्य उत्पन्न हुए हैं. और पैरोंसे शूद्र हुए हैं ॥ ३७ ॥ हे जगन्नाथ देव ! इस प्रकार सब वर्ण तुम्हारे देहसे उत्पन्न हुए हैं और तुम्हारे मनसे चन्द्रमा हुआ है ॥ ३८ ॥ जो सब भूतोंको सुख करनेवाला, शीतल किरणोंसे युक्त अमृतके समान और जिनसे सब

प्राणियोंका नेत्ररूप सूर्य हुआ है, जिसकी कान्तिसे संपूर्ण जगत् प्रकाशमान हो रहा है ॥ ३९ ॥ और मुखसे अग्नि और प्राणसे वायु उत्पन्न हुई है ॥ ४० ॥ नाभिसे अन्तरिक्ष और शिरसे महाघोर स्वर्ग उत्पन्न हुआ है ॥ ४१ ॥ चरणोंसे पृथ्वी उत्पन्न हुई है. हे जगत्पते ! तुम्हारे कानोंसे दिशा हुई हैं. इस प्रकार सब जगत्को तुम रचकर फिर विसीमें तुम व्याप्त होकर अब स्थित हो रहे हो ॥ ४२ ॥ हे केशव ! तुम इन सब लोकोंको व्याप्त होकर स्थित हो रहे हो, क्योंकि इसी कारण तुम्हारा विष्णु नाम है कि विष्णु अर्थात् सब स्थानमें व्याप्त ॥ ४३ ॥ नार नाम, जलोंके समूहका है. और उनके अयन नाम प्रवृत्त करनेवाले तुमही हो, इस कारण तुमको नारायण कहते हैं ॥ ४४ ॥ और हे देव ! तुम जीवोंको हरते हो, इस कारण

यस्य भासा जगत्सर्वं भासते भानुमानसौ ॥ मुखादग्निश्च अग्निश्च प्राणाद्वायुरजायत ॥ ४० ॥ नाभेरभूदन्तरिक्षं तव देव जनार्दन ॥
द्यौरासीत्तु महाघोरा शिरसस्तव गोपते ॥ ४१ ॥ पद्भ्यां भूमिः समुत्पन्ना दिशः श्रोत्राज्जगत्पते ॥ एवं सृष्ट्वा जगत्सर्वं व्याप्य सर्वं
व्यवस्थितः ॥ ४२ ॥ व्याप्य सर्वानिमाँल्लोकान् स्थितः सर्वत्र केशव ॥ ततश्च विष्णुनामासि धातोर्व्याप्तेश्च दर्शनात् ॥ ४३ ॥
नारा आपः समाख्यातास्तासामयनमादितः ॥ यतस्त्वं भूतभव्येश तन्नारायणशब्दितः ॥ ४४ ॥ हरसि प्राणिनो देव ततो हरिरिति
स्मृतः ॥ शंकरोऽसि सदा देव ततः शंकरतां गतः ॥ ४५ ॥ बृहत्त्वाद्बृंहणत्वाच्च तस्माद्ब्रह्मेति शब्दितः ॥ मधुरिन्द्रियनामेति
ततो मधुनिषूदनः ॥ ४६ ॥ हृषीकाणीन्द्रियाण्याहुस्तेषामीशो यतो भवान् ॥ हृषीकेशस्ततो विष्णो ख्यातो देवेषु केशव ॥ ४७ ॥
क इति ब्रह्मणो नाम ईशोऽहं सर्वदेहिनाम् ॥ आवां तवाङ्गसंभूतो तस्मात्केशवनामवान् ॥ ४८ ॥

तुमको हरि कहते हैं, हे देव ! तुम सदा शं अर्थात् मंगल करते हो इस कारण तुमको शंकर कहते हैं ॥ ४५ ॥ ॥ बृहत् होनेसे और बृंहण अन्योंको बढानेवाले होनेसे तुम ब्रह्म कहलाते हो, और मधु इन्द्रियोंका नाम है, इस कारण तुम मधुनिषूदन कहाते हो ॥ ४६ ॥ हृषीक नाम इन्द्रियोंका है तिनके तुम ईश हो सो हे केशव ! इस कारण तुम देवताओंमें हृषीकेशनामसे विख्यात हो ॥ ४७ ॥ क यह ब्रह्मका नाम है मैं सर्वदेहधारियोंका ईश हूं हम दोनों तुम्हारे अंगसे प्रगट हैं इस कारण केशव नाम है ॥ ४८ ॥

मा नाम विद्याका है इसके आप ईश हो इस कारण माधव नाम है धव नाम स्वामीका है ॥ ४९ ॥ गो नाम वाणीका है उसको आप जानते हो इस कारण आप गोविन्द नामसे कहे जाते हो ॥ ५० ॥ त्रि नाम तीन वेदोंको जो यथार्थ नामसे आक्रमण करता है इस कारण आपको त्रिविक्रम कहते हैं ॥ ५१ ॥ अणु होनेसे आपको वामन कहते हैं मननसे मुनि और यमसे यति कहलाते हो ॥ ५२ ॥ जिस कारण कि आप तप करते हो इससे तपस्वी कहाते हैं आपमें सब प्राणी निवास करते हैं इस कारणसे आप भूतावास कहे जाते हो ॥ ५३ ॥ हे हरे ! आप सब भूतोंके ईश हो इससे ईश्वर

मा विद्या च हरे प्रोक्ता तस्या ईशो यतो भवान् ॥ तस्मान्माधवनामासि धवः स्वामीति शब्दितः ॥ ४९ ॥ गोरेषा तु यतो वाणी तां च वेद यतो भवान् ॥ गोविन्दस्तु ततो देव मुनिभिः कथ्यते भवान् ॥ ५० ॥ त्रिरित्येव त्रयो वेदाः कीर्तिता मुनिसत्तमैः ॥ क्रमते तांस्तथा सर्वांस्त्रिविक्रम इति श्रुतः॥५१॥ अणुर्वामननामासि यतस्त्वं वामनाख्यया ॥ मननान्मुनिरेवासि यमनाद्यतिरुच्यते ॥५२॥ तपश्चरसि यस्मात्त्वं तपस्वीति च शब्दितः ॥ वसन्ति त्वयि भूतानि भूतावासस्ततो हरे ॥ ५३ ॥ ईशस्त्वं सर्वभूतानामीश्वरोऽसि ततो हरे ॥ प्रणवः सर्ववेदानां गायत्री छन्दसां प्रभो ॥ ५४ ॥ अक्षराणामकारस्त्वं स्फोटस्त्वं वर्णसंश्रयः ॥ रुद्राणामहमेवासि वसूनां पावको भवान् ॥ ५५ ॥ अश्वत्थो वृक्षजातीनां ब्रह्मा लोकगुरुर्भवान् ॥ मेरुस्त्वं पर्वतेन्द्राणां देवर्षीणां च नारदः ॥ ५६ ॥ दानवानां भवान्दैत्यः प्रह्लादो भक्तवत्सलः ॥ सर्पाणामेव सर्वेषां भवान्वासुकिसंज्ञितः ॥ ५७ ॥ गुह्यकानां च सर्वेषां भवान्धनद एव च ॥ वरुणो यादसां राजा गङ्गा त्रिपथभाग्भवान् ॥ ५८ ॥

हो आप सब वेदोंमें प्रणव और छन्दोंमें गायत्री हो ॥ ५४ ॥ आप अक्षरोंमें अकार और वर्णोंके संश्रयमें स्फोट हो रुद्रोंमें मेरा रूप वसुओंमें आप अग्नि हो ॥ ५५ ॥ वृक्षोंकी जातिमें अश्वत्थ (पीपल) लोकगुरु ब्रह्मा आप हो तुम पर्वतोंमें मेरु और देवर्षियोंमें नारद हो ॥ ५६ ॥ दानवोंमें आप दैत्य और भक्तवत्सल प्रह्लाद हो सब सर्पोंमें आप वासुकी हो ॥ ५७ ॥ सब गुह्यकोंमें आप कुवेर हो जलोंके राजा आप वरुण हो त्रिपथगा आप

गंगा हो ॥ ५८ ॥ आप सर्वभूतोंकी आदि हो आपसे सब संसार होकर आपहीमें लय हो जाता है ॥ ५९ ॥ हे देव ! मैं और तुम सर्वगामी हैं. हे जनार्दन ! जो आप हो सो मैं हूं. हे जगत्पते ! शब्दअर्थकी समान हममें तुममें भेद नहीं है ॥ ६० ॥ हे गोविंद ! लोकमें आपके जितने नाम हैं वेही मेरे नाम हैं इसमें संदेह नहीं ॥ ६१ ॥ हे जगन्नाथ ! आपकी उपासना मेरी हो. हे देवेश ! जो आपसे द्वेष करता है इसमें संदेह नहीं कि वह मुझसे द्वेष करता है ॥ ६२ ॥ हे देव ! जो तुम्हारा विस्तार है वही मैं भूतपति हूं. हे हरे ! ऐसी कोई वस्तु नहीं जो तुम्हारे विना हो ॥ ६३ ॥ हे जगत्पते !

आदिस्त्वं सर्वभूतानां मध्यमन्तस्तथा भवान् ॥ त्वत्तः समभवद्विश्वं त्वयि सर्वं प्रलीयते ॥ ५९ ॥ अहं त्वं सर्वगो देव त्वमेवाहं जनार्दन ॥ आवयोरन्तरं नास्ति शब्दैरर्थैर्जगत्पते ॥ ६० ॥ नामानि तव गोविन्द यानि लोके महान्ति च ॥ तान्येव मम नामानि नात्र कार्या विचारणा ॥ ६१ ॥ त्वदुपासा जगन्नाथ सेवास्तु मम गोपते ॥ यश्च त्वां द्वेष्टि देवेश स मां द्वेष्टि न संशयः ॥ ६२ ॥ त्वद्विस्तारो यतो देव अहं भूतपतिस्ततः ॥ न तदस्ति विना देव यत्ते विरहितं हरे ॥ ६३ ॥ यदासीद्वर्त्तते यच्च यच्च भावि जगत्पते ॥ सर्वं त्वमेव देवेश विना किंचित्त्वया नहि ॥ ६४ ॥ स्तुवन्ति देवाः सततं भवन्तं स्वैर्गुणैः प्रभो ॥ ऋक्च त्वं यजुरेवासि सामासि सततं प्रभो ॥ ६५ ॥ किमुच्यते मया देव सर्वं त्वं भूतभावन ॥ नमः सर्वात्मना देव विष्णो माधव केशव ॥ ६६ ॥ नमस्करोमि सर्वात्मन्नमस्तेऽस्तु सदा हरे ॥ नमः पुष्करनाभाय वन्दे त्वामहमीश्वर ॥ ६७ ॥ इति श्रीम० खि० ह० भविष्यपर्वणि कैलासयात्रायां शिवकृतविष्णुस्तुतिर्नामाष्टाशीतितमोऽध्यायः ॥ ८८ ॥

जो हो गया और जो होगा. हे देवेश ! वह सब कुछ तुमही हो तुम्हारे विना कुछ नहीं है ॥ ६४ ॥ हे विभो ! आपके गुणोंके कारण देवता नित्य आपकी स्तुति करते हैं. हे प्रभो ! तुम ऋक् यजु तथा सामरूप हो ॥ ६५ ॥ हे भूतभावन ! मैं क्या कहूं सब आपहीका रूप है. हे भूतभावन ! सर्वात्मा केशव माधव आपको नमस्कार है ॥ ६६ ॥ हे सर्वात्मन् ! हे हरे ! मैं आपको सदा नमस्कार करता हूं पुष्करनाभनाम ईश्वररूप आपके लिये नमस्कार है ॥ ६७ ॥ इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे भविष्यपर्वणि भाषायां कैलासयात्रायां शिवकृतविष्णुस्तुतिर्नामाष्टाशीतितमोऽध्यायः ॥ ८८ ॥

वैशंपायन बोले, देवदेवेशके प्रति इस प्रकार कहकर फिर शिवजी मुनियोंसे कहने लगे. हे विप्रो ! जो भक्त देखनेको आये हैं वे इस प्रकार जाने ॥ १ ॥ यही परम वस्तु है इससे परे और कुछ नहीं है तुम इसीको जानो कारण कि यही परंतप है ॥ २ ॥ हे विप्रो ! इसीका निरन्तर मनमें ध्यान करना चाहिये यही तुम्हारा परम श्रेय और यही तुम्हारा परम धन है ॥ ३ ॥ यही तुम्हारे जन्मका कृत्य और यही तुम्हारे तपका फल है यही तुम्हारा पुण्यस्थान और यही सनातन धर्म है ॥ ४ ॥ यही मोक्षदाता और यही मार्ग यही पुण्यदाता और यही साक्षात् कर्मोंका फल है ॥ ५ ॥ इसीको विद्वान् ब्रह्मवादी

वैशम्पायन उवाच ॥ इत्युक्त्वा देवदेवेशं मुनीनाह पुनः शिवः ॥ एवं जानीत हे विप्रा ये भक्ता द्रष्टुमागताः ॥ १ ॥ एतदेव परं वस्तु नेकस्मात्परमस्ति वः ॥ एतदेव विजानीध्वमेतद्वः परमं तपः ॥ २ ॥ एतदेव सदा विप्रा ध्येयं सततमानसैः ॥ एतद्वः परमं श्रेय एतद्वः परमं धनम् ॥ ३ ॥ एतद्वो जन्मनः कृत्यमेतद्वस्तपसः फलम् ॥ एष वः पुण्यनिलय एष धर्मः सनातनः ॥ ४ ॥ एष वो मोक्षदाता च एष मार्ग उदाहृतः ॥ एष पुण्यप्रदः साक्षादेतद्वः कर्मणां फलम् ॥५॥ एतदेव प्रशंसन्ति विद्वांसो ब्रह्मवादिनः ॥ एष त्रयीगतिर्विप्राः प्रार्थ्यो ब्रह्मविदां सदा ॥ ६ ॥ ॥ एतदेव प्रशंसन्ति सांख्ययोगसमाश्रिताः ॥ एष ब्रह्मविदां मार्गः कथितो वेदवादिभिः ॥ ७ ॥ एवमेव विजानीत नात्र कार्या विचारणा ॥ हरिरेकः सदा ध्येयो भवद्भिः सत्त्वमास्थितैः ॥ ८ ॥ नान्यो जगति देवोऽस्ति विष्णोर्नारायणात्परः ॥ ओमित्येवं सदा विप्रा पठत ध्यात केशवम् ॥ ९ ॥ ततो निःश्रेयसप्राप्तिर्भविष्यति न संशयः ॥ एवं ध्यातो हरिः साक्षात्प्रसन्नो वो भविष्यति ॥ १० ॥

प्रशंसा करते हैं हे ब्राह्मणो ! यही कर्मकाण्डसे प्रार्थनीय यही सदा ब्रह्मज्ञानियोंसे प्रार्थनीय है ॥ ६ ॥ सांख्ययोगके आश्रित पुरुष इसीकी प्रशंसा करते हैं वेदवादियोंने कहा है यही ब्रह्मज्ञानियोंका मार्ग है ॥ ७ ॥ इसीको जानना चाहिये और विचार करनेकी आवश्यकता नहीं सतोगुणमें आश्रित हुए तुमको एक नारायणकाही सदा ध्यान करना चाहिये ॥ ८ ॥ विष्णु नारायणसे अधिक जगत्में कोई और देवता नहीं है. हे विप्रो ! ॐ इस प्रकार उच्चारण कर सदा केशवका ध्यान और पाठ करो ॥ ९ ॥ इसमें सन्देह नहीं तब आपको मंगलकी प्राप्ति होगी इस प्रकार ध्यान करनेसे साक्षात् हरि

तुमपर प्रसन्न होंगे ॥ १० यह हरि निश्चय संसारका बंधन छुडानेवाले हैं जो आप अच्युतके प्राप्त होनेकी इच्छा करते हो तो सदा अच्युतका ध्यान
करो ॥ ११ ॥ यह गुरु संसाररोगका नाश करेंगे तुम सदा विष्णुका स्मरण करो ब्रह्मादि तीन शरीर धारण करनेवालेका ध्यान करो ॥ १२ ॥ हे
ब्राह्मणो ! सदा यत्नसे मनका संयमन करो. हे तपोधनो ! शुद्ध अन्तःकरण होनेसे विष्णु प्रसन्न होते हैं ॥ १३ ॥ मुझे सब यत्नसे ध्यान करकेही
केशवको जानोगे मैं सदा उपास्य हूं इस हरिमें सदा मेरा ध्यान करो ॥ १४ ॥ यह उपाय जो मैंने कहा है इसमें संदेह नहीं है यही मायापति हैं. हे

भवनाशमयं देवः करिष्यति दृढं हरिः॥ सदा ध्यात हरिं विप्रा यदीच्छा प्राप्तुमच्युतम् ॥११॥ एष संसारविभवं विनाशयति वो गुरुः॥
स्मरध्वं सततं विष्णुं पठध्वं त्रिशरीरिणम् ॥ १२ ॥ मनःसंयमनं विप्राः कुरुध्वं यत्नतः सदा ॥ शुद्धेऽन्तःकरणे विष्णुः प्रसीदति
तपोधनाः ॥ १३ ॥ ध्यात्वा म [illegible] ततो जानीत केशवम् ॥ उपास्योऽहं सदा विप्रा उपास्योऽस्मिन् हरौ स्मृतः ॥ १४ ॥
उपायोऽयं मया प्रोक्तो नात्र संदेह इत्यपि ॥ अयं मायी सदा विप्रा यतध्वमघनाशने ॥ १५ ॥ यथा वो बुद्धिरखिला शुद्धा भवति
यत्नतः ॥ तथा कुरुत विप्रेन्द्रा यथा देवः प्रसीदति ॥ १६ ॥ वैशम्पायन उवाच ॥ एवमुक्तास्ततः सर्वे मुनयः पुण्यशीलिनः ॥
यथावदुपगृह्णाना निरसन् संशयं नृप ॥ १७ ॥ एवमेवेति तं विप्राः प्राहुः प्राञ्जलयो हरम् ॥ छिन्नो नः संशयः सर्वो गृहीतोऽर्थः स
तादृशः ॥ १८ ॥ एतदर्थं समायाता वयमद्य तवालयम् ॥ संगमाद्युवयोः सर्वो नष्टो मोहो महानिह ॥ १९ ॥

विप्रो ! पापनाशके निमित्त तुम सदा इनका जप करो ॥ १५ ॥ जिससे तुम्हारी सम्पूर्ण बुद्धि शुद्ध हो जाय. हे विप्रेन्द्रो ! वही करो जिससे यह देव
प्रसन्न हो जाय ॥ १६ ॥ वैशंपायन बोले; जब इस प्रकारसे कहे गये तब वे पुण्यशाली मुनि संदेहरहित हो यथायोग्य सत्कार करने लगे ॥ १७ ॥
आपका कहना ऐसेही है इस प्रकारसे हाथ जोड शंकरसे कहने लगे हमारा सन्देह सब दूर हुआ आपका अर्थ ग्रहण किया ॥ १८ ॥ इसी निमित्त

हम आपके स्थानमें आये थे आप दोनोंके संगमसे हमारा मोह नष्ट हो गया है ॥ १९ ॥ हे देवेश ! आप जैसा कहते हो उसीसे हमारा परम मंगल होगा जैसे भगवान् रुद्रने कहा है. उसीके अनुसार नारायणमें यत्न करेंगे इस प्रकार वे मुनि प्रसन्न हो, केशवको प्रणाम करने लगे ॥ २० ॥ इति श्रीम० खिलेषु ह० भविष्यपर्वणि भा० कैलासयात्रायां नवाशीतितमोऽध्यायः ॥ ८९ ॥ वैशंपायन बोले; तब भगवान् रुद्र सबको विस्मय कराते हुए विश्वेश्वर हरिकी स्तुति करने लगे वह अर्थवाली स्तुति मुनिजनोंके श्रवण करते होने लगी ॥ १ ॥ महेश्वर बोले; वासुदेव बुद्धिमान् आपके निमित्त

यथा वदसि देवेश तथा नः श्रेयसे परम् ॥ यथाह भगवान्रुद्रो यतामः सततं हरौ ॥ इति ते मुनयः प्रीताः प्रणेमुः केशवं हरिम् ॥ २० ॥ इति श्रीम० खिलेषु ह० भविष्यपर्वणि कैलासयात्रायां नवाशीतितमोऽध्यायः ॥ ८९ ॥ वैशम्पायन उवाच ॥ ततः स भगवान् रुद्रः सर्वान्विस्मापयन्निव ॥ स्तुत्या प्रचक्रमे स्तोतुं विष्णुं विश्वेश्वरं हरिम् ॥ अर्थ्याभिस्तु तदा वाग्भिर्मुनीनां शृण्वतां तथा ॥ १ ॥ महेश्वर उवाच ॥ नमो भगवते तुभ्यं वासुदेवाय धीमते ॥ यस्य भासा जगत्सर्वं भासते नित्यमच्युत ॥ २ ॥ नमो भगवते देव नित्यं सूर्यात्मने नमः ॥ यः शीतयति शीतांशुर्लोकान् सर्वानिमान्विभुः ॥ ३ ॥ नमस्ते विष्णवे देव नित्यं सोमात्मने नमः ॥ यः प्रजाः प्रीणयत्येको विश्वात्मा भूतभावनः ॥ ४ ॥ नमः सर्वात्मने देव नमो वागात्मने हरे ॥ यो दधार करेणासौ कुशचीरादि यत्सदा ॥ ५ ॥ दधार वेदान् सर्वांश्च तुभ्यं ब्रह्मात्मने नमः ॥ सर्वान्संहरते यस्तु संहारे विश्वदृक् सदा ॥ ६ ॥

नमस्कार है जिनकी कान्तिसे सब जगत् भासमान होता है. हे अच्युत ! आपको नमस्कार है ॥ २ ॥ भगवान् देव नित्य सूर्यात्माके निमित्त नमस्कार है जो विभु चंद्रमा इन सब लोकोंको शीतल करता है ॥ ३ ॥ हे विष्णु ! उस सोमात्माको हम नित्य नमस्कार करते हैं जो भूतभावन विश्वात्मा प्रजाको प्रसन्न करता है ॥ ४ ॥ उस सर्वात्मा वागात्मा देवके अर्थ नमस्कार है जो सदा हाथमें कुश चीरादि धारण करते हैं ॥ ५ ॥ तथा सब वेदोंको धारण करनेवाले ब्रह्मात्माको नमस्कार है, जो सबके संहारकर्त्ता संहाररूप विश्वदृक् हैं ॥ ६ ॥

आपही क्रोधात्मा विरूप हो रुद्रात्मा आपके निमित्त नमस्कार है आप सृष्टिमें सबके स्रष्टा और प्राणियोंके प्राण देनेवाले हो ॥ ७ ॥ आप अज विष्णु हो विश्वके सृजनेवाले आपको नमस्कार है, आदिप्रकृतिके मूलभूतोंको उत्पन्न करनेवाले ॥ ८ ॥ देवदेवेश प्रधानपुरुषके निमित्त नमस्कार है आप पृथ्वीमें गंधरूपसे, प्राणियोंमें प्राणरूपसे स्थित हो ॥ ९ ॥ दृढ दृढरूप गंधात्मा आपको नमस्कार है, सर्वत्र प्राणियोंके सुख देनेवाले रसरूप आपको नमस्कार है ॥ १० ॥ विश्वरूप रसरूपके निमित्त नमस्कार है, तेजमें सूर्यरूप और आपही प्राणियोंपर दया करने-

क्रोधात्मासि विरूपोऽसि तुभ्यं रुद्रात्मने नमः ॥ सृष्टौ स्रष्टा समस्तानां प्राणिनां प्राणदायिने ॥ ७ ॥ अजाय विष्णवे तुभ्यं स्रष्ट्रे विश्वसृजे नमः ॥ आदौ प्रकृतिमूलाय भूतानां प्रभवाय च ॥ ८ ॥ नमस्ते देवदेवेश प्रधानाय नमो नमः ॥ पृथिव्यां गन्धरूपेण संस्थितः प्राणिनां हरे ॥ ९ ॥ दृढाय दृढरूपाय तुभ्यं गन्धात्मने नमः ॥ अपां रसाय सर्वत्र प्राणिनां सुखहेतवे ॥ १० ॥ नमस्ते विश्वरूपाय रसाय च नमो नमः ॥ तेजसा भास्करो यस्त्वं घृणी जन्तुहितः सदा ॥ ११ ॥ तस्मै देव जगन्नाथ नमो भास्क-रूपिणे ॥ वायोः स्पर्शगुणो यत्र शीतोष्णसुखदुःखदः ॥ १२ ॥ नमस्ते वायुरूपाय नमः स्पर्शात्मने हरे ॥ आकाशेऽवस्थितः शब्दः सर्वश्रोत्रनिवेशनः ॥ १३ ॥ नमस्ते भगवन्विष्णो तुभ्यं सर्वात्मने नमः ॥ यो दधार जगत्सर्वं मायामानुषदेहवान् ॥ १४ ॥ नमस्तुभ्यं जगन्नाथ मायिनेऽमायदायिने ॥ नम आद्याय बीजाय निर्गुणाय गुणात्मने ॥ १५ ॥ अचिन्त्याय सुचिन्त्याय तस्मै चिन्त्यात्मने नमः ॥ हराय हरिरूपाय ब्रह्मणे ब्रह्मदायिने ॥ १६ ॥

वाले हो ॥ ११ ॥ भास्कररूप देव जगन्नाथके वास्ते नमस्कार है जहां वायु स्पर्शगुणवाला शीतोष्ण सुखदुःख देनेवाला है ॥ १२ ॥ वायुरूप स्पर्शात्मा हरिके निमित्त नमस्कार है आकाशमें सबकी श्रोत्रक्रिया प्रवृत्त करनेवाला शब्द स्थित है ॥ १३ ॥ हे विष्णु भगवन् ! सर्वात्मारूप आपको नमस्कार है, जो मायासे मनुष्यदेह धारण करके जो सम्पूर्ण जगत्को धारण करता है ॥ १४ ॥ आप मायि जगन्नाथ अमायि देनेवालेके निमित्त नम-स्कार है, आदिबीज निर्गुण गुणात्माके निमित्त नमस्कार है ॥ १५ ॥ अचिन्त्य सुचिन्त्य चिन्त्यात्माके निमित्त नमस्कार है हरहरिरूप ब्रह्म वेद-

दाताके अर्थ नमस्कार ॥ १६ ॥ ब्रह्मवित् ब्रह्म ब्रह्मात्मा आपके निमित्त नमस्कार है सहस्रशिर सहस्र किरणवालेके वास्ते नमस्कार है ॥ १७ ॥ सहस्र-मुख सहस्रनेत्र विश्व विश्वरूप विश्वके कर्ताके निमित्त नमस्कार है ॥ १८ ॥ विश्वचक्र भूतावास आपके निमित्त नमस्कार है हे हरे ! इन्द्रिय इन्द्ररूप विषय आपको नमस्कार है ॥ १९ ॥ अश्वशिरसू वेदाभरणरूप आपके निमित्त नमस्कार है अग्नि अग्निपति ज्योतियोंके पति आपको नमस्कार है ॥ २० ॥ सूर्य सूर्यपुत्र तेजोंके पति आपको नमस्कार है सोम सौम्य शीतात्मा आपके निमित्त नमस्कार है ॥ २१ ॥ यज्ञ इज्य हवि हव्य संस्कृत स्रुव पात्र यज्ञांग

नमो ब्रह्मविदे तुभ्यं ब्रह्मब्रह्मात्मने नमः ॥ नमः सहस्रशिरसे सहस्रकिरणाय च ॥ १७ ॥ नमः सहस्रवक्त्राय सहस्रनयनाय च ॥
विश्वाय विश्वरूपाय विश्वकर्त्रे नमो नमः ॥ १८ ॥ विश्वचक्रे नमो नित्यं भूतावास नमो नमः ॥ इन्द्रियायेन्द्ररूपाय विषयाय सदा
हरे ॥ १९ ॥ नमोऽश्वशिरसे तुभ्यं वेदाभरणरूपिणे ॥ अग्नयेऽग्निपते तुभ्यं ज्योतिषां पतये नमः ॥ २० ॥ सूर्याय सूर्यपुत्राय
तेजसां पतये नमः ॥ नमः सोमाय सौम्याय नमः शीतात्मने हरे ॥ २१ ॥ नमो यज्ञाय इज्याय हविषे हव्यसंस्कृते ॥ नमः स्रुवाय
पात्राय यज्ञाङ्गाय पराय च ॥ २२ ॥ नमः प्रणवदेहाय क्षरायाप्यक्षराय च ॥ वेदाय वेदरूपाय शस्त्रिणे शस्त्ररूपिणे ॥ २३ ॥ गदिने
खड्गिने तुभ्यं शाङ्खिने चक्रिणे नमः ॥ शूलिने चर्मिणे नित्यं वरदाय नमो नमः ॥ २४ ॥ बुद्धिप्रियाय बुद्धाय प्रबुद्धाय सुखाय च ॥
हरये विष्णवे तुभ्यं नमः सर्वात्मने गुरो ॥ २५ ॥ नमस्ते सर्वलोकेश सर्वकर्त्रे नमो नमः ॥ नमः स्वभावशुद्धाय नमस्ते यज्ञ-
सूकर ॥ २६ ॥ नमो विष्णो नमो विष्णो नमो विष्णो नमो हरे ॥ नमस्ते वासुदेवाय वासुदेवाय धीमते ॥ २७ ॥

पर आपके निमित्त नमस्कार है ॥ २२ ॥ प्रणव देह क्षर अक्षर वेद वेदरूप शस्त्री शस्त्ररूपी आपके निमित्त नमस्कार है ॥ २३ ॥ गदा खड्ग शंख चक्र शूल चर्मधारी वरदात्मा नित्य आपको नमस्कार है ॥ २४ ॥ बुद्धिप्रिय बुद्ध प्रबुद्ध सुख हरि विष्णु सर्वात्मा गुरु आपको नमस्कार है ॥ २५ ॥ सर्व-लोकेश सबके कर्ता आपको नमस्कार है, स्वभावशुद्ध यज्ञवाराहके निमित्त नमस्कार है ॥ २६ ॥ विष्णु विष्णु विष्णु हरिके वास्ते नमस्कार है वासुदेव

वासुदेव बुद्धिमान्‌के निमित्त नमस्कार है ॥ २७ ॥ कृष्ण कृष्ण सर्वावासके निमित्त नमस्कार है. फिरभी आपके निमित्त नमस्कार है. हे जनार्दन ! आप लोककी पालना करो ॥ २८ ॥ इस प्रकार जगन्नाथ स्तुति कर मुनिश्रेष्ठोंसे कहने लगे इस स्तोत्रका पाठकर नित्य केशवकी निकटता करो ॥ २९ ॥ वह सब भूतोंके शरण्य हैं आपका मंगल विधान करेंगे और जो इस पापमोचन स्तोत्रको धारण करेंगे ॥ ३० ॥ उन पढने सुननेवालोंपर हरि प्रसन्न होंगे वह धर्मात्मा मंगल देंगे इसमें विचार करनेकी आवश्यकता नहीं ॥ ३१ ॥ भक्तवत्सल केशवको अवश्यही मनसे ध्यान करना चाहिये जो आप

नमः कृष्णाय कृष्णाय सर्वावास नमो नमः ॥ नमो भूयो नमस्तेऽस्तु पाहि लोकान् जनार्दन ॥ २८ ॥ इति स्तुत्वा जगन्नाथमुवाच मुनिसत्तमान् ॥ इदं स्तोत्रमधीयाना नित्यं व्रजत केशवम् ॥ २९ ॥ शरण्यं सर्वभूतानां तत्र श्रेयो विधास्यति ॥ ये चेमं धारयिष्यन्ति स्तवं पापविमोचनम् ॥ ३० ॥ तेषां प्रीतः प्रसन्नात्मा पठतां शृण्वतां हरिः ॥ श्रेयो दास्यति धर्मात्मा नात्र कार्या विचारणा ॥ ३१ ॥ अवश्यं मनसा ध्यात केशवं भक्तवत्सलम् ॥ श्रेयः प्राप्तुं यदीच्छन्ति भवन्तः शंसितव्रताः ॥ ३२ ॥ इत्युक्त्वा भगवान् रुद्रस्तत्रैवान्तरधीयत ॥ सगणः शंकरः साक्षादुमया भूतभावनः ॥ ३३ ॥ नेमुस्तं मुनयः सर्वे परां निर्वृतिमाययुः ॥ तमेव परमं तत्त्वं मत्वा नारायणं हरिम् ॥ विस्मयं परमं गत्वा मेनिरे स्वकृतार्थताम् ॥ ३४ ॥ लोकपालास्तदा विष्णुं नमस्कृत्य हरिं मुदा ॥ जग्मुः स्वान्यथ वेश्मानि गणैः सर्वैर्नृपोत्तम ॥ ३५ ॥ आरुह्य भगवान्विष्णुर्गरुडं पक्षिपुङ्गवम् ॥ शङ्खी चक्री गदी खड्गी शार्ङ्गी तूणी तनुत्रवान् ॥ ३६ ॥ यथागतं जगन्नाथो ययौ बदरिकामनु ॥ सायाह्ने पुण्डरीकाक्षो नित्यं मुनिनिषेविताम् ॥ ३७ ॥

शंसितव्रतवाले मंगलकी इच्छा करते हो तौ ॥ ३२ ॥ यह कह भगवान् रुद्र वहांही अन्तर्धान हो गये, गण और उमाके सहित जब भूतात्मा अन्तर्धान हुए ॥ ३३ ॥ तब मुनि उनको नमस्कार कर परमनिर्वृत्तिको प्राप्त हुए उन नारायण हरिको परमतत्त्व मानकर परम विस्मयको प्राप्त हो अपनेको कृतार्थ मानते हुए ॥ ३४ ॥ और लोकपालभी प्रेमसे हरि विष्णुको नमस्कार करके हे राजन् ! अपने समूहोंके सहित अपने २ स्थानको गये ॥ ३५ ॥ और भगवान् विष्णुभी पक्षिश्रेष्ठ गरुडके ऊपर चढकर शंख चक्र गदा खड्ग शार्ङ्ग धनुष लिये तरकस धारण किये ॥ ३६ ॥ बदरिकाश्रमको यथागति गये

॥२०८॥

और वह पुण्डरीकाक्ष संध्याके समय नित्य मुनिजनोंसे सेवित स्थानको प्राप्त हो ॥ ३७ ॥ वहां जाकर नम्र हुए हरि मुनियोंसे आर्चित हो आसनपर सुखसे स्थित हुए ॥ ३८ ॥ इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे भविष्यपर्वणि भाषायां कैलासयात्रायां नवतितमोऽध्यायः ॥ ९० ॥ वैशंपायन बोले; इसी समय राजोंमें बली पौंड्रराजा बली पराक्रमसम्पन्न योधा ॥ १ ॥ सदा वृष्णिवंशियोंका शत्रु कृष्णसे द्वेष करनेवाला, बलसे सब राजोंको बुलाकर सभामें इस प्रकारके वचन कहने लगा ॥ २ ॥ हमने सब पृथ्वी और सब राजोंको जीत लिया है परन्तु कृष्णके आश्रित हो सब वृष्णिवंशी बडे गर्वित हो रहे

तत्र गत्वा यथायोगं विनम्य हरिरीश्वरः ॥ अर्चितो मुनिभिः सर्वैर्निषसाद सुखासने ॥ ३८ ॥ इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे भविष्यपर्वणि कैलासयात्रायां नवतितमोऽध्यायः ॥ ९० ॥ छ ॥ वैशम्पायन उवाच ॥ एतस्मिन्नेव काले तु पौण्ड्रो नृपवरोत्तमः ॥ बलवान्सत्त्वसंपन्नो योद्धा विपुलविक्रमः॥ १॥ वृष्णिशत्रुस्सदा राजा कृष्णद्वेषी बलात्तदा ॥ नृपान्सर्वान्समाहूय प्रोवाच नृपसंसदि॥ २॥ जिता च पृथिवी सर्वा जिताश्च नृपसत्तमाः ॥ वृष्णयस्ते बलोन्मत्ताः कृष्णमाश्रित्य गर्विताः ॥ ३ ॥ दास्यन्ति मे करं सर्वे नहि ते कृष्णसंश्रयात् ॥ स तु कृष्णश्चक्रबलान्मामवज्ञाय तिष्ठति॥ ४॥ अहं चक्रीति गर्वोऽभूत्तस्य गोपस्य सर्वदा ॥ शङ्खी चक्री गदी शार्ङ्गी शरी तूणी सहायवान् ॥ ५ ॥ एवमादिर्महागर्वस्तस्य संप्रति वर्त्तते ॥ लोके च मम यन्नाम वासुदेवेति विश्रुतम् ॥ ६ ॥ अगृह्णन्मम तन्नाम गोपो मदबलान्वितः॥ तस्य चक्रस्य यच्चक्रं ममापि निशितं महत्॥ ७॥ गर्वहन्तृ सदा तस्य नाम्ना चापि सुदर्शनम्॥ सहस्रारं महाघोरं तस्य चक्रस्य नाशनम् ॥ ८ ॥ अनेकमहतं चक्रं गोपजस्य नृपोत्तमाः ॥ ममाप्येतद्धनुर्दिव्यं शार्ङ्गनाम महास्वम् ॥ ९ ॥

हैं ॥ ३ ॥ मुझे सब कर देते हैं परन्तु वे कृष्णके आश्रयसे कर नहीं देते हैं, वह कृष्ण चक्रके बलसे मेरी अवज्ञा करके स्थित हुवा है ॥ ४ ॥ मैं चक्रधारी हूं यह गर्व सदा उस गोपको रहता है; शंख चक्र गदा शार्ङ्ग धनुष सदा धारण किये रहता है ॥ ५ ॥ इत्यादि औरभी उसको अनेक प्रकारसे गर्व है और लोकमें जो मेरा नाम वासुदेव है ॥ ६ ॥ सो बलसे मत्त हो उसने वह मेरा नाम ग्रहण कर लिया है उसके चक्रसे मेरा चक्र बहुत तीक्ष्ण है ॥ ७ ॥ सुदर्शन चक्र जो मेरा है वह सदा उसके सहस्र आरेवाले महाघोर चक्रका नाशक है ॥ ८ ॥ हे राजोंमें श्रेष्ठो ! उस गोपका चक्र मेरे चक्रसे

हत होनेके योग्य है; और बडे शब्दवाला शार्ङ्ग नाम धनुष मेरे पासभी है ॥ ९ ॥ तथा कौमोदकी नाम दृढ गदा मेरे पास है जो सहस्र भारवाले काला यस लोहकी निर्मित है ॥१०॥ इस प्रकार नंदक नाम महादृढ खड्ग मेरे पास रहता है यह कालकाभी काल खड्ग. कृष्णके खड्गका नाशक है ॥ ११ ॥ हे राजो ! सो यह गदा खड्ग चक्र तरकसधारी कृष्ण युद्धमें जीतने योग्य है इसमें विचार करना नहीं ॥१२॥ हे राजो ! नित्यही मुझको गदा चक्र

गदा कौमोदकी नाम ममेयं बृहती दृढा ॥ कालायससहस्रस्य भारेण सुकृता मया ॥ १० ॥ खड्गो नन्दकनामासौ ममायं विपुलो दृढः ॥ अन्तकस्यान्तको घोरस्तस्य खड्गस्य नाशकः ॥ ११ ॥ तत्रायं च गदी खड्गी शंखी चक्री तनुत्रवान् ॥ युधि जेता च कृष्णस्य नात्र कार्या विचारणा ॥१२॥ मां संब्रूत नृपाश्चैव गदिनं चक्रिणं तथा ॥ शङ्खिनं शार्ङ्गिणं वीरं ब्रूत नित्यं नृपोत्तमाः॥ १३॥ वासुदेवेति मां ब्रूत न तु गोपं यदूत्तमम् ॥ एकोऽहं वासुदेवो हि हत्वा तं गोपदारकम् ॥ १४ ॥ सख्युर्मम बलाद्धन्ता नरकस्य महात्मनः ॥ मां तथा यदि न ब्रूत दण्ड्या भारशतैः शतम् ॥ १५ ॥ सुवर्णस्य च निष्कस्य धान्यस्य बहुशस्तदा ॥ तथा ब्रुवति राजेन्द्रे मनसा दुस्सहं यथा ॥ १६ ॥ केचिल्लज्जासमायुक्ता आसंस्ते बलवत्तराः ॥ रसज्ञा बलवीर्यस्य राजानस्ते सदा नृप ॥ १७ ॥

शार्ङ्ग शंखधारी वीर कहा करो ॥ १३ ॥ मुझको वासुदेव कहो उस यदुकुलोत्पन्नको नहीं एकही मैं वासुदेव हूं उस गोपके बालकको मारकर प्रसन्न हूंगा ॥ १४ ॥ कारण कि उसने मेरे सखा नरकासुरको मारा है और जो मुझे वासुदेव नहीं कहेगा उससे सौ भार[1] सुवर्ण दण्ड लिया जायगा ॥ १५ ॥ अनेक सुवर्णके निष्क और बहुत धान्य दण्ड लिया जायगा राजाके मनसे दुस्सह यह बात कहनेपर ॥ १६ ॥ कोई बली राजा लज्जित हो वहां

१ वीस तुलाका एक भार होता है.

बैठे रहे, वे सदा उस राजाके बलवीर्यके ज्ञाता थे ॥ १७ ॥ और दूसरे राजा सत्य है ऐसे है इस प्रकार कहने लगे; कोई बलमदसे युक्त हो बोले; हम केशवको रणमें जीतेंगे ॥ १८ ॥ इति श्रीम ० खिलेषु ह०भविष्यपर्वणि भाषायां पौंड्रकोक्तावेकनवतितमोऽध्यायः ॥ ९१ ॥ वैशम्पायन बोले उस समय सर्वलोकके जाननेवाले मुनिश्रेष्ठ नारदजी कैलासके शिखरसे उतर कर पौंड्रकके नगरको चले ॥ १ ॥ आकाशमार्गसे चल राजाके उत्तम नगरमें आये और द्वारपालसे आज्ञा पाकर राजाके घरमें प्रविष्ट हुए ॥ २ ॥ वहां महामुनिने राजासे अर्घ्य पाद्य आदि सत्कार प्राप्त किया और

अपरे तु नृपा राजन्नेवमेवेति चुक्रुशुः ॥ अन्ये बलमदोत्सिक्ता जेष्यामः केशवं रणे ॥ १८ ॥ इति श्रीम० खिलेषु ह० भ० पौण्ड्र-कोक्तावेकनवतितमोऽध्यायः ॥ ९१ ॥ वैशम्पायन उवाच ॥ ततः कैलासशिखरान्निर्गतो मुनिसत्तमः ॥ नारदः सर्वलोकज्ञः पौण्ड्रस्य नगरं प्रति ॥ १ ॥ अवतीर्य नभोभागात्प्रत्यागम्य नरोत्तमम् ॥ द्वाःस्थेन च समाज्ञतः प्रविवेश गृहोत्तमम् ॥ २ ॥ अर्घ्यादिसमुदाचारं नृपाल्लब्ध्वा महामुनिः॥ निषसादासने शुभ्रे ह्यास्तृते शुभवाससा ॥३॥ कुशलं पृष्टवान्भूयो नृपः स मुनिसत्तमम् ॥ उवाच नारदं भूयः पौण्ड्रको बलगर्वितः॥ ४ ॥ भवान्सर्वत्र कुशलः सर्वकार्येषु पण्डितः॥ प्रथितो देवसिद्धेषु गन्धर्वेषु महात्मसु॥५॥ सर्वत्रगो निराबाधो गन्ता सर्वत्र सर्वदा ॥ अगम्यं तव विप्रेन्द्र ब्रह्माण्डे नहि किञ्चन ॥ ६ ॥ नारदेदं वद त्वं हि यत्र यत्र गतो भवान् ॥ तत्र तत्र तपःसिद्धो लोके प्रथितवीर्यवान् ॥ पौण्ड्र एव च विख्यातो वासुदेवेति शब्दितः ॥ ७ ॥

सुन्दर वस्त्र बिछे आसनपर विराजमान हुए ॥ ३ ॥ तब राजाने मुनिराजसे कुशल पूछी नारदजीसे पौंड्रकने कहा ॥ ४ ॥ आप सर्वत्र कुशल और सब कार्यमें पण्डित हो देव सिद्ध महात्मा गन्धर्वोंमें प्रसिद्ध हो ॥ ५ ॥ आप सर्वत्र बाधा रहित होकर गमन कर सकते हैं. हे ब्राह्मणश्रेष्ठ ! आपको ब्रह्माण्डमें कोई स्थान अगम्य नहीं है ॥ ६ ॥ हे नारदजी ! कहिये आप जहां जहां गमन करते हो वहां वहां तपसिद्धिके लोक विख्यात हैं वहीं वहीं मैं पौंड्र वासुदेव नामसे विख्यात हूं ॥ ७ ॥

शंख चक्र गदा शार्ङ्ग खड्ग तरकस धारण किये राजसिंहोंका जीतनेवाला सदा सबका दाता हूं ॥८॥ सब राज्यका भोक्ता बलसे राजोंका शासन करने-वाला महाबली हूं, शत्रुकी सेनाको अजेय और अपने जनोंकी रक्षा करता हूं ॥ ९ ॥ और जो यह गोप कृष्ण वासुदेव कहाता है उस मेरे नाम धारण करनेवालेमें इतना वीर्य नहीं है ॥ १० ॥ वह गोप बालकपनकी चंचलतासे वृथा मेरा नाम धारण करता है. हे विप्रेन्द्र ! ऐसा निश्चय कहो कि मैंही एक स्थित रहूं ॥ ११ ॥ इस जगत्में उस बलिष्ठ यदुको जीतकर मैंही वासुदेव कहाऊं और बलसे सब वृष्णियोंको मार उस पुरीको नष्ट करूंगा ॥ १२ ॥

शङ्खी चक्री गदी शार्ङ्गी खड्गी तूणी तनुत्रवान् ॥ विजेता राजसिंहानां दाता सर्वस्य सर्वदा ॥ ८ ॥ भोक्ता राज्यस्य सर्वस्य शास्ता राजा बलाद्बली ॥ अजेयः शत्रुसैन्यानां रक्षिता स्वजनस्य ह ॥ ९ ॥ योऽद्य गोपकनामासौ वासुदेवेति शब्दितः ॥ तस्य वीर्यंबले न स्तो नाम्नोऽस्य मम धारणे ॥ १० ॥ स हि गोपो वृथा बाल्याद्धारयत्येव नाम मे ॥ इदं निश्चिनु विप्रेन्द्र एक एव भवाम्यहम् ॥ ११ ॥ वासुदेवो जगत्यस्मिन्निर्जित्य बलिनं यदुम् ॥ वृष्णीन्सर्वान्बलात् क्षिप्त्वा निहनिष्ये च तां पुरीम् ॥ १२ ॥ द्वारकां विष्णुनिलयां योद्धा चाहं महामते ॥ एते च बलिनः सर्वे नृपा मम समागताः ॥ १३ ॥ अश्वाश्च वेगिनः सन्ति रथा वायुजवा मम ॥ नानामन्त्राः सहस्रं च गजा नियुतमेव च ॥ १४ ॥ एतेनाहं बलेनाजौ हनिष्ये केशवं रणे ॥ तस्मादेवं सदा विप्र वद ब्रह्मन्पुरे मम ॥ १५ ॥ इन्द्रस्यापि सदा विप्र वद नारद साम्प्रतम् ॥ प्रार्थनैषा मम विभो नमस्ये त्वां तपोधन ॥ १६ ॥ नारद उवाच ॥ सर्वत्रगः सदा चास्मि यावद्ब्रह्माण्डसंस्थितिः ॥ आचार्यः सर्वकार्येषु गमने केनचिन्नृप ॥ १७ ॥

उस विष्णुकी स्थानकी द्वारकामें जाकर युद्ध करूंगा और यह सब बली राजा मेरी सहायताको आये हैं ॥ १३ ॥ वेगवाले घोडे और वायुवेगकी समान वेगगामी मेरे रथ हैं अनेक मंत्र सहस्रों और नियुत (लक्ष) हाथी मेरे यहां विद्यमान हैं ॥ १४ ॥ इस बली सेनासे रणमें केशवको मैं मारूंगा हे ब्रह्मन् ! इस कारणसे हमारे आगे कहिये ॥ १५ ॥ इन्द्रकाभी क्या ऐश्वर्य है. हे नारदजी ! सो आप कहिये. हे विभो ! हे तपोधन! यह मेरी प्रार्थना है आपको नमस्कार करता हूं ॥ १६ ॥ नारदजी बोले; जहांतक ब्रह्माण्डकी स्थिति है मैं वहांतक सब जगह जा सकता हूं सब स्थानमें

॥२१०॥

गमन करनेवालोंमें मुझे आचार्य जानिये ॥ १७ ॥ परन्तु हे राजन् ! चक्रपाणि जनार्दन देवके पृथ्वी शासन करनेपर किस प्रकार तुम ऐसे वचन कहनेका साहस करते हो ॥ १८ ॥ सर्वत्रगामी विष्णु देव बंधुओंसहित दुष्टोंको मारकर स्थित है इन हरिके स्थित होनेमें वासुदेव नाम किसमें स्थित हो सकता है ॥ १९ ॥ सूर्यके प्रकाश पर्यन्त पृथ्वीके पालन करनेवाले श्रीकृष्णके होते मूढ और प्राकृत जनके सिवाय ऐसा कौन कह सकता है ॥ २० ॥ सर्वत्रगामी विष्णु तेरा दर्प चूर्ण करेंगे वह शार्ङ्गधनुष गदा धारण करनेवाले विष्णु अचिन्त्य प्रभाववाले हैं ॥ २१ ॥ वह आदिदेव पुराणात्मा तेरा दर्प चूर्ण

किन्तु वक्तुं तथा राजन्नत्सहे नृपसत्तम ॥ महीं शासति देवेशे चक्रपाणौ जनार्दने ॥ १८ ॥ विष्णौ सर्वत्रगे देवे दुष्टान् हत्वा सबान्धवान् ॥ वासुदेवेति को नाम तिष्ठत्यस्मिन् हराविति ॥ १९ ॥ को नाम वक्तुमेवेदं कृष्णे शासति गोमती ॥ अज्ञानाद्वक्तुमेवं च समर्थाः प्राकृता जनाः ॥२०॥ हरिः सर्वत्रगो विष्णुर्दर्पं ते व्यपनेष्यति ॥ अचिन्त्यविभवो विष्णुः शार्ङ्गधन्वा गदाधरः ॥ २१ ॥ आदिदेवः पुराणात्मा दर्पं ते व्यपनेष्यति ॥ हास्यमेतन्महाराज यच्च वै तत्र संस्थितम् ॥ २२ ॥ शार्ङ्गं खड्गं तथा राजन्महाघोरं न दाप्यते ॥ अतीव हासकालोऽयं तव सम्प्रति वर्त्तते ॥ २३ ॥ इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे भविष्यपर्वणि पौण्ड्रकनारदसंवादे द्विनवतितमोऽध्यायः ॥ ९२ ॥ वैशम्पायन उवाच ॥ ततः क्रुद्धो महाराज पौण्ड्रो मदबलान्वितः ॥ नारदं विप्रवर्यं तं प्रोवाच नृपसंसदि ॥ १ ॥ किमिदं प्राह विप्रर्षे राजाहं च द्विजैः सह ॥ गच्छ त्वं काममथवा मुने शापप्रदः सदा ॥ २ ॥ भीतस्त्वत्तो महाबुद्धे गच्छ त्वं काममद्य हि ॥ इत्युक्तो नृपवर्येण तूष्णीमेव स नारदः ॥ ३ ॥

करेंगे. हे महाराज ! इसी बातकी तुम इच्छा करते हो यह हास्यकी बात है ॥२२॥ उनका महाघोर शार्ङ्ग धनुष और खड्ग तुम्हारे धनुषसे न टूटेगा यह तुम्हारी बातें बडी हास्यकी है ॥२३॥ इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे भविष्यपर्वणि भाषायां पौंड्रकनारदसंवादे द्विनवतितमोऽध्यायः ॥ ९२ ॥ वैशंपायन बोले; तब मदके बलसे क्रोधित हो पौंड्रक राजा राजसभामें नारदजीसे कहने लगा ॥ १ ॥ हे विप्रर्षे ! यह तुम क्या कहते हो मैं ब्राह्मणोंके सहित राजा हूं हे मुने ! आप शाप देनेवाले हो यथेच्छ गमन कीजिये ॥ २ ॥ हे महाबुद्धे ! मुझे आपसे भय है आप अभी गमन

कीजिये ज्यों राजाने ऐसा कहा तब नारदजी मौन धारण किये ॥ ३ ॥ आकाशमार्गसे केशवके निकट गये वह विष्णुके निकट जाकर विष्णुसे सब
वर्णन करते हुए ॥ ४ ॥ उन यथेष्ट कहनेवालेसे विष्णु भगवान् कहने लगे. हे द्विजश्रेष्ठ! प्रातःकालमें उसका अभिमान नष्ट करूंगा ॥ ५ ॥ ऐसा कह
प्रभु बदरीकाश्रममें विरामको प्राप्त हुए तब वह महाबाहु पौण्ड्र बहुतसी सेना साथ लिये ॥ ६ ॥ अनेक सहस्र घोडे और बहुतसे हाथियोंसे युक्त
करोडों शस्त्रोंसे युक्त सत्यसंगर वह राजा ॥ ७ ॥ सहस्रों प्यादोंके साथ एकलव्यादि राजाओंसे सेवित ॥ ८ ॥ आठ सहस्र रथ दस सहस्र हाथी एक

जगामाकाशगमनो यत्र तिष्ठति केशवः ॥ स मत्वा विष्णुसंकाशं विष्णोः सर्वं शशंस ह ॥ ४ ॥ तच्छ्रुत्वा भगवान्विष्णुर्यथेष्टं वदतामिति ॥ दर्पं तस्यापनेष्यामि श्वोभूते द्विजसत्तम ॥ ५ ॥ इत्युक्त्वा विरराभैव तास्मिन्बदरिकाश्रमे ॥ ततः पौण्ड्रे महाबाहुर्बलैर्बहुभिरीश्वरः ॥ ६ ॥ अश्वैरनेकसाहस्रैर्गजैर्बहुभिरान्वितः ॥ शस्त्रकोटिसमायुक्तः स राजा सत्यसंगरः ॥ ७ ॥ अनेकशतसाहस्रैः पत्तिभिश्च समन्वितः ॥ एकलव्यप्रभृतिभी राजभिश्च समन्ततः ॥ ८ ॥ अष्टौ रथसहस्राणि नागानामयुतं तथा ॥ अर्बुदं पत्तिसंघानां तद्बलं समपद्यत ॥ ९ ॥ एतेन च बलेनाजौ प्रस्फुरन्नृपसत्तमः ॥ विरराज महाराज उदयस्थो महारविः ॥ १० ॥ स ययौ मध्यरात्रेण नगरीं द्वारकामनु ॥ पत्तयो दीपिकाहस्ता रात्रौ तमसि दारुणे ॥ ११ ॥ ययुर्विविधशस्त्रौघान्संपतन्तो महाबलाः ॥ द्वारकां वीर्यसंपन्ना महाघोरां नृपोत्तमाः ॥ १२ ॥ रथं महान्तमारुह्य शस्त्रौघैश्च समावृतम् ॥ पट्टिशासिसमाकीर्णं गदापरिघसंकुलम् ॥ १३ ॥ शक्तितोमरसंकीर्णं ध्वजमालासमाचितम् ॥ किङ्किणीजालसंयुक्तं शरासिप्राससंयुतम् ॥ १४ ॥

अर्बुद पैदल लेकर चला ॥ ९ ॥ इतनी सेना लिये संग्रामके निमित्त चलता हुआ राजा उदय हुए सूर्यकी समान विराजमान हुआ ॥ १० ॥ वह
आधी रातके समय द्वारकापुरीको गया और उस अंधेरीरातमें पैदल मसाल लेकर चले ॥ ११ ॥ और वे महाबली अनेक शस्त्र लिये चले वे
श्रेष्ठ राजा महाघोर वीर्यसम्पन्न द्वारकापुरीको ॥ १२ ॥ बडे बडे रथोंमें बैठे शस्त्रसमूह लिये पट्टिश तलवार गदा परिघ लेकर घेरते हुए ॥ १३ ॥
शक्तितोमरसे संकीर्ण ध्वजमालासे युक्त किंकणीजाल और शर तलवार प्राससे संयुक्त ॥ १४ ॥

महाघोर महारौद्र प्रलयके मेघकी समान धनु गदासे युक्त महावाद्यकी समान बडी ॥ १५ ॥ अग्नि सूर्यके समान आकारवाली सेना द्वारकाको चली उस प्रकार वह बलवान् राजा प्रकाशमें चला ॥ १६ ॥ और जगन्नाथ कृष्ण तथा वृष्णियोंके मारनेकी इच्छा करने लगा और वह महा बुद्धिमान् राजा मुख्य २ सेना साथमें लिये था ॥ १७ ॥ पुरके द्वारमें प्राप्त हो यत्नसे सेनाको स्थापन कर स्थित हुए सब राजोंसे इस प्रकार पौंड्रक कहने लगा ॥ १८ ॥ हमारा नाम सुनाकर भेरी बाजा बजाया जाय या तो युद्ध करो या हमारी देने योग्य वस्तु कररूपसे प्रदान करो ॥ १९ ॥ महाबली

महाघोरं महारौद्रं युगान्तजलदोपमम् ॥ धनुर्गदासमाकीर्णं महावाद्योपमं महत् ॥ १५ ॥ अग्न्यर्कसदृशाकारं ययौ द्वारवतीमनु ॥ गृहीतदीपिको राजा वीर्यवान्बलवान्नृप ॥ १६ ॥ हन्तुमेच्छज्जगन्नाथं वृष्णींश्चैव समन्ततः ॥ आकर्षन्बलमुख्यांस्तान् राज्ञः सर्वान् महाद्युतिः ॥ १७ ॥ पुरद्वारं समासाद्य बलं संस्थाप्य यत्नतः ॥ इदं प्रोवाच राजा तु नृपान्सर्वानवस्थितान् ॥ १८ ॥ ताड्यतामत्र भेरी तु नाम विश्राव्य मामकम् ॥ युध्यतां युध्यतामत्र देयं वा प्रतिदीयताम् ॥ १९ ॥ आगतः पौण्ड्रको राजा युद्धार्थी वीरवत्तरः ॥ हन्तुकामः समग्रान्वः कृष्णबाहुबलाश्रयान् ॥ २० ॥ इति ते प्रेषिताः सर्वे समीयुः सूचकान्बहून् ॥ दीपिकाश्च प्रदीप्यन्ते बह्वयः शतसहस्रशः ॥ २१ ॥ इतश्चेतश्च राजानो युद्ध्यन्ते युद्धलालसाः ॥ पुरीं ते पुरतस्तत्र क्षत्रियाः शस्त्रिणस्तथा ॥ २२ ॥ सिंहनादं प्रकुर्वन्तः शस्त्रधारासमाकुलाः ॥ कुतोऽयं वृष्णिप्रवरः कुतो राजा जगत्पतिः ॥ २३ ॥ कुतोऽयं सात्यकिर्वीरः कुतो हार्दिक्य एव च ॥ कुतो नु बलभद्रश्च सर्वयादवसत्तमः ॥ इत्येवं कथयन्तो वै सजानः सर्व एव ते ॥ २४ ॥

पौंड्रक राजा युद्ध करनेको आया है और कृष्णके बाहुबलका आश्रय किये तुम सबके मारनेकी इच्छा करता है ॥ २० ॥ इस प्रकार आज्ञासे वे सब भेजे जाकर घोषणा करने लगे और सैकडों मसालें जलाई गईं ॥ २१ ॥ इधर उधरसे वे शस्त्रधारी क्षत्रिय राजा पुरीको घेरकर युद्ध करने लगे ॥ २२ ॥ शस्त्रधारा लिये सिंहनाद करने लगे और बोले; वह वृष्णीयोंमें उत्तम राजा जगत्पति कहां है ॥ २३ ॥ वीर सात्यकि और हार्दिक्य कहां है तथ

यादवोंमें बली बलभद्र कहां हैं, इस प्रकार वे सब राजा कहनें लगें ॥ २४ ॥ सब ओरसे बडे बडे शस्त्र लिये तथा अनेक शर और चाप धारण किये युद्धके निमित्त वख्तर धारण किये चारों ओरसे द्वारकापुरीको घेरने लगे ॥ २५ ॥ इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे भविष्यपर्वणि भाषायां पौण्ड्रकवधे त्रिनवतितमोऽध्यायः ॥ ९३ ॥ वैशंपायन बोले; तब सब यादव इस प्रकार सेनाका संचय देखकर कि महाशस्त्र धारियोंद्वारा रात्रिमें व्यसन प्राप्त हुआ है ॥ १ ॥ महावातसे उद्भूत कल्पान्तमें युद्धकी समान है, तब वेभी युद्धकी इच्छासे शस्त्र लेकर स्थित हुए सब शस्त्रयोधी यादव हाथोंमें

आदाय शस्त्राणि बहूनि सर्वतः शरांश्च चापानि बहूनि सर्वे ॥ युद्धाय सन्नाहनिबद्धशो ययुर्हरेः पुरीं द्वारवतीं नृपोत्तमाः ॥ २५ ॥
इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे भविष्यपर्वणि पौण्ड्रकवधे त्रिनवतितमोऽध्यायः ॥ ९३ ॥ वैशम्पायन उवाच ॥ ततश्च यादवाः सर्वे दृष्ट्वा सैनिकसंचयम् ॥ रात्रौ च व्यसनं प्राप्तं महाशस्त्रसमाकुलम् ॥ १ ॥ महावातसमुद्भूतं कल्पान्ते समरोपमम् ॥ सन्नद्धाः समपद्यन्त शस्त्रिणो युद्धलालसाः ॥ २ ॥ गृहीतदीपिकाः सर्वे यादवाः शस्त्रयोधिनः ॥ सात्यकिर्बलभद्रश्च हार्दिक्यो निशठस्तथा ॥ ३ ॥ उद्धवोऽथ महाबुद्धिरुग्रसेनो महाबलः ॥ अन्ये च यादवाः सर्वे कवचग्रग्रहे रताः ॥ ४ ॥ समस्तयुद्धकुशला रात्रौ सन्नाहयोधिनः ॥ शस्त्रिणः खड्गिनश्चैव सर्वे शस्त्रसमाकुलाः ॥ ५ ॥ युद्धाय समपद्यन्त बहवो बाहुशालिनः ॥ रथिनो गदिनश्चैव सादिनः सायुधास्तथा ॥ ६ ॥ नित्ययुक्ता महात्मानो धन्विनः पुरुषोत्तमाः ॥ निर्ययुर्नगरात्तूर्णं दीपिकाभिः समन्ततः ॥ ७ ॥ कुतः पौण्ड्रक इत्येवं वदन्तः सर्वसात्वताः ॥ दीपिकादीपितो देशो निस्तमाः समपद्यत ॥ ८ ॥

मशाल लिये तथा सात्यकि बलभद्र हार्दिक्य निशठ ॥ २ ॥ ३ ॥ महाबुद्धि उद्धव महाबली उग्रसेन औरभी सब यादव कवच पहरे हुए ॥ ४ ॥ सम्पूर्ण युद्धमें कुशल रात्रिमें युद्ध करनेकी इच्छासे तय्यार शस्त्र खड्ग धारे सब प्रकारसे चतुर ॥ ५ ॥ बडी भुजावाले युद्ध करनेमें तत्पर रथमें बैठनेवाले गदावाले रथी युद्धमें तत्पर आयुध लिये ॥ ६ ॥ नित्य युक्त महात्मा धनुषधारी पुरुषोत्तम प्रकाश किये बहुत शीघ्र नगरसे बाहर निकले ॥ ७ ॥ पौंड्रक कहां है, इस प्रकार वे सब कहते चले, मशालोंसे सब प्रकार उजाला हो गया ॥ ८ ॥

जब कहीं अंधकार न रहा तब वृष्णियोंका शत्रुओंके साथ महाघोर संग्राम हुआ ॥ ९ ॥ तब रोमहर्षण तुमुल संग्रामके होनेमे घोडे घोडोंके और हाथी हाथियोंके साथ भिड गये ॥ १० ॥ रथ रथोंसे रथवान् रथवानसे खड्गवाले खड्गवालोंसे गदावाले गदावालोंसे भिड गये ॥ ११ ॥ यह मिलाप परस्पर बडा दारुण हुआ उनका शब्द महाप्रलयके संक्षोभकी समान हुआ ॥ १२ ॥ चारों ओरसे धावमान होते हुए राजोंको प्रहार करने लगे यह महाबाहु खड्गधारी बली पतित होता है ॥ १३ ॥ अहो यह बाण तो बडा घोर है यह गदा धारण किये राजा इन सबको बाधा देता है ॥ १४ ॥ यह रथी

ततो वितिमिरो देशः समन्तात्प्रत्यपद्यत ॥ युद्धं समभवद्घोरं वृष्णिभिः शत्रुभिः सह ॥९॥ ततो महान् समभवत्सन्नादो रोमहर्षणः ॥ हया हयैः समायुक्ता गजाश्च गजयूथपैः ॥१०॥ रथा रथैः समायुक्ताः सादिभिः सादिनस्तथा ॥ खड्गिनः खड्गिभिः सार्द्धं गदिभिर्गदिनस्तथा ॥ ११ ॥ परस्परव्यतीकारो रण आसीत्सुदारुणः ॥ महाप्रलयसंक्षोभः शब्दस्तेषां महात्मनाम् ॥ १२ ॥ धावन्तः प्रहरन्त्येतान् हन्त्येतान्सर्वतो नृपान् ॥ अयमेष महाबाहुः खड्गी पतति वीर्यवान् ॥ १३ ॥ अयमेष शरो घोरो वर्ततेऽतिसुदारुणः ॥ गदी चायं महावीर्यः सर्वान्नो बाधते नृपः ॥ १४ ॥ अयं रथी शरी चापी गदी तूणी तनुत्रवान् ॥ यादृशः सर्वतो याति कुन्तपाणिरयं बली ॥ १५ ॥ अयमत्र महाशूली संश्रितः सर्वतो दिशम् ॥ गजोऽयं सविषाणाग्रो वर्तते सर्वतः प्रति ॥ १६ ॥ अतिसर्वत्रगः शूरो वेगवान्वातसन्निभः ॥ शराञ्छरैः सगाहन्ति दण्डान्दण्डैर्जगत्पते ॥ १७ ॥ कुन्तान्कुन्तैः समाजघ्नुर्गदाभिश्च गदास्तथा ॥ परिघान्परिघैः सार्द्धं शूलाञ्छूलैः समन्ततः ॥ १८ ॥

धनुष गदा बाण तर्कस लिये सब ओरसे बरछी लियेकी समान धावमान होता है ॥ १५ ॥ यह बडा शूल लिये चारों ओरसे धावमान होता है। यह हाथी बडे दांतवाला सब ओर धावमान होता है ॥ १६ ॥ यह शूर सब ओरसे पवनकी समान वेगसे धावमान होता है शरोंको शरोंसे दण्डोंके दण्डसे हनन करता है ॥ १७ ॥ बरछीवालोंको बरछीसे गदावालोंको गदासे परिघवालोंको परिघोंसे शूलवालोंको चारों ओर शूलसे हनन करने लगे ॥ १८ ॥

 हे महाराज! इस प्रकार उनका घोर संग्राम हुआ बडा संग्राम और बडाही शब्द हुआ॥ १९ ॥ संग्राममें बडे शब्दवाले प्राणी शब्द करने लगे शंखोंका घोर शब्द
होने लगा ॥२०॥ यह रात्रिमें घोरशब्द युद्धका हुआ जब इस प्रकार शत्रुओंके साथ यादवोंका घोर संग्राम हुआ ॥ २१॥ कोई विकल हो पृथ्वीपर
 गिरते हुए कोई हाथ चरण शिरहीन हो पृथ्विमें गिरे ॥२२॥ शस्त्रधारी महाबली राजा पृथ्वीमें गिरने लगे कोई बख्तर भिन्न होकर सहस्र प्रकार पृथ्वीमें
गिर पडे ॥ २३ ॥ परस्पर युद्ध कर एक दूसरेके वधकी इच्छा किये शस्त्र त्यागे सब प्रकार क्षत शरीर हुए ॥ २४ ॥ यमराज्यकी वृद्धि करनेवाले

एवं तेषां महाराज कुर्वतां रणमुत्तमम् ॥ संग्रामः सुमहानासीच्छब्दश्चापि महानभूत् ॥ १९ ॥ भूतानि सुबहून्याजौ शब्दवन्ति महान्ति च ॥ प्रादुरासन्सहस्राणि शंखानां भीमनिःस्वनः ॥ २० ॥ रात्रौ प्रादुरभूच्छब्दः संग्रामे रोमहर्षणः ॥ वर्तमाने महायुद्धे वृष्णीनां चैव तैः सह ॥ २१ ॥ केचिद्ग्रस्ताः समापेतुः पृथिव्यां पृथिवीक्षितः ॥ केचित्पतिताश्छिष्टाश्च विप्रकीर्णशिरोधराः॥२२॥ पेतुरुर्व्यां महावीर्या राजानः शस्त्रपाणयः ॥ केचित्तु भिन्नवर्माणः समापेतुः सहस्रधा ॥ २३ ॥ परस्परं समाश्रित्य परस्परवधैषिणः॥ न्यस्तशस्त्रा महात्मानः समन्तात्क्षतविग्रहाः ॥ २४ ॥ पेतुर्गतासवः केचिद्यमराष्ट्रविवर्द्धनाः ॥ एवं ते निहता राजन्योधिताः सर्व एव तु ॥ २५ ॥ एतस्मिन्नन्तरे शूर एकलव्यो निषादपः ॥ धनुर्गृह्य महाघोरं कालान्तकयमोपमः ॥ २६ ॥ शरैरनेकसाहस्रैरर्दयामास यादवान् ॥ परं शतैः शराणां तु निशितैर्मर्मभेदिभिः ॥ २७ ॥ वृष्णीनां च बलं सर्वं पोथयामास सर्वतः ॥ युद्ध्यतः शस्त्रपाणींश्च क्षत्रियान्वीर्यवत्तरान् ॥ २८ ॥ निशठं पञ्चविंशत्या शराणां नतपर्वणाम् ॥ सारणं दशभिर्विद्ध्वा हार्दिक्यं पञ्चभिः शरैः ॥ २९ ॥

प्राणरहित हो पृथ्वीमें गिरने लगे इस प्रकार सब प्रकार युद्ध करनेवाले राजा मृतक हुए ॥२५॥ इसी समय निषादपति शूर एकलव्य राजा कालान्तक
यमकी समान घोर धनुष ग्रहण कर ॥ २६ ॥ सहस्रों बाणोंसे यादवोंका मर्दन करने लगा वह मर्मभेदी सैकडों बाण थे ॥ २७ ॥ वह चारों ओरसे
सब यादवोंकी सेनाको नष्ट करने लगा और वीर्यवान् शस्त्र लिये क्षत्रियोंसे युद्ध करने लगा ॥ २८ ॥ बडे तीक्ष्ण पचीस बाणसे निशठको दश बाणसे

सारणको पांच बाणसे हार्दिक्यको ॥ २९ ॥ नब्बे बाणसे उग्रसेनको सात बाणसे वसुदेवको दशसे उद्धवको पांचसे अक्रूरको विद्ध किया॥ ३० ॥ इस प्रकार तीक्ष्ण बाणोंसे सबको विद्ध किया इस प्रकार यादवी सेनाको विद्रावण कर अपना नाम सुनाकर वह बली॥ ३१ ॥ एकलव्य बली यदुओंको व्यथित करने लगा और बोले अब वोह वीर सात्यकि कहां जाता है ॥ ३२ ॥ और मदमत्त हलधर गदाधर कहां जाता है इस प्रकार सिंहोंको विस्मित करता हुआ सिंहनाद करने लगा ॥ ३३ ॥ इति श्रीम० खिलेषु हरिवंशे भवि० भाषायां पौण्ड्रकवधे चतुर्नवतितमोऽध्यायः ॥ ९४ ॥ वैशंपायन बोले जब इस प्रकार यादवी सेना और वृष्णिवीर निवृत्त हुए और उसके भीत होने तथा अनेक वीरोंके मरनेमें ॥ १ ॥ दीपिका शान्त होने और चारों ओर निश्शब्द होनेपर

उग्रसेनं नवत्याशु वसुदेवं च सप्तभिः ॥ उद्धवं दशभिश्चैव ह्यक्रूरं पञ्चभिः शरैः ॥ ३० ॥ एवमेकैकशः सर्वे निहता निशितैः शरैः ॥ विद्राव्य यादवीं सेनां नाम विश्राव्य वीर्यवान् ॥ ३१ ॥ एकलव्यो यदुवृषान्वीर्यवान्बलवान्दृढम् ॥ इदानीं सात्यकिर्वीरः क्व यास्यति महाबलः ॥ ३२ ॥ मदमत्तो हली साक्षात्क यातीह गदाधरः॥ इत्याह सिंहनादेन सिंहान्विस्मापयन्निव ॥ ३३ ॥ इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे भवि० पौण्ड्रकवधे चतुर्नवतितमोऽध्यायः ॥ ९४ ॥ वैशम्पायन उवाच ॥ निवृत्तेष्वथ सैन्येषु वृष्णिवीरेषु चैव हि ॥ भीतेष्वथ महाराज हतेषु युधि सर्वतः ॥ १ ॥ दीपिकासु प्रशान्तासु निःशब्दे सति सर्वतः ॥ जितमित्येव यन्मत्वा वृष्णीनां बलमुत्तमम् ॥ २ ॥ ततः पौण्ड्रो महावीर्यो बभाषे सैनिकान्स्वकान् ॥ शीघ्रं गच्छत राजेन्द्राष्टङ्कैः कुन्तैः पुरीमिमाम् ॥ ३ ॥ कुठारैः कुन्तलैश्चैव पाषाणैः सर्वतोदिशम् ॥ कर्षणस्थैः सुपाषाणैः सर्वतो यात भूमिपाः ॥ ४ ॥ भिद्यन्तां प्राकारचयाः प्रासादाश्च समन्ततः॥ गृह्यन्तां कन्यकाः सर्वा दास्यश्चैव समन्ततः ॥ ५ ॥ गृह्यन्तां वसुमुख्यानि धनानि सुबहून्यथ ॥ ते तथेति महात्मानो राजानः सर्व एव तु ॥ ६ ॥

उन्होंने जाना लिया कि हमने वृष्णिवंशियोंको जीत लिया ॥ २ ॥ तब महावीर पौण्ड्र अपनी सेनासे कहने लगा. हे राजेन्द्र ! शीघ्रतासे जाकर टंक और बरछोंसे इस पुरीको खोदो ॥ ३ ॥ कुहाडे कुन्तल और पाषाण सब ओर डालो खैंचनेयोग्य पत्थरोंको सब ओर ले चलो ॥ ४ ॥ इसका परकोटा और प्राकार सब ओरसे तोड डालो सब राजकन्या दासी करनेको ग्रहण करो ॥ ५ ॥ मुख्य रत्न और धन ग्रहण कर लो यह आज्ञा सुन उन राजोंने कहा

ऐसेही होगा ॥ ६ ॥ पौंड्रककी आज्ञासे कुठारोंद्वारा प्राकारको ढाने लगे रसआदिके संचयवाले प्रासाद और प्राकार भग्न करने लगे ॥ ७ ॥ तब चारों ओरसे महाशब्द प्रगट हुआ जिस समय बलपूर्वक टांकियोंसे प्रासाद छेदित होने लगे ॥ ८ ॥ हे महाराज ! उस समय पूर्वके द्वारसे प्राकार कुछ भग्न हो गया उस महाघोर शब्दको सुनकर सात्यकि क्रोधसे मूर्च्छित हो गया ॥ ९ ॥ कि यादवेश्वर कृष्ण मुझमें यह सब सौंपकर अविनाशी शंकरके देखनेको कैलासपर्वतमें गये हैं ॥ १० ॥ द्वारकापुरीकी रक्षा मुझे अवश्य करनी चाहिये यह मनमें विचार शीघ्रतासे धनुष लाकर ॥ ११ ॥ महात्मा दारुकके पुत्रसे

कुठारैः सर्वतश्चैव चिच्छिदुः पौण्ड्रकाज्ञया ॥ प्राकारांश्चैव सर्वत्र प्रासादान्रससंचयान् ॥ ७ ॥ अथ तत्र महाशब्दः प्रादुरासीत् समन्ततः ॥ टङ्केषु पात्यमानेषु प्राकारेषु महाबलैः ॥८॥ पूर्वद्वारे महाराज भिन्नाः प्राकारसंचयाः ॥ श्रुत्वा शब्दं महाघोरं सात्यकिः क्रोधमूर्च्छितः ॥ ९ ॥ मयि सर्वं समारोप्य केशवो यादवेश्वरः ॥ गतः कैलासशिखरं द्रष्टुं शंकरमव्ययम् ॥ १० ॥ अवश्यं हि मया रक्ष्या पुरी द्वारवती त्वियम् ॥ इति संचिन्त्य मनसा धनुरादाय सत्वरम् ॥ ११ ॥ रथं महान्तमारुह्य दारुकस्य महात्मनः ॥ पुत्रेण संस्कृतं घोरं यन्ता च स्वयमेव हि ॥ १२ ॥ धनुर्महत्तदादाय शरांश्चाशीविषोपमान् ॥ आमुच्य कवचं घोरं शस्त्रसंपातदुःसहम् ॥ १३ ॥ अङ्गदी कुण्डली तूणी शरी चापी गदासिमान् ॥ ययौ युद्धाय शैनेयः संस्मरन्केशवं वचः ॥१४॥ दीपिकादीपिते देशे ययौ सात्यकिरुत्तमः॥ तथैव बलदेवोऽपि रथमारुह्य भास्वरम् ॥१५॥ गदी शरो महावीर्यः प्रायाद्रणचिकीर्षया ॥ सिंहनादं प्रकुर्वन्तो मुञ्चन्तो भैरवं रवम् ॥ १६ ॥ उद्धवोऽपि बली साक्षाद्गजमारुह्य सत्वरम् ॥ मत्तं महारवं घोरं संग्रामे नीतिमत्तरम् ॥ १७ ॥

लाये महारथमें चढकर जो उसके द्वारा सजाया गया था और स्वयं उसका यन्ता होकर ॥ १२ ॥ बडा धनुष ग्रहण कर आशीविषकी समान घोर बाण लेकर दुस्सह शस्त्रपात सहनेवाला घोर कवच पहर कर ॥ १३ ॥ बाजूबंद कुंडल धारण किये शर और गदा तल्वार लिये श्रीकृष्णके वचन स्मरण करता सात्यकि युद्ध करनेको चला ॥ १४ ॥ मशालें जलवाकर सात्यकि उस स्थानमें पहुँचा, इसी प्रकार प्रकाशमान रथमें स्थित हो बलदेवजी चले ॥ १५ ॥ यह महाबली गदा और धनुषबाणको हाथमें लिये लडाईकी इच्छासे चले, सिंहनाद और भयंकर शब्द करते चले ॥ १६ ॥ बली ऊधोभी हाथीके

ऊपर चढकर जो मत्त और महावीर संग्राममें नीतिशुक्र था ॥ १७ ॥ यह ऊधो परमप्रसन्नतासे संग्राममें राजनीति विचारते चले दूसरे वृष्णिवंशी संग्रामकी इच्छासे चले ॥ १८ ॥ हाथी घोडोंपर चढे हार्दिक्य आदि यादव आगे प्रकाशके निमित्त दीपिकावालोंसे युक्त ॥ १९ ॥ सिंहनाद करते केशवका वचन स्मरण किये युद्धकी लालसासे पूर्वद्वारमें प्राप्त हुए ॥ २० ॥ वे महाबली परस्पर मिलकर वहां स्थित हुए महावीर प्रकाशमें जब दीपिका प्रज्वलित हुई ॥ २१ ॥ तब सात्यकि वीर शर चाप लिये तरकस धारण किये धनुषपर वायव्य अस्त्र चढाकर ॥ २२ ॥ श्रेष्ठ धनुषको कान-

ययो नीतिं विचिन्वानः परां प्रीतिं महाबलः ॥ अन्ये च वृष्णयः सर्वे ययुः संग्रामलालसाः ॥ १८ ॥ रथान् गजान् समारुह्य हार्दिक्यप्रमुखास्तथा ॥ दीपिकाभिश्च सर्वत्र पुरोवृत्ताभिरीश्वराः ॥ १९ ॥ सिंहनादं प्रकुर्वन्तः स्मरन्तः केशवं वचः ॥ पूर्वद्वारं समागम्य वृष्णयो युद्धलालसाः ॥ २० ॥ ते समेत्य यथायोगं स्थितास्तत्र महाबलाः ॥ स्थिते सैन्ये महावीरे दीपिकादीपिते पथि ॥ २१ ॥ शिनिर्वीरः शरी चापी गदी तूणीरवान्विभो ॥ वायव्यास्त्रं समादाय योजयित्वा महाशरम् ॥ २२ ॥ आकर्णपूर्ण-माकृष्य धनुःप्रवरमुत्तमम् ॥ मुमोच परसैन्येषु शिनिर्वीरः प्रतापवान् ॥ २३ ॥ वायव्यास्त्रेण ते सर्वे तत्रस्था नरसत्तमाः ॥ विजिता ह्यस्त्रवीर्येण यत्र तिष्ठति पौण्ड्रकः ॥२४॥ तत्र गत्वा स्थिताः सर्वे निर्धूता वातरंहसा ॥ यत्र पूर्वं स्थिताः सर्वे विद्रुता राजस-त्तमाः ॥ २५ ॥ तत्र स्थित्वा च शैनेयः शरमादाय सत्वरम् ॥ निशितं सर्पभोगाभं बभाषे सात्यकिस्तदा ॥ २६ ॥ क्व इदानीं महाबुद्धिः पौण्ड्रको राजसत्तमः ॥ स्थितोऽस्ति व्यवसायेन शरी चापी महाबलः ॥ २७ ॥

पर्यन्त खैंचकर शत्रुकी सेनामें प्रहार करने लगा ॥ २३ ॥ जो वहां स्थित थे वे सब वायव्य अस्त्रसे पराजित हो पौंड्रकके समीप चले गये ॥ २४ ॥ वातके वेगसे पराजित हो वे सब वहां स्थित हुए जहां पहले व्याकुल हो स्थित हुए थे ॥ २५ ॥ और सात्यकि वहां स्थित हो शर ग्रहण कर जो सर्पकी समान था कहने लगा ॥ २६ ॥ इस समय वह बुद्धिमान् पौंड्रक कहां है मैं धनुषबाण शर चापधारीसे युद्ध करनेको स्थित हूं ॥ २७ ॥

मैं उस दुरात्माको आज वध करूंगा मैं केशवका भृत्य उसके मारनेके निमित्त स्थित हूं ॥ २८ ॥ सब क्षत्रियोंके देखते उसका शिर छेदन कर उस दुरात्माके शरीरकी बली गिद्ध और कुत्तोंको दूंगा ॥ २९ ॥ कारण कि उसके सिवाय चोरकी समान कर्म कौन कर सकता है जब कि रात्रिमें सब यादव सो रहे थे तब आया ॥ ३० ॥ यह राजा बली नहीं सर्वथा चोर है यदि समर्थ होता तो यह अधम इस प्रकार चोरी नहीं करता ॥ ३१ ॥ अहो इसके चोरवत् आनेसे मैं किसी प्रकार इसको बली नहीं मानता हूं ॥ ३२ ॥ यह कह महाबली सात्यकि हास्य करने लगा और धनुष चढाकर

यदि द्रष्टा दुरात्मानं ततो हन्ता नृपाधमम् ॥ भृत्योऽस्मि केशवस्याहं जिघांसुः पौण्ड्रकं स्थितः ॥२८॥ छित्त्वा शिरस्तु तस्यास्य सर्वक्षत्रस्य पश्यतः ॥ बलिं दास्यामि गृध्रेभ्यः श्वभ्यश्चैव दुरात्मनः॥ २९ ॥ को नाम ईदृशं कर्म चोरवच्च समाचरेत् ॥ सुप्तेषु निशि सर्वत्र यादवेषु महात्मसु ॥ ३० ॥ चोरोऽयं सर्वथा राजा नहि राजा बलान्वितः ॥ यदि शक्तो न कुर्याच्च चौर्यमेवं नृपाधमः ॥ ३१ ॥ अहोऽस्य बलिनो राज्ञश्चोरकार्यं प्रकुर्वतः ॥ सर्वथागमनं तस्य नहि पश्यामि साम्प्रतम् ॥ ३२ ॥ इत्युक्त्वा सात्यकिर्वीरः प्रजहास महाबलः ॥ विस्फार्य सुदृढं चापं संदधे कार्मुके शरम् ॥ ३३ ॥ आकर्ण्य वचनं वीरः सात्यकेस्तस्य धीमतः ॥ क्व नु कृष्णः क्व गोपालः कुतः सोऽद्य प्रवर्त्तते॥३४॥ स्त्रीहन्ता पशुहन्ता च क्व च स्वामीति सेवितः ॥ स इदानीं क्व वर्तेत गृहीत्वा मम नाम तत्॥३५॥ हन्ता सख्युर्महावीर्यो नरकस्य महात्मनः ॥ ममैव तात युद्धेऽस्मिन् हते तस्मिन्दुरात्मनि ॥ ३६ ॥ गच्छ त्वं कामतो वीर योद्धुं न क्षमते भवान् ॥ अथवा तिष्ठ किंचित्तु ततो द्रष्टासि मे बलम् ॥ ३७ ॥

उसपर बाण चढाता हुआ ॥ ३३ ॥ वह वीर उस सात्यकिके वचन सुनकर बोला वह गोपालकृष्ण कहां है ॥ ३४ ॥ वह स्त्रीहंता पशुहन्ता स्वामी सेवित मेरा नाम ग्रहण कर इस समय कहां गया है ॥ ३५ ॥ जिसने महाबली नरक महात्मा मेरे सखाको मारा है. हे तात ! इस युद्धमें उस दुरात्माकोही मारूंगा ॥ ३६ ॥ हे वीर ! तेरी जहां इच्छा हो वहां चला जा मुझसे युद्ध करनेको तू समर्थ नहीं है अथवा क्षणमात्र ठहरकर मेरा बल देख ले ॥ ३७ ॥

घोर बाणोंसे तेरा शिर पृथ्वीमें गिराये देता हूं. हे वीर ! तेरे हत होनेसे पृथ्वी तेरा रुधिर पान करेगी ॥ ३८ ॥ जब वह गोप सुनेगा कि सात्यकि मृतक हो गया जो गर्व उसका महान् वर्तता है ॥ ३९ ॥ सो तेरे मरनेसे वह नष्ट हो जायगा तुझे रक्षामें स्थित कर वह गोपाल कैलासपर्वतको ॥ ४० ॥ चला गया है यह हमने पहले सुन रक्खा है. हे सात्यकि ! जो तुझे सामर्थ्य है तो तीक्ष्ण बाण ग्रहण कर यह कह बाण लेकर युद्ध करनेको स्थित हुआ ॥ ४१ ॥ इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे भविष्यपर्वणि भाषायां पौंड्रकवधे सात्यकिपौंड्रभाषणं नाम पंचनवतितमोऽध्यायः ॥ ९५ ॥ वैशम्पायन बोले, हे

शिरस्ते पातयिष्यामि शरैर्घोरैर्दुरासदैः ॥ हतस्य तव वीरेह भूमिः पास्यति शोणितम् ॥ ३८ ॥ श्रोष्यते स तथा गोपो हतः सात्यकिरित्यपि ॥ यो गर्वस्तस्य गोपस्य सर्वदा वर्तते महान् ॥ ३९ ॥ विनश्यति स तु क्षिप्रं हते त्वयि यदूत्तम ॥ त्वयि रक्षां समादिश्य गोपः कैलासपर्वतम् ॥ ४० ॥ गत इत्येवमस्माभिः श्रुतं पूर्वं महामते ॥ शरं गृहाण निशितं यदि शक्तोऽसि सात्यके ॥ इत्युक्त्वा बाणमादाय ययौ योद्धुं व्यवस्थितः ॥ ४१ ॥ इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे भविष्यपर्वणि पौंड्रकवधे सात्यकिपौंड्रभाषणं नाम पञ्चनवतितमोऽध्यायः ॥ ९५ ॥ वैशम्पायन उवाच ॥ ततः क्रुद्धो महाराज सात्यकिर्वृष्णिपुङ्गवः ॥ उवाच वचनं राजन्वासुदेवं स्मरन्निव ॥ १ ॥ अवोचदीदृशं वाक्यं वासुदेवं नृपाधमः ॥ को नाम जगतां नाथमित्थं ब्रूयाज्जिजीविषुः ॥ २ ॥ मृत्युस्त्वां सर्वथा याति वदन्तं तादृशं वचः ॥ जिह्वा ते शतधा दीर्यच्छ्दतस्तादृशं वचः ॥ ३ ॥

महाराज ! यह वचन सुन सात्यकिको बडा क्रोध हुआ और श्रीकृष्णको स्मरण करता हुआ वचन कहने लगा ॥ १ ॥ हे नृपाधम ! जो कि तू वासुदेवके प्रति ऐसे वचन कहता है जीनेकी इच्छा करनेवाला जगन्नाथके प्रति कौन ऐसे वचन कह सकता है ॥ २ ॥ ऐसे वचन कहते हुए सर्वथा तेरे निमित्त मृत्यु प्राप्त होगी ऐसे वचन कहनेमें तेरी जिह्वाके सौ खण्ड होंगे ॥ ३ ॥

हे पौंड्रक ! यह मैं तेरा शिर कायासे पृथक् करूंगा और जो वासुदेव नाम तुझमें वर्तता है ॥ ४ ॥ सो जबतक कायासे तेरा शिर न गिरेगा तबहीतक
यह नाम तुझमें है सो प्रातःकाल हमारे भगवान् कृष्णही वासुदेव रहेंगे ॥ ५ ॥ वह एकही जगन्नाथ सबके कर्ता और सर्वगामी हैं. हे दुरात्मन् ! इसमें
सन्देह नहीं वही देव सर्वथा स्थित रहेंगे ॥ ६ ॥ हे नीच राजन् ! मैं तुम्हारी कायासे सर्वथा तेरा शिर काटकर गिराऊंगा जो भगवान् विष्णु नहीं
आवेंगे ॥ ७ ॥ अब तू सब अपना अस्त्र और वीर्यका बल मुझे दिखा. हे राजन् ! इससे अधिक तुम्हारा पराक्रम नहीं है ॥ ८ ॥ मैं युद्धको खडा

यावत्पताति कायात्ते शिरस्तावत्प्रवर्तते ॥ स एव श्वो न भगवान्वासुदेवो भविष्यसि ॥ ५ ॥ एक एव जगन्नाथः कर्ता सर्वस्य सर्वगः ॥ दुरात्मन्सर्वथा देवो भविष्यति न संशयः ॥ ६ ॥ एष तेऽहं शिरः कायात्पातयिष्यामि राजक ॥ यदसौ भगवान्विष्णुर्नागमिष्यति साम्प्रतम् ॥ ७ ॥ अस्त्रवीर्यं बलं चैव सर्वं दर्शय साम्प्रतम् ॥ नातः परतरं राजन्वीर्यं च तव वर्त्तते ॥ ८ ॥ सर्वं दर्शय यत्नेन स्थितोऽस्मि व्यवसायवान् ॥ शरी चापी गदी खड्गी सर्वथाऽहमुपस्थितः ॥ ९ ॥ नैतन्नगरमायासीः सत्यमेतद्ब्रवीम्यहम् ॥ सर्वथा कृतकृत्योऽस्मि दृष्ट्वा त्वां वासुदेवकम् ॥ १० ॥ तवाङ्गं तिलशः कृत्वा श्वभ्यो दास्यामि राजक ॥ इत्युक्त्वा बाणमादाय वासुदेवं महाबलः ॥ ११ ॥ आकर्णपूर्णमाकृष्य विव्याध निशितं शरम् ॥ स तेन विद्धो यदुना वासुदेवः प्रतापवान् ॥ १२ ॥ वमञ्छोणितमत्युष्णमङ्गान्नेत्रान्नृपोत्तम ॥ ततश्चुक्रोध नृपतिर्वासुदेवः प्रतापवान् ॥ १३ ॥

एष ते पातयिष्यामि शिरः कायाच्च पौण्ड्रक ॥ यन्नाम वासुदेवेति तव संप्रति वर्त्तते ॥ ४ ॥

इस नगरमें तू न आवेगा यह मैं सत्य कहता हूं तुझ मिथ्या
हूं तू यह सब यत्नसे दिखा शर चाप गदा खड्ग लिये मैं सर्वथा उपस्थित हूं ॥ ९ ॥ हे नीच ! तेरे शरीरको तिलकी समान टुकडे कर कुत्तोंको दे दूंगा यह कहकर वह बली बाण लेकर
वासुदेवको देख मैं सर्वथा कृतकृत्य हूं ॥ १० ॥ मुख और नेत्रसे शोणित वमन करने
पौंड्रकके ऊपर ॥ ११ ॥ कानपर्यन्त धनुष चढाय बाण छोडता हुआ उस बाणसे पौंड्रक विद्ध होकर ॥ १२ ॥
लगा और उस प्रतापी पौंड्रकने बडा क्रोध किया ॥ १३ ॥

नौ और दश बडे तीक्ष्ण बाणोंसे राजाने सात्यकिको विद्ध किया और बडी गर्जना की ॥ १४ ॥ तब यमराजाकी समान घोर धनुष चढाकर पौंड्रकने बाणद्वारा ॥ १५ ॥ सात्यकिको विद्ध कर अपनी सेनाके लोगोंको प्रसन्न किया, सत्यसंगर सात्यकि नाराचसे विद्ध होकर ॥ १६ ॥ जो बाण उसके ललाटमें लगा था उसके वेगसे वह वृष्णियोंमें श्रेष्ठ चेष्टारहित हो रथमें स्थित हुआ ॥ १७ ॥ तब पौंड्रकने दश बाण उसके घोडोंके मारे और पचीस बाणसे उसके सारथि और घोडोंको विद्ध किया ॥ १८ ॥ वे घोडे और सारथि रुधिरसे लिप्त हो गये और पौंड्रकके देखते २ विह्वल हो

नवभिर्दशभिश्चैव शरैः सन्नतपर्वभिः ॥ विव्याध सात्यकिं राजा ननर्द च बहुधा किल ॥ १४ ॥ ततो नाराचमादाय निशितं यमसंनिभम् ॥ धनुराकृष्य भगवान्वासुदेवो नृपोत्तम ॥ १५ ॥ विव्याध सात्यकिं भूयो निशि प्रह्लादयन्स्वकान् ॥ नाराचेन समाविद्धः सात्यकिः सत्यसङ्गरः ॥ १६ ॥ ललाटे सुदृढं वीरो वृष्णीनामग्रणीस्तदा ॥ निषसाद रथोपस्थे निश्चेष्ट इव सत्तमः ॥ १७ ॥ ततः स पौण्ड्रको राजा विद्ध्वा दशभिराशुगैः॥ सारथिं पञ्चविंशत्या हयांश्च चतुरो नृप ॥१८॥ ते हया रुधिराक्ताङ्गा सारथिश्च समन्ततः॥ विह्वलाः समपद्यन्त वासुदेवस्य पश्यतः॥१९॥ वासुदेवो रथे चापि सिंहनादं समाददे ॥ तेन नादेन तत्राभूद्विबुद्धः सात्यकिर्नृप॥२०॥ विद्धान् हयांस्तथा दृष्ट्वा सारथिं च तथागतम् ॥ शैनेयोऽथ महावीर्यो रुषितो नृपसत्तमः ॥ २१ ॥ अलं द्रक्ष्यामि ते वीर्यमित्युक्त्वा बाणमाददे ॥ विव्याध तेन बाणेन वक्षस्येनं महाबलः ॥ २२ ॥ ततश्चचाल तेनाजौ वासुदेवः शरेण ह ॥ सुस्राव रुधिरं घोरमत्युष्णं वक्षसो नृप ॥ २३ ॥ रथोपस्थे पपाताशु निश्वसन्नुरगो यथा ॥ कृत्यं चापि न जानाति केवलं निषसाद ह ॥ २४ ॥

गये ॥ १९ ॥ यह देख पौंड्रकने सिंहनाद किया उस शब्दसे सात्यकिको चेतना हुई ॥ २० ॥ घोडोंको विद्ध और सारथिकी यह दशा देखकर महाबली सात्यकि महाक्रोधित हुआ ॥ २१ ॥ बस तुम्हारा पराक्रम देख लिया यह कहकर बाण ग्रहण किया और पौंड्रककी छातीमें बाण मारा ॥ २२ ॥ युद्धमें उस बाणसे सात्यकिने राजाको चलायमान कर दिया और छातीसे बहुतसा रुधिर निकलने लगा ॥ २३ ॥ तब वह सर्पकी समान श्वास लेता

रथके ऊपर मूर्च्छित हो गिरा और कुछ कर्तव्यको न जानकर केवल विषादको प्राप्त हुआ ॥ २४ ॥ तब सात्यकिने दश बाणसे उसके रथको विद्ध
किया और भालेसे उसकी ध्वजाको छेदन कर दिया ॥ २५ ॥ चारों घोडे मारकर और बाणोंसे सारथिको विद्ध कर पौंड्रकके देखते युद्ध करने
लगा ॥ २६ ॥ और उसके सारथिका शिर काटकर नीचे गिरा दिया रथकी ग्रंथि तोड दी और घोडोंको प्राणरहित कर दिया ॥ २७ ॥ दश बाणोंसे
उसके चक्रको तिलकी समान काट दिया और पौंड्रकको देखकर बडा हास्य किया ॥ २८ ॥ तब महाबली सात्यकि सबके देखते बडा शब्द करने

सात्यकिस्तु रथं विद्धा दशभिः सायकैस्तथा ॥ ध्वजं चिच्छेद भल्लेन वासुदेवस्य वृष्णिपः॥२५॥ हयांश्च चतुरो हत्वा बाणैः सारथि-
मेव च ॥ युयुधानोऽथ राजेन्द्र पौण्ड्रकस्य च पश्यतः ॥२६॥ सारथेश्च शिरः कायादाहरत्स रथात्तदा ॥ रथग्रन्थिं च चिच्छेद हयाश्च
व्यसवोऽभवन् ॥ २७ ॥ चक्रं च तिलशः कृत्वा बाणैर्दशभिरंहसा ॥ जहास विपुलं राजन्वासुदेवं महाबलः ॥ २८ ॥ ततः परं मह-
त्प्रायं सात्यकिर्वृष्णिनन्दनः ॥ शब्दं कृत्वा बली साक्षात्सर्वक्षत्रस्य पश्यतः ॥ २९ ॥ शरैः सप्ततिसंख्याकैरर्दयामास सत्वरम् ॥ ते
शराः शलभाकारा निपेतुः सर्वशस्तदा ॥ ३० ॥ शिरस्तः पार्श्वतश्चैव पृष्ठतः पुरतस्तथा ॥ केवलं धैर्यनिचयस्तृषार्तः शरवान्
यथा ॥ ३१ ॥ यथा मनस्वी रिक्तश्च तथा तिष्ठति पौण्ड्रकः ॥ ततश्चुक्रोध बलवान्वासुदेवः प्रतपवान् ॥ ३२ ॥ अर्धचन्द्रं समा-
दाय विव्याध युधि सात्यकिम् ॥ विद्धा सप्तभिरायान्तं क्रोधेन प्रस्फुरन्निव ॥ ३३ ॥ विद्धोऽथ सात्यकिस्तेन शरैः पञ्चभिराशुगैः ॥
चापं चिच्छेद पौण्ड्रस्य सिंहनादं व्यनीनदत् ॥ ३४ ॥

लगा ॥ २९ ॥ और (७०) सत्तर बाणोंसे फिर मर्दन किया, वे शलभके आकारके बाण सब ओर पतित होने लगे ॥ ३० ॥ शिर पार्श्व पीछे ॥२१७॥
आगे सब ओर बाण गिरने लगे जैसे कोई बाणवाला प्यासा होता है इस प्रकार पौंड्रक होकर धैर्य धारण कर स्थित हुआ ॥ ३१ ॥ और जैसे कोई
बुद्धिमान् रीता होकर स्थित होता है इस प्रकार पौंड्रक स्थित हुआ परंतु फिर वह बलवान् पौंड्रक क्रोधित हुआ ॥ ३२ ॥ और अर्धचन्द्र बाण
लेकर युद्धमें सात्यकिको विद्ध किया और सात बाणसे क्रोधित हो उसने विद्ध किया ॥ ३३ ॥ तब सात्यकिने विद्ध होकर पांच बाणोंसे पौंड्रकका

धनुष छेदन कर दिया और सिंहनाद किया ॥ ३४ ॥ तब पौंड्रकने गदा लेकर उसे घुमाकर बडी शीघ्रतासे सात्यकिकी छातीमें मारी ॥ ३५ ॥ यदुनं-
दनने आती हुई उस गदाको बायें हाथसे खैंचकर और उसीसे पौंड्रकको युद्धमें ताडन किया ॥ ३६ ॥ पौंड्रकनेभी उसे बीचमेंही पकडकर दश शक्तिसे
युद्धमें सात्यकिको ताडन किया ॥ ३७॥ सत्यसंगर सात्यकि युद्धमें उन शक्तियोंसे विद्ध हो अपना धनुष छोड दूसरा धनुष ग्रहण कर उस वृष्णिवंशियोंमें
श्रेष्ठने पौंड्रकको ताडन किया ॥ ३८ ॥ इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे भविष्यपर्वणि भाषायां कैलासयात्रायां पौंड्रकवधे षण्णवतितमोऽध्यायः ॥ ९६ ॥

वासुदेवो गदां गृह्य भ्रामयित्वा पदात्पदम् ॥ त्वरितं पातयामास सात्यकेर्वक्षसि प्रभो ॥ ३५ ॥ सव्येन तां समाकृष्य करेण यदु-
नन्दनः ॥ शरं प्रगृह्य विव्याध सात्यकिर्युधि पौंड्रकम् ॥ ३६ ॥ तमन्तरे गृहीत्वाशु वासुदेवः प्रतापवान् ॥ शक्तिभिर्दशभिश्चैव
सात्यकिं निजघान ह ॥ ३७ ॥ ताभिर्विद्धो रणे वीरः सात्यकिः सत्यसंगरः ॥ अपास्य धनुरन्यत्तद्धनुरादाय सत्वरम् ॥ आजघान
तदा वीरो वृष्णीनामग्रणीर्नृपः॥३८॥ इति श्रीम० खिलेषु हरिवंशे भवि० कैलासयात्रायां पौण्ड्रकवधे षण्णवतितमोऽध्यायः ॥ ९६ ॥
वैशम्पायन उवाच ॥ ततः क्रुद्धो गदापाणिः सात्यकिर्वृष्णिनन्दनः ॥ वासुदेवं जघानाशु गदया तीक्ष्णया नृप ॥ १ ॥ सात्यकिं वासु-
देवस्तु गदयाभ्यहनद्बली ॥ तावुद्यतगदौ वीरौ शुशुभाते सुदारुणौ ॥ २ ॥ हस्तौ वने यथा सिंहौ परस्परवधैषिणौ ॥ ततः स सात्यकिः
क्रुद्धः सव्यं मण्डलमागमत् ॥ ३ ॥ दक्षिणं वासुदेवस्तु तं जघान स्तनान्तरे ॥ युयुधानोऽथ वीरस्तु बाह्वोर्मध्यमताडयत् ॥ ४ ॥
दृढं स ताडितो वीरो जानुभ्यामपतद्भुवि ॥ तत उत्थाय वीरस्तु ललाटेऽभ्यहनद्गदाम् ॥ ५ ॥

वैशंपायन बोले; हे राजन् ! तब वृष्णिनंदन सात्यकिने गदा ले उसी तीक्ष्णगदासे पौंड्रकको ताडन किया ॥ १ ॥ बली पौंड्रकनेभी गदा लेकर सात्यकिको
ताडन किया, गदाको उठाये वे दोनों वीर बडी शोभाको प्राप्त हुए ॥ २ ॥ जैसे परस्पर वधकी इच्छा किये वनमें दो मतवाले सिंह हो तब क्रुद्ध होकर
सात्यकि सव्यमण्डलको प्राप्त हुआ ॥ ३ ॥ और दक्षिण ओर पौंड्रक हुआ उस समय उनकी छातीमें आघात किया युद्ध करते हुए उस वीरकी
छातीमें आघात किया ॥ ४ ॥ तब सात्यकिसे वह वीर दृढ ताडित हो पृथ्वीमें जंघाके बलसे बैठ गया फिर बडी शीघ्रतासे उठकर राजाने ललाटमें

आघात किया ॥ ५ ॥ सात्यकि कुछ विषण्ण होकर फिर बहुत शीघ्रतासे उठा और गदासे पौंड्रकको ताडन किया ॥ ६ ॥ तब बली वीर पौंड्रकने साक्षात् मृत्युकी समान क्रोधकर नेत्रोंसे जलाते हुए सात्यकिको गदासे ताडन किया ॥ ७ ॥ वह सात्यकि उसकी भुजासे छोडी हुई गदासे ताडित हो सहसा मृत्युकी गोदीमें प्राप्त हुएकी समान पृथ्वीमें पतित हुआ ॥ ८ ॥ फिर चैतन्यताको प्राप्त हो हाथोंसे गदाको दृढतापूर्वक ग्रहण कर प्रहार करता हुआ ॥ ९ ॥ उस कालायस लोहेकी बनी महागदाको दो टुकडे कर और त्यागन कर वह वीर सिंहनाद करने लगा ॥ १० ॥ तब वह महाबली

विषण्णः किंचिदास्थाय तत उत्थाय सत्वरम् ॥ गदयाभ्यहनद्वीरः सात्यकिः पौण्ड्रसत्तमम् ॥ ६ ॥ वासुदेवो बलिर्वीरः साक्षान्मृत्युरिवापरः ॥ जघान गदया वृष्णिं निर्दहन्निव चक्षुषा ॥ ७ ॥ स तया ताडितो वृष्णिर्गदया बाहुमुक्तया ॥ आलम्ब्य भूमिं सहसा मृत्योरङ्कगतो यथा ॥ ८ ॥ संज्ञां पुनः समालम्ब्य पाणिभ्यां दृढमेव च ॥ गदां तस्य महाराज गृहीत्वा प्रग्रहेण ह ॥९॥ द्विधा कृत्वा महागुर्वीं गदां कालायसीं शुभाम् ॥ उत्सृज्य सहसा वीरः सिंहनादं व्यनीनदत् ॥ १० ॥ तत उत्सृज्य राजा तु वासुदेवो महाबलः ॥ सव्येन सात्यकिं गृह्य दक्षिणेन करेण ह ॥ ११ ॥ मुष्टिं कृत्वा महाघोरां वासुदेवः प्रतापवान् ॥ ताडयामास मध्ये तु स्तनयोः सात्यकेर्नृप ॥१२॥ शैनेयो वृष्णिवीरस्तु गदामुत्सृज्य सत्वरम् ॥ तलेनाभ्यहनद्वीरो वासुदेवं रणाजिरे ॥ १३ ॥ तलेन वासुदेवोऽपि सात्यकिं सत्यसंगरम् ॥ तयोरेवं महाघोरं तलयुद्धं प्रवर्तत ॥१४॥ जानुभ्यां मुष्टिभिश्चैव बाहुभ्यां शिरसा तदा ॥ उरसोरः समाहत्य जानुभ्यां जानुनी तथा ॥ १५ ॥

राजा गदाको छोडकर बायें हाथसे सात्यकिको पकड दाक्षिण हाथकी ॥ ११ ॥ महाघोर मुष्टिसे वीरने सात्यकिकी छातीको ताडन किया ॥ १२ ॥ तब वीर सात्यकीनेभी शीघ्रतासे गदाको छोड युद्धमें राजाको तलप्रहारसे ताडित किया ॥ १३ ॥ राजानेभी तलप्रहारसे सात्यकिको ताडन किया इस प्रकार दोनोंका घोर तलयुद्ध हुआ ॥ १४ ॥ जानु मुष्टि बाहु शिर हृदयसे हृदय और जानुसे जानु ताडन करने लगे ॥ १५ ॥

हाथसे हाथको आहत कर ताडन करने लगे. हे राजन् ! जैसे वनमें तालवृक्ष निकट होकर युद्ध करें ॥१६॥ और उनका सन्निकर्षतासे महाशब्द हो इस प्रकार शब्द होने लगा वे पौंड्रक और सात्यकि दोनों युद्धमें बडे विख्यात थे ॥१७॥ जब कि रातका अंधेरा घोर था दीपक बुझ गये तब वे दोनों शस्त्र त्याग मल्लयुद्ध करने लगे ॥ १८ ॥ हे महाराज ! उस समय दोनों सेनाओंको संदेह होने लगा क्या सात्यकि वीर इससे हत हो जायगा ॥ १९ ॥ वा यह पौंड्रक राजा इससे हत हो जायगा इस समय यह दोनों वीर परस्पर वधकी इच्छा करते ॥२०॥ युद्ध करते हुए स्वर्गको जायंगे और किसी प्रकार

कराभ्यां करमाहत्य तौ युद्धं संप्रचक्रतुः॥ तालयोस्तत्र राजेन्द्र वृक्षयोः संनिकर्षयोः॥१६॥ वने यथा निरुत्पन्नस्तथैवाभून्महास्वनः॥ तावाजौ प्रथितौ वीरावुभौ पौण्ड्रकसात्यकी ॥१७॥ निशि स्तिमितमूकायां शस्त्रं त्यक्त्वा महाबलौ ॥ युयुधाते महारङ्गे मल्लौ द्वाविव विश्रुतौ ॥१८॥ उभे सेने महाराज्ञोः संशयं जग्मतुस्तदा ॥ किं नु स्यात्सात्यकिर्वीरो हतस्तेन भविष्यति ॥ १९ ॥ आहोस्विद्वासुदेवस्तु हतस्तेन महात्मना ॥ अद्य वै तौ महावीरौ परस्परवधैषिणौ ॥ २० ॥ युध्यमानौ महावीरौ तदा (नरौ) स्वर्गं गमिष्यतः ॥ अन्यथा नोपरम्येतां युद्धाद्वीरौ सुनिश्चितौ ॥ २१ ॥ अहो वीर्यमहो धैर्यमेतयोर्बलशालिनोः ॥ एतौ महाबलौ लोके एतौ प्रकृतिसत्तमौ ॥ २२ ॥ नैवं युद्धं महाघोरमासीद्देवासुरेष्वपि ॥ न श्रुतो न च वा दृष्टः संग्रामोऽयं कदाचन ॥ २३ ॥ एते वै सैनिका ब्रूयुः सेनयोरुभयोरपि ॥ रात्रौ निशीथे मेघौघे दृष्ट्वा युद्धं सुदारुणम् ॥ २४॥ अथ तौ बाहुभिर्वीरौ संनिपेततुरञ्जसा ॥ दशभिर्मुष्टिभिर्जघ्ने सात्यकिः पौण्ड्रकं तदा ॥ २५ ॥

यह दोनों वीर युद्धसे विरामको प्राप्त न होंगे ॥ २१ ॥ इन बलशालियोंके धैर्य और पराक्रमको धन्य है यह लोकमें दोनों महाबली और श्रेष्ठ प्रकृतिवाले हैं ॥ २२ ॥ ऐसा घोर युद्ध तो देवता और असुरोंमेंभी नहीं हुआ था ऐसा संग्राम न कभी देखा न सुना ॥ २३ ॥ इस प्रकार दोनों सेनाके लोग कहने लगे आधी रातके समय मेघसमूहमें दारुण युद्ध देखकर चकित हुए ॥ २४ ॥ तब वे दोनों वीर बाहुयुद्धमें प्रवृत्त हुए तब सात्यकिने राजाके दश घूंसे मारे ॥ २५ ॥

पौंड्रने सात्यकिके पांच घूंसे मारे उनके मारे उनके चटचट शब्दसे ब्रह्माण्डको महाक्षोभ हुआ और सबको आश्चर्य करनेवाला शब्द सर्वत्र होने लगा ॥ २६ ॥
इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे भविष्यपर्वणि भाषायां पौंड्रकवधो नाम सप्तनवतितमोऽध्यायः ॥ ९७ ॥ वैशंपायन बोले; इसी समय निषादपति एक-
लव्य महाक्रोधित हो बलरामके ऊपर धनुष लेकर शीघ्रतासे चला ॥ १ ॥ दश नाराच और बाणोंसे उनको विद्ध किया और सब क्षत्रियोंके देखते
उनका आधा धनुष छेदन कर दिया ॥ २ ॥ दश बाणसे सूत और तीस बाणसे रथको ताडित किया और भल्लास्त्रसे बलदेवजीने एकलव्यकी ध्वजा

पञ्चभिः सात्यकिं पौण्ड्रः समाजघ्ने महाबलः ॥ तयोश्चटचटाशब्दो ब्रह्माण्डक्षोभणो महान् ॥ प्रादुरासीत्तु सर्वत्र सर्वान्विस्मापयन्निव ॥ २६ ॥
इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे भविष्यपर्वणि पौण्ड्रकवधो नाम सप्तनवतितमोऽध्यायः ॥ ९७ ॥ ॥ छ ॥ वैशम्पायन
उवाच ॥ एतस्मिन्नन्तरे क्रुद्ध एकलव्यो निषादपः ॥ बलभद्रमभि क्षिप्रं धनुरादाय सत्वरम् ॥ १ ॥ नाराचैर्दशभिर्विद्धा बाणैश्च
दशभिः परैः ॥ चिच्छेद धनुरर्द्धं तत्सर्वक्षत्रस्य पश्यतः ॥ २ ॥ सूतं दशभिराहत्य रथं त्रिंशद्भिरेव च ॥ ध्वजं चिच्छेद भल्लेन निषा-
दस्य जगत्पतिः ॥ ३ ॥ ततः परं महच्चापं निषादो वीर्यसंमतः ॥ दृढमौर्व्या समायुक्तं दशतालप्रमाणतः ॥ ४ ॥ कामपालं शरेणाशु
जघान जनमध्यतः ॥ बलदेवो महावीर्यः सर्पः शेष इव श्वसन् ॥ ५ ॥ दशभिस्तद्धनुर्दिव्यं शरैः सर्पसमैर्बलः ॥ चिच्छेद मुष्टिदेशे
तु माधवो माधवाग्रजः ॥ ६ ॥ एकलव्यो निषादेशः खड्गमादाय सत्वरः ॥ प्राद्रवद्बलमादाय निशितं घोरविग्रहम् ॥ ७ ॥

छेदन कर दी ॥ ३ ॥ तब वह बली निषाद दीर्घ चापको ग्रहण कर जो दीर्घ ज्यासे युक्त थी जिसका प्रमाण दश तालका था ॥ ४ ॥ उससे मनु-
ष्योंके देखते बलदेवजीको ताडन किया महाबली बलदेवजी सर्पकी समान श्वास लेने लगे ॥ ५ ॥ तब कृष्णके बडे भ्राता बलरामजीने उसके दिव्य
धनुषको मुष्टिदेशमेंसे छेदन कर दिया ॥ ६ ॥ तब निषादपति एकलव्य शीघ्रतासे खड्ग लेकर उस घोर विग्रहवालेको बलरामजीके ऊपर प्रहार करता

हुआ ॥ ७ ॥ उसको दूसरे प्रतापवान् यदुनंदन बलरामजीने पांच बाणोंसे तिलकी समान कर दिया ॥ ८ ॥ तब उस निषादने काले लोहेके बने उस खड्गको बडे वेगसे सारथिके ऊपर चलाया ॥ ९ ॥ यदुनंदन बलरामजीने उस खड्गकोभी बाहोंके मध्यमें भेदित कर दिया ॥ १० ॥ तब उस राजाने अनेक घंटे लगी हुई शक्तिको ग्रहण कर बलदेवके ऊपर प्रहार किया ॥ ११ ॥ और उस राजाने महाघोर सिंहनाद किया वह कल्याणी शक्ति बलदेवके निकट प्राप्त हुई १२ ॥ बलभद्रने आती हुई उस महाशक्तिको देखकर ग्रहण कर लिया जिससे निषादेश तथा और सब विस्मित हो गये ॥ १३ ॥

तमन्तरे पटुर्वीरो वृष्णिवीरः प्रतापवान् ॥ तिलशः पञ्चभिर्बाणैश्चकार यदुनन्दनः ॥ ८ ॥ ततोऽपरं महत्खड्गं सर्वकालायसं शुभम् ॥ प्राहिणोत्सारथेः कायमालक्ष्याथ निषादजः ॥ ९ ॥ तं चापि दशभिर्वीरो माधवो यदुनन्दनः ॥ बाह्वोरन्तरयोश्चैव निर्बिभेद महारणे ॥ १० ॥ ततः शक्तिं समादाय घण्टामालाकुलां नृपः ॥ निषादो बलदेवाय प्रेषयित्वा महाबलः ॥ ११ ॥ सिंहनादं महाघोरमकरोत्स निषादपः ॥ सा शक्तिः सर्वकल्याणी बलदेवमुपागतम् ॥ १२ ॥ उत्पतन्तीं महाघोरां बलभद्रः प्रतापवान् ॥ आदायाथ निषादेशं सर्वान्विस्मापयन्निव ॥ १३ ॥ तथैव तं जघानाशु वक्षोदेशे स माधवः ॥ स तया ताडितो वीरः स्वशक्त्याथ निषादपः ॥ १४ ॥ विह्वलः सर्वगात्रेषु निपपात महीतले ॥ प्राणसंशयमापन्नो निषादो रामताडितः ॥ १५ ॥ निषादास्तस्य राजेन्द्र शतशोऽथ सहस्रशः ॥ अष्टाशीतिसहस्राणि निषादास्तस्य योधिनः ॥ १६ ॥ गदिनः खड्गिनश्चैव महेष्वासा महाबलाः ॥ शरैरनेकसाहस्रैः शक्तिभिश्च परश्वधैः ॥ १७ ॥ गदाभिः पट्टिशैः शूलैः परिघैः प्रासतोमरैः ॥ कुन्तैरथ कुठारैश्च यादवानां महौजसाम् ॥ १८ ॥

तब बलरामजीने उसको वक्षस्थलमें ताडन किया जब वीर निषादपति उस अपनी शक्तिसे ताडन किया ॥ १४ ॥ तब सब शरीरसे विह्वल होकर वह पृथ्वीमें गिरा और रामसे ताडित हो निषाद प्राणसंशयको प्राप्त हुआ ॥ १५ ॥ हे राजन् ! उसके ताडित होनेपर सैकडों निषाद अर्थात् अठासी सहस्र राक्षस उसके साथ युद्ध करनेवाले ॥ १६ ॥ गदा खड्ग लिये महातरकस घोर महाबली सैकडों बाण शक्ति फरसे ॥ १७ ॥ गदा पट्टिश शूल परिघ

प्रास तोमर बर्छी कुठारोंसे महाबली यादवोंको ॥ १८ ॥ शलभकी समान अग्नि प्रदीप्त किये दूसरे रामकी समान बलरामके ऊपर बाणप्रहार करने लगे ॥ १९ ॥ कोई कुहाडे कोई बरछे और कोई परशोंसे मारने लगे कोई गदा शक्तिसे प्रहार करने लगे ॥ २० ॥ जिस प्रकार स्फुरायमान अग्निके ऊपर कोई प्रहार करता है, तब बलरामजीने क्रोधकर हलको उठाय ॥ २१ ॥ उन सबको खैंचकर मुशलसे पीडन करने लगे वे पर्वत आश्रयवाले निषाद इस प्रकार ताडित ॥ २२ ॥ सैकडों पृथ्वीपर गिरने लगे. हे महाराज ! क्षणमें उन सब महाबलियोंको मारकर ॥ २३ ॥

शलभा इव राजेन्द्र दीप्यमानं हुताशनम् ॥ ते शरैः पातयांचक्रू रामं रामनिकापरम् ॥ १९ ॥ केचित्कुठारैराजघ्नुः केचित्कुन्तैः परश्वधैः ॥ गदाभिः केचिदाघ्नन्ति शक्तिभिश्च तथा परे ॥ २० ॥ निजघ्नुः सहसा रामं स्फुरन्तं पावकं यथा ॥ ततः क्रुद्धो हली साक्षाद्धलमुद्यम्य सत्वरम् ॥ २१ ॥ सर्वानाकर्षयामास मुशलेन हि पीडयन् ॥ ते हन्यमाना राजेन्द्र निषादाः पर्वताश्रयाः ॥ २२ ॥ निपेतुर्धरणीपृष्ठे शतशोऽथ सहस्रशः ॥ क्षणेन तन्महाराज हत्वा सर्वान्महाबलान् ॥२३॥ सिंहवद्व्यनदंस्तत्र तस्थौ रामो महाबलः ॥ ततो रात्रौ महाघोराः पिशाचाः पिशिताशनाः॥ २४ ॥ आकृष्य मांसयूथानि भक्षयन्तः समासते ॥ पिबन्तः शोणितं कोष्ठात्संछिद्य च शवं बहु ॥ २५ ॥ इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे भविष्यपर्वणि एकलव्यसैन्यवधो नामाष्टनवतितमोऽध्यायः ॥ ९८ ॥ वैशम्पायन उवाच ॥ क्रव्यादाः सर्व एवाशु भक्षयन्तस्तदा शवम् ॥ हसन्तो विविधं घोरं नादयन्तो वसुंधराम् ॥ १ ॥ राक्षसाश्च पिशाचाश्च पिबन्तः शोणितं बहु ॥ आशिलं भुञ्जते राजञ्छवस्य पिशिताशनाः ॥ २ ॥

सिंहकी समान शब्द करते बलरामजी वहां स्थित हुए उस रात्रिमें मांस खानेवाले महाघोर पिशाच ॥ २४ ॥ मांसके समूहोंको खैंचकर भक्षण करते हुए स्थित थे और मृतकोंके कोष्ठोंमें छेदकर उनका रुधिर पान करते थे ॥ २५ ॥ इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे भविष्यपर्वणि भाषायां एकलव्यसैन्यवधो नामाष्टनवतितमोऽध्यायः ॥ ९८ ॥ वैशंपायन बोले; तब चारों ओरसे क्रव्याद शवोंका भक्षण करने लगे और पृथ्वीको नादित करते वारंवार हास्य करने लगे ॥ १ ॥ राक्षस और पिशाच घोर रुधिर पान करने लगे और वे मांसके खानेवाले शिलाप-

र्यन्त शकको भक्षण करने लगे ॥ २ ॥ हे राजन्! वे रणसे संतुष्ट हो वहां नृत्य करने लगे कौए बगले गृध्र श्येन शृगाल ॥ ३ ॥ और राक्षस यह युद्धमें मांस भक्षण करते प्रवृत्त हुए इसी समय एकलव्यकी मूर्च्छा जागी ॥ ४ ॥ वह सब पर्वतचारी निषादोंको हत देखकर गदा ले बलरामके ऊपर झपटा ॥ ५ ॥ और उस गदाको बलरामजीके शिरपर मारा. हे राजन्! तब बलरामजीने गदा ग्रहण कर उस निषादपतिकी ॥ ६ ॥ जो बडा क्रूर था हलायुधने मदमत्त हो गदासे प्रहार किया, तब उनका भयंकर गदायुद्ध होने लगा ॥ ७ ॥ हे राजन्! उनके युद्धका शब्द आकाशमें होने लगा

नृत्यन्ति स्म तदा राजन्नगर्यां रणतोषिताः ॥ काकाश्च बलाका गृध्राश्च श्येना गोमायवस्तथा ॥ ३ ॥ भक्षयन्तः प्रवर्तन्ते राक्षसाश्चैव दारुणाः ॥ एतस्मिन्नन्तरे वीरो निषादो लब्धसंज्ञकः ॥ ४ ॥ हतान्सर्वान्समालोक्य निषादान्नगचारिणः ॥ गदामादाय कुपितो राममेव जगाम ह ॥ ५ ॥ जघान गदया राजञ्छत्रदेशे निषादपः ॥ ततो रामो मदी राजन्निषादं बाहुशालिनम् ॥ ६ ॥ आजघ्ने गदया क्रूरं मदमत्तो हलायुधः ॥ तयोश्च तुमुलं युद्धं गदाभ्यां समवर्त्तत ॥ ७ ॥ आकाशे शब्द आसीत्तु तयोर्युद्धे महाभुज ॥ समुद्राणां यथा घोषः सर्वेषां सन्निगच्छताम् ॥ ८ ॥ कल्पक्षये महाराज शब्दः सुतुमुलोऽभवत् ॥ क्षोभितो नागराजश्च नागाः क्षोभं समाययुः ॥ ९ ॥ पृथिवी चान्तरिक्षं च सर्वं शब्दमयं नभो ॥ ततः स पौण्ड्रको राजा सात्यकिं वृष्णिनन्दनम् ॥ १० ॥ गदयैव जघानाशु सत्वरं रणकोविदः ॥ युयुधानो बली राजन्वासुदेवं जघान ह ॥ ११ ॥ तयोश्च तुमुलः शब्दः प्रादुरासीन्महारणे ॥ चतुर्णां युध्यतां राजन्परस्परवधैषिणाम् ॥१२॥ ब्रह्माण्डक्षोभणो राजञ्छब्द आसीत्सुदारुणः ॥ ततो रजः प्रादुरभूत्तस्मिन्संग्राममूर्द्धनि ॥१३॥

जैसे मर्यादा त्यागकर चलनेसे समुद्रोंका शब्द होता है ॥ ८ ॥ हे महाराज! वह शब्द कल्पक्षयकी समान हुआ उससे नागराज और नागभी क्षुभित हो गये ॥ ९ ॥ पृथ्वी अन्तरिक्ष सब शब्दमय हो गया उस समय पौंड्रक राजा वृष्णिनंदन सात्यकिको ॥ १० ॥ बहुत शीघ्रतासे गदासे ताडन करता हुआ हे राजन्! सात्यकिने उसको गदासे ताडन किया ॥ ११ ॥ उस महारणमें उनका भयंकर शब्द होने लगा कारण कि वे चारों परस्पर वधकी इच्छासे युद्ध करने लगे ॥ १२ ॥ हे राजन्! उस समय ब्रह्माण्डका क्षोभ करनेवाला दारुण शब्द हुआ तब उस संग्राममें बडी रज उठी ॥ १३ ॥

हे राजन् ! तब अंधकारके क्षय होनेमें तारे कान्तिहीन हो गये फिर प्रातःकाल होनेपर सर्वथा अंधकार नष्ट हो गया ॥ १४ ॥ भगवान् सूर्य उदय हुए चन्द्रकान्ति मलीन हुई तब उन चारों वीरोंका बडा युद्ध होने लगा. हे राजन् ! सूर्योदयमें वह युद्ध देवासुरयुद्धकी समान हुआ ॥ १५ ॥ इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे भविष्यपर्वणि भाषायां पौंड्रकयुद्धे नवनवतितमोऽध्यायः ॥ ९९ ॥ वैशंपायन बोले; तब निर्मल प्रभात होनेमें भगवान् देवकीपुत्र जगत्पति बद्रिकाश्रमसे जानेकी इच्छा करने लगे ॥ १ ॥ हे राजन् ! वे सब मुनियोंको नमस्कार कर द्वारकापुरीको चले और गरुडपर चढ बडे वेगसे

तारका निष्प्रभा राजंस्तमस्येवं क्षये गते ॥ उषसि प्रतिबुद्धायां ततो निःशेषतां ययौ ॥ १४ ॥ उदितो भगवान्त्सूर्यश्चन्द्रश्च क्षयमाययौ ॥ तयोर्युद्धं प्रादुरभूच्चतुर्णां बाहुशालिनाम् ॥ देवासुरसमं राजन्नुदिते भास्करे महत् ॥ १५ ॥ इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे भविष्यपर्वणि पौण्ड्रकयुद्धे नवनवतितमोऽध्यायः ॥ ९९ ॥ वैशम्पायन उवाच ॥ ततः प्रभाते विमले भगवान्देवकीसुतः ॥ गन्तुमैच्छज्जगन्नाथः पुरं बदरिकाश्रमात् ॥ १ ॥ नमस्कृत्य मुनीन्सर्वान्ययौ द्वारवतीं नृप ॥ आरुह्य गरुडं विष्णुर्वेगेन महता प्रभुः ॥ २ ॥ सुमहाञ्छुश्रुवे शब्दस्तेषां युद्धं प्रकुर्वताम् ॥ गच्छता देवदेवेन पुरीं द्वारवतीं नृप ॥ ३ ॥ अचिन्तयज्जगन्नाथः को न्वयं शब्द उत्थितः ॥ संग्रामसंभवो घोर आर्यशैनेयसंयुतः ॥ ४ ॥ व्यक्तमागतवान्पौण्ड्रो नगरीं द्वारकामनु ॥ तेन युद्धं समभवत्पौंड्रकेन दुरात्मना ॥ ५ ॥ यदूनां वृष्णिवीराणां युद्ध्यतामितरेतरम् ॥ शब्दोऽयं सुमहान्व्यक्तो नात्र कार्या विचारणा ॥ ६ ॥ इत्येवं चिन्तयित्वा तु दध्मौ शङ्खं महारवम् ॥ पाञ्चजन्यं हरिः साक्षात्प्रीणयन्वृष्णिपुङ्गवान् ॥ ७ ॥

गमन किया ॥ २ ॥ तब उनको उन युद्ध करनेवालोंका महाशब्द सुनाई आने लगा, जब कि द्वारकाके समीपमें आगये थे ॥ ३ ॥ तब जगन्नाथ विचारने लगे कि यह कैसा शब्द है इस घोर संग्राममें आर्य (बलराम) और सात्यकिकाभी शब्द सुनाई आता है ॥ ४ ॥ इससे विदित होता है अवश्यही पौंड्र द्वारकापुरीमें आया है इस दुरात्मा पौंड्रके साथ युद्ध होता है ॥ ५ ॥ यह वृष्णिवीर यदु महायुद्ध करते हैं इसमें संदेह नहीं कि यह सब शब्द उसीका है ॥ ६ ॥ यह विचार कर हरिने यदुवंशियोंके प्रसन्न करनेको अपना महाशब्दवाला पांचजन्य शंख बजाया ॥ ७ ॥

उस शब्दसे कृष्णने आकाशको पूर्ण कर दिया यादव और वृष्णिवंशी उस शंखका घोर शब्द सुनकर ॥ ८ ॥ जान गये कि श्रीकृष्ण आये निश्चयही यह उनके शंखका शब्द है. हे राजन् ! इस प्रकार वृष्णि और यादवोंने माना ॥ ९ ॥ तब वे वृष्णि और यादव निर्भय हो गये उसी समय पक्षियोंमें श्रेष्ठ गरुडजी दीखे ॥ १० ॥ तब वह देवकीपुत्र उन यादवोंके द्वारा देखे गये सूत मागध उन जगत्पति के आगे चलने लगे ॥ ११ ॥ स्तुतियोग्य लक्ष्मीपति कमलाकान्तकी वह स्तुति करने लगे और सब यादव श्रीकृष्णके पीछे गमन करने लगे ॥ १२ ॥

रोदसी पूरयामास तेन शब्देन केशवः ॥ यादवा वृष्णयश्चैव श्रुत्वा शङ्खस्य ते रवम् ॥ ८ ॥ व्यक्तमायाति भगवान्पाञ्चजन्यरवो ह्ययम् ॥ इति ते मेनिरे राजन्वृष्णयो यादवास्तथा ॥ ९ ॥ निर्भयाः समपद्यन्त वृष्णयो यादवाश्च ते ॥ तस्मिन्नेव क्षणे दृष्टस्तार्क्ष्यश्च पततां वरः ॥ १० ॥ ततश्च देवकीसूनुर्दृष्टस्तैर्यादवेश्वरः ॥ सूताश्च मागधाश्चैव पुरो यान्ति जगत्पतेः ॥ ११ ॥ स्तुत्या स्तुतं हरिं विष्णुमीश्वरं कमलेक्षणम् ॥ प्रसाश्च यादवाः सर्वे परिवव्रुर्जनार्दनम् ॥ १२ ॥ कृष्णस्तु गरुडं भूयो गच्छ त्वं नाकमुत्तमम् ॥ इत्युक्त्वा गरुडं विष्णुर्विसृज्य यदुनन्दनः ॥ १३ ॥ दारुकं पुनराहेदं रथमानय मे प्रभो ॥ स तथेति प्रतिज्ञाय रथमादाय सत्वरम् ॥ १४ ॥ रथोऽयं भगवन्देव किमतः कृत्यमस्ति मे ॥ स एवमुक्त्वा रथमादाय प्रणम्याग्रे स्थितो हरेः ॥ १५ ॥ गतेऽथ गरुडे विष्णू रथमारुह्य सत्वरम् ॥ यत्र युद्धं समभवत्तत्र याति स्म केशवः ॥ १६ ॥ तत्र गत्वा महाराज युद्ध्यतां च महात्मनाम् ॥ पाञ्चजन्यं महाशङ्खं दध्मौ यदुवृषोत्तमः ॥ १७ ॥

तब श्रीकृष्णने गरुडके प्रति स्वर्ग जानेको कहा जब ऐसा कह श्रीकृष्णने गरुडको विदा किया ॥ १३ ॥ तब दारुकको आज्ञा दी कि हमारा रथ लाओ वह बहुत अच्छा ऐसा कह शीघ्र रथको लाता हुआ ॥ १४ ॥ और बोला हे भगवन् देव ! यह रथ विद्यमान है कहिये अब क्या आज्ञा है यह कह रथ लिये प्रणाम कर नारायणके आगे स्थित रहा ॥ १५ ॥ गरुडके चले जानेपर विष्णुजी उत्तम रथके ऊपर स्थित हो जहां युद्ध हो रहा था वहां श्रीकृष्ण गये ॥ १६ ॥ हे महाराज ! वहां जाकर उन महात्माओंको युद्ध करते देख यदुश्रेष्ठने अपना उत्तम पांचजन्य शंख बजाया ॥ १७ ॥

तब पौंड्रकने श्रीकृष्णको युद्धके निमित्त आया देखकर सात्यकिको छोड श्रीकृष्णके सन्मुख उपस्थित हुआ ॥१८॥ तब क्रोधकर सात्यकिने राजाको निवारण किया. हे राजन् ! जब मैं सन्मुख स्थित हूं तो मुझे छोड कहां जाते हो सनातन धर्म क्यों छोडते हो ॥ १९ ॥ हे राजेन्द्र ! मुझे जीतकर फिर दूसरेके साथ युद्ध करनेको जाओ हे वीर ! मेरे स्थित होनेमें क्षत्रियताको छोड जाना उचित नहीं है ॥ २० ॥ मैं युद्धमें तुम्हारा सम्पूर्ण गर्व नष्ट कर दूंगा यह कह यादवेश्वर उस जाते हुएके आगे स्थित हुआ ॥ २१ ॥ पौंड्रके आगे जब सात्यकि स्थित हुआ तब केशवने देखा तब

पौण्ड्रोऽथ वासुदेवस्तु कृष्णं दृष्ट्वा रणोत्सुकम् ॥ सात्यकिं पृष्ठतः कृत्वा वासुदेवमुपागमत् ॥ १८ ॥ क्रुद्धोऽथ सात्यकी राजन्वारयामास पौण्ड्रकम् ॥ न गन्तव्यमितो राजन्नेष धर्मः सनातनः ॥ १९ ॥ जित्वा मां गच्छ राजेन्द्र परं योद्धुं महारणे ॥ क्षत्रियोऽपि महावीर स्थिते मयि रणोत्सुके ॥ २० ॥ एष ते गर्वमखिलं नाशयिष्यामि संयुगे ॥ इत्युक्त्वा चाग्रतस्तस्थौ गच्छतो यादवेश्वरः ॥ २१ ॥ पौण्ड्रस्य शिनिनप्ता तु पश्यतः केशवस्य ह ॥ अवज्ञाय शिनेः पौत्रं कृष्णमेव जगाम ह ॥ २२ ॥ निर्भर्त्स्य सहसा भूयः सात्यकिः क्रोधमूर्च्छितः ॥ गदया प्राहरत्पौण्ड्रं वासुदेवस्य पश्यतः ॥ २३ ॥ यथाप्राणं यथायोगं सात्यकिः सत्यविक्रमः ॥ दृष्ट्वाथ भगवानेवं सात्यकिं प्रशशंस ह ॥२४॥ निवार्य सात्यकिं कृष्णो यथेष्टं क्रियतामसौ ॥ उपारमद्यथायोगं सात्यकिः कृष्णवारितः ॥ २५ ॥ स ततः पौण्ड्रको राजा वासुदेवमुवाच ह ॥ भो भो यादव गोपाल इदानीं क्व गतो भवान् ॥ २६ ॥

सात्यकिका तिरस्कार कर वह श्रीकृष्णकेही सन्मुख चला ॥ २२ ॥ उसके वारंवार घुडकनेमें सात्यकि क्रोधसे मूर्च्छित हो गया और श्रीकृष्णके देखते पौंड्रके ऊपर गदा प्रहार किया ॥ २३ ॥ सत्यविक्रम सात्यकिने अपने पूरे बलसे प्रहार किया यह देखकर भगवान्ने सात्यकिकी प्रशंसा की ॥२४॥ तब श्रीकृष्णने सात्यकिको निवारण कर कहा इसे यथेष्ट करने दो, तब कृष्णके निषेध करनेसे सात्यकि निवारित हुआ ॥ २५ ॥ तब पौंड्रकने वासुदेवसे कहा. हे यादव गोपाल इतने समयतक तू कहां था ॥ २६ ॥

मैं वासुदेव तुम्हें देखनेको आया हूं हे कृष्ण ! बलसहित मैं तुमको मारकर अपनी सेनाके साथ ॥ २७ ॥ पृथ्वीमें एकही वासुदेव हूंगा हे गोविंद ! जो तुम्हारा घोर विख्यात चक्र है ॥ २८ ॥ और इस तुम्हारे चक्रसे मैं पीडित हूंगा. हे माधव ! इस समय तुम्हारे चक्रमें जो बल है ॥ २९ ॥ सो सब क्षत्रियोंके देखते वह सब बल मैं नष्ट करूंगा मुझ शार्ङ्गीके सामने शार्ङ्गी नहीं रह सकते ॥ ३० ॥ हे माधव ! तुम्हारे शंखमें जो बल है सो दिखाओ. हे जनार्दन ! शंख चक्र गदाका धारण करनेवाला मैं हूं ॥ ३१ ॥ मुझहीको बलशाली ऐसा कहते हैं, पहले तुमने बली वृद्ध बालक

त्वां द्रष्टुमथ संप्राप्तो वासुदेवोऽस्मि साम्प्रतम् ॥ हत्वा त्वां सबलं कृष्ण बलैर्बहुभिरान्वितः ॥ २७ ॥ अहमेको भविष्यामि वासुदेवो महीतले ॥ यच्चक्रं तव गोविन्द प्रथितं सुप्रभं महत् ॥ २८ ॥ अनेन तव चक्रेण पीडितोऽस्मि च तद्रणे ॥ चक्रमस्तीति तद्वीर्यं तव माधव साम्प्रतम् ॥२९॥ नाशयिष्यामि तत्सर्वं सर्वक्षत्रस्य पश्यतः ॥ शार्ङ्गीति मां विजानीहि न त्वं शार्ङ्गीति शिष्यते ॥३०॥ (शंखमस्तीति तद्वीर्यं तव माधव साम्प्रतम्) ॥ शंखी चाहं गदी चाहं चक्री चाहं जनार्दन ॥ ३१ ॥ मामेव हि सदा ब्रूयुर्जानन्तो वीर्यशालिनः ॥ आदौ त्वं बलवद्वृद्धान्हत्वा स्त्रीबालकान्बहून् ॥ ३२ ॥ गाश्च हत्वा महागर्वस्तव सम्प्रति वर्त्तते ॥ तत्तेऽहं व्यपनेष्यामि यदि तिष्ठसि मत्पुरः॥३३॥शस्त्रं गृहाण गोविन्द यदि योद्धुं व्यवस्थितः॥इत्युक्त्वा बाणमादाय तस्थौ पार्श्वे जगत्पतेः॥३४॥ एतद्वचनमाकर्ण्य वासुदेवेन भाषितम् ॥ स्मितं कृत्वा हरिः कृष्णो बभाषे पौण्ड्रकं नृपम् ॥ ३५ ॥ कामं वद नृप त्वं हि पातक्यस्मि सदा नृप ॥ गोघाती बालघाती च स्त्रीहन्ता सर्वथा नृप ॥ ३६ ॥

और स्त्री बहुतोंको मारा है ॥ ३२ ॥ और बैलको मारकर सम्प्रति तुमको बडा गर्व हो रहा है, सो जो मेरे सामने तुम स्थित रहे तो वह तेरा घमण्ड मैं दूर कर दूंगा ॥ ३३ ॥ हे गोविन्द ! यदि युद्ध करना प्रिय मानते हो तो शस्त्र ग्रहण करो यह कह बाण लेकर जगत्पतिके आगे स्थित हुआ ॥ ३४ ॥ पौंड्रक वासुदेवके कहे यह वचन सुनकर हँसकर श्रीकृष्ण उससे कहने लगे ॥ ३५ ॥ हे राजन् ! मैं पातकी हूं इस बातको आप

अच्छी प्रकार कहिये गोघाती बालघाती तथा सर्वथा मैं स्त्रीहन्ता हूं ॥ ३६ ॥ हे राजन् ! तुमही सदा शंख चक्र गदा धारण करनेवाले हो और मेरा वासुदेव नाम मिथ्याही है ॥ ३७ ॥ शार्ङ्ग धनुष चक्र गदा शंख यह सब वृथाही है परन्तु यदि मानो तो मैं कुछ कहता हूं बली क्षत्रिय मुझ जगत्पतिके स्थित होनेमें ॥ ३८ ॥ मेरे जीवित होनेमेंभी तुमको ऐसा कहते हैं और जो असुरोंको मारनेवाला तुम्हारा महाचक्र है ॥ ३९ ॥ मेरा चक्र बडेपनमें उसकी बराबर बलमें नहीं आयुधोंमें भी शब्दमात्रसे सादृश्यता है बलसे नहीं है ॥ ४० ॥ हे राजन् ! मैं सदा प्राणियोंके प्राणका देनेवाला गोप

चक्री भव गदी राजञ्छार्ङ्गी च सततं भव ॥ नामधेयं वृथा मह्यं वासुदेवेति च प्रभो ॥ ३७ ॥ शार्ङ्गी चक्री गदी शङ्खीत्येवमादि वृथा मम ॥ किं तु वक्ष्यामि किंचित्तु शृणुष्व यदि मन्यसे ॥ क्षत्रिया बलिनो ये तु स्थिते मयि जगत्पतौ ॥ ३८ ॥ तथा नु ब्रुवते त्वां हि जीवत्येव मयि प्रभो ॥ यत्ते चक्रं महाघोरमसुरान्तकरं महत् ॥ ३९ ॥ तत्तुल्यं मम चक्रं तु वृत्ततो न तु वीर्यतः ॥ आयुधेष्वथ सर्वत्र शब्दसादृश्यमस्ति ते ॥ ४० ॥ गोपोऽहं सर्वदा राजन्प्राणिनां प्राणदः सदा ॥ गोप्ता सर्वेषु लोकेषु शास्ता दुष्टस्य सर्वदा ॥४१ ॥ कत्थनं सर्वकार्यं हि जित्वा शत्रून्नृपाधम ॥ अजित्वा किं भवान्ब्रूते स्थिते मयि च शस्त्रिणि ॥ ४२ ॥ हत्वा मां ब्रूहि राजेन्द्र यदि शक्तोऽसि पौण्ड्रक ॥ स्थितोऽहं चक्रमाश्रित्य रथी चापी गदासिमान् ॥ ४३ ॥ रथमारुह्य युद्धाय सन्नद्धो भव मानद ॥ इत्युक्त्वा भगवान्विष्णुः सिंहनादं व्यनीनदत् ॥ ४४ ॥ इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे भविष्यपर्वणि के० कृष्णपौण्ड्रकयुद्धं नाम शततमोऽध्यायः॥ १०० ॥वैशम्पायन उवाच॥ ततः शरं समादाय वासुदेवः प्रतापवान्॥पौण्ड्रं जघान सहसा निशितेन शरेण ह ॥१॥

हूं सब लोकका रक्षक और दुष्टोंका शास्ता हूं ॥ ४१ ॥ हे नृपाधम ! सब शत्रुओंको जीतकर कार्यका कथन करना ठीक है मुझ शस्त्रधारीके विना जीते तुम किस प्रकार ऐसा कहते हो ॥ ४२ ॥ हे पौंड्रक ! यदि समर्थ है तो मुझको जीतकर ऐसा कह, मैं चक्र रथ गदा चाप तलवारसे युक्त हूं ॥ ४३ ॥ तुम रथपर स्थित युद्धके निमित्त तैयार हो. हे मानद ! शीघ्र आओ यह कह भगवान् विष्णुने सिंहनाद किया ॥ ४४ ॥ इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे भविष्यपर्वणि भाषायां पौंड्रकयुद्धं नाम शततमोऽध्यायः ॥ १०० ॥ वैशंपायन बोले; तब प्रतापवान् वासुदेव तीक्ष्ण बाण लेकर

पौंड्रकको तीक्ष्ण बाणसे ताडन करते हुए ॥ १ ॥ तब पौंड्रकवासुदेवने दश बाणोंसे वृष्णिनंदन वासुदेवको ताडन किया ॥ २ ॥ पचीस बाणसे दारुकको दश बाणसे घोडोंको और सत्तर बाणसे वासुदेवको ताडित किया ॥ ३ ॥ तब केशिनिषूदन हास्य करके मनसेही इसकी बडाई करके ॥ ४ ॥ बलवान् अपना शार्ङ्ग धनुष चढाकर तीक्ष्ण बाणोंसे उसकी ध्वजाओंको छेदन कर दिया ॥ ५ ॥ और फिर यदुनंदनने सारथिका शिर उसकी कायासे पृथक् कर दिया, और चार बाणोंसे चारों घोडोंको मार दिया ॥ ६ ॥ फिर राजाके रथ और उनके पार्ष्णिग्राहोंको मार दिया और चक्रको तिलकी समान

पौण्ड्रोऽथ वासुदेवस्तु शरैर्दशभिराशुगैः ॥ वासुदेवं जघानाशु वार्ष्णेयं वृष्णिनन्दनम् ॥ २॥ दारुकं पञ्चविंशत्या हयान्दशभिरेव च ॥ सप्तत्या वासुदेवं तु यादवं वासुदेवकः ॥३॥ ततः प्रहस्य सुचिरं केशवः केशिसूदनः॥ हृष्टोऽसाविति मनसा संपूज्य यदुनन्दनः॥४॥ आकृष्य शार्ङ्गं बलवान्संधाय रिपुसूदनः ॥ नाराचेन सुतीक्ष्णेन ध्वजं चिच्छेद केशवः ॥ ५ ॥ सारथेश्च शिरः कायादाहृत्य यदुनन्दनः ॥ अश्वांश्च चतुरो हत्वा चतुर्भिः सायकोत्तमैः ॥ ६ ॥ रथं राज्ञः समाहत्य तदोभौ पार्ष्णिसारथी ॥ चक्रं च तिलशः कृत्वा हसन्किंचिदिव स्थितः ॥ ७ ॥ पौण्ड्रको वासुदेवस्तु रथादुत्प्लुत्य सत्वरः ॥ आदाय निशितं खड्गं प्राहिणोत्केशवाय सः ॥ ८ ॥ स खड्गं शतधा कृत्वा तूष्णीमासीच्च केशवः ॥ ततः परं महाघोरं परिघं कालसंमितम् ॥ ९ ॥ गृहीत्वा वासुदेवाय वासुदेवः प्रतापवान् ॥ प्राहिणोद्वृष्णिवीराय सर्वक्षत्रस्य पश्यतः ॥ १० ॥ तद्द्विधा जगतां नाथश्चकार यदुनन्दनः ॥ ततश्चक्रं महाघोरं सहस्रारं महाप्रभम् ॥११॥ त्रिंशद्भारसमायुक्तमायसास्यममित्रहा ॥ आदायाथ महाराज केशवं वाक्यमब्रवीत् ॥ १२ ॥

काटकर मार दिया ॥ ७ ॥ तब पौंड्रक वासुदेव शीघ्र रथसे उतरकर तीक्ष्ण खड्ग लेकर केशवके ऊपर प्रहार करता हुआ ॥ ८ ॥ श्रीकृष्णने उस खड्गके सौ खण्ड कर दिये और चुप रहे तब महाघोर कालकी समान परिघ लेकर ॥ ९ ॥ प्रतापवान् पौंड्रकने श्रीकृष्णके ऊपर प्रहार किया यह सब क्षत्रियोंने देखा ॥ १० ॥ जगन्नाथ यदुनंदनने उसके दो खण्ड कर दिये तब अपना सहस्र आरेवाला महाघोर चक्र लेकर ॥ ११ ॥ जो कि तीस भारका लोहमय था उसको ग्रहण कर पौंड्रक श्रीकृष्णसे कहने लगा ॥ १२ ॥

इस घोरचक्रको देखो यह तुम्हारा दर्प चूर्ण करेगा. हे गोविंद ! महागर्वीले ! इसी चक्रसे तुम्हारा गर्व ॥ १३ ॥ सब क्षत्रियोंके देखते दूर करूंगा तुम्हारे उद्देश्यसे दूसरोंको दुरासद यह छोडूंगा ॥ १४ ॥ हे कृष्ण ! यदि समर्थ हो तौ इस चक्रको तोडो, यह कह वह महाबली उसको सौ वार घुमाकर ॥ १५ ॥ राजा पौंड्रक श्रीकृष्णके ऊपर छोडता हुआ तब महाबलीने कूदकर उस चक्रको वंचित कर दिया ॥ १६ ॥ तब उस वीर्यवान्ने महावीर सिंहनाद किया जिसको सुनकर भगवान् देवकीपुत्र परम विस्मयको प्राप्त हुए ॥ १७ ॥ आश्चर्य है कि इस पौंड्रकका वीर्य और धैर्य दुस्सह

पश्येदं निशितं घोरं तव चक्रविनाशनम् ॥ अनेन तव गोविन्द दर्पं दर्पवतां वर ॥ १३ ॥ अपनेष्यामि वार्ष्णेय सर्वक्षत्रस्य पश्यतः ॥ त्वामुद्दिश्य महाघोरं कृतमन्यदुरासदम् ॥ १४ ॥ यदि शक्तो हरे कृष्ण दारयेदं महास्पदम् ॥ इत्युक्त्वा तच्छतगुणं भ्रामयित्वा महाबलः ॥ १५ ॥ चिक्षेपाथ महावीर्यः पौण्ड्रको नृपसत्तमः ॥ अवप्लुत्य ततो देशात्तदुत्सृज्य महाबलः ॥ १६ ॥ सिंहनादं महाघोरं व्यनदद्वीर्यवांस्तदा ॥ ततो विस्मयमापन्नो भगवान्देवकीसुतः ॥ १७ ॥ अहो वीर्यमहो धैर्यमस्य पौण्ड्रस्य दुःसहम् ॥ इति मत्वा जगन्नाथ उत्थितश्च रथोत्तमात् ॥ १८ ॥ ततः शिलां समादाय प्रेषयामास केशवम् ॥ तां शिलां प्रेषयामास तस्मै यदुकुलोद्वहः ॥ १९ ॥ पौण्ड्रेण सुचिरं कालं विक्रीड्य भगवान् हरिः ॥ ततश्चक्रं समादाय निशितं रक्तभोजनम् ॥ २० ॥ दैत्यमांसप्रदिग्धाङ्गं नारीगर्भविमोचनम् ॥ शातकुम्भमयं घोरं दैत्यदानवनाशनम् ॥ २१ ॥ सहस्रारं शतारं तदद्भुतं दैत्यभीषणम् ॥ ऐश्वर्यवर्म परमं नित्यं सुरगणार्चितम् ॥ २२ ॥ विष्णुः कृष्णस्तथा शार्ङ्गी नित्ययुक्तः सदा हरिः ॥ जघान तेन गोविन्दः पौण्ड्रकं नृपसत्तमम् ॥ २३ ॥

है यह विचार कर जगन्नाथ रथसे उठे ॥ १८ ॥ तब उसने शिला लेकर भगवान्के ऊपर छोडी यदुकुलोत्पन्नने उस शिलाका उसहीके ऊपर प्रहार किया ॥ १९ ॥ इस प्रकार भगवान् हरि पौंड्रकके साथ बहुत समयतक क्रीडा करके रक्तभोजन करनेवाले तीक्ष्ण चक्रको ग्रहण करते हुए ॥ २० ॥ जिसका अंग दैत्योंके मांससे अर्चित था जो स्त्रियोंका गर्भ मोचन करनेवाला सुवर्णनिर्मित महाघोर दैत्य दानवोंका नाश करनेवाला ॥ २१ ॥ सहस्र शत आरोंसे युक्त अद्भुत दैत्योंको भय देनेवाला परम ऐश्वर्यका वख्तररूप देवगणोंसे अर्चित ॥ २२ ॥ जिससे शार्ङ्गधारी विष्णु कृष्ण सदा युक्त रहते

हैं उस चक्रसे गोविन्दने पौंड्रकको मारा ॥ २३ ॥ वह मांसभोजी चक्र तत्काल उसका देह विदीर्ण कर सर्वेश्वर कृष्णकेही हाथमें फिर आनकर प्राप्त हुआ ॥ २४ ॥ तब पौंड्रक राजा प्राणरहित हो पृथ्वीमें गिरा इस प्रकार दुर्विज्ञेयगति प्रभु भगवान् उसको मारकर यादवोंसे पूजित हो सुधर्मा सभामें आनकर प्राप्त हुए ॥ २५ ॥ इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे भविष्यपर्वणि भाषायां कैलासयात्रायां पौंड्रकवासुदेववधो नामैकाधिकशततमोऽध्यायः ॥ १०१ ॥ वैशंपायन बोले, तब वीर्यवानोंमें श्रेष्ठ बलरामजीने एकलव्य निषादपतिको शक्तिसे ताडन कर बडा सिंहनाद किया ॥ १ ॥ तब निषादेशने क्रोधकर

तस्य देहं विदार्याशु चक्रं पिशितभोजनम् ॥ कृष्णस्याथ करं भूयः प्राप सर्वेश्वरस्य ह ॥ २४ ॥ ततः स पौण्ड्रको राजा गतासुः प्रापतद्भुवि ॥ निहत्य भगवान्विष्णुर्दुर्विज्ञेयगतिः प्रभुः ॥ प्रतिपेदे सुधर्मां तु यादवैः पूजितो हरिः ॥२५॥ इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे भविष्यपर्वणि कैलासयात्रायां पौंड्रकवासुदेववधो नामैकाधिकशततमोऽध्यायः ॥ १०१ ॥ वैशम्पायन उवाच ॥ निषादेशं ततो रामः शक्त्या वीर्यवतां वरः ॥ आजघान स्तनद्वन्द्वे सिंहनादं व्यनीनदत् ॥ १ ॥ ततः क्रुद्धो निषादेशो रामं मत्तं महाबलम् ॥ गदया लोकविख्यातो जघान स्तनवक्षसि ॥ २ ॥ आहतः स तु तेनाशु बलभद्रो महाबलः ॥ उभाभ्यां चैव रामस्तु कराभ्यां वृष्णिपुङ्गवः ॥ ३ ॥ गदां गृह्य महाघोरामायान्तीं प्राणहारिणीम् ॥ दुद्रावाथ निषादेशः समुद्रं मकराउयम् ॥ ४ ॥ धावत्येवं तदा राज्ञि एकलव्ये निषादपे ॥ धावत्येवं च रामोऽपि यत्र यातो निषादपः ॥ ५ ॥ सागरं स प्रविश्याशु गत्वा योजनपञ्चकम् ॥ भीत एव तदा राजन्नेकलव्यो निषादपः ॥ ६ ॥ कंचिद्द्वीपान्तरं राजन्प्रविश्य न्यवसत्तदा ॥ ततो रामो निषादेशं जिगाय यदुनन्दनः ॥ ७ ॥

मत्त महाबली बलरामको लोकविख्यात अपनी गदासे छातीमें ताडन किया ॥ २ ॥ महाबली बलभद्र उस गदासे ताडित होकर तत्काल अपने दोनों हाथोंसे ॥ ३ ॥ प्राण हरनेवाली महाघोर गदाको ग्रहण कर समुद्रमें मकरकी समान निषादपतिके ऊपर धावमान हुए ॥ ४ ॥ जब राजा एकलव्य इस प्रकार धावमान हुआ तब वह जिधर चला उधरही बलरामजी धावमान होने लगे ॥ ५ ॥ फिर सागरमें प्रवेश कर पांच योजनतक जाकर एकलव्य राजा भयभीत हो ॥ ६ ॥ किसी और द्वीपमें प्रवेश कर निवास करने लगा तब राम इस प्रकार निषादपतिको जीतकर ॥ ७ ॥

उस मणिरत्नोंसे शोभित सभामें बलरामजी प्रविष्ट हुए और युद्धसंसक्त सात्यकिभी उस सभामें प्रविष्ट हुआ ॥ ८ ॥ दूसरे यादवभी यथायोग्य उपस्थित हुए जब चारों ओरसे वृष्णिवीर उपस्थित हुए ॥ ९ ॥ तब केशव यथायोग्य सब वृष्णियोंको अभिवादन कर भगवान् देवकीपुत्र समयके अनुसार वचन कहने लगे ॥ १० ॥ कैलास शिखरपर नीललोहित शंकरका दर्शन किया. हे यदुवीरो ! उन्होंने प्रसन्न होकर मुझे वर दिया है ॥ ११ ॥ वहां देवता और तपोधन मुनिभी आये थे मुझे देख शंकर प्रसन्न हो स्तुति कर चले गये ॥ १२ ॥ हे यादवश्रेष्ठो ! रात्रिमें मैंने बडा अद्भुत कृत्य देखा दो महाघोर पिशाच मेरी कथा कहते थे ॥ १३ ॥ और

तां सभां मणिरत्नाढ्यां प्रविवेश हलायुधः ॥ सात्यकिर्युद्धसंसक्तस्तां सभां प्रविवेश ह ॥ ८ ॥ अन्ये च यादवा राजन्यथायोगमुपस्थिताः ॥ आसीनेषु च सर्वेषु वृष्णिवीरेषु सर्वतः ॥ ९ ॥ अभिवाद्य यथायोगं वृष्णीन्सर्वांश्च केशवः ॥ उवाच वचनं काले भगवान् देवकीसुतः ॥ १० ॥ दृष्टं कैलासशिखरं शंकरो नीललोहितः ॥ स तु मह्यं यदुवराः प्रीतिमांश्च ददौ वरम् ॥ ११ ॥ तत्र देवाः समायाता मुनयश्च तपोधनाः ॥ दृष्ट्वा मां शंकरश्चैव प्रीतः स्तुत्वा समाययौ ॥ १२ ॥ अत्यद्भुतं मया दृष्टं रात्रौ यादवसत्तमाः ॥ पिशाचौ द्वौ महाघोरौ वदन्तौ मामिकां कथाम् ॥ १३ ॥ मृगयां चक्रतुस्तौ तु चिन्तयन्तौ तु मां सदा ॥ दृष्ट्वा मां तौ तु राजेन्द्राः प्रीतिमन्तौ तपस्विनौ ॥ १४ ॥ भक्तिनम्रौ महात्मानौ प्रणामं चक्रतुस्तदा ॥ ततोऽहं सर्वथा प्रीतस्तौ नीतौ स्वर्गमुत्तमम् ॥ १५ ॥ तोषयित्वा महादेवं मया चाद्य समागतम् ॥ वैशम्पायन उवाच ॥ ततस्ते वृष्णयः सर्वे देवदेवं शशंसिरे ॥ १६ ॥ सर्वथा कृतकृत्यास्ते वृष्णयः केशवाश्रयाः ॥ यादवाः सर्व एवैते स्वं स्वं जग्मुर्यथालयम् ॥ १७ ॥

मृगया करते हुए दोनों मेरा चिन्तन करते थे. हे राजेन्द्र ! दोनों मुझे देखकर प्रीति करते हुए कारण कि तपस्वी थे ॥ १४ ॥ वे दोनों महात्मा भक्तिसे नम्र हुए मुझे प्रणाम करने लगे तब मैंने सर्वथा प्रसन्न हो उनको स्वर्गकी प्राप्ति कर दी ॥ १५ ॥ और फिर महादेवको संतुष्ट कर मैं इस स्थानमें आनकर प्राप्त हुआ हूं. तब वे सब वृष्णिवंशी उन देवदेवकी प्रशंसा करने लगे ॥ १६ ॥ सर्वथा वे केशवके आश्रयवाले वृष्णिवंशी कृतकृत्य हुए और सब यादव

देवदेवकी प्रशंसा करते अपने २ स्थानको गये ॥ १७ ॥ तब रुक्मिणीके भवनमें नारायण प्रविष्ट हुए रुक्मिणी और सत्यभामासे हरिने वह सब वृत्तान्त कहा ॥ १८ ॥ वे केशवके साथ महाप्रीति युक्त हुईं यह केशवकी सब चेष्टा तुमसे वर्णन की ॥ १९ ॥ महाबली दुष्टोंको मार इस प्रकार वह सब पृथ्वीकी पालना करते हुए घोरकर्मा नरक और नृपश्रेष्ठ पौंड्रकको ॥ २० ॥ तथा हयग्रीव निशुंभ सुन्द उपसुन्दको मारकर मुनियोंसे अर्चित हो देवेश विप्रोंकी रक्षा करने लगे ॥ २१ ॥ ब्राह्मणोंके निमित्त केशवने बहुत द्रव्य और गौवोंका दान किया अग्निहोत्र करते ब्राह्मणोंको तृप्त करते हुए ॥ २२ ॥

अभ्यन्तरे जगन्नाथः प्रविश्य हरिरीश्वरः ॥ रुक्मिणीसत्यभामाभ्यामाचचक्षे यथाभवत् ॥ १८ ॥ ते प्रीते प्रीतियुक्तेन केशवेन समन्विते ॥ एतत्ते सर्वमाख्यातं केशवस्य विचेष्टितम् ॥१९॥ शशास पृथिवीं कृत्स्नां दुष्टान् हत्वा महाबलान् ॥ नरकं घोरकर्माणं पौण्ड्रकं नृपसत्तमम् ॥ २० ॥ हयग्रीवं निशुम्भं च तथा सुन्दोपसुन्दकौ ॥ ररक्ष विप्रान्देवेशो मुनीन्मुनिवरार्चितः ॥ २१ ॥ विप्रेभ्यश्च ददौ वित्तं गाश्च दत्त्वा स केशवः ॥ अग्निहोत्रं प्रयुञ्जानो ब्राह्मणांश्च सुतर्पयन् ॥ २२ ॥ मुनींश्च ब्रह्मचर्येण देवान्यज्ञैरनेकधा ॥ स्वधया च पितृन्सर्वान्प्रीणयन्नेव सर्वदा ॥ २३ ॥ तस्मिञ्छासति देवेशे राज्यं निष्कण्टकं प्रभो ॥ सुखमेव प्रजाः सर्वा जीवन्ति ब्राह्मणादयः॥२४॥ इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे भविष्यपर्वणि कैलासयात्रायां पौण्ड्रकवधसमाप्तौ द्व्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १०२ ॥ जनमेजय उवाच ॥ भूय एव द्विजश्रेष्ठ शङ्खचक्रगदाभृतः ॥ चरितं श्रोतुमिच्छामि विस्तरेण तपोधन ॥ १ ॥

ब्रह्मचर्यसे मुनियोंको यज्ञोंसे देवतोंको और स्वधासे पितरोंको तृप्त करते हुए ॥ २३ ॥ उस देवेशको निष्कंटक राज्य करनेमें ब्राह्मणादि सब प्रजा सुखसे निवास करती थीं ॥ २४ ॥ इति श्रीम० खि० हरिवंशे भविष्यपर्वणि भाषायां कैलासयात्रायां पौंड्रकवधसमाप्तौ द्व्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १०२ ॥ जनमेजय बोले, हे द्विजश्रेष्ठ ! आप फिरभी शंख चक्र गदा धारण करनेवाले श्रीकृष्णका चरित्र कहिये. हे तपोधन ! विस्तारसे कहो ॥ १ ॥

चरित्र श्रवण कर उसमें रमण करता हुआ रातदिन
केशवसंबन्धी कथा सुनते मेरी तृप्ति नहीं होती है ऐसा कौन है जो देवदेव चक्रधारी हरिके ॥ २ ॥
तृप्त हो यही एक पुरुषार्थ है कि नारायणकी कथा श्रवण करे ॥ ३ ॥ अब यह कहिये कि जगत्‌के वास्ते हंस डिंभककी लडाई सब जगत्‌को विस्म-
यदायक किस प्रकारसे हुई ॥ ४ ॥ महात्मा विचक्र दानवका युद्ध कैसे हुआ हमने सुना है कि प्रथम उनकी मित्रता थी ॥ ५ ॥ उनके दो पुत्र बडे
बली भृगुके शिष्य हुए वह वीर संपूर्ण अस्त्रमें कुशल और हरिसे वर पाये हुए थे ॥ ६ ॥ आपने पहले कहा है कि उनमें बडा संग्राम हुआ था और

नहि ते तृप्तिरस्तीह शृण्वतः केशवीं कथाम् ॥ को नु नाम हरेर्विष्णोर्देवदेवस्य चक्रिणः ॥ २ ॥ शृण्वंस्तया रमन्वापि तृप्तिं याति
दिवानिशम् ॥ पुरुषार्थोऽयमेवेको यत्कथाश्रवणं हरेः ॥ ३ ॥ कथमासीज्जगद्धेतोर्हंसस्य डिम्भकस्य च ॥ समितिः सर्वभूतानां सदा
विस्मयदायिनी ॥ ४ ॥ विचक्रस्य कथं युद्धं दानवस्य महात्मनः ॥ स तयोर्मित्रतां यात इत्येवमनुशुश्रुम ॥५॥ तो सुतो वीर्यसंपन्नो
शिष्यो भृगुसुतस्य ह ॥ सर्वास्त्रकुशलो वीरो हरेर्लब्धवरो किल ॥ ६ ॥ संग्रामः सुमहानासीदित्युक्तं भवता पुरा ॥ तयोश्च नृपयोर्विप्र
केशवस्य जगत्पतेः ॥७॥ कस्य पुत्रो समुत्पन्नौ यथाभूद्विग्रहो महान् ॥ अष्टाशीतिसहस्राणि दानवानां तरस्विनाम् ॥८॥ बलान्यथ
विचक्रस्य शितशूलधराणि च ॥ आसन्युद्धे महाराज दानवस्य महात्मनः ॥ ९ ॥ यदूनामन्तरं प्रेप्सुर्यदूनां युद्धकाङ्क्षया ॥ देवासुरे
महायुद्धे देवान् जयति दुर्धरः ॥ तद्वधार्थं सदा यत्नमकरोच्चैव केशवः ॥ १० ॥ इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे भविष्यपर्वणि
हंसडिम्भकोपाख्याने त्र्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १०३ ॥

॥२२६॥

उनका केशवके साथभी संग्राम हुआ था ॥ ७ ॥ वह किसके पुत्र हुए जिससे महाविग्रह हुआ अट्ठासी सहस्र बडे शीघ्रगामी दानवोंका ॥ ८ ॥ जो कि
विचक्रकी सेना थी उन तीक्ष्ण शूलधारी महात्मा दानवोंका युद्ध हुआ ॥ ९ ॥ यदुओंका अन्तर देखनेवाले यदुओंसे युद्ध करनेवाले देवासुरके महायुद्धमें
उसने देवताओंको जीता था श्रीकृष्णने उसके मारनेको सदा यत्न किया ॥ १० ॥ इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे भविष्यपर्वणि भाषायां हंसडिंभकोपाख्याने

त्र्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १०३॥ वैशंपायन बोले; हे राजन् ! शाल्ववंशमें ब्रह्मदत्त नाम राजा था वह पवित्रआत्मा सब प्राणियोंपर दया करता था॥ १ ॥ नित्य पंचयज्ञमें तत्पर जितात्मा जितेन्द्रिय ब्रह्मका जाननेवाला वेदवित् सदा यज्ञमय कल्याणरूप था ॥ २ ॥ हे राजन् ! उसकी रूपगुणोंसे सम्पन्न दो भार्या थीं परन्तु उनके कोई सन्तान नहीं था ॥ ३ ॥ उनके साथ राजा ऐसे प्रसन्न रहता जैसे इन्द्राणीके साथमें इन्द्र उसका ब्राह्मणोंमें श्रेष्ठ मित्रसह नामका सखा था ॥ ४ ॥ वह महायोगी वेदवेदांग जाननेमें तत्पर था परन्तु जिस प्रकार राजाके कोई सन्तान नहीं थी इसी प्रकार उस ब्राह्मणकेभी

वैशम्पायन उवाच ॥ आसीच्छाल्वेषु राजेन्द्र ब्रह्मदत्तो नृपोत्तमः ॥ नाम्ना राजन् स पूतात्मा सर्वभूतदयापरः ॥ १ ॥ पञ्चयज्ञपरो नित्यं जितात्मा विजितेन्द्रियः ॥ ब्रह्मविद्वेदविच्चैव सदा यज्ञमयः शिवः ॥ २॥ तस्य भार्ये महीपाल रूपौदार्यगुणान्विते ॥ बभूवतुः सुसंपन्ने अनपत्ये नृपोत्तम ॥ ३ ॥ स ताभ्यां मुमुदे राजा शच्या शक्र इवाम्बरे ॥ नाम्ना मित्रसहो नाम सखा चासीद्द्विजोत्तमः ॥ ४ ॥ तस्य राज्ञो महायोगी वेदवेदान्ततत्परः ॥ अनपत्यः स विप्रेन्द्रो यथा राजा बभूव ह ॥ ५ ॥ स राजा सहितस्ताभ्यामर्चयामास शंकरम् ॥ पुत्रार्थं शूलिनं शर्वं दश वर्षाण्यनन्यधीः ॥ ६ ॥ स विप्रो वैष्णवं सत्रं पुत्रार्थे समयोजयत् ॥ अर्चितस्तेन राजेन्द्र शंकरो नीललोहितः ॥ ७ ॥ आत्मानं दर्शयामास स्वप्ने राजानमब्रवीत् ॥ प्रीतोऽस्मि तव भद्रं ते वरं वरय सुव्रत ॥ ८ ॥ अथ राजा जगन्नाथमुवाचेदं स्मयन्निव ॥ पुत्रो मम भवेतां हि तथेत्युक्त्वा वृषध्वजः ॥ ९ ॥ अन्तर्धानं गतः शम्भुः प्रतिबुद्धस्ततो नृपः ॥ सोऽपि मित्रसहो विद्वान्देवं केशवमव्ययम् ॥ १० ॥

सन्तान नहीं थी ॥ ५ ॥ तब उसके सहित राजाने शंकरकी आराधना की अनन्यबुद्धिसे दश वर्षतक शूलधारी महादेवका तप किया ॥ ६ ॥ उस ब्राह्मणने पुत्रके निमित्त वैष्णव यज्ञ किया. हे राजन् ! उसने नीललोहित शंकरका आराधन किया ॥ ७ ॥ तब अपना दर्शन देकर शंकरने स्वप्नमें राजासे कहा. हे सुव्रत ! तुम्हारा मंगल हो मैं तुमसे प्रसन्न हूं वर मांगो ॥ ८ ॥ तब राजाने मुस्काकर देवदेव जगन्नाथसे यह वचन कहे मेरे दो पुत्र हों यही वर दीजिये शिवजीने कहा ऐसाही होगा ॥ ९ ॥ जब यह कह शिवजी अन्तर्धान हुए तब राजा जागृत हुआ और वह विद्वान् मित्रसह ब्राह्मण

अविनाशी केशव ॥ १० ॥ जगन्नाथका पांच वर्षपर्यन्त पूजन करता हुआ इस प्रकार उस विप्रने जनार्दन देवका पूजन किया ॥ ११ ॥ हरिने अपनी आत्माके समान उसको एक पुत्र दिया वह दोनोंकी भार्या शंकरके तेजसे गर्भवती हुई ॥ १२ ॥ हे महाराज ! ब्राह्मणकी स्त्री वैष्णवतेजसे गर्भधारण करती हुई. वे महाबली पुत्रोंको दोनों रानी गर्भमें धारण करती हुई ॥ १३ ॥ हे महाराज ! क्रमसे राजाके दो पुत्र हुए तब राजाने उनकी नामकर्मादि क्रिया करी ॥ १४ ॥ विधिपूर्वक नामकरण करके ब्राह्मणोंको बहुतसा दान दिया उस विनीत आत्मा ब्राह्मणकेभी एक पुत्र हुआ ॥ १५ ॥ हे राजन् !

पञ्चवर्षं जगन्नाथमर्चयामास भक्तितः ॥ आर्चितस्तेन विप्रेण देवदेवो जनार्दनः ॥ ११ ॥ पुत्रमेकं ददौ तस्मै स्वात्मना सदृशं हरिः ॥ ते भार्ये गर्भमाधत्तां तेजसा शंकरस्य ह ॥ १२ ॥ विप्रभार्या महाराज वैष्णवं तेज आदधत् ॥ महिष्यौ ते महावीर्यौ पुत्रौ शंकरनिर्मितौ ॥ १३ ॥ असूयेतां महीपाल क्रमेणैव नृपस्य ह ॥ स तयोश्च महाराज नामकर्मादिकाः क्रियाः ॥ १४ ॥ चकार विधिवत्सर्वा विप्रेभ्योऽदान्महद्धनम् ॥ स च विप्रो विनीतात्मा पुत्रमेकं हि लब्धवान् ॥ १५ ॥ साक्षादिव जगन्नाथं स्थितं पुत्रात्मना नृप ॥ जातकर्मादिकं सर्वं ब्राह्मणः स चकार ह ॥ १६ ॥ तौ कुमारावयं चैव त्रयः समवयसोऽभवन् ॥ वेदानधीत्य ते सर्वाञ्छ्रुत्वा चान्वीक्षिकीं तथा ॥ १७ ॥ धनुर्वेदे तथास्त्रे च निपुणास्तेऽभवंस्तदा ॥ हंसो ज्येष्ठो नृपसुतो डिम्भकोऽनन्तरोऽभवत् ॥ १८ ॥ स च विप्रसुतो राजन् जनार्दन इति स्मृतः ॥ अन्योन्यं मित्रतां याताः सर्वे चैव कुमारकाः ॥१९॥ इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे भविष्यपर्वणि हंसडिम्भकोत्पत्तौ चतुरधिकशततमोऽध्यायः ॥ १०४ ॥

वह साक्षात् जगन्नाथही पुत्ररूपसे उत्पन्न हुए जातकर्मादि उस ब्राह्मणके सहित राजाने किये ॥ १६ ॥ वे तीनों कुमार एक अवस्थाके हुए वे सब वेदोंको पढ राजनीतिका श्रवण कर ॥ १७ ॥ धनुर्वेद और अस्त्रविद्यामें निपुण हो गये बडे पुत्रका नाम हंस और छोटेका डिंभ हुआ ॥ १८ ॥ और ब्राह्मणके बेटेका नाम जनार्दन हुआ वे सब कुमार परस्पर मित्रभावको प्राप्त हुए ॥ १९ ॥ इति श्रीम० खि० ह० भविष्यपर्वणि भाषायां हंसडिंभको-

त्यचौ चतुरधिकशततमोऽध्यायः ॥ १०४ ॥ वैशंपायन बोले; तब महाबुद्धिमान् हंस डिंभक जो कि शंकरकी आत्मा और मनरूप थे तप करनेकी इच्छासे ॥ १ ॥ हिमालयपर जाकर तप करने लगे और शंकरके उद्देश्यसे तप करने लगे ॥ २ ॥ हम दोनों अस्त्रविद्यामें वीर्यवान् हो जाँय इस प्रकार वे दोनों मनमें धारण कर एकाग्र और नियमित होकर वायु और जलके आहारसे निर्वाह करते रहने लगे ॥ ३ ॥ देवदेवेश शंकरको नमस्कार रातदिन करने लगे हे हर, शर्व, शिवानंद, नीलग्रीव, उमापते ॥ ४ ॥ वृषभध्वज विरूपाक्ष हर्यक्ष जगत्के पति भक्तिप्रिय गिरीश वासुदेव शिव अच्युत ॥ ५ ॥ सद्योजात

वैशम्पायन उवाच ॥ हंसश्च डिम्भकश्चैव तपश्चर्तुं महामतिः ॥ मनश्चक्रतुरात्मांशो शंकरस्य नृपोत्तम ॥ १ ॥ गत्वा तु हिमवत्पार्श्वे तपश्चक्रतुरञ्जसा ॥ उद्दिश्य शंकरं शर्वं नीलग्रीवमुमापतिम् ॥ २ ॥ वीर्यास्त्रे चैव नो स्यातामित्याधाय तु मानसे ॥ एकाग्रो प्रयतो भूत्वा वाय्वम्बुप्राशिनो नृप ॥ ३ ॥ नमस्ते देवदेवेति शंकरेति दिवानिशम् ॥ हर शर्व शिवानन्द नीलग्रीव उमापते ॥ ४ ॥ वृषध्वज विरूपाक्ष हर्यक्ष जगतां पते ॥ भक्तप्रिय गिरीशेश वासुदेव शिवाच्युत ॥ ५ ॥ सद्योजात महादेव देवदेव गुहाशय ॥ भूतभावन देवेश प्रणवात्मन् सदाशिव ॥ ६ ॥ इत्यादिनामभिर्नित्यं स्तुवन्तो शंकरं भवम् ॥ हृदि कृत्वा विरूपाक्षं तपस्तेपतुरञ्जसा ॥ ७ ॥ निर्ममो निरहंकारो मौनव्रतसमास्थितो ॥ वर्षाणीह तदा राजन्पञ्च चक्रतुरोजसा ॥ ८ ॥ ततः प्रीतोऽभवच्छर्वस्ताभ्यां संयमनेन च ॥ स ददौ दर्शनं नेजं व्याघ्रचर्माम्बरो हरः ॥ ९ ॥ त्रियक्षः शंकरः शर्वः शूलपाणिरुमापतिः ॥ अग्रतः संस्थितं शर्वं चन्द्रार्द्धकृतशेखरम् ॥ तो दृष्ट्वा प्रीतमनसो नमश्चक्रतुरञ्जसा ॥ १० ॥ श्रीभगवानुवाच ॥ वरं वरय भद्रं वां यथेच्छा वां तथास्तु वे ॥ तावूचतुस्तदा राजन्प्रीतस्त्वं भगवन्यदि ॥ ११ ॥

महादेव देवदेव गुहाशय भूतभावन देवेश प्रणवात्मन् सदाशिव ॥ ६ ॥ इत्यादि नामोंसे नित्य शंकरकी स्तुति करते हुए इस प्रकार विरूपाक्षको हृदयमें धारण कर वह तप करने लगे ॥ ७ ॥ ममता अहंकाररहित मौनव्रतमें स्थित हुए पांच वर्षतक बराबर तप करते रहे ॥ ८ ॥ तब उनके संयम नियमसे शिवजी प्रसन्न हुए और व्याघ्रचर्मधारी शिवने उनको दर्शन दिया ॥ ९ ॥ त्रिनेत्र शंकर शर्व शूलपाणि उमापति चन्द्रार्धशेखर शिवजीको आगे स्थित देखकर वे दोनों प्रसन्न हो नमस्कार करते हुए ॥ १० ॥ श्रीभगवान् बोले; तुम वर मांगो जो इच्छा होगी सो मैं दूंगा तब वह कहने लगे. हे भगवन् ! यदि तुम हमारे

ऊपर प्रसन्न हों तो ॥ ११ ॥ देवता असुरोंकी मुख्य सेना यक्ष गन्धर्व दानवोंसे हम अजय हों यही हमारा प्रथम वर है ॥ १२ ॥ और दूसरा वर यह दो कि हमारे रौद्र अस्त्रोंका संग्रह हो जाय माहेश्वर अस्त्र रौद्रास्त्र ब्रह्मशिर अस्त्र ॥ १३ ॥ अभेद कवच और अभेद्य धनुष और रक्षाका करनेवाला परशा दो ॥ १४ ॥ हे देव ! युद्धमें हमारी सहायताके निमित्त दो भूतोंको दीजिये यही हो वचन कह शिवजीने भृंगी और रिटिको आज्ञा दी ॥ १५ ॥ सब प्राणियोंके हित करनेवाले कुंडोदर और विरूपाक्षसे कहते हुए तुम और यह दोनों भूत इनकी रणमें सदा सहाय करना ॥ १६ ॥

देवासुरचमूमुख्यैर्यक्षैर्गन्धर्वदानवैः ॥ आवामजय्यौ सर्वातमन्त्रेष नो प्रथमो वरः ॥ १२ ॥ द्वितीयो नो विरूपाक्ष रौद्रास्त्राणां च संग्रहः ॥ माहेश्वरं तथा रौद्रमस्त्रं ब्रह्मशिरो महत् ॥ १३ ॥ अभेद्यं कवचं दिव्यमच्छेद्यं चापि कार्मुकम् ॥ परशुं च तथा शर्व सदा रक्षार्थमेव च ॥ १४ ॥ सहायौ द्वौ महादेव भूतौ युद्धे हि गच्छताम् ॥ एवमस्त्विति देवेश आह भृंगिरिटी हरः ॥ १५ ॥ कुण्डोदरं विरूपाक्षं सर्वप्राणिहिते रतम् ॥ युवामथ च भूतेशौ सहायौ सततं रणे ॥ १६ ॥ संग्रामं गच्छतां घोरमेतयोर्बलशालिनोः ॥ इत्युक्त्वा भगवाञ्छर्वस्तत्रैवान्तरधीयत ॥ १७ ॥ ततस्तौ वीर्यसंपन्नौ हंसो डिम्भक एव च ॥ कृतास्त्रौ शस्त्रसंपन्नौ चापिनौ वीर्यवत्तरौ ॥ १८ ॥ आमुक्तकवचौ वीरावजय्यौ देवदानवैः ॥ अत्यन्तभक्तौ देवेशे शंकरे नीललोहिते ॥ १९ ॥ नित्योत्सवकरौ देवे भस्मोद्धूलनशोभिनौ ॥ कृतत्रिपुण्ड्रकौ नित्यं जटायुक्तशिरोधरौ ॥ २० ॥ रुद्राक्षार्पितसर्वांगौ व्याघ्रचर्माम्बरावृतौ ॥ नमः शिवाय शान्ताय महादेवाय धीमते ॥ २१ ॥

इन दोनों बलियोंके संग्राममें जानेपर तुम इनके साथ जाना यह कह भगवान् शिव वहांही अन्तर्धान हो गये ॥ १७ ॥ तब वे बडे बली हंस और डिंभक अस्त्रवान् वीर्यसम्पन्न चापवाले बडे वीर्यवान् ॥ १८ ॥ कवच पहरे देवदानवोंको अजय्य बडे वीर देवेश नीललोहित शंकरके बडे भक्त ॥ १९ ॥ शिवका नित्य उत्सव करनेवाले शरीरमें भस्म लगाये नित्य त्रिपुण्ड्रधारी जटा शिरपर धारे ॥ २० ॥ सब अंगमें रुद्राक्ष धारण किये व्याघ्रचर्म ओढे ' नमः शिवाय ' शान्तरूप महादेव धीमान्को नमस्कार है ॥ २१ ॥

इत्यादि नामोंसे महादेवकी स्तुति करते साक्षात् महादेवकी समानही जटाधारी शोभाको प्राप्त हुए ॥ २२ ॥ तब वे अपने घर जाकर पिताके चरण ग्रहण करते हुए तथा पिताके सखा और माताके चरणोंको नमस्कार करते हुए ॥ २३ ॥ हे राजन् ! वह महात्मा जनार्दनभी बहुत समयपर महाविद्याके पारको प्राप्त होता हुआ ॥ २४ ॥ वह हृषीकेश विष्णु पीतकौशेय धारण करनेवालेकी ब्रह्मतत्त्वमें तत्पर हो नित्य उपासना करने लगा और जितेन्द्रिय रहने लगा ॥ २५ ॥ फिर हंस और डिंभकने अपना विवाह किया और महात्मा जनार्दननेभी विवाह किया ॥ २६ ॥ यह सब यज्ञ करनेवाले नित्य

इत्यादिभिर्महादेवं स्तुवन्तौ नामभिः शिवम् ॥ साक्षादिव महादेवो रेजतुर्जटधारिणौ ॥ २२ ॥ ततः स्वभवनं गत्वा पितुः पादाव-गृह्यताम् ॥ पितुश्च सख्युर्बलिनो मातुश्च चरणौ तदा ॥ २३ ॥ जनार्दनोऽपि धर्मात्मा कालेन महता नृप ॥ विद्यापरं महाबुद्धिर्यु-क्तेनासावुपेयिवान् ॥ २४ ॥ स च विष्णुं हृषीकेशं पीतकौशेयवाससम् ॥ ब्रह्मतत्त्वपरो नित्यमुपास्ते विजितेन्द्रियः ॥ २५ ॥ हंसश्च डिम्भकश्चैव कृतदारौ बभूवतुः ॥ जनार्दनोऽपि धर्मात्मा कृतदारो बभूव ह ॥ २६ ॥ सर्वे ते यज्ञनिरताः पञ्चयज्ञपरास्तथा ॥ स्वदारनिरताः सर्वे गुरुशुश्रूषणे रताः ॥ धर्म एव परं श्रेय इति ते मेनिरे नृप ॥ २७ ॥ इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवं० भ० हंसडिम्भकोपाख्याने पञ्चाधिकशततमोऽध्यायः ॥ १०५ ॥ वैशम्पायन उवाच ॥ ततः कदाचित्तौ वीरौ मृगयामाटतुः किल ॥ जनार्दनेन सहितौ रथैरश्वैर्गजैरपि ॥ १ ॥ वनं गत्वा तु तौ वीरौ सिंहव्याघ्रांश्च जघ्नतुः ॥ शितैर्बाणैर्महाराज वराहानथ सर्वशः ॥ २ ॥ व्यालानन्यान्मृगान् हिंस्राञ्छ्वभिश्च सहितौ नृप ॥ एष आयाति विपुलो वराहो दीर्घलोचनः ॥ ३ ॥

पंचयज्ञमें तत्पर अपनी स्त्रीमें निरत गुरु शुश्रूषामें तत्पर हुए. हे राजन् ! धर्मही परम श्रेय है इस बातको उन्होंने पूर्णरूपसे जान लिया था ॥ २७ ॥ इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे भविष्यपर्वणि भाषायां हंसडिंभकोपाख्याने पंचाधिकशततमोऽध्यायः ॥ १९ ॥ वैशंपायन बोले; एक समय वह दोनों वीर मृगयाके निमित्त मये रथ हाथियोंपर स्थित जनार्दनके सहित पयान किया ॥ १ ॥ वह दोनों वीर वनमें जाकर सिंह व्याघ्रोंको मारने लगे. हे महाराज ! तीक्ष्ण बाणोंसे वराहोंको मारने लगे ॥ २ ॥ व्याल मृग हिंसक जीव कुत्ते आदिके सहित वे दोनों बोले कि यह दीर्घलोचन

वाराह आता है ॥ ३ ॥ इसको बाणोंसे छेदन करो यह मृगराज आता है यह दूसरा महिष जिसके शृंगमें सरीसृप प्राप्त हो रहे हैं ॥ ४ ॥ यह मृगोंके साथ बालकोंको बढाते हैं यह व्याकुल हो खरगोशोंका झुंड फिर रहा है ॥ ५ ॥ यह बच्चा स्तनपान कर रहा है इसको मत मारो और इन सबको कुत्तोंसे घेरकर पकड लो ॥ ६ ॥ इस प्रकार उस राजाके मृगया करनेमें महान् शब्द हुआ. हे नृपश्रेष्ठ ! वह शब्द क्षत्रिय और व्याधोंके दौडनेका हुआ ॥ ७ ॥ वह दोनों राजा अनेक प्रकारके मृग व्याघ्र और सिंहोंको मारकर सूर्यके मध्यस्थानमें प्राप्त होनेसे श्रमको प्राप्त

एनं बाणेन संछिन्धि याति चायं मृगाधिपः ॥ अयमन्योऽथ महिषः शृङ्गप्रोतसरीसृपः ॥ ४ ॥ एते खलु मृगाः सार्द्धं शावैर्बाधन्ति सर्वशः॥ एतद्भ्रमति सर्वत्र भीतं शशकुलं महत् ॥ ५ ॥ शावं स्तनं पिबत्साधु न हन्तव्यमिदं शुभम् ॥ ग्रहीतव्यमिदं सर्वं निरुध्य श्वगणैरिह ॥६॥ इत्यादिशब्दः सुमहान्मृगयां कुर्वतां नृप ॥ क्षत्रियाणां नृपश्रेष्ठ व्याधानां चैव धावताम् ॥ ७ ॥ हत्वा मृगान्सुबहुशो व्याघ्रान् सिंहान्नृपोत्तमो ॥ श्रमं च जग्मतुर्वीरो मध्यं याते दिवाकरे ॥ ८ ॥ अलं हि मृगयास्माकं श्रमः समुपजायते ॥ इत्यूचतुर्महाराज पुष्करं जग्मतुः सरः ॥ ९ ॥ सरःसमीपमागम्य मुनिसिद्धनिषेवितम् ॥ वीजन्मारुतसानूपं श्रमात्तत्र सुखस्थितो ॥ १० ॥ ततो जनाः सरः सर्वे विगाह्य श्रमकर्षिताः ॥ बिसान्प्रवालान्पद्मानां भक्षयामासुरार्त्तवत् ॥ ११ ॥ जनार्दनेन सहितो हंसो डिम्भक एव च ॥ सरः क्वचित्समाश्रित्य श्रमं संत्यज्य तिष्ठतः ॥ १२ ॥

हुए ॥ ८ ॥ बोले कि मृगयाकी आवश्यकता नहीं अब हमको श्रम होता है. हे महाराज ! ऐसा कह वे दोनों पुष्करके समीप गये ॥ ९ ॥ सरके समीप प्राप्त हुए जो मुनि और सिद्धों करके सेवित है और पवन होने लगी जिससे सुखपूर्वक विश्राम लेते हुए ॥ १० ॥ तब सब आदमी श्रमसे कर्षित हो उस सरोवरको अवगाहन करने लगे कमलनाल प्रवाल पद्मको आर्तोंकी समान भक्षण करने लगे ॥ ११ ॥ जनार्दनके सहित वे हंस और डिंभक कहीं सरोवरमें स्नान कर श्रमरहित स्थित हुए ॥ १२ ॥

उस सरोवरके किनारे विश्राम लेकर स्थित हुए मुनियोंके मुखसे वेदको सुनने लगे ॥ १३ ॥ वे माध्यन्दिनशाखाको स्वरसहित श्रवण करने लगे वेद ध्वनिको श्रवण कर वे दोनों परम प्रसन्न हुए ॥ १४ ॥ और मुनियोंके किये यज्ञोंके देखनेकी इच्छा करने लगे मृगोंसहित उस सेनाको वहां स्थापित कर ॥ १५ ॥ महाचाप और बाण धारण किये वह जनार्दन वीर हंस और डिंभक सभामें प्रवेश कर मुनिजनोंको प्रणाम करते हुए ॥ १६ ॥ हे महाराज ! वे ऋषिके आश्रममें पैरों पैरों चले वहां महर्षि कश्यपका वैष्णव यज्ञ होता था जप होममें परायण वे ऋषि मुनियोंके साथ यजन करते

विश्रम्य सरस्वतीरे तत्रासाते सुखं नृपो ॥ अशृण्वतां परं ब्रह्म मुनिमुख्यैः समीरितम् ॥ १३ ॥ मध्यंदिनं तथा सर्वैः स्वनं सस्वरं नृपो ॥ ततः प्रीतो नृपो भूत्वा श्रुत्वा वेदध्वनिं तदा ॥ १४ ॥ ऐच्छेतां तौ तदा द्रष्टुं यज्ञं मुनिकृतं तदा ॥ स्थापयित्वा ततः सेनां सर्वां मृगसमन्विताम् ॥ १५ ॥ आदाय च महाचापे शरान्कतिचिदेव च ॥ जनार्दनस्तदा वीरो हंसो डिम्भक एव च ॥ १६ ॥ पदातिनो महाराज जग्मतुश्चाश्रमं किल ॥ महर्षेः काश्यपस्याथ सत्रं वैष्णवसंज्ञकम् ॥ यजन्तो मुनिभिः सार्द्धं जपहोमपरायणैः ॥ १७ ॥ इति श्रीम० खिलेषु हरिवंशे भवि० हंसडिम्भकोपाख्याने मृगयावर्णनं नाम षडधिकशततमोऽध्यायः ॥ १०६ ॥ वैशम्पायन उवाच ॥ जनार्दनश्च धर्मात्मा हंसो डिम्भक एव च ॥ सदः प्रविश्य सत्रस्य नमश्चक्रुर्मुनीश्वरान् ॥ १ ॥ तानागतान्महात्मानो मुनयः शिष्यसंयुताः ॥ अर्घ्यपाद्यासनादीनि चक्रुः पूजां प्रयत्नतः ॥ २ ॥ तौ नृपौ स च विप्रेन्द्रः सपर्यां प्रतिगृह्य च ॥ प्रीतात्मानो महात्मान आसते ससुखं नृप ॥ ३ ॥

थे ॥ १७ ॥ इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे भविष्यपर्वणि भाषायां हंसडिंभोपाख्याने मृगयावर्णनं नाम षडधिकशततमोऽध्यायः ॥ १०६ ॥ वैशंपायन बोले; जनार्दन धर्मात्मा हंस और डिंभ उस यज्ञमें प्रवेश कर नमस्कार करते हुए ॥ १ ॥ शिष्योंके सहित मुनि उनको आया हुआ देखकर अर्घ पाद्य आसन देकर उनकी पूजा करते हुए ॥ २ ॥ वह नृप और वह विप्रेन्द्र उस पूजाको ग्रहण कर प्रसन्न हो सुखसे आसनपर बैठे ॥ ३ ॥

तब मौनव्रती उन मुनियोंसे हंसने कहा. हे मुनिश्रेष्ठो ! हमारे पिताजी यज्ञ करनेकी इच्छा करते हैं ॥४॥ हे मुनिश्रेष्ठो ! यज्ञके अन्तमें आप हमारे यहां आइये हम दिग्विजय कर राजसूय यज्ञ करेंगे ॥ ५ ॥ हे ब्राह्मणो ! हम अपने धर्मात्मा पितासे यज्ञ करावेंगे. हे विप्रेन्द्रो ! शिष्य और परिच्छदोंसहित आप पधारिये ॥६॥ हम अभी दिग्विजय करेंगे हम यहीं सेनाके संचयको कर सकते हैं ॥७॥ हमारे सामने देव दानव खडे होनेको समर्थ नहीं हैं हमने कैलासवासी शिवसे वर पाया है ॥ ८ ॥ हमारे पास शत्रुनाशक अनेक अस्त्र हैं मदसे बली हंस यह कहकर मौन हुआ ॥ ९॥ मुनि बोले; हे राजन् ! जो

ततो हंसो बभाषे तान्मुनीन्संयतवाङ्नृप ॥ पिता हि नो मुनिश्रेष्ठा यष्टुमिच्छत्ससाधनम् ॥ ४ ॥ गन्तव्यं तत्र युष्माभिः सत्रान्ते मुनिसत्तमाः॥ राजसूयेन यज्ञेन कृत्वा दिग्विजयं वयम् ॥५॥ याजयिष्यामहे विप्राः पितरं धार्मिकं नृपम् ॥ आयान्तु तत्र विप्रेन्द्राः सशिष्याः सपरिच्छदाः ॥६॥ वयमद्यैव सहितौ दिशो जेष्यामहे वयम् ॥ शक्ता वयमिहैवैतत्कर्तुं सैनिकसंचयैः ॥७॥ आवयोः पुरतः स्थातुं न शक्ता देवदानवाः ॥ कैलासनिलयाद्देवाद्वरं लब्धाः स्म यत्नतः ॥८॥ अजय्यो शत्रुसंघानामस्त्राणि विविधानि च ॥ इत्युक्त्वा विररामैव हंसो मदबलान्वितः॥९॥ मुनय ऊचुः॥ यदि स्यात्तत्र गच्छामो वयं शिष्यैर्नृपोत्तम ॥ आस्महे वान्यथा राजन्नित्यूचुः किल तापसाः॥१०॥ वैशम्पायन उवाच ॥ ततो देशान्महाराज गन्तुं निश्चितमानसो ॥ पुष्करस्योत्तरं तीरं दुर्वासा यत्र तिष्ठति ॥ ११ ॥ यतयो नियता भूत्वा मन्त्रब्रह्मनिषेविणः ॥ ब्रह्मसूत्रपदे सक्तास्तदर्थालोकतत्पराः॥१२॥ निर्ममा निरहंकाराः कौपीनाच्छादनव्रताः ॥ तमात्मानं जगद्योनिं विष्णुं विश्वेश्वरं विभुम् ॥ १३ ॥

यज्ञ होगा तो हम शिष्योंसहित जांयगे हम जरूर जांयगे इसमें सन्देह नहीं ॥ १० ॥ वैशंपायन बोले; हे राजन् ! तब वे वहां निश्चितको प्राप्त हो देशान्तरोंमे जानेकी इच्छा करने लगे जहां पुष्करके उत्तरकी ओर दुर्वासाजी स्थित थे ॥ ११ ॥ जहां नियत होकर यति मंत्ररूपी ब्रह्म (वेद) की उपासना करते थे ब्रह्मसूत्रके पदोंमें आसक्त और उसके अर्थ देखनेमें तत्पर ॥ १२ ॥ ममत्व और अहंकारसे हीन कौपीनसे आच्छादन व्रतवाले उस आत्मा जगत्के योनि विष्णु विश्वेश्वर विभु ॥ १३ ॥

ब्रह्मरूप शुभ शान्त अक्षर सर्वतोमुख वेदान्तमूर्ति अव्यक्त अनंत शाश्वत शिव ॥ १४ ॥ नित्ययुक्त विरूपाक्ष भूताधार अनामय मनसे सर्वतोमुख नारायणका ध्यान करते हुए ॥ १५ ॥ दुर्वासाके सभामें उपासना करते जो वेदान्तकेही एक गुरु हैं तर्कसे निश्चित तत्त्वके जाननेवाले ज्ञानसे निर्मित चित्तवाले ॥ १६ ॥ हंस और परमहंस जो दुर्वासाके शिष्य थे उन दोनोंने जाकर उन ऊर्ध्वरेतस महात्माको देखा ॥ १७ ॥ वह महाबुद्धि दुर्वासा परब्रह्मका विचार कर रहे थे कारण कि क्रोध करके त्रिलोकको नष्ट करनेकी सामर्थ्य थी ॥ १८ ॥ जिनको क्रोध करनेपर देवताभी देखनेको समर्थ

ब्रह्मरूपं शुभं शान्तमक्षरं सर्वतोमुखम् ॥ वेदान्तमूर्तिमव्यक्तमनन्तं शाश्वतं शिवम् ॥ १४ ॥ नित्ययुक्तं विरूपाक्षं भूताधारमनामयम् ॥ ध्यायन्तं सर्वदा देवं मनसा सर्वतोमुखम् ॥ १५ ॥ दुर्वाससा सदोपास्यं वेदान्तैकरसं गुरुम् ॥ तर्कनिश्चिततत्त्वार्थो ज्ञाननिर्मलचेतसः ॥ १६ ॥ हंसाः परमहंसाश्च शिष्या दुर्वाससः प्रभो ॥ गत्वा तत्र महात्मानौ तौ दृष्ट्वा तूर्ध्वरेतसम् ॥ १७ ॥ दुर्वाससं महाबुद्धिं विचिन्वानं परं पदम् ॥ क्रुद्धो यदि स दुर्वासा दग्धुं लोकानिमान्क्षमः ॥ १८ ॥ देवा अपि च यं द्रष्टुं क्रुद्धं वै न क्षमाः सदा ॥ रोषमूर्तिः सदा यस्तु रुद्रात्मा विश्वरूपधृक् ॥ १९ ॥ रक्तकौपीनवसनो हंसः परम एव च ॥ दृष्ट्वैनं च तयोरेवं बुद्धिरासीन्महामते ॥ २० ॥ को नामासौ महाभूतः काषायी वर्णवित्तमः ॥ कश्चायमाश्रमो नाम विहाय च गृहाश्रमम् ॥ २१ ॥ गृहस्थ एव धर्मात्मा गृहस्थो धर्मवित्तमः ॥ गृहस्थो धर्मरूपस्तु गृहस्थो वर्ण एव च ॥ २२ ॥ गृहस्थश्च सदा माता प्राणिनां जीवनं सदा ॥ तं विनान्येन रूपेण वर्त्तते योऽतिमूर्खवत् ॥ २३ ॥

नहीं हो सकते थे जो सदा रोषमूर्ति रुद्रात्मा विश्वरूपधारी थे ॥ १९ ॥ लाल कौपीनका वसन किये इनको देखकर हंसकी यह बुद्धि हुई ॥ २० ॥ यह महाभूत काषाय वस्त्रधारी कौन है और किसका यह आश्रम है जिसने गृहस्थाश्रम त्याग दिया है ॥ २१ ॥ गृहस्थही धर्मात्मा है गृहस्थही धर्म जाननेवालोंमें श्रेष्ठ है गृहस्थही धर्मरूप और गृहस्थही वर्ण है ॥ २२ ॥ गृहस्थही सदा माता सदा प्राणियोंका जीवन है उसके विना जो और रूपसे वर्तता है वह मूर्ख है ॥ २३ ॥

यह उन्मत्त विरूप अथवा मूर्ख है यह ध्यान लोगोंके ठगनेके निमित्त करता है ॥ २४ ॥ यह प्राकृत अज्ञानी क्या ध्यान करते हैं मैं इन दुरारोह अनेक आश्रमोंका कल्पना करनेवालोंको ॥ २५ ॥ तथा मंदबुद्धियोंको गृहस्थमें स्थापन करूंगा बलसे ही इन मूढ विज्ञानमें तत्पर ब्राह्मणोंको ॥ २६ ॥ जो असद्ग्राहमें गृहीत मूर्ख दुर्मति इन ब्राह्मणोंका शास्ता हमारे सिवाय कौन है ॥ २७ ॥ हम इनको धर्ममें स्थापन कर निवृत्त होंगे. हे राजन् ! इस प्रकार वे दोनों राजकुमार उस ब्राह्मणके सहित ॥ २८ ॥ अर्थात् जनार्दनके संहित भाग्यक्षयके कारण हे राजेन्द्र ! उस संयतचित्तवाले यतिके समीप

उन्मत्तोऽयं विरूपोऽयमथवा मूर्ख एव च ॥ ध्यायान्निव सदा चायमास्ते वञ्चयितापि वा ॥ २४ ॥ किमेते प्राकृतज्ञाना ध्यायन्त इति किंचन ॥ वयमेतान् दुरारोहानाश्रमान्तरकल्पकान् ॥ २५ ॥ स्थापयिष्यामहे सर्वान्मन्दबुद्धीनिमान् गृहे ॥ बलादेव द्विमानेतान्मूढ-विज्ञानतत्परान् ॥२६॥ असद्ग्राहगृहीतांश्च बालिशान्दुर्मतीनिमान् ॥ एषां शास्ता च को मूढो न विप्रो वयमत्र ह ॥ २७ ॥ धर्मे वर्त्मनि संस्थाप्य पुनर्यास्याव निर्वृतौ ॥ इति संचिन्त्य तौ वीरौ विप्रेण सहितौ नृप ॥२८॥ जनार्दनेन राजानौ मोहाद्भाग्यक्षयान्नृप ॥ समीपं तस्य राजेन्द्र यतेः संयतचेतसः ॥ २९ ॥ गत्वा च प्रोचतुरुभौ दुर्वाससमतीन्द्रियम् ॥ यतींश्च नियतान्क्रुद्धौ राजानौ राजसत्तम ॥ ३० ॥ इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे भविष्यपर्वणि हंसडिम्भकोपाख्याने सप्ताधिकशततमोऽध्यायः ॥ १०७ ॥ हंसडिम्भकावूचतुः ॥ ज्ञानलेशाद्विहीनात्मन् किं ते व्यवसितं द्विज ॥ कश्चायमाश्रमो विप्र भवता यः समाश्रितः ॥ १ ॥ गृहमेधं परित्यज्य किं त्वया साधितं पदम् ॥ दम्भं एव भवान्व्यक्तं शङ्के नास्त्यत्र कारणम् ॥ २ ॥

गये ॥ २९ ॥ और जाकर वे दोनों अतीन्द्रिय दुर्वासासे बोले अर्थात् वे दोनों यतीन्द्रके ऊपर क्रुद्ध हुए ॥ ३० ॥ इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे भविष्यपर्वणि भाषायां हंसडिंभकोपाख्याने सप्ताधिकशततमोऽध्यायः ॥ १०७ ॥ हंसडिंभक बोले, हे द्विज ! ज्ञानलेशसे विहीन ! यह तुम्हारी क्या व्यवस्था है. हे विप्र ! जिसमें तुम स्थित हो यह कौनसा आश्रम है ॥ १ ॥ गृहस्थको छोडकर यह आपने क्या साधन किया है हम जानते हैं

सर्वथा आपने पाखण्ड साधा है इसमें और कुछ कारण नहीं है ॥ २ ॥ हे मूढ ! तुम निवृत्त हुएसे इन लोकोंको नाश करते हो निश्चय इन सबको तुम नरकमें गिराओगे ॥ ३ ॥ स्वयं भी नष्ट हुए और इन मूर्खोंको तुम नष्ट करते हो. हे मन्दमति ब्राह्मण ! क्या कोई तुम्हारा शास्ता नहीं हैं ॥ ४ ॥ इसमें संदेह नहीं कि तुम सर्वथा पापके विनेता हो. हे ब्राह्मण ! इस आश्रमको छोडकर आप गृहस्थ हो जाइये ॥ ५ ॥ हे विप्र ! सदा यत्नसे पंचयज्ञ करते रहिये तब स्वर्गको जाओगे कारण कि वहां बडा सुख है ॥ ६ ॥ हे विप्र ! यही कल्याणका मार्ग है जो आपकी जीवनमें स्पृहा है तौ करो जब

लोकांश्चेमान्सदा मूढ नाशयिष्यसि निर्वृतः ॥ एतान्सर्वान्विनेतासि नरके पातयिष्यसि ॥ ३ ॥ स्वयं नष्टः परान्मूर्खं नाशयिष्यसि यत्नतः ॥ अहो शास्ता कथं नास्ति तव मन्दमतेर्द्विज ॥ ४ ॥ सर्वथा त्वद्विनेता च पापो नास्त्यत्र संशयः ॥ त्यक्त्वेममाश्रमं विप्र गृही भव यतात्मवान् ॥ ५ ॥ पञ्च यज्ञान्सदा विप्र कुरु यत्नपरो भव ॥ ततः स्वर्गं परं गत्वा स्वर्गे हि सुमहत्सुखम् ॥ ६ ॥ एष श्रेयःपथो विप्र जीविते चेत्स्पृहा तव ॥ इत्युक्तवन्तौ धर्मात्मा श्रुत्वा विप्रो जनार्दनः ॥ ७ ॥ उवाच च यतिं दृष्ट्वा प्रणम्यासौ सुनीतवत् ॥ मा ब्रूतामीदृशं वाक्यं राजानौ मन्दतेजसौ ॥ ८ ॥ अश्राव्यमीदृशं घोरं लोकयोरुभयोरपि ॥ को वक्तुमीशो मन्दात्मा यदि जीवेत्सबान्धवः ॥ ९ ॥ सर्वथा काल एवायं युवयोर्मन्दचेतसोः ॥ समाप्त आयुषः शेषो ब्रह्मदण्डहतौ युवाम् ॥ १० ॥ एते हि यतयः शुद्धा ज्ञानदीपितचेतसः ॥ ज्ञानाग्निदग्धकर्माणः प्राणान्प्राणेषु जुह्वति ॥ ११ ॥ ऋते वामीदृशं वाक्यं कः समर्थो ह्यनुब्रुवन् ॥ सर्वथा ज्ञातमस्माभिः समाप्तमिह जीवितम् ॥ १२ ॥

इन दोनोंने ऐसा कहा तो जनार्दन ब्राह्मण इस वचनको सुन ॥ ७ ॥ सुनीतवत् प्रणाम कर यतिको देखकर कहने लगा. हे मंदतेजवाले राजकुमारो ! इनके प्रति ऐसे वचन न कहो ॥ ८ ॥ इस प्रकारके घोर वचन दोनों लोकमें कोई नहीं कह सकता है कौन बंधुओंके सहित जीनेकी इच्छा करनेवाला इनसे यह कह सक्ता है ॥ ९ ॥ सर्वथा तुम मंदबुद्धिवालोंको यह कालस्वरूप है आयु तुम्हारी समाप्त हो गई अब तुमपर ब्रह्मदण्ड गिरेगा ॥ १० ॥ यह शुद्ध यति ज्ञानसे दीप्तचित्त ज्ञान अग्निसे दीप्तिमान् शरीर प्राणोंको प्राणोंमें हवन करनेवाले हैं ॥ ११ ॥ इनसे ईशके विना कौन ऐसे

वचन बोल सकता है सर्वथा हमने जाना कि तुम्हारा जीवन समाप्त हो चुका ॥ १२ ॥ हे राजकुमारो ! शास्त्रमें ऋषियोंके किये चार आश्रम हैं. ब्रह्मचर्य गृहस्थ वानप्रस्थ सन्यास ॥ १३ ॥ उनमें सबमें श्रेष्ठ यह चौथा संन्यास आश्रम है सो इस पुण्यतर आश्रममें यह महाबुद्धि स्थित है ॥ १४ ॥ हम जानते हैं कि आपने अच्छी प्रकार वृद्धोंकी सेवा न की है तपस्वियोंसे ज्ञान नहीं प्राप्त किया भला ऐसा कौन कह सकता है ॥ १५ ॥ हे राजन् ! प्राणधारीयोंको इस प्रकारके वचन सुनने अश्राव्य हैं हे मंदात्मन् ! तुम मेरे मित्र हो क्या करूं ॥ १६ ॥ हे राजन् !

चत्वार आश्रमाः पूर्वमृषिभिर्विहिता नृपो ॥ ब्रह्मचारी गृहस्थश्च वानप्रस्थश्च भिक्षुकः ॥ १३ ॥ तत्र मग्रश्चतुर्थोऽयमाश्रमो भिक्षुकः स्मृतः॥ आस्ते तस्मिन्महाबुद्धिः स हि पुण्यतरः स्मृतः ॥१४॥ नोपासिता भवद्भ्यां च वृद्धाः स ᳚ग्विनीतवत् ॥ ज्ञानं नाप्तं तपस्विभ्यस्तथा चेवं वदेत कः ॥१५॥ अश्राव्यमीदृशं घोरं मया प्राणभृता नृप ॥ किं करिष्यामि मन्दात्मन्मित्रत्वाद्भवतो नृप॥१६॥ ज्ञानं यदाप्तं भवता गुरुभ्यस्तदत्र दुःखाय हि केवलं नृप ॥ ज्ञानं हि धर्मप्रभवं यथेष्टं बलाद्धिपापस्य विधातृरूपम् ॥ १७ ॥ युवां विहाय यास्ये वा पतेयं वा शिलातलम् ॥ पिबेयं वा विषं घोरं पतेयं वा महोर्मिषु ॥ १८ ॥ आत्मानं वात्र संत्यक्ष्ये पश्यतां शृण्वतां पुनः ॥ इत्युक्त्वा विललापेवं मा ब्रूतमिति तो वदन् ॥ १९ ॥ इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे भविष्यपर्वणि हंसडिम्भकोपाख्याने अष्टाधिकशततमोऽध्यायः ॥ १०८ ॥ वैशम्पायन उवाच ॥ ततः क्रुद्धोऽथ दुर्वासा धक्षन्निव तयोरसून् ॥ एकेनाक्ष्णाऽथ दुर्वासा रौद्रेणाग्नियुजा सदा ॥ १ ॥

॥१३२॥

तुमने जो गुरुओंसे ज्ञान प्राप्त किया है वह केवल दुःखकेही निमित्त है धर्मसे उत्तम है परन्तु तुम्हारा ज्ञान तौ पापकी उत्पत्तिकाही कारण है ॥ १७ ॥ मैं तुमको छोडकर चला जाऊंगा या शिलातलमें अपनेको गिरा दूंगा वा विष पी लूंगा या सागरमें गिर पडूंगा ॥ १८ ॥ अथवा कहते सुनतेमें अपने आत्माको त्यागन करूंगा इस प्रकार विलाप कर वह जनार्दन कहने लगा कि तुम दोनों ऐसे वचन मत कहो ॥ १९ ॥ इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे भविष्यपर्वणि भाषायां हंसडिंभोपाख्यानेऽष्टाधिकशततमोऽध्यायः ॥१०८॥ वैशंपायन बोले; तब क्रोधकर दुर्वासा उनके प्राणोंको

जलाते हुएसे अग्निकी समान रौद्र प्रज्वलित एक नेत्रसे ॥ १ ॥ रोषसे चलित इन्द्रिय हो उन दोनोंको देखने लगे. हे राजन् ! उस समय वह लोकोंको भस्मीभूत करने लगे ॥ २ ॥ और दूसरे सौम्य नेत्रसे उस ब्राह्मणको देखते हुए नष्ट हो नष्ट हो इस प्रकारके वचन कहने लगे ॥ ३ ॥ हे दोनों कुमारो ! यहांसे चले जाओ क्यों देर करते हो मेरे वचनके रोषको सहनेको तुम समर्थ नहीं हो ॥ ४ ॥ नहीं तो मैं सम्पूर्ण राजोंके भस्म करनेमें समर्थ हूं फिर मेरे आगे साहस करनेको समर्थ न होना ॥ ५ ॥ शंख चक्र गदाके धारण करनेवाले लोकमें विख्यात नारायण तुम्हारे दर्पको चूर्ण

पश्यंस्तौ च दुरात्मानौ रोषव्याकुलितेन्द्रियः ॥ कुर्वन्निव तदा लोकान्भस्मभूतानिमान्नृप ॥ २ ॥ ब्राह्मणं चक्षुषा पश्यन्सौम्येनान्येन केवलम् ॥ उवाच वचनं राजन्ध्वंसत ध्वंसतेति च ॥ ३ ॥ इतो गच्छत राजानौ किं विलम्बत मा चिरम् ॥ न वां वचनसंभूतं रोषं धारयितुं क्षमे ॥ ४ ॥ अन्यथा वो महीपालान्सर्वान्दग्धुमहं क्षमः ॥ किमतः साहसं वक्तुं कश्च शक्नोति मत्पुरः ॥ ५ ॥ दर्पं वा लोकविख्यातः शङ्खचक्रगदाधरः ॥ व्यपनेष्यति मन्दज्ञौ किं वो वक्ष्यामि साम्प्रतम् ॥ ६ ॥ तत उत्थाय धर्मात्मा गन्तुमैच्छद्यतीश्वरः ॥ ततो निषेद्धुं हंसस्तं यतते स्म यतीश्वरम् ॥ ७ ॥ तस्य बाहुं समादाय हंसो नृपवरोत्तमः ॥ कौपीनं चिच्छिदे क्रूरः कृतान्त इव सत्तम ॥ ८ ॥ यतयोऽन्ये पलायन्ति दिशो दश विचेतसः ॥ कष्टं हेति वदन्विप्रो मित्रभावाज्जनार्दनः ॥ ९ ॥ न्यवारयद्यथाशक्ति किमिदं साहसं त्विति ॥ दुर्वासाः सत्यधर्मस्तु हन्तुमीशोऽपि तं ततः ॥ १० ॥ मन्दं मन्दमुवाचेदं हंसं डिम्भकमेव च ॥ शापेनाहं समर्थोऽपि हन्तुं राजकुलाधमौ ॥ ११ ॥

करेंगे अब मैं क्या कहूं ॥ ६ ॥ जब वह धर्मात्मा ईश्वर यह कहकर वहांसे चलनेकी इच्छा करते हुए तब इस यतीश्वरको हंसने निषेध कर ॥ ७ ॥ नृपवर हंसने उनकी बाहु पकड कर क्रूरतासे उनकी कौपिन छेदन कर दी तब कालकी समान दिखाई देने लगे ॥ ८ ॥ दूसरे यति विचेत हो दशों दिशाओंमें पलायन करने लगे उस समय मित्रभावसे जनार्दन कष्ट है कष्ट है ऐसा कहने लगा ॥ ९ ॥ और यथाशक्ति उनको निवारणभी करने लगा कि यह क्या साहस है यद्यपि सत्यधर्म दुर्वासा उन्होंको मारनेको समर्थ थे ॥ १० ॥ परन्तु हंसडिंभकसे मन्द मन्द कहने लगे मैं शापसे इन

नीच कुल राजोंको मारनेमें समर्थभी हूं ॥ ११ ॥ तौभी यति होनेके कारण मैं ऐसा न करूंगा जो जगन्नाथ केशव शंख चक्र गदाधर हैं वह केशव यादवेश्वर ॥ १२ ॥ शंख चक्र गदापाणि तुम्हारा अभिमान दूर करेंगे वह यदुपति लोककी रक्षा करेंगे ॥ १३ ॥ तुम दोनोंका सज्जीव है कारण कि उनके हाथसे मरनेमें स्वर्ग होगा और तुम्हारा बंधु जरासंधभी तुमसे कहनेकी इच्छा न करेगा ॥ १४ ॥ इस प्रकारके लोक विद्वेषमें वह धर्मपथमें स्थित होकरभी इस प्रकार संन्यासियोंका द्रोह करनेसे वह तुमको त्याग देगा ॥ १५ ॥ उस मगधदेशके अधिपतिके

तथापि न करोम्यन्तं यतयो ह्यत्र ते वयम् ॥ यो हि देवो जगन्नाथः केशवो यादवेश्वरः ॥ १२ ॥ शंखचक्रगदापाणिर्गर्वं वां व्यपनेष्यति ॥ लोके तस्मिन्यदुश्रेष्ठे रक्षत्येवं जगत्पतौ ॥ १३ ॥ युवयोः सर्वथा जीवः सज्जीव इति मे मतिः ॥ जरासन्धोऽपि वां बन्धुः स च वक्तुं न चेच्छति ॥ १४ ॥ ईदृशं लोकविद्विष्टं स हि धर्मपथे सदा ॥ एतावता स वां बन्धुर्न हि भूयो भविष्यति ॥ १५ ॥ विद्वेषो ह्यस्तु वां तस्य मागधस्य महीपतेः ॥ श्रुत्वेदं घोररूपं तु स हि बन्धुः सहेत चेत् ॥ १६ ॥ धर्मनाशो भवेत्तस्य नात्र कार्या विचारणा ॥ इत्युक्त्वा गच्छ गच्छेति हंसं प्राह पुनः पुनः ॥ १७ ॥ जनार्दनमुवाचेदं दुर्वासा यतिसत्तमः ॥ स्वस्त्यस्तु तव विप्रेन्द्र भक्तिरस्तु जनार्दने ॥ १८ ॥ संगतिस्तव तस्यास्तु शङ्खचक्रगदाभृतः ॥ अद्य श्वो वा परश्वो वा साधुरेव सदा भवान् ॥ १९ ॥ नहि साधोर्विनाशोऽस्ति लोकयोरुभयोरपि ॥ गच्छ सर्वं पितुर्ब्रूहि ज्ञात्वा वृत्तं यथाखिलम् ॥ २० ॥ इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे भविष्यपर्वणि हंसडिम्भकोपाख्याने दुर्वासोभाषणे नवाधिशततमोऽध्यायः ॥ १०९ ॥

साथ तुम्हारा विद्वेष होगा जो इस घोररूप अनिष्टको सुनकर वह सहन करे ॥ १६ ॥ इसमें सन्देह नहीं कि उसका धर्म नाश हो जायगा यह कह वारंवार हंससे कहा चला जा चला जा ॥ १७ ॥ और यतिश्रेष्ठ दुर्वासाने जनार्दनसे कहा; हे विप्रेन्द्र ! तुम्हारे कल्याण और जनार्दनमें भक्ति हो ॥ १८ ॥ और तुम्हारी शंख चक्र गदाधारीसे संगति होगी आज कल वा परसों आप श्रेष्ठ साधुत्व को प्राप्त होंगे ॥ १९ ॥ दोनों लोकमें साधुओंका विनाश नहीं होता है जाकर यह सब वृत्तान्त अपने पिताभे कह देना ॥ २० ॥ इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे भविष्य-

पर्वणि भाषायां हंसडिभोपाख्याने दुर्वाससोभाषणे नवाधिकशततमोऽध्यायः ॥ १०९ ॥ वैशंपायन बोले, तब वह हंस और डिंभक कालसे प्रेरित हो कोपित हुए शिष्य कमंडलु द्विदल काष्ठ ॥ १ ॥ दण्ड पात्र इत्यादि सबको छेदन भेदन करके उस देशमें व्याधोंसे मांस पकवाते हुए ॥ २ ॥ वहां उसे भक्षण करके फिर अपनी पुरीमें आये और धर्मात्मा जनार्दन स्नेहसे उनके पीछे पीछे गया ॥ ३ ॥ और अब यह नष्ट हुए ऐसा जानकर वह बडा दुःखी हुआ और उन सबके चले जानेपर यतिश्रेष्ठ दुर्वासा ॥ ४ ॥ पलायन करते हुए सब यतियोंसे इस प्रकार बोले और पवित्र देश पुष्करसे निक-

वैशम्पायन उवाच ॥ ततस्तौ हंसडिम्भकौ क्रुद्धौ कालेन चोदितौ ॥ शिष्यं कमण्डलुं चैव द्विदलं दारुमेव च ॥ १ ॥ दण्डान्पात्रविशेषांश्च छित्त्वा भित्त्वा च सर्वशः॥ तस्मिन्देशे महाराज व्याधैर्मांसान्यदीदहन् ॥२॥ भक्षयित्वा ततो देशात्स्वपुरीं तौ प्रजग्मतुः॥ जनार्दनश्च धर्मात्मा स्नेहादनुययौ तयोः ॥ ३ ॥ नष्टाविमाविति तदा स मेने दुःखितः परम् ॥ गतेषु तेषु सर्वेषु दुर्वासा यतिसत्तमः ॥ ४ ॥ पलायनपरान्सर्वानिदं प्राह यतीश्वरान् ॥ इतो देशाद्विनिर्गत्य पुष्करात्पुण्यसंयुतात् ॥ ५ ॥ मन्दं मन्दं समाश्वास्य विश्रम्य च ततस्ततः॥ प्रविश्य द्वारकां देवं शङ्खचक्रगदाधरम् ॥ ६ ॥ दृष्ट्वा च तस्मै प्रभवे वक्ष्यामो यतिसत्तमाः ॥ स हि रक्षन् जगदिदं धर्मवर्त्मनि संस्थितः ॥ ७ ॥ आद्यो लोकगुरुर्विष्णुर्यतात्मा तत्त्ववित्प्रियः ॥ उद्धृत्य कण्टकान्सर्वाञ्छशास पृथिवीमिमाम् ॥ ८ ॥ स च पापान्महाघोरान्सर्वान्पापकृतान्प्रभुः ॥ रक्षेन्नः सकलान्सर्वान् ज्ञानेषु नियतात्मनः ॥ ९ ॥ इदमद्य क्षमं विप्रा यानमद्य विधीयताम् ॥ साहसं यत्कृतं ताभ्यां पात्रभेदादि सत्तमाः ॥ १० ॥

लकर ॥ ५ ॥ मंद मंद समझाते हुए इधर उधर ठहराते हुए और बोले द्वारकामें शंख चक्र गदाधारीके निकट जाकर उन प्रभुका दर्शन ॥ ६ ॥ कर उनसे हम यह वृत्तान्त कहेंगे वह इस जगत्की रक्षा करते धर्ममार्गमें स्थित हैं ॥ ७ ॥ आद्य लोकके गुरु विष्णु यतात्मा तत्त्वके जाननेवाले प्रिय सब कंटकोंको नष्ट करके इस पृथ्वीका पालन करते हैं ॥ ८ ॥ यह प्रभु सब महाघोर पाप और पापात्माओंसे ज्ञानमें नियतात्मा हो हम सबकी रक्षा करते हैं ॥ ९ ॥ हे ब्राह्मणो ! अब यही ठीक है कि उनके निकट चलें, जो उन दोनोंने साहस किया है वह उनसे कहें जो उन्होंने हमारे पात्रोंका

छेदन भेदन किया है ॥ १० ॥ यह हम जनार्दनको दिखावें वह ज्ञानी यति इस प्रकारकी प्रतिज्ञा करके ॥ ११ ॥ उन टूटे हुए दारुमय पात्रोंको लेकर द्विदल कषाय वस्त्र और कोपीन वल्कलको लेकर ॥ १२ ॥ तथा अलाबु फलके मूलसे अर्धप्रोत दो टुकडे हुए पात्रको ले तथा अन्य वस्तुओंकोभी लेकर केशवके दर्शनको गये ॥ १३ ॥ पांच सहस्र मुनियोंको साथ लेकर तपोयोनि ईश्वरके अंश दुर्वासाजी ॥ १४ ॥ एक दिन रात बराबर चलकर कृष्णकी पाली हुई द्वारकामें वे चतुर महात्मा कोई लोमवान् कोई केशवर्जित प्राप्त हुए ॥१५॥ हे राजेन्द्र! प्रातःकाल वे यतीश्वर वापिकामें पहुँच वहां

एतत्सर्वमशेषेण दर्शयाम जनार्दनम् ॥ तथेति ते प्रतिज्ञाय यतयो ज्ञानचक्षुषः ॥ ११ ॥ छिन्नं ताभ्यां समादाय शिक्यं दारुमयं तथा ॥ द्विदलं कर्पटं चैव कोपीनमथ वल्कलम् ॥ १२ ॥ कमण्डलुं तदा राजन्नर्धप्रोतकपालकम् ॥ एतानन्यान्समादाय द्रष्टुं केशवमाययुः ॥ १३ ॥ पञ्च चैव सहस्राणि पुरस्कृत्य महामुनीन् ॥ दुर्वाससं तपोयोनिमीश्वरस्यात्मसंभवम् ॥ १४ ॥ अहोरात्रेण ते सर्वे द्वारकां कृष्णपालिताम् ॥ ययुर्दान्ता महात्मानो लोमशाः केशवर्जिताः ॥१५॥ प्रातः प्रविश्य राजेन्द्र वापिकायां यतीश्वराः॥ स्नात्वोपस्पृश्य ते सर्वे यत्नेन महता तदा ॥ १६ ॥ द्रष्टुमभ्युद्यता विष्णुं कण्टकोद्धतितत्परम् ॥ एकरूपं समास्थाय सुधर्मायामवस्थितम् ॥ १७ ॥ इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे भविष्यपर्वणि हंसडिम्भोपाख्याने यतीनां द्वारकागमनं नाम दशाधिकशततमोऽध्यायः ॥ ११० ॥ वैशम्पायन उवाच ॥ अथ सर्वेश्वरो विष्णुः पद्मकिञ्जल्कलोचनः ॥ श्यामः पीताम्बरः श्रीमान्प्रलम्बाम्बरभूषणः ॥ १ ॥ किरीटी श्रीपतिः कृष्णो नीलकुञ्चितमूर्द्धजः ॥ अव्यक्तः शाश्वतो देवः सकलो निष्कलः शिवः ॥ २ ॥

स्नान कर बडे यत्नसे ॥ १६ ॥ कंटकोंके उद्धार करनेमें युक्त केशवके देखनेकी इच्छा करने लगे जो एक रूपमें स्थित हो सुधर्मामें स्थित हैं ॥ १७ ॥ इति श्रीम॰ खि॰ ह॰ भविष्यपर्वणि भाषाया हंसडिंभोपाख्याने यतीनां द्वारकागमनो नाम दशाधिकशततमोऽध्यायः ॥ ११० ॥ वैशंपायन बोले; तब कमललोचन सर्वेश्वर विष्णु श्यामरूप पीताम्बरधारी श्रीमान् प्रलम्बायमान अम्बरकी समान भूषण धारे ॥ १ ॥ किरीटधारी श्रीपति कृष्ण नील कुंचित केशवाले अव्यक्त शाश्वत देव सकल निष्कल शिव ॥ २ ॥

कृष्ण विहार और क्रीडा करते थे उस समय अनेक कुमार और सात्यकि उनके साथ थे ॥ ३ ॥ यादवोंके साथ गोलाकार पाशोंसे खेल रहे थे युयुधानके सहित कृष्ण अपना प्रिय करते थे ॥ ४ ॥ कि यह प्रथमका अक्ष हमारा है तुम्हारा पीछे होगा जब कमल लोचन कृष्णने सात्यकिसे ऐसा कहा ॥ ५ ॥ तब उनके पार्श्वमें स्थित वसुदेवादि दूसरे यादव तथा उद्धव आदिभी वहां स्थित थे ॥ ६ ॥ वह भूतात्मा भूतभावन उस समय दूसरे व्यापारोंसे रहित थे और सुग्रीवके साथ रामकी समान विहारमें तत्पर थे ॥ ७ ॥ वह महाविष्णु अच्युत मध्याह्न समयमें

क्रीडाविहारोपगतः कदाचिदभवद्धरिः ॥ कुमारैरपरैः सार्द्धं सात्यकिप्रमुखैर्नृप ॥ ३ ॥ गोलक्रीडां सुधर्मायां मध्ये यादवसत्तमः ॥ चकार प्रियकृत्कृष्णो युयुधानेन केशवः ॥ ४ ॥ ममायं प्रथमो गोलस्तव पश्चाद्भविष्यति ॥ इति ब्रुवंस्तदा विष्णुः सात्यकिं कमलेक्षणः ॥ ५ ॥ पार्श्वस्था यादवास्तस्य वसुदेवपुरोगमाः ॥ उद्धवप्रमुखा राजन्नासेदुः क्वचिदत्र वै ॥ ६ ॥ अन्यव्यापाररहितो भूतात्मा भूतभावनः ॥ विजहार यथा रामः सुग्रीवेण पुरा नृप ॥ ७ ॥ मध्यंदिने महाविष्णुः शैनेयेन सहाच्युतः ॥ विक्रीडिच्य सुचिरं कृष्ण उपारंसीत्स यादवः ॥ ८ ॥ द्वाःस्थने वारिताः पूर्वं द्वार्येव च समास्थिताः ॥ इदमन्तरमित्येव विविशुस्तां सभां नृप ॥ ९ ॥ यतयो दीर्घतपसः पुरस्कृत्य तपोधनम् ॥ दुर्वाससं सुमनसो ददृशुर्यादवेश्वरम् ॥ १० ॥ गोलक्रीडासमासक्तं करसंस्थितगोलकम् ॥ पद्मपत्रविशालाक्षं विष्णुं तं सात्यकिं हरिम् ॥ ११ ॥ एकेनाक्ष्णा ह्लादयन्तं परेणान्येन गोलकम् ॥ यतयश्च महाराज प्रत्यदृश्यन्त तत्पुरः ॥ १२ ॥ वृष्णिपः पुण्डरीकाक्षः सात्यकिर्बलभद्रकः ॥ वसुदेवस्तथाक्रूर उग्रसेनस्तथा नृप ॥ १३ ॥

सात्यकिके साथ विहार कर उपरामको प्राप्त हुए ॥ ८ ॥ पहले द्वारपालोंने तपस्वियोंको श्रीकृष्णको क्रीडा करते देखकर निवृत्त कर रक्खा था अब समय देखकर वे तपस्वी सभामें प्रविष्ट हुए ॥ ९ ॥ वे दीर्घतपवाले यति तपोधन दुर्वासाको आगे करके श्रेष्ठ मनवाले यादवेश्वरका दर्शन करते हुए ॥ १० ॥ जिनके हाथमें क्रीडा करनेका पासा विद्यमान है पद्मपत्रकी समान विशाललोचन विष्णु और सात्यकिको देखा ॥ ११ ॥ एक ओर दृष्टिसे प्रसन्न करके दूसरे ओर गोलकको देखते वे महातपस्वी श्रीकृष्णको देखते हुए ॥ १२ ॥ वृष्णिपति पुण्डरीकाक्ष सात्यकि बलभद्र वसुदेव अक्रूर राजा उग्रसेन ॥ १३ ॥

औरभी दूसरे यादव उन्हें देख आश्चर्यको प्राप्त हो कहने लगे यह क्या ऐसे सब मनमें भ्रान्त हो कहने लगे ॥ १४ ॥ तीनों जगत्को दग्ध करनेमें समर्थ दुर्वासाके पीछे अनेक ऋषि गमन करने लगे अर्धकौपीन वस्त्रवाले स्मरण करनेवाले किसी द्विजको देख ॥ १५ ॥ जो कि अन्तरके तापसे युक्त छिन्न दण्ड धारण किये यति जो कि रोषसे अन्तरमें प्रज्वलित हो रहे थे कारण कि हंसके द्वारा उनको बडा कश्मल आनकर प्राप्त हुआ था ॥ १६ ॥ नेत्रमें उठी हुई महाअग्निसे यादवेश्वरको देखने लगे तब सब यादव भीत हो दुर्वासाको देखने लगे ॥ १७ ॥ यह दुर्वासा क्रोध कर क्या कहेंगे और

अन्ये च यादवाः सर्वे संभ्रमं प्रतिपेदिरे ॥ इदं किमिदमित्येवं व्याशङ्कमनसोऽभवन् ॥ १४ ॥ पृष्ठतोऽप्यनुगच्छन्ति दिधक्षन्तं जगत्रयम् ॥ अर्धकौपीनवसनं स्मरन्तं कमपि द्विजम् ॥ १५ ॥ अन्तस्तापसमायुक्तं छिन्नदण्डधरं यतिम् ॥ अन्तर्ज्वलन्तं रोषेण हंसासादितकल्मषम् ॥ १६ ॥ नेत्रोत्थितमहावह्निं प्रेक्षन्तं यादवेश्वरम् ॥ दुर्वाससं ते ददृशुर्भीता यादवसत्तमाः ॥ १७ ॥ किं करिष्यत्यसो क्रुद्धः किं वा वक्ष्यति नः प्रभुः ॥ इति प्राञ्जलयः सर्वे यादवाः प्रतिपेदिरे ॥ १८ ॥ इदमासनमित्येवं किंचिदूचुश्च वृष्णयः ॥ ततः कृष्णो हृषीकेशः किंचिदुत्प्लुत्य तत्पुरः ॥ १९ ॥ इदमासनमित्येवं स्थीयतामिह निर्वृतः ॥ अहमत्र स्थितो विप्र किंकरोऽस्मीति चाब्रवीत् ॥ २० ॥ ततः किंचिदिवासीन आसने यतिविग्रहः ॥ आसने संस्थिते तस्मिन्यतयो वीतमत्सराः॥२१॥ आसनानि यथायोगं भेजिरे निर्वृताः किल ॥ अर्घादिसमुदाचारं चक्रे कृष्णः किरीटभृत् ॥ २२ ॥ आह भूयो हृषीकेशो यतिं दुर्वाससं प्रभुम् ॥ किमर्थं ब्रूहि विप्रेन्द्र अस्मिन्प्रत्यागमो हि वः ॥ २३ ॥

हमारे प्रभु क्या करेंगे इस प्रकार हाथ जोडकर सम्पूर्ण यादव स्थित हुए ॥ १८ ॥ कोई कोई वृष्णिवंशी कहने लगे यह आसन है विराजिये तब हृषीकेश श्रीकृष्णजी कुछ आगे बढकर बोले ॥ १९ ॥ यह आसन है इसपर सुखसे बैठिये और मैं आपकी आज्ञामें स्थित हूं क्या करूं ॥ २० ॥ तब वह दुर्वासा कुछेक आसनपर बैठते हुए, जब वे आसनपर बैठ गये तब दूसरे यतिभी ॥ २१ ॥ यथायोग्य अपने आसनोंपर बैठते हुए तब श्रीकृष्णने सब अर्घादिका आचार किया ॥ २२ ॥ फिर हृषीकेश दुर्वासा ऋषिसे कहने लगे. हे विप्रेन्द्र ! कहिये इस समय आप कैसे पधारे हैं ॥ २३ ॥

इसमें मैं कोई बडा कारण आपकी दृष्टिसे देखता हूं. हे द्विजश्रेष्ठो ! आप पापरहित संन्यासी हो ॥ २४ ॥ हे द्विजश्रेष्ठो ! आप सदा स्पृहारहित हो आपको कोई इच्छा न होनेसे कुछ प्रार्थनाभी नहीं है ॥ २५ ॥ स्पृहासे प्रेरित कर्मवाले क्षत्रियोंके निकट जाते हैं. हे विप्र ! हमसे निरूपणीय कोई वस्तु नहीं है ॥ २६ ॥ हे ब्रह्मन् ! आपके आगमनकारण जाननेकी मुझे बडी अभिलाषा है परन्तु इतना अनुमान करता हूं कि इसमें कुछ कारण है ॥ २७ ॥ सो आप कहिये यह हम आपसे जाननेकी इच्छा करते हैं चक्रपाणि जनार्दनके ऐसा कहने पर ॥ २८ ॥ उन ब्राह्मणश्रेष्ठको बडा क्रोध

दृष्टं वा ह्यथवा किंचित्कारणं चास्ति वो महत ॥ संन्यासिनो द्विजश्रेष्ठा यूयं विगतकल्मषाः ॥ २४ ॥ निस्पृहाश्च सदा यूयमस्मत्तो द्विजपुङ्गवाः ॥ प्रार्थ्यं नाम न चैवास्ति स्पृहा नैवास्ति वो यतः ॥२५॥ स्पृहाप्रेरितकर्माणः क्षत्रियान् यान्ति सुव्रताः ॥ निरूप्यमाणमस्माभिर्विप्र किंचिन्न दृश्यते ॥ २६ ॥ न जाने कारणं ब्रह्मन्युष्मदागमनं प्रति ॥ एतावता चानुमेयं किंचित्कारणमस्ति वे ॥ २७ ॥ तद्ब्रूहि यदि विद्येत त्वत्तो ज्ञास्यामहे वयम् ॥ इत्युक्तवति देवेशे चक्रपाणौ जनार्दने ॥ २८ ॥ तस्यापि राजन्विप्रस्य भूयः कोपो महानभूत् ॥ तस्मादभ्यधिकः पूर्वात्कोपः संजायते महान् ॥ २९ ॥ दिधक्षन्निव लोकांस्त्रीन् भक्षयन्निव पश्यतः ॥ रोषरक्तेक्षणः क्रुद्धो हसन्निव दहन्निव ॥ ३० ॥ उवाच वचनं विष्णुं दुर्वासाः क्रोधमूर्च्छितः ॥ न जाने इति कस्मात्त्वं ब्रूषे नो यादवेश्वर ॥ ३१ ॥ जानामि त्वां महादेवं वञ्चयन्निव भाषसे ॥ पुरातना वयं विष्णो पूर्ववृत्तान्तवेदिनः ॥ ३२ ॥ यथा हि देवदेवोऽसि मायामानुषदेहवान् ॥ निगूहसे प्रभुरतः कस्मान्नो जगतीपते ॥ ३३ ॥

बढा और पहलेसेभी अधिक कोप बढने लगा ॥ २९ ॥ तीनों लोकको जलाते हुएसे और देखनेसे भक्षण करते हुएसे रोषसे लालनेत्र कर हँसते और जलाते हुएसे ॥ ३० ॥ क्रोधसे मूर्च्छित हो दुर्वासा विष्णु भगवान्से बोले; हे यादवेश्वर ! यह आप किस प्रकारसे कहते हैं कि हम नहीं जानते ॥ ३१ ॥ मैं तुम महादेवको जानता हूं आप वंचना करते हुए इस प्रकारके वचन कहते हो ॥ ३२ ॥ आप देवदेव मायासे मनुष्यका शरीर धारण कर आये हो. हे जगत्पते ! फिर आप हमसे किस कारण छिपाव करते हो ॥ ३३ ॥

आप ब्रह्मविद पुरुषोंकी मूर्ति हो, यही आपका परम पद है जिसे पहले ब्रह्माने अर्चन किया और जिसको पहले हमने जाना ॥ ३४ ॥ जिससे यह सब संसार हुआ है वही आप परम पद हो जिसको तत्त्वज्ञानी स्थूलरूपभी जानते हैं ॥ ३५ ॥ जिसको पुरातनवित् ऐसा जानते हैं वही यह परम शरीर है जो कर्मसेही प्राप्त है, जिसको स्मरण कर हम शान्त होते हैं ॥ ३६ ॥ जिस प्रत्यक्ष हुए रूपकोभी मनुष्य नहीं जानते हैं, न मूढबुद्धि और न हमही जिसको यथार्थतासे जानते हैं ॥ ३७ ॥ हम नहीं जानते हैं आप ऐसे साहसके वचन कैसे कहते हो, जो

सोऽसि ब्रह्मविदां मूर्तिस्तवैतत्परमं पदम् ॥ यदभ्यर्च्य पुरा ब्रह्मा यच्च ज्ञाना वयं पुरा॥ ३४॥ यतो विश्वमिदं भूतं तदेतत्परमं पदम् ॥
यच्च स्थूलं विजानन्ति पुरा तत्त्वेन चेतसा ॥ ३५ ॥ पुराविदोऽथ विश्वेश तदेतत्परमं वपुः ॥ कर्मणा प्राप्यते यत्तु यत्स्मृत्वा
निर्वृता वयम् ॥ ३६ ॥ ॥ प्रत्यक्षमपि यद्रूपं नैव जानन्ति मानुषाः ॥ न हि मूढधियो देव न वयं तादृशा हरे ॥ ३७ ॥ न जाने
इति यद्ब्रूषे किमतः साहसं वचः ॥ ये हि मूलं विजानन्ति तेषां तु प्रविवेचनम् ॥ ३८ ॥ कुर्वतः किं फलं देव तव केशिनिषूदन ॥
वेदान्ते प्रथितं तेजस्तव चेदं विचार्यते ॥ ३९ ॥ ये च विज्ञानतृप्तास्तु योगिनो वीतकल्मषाः ॥ पश्यन्ति हृत्सरोजेऽपि तदेवेदं वपुः
प्रभो ॥ ४० ॥ वेदैर्यद्गीयते तेजो ब्रह्मेति प्रतिपाद्य वै ॥ तदेवेदं विजानेऽहं रूपमैश्वरमेव च ॥ ४१ ॥ वैष्णवं परमं तेज इति
वेदेषु पठ्यते ॥ अवगच्छाम्यहं विष्णो तदेवेदं वपुस्तव ॥ ४२ ॥ य ओमित्युच्यते शब्दो यस्य वागिति गीयते ॥ स एवासि प्रभो
विष्णो न जाने इति मा वद ॥ ४३ ॥

मूलको जानता है उसका विचार कैसा ॥ ३८ ॥ हे देव ! हे केशिनिषूदन ! इस प्रकार आपका वेदान्तमें कथित तेज विचारा जाता है ॥ ३९ ॥ जो पापरहित योगी वेदान्तमें तृप्त हैं वह अपने हृदयकमलमें आपका दर्शन करते हैं ॥ ४० ॥ जो वेदोंमें गाया जाता है जो ब्रह्मसे प्रतिपादित होता है उसी ईश्वरके रूपको हम जानते हैं ॥ ४१ ॥ वैष्णवही परम तेज है ऐसा वेदोंमें पढा जाता है ! हे विष्णो ! हम उसी आपके रूपके जाननेकी इच्छा करते हैं ॥ ४२ ॥ जिसको ॐ कहते हैं और वाक् (वाणी) कहते हैं वही आप प्रभु विष्णु हो हम नहीं जानते ऐसा मत कहो ॥ ४३ ॥

जो कुछ तुमसे परोक्ष हो तो यह कह सकते हैं, हम नहीं जानते. हे गोविंद ! ऐसा मत कहो ॥ ४४ ॥ जिससे यह विश्व उदय हुआ है और जिसमें लय हो जाता है हे केशव ! उसी तुम्हारे इस वैष्णव तेजके जाननेकी इच्छा करता हूं ॥ ४५ ॥ तुम सब जगत्के कर्ता भूतभव्यके पति हो सदा हृदयमें दीखते हो जो आपको स्मरण करते हैं ॥ ४६ ॥ हे विष्णो ! मेरी बुद्धिमें वायु विष्णु है जब यह ध्यान होता है. हे विष्णो ! तब वही रूप मेरे हृदयमें स्थिति करता है ॥ ४७ ॥ कभी आकाशही विष्णु है ऐसा ध्यानमें आता है तब वही रूप हृदयमें स्थित होता है ॥ ४८ ॥ कभी यह

परोक्षं यदि किंचित्स्यात्तव वक्तुं प्रयुज्यते ॥ न जाने इति गोविन्द मा वादीः साहसं हरे ॥ ४४ ॥ विश्वं यदा प्रादुरासीद्यस्मिँल्लीनं क्षये सति ॥ इदं त्वदैश्वरं तेजस्त्ववगच्छामि केशव ॥ ४५ ॥ कर्ता त्वं भूतभव्येश प्रतिभासि सदा हृदि ॥ यद्यद्रूपं स्मरेन्नित्यं तत्तदेवासि मे हृदि ॥ ४६ ॥ वायुरेव यदा विष्णुरिति मे धीयते मतिः ॥ तदा तद्रूपमेवासि हृन्मध्ये संस्थितो विभो ॥ ४७ ॥ आकाशो विष्णुरित्येव कदाचिद्धीयते मतिः ॥ तदा तद्रूपमेवासि हृन्मध्ये संस्थितो विभो ॥ ४८ ॥ पृथिवी विष्णुरित्येतत्कदाचिद्धीयते मतिः ॥ तदा पार्थिवरूपस्त्वं प्रतिभासि सदा मम ॥ ४९ ॥ रसोऽयं देव इत्येव कदाचिच्चिन्त्यते मया ॥ तदा रसात्मना विष्णो हृन्मध्ये संस्थितो विभो ॥ ५० ॥ यदा त्वं तेज इत्येवं स्मर्ता स्यां पुरुषोत्तम ॥ तदा तद्रूपसंपन्नः प्रतिभासि सदा हृदि ॥ ५१ ॥ चन्द्रमा हरिरित्येवं तदा चान्द्रमसं वपुः ॥ निरीक्ष्य चक्षुषा देव ततः प्रीतोऽस्मि केशव ॥ ५२ ॥ यदा सौरं वपुरिति स्मर्त्ता स्यां जगतीपते ॥ तदा तद्भावनायोगात्सूर्य एव विराजसे ॥ ५३ ॥

मध्यमें आता है कि पृथ्वीही विष्णु है तब तुम हमको पार्थिवरूप दीखते हो ॥ ४९ ॥ कभी आपको मैं रसरूपसे विचार करता हूं तब आपको मैं रसरूप देखता हू ॥ ५० ॥ हे पुरुषोत्तम ! जब आकाश और तेजरूपसे आपका ध्यान करता हूं तब वही रूप मेरे हृदयमें दीखने लगता है ॥ ५१ ॥ जब आपको चन्द्रमारूपसे विचार करता हूं तब आप चन्द्रमारूपसे दीखते हो. हे देव ! इस प्रकार आपको देख मैं प्रसन्न होता हूं ॥ ५२ ॥ हे जगतीपते ! जब आपको सूर्यरूपसे विचार करता हूं, तब उसकी भावनासे सूयरूप दीखते हो ॥ ५३ ॥

इस कारण सर्वरूप तुमही हो यह मेरी निश्चित मति है. हे जनार्दन ! हम नहीं जानते ऐसी बात आप मत कहो ॥ ५४ ॥ हे विष्णो ! सर्वज्ञ होकर आप हमारे दुःखको क्यों नहीं जानते हे विष्णो ! हम अत्यन्त दुःखी होकर आपके निकट आये हैं ॥ ५५ ॥ हे केशव ! आप ऐसी हमारी दशाको क्यों नहीं स्मरण करते हो हमारा भाग्यही नष्ट हुआ है यह हम विचार करते हैं ॥ ५६ ॥ हे प्रभो ! जो हमारा भाग्यही नष्ट है जो आप हमको भूल गये हो कोई क्षत्रिय कुमार शिवके वरदानसे गर्वित हुए ॥ ५७ ॥ हंस और डिंभक नामवाले हमको बाधा देते हैं. हे केशव ! गृहस्थही सर्वश्रेष्ठ है

तस्मात्सर्वं त्वमेवासि निश्चिता मतिरीदृशी ॥ अतो न जानेऽहमिति वक्तुं नेशो जनार्दन ॥ ५४ ॥ इत्यर्थं संस्थितो विष्णो पीडां नो नैव चिन्त्यसे ॥ अत्यन्तदुःखिता विष्णो वयं त्वामनुसंस्थिताः ॥ ५५ ॥ ईदृशीयमवस्था नो नैतां स्मरसि केशव ॥ एतत्पुनर्भाग्यमतो नष्टमित्येव चिन्तये ॥ ५६ ॥ मन्दभाग्या वयं विष्णो यतो नो न स्मरेः प्रभो ॥ कोचित्क्षत्रियदायादो गिरीशवरगर्वितो ॥५७॥ नाम्ना हंसडिम्भकौ च बाधेते नो जनार्दन ॥ गार्हस्थ्यं हि सदा श्रेयो वदन्ताविति केशव ॥ ५८ ॥ इतस्ततश्च धावन्तो वदन्तो बहु किल्बिषम् ॥ अयुक्तं बहु भाषन्तो धर्षयन्तौ च नः सदा ॥ ५९ ॥ इदमन्यत्कृतं देव असह्यं पापमुच्यते ॥ पश्येदं बहुधा देव भिन्नं भिन्नं सहस्रशः॥६०॥ शिक्यं च दारवं पात्रं द्विदलान्वेणुकान्बहून् ॥ इदमप्यपरं पश्य तयोः साहसचेष्टितम् ॥६१॥ कोपीनं बहुधा च्छिन्नं तदस्माकं महद्धनम् ॥ कृतं कपालमात्रेण कमण्डलु जगत्प्रभो ॥ ६२ ॥

यह वह कहते हैं ॥ ५८ ॥ इधर उधर धावमान होते बडे दुर्वाक्य कहते थे, औरभी अनेक अयुक्त वचन कह सदा हमारी धर्षणा करते हैं ॥ ५९ ॥ हे देव ! यह और असह्य पाप उनका है आप देखिये कि हमारे पात्रोंके सहस्रों खण्ड कर दिये हैं ॥ ६० ॥ शिक्य काष्ठ पात्र द्विदल वेणु यह खण्ड २ कर दिये यह आप उनकी दूसरी साहस चेष्टा स्मरण कीजिये ॥ ६१ ॥ हमारी महाधन कोपीनभी

छेदन कर दी है. हे जगत्प्रभो ! हमारा कमण्डलु तोडकर कपाल मात्र कर दिया है ॥ ६२ ॥ आप क्षात्रव्रतमें स्थित हुए नित्य हमारी रक्षा करते हो. हे देव ! यह बडा आश्चर्य है. प्रतिदिन हमारी रक्षा करते हो ॥ ६३ ॥ हे प्रभो ! हम मंदात्मा मंदभाग्य हैं क्या करें. हे जगत्पते ! कहिये आपके शिवाय हम किसकी शरण जाँय ॥ ६४ ॥ यदि वे जीते रहे तो त्रिलोकी नष्ट हो जायगी, न ब्राह्मण न राजा न वैश्य न शूद्र कोई न रहेंगे ॥ ६५ ॥ वे दोनों अत्यन्त बलि तीक्ष्ण दण्ड धरनेवाले हैं उनके आगे खडे होनेको देवता और इन्द्र समर्थ नहीं है ॥ ६६ ॥ न भीष्म न राजा

त्वं तु नो क्षरसे नित्यं क्षात्रं वै व्रतमास्थितः ॥ चित्रं चित्रमिदं देव रक्षस्यपि सदानिशम् ॥ ६३ ॥ किं करिष्यामि मन्दात्मा मन्दभाग्या वयं विभो ॥ किन्नः शरणमद्यैव तद्ब्रूहि जगतां पते ॥ ६४ ॥ जीवन्तौ तौ यदि स्यातां नष्टा लोका इमे त्रयः ॥ न विप्रा न च राजानो न वैश्या न च पादजाः ॥ ६५ ॥ अत्यन्तबलिनौ मत्तौ तीक्ष्णदण्डधरौ नृप ॥ न तयोः पुरतः स्थातुं शक्ता देवाः सवासवाः ॥ ६६ ॥ न च भीष्मो न वा राजा बाह्लीको भीमविक्रमः ॥ यो हि वीरो जरासन्धः क्षत्रियाणां भयंकरः ॥ ६७ ॥ नैव च प्रायशः स्थातुं गिरीशवरदर्पिणोः ॥ तयोः कृष्ण हरे शक्तो नित्यमप्रतिसङ्गिनोः ॥ ६८ ॥ तस्मात्त्वं जहि तौ वीरौ रक्ष लोकानिमान्प्रभो ॥ अन्यथा रक्षसीत्येवं व्यर्थः शब्दोऽत्र जायते ॥ ६९ ॥ बहुनात्र किमुक्तेन रक्ष रक्ष जगत्त्रयम् ॥ इत्युक्त्वा विररामैव दुर्वासाः क्रोधमूर्च्छितः ॥ ७० ॥ इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे भविष्यपर्वणि हंसडिम्भकोपाख्याने दुर्वासःसमागमो नामैकादशाधिकशततमोऽध्यायः ॥ १११ ॥

पराक्रमी वाल्हीक कोई ऐसा बलि नहीं जो वीर जरासंध क्षत्रियोंको भय देनेवाला है ॥ ६७ ॥ वहती शिवके वरसे अभिमानवाले उनके समाने खडा नहीं हो सकता है. हे कृष्ण ! उन सदा संगति करनेवालोंके सामने आपही समर्थ हैं ॥ ६८ ॥ हे प्रभो ! इस कारण आप इन दोनोंको मारकर जगत्की रक्षा करो नहीं तो रक्षा करनेका शब्द तुममें वृथा हो जायगा ॥ ६९ ॥ बहुत कहनेसे क्या है आप त्रिलोकीकी रक्षा कीजिये क्रोधमूर्छित दुर्वासा यह कहकर मौन हुए ॥ ७० ॥ इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे भविष्यपर्वणि भाषायां हंसडिम्भकोपाख्याने दुर्वासःसमागमो नामैकादशाधि-

कशततमोऽध्यायः ॥ १११ ॥ वैशंपायन बोले; इस प्रकार दुर्वासाके वचन सुनकर श्रीकृष्ण कुछ दीर्घनिश्वास ले दुर्वासाको देखकर यादवेश्वर कहने लगे ॥ १ ॥ यह सब हमाराही दोष है आप हमको क्षमा करिये, आप हमारे वचन सुनकर शान्त हूजिये ॥ २ ॥ हे विप्र! उन हंस और डिंभकको मैं युद्धमें जीतूंगा चाहे उनको गिरीश वा कुबेर किसीने वर क्यौं न दिया हो ॥ ३ ॥ यम वरुण चाहें चतुर्मुख ब्रह्मासे क्यौं न वर पाये हों मैं उन दोनोंको सेनासहित मारकर तुमको प्रसन्न करूंगा ॥ ४ ॥ आप इस बातमें क्रोध न करें मैं सत्यकी सौगन्ध कर कहता हूं उन दोनों नृपाधमोंको मारकर मैं

वैशम्पायन उवाच ॥ यतेर्वचनमाकर्ण्य मन्दमुच्छ्वस्य केशवः ॥ दुर्वाससं समालोक्य बभाषे यादवेश्वरः ॥ १॥ क्षन्तव्यं भवता सर्वं दोष एव ममैव हि ॥ शृणु वाक्यं ममैतत्तु श्रुत्वा शान्तिपरो भव ॥ २ ॥ जेष्यामि तौ रणे विप्र हंसं डिम्भकमेव च ॥ गिरिशो वा वरं दद्याच्छक्रो वा धनदोऽपि वा ॥ ३ ॥ यमो वा वरुणो वापि ब्रह्मा वाथ चतुर्मुखः ॥ सबलौ सानुजौ हत्वा पुनर्दास्यामि वो रतिम् ॥ ४ ॥ सत्येनैव शपाम्यद्य मा रोषवशगो भव ॥ रक्षां वोऽहं करिष्यामि हत्वा तौ च नृपाधमौ ॥५॥ जानामि तौ दुरात्मानौ युष्मद्द्वेषकरौ हि तौ ॥ श्रुतं च पूर्वमस्माभिस्तीक्ष्णदण्डधराविति ॥ ६ ॥ अत्यन्तबलिनौ मत्तौ गिरीशवरदर्पितौ ॥ नाल्पप्रयत्नसंसाध्यौ जरासन्धहितैषिणौ ॥ ७ ॥ प्राणानपि तयो राजा दास्यत्येव न संशयः ॥ जरासंधो महीपालो विना तौ जयते महीम् ॥ ८ ॥ जये तयोर्विप्रवर्य तत्र श्रेयो भवेत्ततः ॥ यत्र यत्र तु तौ गत्वा स्थितावित्यनुशुश्रुम ॥ ९ ॥

तुम्हारी रक्षा करूंगा ॥ ५ ॥ तुम्हारे साथ द्वेष करनेवाले उन दुरात्माओंको मैं जानता हूं मैंने उनके तीक्ष्ण दंडकी वार्ता पहले सुन ली है ॥ ६ ॥ वे दोनों बडे बली मत्त शिवके वरदानसे गर्वित हैं और जरासंधके हितकारी होनेसे थोडे प्रयत्नसे साध्य नहीं हो सके हैं ॥ ७ ॥ राजा उनको अपने प्राणतक दे देगा इसमें संशय नहीं राजा जरासंध उनकी सहायताके विनाही पृथ्वी जीत सकता है ॥ ८ ॥ हे विप्रश्रेष्ठो! उनके जीतनेमेंभी मंगल होगा, हमने सुना है कि जहां जहां जाकर स्थिति करेंगे ॥ ९ ॥

वहीं वहीं मैं उनका वध करूंगा इसमें सन्देह नहीं. हे यतियो! आप स्वच्छन्दतासे जाकर अपना कार्य करो ॥ १० ॥ शीघ्रही उन युद्ध करनेवालोंको मैं जीतूंगा तब यादवेश्वरसे प्रसन्न हो वह कहने लगे ॥ ११ ॥ जगत्‌का मंगल करनेवाले कृष्ण! आपकी जय हो. हे जगन्नाथ केशव! आपको जगत्‌में दुस्साध्य क्या है ॥ १२ ॥ आप त्रिलोकीके अधिपति त्रिधामा हो सब संहारके करनेवाले हो आप देवताओंकेभी देवता सर्वत्र समदृष्टि हो ॥ १३ ॥ हे विष्णो देव! हे चक्रपाणि कृष्ण! आपको नमस्कार है. स्वभावशुद्ध शुद्ध नियमित आपके निमित्त नमस्कार है ॥ १४ ॥ हे शब्दगोचर देवेश भक्त-

तत्र तत्र च हन्ताहं नात्र कार्या विचारणा ॥ गच्छध्वं यतयः स्वैरं निजकार्यपरायणाः ॥ १० ॥ अचिरेणैव कालेन जेष्यामि रणपुङ्गवो ॥ ततः प्रीतः प्रसन्नात्मा यादवेश्वरमाह सः ॥ ११ ॥ स्वस्त्यस्तु भवते कृष्ण जगतां स्वस्ति कुर्वते ॥ किन्तु नाम जगन्नाथ दुःसाध्यं तव केशव ॥ १२ ॥ त्रिलोकेश त्रिधामासि सर्वसंहारकारकः ॥ देवानामपि देवेश सर्वत्र समदर्शनः ॥ १३ ॥ विष्णो देव हरे कृष्ण नमस्ते चक्रपाणये ॥ नमः स्वभावशुद्धाय शुद्धाय नियताय च ॥ १४ ॥ शब्दगोचर देवेश नमस्ते भक्तवत्सल ॥ अज्ञानादथवा ज्ञानाद्यन्मयोक्तं क्षमस्व तत् ॥ १५ ॥ त्वमेवाहं जगन्नाथ नावयोरन्तरं पृथक् ॥ अतः क्षमस्व भगवन्क्षमासारा हि साधवः ॥ १६ ॥ श्रीभगवानुवाच ॥ क्षन्तव्यं भवता विप्र क्षमासारा वयं सदा ॥ संन्यासिनः क्षमासाराः क्षमा तेषां परं बलम् ॥ १७ ॥ क्षमा मोक्षकरी नित्यं तत्त्वज्ञानमिव द्विज ॥ क्षमा धर्मः क्षमा सत्यं क्षमा दानं क्षमा यशः ॥ १८ ॥ क्षमा स्वर्गस्य सोपानमिति वेदविदो विदुः ॥ तस्मात्सर्वप्रयत्नेन क्षमां पालयत स्वकाम् ॥ १९ ॥

वत्सल! आपके निमित्त नमस्कार है जो ज्ञानसे वा अज्ञानसे मैंने कहा है सो क्षमा करो ॥ १५ ॥ हे जगन्नाथ! तुम मैं एकही हूं हममें आपमें अन्तर नहीं है इस कारण हे भगवन्! क्षमा करो. साधु क्षमावाले होते हैं ॥ १६ ॥ श्रीभगवान् बोले; हे विप्र! आपही क्षमा करो तुम क्षमासारवाले हो संन्यासी क्षमासारवाले होते हैं उनका क्षमाही परम बल है ॥ १७ ॥ हे द्विज! तत्त्वज्ञानकी समान क्षमा नित्य मोक्ष करनेवाली है, क्षमा धर्म क्षमा सत्य क्षमा दान और क्षमा यश है ॥ १८ ॥ क्षमाही स्वर्गकी सीढी है ऐसा वेदवादी कहते हैं इस कारण सब प्रयत्नसे तुम क्षमाकी पालना करो ॥ १९ ॥

तुम सम्पूर्ण यतीश्वर प्रत्यक्ष ज्ञानसे युक्त हो जोही यति हैं वह मुझे सदैव पूजने चाहिये ॥ २० ॥ यति ब्राह्मण भिक्षुकोंको सदा भोजन देना चाहिये, सो आप सब हमारे यहां भोजन कीजिये, बहुत अच्छा यह वचन कह उन सबने नारायणके स्थानमें भोजन करनेकी इच्छा की ॥ २१ ॥ तब हरि ईश्वर अपने भवनमें प्रवेश कर चार प्रकारके भोजन विधिपूर्वक कराकर ॥ २२ ॥ सत्कारपूर्वक उन यतियोंको भोजन कराते हुए और देवेशने कह उनके वस्त्र फटे अलग कराय नवीन वस्त्र दिये ॥ २३ ॥ हे जनमेजय ! इस प्रकार सबको भोजन दिया वस्त्र दिये वह यथायोग्य प्रसन्न हो अपने २ स्थानोंको

प्रत्यक्षज्ञानसंयुक्ता यूयं सर्वे यतीश्वराः ॥ य एते यतयो विप्राः पूजनीया मयाद्य वै ॥ २० ॥ भोक्तव्या यतयो विप्रा भिक्षुकाः सर्व एव हि ॥ तथेति ते प्रतिज्ञाय भोक्तुमैच्छन्हरेर्गृहे ॥ २१ ॥ ततः स्वभवनं विष्णुः प्रविश्य हरिरीश्वरः ॥ चतुर्विधं तथाहारं कारयित्वा यथाविधि ॥ २२ ॥ भोजयामास तान्सर्वान्यतीन्यतिवरार्चितः ॥ छित्त्वा छित्त्वा च देवेशो दुकूलानि मृदूनि सः ॥ २३ ॥ ददौ तेभ्यस्तदा विष्णुः सर्वेभ्यो जनमेजय ॥ ते च प्रीता यथायोगं यथापूर्वं ततो मताः ॥ २४ ॥ इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे भविष्यपर्वणि हंसडिम्भकोपाख्याने यतिभोजनं नाम द्वादशाधिकशततमोऽध्यायः ॥ ११२ ॥ वैशम्पायन उवाच ॥ दुर्वासास्त्वथ तत्रैव नारदेन महात्मना ॥ चिन्तयन् ब्रह्मणस्तत्त्वं विजहार यथासुखम् ॥ १ ॥ भगवानपि गोविन्दस्तयोर्वासममन्यत ॥ ततस्तौ हंसडिम्भकौ तस्मिन्काले महीपतिम् ॥ २ ॥ ब्रह्मदत्तं महीपालं पितरं वीर्यशालिनम् ॥ प्रोचतामिदं वाक्यं समन्ताज्जनसंसादि ॥ ३ ॥ राजसूयं महायज्ञं पितः कुरु सुयत्नतः ॥ अस्मिन्मासि नृपश्रेष्ठ यत्नावो यज्ञसिद्धये ॥ ४ ॥

गये ॥ २४ ॥ इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे भविष्यपर्वणि भाषायां हंसडिंभकोपाख्याने यतिभोजनं नाम द्वादशाधिकशततमोऽध्यायः ॥ ११२ ॥
वैशंपायन बोले; उस समय महात्मा नारदजीके साथ दुर्वासाजी ब्रह्मतत्त्वका विचार करते यथासुखसे विहार करने लगे ॥ १ ॥ भगवान् गोविन्दनेभी उनको अपने यहां टिकाया उस समय हंस और डिंभकभी राजा ॥ २ ॥ ब्रह्मदत्त बडे बलीसे जनसभामें इस प्रकारके वचन कहने लगे ॥ ३ ॥ हे पिताजी ! आप यत्नसे राजसूय यज्ञ करनेकी इच्छा करिये. हे राजन् ! इसी महीनेमें आप यज्ञ सिद्धिके निमित्त यत्न करिये ॥ ४ ॥

हे राजन् ! हम आपके निमित्त दिग्विजय करेंगे. हाथी घोडे सेनासे युक्त हम जांयगे ॥५॥ हे राजन् ! यज्ञसिद्धिके निमित्त सामान मँगवाइये बहुत अच्छा ऐसा ब्रह्मदत्तने कहा ॥६॥ उस ब्राह्मण जनार्दनने उनका इस प्रकारसे साहस देखकर उसे अशक्य जानकर अपने मित्र हंससे कहा ॥७॥ हे हंस ! हमारे वचन सुनकर निश्चय करो. हे आयुष्मन् ! आप बडा साहस करनेको उद्यत हुए हैं ॥ ८ ॥ जब कि जरासंध भीष्म बाह्लीक तथा महावीर यादव स्थित हैं ॥ ९ ॥ और सत्यसंध जितेन्द्रिय महाबली भीष्मजी स्थित हैं जिन्होंने इक्कीस वार पृथ्वीका जय करनेवाले परशुरामको ॥ १० ॥

आवां तेऽद्य महाराज दिशां विजयतत्परौ ॥ यतिष्यावो बलैः सार्द्धं गजैरश्वै रथैरपि ॥५॥ संभारा यज्ञसिद्ध्यर्थमानेतव्या नृपोत्तम ॥ तथेति स महाबाहो ब्रह्मदत्तोऽब्रवीत्तदा ॥ ६ ॥ जनार्दनस्तु विप्रेन्द्रो दृष्ट्वा साहसतत्परौ ॥ अशक्यामिति मन्वानो वयस्यं हंसमब्रवीत् ॥ ७ ॥ शृणु हंस वचो मह्यं श्रुत्वा निश्चित्य वीर्यवान् ॥ आयुष्मन्साहसं कर्तुमुद्यतोऽसि नृपोत्तम ॥ ८ ॥ स्थिते भीष्मे जरासंधे बाह्लीके च नृपोत्तमे ॥ किं च वीरेषु सर्वेषु यादवेषु नृपोत्तम ॥ ९ ॥ भीष्मो हि बलवान्वृद्धः सत्यसंधो जितेन्द्रियः ॥ त्रिःसप्तकृत्वः पृथिवीं यो जिगाय भृगूत्तमः ॥ १० ॥ तं युद्धे जितवान्भीष्मः सर्वक्षत्रस्य पश्यतः ॥ जरासन्धस्य यद्वीर्यं तद्भवान्वेत्ति संयुगे ॥ ११ ॥ वृष्णिवीरास्तु ते सर्वे कृतास्त्रा युद्धदुर्मदाः ॥ तत्र कृष्णो हृषीकेशो जितशत्रुः कृती सदा ॥ १२ ॥ जरासंधेन सहितः सदा युद्धे जितश्रमः ॥ प्रमुखे तस्य न स्थातुं शक्तो जीवन्नृपोत्तमः ॥ १३ ॥ बलभद्रस्तथा मत्तः क्रुद्धो यदि भवेद्बली ॥ लोकानिमान्समाहर्तुं शक्नोतीति मतिर्मम ॥ १४ ॥

सब क्षत्रियोंके देखते युद्धमें जीत लिया जो जरासंधका वीर्य है वह आप युद्धमें जानतेही हैं ॥ ११ ॥ इधर सब वृष्णिवंशी कृतास्त्र और युद्धमें दुर्मद हैं उनके अधिपति कृष्ण शत्रुओंके जीतनेवाले महाचतुर हैं ॥ १२ ॥ जरासंधके साथभी युद्धमें श्रम जीतनेवाले हैं उनके सामने कोई राजा स्थित हो जीवित नहीं रह सकते ॥ १३ ॥ और प्रमत्त बलराम यदि क्रुद्ध हो तो इन लोकोंको नष्ट कर सकते हैं यह मेरी बुद्धिमें आता है ॥ १४ ॥

इसी प्रकार वीर सात्यकि युद्धमें शत्रुओंको जीत सकता है इसी प्रकार औरभी सब यादव कृष्णके आश्रयवाले प्रबल हैं ॥ १५ ॥ और हमारा यतियोंके साथ पहले विरोध हो चुका है और दुर्वासा यतियोंके साथ कृष्णको देखनेके निमित्त गये हैं ॥ १६ ॥ यह हमने भोजनको आये हुए ब्राह्मणोंसे सुना है इसमें जैसे सिद्धि हो वैसे मंत्रियोंके साथ विचार कीजिये ॥ १७ ॥ पीछे राजसूय महायज्ञका अनुष्ठान करेंगे. हंसने कहा मंदात्मा हीनबल वृद्ध भीष्म कौन है ॥ १८ ॥ क्या वह वृद्ध हमारे सामने स्थित हो सकता है यह अत्यन्त आश्चर्यकी बात है कि हमारे सामने

तथा च सात्यकिर्वीरः शक्तो जेतुं रणे रिपून् ॥ तथान्ये यादवाः सर्वे कृष्णमाश्रित्य दंशिताः ॥ १५ ॥ अस्माभिश्च कृतः पूर्वं विरोधो यतिभिः सह ॥ दुर्वासा यतिभिः सार्धं गतो द्रष्टुं स केशवम् ॥ १६ ॥ इति श्रुतं नृपश्रेष्ठ ब्राह्मणाद्भोक्तुमागतात् ॥ तथा सति यदा सिद्ध्येत्तथा चिन्त्यं च मन्त्रिभिः ॥ १७ ॥ ॥ ततः पश्चाद्विधास्यामो राजसूयं महाक्रतुम् ॥ हंस उवाच ॥ को नाम भीष्मो मन्दात्मा वृद्धो हीनबलः सदा ॥ १८ ॥ आवयोः पुरतः स्थातुं शक्तः स किल वृद्धकः ॥ यादवा इति चित्रं न शक्ताः स्थातुं रणे द्विज ॥ १९ ॥ कश्च कृष्णः पुरः स्थातुं बलदेवश्च मत्तकः ॥ शैनेयश्चापि विप्रेन्द्र स्थातुं न इति चिन्तय ॥ २० ॥ जरासन्धस्तु धर्मात्मा बन्धुरेव सदा मम ॥ गच्छ विप्र यदुश्रेष्ठं ब्रूहि मद्वचनात्त्वरन् ॥२१॥ दीयतां करसर्वस्वं यज्ञार्थं सुन्दरं बहु ॥ लवणानि बहून्यद्य गृह्य केशव मा चिरम् ॥ २२ ॥ आगच्छ त्वरितं कृष्ण न ते कार्यं विलम्बनम् ॥ इति ब्रूहि यदुश्रेष्ठं याहि त्वरितविक्रमः ॥ २३ ॥ न ब्रूयाश्चोत्तरं विप्र शपेयं त्वां प्रियोऽसि मे ॥ मित्रभावादिदं ब्रूहि पश्यामि त्वां पुनः पुनः ॥ २४ ॥

यादव स्थित हो सकते हैं ॥ १९ ॥ कौन कृष्ण और मत्त बलराम कौन हे. विप्रेन्द्र ! कहीं सात्यकिभी हमारे सामने स्थित हो सकता है ॥ २० ॥ धर्मात्मा जरासंध हमारा सदा बंधु है. हे विप्र ! जाओ हमारे वचनोंसे यदुश्रेष्ठसे कहो ॥ २१ ॥ यज्ञके निमित्त हमको बहुतसा कर दे और बहुतसे लवणभी केशवसे ग्रहण करो ॥ २२ ॥ और वे कृष्ण यह लेकर बहुत शीघ्र आवे देर न करे तुम जलदी जाकर यह श्रीकृष्णसे कहो ॥ २३ ॥ हे विप्र ! मैं तुमको अपनी सौगन्ध दिवाकर कहता हूं कि इसमें प्रत्युत्तर न देना मैं तुमको वारंवार मित्रभावसे देखता हुआ कहता हूं ॥ २४ ॥

ऐसे कहनेपर ब्राह्मणने कुछ उत्तर नहीं दिया. हे राजन् ! मित्रभाव और स्नेहसे कुछ न बोला ॥ २५ ॥ वह धर्मात्मा जनार्दन नित्य जानेकी इच्छा करता आज जाऊं कल जाऊं प्रतिदिन ऐसा कहता ॥ २६ ॥ शंख चक्र गदा धारण करनेवाले देवके देखनेकी इच्छा करता ॥ २७ ॥ फिर प्रातःकाल वह द्वारकापुरीके देखनेको शीघ्रतासे चल हरि कृष्ण हृषीकेशको मनसे स्मरण करता चला ॥ २८ ॥ इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे भविष्य-पर्वणि भाषायां हंसडिंभकोपाख्याने त्रयोदशाधिकशततमोऽध्यायः ॥ ११३ ॥ वैशंपायन बोले; तब वह हरिभक्त ब्राह्मण विष्णुके समीप चले. हे

इति संचोदितो विप्रो नोत्तरं प्रत्यभाषत ॥ मित्रभावात्तथा राजन् स्नेहाच्च जनमेजय ॥ २५ ॥ जनार्दनस्तु धर्मात्मा नित्यं गन्तुं समुद्यतः ॥ अद्य श्वो वा परश्वो वा गच्छामीति यतेत सः ॥ २६ ॥ देवं द्रष्टुं जगद्योनिं शंखचक्रगदाधरम् ॥ एक एव च धर्मात्मा हयमारुह्य सत्वरम् ॥ २७ ॥ प्रातरेव जगामाशु द्रष्टुं द्वारवतीं द्विजः ॥ हरिं कृष्णं हृषीकेशं मनसा संस्मरन् द्विजः ॥ २८ ॥ इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे भविष्यपर्वणि हंसडिम्भकोपाख्याने त्रयोदशाधिकशततमोऽध्यायः ॥ ११३ ॥

वैशम्पायन उवाच ॥ ततः प्रायाद्धरिं विष्णुं ब्राह्मणो ब्रह्मवित्तमः ॥ हयेनैकेन राजेन्द्र त्वरितं स ययौ नृप ॥ १ ॥ यथा निदाघसमये सूर्यांशुपरिपीडितः ॥ पान्थो याति जलं दृष्ट्वा त्वरितं तत्पिपासया ॥ २ ॥ धावत्येष तथा विप्रो हरिं द्रष्टुं जनार्दनः ॥ गच्छन्स चिन्तयामास चोदयन् हयमुत्तमम् ॥ ३ ॥ हंस एव प्रियो मह्यं कुर्यात् प्रियहितं मम ॥ तथाहि प्रेषितस्तेन हरिं पश्याम्यहं प्रभुम् ॥ ४ ॥ अहमेव सदा धन्यो मत्तो ह्यभ्यधिको नहि ॥ यतो द्रक्ष्याम्यहं विष्णुं वसन्तं द्वारकापुरे ॥ ५ ॥

राजेन्द्र ! एक घोडेपर चढ वह बडी शीघ्रतासे चला ॥ १ ॥ जैसे गरमीके समय सूर्यकी किरणोंसे पीडित हुआ प्यासके कारण पथिक वृक्षके नीचे जाता हो ॥ २ ॥ इसी प्रकार यह ब्राह्मण हरिको देखनेको धावमान हुआ घोडेको प्रेरण कर जाता हुआ वह चिन्ता करने लगा ॥ ३ ॥ हंस मेरा प्रिय है सदैव मेरा प्रियहित करता है उसने मुझे अबभी नारायणके दर्शनके निमित्त प्रेरण किया है ॥ ४ ॥ मैं बडा धन्य हूं मुझसे अधिक कोई धन्य नहीं है जो कि मैं द्वारकापुरीमें निवास करते विष्णुका दर्शन करूंगा ॥ ५ ॥ फिर वह मेरी माताभी धन्य है जो फिर आये हरिका

दर्शन करेगी वह देवी इनको देखकर सर्वथा कृतार्थ हो जायगी ॥६॥ खिले हुए कमलकी समान मुझ उन शंख चक्र गदाधारी नारायणको देखूंगा ॥७॥ मैं नीलकमलकी समान कान्तिमान् उन विष्णुका मुख देखूंगा शंख चक्र गदा और शार्ङ्ग धनुष्य तथा वनमालासे विभूषित ॥८॥ उनको और कमलकी समान खिले उनके नेत्रोंको मैं अदीनात्मा देखूंगा इस समयमें दुःखरहित और शान्त हूं ॥ ९ ॥ वह योगात्मा अपनी सौम्य दृष्टीसे मुझको देखेंगे अथवा वह मेरा प्रिय कहकर स्वस्तिवाचन कहेंगे ॥ १० ॥ वह त्रिलोकीके आनन्ददायक चक्रधारीके शरीरका मैं दर्शन करूंगा अब उनके चरण-

सा हि मे जननी धन्या हरिं दृष्ट्वा पुनर्गतम् ॥ कृतार्था सर्वदा देवी द्रक्ष्यत्येषा मनस्विनी ॥६॥ मुखमुन्निद्रहेमाब्जाकिञ्जल्कसदृशप्रभम् ॥ द्रक्ष्यामि देवदेवस्य चक्रिणः शार्ङ्गधन्वनः ॥ ७ ॥ वपुर्द्रक्ष्याम्यहं विष्णोर्नीलोत्पलदलच्छवि ॥ शङ्खचक्रगदाशार्ङ्गवनमालाविभूषितम् ॥ ८ ॥ नेत्रे ते देवदेवस्य पद्मकिञ्जल्कसप्रभे ॥ पश्याम्यहमदीनात्मा नष्टदुःखोऽस्मि निर्वृतः ॥ ९ ॥ अपि द्रक्ष्यति योगात्मा सौम्येनैव स्वचक्षुषा ॥ अपि वा मत्प्रियं ब्रूयात्स्वस्ति चेति च वा वदेत् ॥ १० ॥ द्रक्ष्यामि चक्रिणो वर्ष्म ततस्त्रैलोक्यसन्निभम् ॥ पादाब्जं चक्रिणो द्रष्टुं त्वरत्येव च मे मनः ॥ ११ ॥ वक्षःस्थलं सदा विष्णोः स्फुरद्रत्नप्रभायुतम् ॥ पश्यन्निव च गच्छामि स्मरंश्चानिशमीश्वरम् ॥ १२ ॥ पीतकौशेयवसनं लम्बहारविभूषितम् ॥ ईषत्स्मिताधरं विष्णुं पश्यामि च पुनः पुनः ॥ १३ ॥ स्मरतश्च हरे रूपं रोमहर्षोऽयमीदृशः ॥ गच्छतश्च पुरो भाति शङ्खचक्रगदासिमान् ॥ १४ ॥

कमल देखनेको मेरा मन शीघ्रता करता है ॥ ११ ॥ विष्णुका वक्षस्थल रत्नोंकी कान्तिसे सदा स्फुरायमान होता है मैं उसको देखता हुआ जाऊंगा और रातदिन स्मरण करूंगा ॥१२॥ पीत रेशमीन वस्त्र धारण किये लम्बायमान हारसे विभूषित कुछेक मुसकानवाले अधरयुक्त विष्णु भगवान्‌का वारंवार दर्शन करूंगा ॥ १३ ॥ उनका रूप स्मरण करकेही मेरे रोमाञ्च होते हैं और चलते हुए मेरे आगे शंख चक्र गदा असि हाथमें लिये शोभित

होते हैं ॥ १४ ॥ वह जगत्के गुरु देवदेव मेरे आगे चलते हुए दीखते हैं यह मेरी जिह्वा इनसे बोलनेको स्फुरायमान होती है ॥ १५ ॥ परन्तु कर दो यह वचन उनसे कहनाही महादुःखकारक है सो उस राजाके ऐसे वचन हैं यही महासाहस है ॥ १६ ॥ हे विष्णो ! हंसका कर दें यह उसकी आज्ञा मानकर निर्दय वचन कहना पडेगा और प्रभुके सन्मुख कहा जायगा ॥ १७ ॥ मैं मूर्खोंका अग्रणी निर्लज्जतापूर्वक कैसे इस बातको कहूंगा कि, हे विष्णो यदुपुंगव ! आप हंसका कर दो ॥ १८ ॥ करमें आपको अनेक प्रकारके लक्षण देने चाहिये शार्ङ्गीके सन्मुख मैं यह

यातीव च पुरो भाति मह्यं देवो जगद्गुरुः ॥ एषोऽयामीति मे वक्तुं जिह्वा प्रस्फुरतीव तम् ॥ १५ ॥ इदं दुःखतरं मन्ये करं देहीति मद्वचः ॥ इदं तत्साहसं मन्ये तद्वचस्तस्य भूपतेः ॥ १६ ॥ हंसस्य करदो विष्णुस्तदाज्ञापरिचारकः ॥ तस्य सर्वं पुरो गत्वा वक्ताहं किल निर्दयः ॥ १७ ॥ मूढानामग्रणीरस्मि निर्लज्जश्च तथा वदन् ॥ करं देहि हरे विष्णो हंसस्य यदुपुङ्गव ॥ १८ ॥ लक्षणानि बहून्याशु पातव्यानि करात्मना ॥ इति वक्तुं न मे युक्तं पुरतस्तस्य शार्ङ्गिणः ॥ १९ ॥ तथापि मित्रभावात्तु वक्तव्यं घोरमीदृशम् ॥ कष्टो ह्ययं मित्रभावो मनुष्याणां कृतात्मनाम् ॥ २० ॥ अथवा सर्वविद्विष्णुः सर्वस्य हृदि संस्थितम् ॥ जानात्येव सदा भावं प्राणिनां शोभने रतः ॥ २१ ॥ तथा सति न मे दोषो मित्रभावो यतो ह्ययम् ॥ सर्वथा रक्षतां विष्णुर्घोरं वक्तुं यतस्य मे ॥ २२ ॥ द्रक्ष्याम्यहं जगन्नाथं नीलकुञ्चितमूर्द्धजम् ॥ कम्बुग्रीवाधरं विष्णुं श्रीवत्साच्छादितोरसम् ॥ २३ ॥ स्फुरत्पद्ममहाबाहुं रत्नच्छायाविराजितम् ॥ द्रक्ष्यामि केशवं विष्णुं चक्रिणं यादवेश्वरम् ॥ २४ ॥

कहनेके योग्य नहीं हूं ॥ १९ ॥ तथापि राजाके मित्रभावसे यह घोरवार्ता मुझे कहनी पडेगी कृतात्मा मनुष्योंका मित्रभावभी बडे कष्टका देनेवाला है ॥ २० ॥ अथवा सबके जाननेवाले विष्णु सबके हृदयमें स्थित हैं वह प्राणियोंके हितमें तत्पर सब भावोंको जानते हैं ॥ २१ ॥ मैं उस राजाकी मित्रतासे यह कहूंगा इसमें मुझको दोष न लगेगा सर्वथा इस घोर वचनसे विष्णु मेरी रक्षा करेंगे ॥ २२ ॥ नीले घुँघुरवाले बालसे युक्त जगन्नाथका मैं दर्शन करूंगा जिनकी शंखकी समान गरदन विष्णुरूप जिनका हृदय श्रीवत्सचिन्हसे आच्छादित है ॥ २३ ॥ स्फुरायमान कमलकी समान महाभुजा

रत्नोंकी कान्तिसे शोभित शंख चक्र गदाधारी केशवको मैं दर्शन करूंगा ॥ २४ ॥ पूजनीय ऐश्वर्यवाले देव भूत भविष्य वर्तमानके ज्ञाता अपनी इच्छासे जगत्की रक्षा करनेवाले जलशायीका ॥ २५ ॥ दर्शन कर सर्वथा मैं कृतार्थ होकर दुःखरहित ही जाऊंगा साक्षात् हरिको देखकर मेरा जन्म सफल हो जायगा ॥ २६ ॥ हरिको साक्षात् कर आज मेरे यज्ञ सफल हो जायगे जगन्मय विष्णुको देख यह मेरे नेत्र सफल होंगे ॥२७॥ मैं घोर वचन कहूंगा तथापि विष्णु मेरे ऊपर प्रसन्न होंगे दोनों नेत्रोंसे भली प्रकार देखकर मैं विष्णुका दर्शन करूंगा ॥ २८ ॥ नखशिखपर्यन्त मैं विष्णुको

अचिन्त्यविभवं देवं भूतभव्यभवत्प्रभुम् ॥ आत्मेच्छया जगद्रक्षं द्रक्ष्यामि जलशायिनम् ॥ २५ ॥ कृतार्थः सर्वथा चाहं भवामि विगतज्वरः ॥ अद्य मे सफलं जन्म साक्षाद्दृष्टवतो हरिम् ॥ २६ ॥ अद्य मे सफला यज्ञाः साक्षात्कृतवतो हरिम् ॥ नेत्रे मे सफले विष्णुं पश्यतश्च जगन्मयम् ॥ २७॥ प्रीतिमानस्तु मे विष्णुर्वक्तुर्घोरस्य कर्मणः ॥ उन्मिषन्नेत्रयुग्मेन द्रक्ष्यामि सकृदीश्वरम् ॥२८॥ आमूलमसकृद्विष्णुं पश्यामि च पुनः पुनः ॥ पिबामि नेत्रयुग्मेन वपुः कृष्णस्य केवलम् ॥२९॥ धारयिष्याम्यहं पांसुं तत्पादप्रभवं शिवम् ॥ ततः कृतार्थतां यास्ये स्वर्गमार्गो हि तद्रजः ॥ ३० ॥ मेघगम्भीरनिर्घोषं श्रोष्यामि च हरेः स्वरम् ॥ पादाब्जं चक्रिणो विष्णोः पश्यामि च जगत्पतेः ॥ ३१ ॥ पश्यामि च हरेर्वक्त्रं पूर्णेन्दुसदृशप्रभम् ॥ हरेरिदं जगद्रूपं पश्यामीव च सर्वतः ॥ ३२ ॥ प्रसीदतु सदा विष्णुरयुक्तं वक्तुमिच्छतः ॥ आलोलकुण्डलयुतं हरिचन्दनचर्चितम् ॥३३॥ स्फुरत्केयूररत्नार्चिर्बाहुद्वयविराजितम् ॥ सव्ये द्योतन्महाशङ्खं रश्मिजालविराजितम् ॥ ३४ ॥

भली प्रकारके दर्शन करूंगा उन कृष्णके शरीरको मैं अपने नेत्रयुगलसे दर्शन करूंगा ॥२९॥ उनके चरणकमलकी धूरि मैं अपने शिरपर धारण करूंगा, तब कृतार्थताको प्राप्त हूंगा कारण कि उनके चरणोंकी रज स्वर्गका मार्ग है ॥ ३० ॥ मेघकी समान गंभीर हरिका शब्द मैं श्रवण करूंगा चक्रधारी विष्णुके चरणकमलोंका दर्शन करूंगा ॥३१॥ पूर्णचन्द्रमाकी समान कान्तिमान् हरिका मुख देखूंगा और हरिका यह रूप सब प्रकारसे देखूंगा ॥३२॥ अयुक्त कहनेवालेभी मुझपर विष्णु सदा प्रसन्न होंगे चलायमान कुंडलोंसे युक्त हरिचंदनसे चर्चित ॥३३॥ स्फुरायमान बाजूबंद रत्नोंकी कान्तिवाली दोनों

भुजाओंसे विराजित सीधे हाथमें महाशंख और रत्नोंसे प्रकाशित है ॥ ३४ ॥ उदय होते हुए सूर्यके वर्णकी समान कान्तिवाले चक्रकी ज्वालासे विराजित उज्ज्वल कंकणसे युक्त तत्ते सुवर्णके बने अंगदवाले ॥ ३५ ॥ पीत रेशमीन वस्त्र धारण किये विस्तीर्ण हृदयवाले देवेश अच्युतका मैं कब दर्शन करूंगा ॥ ३६ ॥ जो उनका दर्शन करूंगा इससे मैं सर्वथा कृतकृत्य हूं मुझे नमस्कार है मुझे नमस्कार है जो मैं हरिको देखूंगा ॥ ३७ ॥ जगन्नाथ बलभद्रके समीप विष्णु जिष्णु जगत्के गुरुका मैं आज दर्शन करूंगा ॥ ३८ ॥ कौस्तुभमणीसे स्फुरायमान वक्षस्थल पीताम्बर मकराकृत कुंडल

प्रोद्यद्भास्करवर्णाभं चक्रज्वालाविराजितम् ॥ प्रोज्ज्वलत्कङ्कणयुतं तप्तजाम्बूनदाङ्गदम् ॥ ६९ ॥ पीतकौशेयवसनं विस्तीर्णोरस्कमच्युतम् ॥ कदा द्रक्ष्यामि देवेशमिदानीमथवाऽन्यदा ॥ ३६ ॥ सर्वथा कृतकृत्योऽहं यद्द्रष्टुं द्रष्टुमुद्यतः ॥ नमो मह्यं नमो मह्यं यत्तो द्रष्टुमहं हरिम् ॥ ३७ ॥ उद्यतोऽस्मि जगन्नाथं बलभद्रकृतास्पदम् ॥ द्रक्ष्याम्यवश्यमद्यैव जिष्णुं विष्णुं जगद्गुरुम् ॥ ३८ ॥ श्रीकौस्तुभोद्भवरुचिं स्फुरितोरुवक्षः पीताम्बरं मकरकुण्डलपङ्कजाक्षम् ॥ कृष्णं किरीटवरचक्रगदोर्ध्वहस्तं तेजोमयं मम हरेर्वपुरस्तु भूत्यै ॥३९॥ वेदोदधौ विशदशास्त्रमहाहियोगे निष्णातशुद्धमतिमन्दरमथ्यमाने ॥ उद्योतमानममरैरनिशं निषेव्यं नारायणाख्यममृतं प्रपिबामि वाद्य ॥ ४० ॥ ध्येयं मुमुक्षुभिरमेयमनाद्यनन्तं स्थूलं सुसूक्ष्मतरमेकमनेकमाद्यम् ॥ ज्योतिस्त्रिलोकजनकं त्रिदशैकवन्द्यमक्ष्णोर्ममास्तु सततं हृदयेऽच्युताख्यम् ॥ ४१ ॥

धारण किये कमलनेत्र कृष्ण किरीटी चक्र गदा पद्मधारी हरिका तेजोमय शरीर मेरे मंगलके निमित्त हो ॥ ३९ ॥ वेदरूपी सागर शास्त्ररूपी शेषपर योगमें स्थित हो शयन करनेवाले शास्त्रके परागामी शुद्धमति मंदरके मथनेमें प्रकाशमान देवतोंसे नित्य सेवित नारायणरूपी अमृतका मैं आज पान करूंगा ॥ ४० ॥ मुमुक्षुओंसे ध्यानके योग्य आदि अन्त रहित स्थूल सूक्ष्मरूप एक अनेक रूपवाले ज्योतिरूप त्रिलोकीके उत्पन्नकर्ता देवताओंके नमस्कारके

योग्य मेरे नेत्र और हृदयमें सदा अच्युत विराजमान हों ॥ ४१ ॥ इस प्रकार वह ब्राह्मण विचार करता द्वारकापुरीको गया अपनेको कृतार्थ मान शीघ्रतासे घोडा चलाने लगा ॥ ४२ ॥ इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे भविष्यपर्वणि भाषायां हंसडिंभकोपाख्याने विप्रस्य द्वारवतीगमने चतुर्दशाधिकशततमोऽध्यायः ॥ ११४ ॥ वैशंपायन कहने लगे; उस धर्मात्मा ब्राह्मणने द्वारे स्थितही सर्वस्व निवेदन कर दिया पीछे धर्मात्मा श्रेष्ठ ब्राह्मण सभामें प्रविष्ट हुआ ॥ १ ॥ उस सुधर्मा सभामें मूर्तिमान् केशवका दर्शन किया जो बलरामके साथ महाआसनपर स्थित थे ॥ २ ॥ आगे सात्यकि और पीछे नारदजी स्थित थे और उग्रसेनको आगे किये दुर्वासासे कथोपकथन करते थे ॥ ३ ॥ मुख्य गंधर्व गाते और अप्सराओंके गण

चिन्तयन्निति विप्रेन्द्रो ययौ द्वारवतीं पुरीम् ॥ मत्वा कृतार्थमात्मानं वाहयन्हयमुत्तमम् ॥ ४२ ॥ इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे भविष्यपर्वणि हंसडिम्भकोपाख्याने विप्रस्य द्वारवतीगमने चतुर्दशाधिकशततमोऽध्यायः ॥ ११४ ॥ वैशम्पायन उवाच ॥ स निवेदितसर्वस्वो द्वाःस्थेन हि जनार्दनः ॥ अथ प्रविश्य धर्मात्मा सुधर्मां वै द्विजोत्तमः ॥ १ ॥ अपश्यद्देवदेवेशं सुधर्माकृतिसंस्थितम् ॥ बलभद्रेण संयुक्तमध्यासितमहासनम् ॥ २॥ अग्रतः स्थितशैनेयं पार्श्वतः स्थितनारदम् ॥ दुर्वाससा कृतकथमुग्रसेनपुरस्कृतम् ॥ ३॥ गायद्गन्धर्वमुख्यैश्च नृत्यदप्सरसां गणैः ॥ सेव्यमानं महाराज सूतमागधबन्दिभिः ॥ ४ ॥ उद्गीयमानयशसं माधवं मधुसूदनम् ॥ उद्गीयमानं विप्रैश्च सामभिः सामगैर्हरिम् ॥ दृष्ट्वा प्रीतमना विष्णुं प्रोद्भूतपुलकच्छविः ॥५॥ नाम्ना जनार्दनोऽस्मीति ननाम चरणौ हरेः ॥ बलभद्रं ततो देवं ववन्दे शिरसा द्विजः ॥ ६ ॥ दूतोऽस्मि देवदेवेश हंसस्य डिम्भकस्य च ॥ इति ब्रुवाणं विप्रेन्द्रमिदमाह स माधवः ॥७॥

नृत्य करते थे. हे महाराज ! सूत मागध बन्दिजन उनकी सेवा करते थे ॥ ४ ॥ मधुसूदन माधवका यश वे गान करते थे साम जाननेवाले ब्राह्मण सामवेदके मंत्रोंका पाठ करते थे इस प्रकार विष्णुको प्रसन्न देख छविसे पुलकायमान हो ॥ ५ ॥ अपना जनार्दन नाम लेकर इसने हरिके चरणोंको प्रणाम किया फिर बलरामजीको शिर झुकाकर प्रणाम किया ॥ ६ ॥ और कहा हे देवदेव ! मैं हंस और डिंभकका दूत हूं ब्राह्मणको ऐसा कहते सुन श्रीकृष्ण कहने लगे ॥ ७ ॥

हे ब्राह्मण ! पहले विष्टरपर बैठो पीछे अपना प्रयोजन कहो तब आसनपर स्थित हो ब्राह्मण बोला ॥ ८ ॥ तब श्रीकृष्णने उसका सत्कार कर कुशल पूछी ब्रह्मदत्त तथा हंसडिंभकके यहांभी कुशल पूछी ॥ ९ ॥ हे द्विज ! हमने प्रयोजन और पराक्रम सुना है जिस प्रकार हंस डिंभकमें बल है. हे जनार्दन ! तुम्हारे पिता कुशल हैं ॥ १० ॥ जनार्दन बोले; हे केशव ! ब्रह्मदत्त और मेरे पिता कुशलसे हैं; हे जगन्नाथ ! हंस और डिंभकभी प्रसन्न हैं ॥ ११ ॥ श्रीभगवान् बोले; उन हंस और डिंभकने क्या कह दिया है. हे द्विजोत्तम ! निश्शंक होकर वह तुम सब कहो ॥ १२ ॥ जो वाच्य अवाच्य जैसे

आस्वेदं विष्टरं पूर्वं पश्चाद्ब्रूहि प्रयोजनम् ॥ तथेति चाब्रवीद्विप्रो महदासनमास्थितः ॥८॥ वाचा संपूज्य विप्रेन्द्रमपृच्छत्कुशलं हरिः ॥ ब्रह्मदत्तस्य राजेन्द्र हंसस्य डिम्भकस्य च ॥ ९ ॥ श्रुतं चापि तयोर्वीर्यं प्रयोजनमतो द्विज ॥ अपि वा कुशलं विप्र पितुस्तव जनार्दन ॥ १० ॥ जनार्दन उवाच ॥ कुशलं ब्रह्मदत्तस्य पितुश्च मम केशव ॥ तयोरेव जगन्नाथ हंसस्य डिम्भकस्य च ॥ ११ ॥ श्रीभगवानुवाच ॥ किमाहतुर्महीपालौ तौ हंसडिम्भकौ नृपौ ॥ ब्रूहि सर्वमशेषेण नात्र शङ्का द्विजोत्तम ॥ १२ ॥ वाच्यं वाप्यथवावाच्यं कर्तव्यमथ चेतरत् ॥ श्रुत्वा तस्य विधास्यामो युक्तरूपं द्विजोत्तम ॥ १३ ॥ दूतोऽसि सर्वथा विप्र न वाच्यावाच्यकल्पना ॥ यत्कर्मकारनिर्दिष्टं तद्वाच्यं दूतजन्मना ॥ १४ ॥ नात्र शङ्का त्वया कार्या वक्तव्यस्येतरस्य च ॥ अतो वद यथा प्रोक्तं ताभ्यामिह जनार्दन ॥ १५ ॥ केशवेनैवमुक्तस्तु प्रोवाच स जनार्दनः ॥ अजानन्निव किं ब्रूषे सर्वं प्रत्यक्षदर्शिवान् ॥ १६ ॥ न चास्ति ते परोक्षं तु जगद्वृत्तान्तमच्युत ॥ सर्वं हि मनसा पश्यन् किं त्वमात्थ वेदति माम् ॥ १७ ॥

कुछभी कर्तव्य अकर्तव्य हो. तुम कहो हे ब्राह्मण ! उस वार्ताको सुनकर हम वैसा विधान करेंगे ॥ १३ ॥ हे विप्र ! आप दूत हो वाच्यकी कल्पना करे मत कहना जो कर्मकारने कहा है वह सर्वथा वर्णन करो ॥ १४ ॥ किसी प्रकारके वचन कहनेमें तुम कोई शंका न करना. हे जनार्दन ! इस कारण जो कुछ उन्होंने कह दिया है सो यथायोग्य कह देना ॥ १५ ॥ केशवके यह वचन सुन जनार्दनने कहा आप बेजानकी समान क्यों बोलते हो सब कुछ प्रत्यक्षके देखनेवाले हो ॥ १६ ॥ हे अच्युत ! आपको जगत्में कुछभी अविदित नहीं है सब कुछ मनसेही देखते हुए मुझसे कहनेको क्यों

कहते हो ॥ १७ ॥ हे जगतीपते विष्णो ! आपही विद्वानोंके द्वारा गाये जाते हो इच्छासेही आपको सब कुछ प्राप्त होता है दृष्ट अदृष्ट आप सबके ज्ञाता हो ॥ १८ ॥ सब जगत्में तुम और तुममें यह जगत् प्रतिष्ठित है आपसे रहित चराचर जगत्में कोई पदार्थ नहीं है ॥ १९ ॥ हे जगत्पते ! आप सर्वगामी हो आपको कुछभी अवेद्य नहीं है तुमही इन्द्र और सब भूतोंके संहार करनेवाले रुद्र हो ॥ २० ॥ हे विष्णु माधव ! आप सब लोककी रक्षा करनेवाले हो आप संसारके स्रष्टा होकर कहो यह कैसे कहते हो ॥ २१ ॥ हे माधव ! आपको विद्वान् नित्य ज्ञानात्मा कहकर मान

विद्वद्भिर्गीयसे विष्णो त्वमेव जगतीपते ॥ इच्छया सर्वमाप्नोषि दृष्टादृष्टविवेचनम् ॥ १८ ॥ त्वमेवेदं जगत्सर्वं जगच्च त्वयि तिष्ठति ॥ न त्वया रहितो ह्येकः पदार्थः सचराचरः ॥ १९ ॥ नास्ति किंचिदवेद्यं ते सर्वगोऽसि जगत्पते ॥ त्वमिन्द्रः सर्वभूतानां रुद्रः संहारक-मेकृत् ॥ २० ॥ रक्षितासि सदा विष्णुः सर्वलोकस्य माधव ॥ संसारस्य भवान्स्रष्टा किं त्वमात्थ वदेति माम् ॥ २१ ॥ विद्वद्भिर्मीयसे नित्यं ज्ञानात्मेति च माधव ॥ प्राणं प्राणविदः प्राहुस्त्वामेव पुरुषोत्तम ॥ २२ ॥ शब्दं शब्दविदः प्राहुस्त्वामेव पुरुषोत्तम ॥ तथा सति हृषीकेश किं त्वमात्थ वदेति माम् ॥ २३ ॥ तथापि शृणु देवेश चोदितोऽस्मि यतस्त्वया ॥ वदेत्यसकृदेवैतत्तस्माद्वक्ष्यामि माधव ॥ २४ ॥ राजसूयेन यज्ञेन ब्रह्मदत्तोऽद्य यक्ष्यते ॥ तदर्थं प्रेषितस्ताभ्यां हंसेन डिम्भकेन च ॥ २५ ॥ करार्थं यदुमुख्येभ्यस्तव चामन्त्रणाय हि ॥ लवणं ननु देयं ते यज्ञार्थं तस्य केशव ॥ २६ ॥ इत्यर्थं प्रेषितस्ताभ्यां करं देहि तदाज्ञया ॥ इदं त्वमपरं ताभ्यामुक्तं शृणु जगत्पते ॥ २७ ॥

करते हैं. हे पुरुषोत्तम ! प्राणवित् आपको प्राणात्मा कहते हैं ॥ २२ ॥ शब्दवित् आपको शब्दरूप कहते हैं. हे हृषीकेश ! ऐसा होनेपर फिर आप हमसे कैसे पूछते हो ॥ २३ ॥ हे देवेश ! तथापि आपकी प्रेरणासे मैं कहता हूं जो आप मुझसे वार वार पूछते हो इसके मैं कहता हूं ॥ २४ ॥ ब्रह्मदत्त राजसूय यज्ञ करेगा उसी निमित्त मुझे हंस और डिंभकने भेजा है ॥ २५ ॥ कि उन यदुमुख्योंसे यज्ञके निमित्त कर लाओ और यज्ञमें आनेको कहो. हे केशव ! यज्ञके निमित्त आपको लवण देना चाहिये ॥ २६ ॥ इस निमित्त करके उन्होंने मुझे तुम्हारे पास भेजा है. हे जगत्पते ! उनकी कही

यह और बात सुनो ॥ २७ ॥ सो आप बहुत शीघ्रतासे लवण ग्रहण करके उन राजोंके निकट चलिये बस यही कहना है ॥ २८ ॥ हे राजन् ! उसके दूत होकर यह कहनेको मैं आया हूं तब श्रीकृष्ण हँसकर दूतसे कहने लगे ॥ २९ ॥ हे दूत ! हे द्विजोत्तम ! तुम हमारे वचन सुनो तुमने सत्य कहा है मैं उनको कर दूंगा जिस कारण कि मैं करदाता हूं ॥ ३० ॥ हे विप्र ! जो वे मुझसे कर मांगते हैं यह उनकी बडी ढीठता है आश्चर्यकी बात है कि उनकी बडी ढीठता है ॥ ३१ ॥ हमसे कर मांगते हैं यह पहलीही बात है यह कह श्रीकृष्ण यदुओंको कहने लगे ॥ ३२ ॥ हे यदुश्रेष्ठो ! कैसे

लवणानि बहून्याशु प्रगृह्य त्वरितं भवान् ॥ आगच्छतु तयो राज्ञोः सेयं केशव वाग्विभो ॥ २८ ॥ इत्युक्तवति विप्रेन्द्रे दूते तत्र तयोर्नृप ॥ प्रहस्य सुचिरं कृष्णो बभाषे दूतमीश्वरः ॥ २९ ॥ शृणु दूत वचो मह्यं युक्तमुक्तं द्विजोत्तम ॥ करं ददामि ताभ्यां तु करदोऽस्मि यतो नृप ॥ ३० ॥ धाष्टर्यमेतत्तयोर्विप्र मत्तो यस्तु करग्रहः ॥ अहो धाष्टर्यमहो धाष्टर्यं तयोः क्षत्रियबीजयोः ॥ ३१ ॥ इदमश्रुतपूर्वं मे मत्तो यस्तु करग्रहः ॥ इत्युक्त्वा केशवो दूतमिदमाह स्म यादवान् ॥ ३२ ॥ हास्यमेतद्यदुश्रेष्ठा मत्तो यस्तु करग्रहः ॥ यष्टासौ राजसूयस्य ब्रह्मदत्तो महीपतिः ॥ ३३ ॥ तौ तु याजयितारौ हि हंसो डिम्भक एव च ॥ वोढा किल यदुश्रेष्ठो लवणस्य दुरात्मनः ॥ ३४ ॥ करदो वासुदेवो हि जितोऽस्मि यदुसत्तमाः ॥ हास्यं हास्यमिदं भूयः शृणुध्वं यादवा वचः ॥ ३५ ॥ इत्युक्तवति देवेशे बलभद्रपुरोगमाः ॥ यादवाः सर्व एवैते हासाय समवास्थिताः ॥ ३६ ॥ करदः कृष्ण इत्येवं ब्रुवन्तः सर्वसात्वताः ॥ हासं मुमुचुरत्यर्थं तलं दत्त्वा परस्परम् ॥ ३७ ॥ तलशब्दो हासशब्दो रोदसी पर्यपूरयत् ॥ स च विप्रो नृपश्रेष्ठ नन्दयन्मित्रमात्मनः ॥ ३८ ॥

हास्यकी बात है जो हमसे कर मांगते हैं वह ब्रह्मदत्त राजा यज्ञ करता है ॥ ३३ ॥ यह हंस और डिंभक उसको यज्ञ करावेंगे और मैं उस दुरात्माका लवण ले चलनेवाला हूंगा ॥ ३४ ॥ हे यदुश्रेष्ठो ! मैं उसको कर देनेवाला होकर उससे जीता गया हूं यह महाहास्यकी वार्ता है हे यादवो ! सुनो तो ॥ ३५ ॥ देवेशके ऐसा कहने पर बलभद्र आदि सब यादव हँसने लगे ॥ ३६ ॥ लो अब कृष्णजी कर देनेवाले हुए ऐसा सब यादव कहने लगे और ताली बजाय परस्पर हास्य करने लगे ॥ ३७ ॥ उस तालीके महाशब्दसे द्यावापृथ्वी पूर्ण हो गई और वह ब्राह्मण अपने मित्रको प्रसन्न करता हुआ बोला ॥ ३८ ॥

अहो बडे कष्टकी बात है कि जो मैं दूत होकर यहां आया हूं इस प्रकार लज्जित हो दूत नीचेको मुख करे स्थित हुआ ॥ ३९ ॥ इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे भविष्यपर्वणि भाषायां हंसडिंभकोपाख्याने पंचदशाधिकशततमोऽध्यायः ॥ ११५ ॥ वैशंपायन बोले, जब सब हास्य कर रहे थे तब सबके सामने श्रीकृष्ण दूतसे बोले तुम हमारे वचनसे जाओ ॥ १ ॥ और शीघ्र जाकर हंस डिंभकसे कहो कि मैं शार्ङ्ग धनुषसे निकले हुए शिलापर पैनाये तीक्ष्ण बाणोंसे ॥ २ ॥ अथवा असिसे जो बडी तीक्ष्ण अथवा चक्रसे उनका शिर छेदन करूंगा जो मुझसे बलि मांगते हैं ॥ ३ ॥ जो कि

अहो कष्टमहो कष्टं दौत्यं यत्कृतवानहम् ॥ इति लज्जासमाविष्टस्तूष्णीमासीदवाङ्मुखः ॥ ३९ ॥ इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे भविष्यपर्वणि हंसडिम्भकोपाख्याने वासुदेववाक्यं नाम पञ्चदशाऽधिकशततमोऽध्यायः ॥११५॥ वैशम्पायन उवाच ॥ हासं कुर्वत्सु तेष्वेवं केशवः केशिसूदनः ॥ उवाच वचनं दूतं गच्छ मद्वचनाद्द्विज ॥ १ ॥ तावित्थं हंसडिम्भकौ ब्रूहि त्वरितविक्रमः ॥ बाणैर्दास्यामि निशितैः शार्ङ्गमुक्तैः शिलाशितैः ॥ २ ॥ असिना वाथ दास्यामि निशितेन महात्मनोः ॥ शिरो वा छेत्स्यते चक्रं मत्करप्रहितं बलिम् ॥ ३ ॥ यो वरं दत्तवान् रुद्रो युवयोर्धाष्टर्यकारणम् ॥ स एव रक्षिता वां स्यात्तं जित्वा वां निहन्म्यहम् ॥४॥ देशोऽयं संविधातव्यो यत्र नः संगतिर्भवेत् ॥ तत्र गन्ता तथा चास्मि सबलः सहवाहनः ॥५॥ भवन्तौ निर्भयौ भूत्वा गच्छेतां सबलौ नृपौ ॥ पुष्करे वा प्रयागे वा मथुरायामथापि वा ॥ ६ ॥ तत्राहं सबलो याता नात्र कार्या विचारणा ॥ अथवा मित्रभावाच्च वक्तुमेवं न ते क्षमम् ॥ ७ ॥ न शक्यं यत्त्वया वक्तुं तच्च वक्ष्यति सात्यकिः ॥ त्वया सह ततो गत्वा साक्षिभूतो भव द्विज ॥ ८ ॥

तुम्हारी धृष्टताका कारण वरदान तुमको शिवजीने दिया है वह यदि तुम्हारी रक्षा करेंगे तो उनको जीतकर युद्धमें तुम्हारा वध करूंगा ॥ ४ ॥ वह देशनिर्णय कर लो जहां हमारा तुम्हारा संगम होगा वहां मैं बलवाहनसहित प्राप्त हूंगा ॥ ५ ॥ और आपभी निर्भय हो सेनासहित वहां चलिये पुष्कर प्रयाग मथुरा जहां इच्छा हो युद्ध हो ॥ ६ ॥ वहीं मैं सेनासहित प्राप्त हूंगा इसमें सन्देह नहीं है अथवा मित्रभावसे जो यह बात तुम न कह सको तो मत कहो ॥ ७ ॥ हम सात्यकिको भेजते हैं वह सब कहेगा वह तुम्हारे साथ जायगा तुम साक्षीरूप रहना ॥ ८ ॥ हे विप्रेन्द्र ! मैं यह

जानता हूं कि आपका मुझमें प्रेम है इससे तुम विजयी होकर दुःखसंकुल संसारमें सदा मेरी कथामें तत्पर हो ॥ ९ ॥ इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरि-वंशे भविष्यपर्वणि भाषायां हंसडिंभकोपाख्याने षोडशाधिकशततमोऽध्यायः ॥ ११६ ॥ वैशंपायन बोले; श्रीकृष्ण ब्राह्मणसे यों कह सात्यकिसे बोले; हे सात्यकि ! हमारे वचनसे तुम वहां जाकर उन दोनोंसे कहो ॥ १ ॥ जो कुछ हमने कहा है वह सब उनसे कहो और जैसे युद्धमें हमारी संगति हो वह बलसे कहना ॥ २ ॥ तुम गोधा अंगुलित्राण युक्त धनुष लेकर जाओ और केवल एक घोडेपर चढकर सहायहीन होकर जाओ ॥ ३ ॥ बहुत अच्छा

इदं च जाने विप्रेन्द्र स्नेहो मम सदा त्वयि ॥ तेन त्वं विजयी भूत्वा संसारे दुःखसंकुले ॥ मत्कथापरमो नित्यं सदा भव जनार्दन॥९॥ इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे भविष्यपर्वणि हंसडिम्भकोपाख्याने षोडशाधिकशततमोऽध्यायः ॥११६॥ वैशम्पायन उवाच ॥ इत्युक्त्वा ब्राह्मणं कृष्णः सात्यकिं पुनराह सः ॥ गत्वा शैनेय विप्रेण ब्रूहि मद्वचनात्तयोः ॥ १ ॥ यन्मयोक्तमशेषेण वद गत्वा तयोः पुरः ॥ यथा नः संगतिर्युद्धे तथा वद बलात्तदा ॥ २ ॥ धनुरादाय गच्छ त्वं बद्धगोधाङ्गुलित्रवान् ॥ एकेनाश्वेन गच्छ त्वमसहायो यदूत्तम ॥३॥ सात्यकिस्तं तथेत्युक्त्वा हयमारुह्य शीघ्रगम् ॥ गन्तुमैच्छतततो राजन्नसहायः स सात्यकिः ॥४॥ जनार्दनं विसृज्याशु दूतं तं यादवेश्वरः ॥ अहो धाष्टर्यमहो धाष्टर्यमित्युवाच जनार्दनः ॥ ५ ॥ नमस्कृत्य तदा दूतो माधवं माधवेश्वरम् ॥ स ययौ शाल्वनगरं शैनेयेन समन्वितः ॥ ६ ॥ ततः प्रविश्य धर्मात्मा ब्राह्मणो ब्रह्मवित्तमः ॥ आसनं महदास्थाय विसृज्य यादवे पुनः ॥७॥ आस्ते सुखं यदा विप्रः शैनेयेन समन्वितः ॥ अथ तं हंसडिम्भयोर्दर्शयामास सात्यकिम् ॥ ८ ॥

यह वचन कह सात्यकि घोडेपर चढ इकलाही जानेकी इच्छा करने लगा ॥ ४ ॥ और यादवेश्वरने उस जनार्दन दूतको बहुत शीघ्र विदा करके वारंवार कहा उन दोनोंकी बडीही ढीठता है ॥५॥ तब वह दूत माधवेश्वर यादवको नमस्कार करके सात्यकिके सहित शाल्वनगरको गया ॥ ६ ॥ तब वह ज्ञानी धर्मात्मा ब्राह्मण राजभवनमें प्रवेश कर आसनपर बैठा सात्यकिके निमित्तभी आसन दिया ॥ ७ ॥ जब वह ब्राह्मण सात्यकिके सहित

सुखसे बैठा तब हंस डिंभकके निमित्त सात्यकिको दिखाया ॥ ८ ॥ कि यह नारायणकी दाहिनी भुजारूप सात्यकि उनके निकटसे दूत होकर आया है उसके यह वचन सुन हंस कहने लगे ॥ ९ ॥ मैंने पहले इनका नाम सुना है आज देखभी लिया धनुर्वेद वेद शास्त्रमें ॥ १० ॥ यह धीर बडाही निपुण है यह हमने सुना है अब यह हमारी दृष्टिके सन्मुख होकर प्रसन्नता प्राप्त करेगा ॥ ११ ॥ वासुदेव और बलभद्र कुशलसे हैं तथा सब यादव उग्रसेनादि प्रसन्न हैं ॥ १२ ॥ कुछ हँसकर सात्यकिने कहा सब कुशल है तब वाक्यविशारद हंसने जनार्दनसे कहा ॥ १३ ॥

दूतोऽयं सात्यकिः प्राप्तः सव्यो बाहुरयं हरेः ॥ तस्य तद्वचनं श्रुत्वा हंसः प्राह वचस्तदा ॥ ९॥ श्रुतः समागमः पूर्वमद्य दृष्टो मया त्वसौ ॥ धनुर्वेदे च वेदे च शास्त्रे शस्त्रे तथैव च ॥ १० ॥ निपुणोऽयं सदा धीर इत्येवमनुशुश्रुम ॥ अथो दृष्टिपथं प्राप्तः प्रीतिं नो विदधात्यसौ ॥ ११ ॥ कुशलं वासुदेवस्य बलभद्रस्य वा पुनः॥ कुशलाः सात्वताः सर्वे उग्रसेनपुरोगमाः ॥१२॥ तथेति सात्यकिः प्राह मन्दमुन्मथिताननः ॥ ततो जनार्दनं प्राह हंसो वाक्यविशारदः ॥ १३ ॥ अपि दृष्टस्त्वया चक्री सिद्धं नः कार्यमीहितम् ॥ वद सर्वमशेषेण मा वृथा कालमत्यगाः ॥ १४ ॥ इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे भविष्यपर्वणि हंसडिम्भकोपाख्याने सप्तदशाधिकशततमोऽध्यायः॥ ११७॥ वैशम्पायन उवाच॥इत्युक्तवति हंसे च धर्मात्माथ जनार्दनः॥ उवाच प्रहसन्वीरः स्तुवन्नारायणं सदा॥ १॥ अद्राक्षमद्राक्षमहं जनार्दनं हस्तस्थशंखं वरचक्रधारिणम् ॥ आततजाम्बूनदभूषिताङ्गदं स्फुरत्प्रभाद्योतितरत्नधारिणम् ॥ २ ॥ अद्राक्षमेनं यदुभिः पुरातनैः संसेव्यमानं मुनिवृन्दमुख्यैः ॥ संस्तूयमानं प्रभुभिः समागधैः स्मितप्रवालाधरपल्लवारुणम् ॥ ३ ॥

आपने श्रीकृष्णको देखा हमारा कार्य क्या सिद्ध है सम्पूर्ण वार्ता कहो वृथा समयका खोना भला नहीं ॥ १४ ॥ इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे भविष्यपर्वणि भाषायां हंसडिंभकोपाख्याने सप्तदशाधिकशततमोऽध्यायः ॥ ११७ ॥ वैशंपायन बोले; हंसके ऐसा कहनेपर धर्मात्मा जनार्दन नारायणकी स्तुति करता हुआ हँसकर बोला ॥ १ ॥ हां हां हाथमें शंख चक्र लिये सुवर्णकी बनी गदा धारण किये चारों ओर कान्तिमान् रत्नोंको धारे जनार्दनका मैंने दर्शन किया है ॥ २ ॥ पुरातन यदु और मुख्य मुनिवृंदोंसे सेवित बडे मागधोंसे स्तूयमान हास्ययुक्त मूंगेकी समान अधरवाले

श्रीकृष्णका दर्शन किया ॥ ३ ॥ पुरातन कवियों द्वारा स्तुति किये हुए देवताओंके जानने योग्य फूले नील कमलकी समान लक्ष्मीसे सेवित खिले कमली समान उदरवाले श्रीकृष्णको हमने देखा ॥ ४ ॥ उन अजन्मा जगत्के गुरुको वचनोंसे यादवोंको प्रसन्न करते हुए और मुनियोंसे वेदार्थ निरूपण करते हुए मैंने देखा है ॥ ५ ॥ वारंवार मैंने समस्त लोकोंके हितैषी हरिका दर्शन किया है जो शत्रुओंको तिरस्कार कर जगत्के हितके निमित्त स्थित हैं ॥ ६ ॥ विहारके समय यदुवंशियोंके साथ श्रीकृष्णको मैंने क्रीडा करते देखा है जो आप यदुवंशियोंमें मुख्य ईश्वर होकर यदुवं-

अद्राक्षमेनं कविभिः पुरातनैर्विविच्य वेद्यं विधिवत्सदामरैः ॥ प्रफुल्लनीलोत्पलशोभितं श्रिया विनिद्रहेमाब्जविराजितोदरम् ॥ ४ ॥
भूयोऽहमद्राक्षमजं जगद्गुरुं प्रमोदयन्तं वचनेन यादवान् ॥ निरूपयन्तं विधिवन्मुनीश्वरैः प्रवृत्तवेदार्थविधिं पुरातनैः ॥ ५ ॥
अद्राक्षमद्राक्षमहं पुनः पुनः समस्तलोकैकहितैषिणं हरिम् ॥ वसन्तमस्मिञ्जगतो हिताय जगन्मयं तान्परिभूय शत्रून् ॥ ६ ॥
भूयोऽप्यपश्यं सह यादवेश्वरैर्विक्रीडियमानं च विहारकाले ॥ रमन्तमीड्यं रमयन्तमीश्वरान्यदूत्तमान्यादवमुख्यमीश्वरम् ॥ ७ ॥
भूयोऽप्यपश्यं सरसीरुहेक्षणं समेतया भीष्मतनूजया हरिम् ॥ वसन्तमम्भोनिधिशायिनं विभुं भक्तप्रियं भक्तजनास्पदं शिवम् ॥८॥
अद्राक्षमद्राक्षमहं सुनिर्वृतः पिबन्पिबंस्तस्य वपुः पुरातनम् ॥ नेत्रेण मीलद्विवरेण केवलं धन्योऽहमस्मीति तदा व्यचिन्तयम् ॥ ९ ॥
अद्राक्षमम्भोजयुगं दधानं प्रभुं विभुं भूतमयं विभावनम् ॥ आद्यं ककुद्मानमुरुं विभावसुं संस्मृत्य संस्मृत्य तमेव निर्वृतः ॥ १० ॥
अद्राक्षं जगतामीशं वक्षोराजितकौस्तुभम् ॥ वीज्यमानं हरिं कृष्णं चामराणां शतैः सदा ॥ ११ ॥

शियोंको रमण कराते हुए रमते हैं ॥ ७ ॥ फिर मैंने उन हरिको भीष्मसुता रुक्मिणीसे वार्ता करते देखा है उन जलशायी हरि सर्वव्यापक भक्तप्रिय भक्तजनोंके स्थान शिवस्वरूपका दर्शन किया है ॥ ८ ॥ शान्त होकर उनके शरीरको नेत्रोंद्वारा पान कर और फिर नेत्रोंको मीचकर मैं धन्य हूं इस प्रकार विचारते हुए वारंवार हरिका दर्शन किया है ॥ ९ ॥ प्रभु विभु भूतमय नारायणका कमलयुगल धारण किये देखा है आद्यपुरुष ककुद्मान् (महात्म्यवाले) कान्तिमान्को वारवार स्मरण करता हूं ॥ १० ॥ वक्षस्थलमें विराजित कौस्तुभवाले सैकडों चामरोंसे वीज्यमान केशवका मैंने

दर्शन किया है ॥ ११ ॥ आप दोनों विद्वेषयुक्त होनेके कारण विकृत चित्तसे आप दोनोंका स्मरण करते विष्णुने कहा है कि हंस और डिंभक कहां है ॥ १२ ॥ उन दोनों मन्दात्माओंको मैं कब देखूंगा और वह कब मेरे सन्मुख होंगे इस प्रकार शंख हाथमें धारण किये विचार करते ॥ १३ ॥ कर देनेकी वार्ता सुनकर हास्यमें तत्पर यतीश्वर नारद और दुर्वासासे वार्ता करते हुए ॥ १४ ॥ ब्रह्मसूत्र पदरूप वाणीको मुनीश्वरोंके निमित्त देते हुए उन हरिको देखकर मैं वारवार विचार करने लगा ॥ १५ ॥ उन हमारे दोनों राजोंने बडी असावधानी की है. हे राजन् ! अब यह कार्य आप

युवां विद्वेषयुक्तेन चेतसा यादवेश्वरम् ॥ स्मरन्तं सर्वदा विष्णुं क्वचेवं क्व च वेत्ति कः ॥ १२ ॥ क्व च द्रक्ष्यामि तौ मन्दौ कुतो वा मत्पुरोगतौ ॥ ध्यायन्तमित्थं देवेशं करे शंखवहं सदा ॥ १३ ॥ हसन्तमेनमद्राक्षं करदं हास्यतत्परम् ॥ वदन्तं नारदे वाचं दुर्वाससि यतीश्वरे ॥ १४ ॥ ब्रह्मसूत्रपदां वाणीं दापयन्तं मुनीश्वरम् ॥ दृष्ट्वाहं तं हरिं देवं पुनः पुनरचिन्तयम् ॥ १५ ॥ असाध्यमिदमारब्धं ताभ्यामिति नृपोत्तम ॥ नारब्धव्यमिदं कार्यमितः प्रभृति भूमिप ॥ १६॥ निवृत्ता सा कथा हंसाचिन्तयद्ग्रहणं तव ॥ तद्वृत्तमखिलं सर्वं वदिष्यति हि सात्यकिः ॥ एतद्वचनमाकर्ण्य हंसः क्रुद्धोऽब्रवीद्वचः ॥ १७ ॥ हंस उवाच ॥ अरे ब्राह्मणदायाद का नाम तव वाग्गियम् ॥ आवयोः पुरतो वक्तुं त्रैलोक्यं जेतुमिच्छतोः ॥ १८ ॥ मायया त्वां भ्रमयति कृष्णो लीलाविधानवित् ॥ तं दृष्ट्वा भ्रम एवैष तव संजायते महान् ॥ १९ ॥ शंखचक्रगदाशार्ङ्गवनमालाविभूषितम् ॥ वृष्णिवीरं समावेश्य समुच्छ्रितयशोधरम् ॥ २० ॥

आरंभ मत करो ॥ १६ ॥ जो तुमने कथा ग्रहण की थी वह निवृत्त हो गई शेष सब वृत्तान्त सात्यकि वर्णन करेगा यह वचन सुन क्रोधकर हंस कहने लगा ॥ १७ ॥ हंस बोला; अरे ब्राह्मणसन्तान ! यह तुम कैसी वाणी बोलते हो जो त्रिलोकी जीतनेमें समर्थ हमारे सामने तुम ऐसी वाणी बोलते हो ॥ १८ ॥ लीलाके विधान जाननेवाले श्रीकृष्णने तुमको मायासे भ्रमा दिया है उनको देखतेही यह तुमको महाभ्रम हो गया है ॥ १९ ॥ शंख चक्र गदा शार्ङ्ग वनमालासे विभूषित वृष्णिवीरको प्राप्त होकर जिन्होंने अपना बडा यश कर रक्खा है ॥ २० ॥

सूत मागधोंसे स्तुतिको प्राप्त होकर अपना यश फैलानेवाले और विक्रमसे लोकोंको मंडन करनेवाले ॥ २१ ॥ चतुर्बाहु बलसे आक्रान्त वृष्णि और यदुवंशियोंके संमत श्रीकृष्णको देखकर तुमको भ्रम हो गया है यह बडे आश्चर्यकी बात है ॥ २२ ॥ और इस समयभी वह दुर्मति तुमको भ्रमाते हैं. हे मन्दात्मन् विप्र ! उन्होंने जो तुमको भ्रमाया है यह इन्द्रजाल विद्या है ॥२३॥ हे विप्र ! उस भ्रमसेही तुमको यह चपलता प्राप्त हुई है तुझे तो हमारी समान वर्तना चाहिये ॥ २४ ॥ हे ब्राह्मण ! मैंही तुम्हारे इस प्रकारके वचन सहन कर सकता हूं सोभी यह मित्रभावकी बात है अन्यथा कौन इन

सूतमागधसंस्तावप्रकटद्वारबाहुकम् ॥ अत्यद्भुतयशोराशिं विक्रमाल्लोकमण्डनम् ॥२१॥ चतुर्भुजं बलाक्रान्तं वृष्णियादवसंमतम् ॥
अहोऽद्य भ्रम एवैष दर्शनात्तस्य चक्रिणः ॥ २२ ॥ इदानीं च महाराज भ्रामयत्येव दुर्मतिः ॥ त्वामेव विप्र मन्दात्मन्निन्द्रजालिकता
हि या ॥ २३ ॥ चापल्यमिदमेवैतत्तव विप्र भ्रमोद्भवम् ॥ अहो हि खलु सादृश्यं वक्तव्यं भवता मम ॥ २४ ॥ अहमेव त्वया विप्र
मर्षये प्रोदितं वचः॥ सखिभावाद्द्विजश्रेष्ठ अन्यथा कः सहेदिदम् ॥२५॥ गच्छ मन्दमते विप्र यथेष्टं साम्प्रतं तव ॥ द्विज गच्छ यथेष्टं
त्वं पृथिवीं पृथिवी तव ॥२६॥ जित्वा गोपालदायादं हत्वा यादवकान् बहून्॥ एष नः प्रथमः कल्पो जेष्याम इति यादवान्॥२७॥
गच्छ गच्छेति विप्र त्वं धृष्टं परुषवादिनम् ॥ शत्रुपक्षस्तुतिपरं सह युक्त्वा सदा मया ॥ २८ ॥ न मे विप्रवधः कार्यः कष्टादपि हि
सर्वतः ॥ इत्युक्त्वा ब्राह्मणं भूयो हंसः सात्यकिमब्रवीत् ॥ २९ ॥ भो भो यादवदायाद किमर्थं प्राप्तवानिह ॥ किमब्रवीन्नन्दसुतः
किं वासौ मेऽदिशत्करम् ॥ ३० ॥

वचनोंको सह सकता है ॥ २५ ॥ हे मंदमति ब्राह्मण ! आप अब यहांसे यथेष्ट गमन करिये आपकी पृथ्वी है चाहे जहां यथेष्ट गमन करो ॥ २६ ॥ गोपालकी सन्तानोंको जीत बहुतसे यादवोंको मार डालूंगा अब पहला काम हमारा यादवोंका मारनाही है ॥ २७ ॥ हे विप्र ! तुम अब जाओ तुम ढीठ और परुषवादीको मैं रखना नहीं चाहता मेरे साथ भोजन कर शत्रुपक्षकी स्तुति करते हो ॥ २८ ॥ कष्ट परभी मैं ब्राह्मणका वध नहीं करता हूं यह ब्राह्मणसे कथन कर फिर हंस सात्यकिसे कहने लगा ॥ २९ ॥ हे यादवसंतान ! तुम यहां किस कारणसे आये हो नन्दपुत्रने क्या कहा है क्या

वह मुझको कर देंगे ॥ ३० ॥ सात्यकि बोला, हे हंस ! यह वचन सत्यही है की शंख चक्र गदा धारण करनेवालेके तीक्ष्ण धारावाले शिलापर पैने किये शार्ङ्गधनुषसे निकले बाणोंसे ॥ ३१ ॥ और अपनी तीक्ष्ण तलवारसे मैं तुमको कर दूंगा. हे हंस ! करदानमें तत्पर मैं तुम्हारा शिरच्छेदन कर दूंगा ॥ ३२ ॥ हे मन्दात्मन् नृपाधम ! तुम्हारी बढी धृष्टता है जो देवदेव जगन्नाथसे कर लेनेकी इच्छा करते हो ॥ ३३ ॥ इस करसे आपकी जिह्वा छेदन कर दी जायगी उन हरिके शंख और शार्ङ्ग धनुषका शब्द श्रवण करके ॥ ३४ ॥ कौन जीवित रह सकता है तुम क्षणमात्र ठहरो शिवके वरसे

सात्यकिरुवाच ॥ इदं सत्यं वचो हंस शङ्खचक्रगदाभृतः ॥ शरैर्निशितधाराग्रैः शार्ङ्गमुक्तैः शिलाशितैः ॥ ३१ ॥ दास्यामि करसर्वं-स्वमसिना निशितेन ते ॥ शिरश्छेत्स्यामि ते हंस करदानस्य संग्रहम् ॥ ३२ ॥ धार्ष्ट्यं हि तव मन्दात्मन् किमतोऽपि नृपाधम ॥ देवदेवाज्जगन्नाथात्करमिच्छति यो नृपः ॥ ३३ ॥ तस्यैष करसंक्षेपो जिह्वाच्छेदो नराधम ॥ तस्य शार्ङ्गरवं श्रुत्वा शङ्खस्य च हरेः पुनः ॥ ३४ ॥ को नाम जीवितं काङ्क्षेत्तिष्ठेदानीं त्वमद्य वै ॥ गिरीशवरदर्पेण को ब्रूयादीदृशं वचः ॥ ३५ ॥ सहाया वयमेवैते बलभद्रपुरोगमाः ॥ प्रथमो बलभद्रोऽसौ द्वितीयोऽहं च सात्यकिः ॥ ३६ ॥ कृतवर्मा तृतीयस्तु चतुर्थो निशठो बली ॥ पञ्चमोऽथ च बभ्रुस्तु षष्ठश्चैवोत्कलः स्मृतः॥ ३७॥ सप्तमस्तारणो धीमानस्त्रशस्त्रविशारदः॥ अष्टमस्त्वथ सारङ्गो नवमो विपृथुस्तथा ॥३८॥ दशमश्चोद्धवो धीमान्वयमेते बलान्विताः ॥ त एते पुरतोगोप्तुः शङ्खचक्रगदाभृतः ॥ ३९ ॥ देवदेवस्य युद्धेषु तिष्ठन्त्येव दिवा-निशम् ॥ यो हि वीरो सुतो तस्य नास्त्यसदृशो बले ॥ ४० ॥

दर्पित हो कौन ऐसे वचन कह सकता है ॥ ३५ ॥ और बलभद्रको आदि ले हम सब उनके सहायकारी हैं प्रथम बलभद्र और दूसरा मैं सात्यकि ॥ ३६ ॥ तीसरा कृतवर्मा चौथा बली निशठ पांचवां बभ्रु छठा उत्कल ॥ ३७ ॥ सातवां अस्त्रशस्त्रमें पंडित बुद्धिमान् तारण है आठवां सारंग और नवमां विपृथु है ॥ ३८ ॥ दशवां बुद्धिमान् उद्धव यह सब महाबली हैं यह दश शंख चक्र गदा धारण करनेवालेके सम्मुख रक्षा करनेको चलते हैं ॥ ३९ ॥ यह युद्धमें देवदेवके आगे दिनरात रहते हैं और जो उनके वीर दो पुत्र अश्विनीकुमारकी समान बली हैं ॥ ४० ॥

वही दोनों युद्धमे मत्त तुमको मारबेको समर्थ हैं जो शिरीश देव तुमको वर देनेवाले हैं उनके बलसे दर्पित तुम ॥ ४१ ॥ धनुष बाण धारण किये श्रीकृष्णके संग युद्ध करनेको स्थित नहीं हो सकते उनके साथ कौन शत्रु युद्ध कर सकता है जिनके संग्राममें ॥ ४२ ॥ इस प्रकारके भृत्य शत्रुओंसे युद्ध करते हैं उन त्रिलोकीकी रक्षा करनेवालेसे तुम कर ग्रहणकी इच्छा करते ऐसोंसे युद्ध करनेको कौन न जायगा ॥ ४३ ॥ जो त्रिलोकीकी रक्षा करता है वह अवश्य युद्धमें तुम्हारा वध करेगा संग्राममें शार्ङ्ग धनुषसे निकले बाण तुम्हारा वध करेंगे ॥ ४४ ॥ जगत्प-

तावेव वां क्षमौ युद्धे हन्तुं बलमदान्वितौ ॥ यो गिरीशो गिरा देवो वरं दत्त्वा स तिष्ठति ॥ ४१ ॥ युवां हि किंबलौ युद्धे तिष्ठतः सशरं धनुः ॥ गृहीत्वा शत्रुभिः सार्द्धं युद्धं कर्तुं समुद्यतौ ॥ ४२ ॥ ईदृशेष्वथ भृत्येषु युद्धं कुर्वत्सु शत्रुभिः ॥ त्रैलोक्यं रक्षतस्तस्मात्करमिच्छन् व्रजेत कः ॥ ४३ ॥ हनिष्यत्येव वां युद्धे त्रैलोक्यं यो हि रक्षति ॥ शरेण निशितेनाजौ शार्ङ्गमुक्तेन केवलम् ॥ ४४ ॥ क्व नः संग्राम इत्येवं पुनराह जगत्पतिः ॥ पुष्करे पुण्यदे नित्यमुत गोवर्द्धने गिरौ ॥ ४५ ॥ मथुरायां प्रयागे वा दर्शेन्यतो बलानि मे ॥ शङ्खचक्रधरे देवे जगत्पालनतत्परे ॥ ४६ ॥ राजसूयं महायज्ञं कर्त्तुमिच्छति कः स्वयम् ॥ वदन्वा स्वस्तिमान्मर्त्यस्त्वां विना को व्रजेत्सुखम् ॥ ४७ ॥ इदमिच्छसि चेन्मूढ हास्यतां यासि भूतले ॥ इत्युक्त्वा सात्यकिर्वीरो हसन्निव भुवि स्थितः ॥ ४८ ॥ इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे भविष्यपर्वणि हंसडिम्भकोपाख्याने सात्यकिवाक्यं नामाष्टादशाधिकशततमोऽध्यायः ॥ ११८ ॥

तिने कहा है पुष्कर देश वा पवित्र गोवर्द्धन आदिके स्थानमें हमारा तुम्हारा संग्राम कहां होगा ॥ ४५ ॥ मथुरा वा प्रयाग जहां तेरी इच्छा हो वहां मुझे अपना बल दिखा शंख चक्रधारी जगत्के पालन करनेवाले देवके विद्यमान होनेमें ॥ ४६ ॥ कौन स्वयं राजसूय यज्ञ कर सकता है और तेरे विना ऐसा कहकर कौन इसमें अपना कल्याण मान सकता है ॥ ४७ ॥ हे मूढ ! जो तू ऐसी इच्छा करेगा तो भूतलमें तेरा महा हास्य होगा ऐसा कह सात्यकि हँसता हुआ अपने आसनपर स्थित रहा ॥ ४८ ॥ इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे भविष्यपर्वणि भाषायां हंसडिंभ-

कोपाख्याने सात्यकिवाक्यं नामाष्टादशाधिकशततमोऽध्यायः ॥ ११८ ॥ वैशंपायन बोले; हे महाराज! तब तो हंस और डिंभक क्रुद्ध हुए और रोषसे व्याकुल नेत्र कर इस प्रकार कहने लगे ॥ १ ॥ सब राजोंको देखते क्रोधसे मानो दिशाओंको जलाते हुए और सात्यकिके वचन सुन हाथसे हाथ मलते हुए बोले ॥ २ ॥ क्या वह नंदपुत्र कृष्ण और क्या वस्तु बलराम है यह कह फिर आक्षेप कर सात्यकिसे कहने लगा ॥ ३ ॥ अरे यादवपुत्र! हमारे सन्मुख तू क्या कहता है! हे मन्दात्मन्! यहांसे निकल जा तू इस समय दूत है ॥ ४ ॥ नहीं तो ऐसे वचन कहनेवालेको मैं तत्काल

वैशम्पायन उवाच ॥ ततः क्रुद्धो महाराज हंसो डिम्भक एव च ॥ इदं वै प्रोचतुर्वाक्यं रोषव्याकुलितेक्षणौ ॥ १ ॥ दिधक्षन्तौ दिशः सर्वाः सर्वान्वीक्ष्य नृपोत्तमान् ॥ करेण निष्पीड्य करं स्मरन्तौ तद्वचो महत् ॥ २ ॥ क्व नु क्व वा नन्दसूनुः क्व वा रामो बलोत्कटः ॥ इति ब्रुवाणौ साक्षेपौ सात्यकिं सत्यसंगरम् ॥ ३ ॥ अरे यादवदायाद किं ब्रूषे नः पुरो गतः ॥ इतो निर्गच्छ मन्दात्मन्दूतस्त्वमसि साम्प्रतम् ॥४॥ अन्यथा वध्य एव त्वं प्रलपन् परुषं वचः ॥ सत्यं निर्लज्ज एवासि यद्ब्रूया ईदृशं वचः ॥ ५ ॥ आवामिदं जगत्सर्वं शासितुं संयतौ नृपौ ॥ को नाम मानुषे लोके करदो नैव जीवति ॥ ६ ॥ हत्वा गोपालकान्सर्वान्बद्ध्वा यादवकान्बहून् ॥ गृह्णीमः करसर्वस्वं ततो गच्छ नराधम ॥ ७ ॥ अवध्यो दूततां प्राप्तो बह्वबद्धं प्रभाषसे ॥ ईश्वरो नौ वरं दाता ब्रह्मास्त्राणामपि च प्रभुः ॥ ८ ॥ रक्षितारौ महाभूतौ संग्रामं गच्छतोश्च नौ ॥ पितरं याजयिष्यावो जित्वा गोपालकं रणे ॥ ९ ॥ एते प्रोक्ता भृशं युद्धे कातराः सर्व एव ते ॥ हत्वा तान्सबलान्युद्धे पुनर्जेष्यामि केशवम् ॥ १० ॥

मार डालता, तू सत्यही निर्लज्ज है जो इस प्रकारके वचन कहता है ॥ ५ ॥ हम दोनों राजा इस सम्पूर्ण जगत्के शासन करनेमें समर्थ हैं ऐसा कौन है जो हमको कर दिये विना जीवित रह सकता है ॥ ६ ॥ सब गोपालोंको मार और यादवोंको मारकर हम सर्वस्व उनका ग्रहण कर लेंगे. हे नराधम! तू यहांसे जा ॥ ७ ॥ दूतताको प्राप्त होनेसे तू अवध्य है बहुत अनुचित वचन कह रहा है ईश्वरने हमको वर और अस्त्र दिये हैं ॥ ८ ॥ और संग्राममें हम दोनोंकी शिवके दो गण रक्षा करते हैं, हम गोपालोंको रणमें जीतकर पिताको यज्ञ करावेंगे ॥ ९ ॥ जिनका तुमने नाम लिया है यह सब युद्धमें

कातर हैं उन सबको युद्धमें जीत केशवको जीतूंगा ॥ १० ॥ शरासन ग्रहण कर महासेना सजाओ जो प्रास मुशल कवच धारण किये हुये ॥ ११ ॥ सहस्रों रथमें चढकर गदा परिघ लिये बहुत धनवती और बहुत साधनसे सम्पन्न ॥ १२ ॥ घोर सेनाको बडे बडे अध्यक्ष लेकर चलें सात्यकि तू अवध्य होकर जा तुझे मरणसे भय नहीं है ॥ १३ ॥ हमारा संग्राम पुष्करमें कल वा परसोंसेही आरंभ होगा, तब हम केशवका बल देख लेंगे और जिनका नाम तैंने लिया है उनका बलभी देखेंगे ॥ १४ ॥ सात्यकि बोला, हे हंस ! मैं तुम्हारे मारनेको वहां चलता हूं और अबभी मारनेको समर्थ हूं पर मैं

संहर्तव्या महासेना प्रगृहीतशरासना ॥ गृहीतप्रासमुशला गृहीतकवचा सदा ॥ ११ ॥ आरूढरथसाहस्रा गदापरिघसंकुला ॥ सुप्रभूतेन्धनवती प्रभूतबलसाधना ॥ १२ ॥ चाल्यतां वाहिनी घोरा बलाध्यक्षा समन्ततः ॥ अवध्य एव गच्छ त्वं न ते मरणतो भयम् ॥ १३ ॥ संग्रामः पुष्करेऽस्माकं श्वः परश्वोऽपि वा नृप ॥ ततो ज्ञास्यामहे वीर्यं केशवस्य बलस्य च ॥ ये त्वयोक्ता नृपाः संख्ये तेषामपि च यद्बलम् ॥ १४ ॥ सात्यकिरुवाच ॥ हंसागच्छामि वां हन्तुं श्वः परश्वोऽपि वा नृप ॥ अद्यैव हि मया वध्यो न चेद्दूतो भवाम्यहम् ॥ १५ ॥ न हि श्वो वा परश्वो वा युवां कटुकभाषिणौ ॥ दौत्ये हि दुःखमतुलं वहाम्येव सदा नृणाम् ॥ १६ ॥ अन्यथाहं युवां हत्वा ततो यास्यामि निर्वृतिम् ॥ स्ववीर्यं बाहुदर्पं च दर्शयन्वां नृपाधमौ ॥ १७ ॥ शङ्खचक्रगदापाणिः शार्ङ्गधन्वा किरीटभृत् ॥ नीलकुञ्चितकेशाढ्यो लम्बबाहुः श्रिया वृतः ॥ १८ ॥ स सर्वलोकप्रभवो विश्वरूपः सुरूपवान् ॥ दैत्यदानवहन्तासौ योगिध्येयः पुरातनः ॥ १९ ॥ पद्मकिञ्जल्कनयनः श्यामलः सिंहविक्रमः ॥ सृष्टिस्थितिलयेष्वेकः कर्ता त्रिजगतो गुरुः ॥ २० ॥

दूत हूं ॥ १५ ॥ तुम कटु बोलनेवालोंको कल परसोंतकभी क्षमा नहीं करता दूत होनेसे यह कठिन दुःख धारण करना पडा ॥ १६ ॥ नहीं तो अभी तुमको मारकर शान्तिको प्राप्त होता. हे नृपाधमो ! अपनी बाहुओंका बलवीर्य दिखाऊंगा ॥ १७ ॥ शंख चक्र गदा पद्म हाथमें लिये किरीट-धारी शार्ङ्गधन्वा नील कुंचित केशवान् लम्बायमान भुजा लक्ष्मीसे युक्त ॥ १८ ॥ सब लोकके उत्पन्न करता विश्वरूप स्वरूपवान् दैत्य दानवोंके मार-नेवाले योगियोंको ध्यान करने योग्य पुरातन ॥ १९ ॥ कमलकी समान नेत्र श्यामस्वरूप सिंहकी समान चालवाले सृष्टि स्थिति लयमें वह एकही

कर्ता तीनों जगत्के गुरु ॥ २० ॥ तीक्ष्ण बाणसे आपका अभिमान दूर करेंगे यह कह रथपर चढ़ सात्यकी चला गया ॥ २१ ॥
इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे भाषायां हंसडिम्भकोपाख्याने एकोनविंशाधिकशततमोऽध्यायः ॥ ११९ ॥ वैशंपायन बोले; शिनिपुंगव
सात्यकि द्वारकापुरीमें प्रवेश कर उनका सब वृत्तान्त श्रीकृष्णसे कहता हुआ ॥ १ ॥ तब प्रातःकाल होतेही केशिसूदन केशव
चक्रपाणि गदा धारण करनेवाले अपने बलाध्यक्षसे बोले ॥ २ ॥ रथ कुंजर घोडेवाली तथा अनेक भेरियोंसे युक्त हमारी सेना तयार करो जो प्रास

शरेण निशितेनाजौ दर्पं वां व्यपनेष्यति ॥ इत्युक्त्वा रथमारुह्य प्रययौ सात्यकिः किल ॥ २१ ॥ इति श्रीमहाभारते खिलेषु
भविष्यपर्वणि हंसडिम्भकोपाख्याने एकोनविंशाधिकशततमोऽध्यायः ॥ ११९ ॥ वैशम्पायन उवाच ॥ प्रविश्य स पुरं विष्णोः
सात्यकिः शिनिपुङ्गवः ॥ आचचक्षेऽथ कृष्णाय यथावृत्तं तयोस्तथा ॥१॥ ततः प्रभाते विमले केशवः केशिसूदनः ॥ बलाध्यक्षा-
नुवाचेदं चक्रपाणिर्गदाधरः ॥ २ ॥ संनह्यतां बलं सर्वं रथकुञ्जरवाजिमत् ॥ अनेकभेरीपणवं प्रासासिपरिघाकुलम् ॥ ३ ॥ सध्वजं
सपताकं च सालंकारपरिच्छदम् ॥ ते तथेति प्रतिज्ञाय सर्वं चक्रुरधीनगाः ॥ ४ ॥ आदाय सुदृढं चापं रथमारुह्य दंशिताः ॥ अग्रतो
जग्मुरत्यर्थं सेनायाः पुरुषोत्तमाः ॥ ५ ॥ सात्यकिश्च तथा राजन्प्रगृहीतशरासनः ॥ बभौ क्रोधसमायुक्तो जगामाग्रे महाबलः ॥६ ॥
अन्ये च यादवाः शूराः प्रगृहीतमहायुधाः ॥ सिंहनादं प्रकुर्वन्तो जग्मुरत्यर्थमुत्तमाः ॥७॥ हरिस्तु रथमारुह्य संस्कृतं दारुकेण ह ॥
शार्ङ्गभारसहं घोरं गृहीत्वा सशरं धनुः ॥८॥ चक्रपाणिस्तदा शङ्खी गदाशरवरासिमान् ॥ बद्धगोधाङ्गुलित्राणः पीतवासा जनार्दनः॥९॥

परिघ धारण किये ॥ ३ ॥ ध्वजा पताका और सब अलंकारोंसे व्याप्त हो शीघ्र तयार करो बहुत अच्छा ऐसा कहकर उन्होंने बहुत शीघ्र वह
किया ॥ ४ ॥ दृढ चाप धारण कर रथमें स्थित हुए वे पुरुषश्रेष्ठ रथमें चढकर आगे २ चले ॥ ५ ॥ हे राजन्! सात्यकिभी शरासन ग्रहण कर क्रोधको
प्राप्त हो आगे आगे गमन करने लगा ॥ ६ ॥ औरभी शूर यादव आयुध ग्रहण किये सिंहनाद करते गमन करने लगे ॥ ७ ॥ और श्रीकृष्ण दारुकके
सजाये रथमें चढकर और शार्ङ्गभारके सहन करनेवाले घोर बाण धनुषको लिये ॥ ८ ॥ चक्र गदा शर असि ग्रहण करे गोधांगुलि त्राण बांधे पीत

वस्त्र पहरे जनार्दन ॥ ९ ॥ कमलोंकी माला पहरे नये मेघकी समान कान्तिमान् ब्राह्मणोंसे स्तुतिको प्राप्त हो प्रसन्नतासे चले ॥ १० ॥ सूत मागधपुत्र उनको गाने लगे सब सेना लेकर उत्तर दिशाको चले ॥ ११ ॥ सम्पूर्ण बलसे श्रीकृष्ण पांचजन्य शंखको मुखमें रखकर शत्रुओंको भय देनेवाले महाशब्द करने लगे ॥ १२ ॥ जब श्रीकृष्णने उस शंखराजको बजाया तब उसने शब्दसे आकाशको पूर्ण कर दिया ॥ १३ ॥ इस प्रकारसे उस शंखके बजनेमें सहस्रों शंख बजने लगे तथा बहुतसी भेरी और मृदंग बजने लगे ॥ १४ ॥ यह ऐसा शब्द हुआ जैसे चौमासेमें मेघ शब्द करते हैं. हे महाराज

पद्ममालावृतोरस्को नवजीमूतसन्निभः ॥ ययौ रथगतो विप्रैः स्तूयमानो मुदान्वितः॥१०॥ सूतैर्मागधपुत्रैश्च गीयमानस्ततस्ततः ॥ आनीय सेनां सकलां ययौ काष्ठामथोत्तराम् ॥११॥ पाञ्चजन्यं मुखे न्यस्य सर्वप्राणेन केशवः ॥ दध्मौ महारवं कुर्वञ्छत्रूणां भयवर्द्धनम् ॥ १२ ॥ आध्मातस्तेन हरिणा स चक्रे शङ्खराट् ध्रुवम् ॥ रवः स रोदसी राजन्पूरयामास सर्वतः ॥ १३ ॥ तस्मिञ्छङ्खे तथाध्माते दध्मुः शङ्खान् सहस्रशः ॥ भेर्यश्चापि समाध्माता मृदङ्गा बहवो नृप ॥ १४ ॥ नेदुस्तूर्यमतुलं घर्मान्ते जलदा यथा ॥ अथाययुर्महाराज पुष्करं पुण्यवर्धनम् ॥ १५ ॥ सरसस्तस्य राजेन्द्र पुष्करस्य नृपोत्तमाः ॥ प्रतीक्ष्य हंसडिम्भकौ युद्धाय समवस्थिताः॥ १६ ॥ निवेशं कारयामासुर्यादवाः सर्व एव हि ॥ स्वं स्वं ययुः सुखं राजन्प्रगृहीतकुटीमठम् ॥ १७ ॥ भगवानपि गोविन्दः सरो दृष्ट्वा सुशोभनम् ॥ उपस्पृश्य जले तस्मिन्प्रणम्य यतिपुङ्गवान् ॥ १८ ॥

फिर वे पुण्यस्थान पुष्करमें प्राप्त हुए ॥ १५ ॥ वे राजोंमें उत्तम उस पवित्र सरोवर पुष्करमें प्राप्त हुए और हंस डिंभककी बाट देखते वहां स्थित हुए ॥ १६ ॥ सब ओर यादवोंने अपने डेरे डाल दिये अपने कुटीमठमें प्राप्त हो सब प्रसन्नतासे स्थित हुए ॥ १७ ॥ भगवान् गोविंदजी उस मनोहर सरोवरको देखकर यतिश्रेष्ठोंको प्रणाम कर जलस्पर्श करते हुए ॥ १८ ॥

और उनके आगमनकी इच्छासे उसके तटमें स्थित हुए और ब्राह्मणोंकी वेदध्वनि श्रवण करने लगे ॥ १९ ॥ इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे भविष्यपर्वणि भाषायां हंसडिंभकोपाख्याने कृष्णपुष्करप्रवेशो नाम विंशत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १२० ॥ वैशंपायन बोले; हे नृप ! तब वे हंस और डिंभकभी पुष्करको चले और महाचाप ग्रहण कर रथ ध्वजासे युक्त ॥ १ ॥ महाभूतकी समान वे प्रलय करनेको चले शरीरमें भस्म लगाये महाशब्द करते हुए ॥ २ ॥ ललाटमें त्रिपुंड्र लगाये रुद्राक्षसे शोभित मानो दो रुद्रही लोक संहार करनेको प्रगट हुए हैं ॥ ३ ॥ हे राजन् ! उनके पीछे

तयोरागमनं लिप्सुरास्ते तीरे यथासुखम् ॥ शृण्वन् वेदध्वनिं विष्णुर्ब्राह्मणानां समन्ततः ॥ १९ ॥ इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे भविष्यपर्वणि हंसडिम्भकोपाख्याने कृष्णपुष्करप्रवेशो नाम विंशत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १२० ॥ वैशम्पायन उवाच ॥ अथ तौ हंसडिम्भकौ जग्मतुः पुष्करं प्रति ॥ प्रगृहीतमहाचापौ सरथौ सध्वजौ नृप ॥ १ ॥ पुरस्सरमहाभूतौ संहरन्ताविवोल्बणौ ॥ प्रकुर्वन्तौ सिंहरवं भस्मना परिलेपितौ ॥ २ ॥ त्रिपुंड्रकललाटान्तौ रुद्राक्षपरिशोभितौ ॥ अन्यौ द्वाविव रुद्रौ तौ लोकसंहारकारकौ ॥ ३ ॥ ततोऽनुजग्मुः शतशः सैन्यानि नृपसत्तम ॥ अक्षौहिण्यो दशैवासंस्तयोरथ समागताः ॥ ४ ॥ विचक्रस्तु महाराज दानवो नगसन्निभः ॥ तयोरेव सखा पूर्वमासीच्च बलशालिनोः ॥ ५ ॥ शक्रो यस्य पुरस्सरः स्थातुं शक्तो न वज्रभृत् ॥ यो हि वीरो महाराज देवदैत्यसमागमे ॥ ६ ॥ देवान्निघ्नंस्तथा राजन् देवेन्द्रमजयन्महान् ॥ अकरोच्च पुरा युद्धं विष्णुना प्रभविष्णुना ॥ ७ ॥ यो हि द्वारवतीं प्राप्य बबाधे यदुपुङ्गवान् ॥ स तदानीं महाराज श्रुत्वा युद्धमुपस्थितम् ॥ ८ ॥

सैकडों सेना चलने लगी दश अक्षौहिणी सेना उनके रथके साथ चली ॥ ४ ॥ हे महाराज ! एक पर्वतकी समान बडा बली विचक्र नाम दानव उन दोनों बलशालियोंका सखा था ॥ ५ ॥ जिसके सामने वज्रधारी इन्द्रभी खडे होनेको सम नहीं था. हे महाराज ! जो वीर देवता दैत्योंके समागममें ॥ ६ ॥ देवताओंको मार देवेन्द्रको जीतता हुआ और जिसने पहिले विष्णुके साथ युद्ध किया था ॥ ७ ॥ और जिसने द्वारकापुरीमें जाकर यदुवंशियोंको

दुःखी किया था. हे महाराज ! वह उपस्थित युद्ध श्रवण कर ॥ ८ ॥ परिघ हाथमें लिये सैकडों दानवोंको संग लिये वृष्णिवंशियोंसे द्वेष करता चला ॥ ९ ॥ इस प्रकार वह हंस डिंभककी सहायता करनेको उद्यत हुआ विचक्र दैत्यका हिडिंब राक्षसपति ॥ १० ॥ बडा मित्र था अर्थात् युद्धमें प्राणोंतकका देनेवाला था शिला शूल तल्वार हाथमें लिये राक्षसोंके साथ ॥ ११ ॥ पुरुषोंके खानेवाले राक्षसोंका अधिपति उसको सहायता करनेको गया, उसके साथमें अट्ठासी सहस्र दानव थे ॥ १२ ॥ हे महाराज ! इन सबके हाथमें शिला और परिघ थीं उनकी महासेना यादवोंसे

अनेकशतसाहस्रैर्दानवैः परिघायुधैः ॥ वृतः समभवद्दैत्यो वृष्णिद्वेषान्नृपोत्तम ॥ ९ ॥ हंसस्य डिम्भकस्याथ साहाय्यं कर्तुमुद्यतः ॥ विचक्रस्याथ दैत्यस्य हिडिम्बो राक्षसेश्वरः॥१०॥ अतीव मित्रतां यातो दद्यात्प्राणांश्च संयति ॥ राक्षसैरपरैः सार्धं शिलाशूलासिपाणिभिः॥११॥ ययौ तस्य सहायार्थं हिडिम्बः पुरुषादपः॥ अष्टाशीतिसहस्राणि राक्षसास्तस्य चाभवन् ॥१२॥ अनुयाता महाराज शिलापरिघबाहवः ॥ तयोस्तत्र महासैन्यं गच्छतोः केशवं प्रति ॥ १३ ॥ मिश्रितं दैत्यसंघैश्च राक्षसैश्च समन्ततः ॥ अत्यद्भुतं महारौद्रं त्रैलोक्यभयदायकम् ॥१४॥ दैत्येन सहितौ तौ हि जग्मतुः पुष्करं प्रति ॥ तावेतौ हंसडिम्भकौ हन्तुं केशवमञ्जसा ॥१५॥ ततः श्रुत्वा जरासन्धो विग्रहं यदुभिः सह ॥ नाकरोन्नृपसाहाय्यं पापं मे भवितेति ह ॥ १६ ॥ गच्छतोः समितिं राजन्हंसस्य डिम्भकस्य च ॥ अतित्वरितविक्रान्तास्ते ययुः पुष्करं प्रति ॥ १७ ॥ सिंहनादं विमुञ्चन्तः कथयन्तः परस्परम् ॥ अहमेव नृपा युद्धं करोमि प्रथमं हरेः ॥ १८ ॥ इत्यब्रुवन्नृपा राजञ्छतशः केशवं प्रति ॥ संप्राप्तास्ते नृपश्रेष्ठाः पुष्करं पुण्यवर्द्धनम् ॥१९॥

युद्ध करनेको चली ॥ १३ ॥ इस प्रकार दैत्य और राक्षसोंसे संयुक्त वह सेना महारौद्र अति अद्भुत त्रिलोकीको भय देनेवाली हुई ॥ १४ ॥ इस प्रकार वे दोनों दैत्योंके संग पुष्करको चले वे हंस डिंभक केशवके मारनेकी इच्छासे चले ॥ १५ ॥ उस समय जरासंधने यदुओंके संग विग्रह सुनकर इसमें पाप जानकर राजोंकी सहायता न की ॥ १६ ॥ हंस और डिंभक इस प्रकारसे अतिविक्रमको प्राप्त हो पुष्करके प्रति गमन करने लगे ॥ १७ ॥ सिंहनाद करते गमन करने लगे कि प्रथम मैंही राजोंसे पहले श्रीकृष्णसे युद्ध करूंगा ॥ १८ ॥ इस प्रकारसे सबही राजा कहने लगे कि इस प्रकार

इस पुण्यवर्द्धन पुष्करमें संग्राम होगा ॥ १९ ॥ मुनियोंसे युक्त और वृद्ध २ ऋषियोंसे सेवित यह सब लोकोंमें पुष्करही अत्यन्त श्रेष्ठ है ॥ २० ॥ पुष्कर और पुण्डरीकाक्ष यह दोही दर्शन और स्पर्शसे पाप दूर करनेवाले हैं ॥ २१ ॥ हे राजन्! यह पुष्कर और पुण्डरीकाक्ष दोंही देवता मुनिश्रेष्ठ और महात्माओंसे सेवित हैं ॥ २२ ॥ हे नृपश्रेष्ठ! यह दोनोंही पापके नाशक हैं जहां ये दोनों स्थित थे वहां राजा गये ॥ २३ ॥ वहां उन्होंने परम देव श्रीकृष्णको देखा वह पुष्कर ब्रह्मस्थान मुनिश्रेष्ठोंसे सेवित है ॥ २४ ॥ हे राजन्! मनसे इन दोनोंको नमस्कार करो यहां सब

मुनिजुष्टं तपोवृद्धैर्ऋषिभिश्च निषेवितम् ॥ अत्यन्तभद्रं लोकेषु पुष्करं प्रथमं नृप ॥२०॥ पुष्करं पुण्डरीकाक्षो द्वावेव जगतीपते ॥ दर्शनात्स्पर्शनाच्चैव किल्बिषच्छेदिनो नृप ॥ २१ ॥ पुष्करं पुण्डरीकाक्षो द्वावेवः नृपसत्तम ॥ सेव्यमानो मुनिश्रेष्ठैरमरोर्वैर्महात्मभिः ॥ २२ ॥ द्वावेव हि नृपश्रेष्ठ सर्वपापप्रणाशको ॥ तावुभो यत्र सहितो तत्र ते संस्थिता नृपाः ॥ २३ ॥ दृष्टवन्तो हरिं विष्णुं विष्टरश्रवसं परम् ॥ पुष्करं पुण्यनिलयं तीर्थं ब्रह्मनिषेवितम् ॥२४॥ ताभ्यां कुरु नमस्कारं मनसा नृपसत्तम ॥ अहो निःशेषमभवत्तत्र भूयो न संशयः ॥२५॥ सैन्यं तत्र च संप्राप्तं दैत्यरक्षःसमाकुलम् ॥ अनेकभेरीपणवझर्झरीडिण्डिमाकुलम् ॥ २६ ॥ नानापणवसंमिश्रं रक्षोनादविनादितम् ॥ प्रविश्य सरसस्तीरं पुष्करस्य विशांपते ॥ दर्शयामास देवेश युद्धाय समुपस्थितम् ॥२७॥ इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे भविष्यपर्वणि हंसडिम्भकोपाख्याने एकविंशत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १२१ ॥ वैशम्पायन उवाच ॥ द्वे सेने संगते राजन्सध्वजे सपरिच्छदे ॥ महापरिघसंकीर्णे गदाशक्तिसमाकुले ॥ १ ॥

पापोंका निश्शेष हो जायगा इसमें संदेह नहीं ॥ २५ ॥ फिर दैत्यराक्षसोंसे युक्त वह सेना वहां प्राप्त हुई अनेक भेरी पणव झर्झरी और डिंडिमसे संयुक्त थी ॥ २६ ॥ अनेक प्रकारके बाजोंसे संयुक्त राक्षसोंके नादसे शब्दायमान इस प्रकार पुष्करके स्थानमें प्राप्त होकर युद्धके निमित्त स्थित केशवको देखा ॥ २७ ॥ इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे भविष्यपर्वणि भाषायां हंसडिंभकोपाख्याने एकविंशत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १२१ ॥ वैशंपायन बोले; हे राजन्! जब ध्वजापरिच्छेदसहित दोनों सेनाकी संगति हुई तब महापरिघ तथा गदा शक्तिसे समाकुल ॥ १ ॥

भेरी झर्झरसे सम्पूर्ण डिमडिमके शब्दसे संकुल महाशस्त्र ग्रहण किये शूल तलवार कार्मुक धारण किये ॥ २ ॥ परस्पर उत्साहपूर्वक दारुण युद्ध करने लगे; वे बाण धनुषसे मुक्त होकर प्राणियोंको निर्भेद कर ॥ ३ ॥ शरीरोंको विदीर्ण करने लगे योधाओंकी भुजाओंसे छूटे खड्ग वीरोंकी छातीको विदीर्ण कर ॥ ४ ॥ तथा उनके स्फुरायमान शिरोंको ग्रहण कर आकाशको गये उसी प्रकार राजोंसे छोडे हुए परिघ ॥ ५ ॥ राक्षसोंके शरीर तिलकी समान खण्ड खण्ड करने लगे, इस प्रकार एक दूसरेके वधकी इच्छासे सिंहनाद करने लगे ॥ ६ ॥ हे राजेन्द्र ! राक्षस राजा

भेरीझर्झरसंपूर्णे डिण्डिमारावसंकुले ॥ प्रगृहीतमहाशस्त्रे शूलासिवरकार्मुके ॥ २ ॥ परस्परकृतोत्साहे चक्राते युद्धमुल्बणम् ॥ ते शराः कार्मुकोत्सृष्टा निर्भिद्याथ शरीरिणाम् ॥ ३ ॥ शरीराणि महाराज जग्मुर्दूरं सहस्रशः ॥ भटबाहुविनिर्मुक्ताः खड्गा निर्भिद्य वक्षसि ॥ ४ ॥ स्फुरन्तश्च तथा राजञ्छिरांस्याहृत्य खं ययुः ॥ परिघाश्च तथा राज्ञां बाहुभिः परिचोदिताः॥५॥ तिलशश्चक्रुरतुलं शरीरं नृप रक्षसाम् ॥ दैत्यानां कुर्वतां नादमन्योन्यवधकाङ्क्षिणाम् ॥ ६ ॥ दैत्या रक्षांसि राजेन्द्र राजानश्च समन्ततः ॥ अन्योन्यं परिघैर्जघ्नुश्चापमुक्तैः शिलाशितैः ॥ ७ ॥ शरैश्च भोगिभोगाभैस्तीक्ष्णमन्ये महाबलाः॥ राक्षसा दानवाश्चान्ये मत्तमातङ्गविक्रमाः ॥८॥ अन्योन्यं जघ्निरे राजंश्चापमुक्तैर्महाशरैः ॥ नागा नागैर्महाराज हया अश्वैः समन्ततः ॥ ९ ॥ रथा रथैः समाजग्मुः सादिनः सादिभिस्तथा ॥ पट्टिशासिशरव्रातैः कुन्तैः सायककर्षणैः ॥ १० ॥ सशक्तिपरिघप्रासपरश्वधसमाकुलैः ॥ भिण्डिपालैर्महारौद्रैर्जघ्नुरन्योन्यमाहवे ॥ ११ ॥

और दैत्य एक दूसरेको शिला और परिघोंसे मारने लगे ॥ ७ ॥ दूसरे महाबली सर्पके शरीरकी समान तीक्ष्ण बाणोंसे मारने लगे वे राक्षस दानव मत्त मातंगकी समान पराक्रमी थे ॥ ८ ॥ चापसे छूटे महाबाणोंसे परस्पर एक दूसरेको मारने लगे. हे महाराज ! अनेक हाथी और घोडोंसे हाथी घोडोंका युद्ध होने लगा ॥ ९ ॥ रथी रथियोंसे अश्वारोही अश्वारोहियोंसे युद्ध करने लगे, पट्टिश असि शर समूह कुन्त सायक कर्षण ॥ १० ॥ शक्ति परिघ

प्रास परसोंसे समाकुल भिंडिपाल आदिसे परस्पर एक दूसरेको मारने लगे ॥ ११ ॥ इस प्रकार चापसे छूटे हुए बाणोंसे परस्पर एक दूसरेको मारने लगे.
हे राजन् ! राक्षस दानव और क्षत्रिय इधर उधर दौडते महाशब्द करने लगे ॥ १२ ॥ कोई तलवारसे मारकर पृथ्वीमें गिर पडे किन्ही बलियोंके मस्तक
गदासे चूर्ण हो गये ॥ १३ ॥ हे महाराज ! किन्हीकी गर्दन परिघसे चूर्ण हो गई कोई यमलोक और कोई स्वर्गको जाने लगे ॥ १४ ॥ कोई अप्सराओंसे
संगतिको प्राप्त हो अपने कलेवरको देखने लगे कोई अपने परायोंको भ्रान्त होकर मारने लगे ॥ १५ ॥ हे राजन् ! इस अवसरमें सैकडों शंख और भेरी

अन्योन्यं जघ्निरे राजश्चापमुक्तैः शिलाशितैः ॥ राक्षसा दानवा राजन्क्षत्रियाश्च समन्ततः ॥ इतश्चेतश्च धावन्तः कुर्वन्तो विस्वरं
रवम् ॥ १२ ॥ हताः केचिन्महाराज पेतुरुर्व्यां महासिभिः ॥ केचिन्मथितमास्तिष्का गदाभिर्वीर्यवत्तमाः ॥ १३ ॥ भिन्नग्रीवा
महाराज परिघैः परिघायुधैः ॥ यमराष्ट्रं गताः केचित्केचित्स्वर्गं समाययुः ॥ १४ ॥ अप्सरोभिः समासेदुः पश्यन्तः स्वकलेवरम् ॥
केचित्स्वांश्च परांश्चैव हत्वा भ्रान्ता इवाभवन् ॥ १५ ॥ एतस्मिन्नन्तरे राजन् शङ्खा भेर्यः सहस्रशः ॥ सस्वनुः सर्वतः सैन्ये मृदङ्गा
बहवस्तथा ॥ १६ ॥ मध्यंदिनगते सूर्ये तापं दधाति घोरवत् ॥ ततः पिशाचा विकृताः करालविततोदराः ॥ १७ ॥ राक्षसाश्च
महाघोराः पिशितं केशशाड्वलम् ॥ मुदिता भक्षयामासुः पिबन्तः शोणितं बहु ॥ १८ ॥ संचितानि शवान्यासन्कबन्धाः खड्गपा-
तिताः ॥ विभज्य देशं बहुशो युद्धभूमौ शवाशिनः ॥ १९ ॥ अथ श्येना मृगाश्चैव कङ्का गृध्रास्तथा परे ॥ तुण्डैः शवान्विनिष्कृष्य
भक्षयन्ति ततस्ततः ॥ २० ॥

सेनामें चारों ओरसे बजने लगीं और बहुतसे मृदंग बजने लगे ॥ १६ ॥ जिस समय सूर्य मध्याह्न समयको प्राप्त हो घोर प्रचण्ड हुए उस समय घोर
मुख बडे पेटवाले पिशाच और महाघोर राक्षस मांस खाते प्रसन्न हो रुधिर पान करने लगे ॥ १७ ॥ और संचित हुए खड्गसे पातित हो कबंध नाचने
लगे बहुतसे देशको विभाग कर युद्धभूमिमें मृतकोंको मारने लगे ॥ १८ ॥ १९ ॥ तब श्येन मृग कंक गृध्र तुण्डोंसे मृतकोंको खैंचने लगे ॥ २० ॥

हे राजन् ! उस युद्धमें सत्तासी सहस्र हाथी और चालीस सहस्र (हजार) घोडे मृतक हुए ॥ २१ ॥ हे महाराज ! एक लक्ष रथीभी मृतक हुए और तीस करोड घुडसवार मृतक हुए ॥ २२॥ सूर्यके मध्याह्नकालमें इस प्रकार मृत्युको प्राप्त हुए और कोई प्यासे हो पुष्करमें प्रवेश करने लगे ॥ २३ ॥ और कोई पृथ्वीको आलिंगन कर युद्धमें भीत होकर बोलने लगे कोई रथसे गिरकर खुले बाल पृथ्वीमें गिरने लगे ॥ २४ ॥ कोई सवार होठ चाटते पृथ्वीपर गिरे वह युद्ध पुष्करतीर्थमें महाघोर हुआ. हे राजन् ! जैसा पूर्वकालमें देवता और दैत्योंका युद्ध हुआ था ॥ २५ ॥ इति श्रीम० खिलेषु हरिवंशे

सप्ताशीतिसहस्राणि हता नागा नृपोत्तम ॥ त्रिंशत्सहस्रमयुतं निहता हयसत्तमाः ॥ २१ ॥ हतं लक्षं महाराज रथानां रथिभिः सह ॥ त्रिंशत्कोट्यो हतास्तत्र सादिनः सायुधा भृशम्॥ २२ ॥ मध्यंदिनगते सूर्ये हताः केचन निर्गताः ॥ केचिच्च तृषिता राजन्विविशुः पुष्करं सरः ॥ २३ ॥ केचिद्भूमिं समालिङ्ग्य भीता इत्यब्रुवन् रणे ॥ मुक्तकेशाः पतन्ति स्म रथान्संत्यज्य केचन ॥२४॥ संदष्टोष्ठपुटाः केचित्सादिनः पुरतो हताः ॥ अत्यद्भुतं महायुद्धमासीत्पुष्करतीर्थके ॥ यथा देवासुरं युद्धमासीत्पूर्वं नृपोत्तम ॥ २५ ॥ इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे भविष्यपर्वणि द्वाविंशत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १२२ ॥ वैशम्पायन उवाच ॥ एतस्मिन्नन्तरे राजन्द्वन्द्वयुद्धमवर्तत ॥ विचक्रं योधयामास शार्ङ्गधन्वा गदाधरः ॥ १ ॥ बलभद्रोऽथ हंसेन डिम्भकेन च सात्यकिः ॥ वसुदेवोग्रसेनाभ्यां हिडिम्बः पुरुषादकः ॥ २ ॥ शेषाश्च शेषे राजेन्द्र चक्रुर्युद्धमदीनमाः ॥ वासुदेवस्त्रिसप्तत्या दैत्यं वक्षस्यताडयत् ॥ ३ ॥ शरैर्निशितधाराग्रैर्विस्मयं दर्शयन् रणे ॥ दानवो देवदेवेशं दृढेन निशितेन च ॥ ४ ॥

भविष्यपर्वणि भाषायां हंसडिंभकोपाख्याने द्वाविंशत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १२२ ॥ वैशंपायन बोले; हे राजन् ! उसी समय द्वंद्वयुद्ध होने लगा शार्ङ्गधन्वा गदाधर विचक्रके साथ युद्ध करने लगे ॥ १ ॥ बलभद्र हंसके साथ और डिंभकके साथ सात्यकिका संग्राम होने लगा वसुदेव और उग्रसेनके साथ राक्षस हिडिम्बका युद्ध होने लगा ॥ २ ॥ हे महाराज ! शेष योधा बडी धीरतासे दूसरोंके साथ संग्राम करने लगे वासुदेवने ७३ बाण दैत्यकी छातीमें मारे ॥ ३ ॥ वह बाण बडे तीक्ष्ण थे जिससे रणमें दानवको बडा विस्मय हुआ दानवनेभी श्रीकृष्णको बडे तीक्ष्ण ॥ ४ ॥

बाणसे कर्णपर्यन्त खैंचकर छातीमें इन्द्रके देखते २ प्रहार किया॥५॥ उस बाणसे वक्षस्थलमें विद्ध होकर जनार्दन देव रुधिर वमन करने लगे जैसे आदि-
कालमें प्रजा ॥ ६ ॥ तब श्रीकृष्णने क्रोधकर क्षुरसे इसकी ध्वजा छेदन कर दी चारों घोडे मारकर तीन बाणोंसे सारथिको मारकर अपना महाशंख बजाया
जैसे तारकामय संग्राम हुआ था तब क्रोधमूर्ति दानवने तत्काल रथसे उतरकर ॥७॥ ८ ॥ दुस्सह वीर्यशालिनी महाघोर गदाको ग्रहण कर उस दैत्येन्द्रने
श्रीकृष्णके किरीटपर आघात किया ॥९॥ और फिर मस्तकपर प्रहार करके सिंहनाद किया, और फिर उन राक्षसने एक महाशिलाको ग्रहण कर ॥ १०॥

शरेणाकर्णमाकृष्य धनुःप्रवरमीश्वरम् ॥ जघान स्तनमध्ये च पश्यतस्तु शचीपतेः ॥५॥ तेन विद्धोऽथ भगवान्वक्षोदेशे जनार्दनः ॥
अवमच्छोणितं विष्णुरादिकाले यथा प्रजाः ॥ ६ ॥ ततः क्रुद्धो हृषीकेशः क्षुरप्रेणाहनद्ध्वजम् ॥ अश्वांश्च चतुरो हत्वा सारथिं च
शरैस्त्रिभिः ॥ ७ ॥ ततो दध्मौ महाशङ्खं यथा तारामये रणे ॥ रथादुत्प्लुत्य सहसा दानवः क्रोधमूर्च्छितः ॥ ८॥ गदां गृह्य महाघोरां
दुःसहां वीर्यशालिनीम् ॥ तया जघान दैत्येन्द्रः किरीटे केशवस्य ह ॥ ९ ॥ ललाटे च पुनर्विष्णुं सिंहनादं व्यनीनदत् ॥ ततः शिलां
च महतीं प्रगृह्य दनुजः किल ॥ १० ॥ भ्रामयित्वा दशगुणं प्राहरत्केशवोरसि ॥ तामापतन्तीं संप्रेक्ष्य हस्तेनादाय केशवः ॥ ११॥
जघान च तया दैत्यं स पपातार्दितः क्षितौ ॥ गतासुरिव संजज्ञे श्वसन्निव पपात ह ॥ १२ ॥ प्राप्य संज्ञां ततो दैत्यः क्रोधाद्द्विगुणमा-
बभौ ॥ आदाय परिघं घोरमिदमाह जनार्दनम् ॥ १३ ॥ अनेन तव गोविन्द दर्पजातं विहन्म्यहम् ॥ विक्रमश्चास्तदा चासि मम
देवासुरे रणे ॥ १४ ॥ तावेव विपुलौ बाहू स एवास्मि जनार्दन ॥ तथापि युध्यसे वीर ज्ञात्वा त्वं मामकं बलम् ॥ १५ ॥

उसे दश वार घुमाकर केशवके हृदयमें प्रहार किया, उसे आया देख केशवने हाथसेही ग्रहण कर ॥ ११ ॥ उससे दैत्यकोही मारा जिससे अर्दित हो दैत्य ॥२५४॥
पृथ्वीपर श्वास लेता प्राणरहितकी समान गिर पडा ॥१२॥ तब वह दैत्य संज्ञाको प्राप्त होकर दुगुना क्रोध कर परिघको उठाय जनार्दनसे बोला ॥ १३॥
हे गोविंद ! जान लो कि इससे तुम्हारा दर्प चूर्ण हो जायगा देवासुरके युद्धमें आपने मेरा पराक्रम देखा है ॥ १४ ॥ यह वही मेरी विपुल भुजा और

वही तुम हो. हे वीर ! तौभी तुम युद्ध कर मेरा बल देखोगे ॥ १५ ॥ अब मेरी भुजासे छूटे हुए इस परिघको निवारण करो, ऐसा देवदेव शंख चक्र गदाधारीसे कहकर सबके देखते दैत्यने वह परिघ लोकेशपर फेंका ॥ १६ ॥ कृष्णने उसको भुजासे ग्रहण कर कहा अब तुझको मारा और खड्गसे उसके खण्ड खण्ड कर डाले ॥ १७ ॥ तब उस दैत्यने सौ शाखका महावृक्ष उखाडकर उससे हरिको ताडन किया ॥ १८ ॥ उसकोभी श्रीकृष्णने तिलकी बराबर खण्ड कर दिया इस प्रकार माधव बहुत कालतक दैत्यके साथ क्रीडा करके ॥ १९ ॥ तीक्ष्ण बाण लेकर दैत्यके मारनेकी इच्छा करने लगे;

वारयैनं महाबाहो परिघं बाहुनिःसृतम् ॥ इत्युक्त्वा देवदेवेशं शङ्खचक्रगदाधरम् ॥ चिक्षेप दैत्यो लोकेशं सर्वलोकस्य पश्यतः ॥ १६ ॥ तं गृह्य बाहुना कृष्णो हतोऽसीति वदन् हरिः ॥ खण्डशः कारयामास खड्गेन निशितेन ह ॥ १७ ॥ उत्पाट्य वृक्षं दैत्येशः शतशाखं महाशिखम् ॥ तेन संपोथयामास विष्टरश्रवसं विभुम् ॥ १८ ॥ छित्त्वा तं चापि खड्गेन तिलशश्च चकार ह ॥ विक्रीड्य सुचिरं विष्णुस्तेन दैत्येन माधवः ॥ १९ ॥ हन्तुमैच्छत्तदा दैत्यमादाय निशितं शरम् ॥ आग्नेयास्त्रेण संयोज्य जघानैनं महान् हरिः ॥ २० ॥ संदह्य स शरो दैत्यं सर्वलोकस्य पश्यतः ॥ यथापूर्वं जगामाशु करं भगवतः पुनः ॥ २१ ॥ हतशिष्टास्ततो दैत्याः पलायन्तो दिशो दश ॥ अद्यापि न निवर्त्तन्ते गच्छन्तो वै महोदधिम् ॥ २२ ॥ इति श्रीम० खिलेषु हरि० भवि० हंसडिम्भकोपाख्याने कृष्णस्योत्कर्षवर्णनं नाम त्रयोविंशत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १२३ ॥ वैशम्पायन उवाच ॥ बलदेवस्तु धर्मात्मा धनुरादाय सत्वरम् ॥ जघान हंसं दशभिर्बाणैर्बाणभृतां वरः ॥ १ ॥ तं प्रत्यविध्यन्नाराचैर्हंसः पञ्चभिराशुगैः ॥ तानन्तरे हलो छित्त्वा नाराचैर्दशभिः पुनः ॥ २ ॥

और उसे आग्नेयास्त्रसे संयुक्त कर मारा ॥ २० ॥ सब लोकके देखते उससे वह दैत्य भस्म हो गया और वह अस्त्र फिर भगवानके हाथमें आ गया ॥ २१ ॥ मरनेसे शेष रहे दैत्य दशौं दिशाओंको भाग गये वे समुद्रमें गये आजतक नहीं लौटे हैं सागरमें चले गये ॥ २२ ॥ इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे भविष्यपर्वणि भाषायां हंसडिम्भकोपाख्याने कृष्णस्योत्कर्षवर्णनं नाम त्रयोविंशत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १२३ ॥ वैशंपायन बोले; धर्मात्मा बलदेवजी शीघ्र धनुष लेकर दश बाणोंसे हंसको ताडन करते हुए ॥ १ ॥ हंसने उनको पांच बाणोंसे विद्ध किया दश बाणोंसे बलरामजीने

उनको छेदन कर दिया ॥ २ ॥ और हंसके मस्तकमें नाराचोंका प्रहार किया। वह दृढ बाण गिरकर उसकी संज्ञाको हरता हुआ तब वह बहुत कालतक रथमें स्थित होकर संज्ञाको प्राप्त हो बाण ग्रहण करता हुआ ॥ ३ ॥ और संज्ञाको प्राप्त हो उस बाणसे यदुवीरको विद्ध किया, और देवताओंको विस्मय कराता हुआ सिंहकी समान गर्जने लगा ॥ ४ ॥ तब क्रोधको प्राप्त हुए हली उस बाणने विद्ध होकर रुधिर वमन करते हुए ॥ ५ ॥ लोहितवर्णका शरीर हो जानेसे कुंकुमसे रंगेकी समान हो गये, तब युद्धमें स्थित सौ सहस्र बाणोंसे बलरामजीने उसको अर्दित किया ॥ ६ ॥ इस प्रकार बलरामजीने हंसगतिवाले

नाराचेनाशु विव्याध ललाटे हंसमोजसा ॥ दृढं पतन्स नाराचस्तस्य संज्ञां समाददे ॥ रथोपस्थे चरं स्थित्वा तूणाद्बाणं समाददे ॥ ३ ॥ लब्ध्वा हंसः स संज्ञां तु विद्धा तेन यदूत्तमम् ॥ सिंहवद्व्यनदद्धंसो देवान्विस्मापयन् रणे ॥ ४ ॥ ततः क्रुद्धो हली विद्धस्तेन बाणेन माधवः ॥ वमञ्छोणितमत्युष्णं निश्वसंश्च रणाजिरे ॥ ५ ॥ लोहिताविष्टगात्रस्तु कुङ्कुमार्द्र इवाभवत् ॥ नाराचैः शतसाहस्रैरर्दयामास माधवः ॥ ६ ॥ हंसं हंसगतिं वीरं नीलवासा हलायुधः ॥ ते मुक्ता निशिता घोरा नाराचाश्च सुवाजिनः ॥ ७ ॥ रथे ध्वजे तथा चापे चक्रे तूणीद्वये नृप ॥ पतिताः सर्वतो राजन् व्यथां चैव तथा ददुः ॥ ८ ॥ ततः क्रुद्धो महाराज हंसो वीर्यमदान्वितः ॥ शरेण हलिनं विद्धा ध्वजं चिच्छेद कालवित् ॥ ९ ॥ शरैश्चतुर्भिरश्वांश्च सूतं प्रेताधिपं ददौ ॥ ततः क्रुद्धो हली तस्मै गदां गृह्य महारणे ॥ १० ॥ आपपात महाबाहुर्हंसं शेष इव श्वसन् ॥ तया रथं ध्वजं चक्रमश्वान्सूतं हलायुधः ॥ बभञ्ज तिलशः सर्वं ननाद च पुनः पुनः ॥ ११ ॥ भूयश्च गदया हंसं चिक्षेप च बली किल ॥ सोऽपि हंसो गदां गृह्य रथात्तस्मादवापतत् ॥ १२ ॥

वीर हंसको विद्ध किया, वे शीघ्रगामी नाराच उनके धनुषसे निकलकर ॥ ७ ॥ रथ ध्वजा चाप केतु दोनों तरकसमें चारों ओरसे पतित हो उसको व्यथित करने लगे ॥ ८ ॥ हे महाराज ! तब वीर्य और मदसे युक्त हंस बडा क्रोधित हुआ एक बाणसे बलरामको वेध कर उनकी ध्वजा छेदन कर दी ॥ ९ ॥ चार बाणोंसे घोडों और सारथिको मार डाला तब बलरामजीने क्रोध कर गदा ग्रहण की ॥ १० ॥ और श्वास लेते हुए हंसपर झपटे उससे बलरामजीने रथ ध्वजा रथके पहिये घोडे सारथिको तिलकी समान खण्ड खण्ड कर वारंवार शब्द किया ॥ ११ ॥ और फिर गदा लेकर हंसके मारी और हंस गदा लेकर रथसे

उतरा ॥ १२ ॥ तब वे महाबली दोनों युद्ध करने लगे वे महाबली महातेजस्वी लोकमें विख्यात ॥ १३ ॥ अतिअद्भुत विक्रान्त परस्पर वधकी इच्छा करनेवाले श्रम किये हंसकी समान गमन करनेवाले ॥ १४ ॥ ऐसे युद्ध करने लगे जैसे देवासुरके संग्राममें इन्द्रका और वृत्रासुरका संग्राम हुआ था दोनोंके रुधिरसे शरीर संसक्त हो गये ॥ १५ ॥ और युद्धमें महाखेदित हो गये, तब बलरामजी दक्षिणमार्गसे चलने लगे ॥ १६ ॥ और हंसने सव्यमार्ग ग्रहण किया और हाथीकी समान विक्रमवाले युद्धमें प्रहार करने लगे ॥ १७ ॥ और अपने पूर्णबलसे एक दूसरेको प्रहार करने लगे, देवासुरके युद्धकी

ततस्तौ हंसहलिनौ युयुधाते महारणे ॥ महारथौ महाबाहू लोके प्रथिततेजसौ ॥ १३ ॥ अत्यद्भुतं सुविक्रान्तौ परस्परवधैषिणौ ॥ कृतश्रमौ महायुद्धे हंसविक्रान्तगामिनौ ॥ १४ ॥ यथा देवासुरे युद्धे शक्रवृत्रौ पुराम्बरे ॥ उभौ संसक्तसर्वाङ्गौ शोणितेन महारणे ॥ १५ ॥ अत्यन्तखेदिनौ युद्धे परस्परबलेन ह ॥ ततश्च दक्षिणं मार्गं बलभद्रोऽभ्यगच्छत ॥ १६ ॥ सव्यं तु हंसो राजेन्द्रो ह्यगृह्णात्स्वयमेव हि ॥ पोथयाञ्चक्रतुर्युद्धे गदाभ्यां गजविक्रमौ ॥ १७ ॥ यथाप्राणं महाबाहू जघ्नतुर्मरणाय तौ ॥ अतिप्रवृद्धं संग्रामं देवासुररणोपमम् ॥ १८ ॥ विदधाते महारङ्गे पश्यतां त्रिदिवौकसाम् ॥ देवाश्च मुनयश्चैव विस्मयं परिजग्मिरे ॥ १९ ॥ अहो खल्वीदृशं युद्धं दृष्टं पूर्वं न च श्रुतम् ॥ इत्यूचुर्विस्मयवशाद्देवगन्धर्वकिन्नराः ॥ २० ॥ परस्परकृतोत्साहौ चक्रतुर्युद्धमुत्तमम् ॥ अथ हंसो महारङ्गे दक्षिणं दक्षिणोत्तमः ॥ २१ ॥ व्यचरन्मार्गमत्यर्थं सव्यं तु बलवान्बलः ॥ निकुञ्च्य जानुनी पूर्वं चक्रतुर्गदया भृशम् ॥ रणे रणविदां श्रेष्ठौ पश्यतां त्रिदिवौकसाम् ॥ २२ ॥ इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे भविष्यपर्वणि हंसडिम्भकोपाख्याने हंसबलभद्रयुद्धे चतुर्विंशत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १२४ ॥

समान युद्ध होने लगा ॥ १८ ॥ देवता उस युद्धको देखने लगे देवता और मुनि सब विस्मित हो गये ॥ १९ ॥ अहो हमने ऐसा युद्ध कभी नहीं देखा था; यह विस्मित हो देवता गन्धर्व किन्नर कहने लगे ॥ २० ॥ परस्पर उत्साहसे युद्ध करने लगे फिर युद्धमें हंस बाई ओरसे, बलराम दक्षिण ओरसे युद्ध करने लगे ॥ २१ ॥ बलरामजी सव्य मार्ग चलने लगे जांघ सकोड बडे वेगसे गदाप्रहार करने लगे इस प्रकार युद्धमें उन युद्ध करनेवालोंमें श्रेष्ठको देवता देखने लगे ॥ २२ ॥ इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे भविष्यपर्वणि भाषायां हंसबलभद्रयुद्धवर्णनो नाम चतुर्विंशत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १२४ ॥

वैशम्पायन बोले; इधर डिंभक और सात्यकिका महायुद्ध होने लगा वह दोनों वीर युद्धमें विख्यात थे ॥ १ ॥ युद्धविद्यामें महानिपुण वृद्धोंकी सेवा किये हुए थे सात्यकिने वेदपारगामी डिंभकको दश बाण ॥ २ ॥ मारकर उसे विद्ध किया और तीक्ष्ण बाणोंसे हृदयको विद्ध किया उस बलीसे क्षत्रियश्रेष्ठ डिंभक विद्ध होकर॥ ३ ॥ पांच सहस्र बाणोंसे युद्धमें उसे विद्ध करने लगा. उनको बीचमेंही सात्यकिने काट दिया और बडा शब्द किया ॥ ४ ॥ और क्रोधकर सात बाणोंसे राजाको विद्ध किया फिर उस डिंभकने लक्ष बाणोंसे सात्यकिको विद्ध किया ॥ ५ ॥ तब क्रोधकर सात्यकिने उसका

वैशम्पायन उवाच ॥ युद्धं चक्रतुरत्यर्थं ततो डिम्भकसात्यकी ॥ तावुभौ बलिनौ वीरौ विख्यातौ क्षत्रियेषु च ॥ १ ॥ कृतश्रमौ महायुद्धे सततं वृद्धसेविनौ ॥ सात्यकिर्दशभिर्वीरो डिम्भकं वेदपारगम् ॥ २ ॥ अविध्यन्निशितैर्बाणैस्तेन वक्रे तथोरसि ॥ स तेन विद्धो बलिना डिम्भकः क्षत्रियोत्तमः ॥ ३ ॥ नाराचैः पञ्चसाहस्रैर्विव्याध युधि गर्वितः ॥ तानन्तरे वृष्णिवीरो निषिद्धन्निनदन् ब्रुवन् ॥ ४ ॥ अथ क्रुद्धो नृपवरो विद्धः सप्तभिराशुगैः ॥ पुनः शतसहस्रेण प्रत्यविध्यत सात्यकिम् ॥ ५ ॥ सात्यकिस्त्वथ विक्रान्तो धनुश्चिच्छेद तस्य तत् ॥ अर्धचन्द्रेण तीक्ष्णेन डिम्भकस्य स यादवः ॥ ६ ॥ आजघ्ने डिंभको वीरश्चापमादाय चापरम् ॥ क्षुरप्रेणाथ रौद्रेण तैलधौतेन विक्रमी ॥ ७ ॥ स तेन विद्धो बाणेन वमञ्छोणितकं नृप ॥ अतीव शुशुभे राजन्वसन्ते किंशुको यथा ॥ ८ ॥ धनुश्चिच्छेद भूयस्तु गृहीतं यत्पुरा धनुः ॥ ततोऽन्यद्धनुरादाय डिम्भको यादवेश्वरम् ॥ ९ ॥ जघान निशितैर्बाणैः सर्वक्षत्रस्य पश्यतः ॥ स धनुः पुनरत्युग्रं चिच्छेद युधि सात्यकिः ॥ १० ॥

धनुष छेदन कर दिया यह अर्धचन्द्र बाणसे छेदन किया ॥ ६ ॥ तब डिंभकने और चाप लेकर सात्यकिको विद्ध किया उसने क्षुरेकी समान तीक्ष्ण बाणसे विद्ध किया ॥ ७ ॥ उस बाणसे विद्ध हो राजा शोणित वमन करने लगे, वसन्तमें टेसूके फूलके समान शोभित हुए ॥ ८ ॥ और वह उसका धनुष फिर छेदन कर दिया तब डिंभकने दूसरा धनुष लेकर सात्यकिको ॥ ९ ॥ तीक्ष्ण बाणोंसे सब क्षत्रियोंके देखते, विद्ध किया, सात्यकिने फिर उसका धनुष छेदन कर दिया ॥ १० ॥

जब तीक्ष्ण बाणसे उस दुरात्माका धनुष छेदन किया तब बहुत शीघ्र उसने दूसरा धनुष लिया ॥ ११ ॥ और उससे सात्यकिको विद्ध किया. हे राजेन्द्र! इस प्रकारसे १००० धनुष छेदन कर दिये ॥ १२ ॥ और सब क्षत्रियोंके सामने सात्यकि सिंहनाद करने लगा तब वीर डिंभक और सात्यकि धनुष त्यागन कर ॥ १३ ॥ खड्ग ग्रहण कर दोनों युद्ध करनेको तयार हुए, तब खड्गके युद्ध जाननेमें श्रेष्ठ सात्यकि और डिंभक ॥ १४ ॥ अर्थात् दुश्शासनका पुत्र महाभाग सोमदत्तका पुत्र महाबली अभिमन्यु और नकुल यह खड्ग युद्ध करनेवालोंमें श्रेष्ठ कहे हैं. हे राजन्! इन छहोंमें यह युद्ध करनेवालोंमें श्रेष्ठ

शरेण तीक्ष्णपुङ्खेन डिम्भकस्य दुरात्मनः ॥ ततोऽन्यद्धनुरादाय सत्वरं स नृपोत्तमः ॥ ११ ॥ धनुषा तेन राजेन्द्र सात्यकिं विव्यधे पुनः ॥ एवं धनूंषि राजेन्द्र शतं पञ्च च पञ्च च ॥ १२ ॥ छित्त्वा ननाद शैनेयः सर्वक्षत्रस्य पश्यतः ॥ धनुषी तौ परित्यज्य वीरौ डिम्भकसात्यकी ॥ १३ ॥ खड्गौ प्रगृह्य चात्युग्रौ युद्धाय समुपस्थितौ ॥ तौ हि खड्गविदां श्रेष्ठौ वीरौ डिम्भकसात्यकी ॥ १४ ॥ दौःशासनिर्महाभागः सौमदत्तिस्तथैव च ॥ अभिमन्युश्च विक्रान्तो नकुलश्च तथैव च ॥ १५ ॥ एते खड्गविदां श्रेष्ठाः कीर्तिता युधि सत्तमाः ॥ एतेष्वेतौ नृपश्रेष्ठौ षट्सु वै नृपसत्तम ॥ १६ ॥ तावेतावसिना युद्धं चक्रतुर्युद्धलालसौ ॥ भ्रान्तमुद्भ्रान्तमाविद्धं प्रविद्धं बाहुनिःसृतम् ॥ १७ ॥ आकरं विकरं भिन्नं निर्मर्यादममानुषम् ॥ संकोचितं कुलचितं सव्यजानु विजानु च ॥ १८ ॥ आहिकं चित्रकं क्षितं कुसुम्बं लम्बनं धृतम् ॥ सर्वबाहुविनिर्बाहुः सव्येतरमथोत्तरम् ॥ १९ ॥ त्रिबाहुस्तुङ्गबाहुश्च सव्योन्नतमुदासि च ॥ पृष्ठतः प्रथितं चैव यौधिकं प्रथितं तथा ॥ २० ॥ इति प्रकारान् द्वात्रिंशच्चक्रतुः खड्गयोधिनौ ॥ पुनः पुनः प्रहरन्तौ न च श्रममुपेयतुः ॥ २१ ॥

हैं ॥ १५ ॥ १६ ॥ दोनों युद्धकी लालसासे खड्गयुद्ध करने लगे, भ्रान्त उद्भ्रान्त आविद्ध प्रविद्ध इत्यादि बत्तीस प्रकारके तलवारके हाथ घुमाते ॥ १७ ॥ आकर विकर भिन्नमर्याद अमानुष संकोचित कुलचित सव्यजानु विजानु ॥ १८ ॥ आहिक चित्रक क्षित कुसुमलम्बन धृत सर्वबाहु निर्बाहु सव्येतर उत्तर ॥ १९ ॥ त्रिबाहु तुंगबाहु सव्य उन्नत उदासि पृष्ठकी ओर हाथ घुमाना यौधिक प्रथित ॥ २० ॥ इस ३२ प्रकारसे युद्ध करने लगे और वारंवार प्रहार

करकेभी श्रमको न प्राप्त हुए ॥२१॥ हे महाराज! इस प्रकार वे युद्धके निमित्त निश्चय किये थे, तब देवता गन्धर्व ऋषि ॥२२॥ जय हो इस प्रकार उन परिश्रम करनेवालोंको संतुष्ट करने लगे इन दोनों बलशालियोंका बडा पराक्रम है ॥ २३ ॥ यह दोनों युद्ध करनेमें समर्थ धनुषविद्याके पारगामीं हैं, एक शिवका और एक द्रोणाचार्यका शिष्य है ॥ २४ ॥ अर्जुन सात्यकि वासुदेव जगत्पति हे महाराज ! संग्राममें यह तीन महाविख्यात हैं ॥ २५ ॥ और डिंभक कार्तिकेय शिव यह तीन महारथी हैं यह वीर्य और बलमें प्रसिद्ध हैं ॥ २६ ॥ इस प्रकार देव गन्धर्व सिद्ध यक्ष महोरग युद्ध देखनेकी

पुष्करस्थौ महाराज युद्धाय कृतनिश्चयौ ॥ ततो देवाः सगन्धर्वाः सिद्धाश्च परमर्षयः॥२२॥ तुष्टुवुस्तौ महाराज जये कृतपरिश्रमौ ॥ अहो वीर्यमहो धैर्यमनयोर्बाहुशालिनोः ॥ २३ ॥ एतावेव रणे शक्तौ खड्गे धनुषि पारगौ ॥ एकः शिष्यो गिरीशस्य द्रोणस्यान्यो हि धीमतः ॥२४॥ अर्जुनः सात्यकिश्चैव वासुदेवो जगत्पतिः ॥ त्रय एते महाराज प्रथिताः संगरे सदा ॥२५॥ डिम्भकः शक्तिभृच्छर्वस्त्रय एते महारथाः ॥ प्रसिद्धाः सर्व एवैते वीर्येषु च बलेषु च ॥ २६ ॥ इति ते देवगन्धर्वाः सिद्धा यक्षा महोरगाः ॥ दिवि स्थिताः समं ब्रूयुर्युद्धदर्शनलालसाः ॥ २७ ॥ इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे भविष्यपर्वणि हंसडिम्भकोपाख्याने पञ्चविंशत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १२५ ॥ वैशम्पायन उवाच ॥ वसुदेवोग्रसेनौ च वृद्धौ युद्धे सुनिर्वृतौ ॥ जराजरितसर्वाङ्गौ पलिताङ्गशिरोरुहौ ॥१॥ ज्ञानविज्ञानसंपन्नौ राजमार्गविशारदौ ॥ युयुधाते महारङ्गे राक्षसेन दुरात्मना ॥ २ ॥ शरैरनेकसाहस्रैरर्दयामासतू रणे ॥ राक्षसेन्द्रं दुरात्मानं हिडिम्बं पुरुषादकम् ॥ ३ ॥

इच्छासे आकाशमें स्थित हुए कहने लगे ॥ २७ ॥ इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे भविष्यपर्वणि भाषायां हंसडिंभकोपाख्याने पंचविंशत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १२५ ॥ वैशंपायन बोले; वसुदेव और उग्रसेन दोनों युद्धमें बडे पराक्रमको प्राप्त हुए जरासे सर्वांग जर्जरित और श्वेतबालवाले ॥ १ ॥ ज्ञान विज्ञानमें तत्पर राजमार्गके जाननेवाले उस महायुद्धमें राक्षसके साथ युद्ध करते थे ॥ २ ॥ और सहस्रों बाणोंसे युद्धमें उस राक्षसको अर्दित

करने लगे वह पुरुषभक्षी दुरात्मा हिडिम्ब राक्षस था ॥ ३ ॥ वह हिडिम्ब राक्षस सब ओरसे यदुवंशियोंको भक्षण करता था वह दुष्टात्मा लम्बी भुजा और लम्बी ठोढीवाला महावृद्धिको प्राप्त हुआ ॥ ४ ॥ लम्बोदर विरूपाक्ष पीले केश और नेत्र श्येनकेसी नासिका, महाभयंकर, ऊर्ध्वरोमा, महाभुज ॥ ५ ॥ पर्वताकार शरीर, दीर्घ डाढों, गीदडकेसा मुख, लम्बोदर, दीर्घदन्त, जगत्के ग्रास करनेमें तत्पर ॥ ६ ॥ ऊंचे कंधेवाला, बडी छाती लम्बी गरदन हाथीकी समान, बडा मांसके लोदोंको खाता, रुधिरपान करता हुआ ॥ ७ ॥ हाथियोंसे हाथियोंको घोडोंसे घोडोंको रथोंसे रथोंको

हिडिम्बो राक्षसेंद्रस्तु भक्षयन्सर्वतो नरान् ॥ अतिप्रवृद्धो दुष्टात्मा लम्बबाहुर्महाहनुः ॥ ४ ॥ लम्बोदरो विरूपाक्षः पिङ्गकेशो विलोचनः ॥ श्येननासो महारौद्र ऊर्ध्वरोमा महाभुजः ॥ ५ ॥ पर्वताकारवर्ष्मा च दीर्घदंष्ट्रः शिवाननः ॥ लम्बोदरो दीर्घदन्तो जगद्ग्रासपरस्तथा ॥ ६ ॥ उत्तुङ्गांसो महोरस्को दीर्घग्रीवो गजोपमः ॥ भक्षयन्मांसपिटकं पिबन् शोणितसंचयम् ॥७॥ गजान्नागैः समाहत्य हयैरश्वान्नपोत्तम ॥ रथान्रथैः समाहत्य सादिनः सादिभिस्तथा ॥ ८ ॥ मनुष्यान्स पुरो दृष्ट्वा नास्यग्रासं चकार सः ॥ कांश्चिद्धृत्वा महाराज वृष्णिपालान्समन्ततः ॥ ९ ॥ भक्षयामास सहसा हिडिम्बः पुरुषादकः ॥ यान्पश्यन्पुरतो रक्षस्तान् जघान विरूपधृक् ॥ १० ॥ भक्षयन्नपरान्वृष्णीन्यादवान् राक्षसेश्वरः ॥ चिक्षेप सहसा कांश्चिद्धिडिम्बः पुरुषादकः ॥११॥ अन्तकाले यथा क्रुद्धो रुद्रः प्राणभृतो नृप ॥ क्षणेनैकेन सर्वांस्तान्भक्षयामास राक्षसः ॥ १२ ॥ केचिद्भीता दिशः प्रापुर्वृष्णयो वीर्यशालिनः ॥ केचित्तु भक्षितास्तेन रक्षसा वृष्णिपुङ्गवाः ॥ १३ ॥

सवारोंको सवारोंसे मारता हुआ ॥ ८ ॥ आगे मनुष्योंको देखकर नासिकासेही श्वासके द्वारा ग्रस लेता था, किसीको पकडकर निगल जाता था. हे महाराज ! इस प्रकार अनेक वृष्णिवंशियोंको ॥ ९ ॥ खाने लगा जिसको उसने आगे देखा उसीका वध किया विरूपधारे ॥ १० ॥ दूसरे वृष्णिवंशी और यादवोंको वह राक्षस खाने लगा, और किसीको वह हिडिम्ब फेंकने लगा ॥ ११ ॥ अन्तकालमें क्रोधकर रुद्र जैसे प्रजाका संहार करते हैं, इस प्रकार वह क्षणमात्रमें सबको भक्षण करने लगा ॥ १२ ॥ कोई बली वृष्णि डरकर दिशाओंमें भाग गये, और किन्हीको वह

राक्षस भक्षण कर गया ॥ १३ ॥ हे राजन् ! जिस प्रकार कुंभकर्णने वानरोंको भक्षण किया था इस प्रकार वह यादवोंकी सेनाको भक्षण करने
लगा ॥ १४ ॥ चित्रपटकी समान यादवी सेना निश्शेष हो गई तब दोनों वृद्ध यादव क्रुद्ध हुए और महाघोर धनुषको ग्रहण कर राक्षसके सन्मुख
हुए ॥ १५ ॥ जैसे सिंहके सन्मुख मृग होते हों तब वह महाराक्षस मुख फैलाकर उन दोनोंके ऊपर दौडा ॥ १६ ॥ और पातालकी समान मुख
फैलाये खानेकी इच्छा करने लगा और भक्षण करता हुआ रथसे धावमान हुआ ॥ १७ ॥ तब उन दोनों वीरोंने बाणोंसे उसका मुख पूर्ण कर

कुम्भकर्णो यथा राजन्भक्षयामास वानरान् ॥ (निःशेषं वृष्णिसैन्यं तु चकार पुरुषादकः) ॥ १४ ॥ निश्चेष्टं वृष्णिसैन्यं तु
स्थितं चित्रपटे यथा ॥ एतस्मिन्नन्तरे क्रुद्धो वृद्धो यादवपुङ्गवौ ॥ धनुर्गृह्य महाघोरं राक्षसस्य पुरः स्थितौ ॥ १५ ॥ यथा क्रुद्धस्य
सिंहस्य मृगौ वृद्धतमाविव ॥ व्यादायास्यं महारक्षस्तौ वृद्धावभ्यधावत ॥ १६ ॥ चिखादिषुर्विरूपाक्षः पातालतलसन्निभः ॥
ततोऽरथः पर्यधावत्खादन् खादन्कलेवरम् ॥ १७ ॥ पूरयामासतुर्वीरौ शरैर्यदुवृषौ नृप ॥ हिडिम्बस्य महाघोरं व्यादितास्य-
मिवान्तकम् ॥ १८ ॥ सर्वांस्तान्वारयामास देवशत्रुर्विरूपधृक् ॥ धावति स्म ततो रक्षो व्यादितास्यं भयानकम् ॥ १९ ॥ तयोर्गृ-
हीत्वा धनुषी बभञ्ज युधि सत्वरम् ॥ बाहू प्रसार्य दुष्टात्मा राक्षसो विकृताननः ॥ २० ॥ वसुदेवं महीपालं राजानं वृद्धसेविनम् ॥
ग्रहीतुं राक्षसश्रेष्ठो यतते नृपसंसदि ॥ २१ ॥ हिडिम्ब उवाच ॥ एष वां भक्षयिष्यामि वसुदेवं त्वया सह ॥ उग्रसेन किमर्थं त्वं
तिष्ठसे मत्पुरोगमः ॥ २२ ॥ आगच्छ प्रविशास्यं मे ग्रासभूतो तु वां मम ॥ विधिना निर्मितो वृद्धो वसुदेवो हरेः पिता ॥ २३ ॥

दिया वह हिडिम्बका मुख बडा घोर था ॥ १८ ॥ उस देवशत्रु विरूपने उन सबको निवारण किया और भयानक मुख फैलाये वह राक्षस धावमान
होने लगा ॥ १९ ॥ और उन दोनोंके धनुष लेकर बहुत शीघ्र तोड डाले और वह दुष्टात्मा राक्षस बाहें फैलाकर ॥ २० ॥ वसुदेव राजा वृद्ध-
सेवीको ग्रहण करनेकी इच्छा राजोंके सन्मुख करने लगा ॥ २१ ॥ हिडिम्ब बोला; हे वसुदेव ! मैं अभी तुम्हारे साथ उग्रसेनके खानेकी इच्छा
करता हूं मेरे सामने उग्रसेनकी क्या सामर्थ्य है ॥ २२ ॥ आओ तुम मेरे मुखमें प्रवेश कर जाओ हरिके पिता वसुदेवको मेरे मुखमें आनेके

निमित्त परमात्माने कल्पित कर दिया है ॥ २३ ॥ मैं शीघ्र विक्रमी भूखा श्रमसे आर्त हो रहा हूं मेरे मुखमें शीघ्र प्रवेश करो अब तुम जा नहीं सकते ॥ २४ ॥ तुम दोनोंका रुधिरपान कर मैं शान्त हो जाऊंगा, और पीछे तुम दोनों वृद्धोंका मांस खाऊंगा ॥ २५ ॥ यह कहकर उस महाठोढीवाले राक्षसने खानेको मुख फैलाया, और राक्षसेश्वर उन्हे खानेको दौडा ॥ २६ ॥ तब उग्रसेन और वसुदेव भयभीत हो सब ओर देखने लगे, और शस्त्ररहित हो वहांसे पृथक् हो गये ॥ २७ ॥ इस अवसर प्रतापवान् बलरामजीने उग्रसेन वसुदेवजीको इस प्रकार देखकर ॥ २८ ॥ हंससे

बुभुक्षितः श्रमार्तश्च युद्धे त्वरितविक्रमः ॥ मन्मुखान्नेव गच्छेतां प्रविशेतां त्वरान्वितौ ॥ २४ ॥ युवयोः शोणितं पीत्वा तृप्तिं यास्यामि निर्वृतः ॥ खादामि च पुनर्मांसं वृद्धयोर्युवयोः सुखम् ॥ २५ ॥ इति ब्रुवंस्तथा रक्षो व्यादितास्यं महाहनु ॥ धावति स्म तदा क्षिप्रं हिडिम्बो राक्षसेश्वरः ॥ २६ ॥ वसुदेवोग्रसेनौ च भीतौ विप्रेक्ष्य सर्वतः ॥ दिशोऽभ्यभजतां राजन्निःशस्त्रौ वृष्णिपुङ्गवौ ॥ २७ ॥ एतस्मिन्नन्तरे दृष्ट्वा बलभद्रः प्रतापवान् ॥ दृष्ट्वा च तौ तथाभूतौ वसुदेवोग्रसेनकौ ॥ २८ ॥ वासुदेवे समादिश्य हंसं युध्यन्तमीश्वरे ॥ निर्गत्य चान्तरं तस्य राक्षसस्य दुरात्मनः ॥ २९ ॥ मा कृथाः साहसं रक्षो मुञ्चैतौ राजसत्तमौ ॥ स्थितोऽस्मि युध्यतां रक्षो मया शत्रून् जिघांसता ॥ ३० ॥ त्वामेव हनिष्ये त्वां का चेयं तव भीषिका ॥ इति ब्रुवाणं हलिनं तौ विसृज्य महारणे ॥ ३१ ॥ महानयमसौ दुष्टो भक्षयाम्येनमग्रतः ॥ विदार्य पूर्ववद्वक्त्रं बलभद्रमुपाद्रवत् ॥ ३२ ॥ विसृज्य सशरं चापं राक्षसस्य पुरः स्थितः ॥ मुष्टिं प्रगृह्य बलवान्स्फोटयन्बाहुमुत्तमम् ॥ ३३ ॥

युद्ध करनेको वासुदेवसे कहकर और उस दुरात्मा राक्षसके बीचमें प्राप्त हो बोले ॥ २९ ॥ हे राक्षस ! इन्हे छोड साहस मत कर मैं स्थित हूं मुझ शत्रुनाशक करनेवाले साथ युद्ध कर ॥ ३० ॥ मैं तुझको वध करूंगा तुझसे क्या भय है बलरामजीको ऐसा कहते देख महायुद्धमें वह उन दोनोंको छोडकर ॥ ३१ ॥ यह कुटिल महाअनयसंपन्न है पहिले इसेही भक्षण करूं, यह कह मुख फैलाकर बलरामके सन्मुख धावमान हुआ ॥ ३२ ॥ वहभी शरचापको छोडकर राक्षसके सन्मुख स्थित हुए, और घूंसा बनाकर अपनी भुजाको ठोकते हुए ॥ ३३ ॥

तब दुष्टात्मा हिडिम्बकनेभी घूंसा उठाकर कालकी समान घूंसा बलरामजीकी छातीमें मारा ॥ ३४ ॥ क्रोधकर बलरामजीको मुष्टिसे उसने मारा और बलरामजीने राक्षसको मारा ॥ ३५ ॥ उस समय नर और राक्षस वीरका मुष्टियुद्ध होने लगा और दोनों युद्धभूमिमें युद्ध करते रहे ॥ ३६ ॥ उन दोनोंके घूंसोंका चटचटा शब्द होने लगा तब राक्षसराजने संग्राममें रामको घूंसेसे ॥ ३७ ॥ छातीमें मारा जैसे इन्द्र वज्र मारे तब बलरामजीनेभी यत्नसे घूंसा बनाकर ॥ ३८ ॥ देवशत्रु हिडिम्बकी छातीमें मारा तब रामने तलप्रहार उस राक्ष-

हिडिम्बस्त्वथ दुष्टात्मा मुष्टिं कृत्वा भयानकाम् ॥ जघान वक्षो रामस्य व्यादितास्य इवान्तकः ॥ ३४ ॥ क्रुद्धोऽथ बलभद्रस्तु मुष्टिना तेन ताडितः ॥ जघान मुष्टिना तेन राक्षसेशमनिन्दितः ॥ ३५ ॥ मुष्टियुद्धं समभवन्नरराक्षसवीरयोः ॥ युद्ध्यतोर्युद्धरंगेऽथ नरराक्षससिंहयोः ॥ ३६ ॥ तयोश्चटचटाशब्दः प्रादुरासीद्भयानकः ॥ अथ राक्षसराजस्तु मुष्टिना राममाहवे ॥ ३७ ॥ जघान वक्षोदेशे तु वज्रेणेव पुरंदरः ॥ अथ रामो बली साक्षान्मुष्टिं संवर्त्य यत्नतः ॥ ३८ ॥ हिडिम्बं ताडयामास वक्षस्यमरविद्विषम् ॥ तलाभ्यामथ रामस्तु वक्रे हत्वा स राक्षसम् ॥ ३९ ॥ आहतस्तलघातेन हिडिम्बो राक्षसेश्वरः ॥ जानुभ्यामपतद्भूमौ गतासुर्वीरराक्षसः ॥ ४० ॥ तत उत्पाद्य रामस्तु दोर्भ्यां संगृह्य राक्षसम् ॥ आदाय बाहुवेगेन भ्रामयित्वा पदात्पदम् ॥४१॥ व्याविध्यत्सुचिरं रामो दर्शयन्नात्मनो बलम् ॥ उत्क्षिप्य राक्षसेन्द्रं तं सर्वलोकस्य पश्यतः ॥४२॥ गव्यूतिमात्रं चिक्षेप ततो देशाद्धलायुधः ॥ गतासू राक्षसश्रेष्ठस्ततो देशान्निराक्रमत् ॥ ४३ ॥ ये केचिद्राक्षसास्तत्र हतशेषा महारणे ॥ बलभद्रात्ततो भीता जग्मुश्चैवं दिशो दश ॥ ४४ ॥

सके मुखमें किया ॥ ३९ ॥ राक्षसपति तलके आघातसे ताडित होकर गतासु हो जंघाके बल पृथ्वीमें गिरा ॥ ४० ॥ तब बलरामजीने भुजाओंसे बली राक्षसको पकडकर बडे वेगसे घुमाया ॥ ४१ ॥ और अपना बल दिखाकर उसे महाताडित कर सबके देखते २ दूर फैंक दिया ॥ ४२ ॥ और उन महाबलीने उस राक्षसको दो कोसपर फैंक दिया प्राणरहित हो राक्षसश्रेष्ठ उस देशसे पृथक् हो गया ॥ ४३ ॥ जो वहां राक्षस थे वे हत होकर बल-

रामके डरसे दशों दिशाओंमें भाग गये ॥ ४४ ॥ तब अंशुमाली भगवान् सूर्य अपना तेज संहार कर प्रजाओंके चक्षुओंका प्रकाश हरण करते अस्त हुए और कुछ अंधकार छाने लगा ॥ ४५ ॥ जब प्रजापति जगत्‌के गुरु सूर्य विश्वमुख सागरमें प्रविष्ट हुए, उस समय संध्याके अन्धकारको दूर करता चन्द्रमा उदय हुआ ॥ ४६ ॥ हे राजन् ! फिर प्रातःकालमें उठकर राजा कहने लगे कि गोवर्द्धनमें युद्ध करना श्रेष्ठ है जहां किन्नरोंके गीतोंका शब्द होता है, ऐसा कहकर वे सब गोवर्द्धनको गमन करने लगे ॥ ४७ ॥ इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे भविष्यपर्वणि भाषायां हंसडिंभकोपाख्याने

अथांशुमाली भगवान् दिनेशः संहृत्य तेजांसि सहस्ररश्मिः ॥ अस्तं ययौ चक्षुरपि प्रजानामीषत्तमश्चापि समाविवेश ॥ ४५ ॥
तस्मिन्प्रविष्टेऽथ समुद्रतोयं प्रजापतौ विश्वमुखे जगद्गुरौ ॥ नक्षत्रनाथः समुपाजगाम संध्यातमोऽपि व्यनशन्नृपोत्तम ॥ ४६ ॥
प्रभातकाले नृपसत्तमो रणो गोवर्द्धने किन्नरगीतनादिते ॥ इति ब्रुवन्तो नृपसत्तमास्तदा व्युपारमंस्तत्र रणोत्सवे नृप ॥ ४७ ॥
इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे भविष्यपर्वणि हंसडिम्भकोपाख्याने हिडिम्बपराभवो नाम षड्विंशत्यधिकशततमोऽध्यायः॥ १२६॥
वैशम्पायन उवाच ॥ उभौ तौ हंसडिम्भकौ रात्रावेव महागिरिम् ॥ जग्मतुः सहितौ राजन् गोवर्द्धनमथो नृप॥ १॥ अथ प्रभाते विमले सूर्ये चाभ्युदिते सति ॥ गोवर्द्धनं जगामाशु केशवः केशिसूदनः ॥ २ ॥ शैनेयो बलभद्रश्च यादवाः सारणादयः ॥ गन्धर्वैरप्सरोभिश्च नादितं बहुधा गिरिम् ॥ ३ ॥ जग्मतुः सहितौ राजन् गोवर्द्धनमथो गिरिम् ॥ गोधनैरथ सैन्यैश्च नादितं बहुधा गिरिम् ॥ ४ ॥
तस्योत्तरं नृपश्रेष्ठ पार्श्वं संप्राप्य यादवाः ॥ निकषा यमुनां राजंस्ततो युद्धमवर्त्तत ॥ ५ ॥

हिडिम्बपराभवो नाम षडिंशत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १२६ ॥ वैशंपायन बोले; वे दोनों हंस और डिंभक रात्रिमेंही महागिरि गोवर्द्धनको चले ॥ १ ॥ फिर विमल प्रातःकाल होनेसे केशिसूदन केशवभी गोवर्द्धनको चले ॥ २ ॥ शैनेय बलभद्र सारण आदि यादव चले गन्धर्व और अप्सराओंसे वह पर्वत शब्दायमान था ॥ ३ ॥ तथा गोधनादिके शब्दोंसेभी वह पूर्ण था. हे राजन् ! इस प्रकारसे वे गोवर्द्धन पर्वतको गये ॥ ४ ॥ हे राजन् ! वह यादव

उसके उत्तर पार्श्वमें प्राप्त होकर यमुनाके किनारे युद्ध करने लगे ॥ ५ ॥ हंस डिंभकने वसुदेवको सात बाणोंसे विद्ध किया पच्चीससे सारण और दशसे कंकको विद्ध किया ॥ ६ ॥ फिर हंस डिंभकका यादवोंके संग संग्राम होने लगा उग्रसेनने ७३ बाण ॥ ७ ॥ विराटने तीस सात्यकिने सात विपृथुने ८० उद्धवने दश प्रद्युम्नने तीस साम्बने सत्तर अनाधृष्टिने ७१ बाण मारे ॥ ८ ॥ ९ ॥ उस प्रकार वे पराक्रम प्रकाश करके युद्ध करने लगे वे सब यादव अतिअद्भुत महाघोर युद्ध करने लगे ॥ १० ॥ वासुदेवके देखते उन दोनोंसे युद्ध होने लगा. हे महाराज! बलदर्पित वे सब युद्ध करने

विव्याध हंसडिम्भकौ वसुदेवश्च सप्तभिः ॥ सारणः पञ्चविंशत्या दशभिः कङ्क एव च ॥६॥ हंसेन डिम्भकेनाथ यादवैश्च समन्ततः॥ उग्रसेनस्त्रिसप्तत्या शराणां नतपर्वणाम् ॥ ७ ॥ विराटस्त्रिंशता राजन्सात्यकिश्चापि सप्तभिः ॥ अशीत्या विपृथू राजन्नुद्धवो दशभिः शरैः ॥ ८ ॥ प्रद्युम्नस्त्रिंशता राजन्साम्बश्चापि च सप्तभिः ॥ अनाधृष्टिस्त्वेकषष्ट्या शराणां नतपर्वणाम् ॥ ९ ॥ एवं वै सहिता राजंश्चक्रुर्युद्धमदीनवत् ॥ अत्यद्भुतं महाघोरं यादवाः सर्व एव हि ॥ १० ॥ चक्रुस्ताभ्यां महायुद्धं वासुदेवस्य पश्यतः ॥ सर्वानपि महाराज यादवान्बलदर्पितान् ॥ ११ ॥ तावुभौ हंसडिम्भकौ नृपांस्तान्प्रत्यविध्यताम् ॥ प्रत्येकं दशभिर्विद्धा बाणैर्निशितकोमलैः ॥१२॥ जघ्नतुश्च शरैस्तीक्ष्णैरत्यर्थं यादवेश्वरान् ॥ व्यथिताः सर्व एवैते वमन्तः शोणितं बहु ॥ १३ ॥ माधवे किंशुका राजन्पुष्पिता इव ते बभुः ॥ भीताश्च यादवा राजन्पलायनपरायणाः ॥ १४ ॥ एतस्मिन्नन्तरे राजन्वसुदेवात्मजो नृप ॥ वासुदेवो हली युद्धे प्रमुखे धन्विनो तयोः ॥ १५ ॥ चक्रतुर्युद्धमतुलं स्कन्दशक्राविवाम्बरे ॥ तयोरेव सगन्धर्वाः सिद्धा यक्षा महर्षयः ॥ १६ ॥

लगे ॥ ११ ॥ वे हंस और डिंभक उन राजोंको विद्ध करके प्रत्येकको तीक्ष्ण बाणोंसे वेध कर ॥ १२ ॥ तीक्ष्ण बाणोंसे यादवेश्वरोंको विद्ध करने लगे वे सब व्यथित हो, रुधिर वमन करने लगे ॥ १३ ॥ और चैतके महीनेमें टेसूके फूलकी समान शोभित हुए और भीत होकर यादव भागनेकी इच्छा करने लगे ॥ १४ ॥ हे राजन्! उसी समय श्रीकृष्ण और बलराम युद्धमें उन दोनों धनुषधारियोंके साथ ॥ १५ ॥ इन्द्र और स्कन्दकी समान आकाशमें तुमुल युद्ध करने लगे, उस समय गन्धर्व सिद्ध यक्ष महर्षि ॥ १६ ॥

देवता देवासुरयुद्धकी समान इस युद्धको देखने लगे. हे राजन् उस समय शिवजीके भेजे हुए दो भूतेश्वर वहां आनकर प्राप्त हुए ॥ १७ ॥ उन्हें उनकी रक्षाके निमित्त शिवजीने भेजा था, तब हंस और वासुदेव दोनों युद्ध करने लगे ॥ १८ ॥ तथा राम और डिंभक युद्ध करने लगे वह सब अस्त्रशस्त्रसे विशून्य हुए बलमें युक्त थे ॥ १९ ॥ और अपने २ रथमें स्थित हुए शंख बजाने लगे तब हृषीकेश पांचजन्य नामक महाशंखको बजाने लगे ॥ २२ ॥ इस प्रकार वह कमललोचन सबको आश्चर्य कराने लगे, तब वे दोनों महाघोर शरीरवाले

विमानस्थाश्च ददृशुर्युद्धं देवासुरोपमम् ॥ ततः प्रादुरभूतां तौ दूतौ भूतेश्वरौ नृप ॥ १७ ॥ शूलिना प्रेषितौ युद्धे रक्षार्थं बलिनो-स्तयोः ॥ हंसोऽथ वासुदेवश्च युद्धं चक्रतुरीश्वरौ ॥ १८ ॥ रामश्च डिम्भकश्चैव संयुक्तौ युद्धकाङ्क्षया ॥ विशून्याः सर्व एवैते ह्यस्त्रे शस्त्रे तथा बले ॥ १९॥ शंखान्दध्मुः पृथक् ह्यादं स्वे स्वे सर्वे रथे स्थिताः ॥ अथ कृष्णो हृषीकेशः पाञ्चजन्यं महारवम् ॥ २० ॥ दध्मौ पद्मपलाशाक्षः सर्वान्विस्मापयन्निव ॥ अथ भूतौ महाघोरौ लम्बोदरशरीरिणौ ॥ २१ ॥ दुद्रुवतुर्महाराज शूलमादाय केश-वम् ॥ शूलेन पोथयां राजन् चक्रतुर्यादवेश्वरम् ॥ २२ ॥ ताभ्यां समाहतो विष्णुर्देवगन्धर्वसंनिधौ ॥ ईषत्स्मिताधरो देवः किंचि-दुत्प्लुत्य सत्वरम् ॥ २३ ॥ रथाद्रथिवरश्रेष्ठस्तौ प्रगृह्य जनार्दनः ॥ भ्रामयित्वा शतगुणमलातमिव केशवः ॥ २४ ॥ कैलासं च समुद्दिश्य प्रचिक्षेप ततो हरिः ॥ ता उपेत्य गिरेः शृंगं कैलासस्य महामते ॥ २५ ॥ दृष्ट्वा तत्कर्म देवस्य विस्मयं जग्मतुः परम् ॥ हंसश्च दृष्ट्वा तत्कर्म रोषताम्रायतेक्षणः ॥ २६ ॥

लम्बोदर ॥ २१ ॥ शूल हाथमें ऊपर लिये केशवके दौडे और शूलसे यादवेश्वरको बींधने लगे ॥ २२ ॥ देव गंधर्वोंके सामने उनसे समाहत हुए विष्णु भगवान् कुछ हँसते हुए वहांसे कूदे ॥ २३ ॥ रथियोंमें श्रेष्ठ श्रीकृष्णने रथसे कूदकर उन दोनोंको पकड लिया और अलातचक्रकी समान उनको सौ वार घुमाया ॥ २४ ॥ और कैलासपर्वतपर उन दोनोंको फेंक दिया वे दोनों कैलासपर्वतके शृंगपर गिरे ॥ २५ ॥ और देवका यह कर्म

देखकर परम विस्मयको प्राप्त हुए हंस वह कर्म देखकर बडा क्रोधित हुआ ॥ २६ ॥ और देवताओंके सुनते वह हंस कहने लगा. हे केशव ! तुम हमारे राजसूय यज्ञमें क्यों विघ्न करते हो ॥२७॥ ब्रह्मदत्त राजा उस यज्ञको करेंगे जो प्राणोंकी रक्षा करना चहाते हो तो हमारा कर दो ॥२८॥ अथवा तुम क्षणमात्र स्थित हो तो बहुत कर दोगे. हे नंदपुत्र ! तुमको इतना देना होगा कि उससे हमारा यज्ञ हो जायगा ॥ २९ ॥ जैसे देवताओंके पति शिव हैं, इस प्रकार मैं राजोंका अधिपति हूं युद्धमें तुम्हारा सम्पूर्ण दर्प चूर्ण करूंगा ॥३०॥ यह कहकर तालके वृक्षकी समान चापको चढाय

उवाच वचनं हंसः शृण्वतां त्रिदिवौकसाम् ॥ किमर्थं राजसूयस्य विघ्नं चरसि केशव ॥ २७ ॥ ब्रह्मदत्तो महीपालो यष्टा तस्य महाक्रतोः ॥ करं दिश यथायोगं यदि प्राणान् हि रक्षसि ॥ २८ ॥ अथवा त्वं क्षणं तिष्ठ ततो ज्ञात्वा परं बहु ॥ ददासि त्वं नन्दपुत्र ततो यष्टा स मे गुरुः ॥ २९ ॥ ईश्वरोऽहं सदा राज्ञां देवानामिव शूलभृत् ॥ एष ते वीर्यमतुलं नाशयिष्यामि संयुगे ॥ ३० ॥ इत्युक्त्वा सशरं चापं शालतालोपमं नृप ॥ आकृष्य च यथाप्राणं नाराचेन च केशवम् ॥ ३१ ॥ ललाटे चिक्षिपे हंसो ललाम इव सोऽभवत् ॥ उवाच सात्यकिं कृष्णो रथं वाहय मे प्रभो ॥ ३२ ॥ दारुकं पृष्ठवाहं तं कृत्वा देशं तमीश्वरः ॥ अथ तेन समादिष्टः सात्यकिर्वाहयद्रथम् ॥ ३३ ॥ मण्डलानि बहून्याजो दर्शयामास सत्वरम् ॥ अथ विद्धो दृढं तेन शरेण हरिरीश्वरः ॥ ३४ ॥ आग्नेयमस्त्रं संयोज्य शरे कस्मिंश्चिदव्ययः ॥ उवाच हंसं राजेन्द्र सात्यकिं प्रेरयन्रणे ॥ ३५ ॥ अनेन त्वां दहे पाप यदि शक्तोऽसि वारय ॥ अलं ते बह्वबद्धेन क्षत्रियोऽसि सदा शठ ॥ ३६ ॥

बाण रख यथाशक्ति चढाय केशवके ॥ ३१ ॥ मस्तकमें प्रहार किया, यह बडी अद्भुत वार्ता हुई, तब कृष्णने सात्यकिसे कहा तुम हमारा रथ चालन करो ॥ ३२ ॥ तब श्रीकृष्णने दारुकको पृष्ठवाहक करके, सात्यकिद्वारा रथको चालन कराया ॥ ३३ ॥ और संग्राममें वह अनेक मंडल दिखाता रथ चलाने लगा, श्रीकृष्ण उसके शरसे दृढ विद्ध हो गये थे ॥ ३४ ॥ तब श्रीकृष्णने धनुषके ऊपर दिव्य बाण चढाय अग्नि अस्त्रसे संयुक्त किया और सात्यकिको प्रेरण करते हंससे बोले; हे पापी ! इस बाणसे मैं तुझको मारूंगा ॥ ३५ ॥ यदि समर्थ हो तौ निवारण कर बहुतसी अबद्ध

बातोंसे क्या है तू क्षत्रियोंमें सदा शठ है ॥ ३६ ॥ जो मुझसे कर लेनेकी इच्छा है तो अपना बल दिखा; हे हंस ! तैंने पुष्करमें रहनेवाले यतियोंको पीडित किया है ॥ ३७ ॥ हे नराधम ! मेरे होते तू ब्राह्मणोंका शासन कर सकता है मुझ जगत्के स्वामीने क्षत्रियरूपी कंटकको वध कर दिया है ॥ ३८ ॥ मैं लोकमें असत् और ब्राह्मणद्वेषियोंकी शासन करनेवाला हूं, हे नृपाधम ! तू तो यतियोंमें मुख्य यतियोंके पाससेही दग्ध हो रहा है ॥ ३९ ॥ आज तुझे मृत्युके अर्थ सौंपकर ब्राह्मणोंकी रक्षा करूंगा. यह कहकर वह अस्त्र युद्धमें श्रीकृष्णने त्यागन किया ॥ ४० ॥ हंसने वारु-

मत्तश्चेत्करमिच्छेस्त्वं दर्शयाद्य पराक्रमम् ॥ यतयो बाधिता हंस पुष्करे संस्थितास्त्वया ॥ ३७ ॥ शास्ता त्वं खलु विप्राणां स्थिते मयि नराधम ॥ स्थिते मयि जगन्नाथे हत्वा क्षत्रियकण्टकान् ॥ ३८ ॥ शास्तास्म्यथो सतां लोके दुष्टानां ब्रह्मविद्विषाम् ॥ शापेन यतिमुख्यानां हत एव नृपाधम॥३९॥ मृत्यवे त्वां निवेद्याद्य रक्षिता ब्राह्मणानहम् ॥ इति ब्रुवंस्तदस्त्रं तु मुमोच युधि केशवः॥४०॥ तदस्त्रं वारुणेनाथ हंसोपि प्रत्यषेधयत् ॥ वायव्यमथ गोविन्दो मुमोच युधि हंसके ॥ ४१ ॥ तदस्त्रं वारयामास माहेन्द्रेण नृपोत्तमः ॥ अथ माहेश्वरं कृष्णो मुमोचात्युग्रमाहवे ॥ ४२ ॥ रौद्रेण तत्ततो हंसो वारयामास तत्क्षणात् ॥ गान्धर्वं राक्षसं चैव पैशाचमथ केशवः ॥ ४३ ॥ ब्रह्मास्त्रमथ कौबेरमासुरं याम्यमेव च ॥ चत्वार्येतानि हंसस्तु मुमोच युधि सत्वरम् ॥ ४४ ॥ वारणार्थं तदस्त्राणां चतुर्णां माधवस्य ह ॥ अथ ब्रह्मशिरो नाम घोरमस्त्रं विनाशकम् ॥ ४५ ॥ मुमोच हंसमुद्दिश्य देवदेवो जनार्दनः ॥ योजयामास तद्धंसे महाघोरपराक्रमम् ॥ ४६ ॥ अथ भीतो महारौद्रमस्त्रं दृष्ट्वा नृपोत्तमः ॥ हंसोऽपि तेन राजेन्द्र वारयामास तं शरम् ॥ ४७ ॥

णास्त्रसे उसको निवारण कर दिया तब श्रीकृष्णने वायव्यअस्त्रको चलाया ॥ ४१ ॥ हंसने उसे महेन्द्र अस्त्रसे निवारण किया तब श्रीकृष्णने युद्धमें माहेश्वर अस्त्र चलाया ॥ ४२ ॥ हंसने उसको रौद्रास्त्रसे निवारण कर दिया, तब गन्धर्व राक्षस पिशाच अस्त्र केशवने चलाये ॥ ४३ ॥ तब ब्रह्मास्त्र कुबेरास्त्र आसुर याम्य यह चार अस्त्र हंसने युद्धमें श्रीकृष्णके ऊपर छोडे ॥ ४४ ॥ श्रीकृष्णने घोर ब्रह्मशिर नामक अस्त्रसे उनका निवारण कर दिया ॥ ४५ ॥ और फिर यही घोर अस्त्र हंसके ऊपर घोर पराक्रमवाला संयुक्त किया ॥ ४६ ॥ तब इस महारौद्र अस्त्रको देखकर राजा हंस

डर गया, और हंसने उसी अस्त्रसे उसको वारण किया ॥४७॥ तब देवदेव जनार्दनने यमुनाजलका स्पर्श कर वैष्णव अस्त्र बाणपर संधान किया ॥४८॥
और भूतभावनने उसको बाणपर चढाया, जिस अस्त्रसे देवताओंने असुरोंको मारकर राज्य प्राप्त किया था, वही अस्त्र उस राजाके वधके निमित्त
चढाया ॥ ४९ ॥ इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे भविष्यपर्वणि भाषायां हंसकेशवयुद्धे सप्तविंशत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १२७ ॥ वैशंपायन बोले
वह राजा महारौद्र अस्त्रको देखकर भीत हुआ और वह हंस चेष्टारहितकी समान हो गया ॥ १ ॥ और रथसे उतरकर यमुनामें धावमान हुआ जहां

यमुनाप उपस्पृश्य देवदेवो जनार्दनः ॥ अस्त्रं वैष्णवमादाय शरे स निशिते हरिः ॥ ४८ ॥ योजयामास भूतात्मा भूतभावनभावनः ॥
येन देवा रणे हत्वा राज्यमापुः पुराऽसुरान् ॥ यदस्त्रं योजयामास वधार्थं तस्य भूपते ॥४९॥ इति श्रीम० खिलेषु हरिवंशे भवि०
हंसडिम्भकोपाख्याने हंसकेशवयुद्धे सप्तविंशत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १२७ ॥ वैशम्पायन उवाच ॥ अथ भीतो महारौद्रमस्त्रं दृष्ट्वा
नृपोत्तम ॥ हंसो राजा महाराज निश्चेष्ट इव संबभौ ॥ १ ॥ उत्प्लुत्य स रथात्तस्माद्यमुनामभ्यधावत ॥ यत्र कृष्णो हृषीकेशः कालि
याहिं ममर्द ह ॥ २ ॥ महाह्रदं महारौद्रं यावत्पातालसंस्थितम् ॥ तावद्दीर्घं महानीलं कालाञ्जननिभं हि यत् ॥ ३ ॥ तस्मिन् ह्रदे
महाघोरे पपाताथ स हंसकः ॥ हंसे पतति तस्मिंस्तु महान् रावो बभूव ह ॥ ४ ॥ गिरीणां पात्यमानानां समुद्र इव वज्रिणा ॥ रथा-
दुत्प्लुत्य कृष्णोऽपि तस्योपरि पपात ह ॥५॥ देवदेवो जगन्नाथो जगद्विस्मापयन्निव ॥ प्राहरत्तं महाबाहुः पादाभ्यामथ केशवः ॥६॥
पादक्षेपं नृपस्तस्माल्लब्ध्वा हंसो नृपोत्तम ॥ ममार च नृपश्रेष्ठ केचिदेवं वदन्ति हि ॥ ७ ॥

वह महारौद्र ह्रद पातालपर्यन्त गहरा था वह उतनाही दीर्घपातालकी समान स्थित था ॥ ३॥
कृष्णने कालियनागको यमुनामें मर्दन किया था ॥ २ ॥ जैसे इन्द्रके मारे पर्वत सागरमें गिरे थे तब रथसे कूदकर
उस महाघोर ह्रदमें वह हंस निपतित हुआ, हंसके गिरनेसे उसमें महाशब्द हुआ ॥ ४ ॥ वह नृप श्रीकृष्णके
श्रीकृष्ण उसके ऊपर पतित हुए ॥ ५ ॥ वह देवदेव जगन्नाथ जगत्को विस्मय कराते हुए पैरोंसे उसको प्रहार करते हुए ॥ ६ ॥

पादप्रक्षेपको प्राप्त होकर मर गया ऐसा कोई २ कहते हैं ॥ ७ ॥ कोई कहते हैं पातालको चला गया वहां सर्पोंने भक्षण कर लिया. हे राजन् ! अब-तक उसे किसीने देखा हो ऐसा हमने नहीं सुना ॥ ८ ॥ फिर जगन्नाथ अपने रथमें आनकर स्थित हुए. हे महाराज ! उसके मरनेपर धर्मपुत्र युधिष्ठिरने राजसूय यज्ञ किया था ॥ ९ ॥ इस प्रकार तुम्हारे पूर्व पितामहका यज्ञ हुआ, और जो यह हंस जीता रहता तो उस यज्ञकी कौन प्रशंसा करता ॥ १० ॥ हे महाराज ! वह सर्व अस्त्रका जाननेवाला रुद्रसे अस्त्रबलको प्राप्त होकर गर्वित हुआ था, क्षणमें यह वार्ता पृथ्वीमें व्याप्त हो गई कि ॥ ११ ॥ शत्रु-

अन्ये पातालमायातो भक्षितः पन्नगैरिति ॥ अद्यापि नैव राजेन्द्र दृष्ट इत्युनुशुश्रुम ॥ ८ ॥ यथापूर्वं जगन्नाथो रथं समुपजग्मिवान् ॥ हते तस्मिन्महाराज धर्मपुत्रो युधिष्ठिरः ॥ ९ ॥ अकरोद्राजसूयं च तत्र पूर्वपितामहः ॥ यदि जीवेदसौ हंसः को नमस्यति तं क्रतुम् ॥ १० ॥ स च सर्वास्त्रवित्नित्यं रुद्राल्लब्धवरः प्रभो ॥ क्षणादेव महाराज वार्त्तेयं गामगाहत ॥ ११ ॥ हतो हंसो हतो हंसः कृष्णेन रिपुमर्दिना ॥ जगुर्गन्धर्वपतयो देवलोके दिवा निशम् ॥ १२ ॥ कृष्णेन लोकनाथेन विष्णुना प्रभविष्णुना ॥ यमुनाया ह्रदे घोरे हंसो निहत इत्यपि ॥ १३ ॥ इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे भविष्यपर्वणि हंसडिम्भकोपाख्याने हंसवधो नामाष्टाविंशत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १२८ ॥ वैशम्पायन उवाच ॥ श्रुत्वा निहतमत्युग्रं भ्रातरं वीर्यशालिनम् ॥ बलदेवं परित्यज्य युध्यमानं महारणे ॥ १ ॥ डिम्भको वीर्यसंपन्नो यमुनामनुजग्मिवान् ॥ तमन्वधावद्वेगेन बलभद्रो हलायुधः ॥ २ ॥ हंसो हि यत्र पतितस्तत्रासौ निपपात ह ॥ यमुनायां महाराज विलोड्य जलसंचयम् ॥ ३ ॥

घाती श्रीकृष्णने हंसको मार डाला गन्धर्वपति देवलोकमें यह वार्ता रातदिन गाते हैं ॥ १२ ॥ लोकनाथ प्रभु विष्णु श्रीकृष्णने यमुनाके घोर ह्रदमें इसको मार डाला ॥ १३ ॥ इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे भविष्यपर्वणि भाषायां हंसवधो नामाष्टाविंशत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १२८ ॥ वैशं-पायन बोले; बडे बली अपने भ्राताको मरा हुआ देखकर युद्धमें लडते हुए बलदेवसे युद्ध करना छोडकर ॥ १ ॥ बडा बली डिंभक यमुनाके निकट गया बलरामजीभी उसके पीछे हुए ॥ २ ॥ जहां हंस निपातित हुआ था वहीं यह कूद पडा और यमुनाका जल विलोडित करने लगा ॥ ३ ॥

और क्रोधकर बहुत प्रकारसे उस जलमें ढूंढकर वारंवार गोता मारकर और वारंवार खोजकर ॥ ४ ॥ कहींभी अपने बली भ्राताको न पाया और बाहर निकलकर श्रीकृष्णको देखकर वह ॥ ५ ॥ बडा बली डिंभक वचन कहने लगा; अरे गोपपुत्र ! बताओ वो वह हंस कहां स्थित है ॥ ६ ॥ धर्मात्मा वासुदेवने कहा यमुनासे पूछ, यह वार्ता प्रसन्नतासे कही ॥ ७ ॥ यह सुनकर डिंभक फिर यमुनामें प्रविष्ट हुआ और वहां बहुत प्रकारसे भाईको ढूंढा ॥ ८ ॥

अथ क्रुद्धः स डिम्भको भ्रामयित्वा जलं बहु ॥ उन्मज्ज्योन्मज्ज्य सहसा निमज्ज्य च पुनः पुनः ॥४॥ न ददर्श तदा राजन् भ्रातरं वीर्यशालिनम् ॥ उन्मज्ज्याथ महाबाहुर्वासुदेवं विलोक्य च ॥ ५ ॥ उवाच वचनं राजन् डिम्भको वीर्यवत्तमः ॥ अरे गोपकदायाद क्वासौ हंस इति स्थितः ॥६॥ वासुदेवोऽपि धर्मात्मा यमुनां पृच्छ राजक ॥ इत्यब्रवीत्प्रसन्नात्मा वासुदेवः प्रतापवान् ॥७॥ तच्छ्रुत्वा यमुनां भूयः प्रविश्य डिम्भकः किल ॥ बहुप्रकारमुद्वीक्ष्य भ्रातरं भ्रातृवत्सलः ॥ ८ ॥ विललाप ततो राजा डिंभको भ्रान्तमानसः ॥ क्व नु गच्छसि राजेन्द्र विहायैनमबान्धवम् ॥९॥ कुतो भ्रातरितो गच्छेः परित्यज्यैव मामिह ॥ विलप्यैवं नृपश्रेष्ठ डिम्भको भ्रातृवत्सलः ॥१०॥ आत्मत्यागे मनः कुर्वन् यमुनाया महाह्रदे ॥ निमज्ज्योन्मज्ज्य सहसा मरणे कृतनिश्चयः ॥ ११ ॥ हस्तेन जिह्वामाकृष्य भूयो भूयो विलप्य च ॥ ततः समूलामाकृष्य जिह्वां साहसकृत्स्वयम् ॥ १२ ॥ ममारान्तर्जले राजन् डिम्भको नरकाय वै ॥ एवं तु निहते हंसे डिम्भके वीर्यशालिनि ॥ १३ ॥ आगमत्पुण्डरीकाक्षो भूतान्विस्मापयन्निव ॥ ततः प्रीतः प्रसन्नात्मा वासुदेवः प्रतापवान् ॥ १४ ॥

जब न मिला तब डिंभक विलाप करने लगा कि भ्राता ! मुझे छोडकर तुम कहां जाते हो ॥ ९ ॥ हे भ्राता ! मुझे छोड कहां गये हो, इस प्रकार नृपश्रेष्ठ भ्राताके निमित्त विलाप करके ॥ १० ॥ उस यमुनाके महाह्रदमें प्राणत्यागनकी इच्छा करता हुआ वारंवार मरनेके निमित्त डूबने लगा ॥ ११ ॥ हाथसे जीभको खैंच वारंवार विलाप करने लगा और फिर अपने हाथसे जिह्वाको खैंच लिया ॥ १२ ॥ और जलके भीतर नरक जानेके निमित्त मर गया इस प्रकार बली डिंभक और हंसके मरनेमें ॥ १३ ॥ श्रीकृष्ण प्राणियोंको विस्मय कराते वहां आये तब प्रसन्न हो प्रतापवान् श्रीकृष्ण ॥ १४ ॥

बलभद्रके सहित गोवर्धनमें विश्राम कर कुछ कालतक वहां निवास करते हुए ॥ १५॥ इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे भविष्यपर्वणि भषायां हंसडिंभकवधो नामैकोनत्रिंशदधिकशततमोऽध्यायः ॥ १२९ ॥ वैशंपायन बोले; यशोदा और नन्दगोप श्रीकृष्णके दर्शनकी लालसा किये उन्हें बलदेवजीके साथ गोवर्द्धनमें आया सुनकर ॥ १ ॥ मक्खन दही दूध कृशर वनके फूल मयूरांगद ले ॥ २ ॥ सब गोप और गोपियोंके साथ प्रसन्न हो गोवर्धनको गये ॥ ३ ॥ किसी एक वृक्षके नीचे बैठे हुए काले मृगकी समान नेत्रवाले श्रीकृष्णको बलरामजी सहित देखा ॥ ४ ॥ उन महाबलीयोंको देखकर

गोवर्धनेऽथ विश्रम्य बलभद्रसहायवान् ॥ कंचित्कालं महाराज पूर्वभुक्तमुवास ह ॥ १५ ॥ इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे भविष्यपर्वणि हंसडिम्भकवधो नामैकोनत्रिंशदधिकशततमोऽध्यायः ॥१२९॥ वैशम्पायन उवाच ॥ यशोदा नन्दगोपश्च कृष्णदर्शनलालसौ ॥ गोवर्द्धनगतं श्रुत्वा वासुदेवं सहाग्रजम् ॥ १ ॥ नवनीतं च दधि च पायसं कृशरं तथा ॥ वन्यं पुष्पं महाराज मयूराङ्गदमेव च ॥ २ ॥ वल्लवैरपरैः सार्द्धं गोपीभिश्च समन्ततः ॥ जग्मतुः सहसा प्रीतौ गोवर्धनमथो नृप ॥ ३ ॥ क्वचिद्वृक्षे तमासक्तं कृष्णं कृष्णमृगेक्षणम् ॥ ददर्शतुर्महाबाहुं वासुदेवं सहाग्रजम् ॥ ४ ॥ प्रणेमतुः सुसंहृष्टौ तत्र दृष्ट्वा महाबलौ ॥ दर्शयामासतुर्देवौ पायसानि महान्ति च ॥ ५ ॥ तात मातर्व्रजे गोष्ठ कुशलं वां स्वगोधनम् ॥ अपि गावः क्षीरवत्यो वत्सा वत्सपराः पितः ॥ ६ ॥ अपि वा सुशुभं क्षीरमपि गावः सुशोभनाः ॥ अपि वा दारका मातर्वत्सपालाः पिबन्ति च ॥ ७ ॥ बहूनि चापि दामानि कीलका अपि वा बहु ॥ तृणानि बहुरूपाणि किं वा सन्ति पितः सदा ॥८॥ शकटानि सुगन्धीनि किं वा सन्ति पितर्ध्रुवम् ॥ अपि गोप्यः पुत्रवत्यो दारकान् किमजीजनन् ॥ ९ ॥

उन्होंने प्रणाम किया और वह दुग्धादि उनको भेटमें दिया ॥ ५ ॥ श्रीकृष्ण बोले; हे तात ! माता ! व्रजमें (गोष्ठ) में कुशल है गो दूधवाली हैं और बच्छडे भले हैं ॥ ६ ॥ आपके दूध अच्छा है, और गऊ सुन्दर हैं. हे माता ! बालक उनका दूध भली प्रकार पीते हैं ॥ ७ ॥ बहुतसी माला और कीलक और अनेक प्रकारके तृण आपके यहां विद्यमान हैं क्या ? ॥८॥ हे पिता क्या शकट और सुगंधि पदार्थ आपके यहां विद्यमान हैं ? और

हे माता ! क्या व्रजमें सब प्रकारसे अभिन्न वट विद्यमान हैं ? हे पिता ! क्या प्रति-
गोपी पुत्रवती अच्छे बालकोंको उत्पन्न करनेवाली है ॥ ९ ॥ क्या गौ अधिक दूध देती हैं ॥ ११ ॥ नंदजी बोले;
दिन गौ अधिक दूध देती हैं ॥ १० ॥ आपके मक्खन दूध दही क्या अधिक होता है ? और सम्पूर्ण गोधन निरोग तो है ॥ ११ ॥ हे देवेश ! आपकी रक्षा करनेसे हम
हे यदुश्रेष्ठ ! हमारे यहां सब प्रकारसे निरोगता है हे केशव ! सम्पूर्ण कालमें गोधनमें कुशल है ॥ १२ ॥ विशीर्ण होती
सदा कुशलवाले हैं गोधन और बछडे सब कालमें निरोग हैं ॥ १३ ॥ आपका दर्शन नहीं होता यही हमको महादुःख है, इसी दुःखसे बुद्धि

इय्यङ्गवीनं क्षीराणि दधि वा किमजी-
घटाः किं बह्वो मातरभिन्नाः सर्वतो व्रजे ॥ किं गावः क्षीरमतुलं स्रवन्त्यहरहः पितः ॥ १० ॥ कुशलं गोधनस्येव
जनन् ॥ गोधनं सर्वमेवेदं नीरोगं प्रतिपद्यते ॥ ११ ॥ नन्द उवाच ॥ सर्वमेतद्यदुश्रेष्ठ नीरोगं बहुशः प्रभो ॥ एकमेव सदा
सर्वकालेषु केशव ॥ १२ ॥ रक्षणात्तव देवेश सदा कुशलिनो वयम् ॥ सगोधनाः सवत्साश्च नीरोगा इव केशव ॥ १३ ॥ एवमादि विलप्यन्तं
दुःखं न त्वां द्रक्ष्यामि केशव ॥ यदेतत्केवलं दुःखमिति धीः शीर्यते सदा ॥ १४ ॥ वैशम्पायन उवाच ॥ ये केचित्त्वां
गच्छेत्याह स केशवः ॥ यशोदां पुनराहेदं मातर्गच्छ गृहं प्रति ॥ १५ ॥ ये च त्वां कीर्तयिष्यन्ति ते च स्वर्गमवाप्नुयुः ॥ इत्युक्त्वा पितरौ देवो वासुदेवः सना-
नमस्यन्ति ते मे प्रियतराः सदा ॥ १६ ॥ मद्भक्ताः सर्वदा सन्तु गच्छेत्याह च तां हरिः ॥ ततः कृष्णो
तनः ॥ १७ ॥ गाढमालिङ्ग्य तौ प्रीतौ प्रेषयामास केशवः ॥ यशोदा नन्दगोपश्च जग्मतुः स्वगृहं प्रति ॥ १८ ॥
हृषीकेशो यादवैः सह वृष्णिभिः ॥ गन्तुमैच्छत्तदा विष्णुः पुरीं द्वारवतीं किल ॥ १९ ॥

है ॥ १४ ॥ वैशम्पायन बोले; यह वचन कहकर जब नन्दने आंसू भर लिये तब श्रीकृष्णने उनसे घर जानेको कहा और यशोदा मातासेभी घर जानेको
कहा ॥ १५ ॥ माता ! जो तुम्हारा कीर्तन करेंगे उनको स्वर्गकी प्राप्ति होगी, और जो कोई तुमको नमस्कार करेंगे वे मेरे सदा प्रिय होंगे ॥ १६ ॥
मेरे भक्त होंगे यह कहकर हरिने जानेको कहा, यह कहकर सनातन वासुदेवने ॥ १७ ॥ माता पिताको गाढ आलिंगन कर जानेकी आज्ञा दी, यशोदा
नंद और गोप अपने २ घरोंको गये ॥ १८ ॥ तब हृषीकेश कृष्ण यादव और वृष्णिवंशियोंके सहित अपनी पुरीमें जानेकी इच्छा करने लगे ॥ १९ ॥

जो इसे नित्य सुनते और पाठ करते हैं वह पुत्रवान् धनवान् होकर अन्तमें मुक्तिको प्राप्त होते हैं ॥ २० ॥ इति श्रीम० खि० ह० भवि० भाषायां यशोदानन्दगोपबलभद्रसमागमो नाम त्रिंशदधिकशततमोऽध्यायः ॥ १३० ॥ वैशम्पायन बोले; जब यादवोंके सहित पुष्करको प्राप्त होकर विष्णुजी गमन करने लगे तब पुष्करमें स्थित अनेक मुनियोंको देखने लगे ॥ १ ॥ वे अभिमानरहित ऋषि मिलकर भगवान्के निकट प्राप्त होकर उन यादवश्रेष्ठके प्रति अर्घ्यादिका आचार करते हुए ॥ २ ॥ भूतभव्यभवत्प्रभु विश्वेश्वर देवसे कहने लगे; हे जनार्दन ! यह आपका पराक्रम बडाही अद्भुत है ॥ ३ ॥

य एतच्छृणुयान्नित्यं पठेद्वापि समाहितः ॥ पुत्रवान् धनवांश्चैव अन्ते मोक्षं च गच्छति ॥ २० ॥ इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे भविष्यपर्वणि यशोदानन्दगोपबलभद्रकृष्णसमागमो नाम त्रिंशदधिकशततमोऽध्यायः ॥ १३० ॥ वैशम्पायन उवाच ॥ गच्छन्नथ महाविष्णुः पुष्करं प्राप्य यादवैः ॥ अपश्यन्मुनिमुख्यांस्तु पुष्करस्थान्नृपोत्तम ॥१॥ ते समेत्य महादेवमृषयो वीतमत्सराः ॥ अर्घादिसमुदाचारं कृत्वैनं यादवोत्तमम् ॥ २ ॥ प्रोचुर्विश्वेश्वरं विष्णुं भूतभव्यभवत्प्रभुम् ॥ अत्यद्भुतमिदं विष्णो तव वीर्यं जनार्दन ॥३॥ येन तौ निहतौ युद्धे हंसो डिम्भक एव च ॥ यो विचक्रो दुराधर्षो देवैरपि सुदुःसहः ॥४॥ सङ्गरे निहतो देव दुःसाध्य इति नो मतिः॥ क्षेमो नः सर्वकार्येषु चरतां तप उत्तमम् ॥५॥ निष्कल्मषा भविष्यामस्तव संस्मरणाद्धरे ॥ त्वं हि सर्वस्य दुःखस्य हर्ता त्वां ध्यायतां सदा ॥ ६ ॥ त्वदनुस्मरणं जन्तोः सदा पुण्यप्रदं प्रभो ॥ त्वं हि नः सततं धाता विधाता तपसो हरेः॥ ७ ॥ त्वमोंकारो वषट्कारस्त्वं यज्ञस्त्वं पितामहः ॥ त्वं ज्योतिर्ब्रह्मणो मूर्तिस्त्वं ब्रह्मा रुद्र एव च ॥ ८ ॥

जो आपने युद्धमें हंस और डिंभकको मार डाला जो दुराधर्ष देवताओंकोभी दुस्सह थे ॥ ४ ॥ हम तो उनको दुस्साध्य मानते थे जिनको आपने युद्धमें मार डाला, अब हमारे तप तथा अन्य सब कार्यमें मंगल होगा ॥ ५ ॥ हे हरे ! आपके स्मरणसे हम पापरहित हो जांयगे आपही सब दुःखके हर्ता हो आपके ध्यान करनेसे ॥ ६ ॥ आपका स्मरण प्राणियोंको सदा आनंद देनेवाला है, हमारे आपही धाता विधाता तपके आदिकारण हो ॥ ७ ॥ तुम ओंकर वषट् यज्ञ

आप सब भूतोंके प्राण और अन्तरात्मा हो. हे जगत्पते ! सब भूतोंको यज्ञ दानसे आपही
और पितामह हो तुम ज्योति ब्रह्ममूर्ति ब्रह्मा और रुद्र हो ॥८॥ ब्राह्मणद्वेषियोंको मारकर सदा इस जगत्की रक्षा करो ॥ १० ॥
उपासनीय हो ॥ ९ ॥ विश्वके उत्पन्न करनेवाले विश्वमूर्तिको नमस्कार है. हे देव ! हे जन्मेजय ! इस प्रकार भगवान्की चेष्टा
बहुत अच्छा कह हरि द्वारकापुरीको गये और मागधोंसे स्तुतिको प्राप्त हो वहां निवास करने लगे ॥ ११ ॥ इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे भविष्यपर्वणि भाषायां द्वारकायां कृष्ण
हैं सो तुम्हारे पूछनेपर कही अब और क्या सुननेकी इच्छा है ॥ १२ ॥

उपास्यः सर्वभूतानां यज्ञैर्दानैर्जगत्पते ॥ ९ ॥ नमो विश्वसृजे देव नमस्ते विश्वमूर्तये ॥
प्राणस्त्वं सर्वभूतानामन्तरात्मेति कथ्यते ॥ स तथेति हरिर्विष्णुर्ययौ द्वारवतीं पुरीम् ॥ अवसद्वृष्णिभिः सार्द्धं स्तूयमानः स
पाहि लोकमिमं देव हत्वा ब्रह्मद्विषः सदा ॥ १० ॥ सा प्रोक्ता ते पृच्छते राजन् किमन्यच्छ्रोतुमिच्छसि ॥१२॥ इति श्रीमहाभा-
मागधैः ॥११॥ इयं च देवदेवस्य चेष्टा हि जनमेजय ॥ जनमेजय उवाच ॥ भगवन्केन विधिना
रते भविष्यपर्वणि द्वारकायां कृष्णप्रत्यागमनं नामैकत्रिंशाधिकशततमोऽध्यायः ॥ १३१ ॥ देयं समाप्ते भगवन् किं च पर्वणिपर्वणि ॥ वाचकः
श्रोतव्यं भारतं बुधैः ॥ फलं किं के च देवाश्च पूज्या वै पारणेष्विह ॥ १ ॥ श्रुताद्भवन्ति राजेन्द्र
कीदृशश्चात्र यष्टव्यस्तद्ब्रवीहि मे ॥ २ ॥ वैशम्पायन उवाच ॥ शृणु राजन्विधिमिमं फलं यच्छति भारतात् ॥
यत्त्वं मामनुपृच्छसि ॥ ३ ॥ दिवि देवा महीपाल क्रीडार्थमवनिं गताः ॥ कृत्वा कार्यमिदं चैव ततश्च दिवमागताः ॥ ४ ॥

जनमेजय बोले; हे भगवन् ! पंडितोंको किस प्रकार भारतकी कथा सुननी चाहिये इसका
प्रत्यागमनं नामैकत्रिंशदधिकशततमोऽध्यायः ॥ १३१ ॥ हे भगवन् ! पर्वकी समाप्तिमें क्या देना चाहिये ॥ २ ॥ और कैसे
क्या फल है और पारणमें किन किन देवताओंका पूजन करना चाहिये ॥ १ ॥ हे राजन् ! जो आप हमसे पूछते
वाचककी पूजा करनी चाहिये वह आप हमसे कहिये. वैशंपायन बोले; हे राजन् ! भारतश्रवणकी विधि हमसे सुनिये ! और यह कार्य करके फिर स्वर्गमें चले गये ॥ ४ ॥
हो सो मैं कहता हूं ॥ ३ ॥ स्वर्गसे देवताही क्रीडा करनेके निमित्त पृथ्वीमें अवतार ले आये थे,

जो मैं तुमसे कहता हूं सो सावधान होकर सुनो, जैसे देवताओंका पृथ्वीतलमें जन्म हुआ है॥ ५॥ यहां रुद्र, साध्य, विश्वेदेवा, आदित्य, अश्विनीकुमार, लोकपाल, महर्षि॥ ६॥ गुह्यक, गन्धर्व, नाग, विद्याधर, सिद्ध, धर्म, स्वयंभु, मुनि, कात्यायन॥ ७॥ गिरि, सागर, नदी, अप्सराओंके गण, ग्रह, संवत्सर, अयन, ऋतु॥ ८॥ स्थावर, जंगम, सुर असुर, सहित सब जगत् यह सब भारतमें एकही स्थानमें दीखते हैं॥ ९॥ उन वेदमें प्रतिष्ठावाले देवताओंके

हन्त यत्ते प्रवक्ष्यामि तच्छृणुष्व समाहितः॥ ऋषीणां देवतानां च संभवं वसुधातले॥ ५॥ अत्र रुद्रास्तथा साध्या विश्वेदेवाश्च शाश्वताः॥ आदित्याश्चाश्विनौ देवौ लोकपाला महर्षयः॥ ६॥ गुह्यकाश्च सगन्धर्वा नागा विद्याधरास्तथा॥ सिद्धा धर्मः स्वयंभूश्च मुनिः कात्यायनो वरः॥ ७॥ गिरयः सागरा नद्यस्तथैवाप्सरसां गणाः॥ ग्रहाः संवत्सराश्चैव अयनान्यृतवस्तथा॥ ८॥ स्थावरं जङ्गमं चैव जगत्सर्वं सुरासुरम्॥ भारते भरतश्रेष्ठ एकस्थमिह दृश्यते॥ ९॥ तेषां श्रुतिप्रतिष्ठानां नामकर्मानुकीर्तनात्॥ कृत्वापि पातकं घोरं सद्यो मुच्येत मानवः॥ १०॥ इतिहासमिमं श्रुत्वा यथावदनुपूर्वशः॥ संयतात्मा शुचिर्भूत्वा पारं गत्वा च भारते॥ ११॥ तेषां श्रृणु त्वं श्राद्धानि श्रुत्वा भारत भारतम्॥ ब्राह्मणेभ्यो यथाशक्त्या भक्त्या च भरतर्षभ॥ १२॥ महादानानि देयानि रत्नानि विविधानि च॥ गावः कांस्योपदोहाश्च कन्याश्चैव स्वलंकृताः॥ १३॥ सर्वकामगुणोपेता यानानि विविधानि च॥ भाजनानि विचित्राणि भूमिर्वासांसि काञ्चनम्॥ १४॥

नामकर्म कीर्तन करनेसे घोर पाप करनेवालाभी शीघ्र पापसे छूट जाता है॥ १०॥ यथायोग्य इस इतिहासको यथायोग्य श्रवण कर नियममें तत्पर, पवित्र होकर जो भारतको सम्पूर्ण सुनते हैं वे पापरहित होते हैं॥ ११॥ हे राजन्! उन भारतमें मृत हुए भीष्मादिके श्राद्धमें ब्राह्मणोंको यथाशक्ति दान करना चाहिये॥ १२॥ अनेक रत्नोंके महादान देने चाहिये गौ कांसीके पात्र दुहने योग्य बरतन अलंकार की हुई कन्या॥ १३॥ सम्पूर्ण कामना देनेवाले

विविध यान, विचित्र भाजन, भूमि, वस्त्र, कंचन ॥ १४ ॥ वाहन, मतवाले हाथी, सेज, पालकी, अलंकृत रथ ॥ १५ ॥ जो घरमें महामूल्य वस्तु और श्रेष्ठ धन है आत्मा स्त्री पुत्र वह सब वाचकको दान कर सकता है ॥ १६ ॥ जो परमश्रद्धासे दान करते सम्पूर्ण पारायण क्रमसे करते हैं और शक्तिसे अच्छे मनवाले हृष्ट शुश्रूषा करनेवाले कंपरहित ॥ १७ ॥ सत्य और ऋजुतामें रत इन्द्रियजित, पवित्र, शौचपरायण, श्रद्धावाले क्रोधविर्जित हैं उनको जैसे इसकी सिद्धि होती है सो सुनो ॥ १८ ॥ पवित्र शील आचारसे युक्त शुक्लवस्त्र जितेन्द्रिय संस्कृतज्ञ सब शास्त्रके जाननेवाले श्रद्धायुक्त निन्दार-

वाहनानि च देयानि हया मत्ताश्च वारणाः ॥ शयनं शिबिकाश्चैव स्यन्दनाश्च स्वलंकृताः ॥ १५ ॥ यद्यद्गृहे वरं किंचिद्यद्यदस्ति महद्वसु ॥ तत्तद्देयं द्विजातिभ्य आत्मा दाराश्च सूनवः ॥ १६ ॥ श्रद्धया परया दत्तं क्रमशस्तस्य पारगः ॥ शक्तितः सुमना हृष्टः शुश्रूषुरविकम्पनः ॥ १७ ॥ सत्यार्जवरतो यत्तः शुचिः शौचपरायणः ॥ श्रद्दधानो जितक्रोधो यथा सिद्ध्यति तच्छृणु ॥ १८ ॥ शुचिः शीलान्विताचारः शुक्लवासा जितेन्द्रियः ॥ संस्कृतः सर्वशास्त्रज्ञः श्रद्दधानोऽनसूयकः ॥ १९ ॥ रूपवान्सुभगो दान्तः सत्यवादी जितेन्द्रियः ॥ दानमानगृहीता च कार्यो भवति वाचकः ॥ २० ॥ अविलम्बमनायस्तमद्रुतं धीरमूर्जितम् ॥ असंसक्ताक्षरपदं न च भावसमन्वितम् ॥ २१ ॥ त्रिषष्टिवर्णसंयुक्तमष्टस्थानसमीरितम् ॥ वाचयेद्वाचकः स्वस्थः स्वाधीनः सुसमाहितः ॥ २२ ॥ नारायणं नमस्कृत्य नरं चैव नरोत्तमम् ॥ देवीं सरस्वतीं चैव ततो जयमुदीरयेत् ॥ २३ ॥ ईदृशाद्वाचकाद्राजञ्छ्रुत्वा भारत भारतम् ॥ नियमस्थः शुचिः श्रोता शृण्वन् स फलमश्नुते ॥ २४ ॥

हित ॥ १९ ॥ रूपवान् सुन्दर चतुर सत्यवादी जितेंद्रिय दानमानका ग्रहण करनेवाला वाचक होना चाहिये ॥ २० ॥ आलस्यरहित अद्भुत धीर बलसम्पन्न अक्षरपदका स्पष्ट उच्चारण करनेवाला, लोभादिकी अधिकतासे हीन ॥ २१ ॥ त्रेसठ वर्णोंके आठों स्थानसे वर्णोंके उच्चारणका जाननेवाला स्वस्थ स्वाधीन होकर वाचकको भारतका पाठ करना चाहिये ॥ २२ ॥ आरंभमें नारायण नर नरोत्तम और देवी सरस्वतीको नमस्कार कर इस जयनामक ग्रंथका उच्चारण करे ॥ २३ ॥ हे राजन् ! इस प्रकारके वाचकसे भारतका श्रवण कर नियममें स्थित हो पवित्र श्रोता सुनकर सम्पूर्ण फलको

प्राप्त होता है ॥ २४ ॥ पहले पारायणकी समाप्तिमें ब्राह्मणोंकी यथाकाम अर्चना करे तो मनुष्यको अग्निष्टोमका फल मिलता है ॥ २५ ॥ अप्सराओंसे युक्त अच्छे विमानकी प्राप्ति होती है, वह देवताओंसे सेवित हो स्वर्गको जाता है ॥ २६ ॥ दूसरे पारणको प्राप्त होकर अतिरात्र यज्ञका फल पाता है सम्पूर्ण रत्नोंवाले विमानपर चढकर स्वर्गको जाता है ॥ २७ ॥ दिव्यमाला और वस्त्र धारण किये दिव्यगंधसे विभूषित होकर नित्य दिव्यगंधसे युक्त हो देवलोकमें महिमाको प्राप्त होता है ॥ २८ ॥ तीसरे पारणको प्राप्त हो द्वादशाह यज्ञका फल पाता है देवरूप हो दश सहस्र वर्ष स्वर्गमें निवास

पारणं प्रथमं प्राप्य द्विजान्कामैश्च तर्पयेत् ॥ अग्निष्टोमस्य यागस्य फलं वै लभते नरः ॥ २५ ॥ अप्सरोगणसंकीर्णं विमानं लभते महत् ॥ प्रहृष्टः स तु देवैश्च दिवं याति समाहितः॥ २६ ॥ द्वितीयं पारणं प्राप्य अतिरात्रफलं लभेत् ॥ सर्वरत्नमयं दिव्यं विमानमधिरोहति ॥ २७ ॥ दिव्यमाल्याम्बरधरो दिव्यगन्धविभूषितः ॥ दिव्यांगदधरो नित्यं देवलोके महीयते ॥ २८ ॥ तृतीयं पारणं प्राप्य द्वादशाहफलं लभेत् ॥ वसत्यमरसंकाशो वर्षाण्ययुतशो दिवि ॥२९॥ चतुर्थे वाजपेयस्य पञ्चमे द्विगुणं फलम् ॥ उदितादित्यसंकाशं ज्वलन्तमनलोपमम् ॥ ३० ॥ विमानं विबुधैः सार्द्धमारुह्य दिवि गच्छति ॥ वर्षायुताभिर्भवने शक्रस्य दिवि मोदते ॥ ३१ ॥ षष्ठे द्विगुणमस्तीति सप्तमे त्रिगुणं फलम् ॥ कैलासशिखराकारं वैदूर्यमणिवेदिकम् ॥ ३२ ॥ परिक्षिप्तं च बहुधा मणिविद्रुमभूषितम् ॥ विमानं समधिष्ठाय कामगं साप्सरोगणम् ॥ ३३ ॥ सर्वाँल्लोकान्विचरते द्वितीय इव भास्करः ॥ अष्टमे राजसूयस्य पारणे लभते फलम् ॥ ३४ ॥

करता है ॥२९॥ चौथे पारणमें वाजपेय यज्ञका फल और पांचवेंमें इससे दूना होता है तब यह उदय होते हुए सूर्यकी समान प्रकाशमान निर्मल॥ ३० ॥ विमानमें बैठ देवताओंके साथ स्वर्गको जाता है दश सहस्र वर्षतक इन्द्रके समीप आनंद करता है ॥ ३१ ॥ छठेमें इससे दूना और सातवेंमें उससे तिगुना फल होता है जहां कैलासके शिखराकार वेदी बनी हुई हैं ॥ ३२ ॥ अनेक प्रकारसे मणिविद्रुमसे भूषित कामगामी विमानोंके ऊपर बैठ अप्सराओंसे सेवित हो स्वर्गको जाता है ॥ ३३ ॥ और दूसरे सूर्यकी समान प्रकाशमान हो सब लोकोंमें विचरता है ॥ ३४ ॥

और चन्द्रोदयकी समान उज्ज्वल विमानमें स्थित होता है जो चन्द्रमाकी किरणोंकी समान वेगगामी विमान हैं ॥ ३५ ॥ चन्द्रमाकी समान कान्ति- वाली स्त्रियोंसे सेवित, उनके नूपुर और मेखलाओंके शब्द सुनता हुआ ॥ ३६ ॥ सुन्दर स्त्रियोंकी गोदीमें सुखसे सोया हुआ जागता है, नौवें पार- णमें अश्वमेधके फलको प्राप्त होता है ॥ ३७ ॥ सुवर्णके स्तंभ लगे वैदूर्यमणिकी वेदिका तथा सुवर्ण गवाक्षोंसे सब ओर व्याप्त ॥ ३८ ॥ अप्सरा गन्धर्वोंसे सेवित होकर स्वर्गचारियोंके साथमें परम कान्तिवाली लक्ष्मीसे शोभित हो ॥ ३९ ॥ दिव्य माला और वस्त्र धारण किये, दिव्य चंदन लगाये,

चन्द्रोदयनिभं रम्यं विमानमधिरोहति ॥ चन्द्ररश्मिप्रतीकाशैर्हयैर्युक्तं मनोजवैः ॥ ३५ ॥ सेव्यमानो वरस्त्रीणां चन्द्रकान्ततरैर्मुखैः ॥ मेखलानां निनादेन नूपुराणां च निःस्वनैः ॥ ३६ ॥ अङ्के परमनारीणां सुखं सुप्तो विबुध्यते ॥ नवमे क्रतुराजस्य वाजिमेधस्य भारत ॥ ३७ ॥ काञ्चनस्तम्भनिर्व्यूहं वैदूर्यकृतवेदिकम् ॥ जाम्बूनदमयैर्दिव्यैर्गवाक्षैः सर्वतो वृतम् ॥ ३८ ॥ सेवितं चाप्सरःसं- घैर्गन्धर्वैर्दिविचारिभिः ॥ विमानं समधिष्ठाय श्रिया परमया ज्वलन् ॥ ३९ ॥ दिव्यमाल्याम्बरधरो दिव्यचन्दनभूषितः ॥ मोदते दैवतैः सार्द्धं दिवि देव इवापरः ॥ ४० ॥ दशमं पारणं प्राप्य द्विजातीनभिवन्द्य च ॥ किङ्किणीजालनिर्घोषं पताकाध्वजशोभि- तम् ॥ ४१ ॥ रत्नवेदिकसंकाशं वैदूर्यमणितोरणम् ॥ हेमजालपरिक्षिप्तं प्रवालवलभीमुखम् ॥ ४२ ॥ गन्धर्वैर्गीतकुशलैरप्सरोभि- र्निषेवितम् ॥ विमानं सुकृतावासं सुखेनैवोपपद्यते ॥ ४३ ॥ मुकुटेनार्कवर्णेन जाम्बूनदविभूषणः ॥ दिव्यचन्दनदिग्धाङ्गो दिव्यमा- ल्यविभूषितः ॥ ४४ ॥ दिव्याँल्लोकान्प्रचरति दिव्यैर्भोगैः समन्वितः ॥ विबुधानां प्रसादेन श्रिया परमया युतः ॥ ४५ ॥

देवताकी समान स्वर्गमें आनंद पाता है ॥ ४० ॥ दशवें पारणमें ब्राह्मणोंको प्रणाम कर किंकिणीजालके शब्द पताका ध्वजासे शोभित ॥ ४१ ॥ रत्नवेदीकी समान वैदूर्य मणि और तोरणसे व्याप्त हेमजालसे परिक्षिप्त प्रवाल और झालरोंसे व्याप्त ॥ ४२ ॥ गीतमें कुशल गन्धर्व और अप्सरा- ओंसे सेवित ऐसा सुखदायक विमान पुण्यसेही प्राप्त होता है ॥ ४३ ॥ सूर्यकी समान प्रकाशित मुख सुवर्णके भूषण धारण किये दिव्य गंध शरीरमें लगाये, दिव्यमालासे विभूषित ॥ ४४ ॥ दिव्य भोगसे युक्त होकर वह दिव्यलोकमें विचरण करता है. देवताओंके प्रसादसे वह परम लक्ष्मीसे युक्त

होता है ॥ ४५ ॥ बहुत वर्षोंतक स्वर्गलोकोंमें महिमाको प्राप्त होता है तब गंधर्वोंके सहित इक्कीस सहस्र वर्षतक ॥ ४६ ॥ इन्द्रलोकमें आनंद करता है दिव्य यान और अनेक प्रकारके लोकोंमें ॥ ४७ ॥ दिव्य नारियोंके समूहसे व्याप्त अमरकी समान शोभित होता है तब सूर्य और चन्द्र लोकमें ॥ ४८ ॥ तथा शिवके लोकमें होता हुआ विष्णुकी सालोक्यताको प्राप्त होता है हे महाराज ! इसमें कुछभी सन्देह नहीं है ॥ ४९ ॥ परंतु हमारे गुरुने कहा है कि श्रद्धा करकेही यह सब कार्य सिद्ध होते हैं जो जो मनमें इच्छा हो सो वाचकको देना चाहिये ॥ ५० ॥ हाथी घोडे

अथ वर्षगणानेवं स्वर्गलोके महीयते॥ ततो गन्धर्वसहितः सहस्राण्येकविंशतिः॥४६॥ पुरंदरपुरे रम्ये शक्रेण सह मोदते ॥ दिव्ययान-विमानेषु लोकेषु विविधेषु च ॥४७॥ दिव्यनारीगणाकीर्णो निवसत्यमरो यथा ॥ ततः सूर्यस्य भवने चन्द्रस्य भवने तथा ॥४८॥ शिवस्य भवने राजन्विष्णोर्याति सलोकताम् ॥ एवमेतन्महाराज नात्र कार्या विचारणा ॥ ४९ ॥ श्रद्धधानेन वै भाव्यमेवमाह गुरुर्मम ॥ वाचकस्य तु दातव्यं मनसा यद्यदिच्छति ॥ ५० ॥ हस्त्यश्वरथयानादि वाहनं च विशेषतः ॥ कटकं कुण्डले चैव ब्रह्म-सूत्रं तथापरम् ॥ ५१ ॥ वस्त्रं चैव विचित्रं च गन्धं चैव विशेषतः ॥ देववत्पूजयेत्तं तु विष्णुलोकमवाप्नुयात् ॥ ५२ ॥ अतःपरं प्रव-क्ष्यामि यानि देयानि भारते ॥ वाच्यमानेऽथ विप्रेभ्यो राजन्पर्वणि पर्वणि ॥ ५३ ॥ जातिं देशं च सत्यं च माहात्म्यं भरतर्षभ ॥ धर्मवृत्तिं च विज्ञाय क्षत्रियाणां नराधिप ॥ ५४ ॥ स्वस्ति वाच्य द्विजानादौ ततः कार्यं प्रवर्त्तयेत् ॥ समाप्ते पर्वणि ततः स्वशक्त्या तर्पयेद्द्विजान् ॥ ५५ ॥ आदौ तु वाचकं चैव वस्त्रगन्धसमन्वितम् ॥ विधिवद्भोजयेद्राजन्मधुपायससंयुतम् ॥ ५६ ॥

रथ यान और वाहन कटक कुंडल ब्रह्मसूत्र ॥ ५१ ॥ सुन्दर वस्त्र और विविध प्रकारके गन्धद्रव्योंसे कहनेवालेकी देवताकी समान पूजा करनेसे देव-लोककी प्राप्ति होती है ॥ ५२ ॥ अब भारतके सुननेमें जो देना चाहिये सो सुनो. हे राजन् ! वाचनेवालेको पर्वपर्वमें ॥ ५३ ॥ जाति देश सत्य माहात्म्य तथा क्षत्रियोंकी धर्मवृत्तिको जानकर ॥ ५४ ॥ पहले ब्राह्मणोंसे स्वस्तिवाचन कराकर कार्य प्रारंभ करे, पर्वकी समाप्ति में ब्राह्मणोंको यथा-शक्ति तृप्त करे ॥ ५५ ॥ वाचकको वस्त्रगंधादिसे तृप्त कर और विधिपूर्वक मधु पायस खवाकर प्रसन्न करे ॥ ५६ ॥

फिर मूल फल खीर मधु घृतद्वारा आस्तिकोंको भोजन करावे बूरा और ओदन (भात) खवावे ॥ ५७ ॥ पूवे पूए मोदक (लड्डू) खवावे. हे राजन् ! सभापर्वकी पूर्तिमें ब्राह्मणोंको हविष्यान्न भोजन करावे ॥ ५८ ॥ वनपर्वमें मूलफलोंसे ब्राह्मणोंको भोजन करावे अरणी पर्वाध्यायमें जलके घडे प्रदान करे ॥ ५९ ॥ मुख्य २ वनके मूल फलोंसे तृप्त करे और सब कामनासे युक्त ब्राह्मणोंको तृप्त करे ॥ ६० ॥ विराटपर्वमें विविध प्रकारके वस्त्र दे. हे राजन् ! उद्योगपर्वमें सर्वगुणयुक्त ॥६१॥ गंधादिसे अलंकृत किये ब्राह्मणोंको भोजन करावे और भीष्मपर्वमें उत्तम यान दान करे,

ततो मूलफलप्रायं पायसं मधुसर्पिषा ॥ आस्तिके भोजयेद्राजन्दद्याच्चैव गुडोदनम् ॥५७॥ अपूपैश्चैव पूपैश्च मोदकैश्च समन्वितम् ॥ सभापर्वणि राजेन्द्र हविष्यं भोजयेद्द्विजान् ॥ ५८ ॥ आरण्यके मूलफलैस्तर्पयेच्च द्विजोत्तमान् ॥ अरणीपर्व आसाद्य जलकुम्भान् प्रदापयेत् ॥ ५९ ॥ तर्पणानि च मुख्यानि वन्यमूलफलानि च ॥ सर्वकामगुणोपेतं विप्रेभ्योऽन्नं प्रदापयेत् ॥६०॥ विराटपर्वणि तथा वासांसि विविधानि च ॥ उद्योगे भरतश्रेष्ठ सर्वकामगुणान्वितम् ॥६१॥ भोजनं भोजयेद्द्विजान् गन्धमाल्यैरलंकृतान् ॥ भीष्मपर्वणि राजेन्द्र दत्त्वा यानमनुत्तमम् ॥ ततः सर्वगुणोपेतमन्नं दद्यात्सुसंस्कृतम् ॥ ६२ ॥ द्रोणपर्वणि विप्रेभ्यो भोजनं परमार्चितम् ॥ शराश्च देया राजेन्द्र चापान्यसिवरास्तथा ॥ ६३ ॥ कर्णपर्वण्यपि तथा भोजनं सार्वकामिकम् ॥ विप्रेभ्यः संस्कृतं सम्यक् दद्यात्संयतमानसः ॥ ६४ ॥ शल्यपर्वणि राजेन्द्र मोदकैः सगुडोदनैः ॥ अपूपैस्तर्पयेच्चैव सर्वमन्नं प्रदापयेत् ॥ ६५ ॥ गदापर्वण्यपि तथा मुद्गमिश्रं प्रदापयेत् ॥ स्त्रीपर्वणि तथा रत्नैस्तर्पयेत्तु द्विजोत्तमान् ॥ ६६ ॥

और सर्व कामगुणोंसे युक्त संस्कार किया अन्न दे ॥६२॥ द्रोणपर्वमें परम सुन्दर भोजन ब्राह्मणोंको जिमावे, तथा शर चाप और असि (तलवार) का दान करे ॥६३॥ कर्णपर्वमें सब कामना देनेवाला भोजन करावे और यह अच्छी तरह बनाय जितेन्द्रियता युक्त ब्राह्मणोंको भोजन करावे ॥ ६४ ॥ शल्यपर्वमें गुड मोदक और ओदन जिमावे, तथा मालपुए और सब प्रकारके अन्नभी दे ॥६५॥ और गदापर्वमें मूंग मिलाकर दे स्त्रीपर्वमें ब्राह्मणोंको ॥२६६॥

रत्नभी दे ॥ ६६ ॥ ऐषीकपर्वमें घृत और ओदन दे और सब प्रकारसे उत्तम अन्न दे ॥ ६७ ॥ शान्तिपर्वमें ब्राह्मणोंको हविष्य भोजन करावे अश्वमेधपर्वमें सब कामना देनेवाला भोजन दे ॥ ६८ ॥ आश्रमवासिकपर्वके अन्तमें ब्राह्मणोंको हविष्यान्न भोजन करावे मूसलपर्वमें सर्वगुण गंधादिका अनुलेपन करे ॥ ६९ ॥ महाप्रस्थानपर्वमें सर्व गुण और कामनासे युक्त भोजन दे, स्वर्गारोहण पर्वमेंभी ब्राह्मणोंको हविष्य अन्न भोजन करावे ॥ ७० ॥ हरिवंश की समाप्तिमें सहस्र ब्राह्मणोंको भोजन करावे, और सुवर्णके निष्क[1]सहित ब्राह्मणोंको एक गौ दान करे ॥ ७१ ॥ हे राजन् ! जो श्रोता दरिद्र हो तौ

घृतौदनं पुरस्ताच्च ऐषिके दापयेत्पुनः ॥ ततः सर्वगुणोपेतमन्नं दद्यात्सुसंस्कृतम् ॥ ६७ ॥ शान्तिपर्वण्यपि गते हविष्यं भोजयेद् द्विजान् ॥ आश्वमेधिकमासाद्य भोजनं सार्वकामिकम् ॥ ६८ ॥ तथाश्रमनिवासे तु हविष्यं भोजयेद्द्विजान् ॥ मौसले सार्वगुणिकं गन्धमाल्यानुलेपनम् ॥ ६९ ॥ महाप्रस्थानिके तद्वत्सर्वकामगुणान्वितम् ॥ स्वर्गपर्वण्यपि तथा हविष्यं भोजयेद्द्विजान् ॥ ७० ॥ हरिवंशसमाप्तौ तु सहस्रं भोजयेद्द्विजान् ॥ गामेकां निष्कसंयुक्तां ब्राह्मणाय निवेदयेत् ॥ ७१ ॥ तदर्द्धेनापि दातव्या दरिद्रेणापि पार्थिव ॥ प्रतिपर्व समाप्तौ तु पुस्तकं वै विचक्षणः ॥ ७२ ॥ सुवर्णेन च संयुक्तं वाचकाय निवेदयेत् ॥ हरिवंशे पर्वणि च पायसं तत्र भोजयेत् ॥ ७३ ॥ श्लोकं वा श्लोकपादं वा अक्षरं वा नृपात्मज ॥ शृणुयादेकचित्तस्तु स विष्णुदयितो भवेत् ॥ ७४ ॥ व्यासं चैव सपत्नीकं पूजयेच्च यथाविधि ॥ लक्ष्मीनारायणं देवं पूजितं तच्च पूजयेत् ॥ ७५ ॥ वाचकं पूजयेद्यस्तु भूमिवस्त्रसुधेनुभिः ॥ विष्णुः संपूजितस्तेन स साक्षाद्देवकीसुतः ॥ ७६ ॥

इससे आधा दान करे, और प्रतिपर्वकी समाप्तिमें एक पुस्तक ॥ ७२ ॥ सुवर्णके सहित वाचकको निवेदन करे हरिवंशपर्वमें पायसका भोजन दे ॥ ७३ ॥ हे राजन् ! एक श्लोक श्लोकका आधा चौथाई वा एक अक्षरभी जो एकचित्त होकर सुनता है वही विष्णुके लोकको जाता है ॥ ७४ ॥ व्यासजीको स्त्रीसहित विधिपूर्वक पूजन करे, और लक्ष्मीनारायणका पूजन करे ॥ ७५ ॥ जो भूमि वस्त्र और धेनुसे वाचकका पूजन करता है मानो उसने विष्णुकी

[1] दीनार ।

भली प्रकार पूजा की ॥ ७६ ॥ हे राजन् ! प्रत्येक पारणमें सब संहिताका जाननेवाला ॥ ७७ ॥ सुन्दर देशमें स्थिति कर रेशमी वस्त्रादिके सहित युक्त हो शुक्ल वस्त्र पहरे श्रीमान् पवित्र और अलंकृत हो ॥ ७८ ॥ गंधमालासे पृथक् २ शिष्टसम्मत संहिताकी पुस्तकका पूजन करे ॥ ७९ ॥ भक्षणयोग्य अन्न पीनेके पदार्थ औरभी वस्तु सुवर्ण गौ वस्त्र ब्राह्मणोंको दे ॥ ८० ॥ सर्वत्र तीन पल सुवर्ण देना चाहिये वा उससे आधा वा उससे चौथाई दे परन्तु वित्तकी शठता न करे ॥ ८१ ॥ जो जो अपनेको इष्ट हो वह वह ब्राह्मणोंको देनी चाहिये सब प्रकार अपने गुरु और वाचकको सन्तुष्ट करे सब देवता

पारणे पारणे राजन्यथावद्भरतर्षभ ॥ समाप्य सर्वाः प्रयतः संहिताः शास्त्रकोविदः ॥ ७७ ॥ शुभे देशे निवेश्याथ क्षौमवस्त्राभिसंवृतः ॥ शुक्लाम्बरधरः श्रीमाञ्छुचिर्भूत्वा स्वलंकृतः ॥ ७८ ॥ अर्चयेत्तं यथान्यायं गन्धमाल्यैः पृथक् पृथक् ॥ संहितापुस्तकान् राजन्प्रयतः शिष्टसंमतः ॥ ७९ ॥ भक्ष्यैर्मांसैश्च पेयैश्च कामैश्च विविधैः शुभैः ॥ हिरण्यं गां च वस्त्रं च दक्षिणामथ दापयेत् ॥ ८० ॥ सर्वत्र त्रिपलं स्वर्णं दातव्यं प्रणतात्मना ॥ तदर्द्धं पादशेषं वा वित्तशाठ्यविवर्जितम् ॥ ८१ ॥ यद्यदेवात्मनोऽभीष्टं तत्तद्देयं द्विजातये ॥ सर्वथा तोषयेद्भक्त्या वाचकं गुरुमात्मनः ॥ देवताः कीर्त्तयेत्सर्वा नरनारायणौ तथा ॥ ८२ ॥ ततो गन्धैश्च माल्यैश्च स्वलंकृत्य द्विजोत्तमान् ॥ तर्पयेद्विविधैः कामैर्दानैश्चोच्चावचैस्तथा ॥ ८३ ॥ अतिरात्रस्य यज्ञस्य फलं प्राप्नोति मानवः ॥ प्राप्नुयाच्च क्रतुफलं तथा पर्वणि पर्वणि ॥ ८४ ॥ वाचको भरतश्रेष्ठ व्यक्ताक्षरपदस्वरः ॥ भविष्यं श्रावयेद्विप्रान् भारतं भरतर्षभ ॥ ८५ ॥ भुक्तवत्सु द्विजेन्द्रेषु यथावत्संप्रदापयेत् ॥ वाचकं भरतश्रेष्ठ भोजयित्वा स्वलंकृतम् ॥ ८६ ॥

और नरनारायणका स्मरण करे कीर्तन करे ॥ ८२ ॥ फिर गंधमालासे ब्राह्मणोंको अलंकृत करके अनेक कामनासे छोटे बडे दोनोंको दे ॥ ८३ ॥ तौ मनुष्य अतिरात्र यज्ञके फलको प्राप्त होता है तथा पर्वपर्वमें यज्ञके फलको प्राप्त होता है ॥ ८४ ॥ हे राजन् ! बांचनेवाला स्पष्ट पद अक्षरसे युक्त भविष्यपर्व भारत ब्राह्मणोंको सुनावे ॥ ८५ ॥ जब ब्राह्मण भोजन कर चुके तब दान देकर और वाचकको भोजन कर चुकनेपर अलंकृत करे ॥ ८६ ॥

वाचकके सन्तुष्ट होनेपर विष्णुकी प्रीति होती है ब्राह्मणोंके प्रसन्न होनेपर सब देवता प्रसन्न हो जाते हैं ॥ ८७ ॥ फिर यथायोग्य ब्राह्मणोंका भरण पोषण करना चाहिये, सब कामनायुक्त साधुओंको पूर्ण करे ॥ ८८ ॥ हे राजन् ! यह तुमसे भारत सुननेकी विधि कही जो तुमने मुझसे पूछा यह श्रद्धावान्को करना चाहिये और इसमें विश्वास करना चाहिये ॥ ८९ ॥ हे नृपोत्तम राजन् ! भारतके श्रवण और पारणमें श्रेयकी इच्छा करनेवालेको सदा यत्नवान् होना चाहिये ॥ ९० ॥ नित्य भारत सुने और कहे जिसके घरमें भारत है उसके हाथमें जय है ॥ ९१ ॥ भारतही परम पुण्य है और भारतमें अनेक

वाचके परितुष्टे तु शुभा प्रीतिरनुत्तमा ॥ ब्राह्मणेषु च तुष्टेषु प्रसन्नाः सर्वदेवताः ॥ ८७ ॥ ततो हि भरणं कार्यं द्विजानां भरतर्षभ ॥ सर्वकामैर्यथान्यायं साधुभिश्च यथाक्रमम् ॥ ८८ ॥ इत्येष विधिरुद्दिष्टो मया ते द्विपदां वर ॥ श्रद्दधानेन वै भाव्यं यन्मां त्वं परिपृच्छसि ॥८९॥ भारतश्रवणे राजन्पारणे च नृपोत्तम ॥ सदा यत्नवता भाव्यं श्रेयस्तु परमिच्छता ॥ ९० ॥ भारतं शृणुयान्नित्यं भारतं परिकीर्तयेत् ॥ भारतं भवने यस्य तस्य हस्तगतो जयः ॥९१॥ भारतं परमं पुण्यं भारते विविधाः कथाः ॥ भारतं सेव्यते देवैर्भारतं परिकीर्तयेत् ॥ ९२ ॥ भारतं सर्वशास्त्राणामुत्तमं भरतर्षभ ॥ भारतात्प्राप्यते मोक्षस्तत्त्वमेतद्ब्रवीमि ते ॥ ९३ ॥ महाभारतमाख्यानं क्षितिं गां च सरस्वतीम् ॥ ब्राह्मणं केशवं चापि कीर्तयन्नावसीदति ॥९४॥ वेदे रामायणे पुण्ये भारते भरतर्षभ ॥ आदौ चान्ते च मध्ये च हरिः सर्वत्र गीयते ॥ ९५ ॥ यत्र विष्णुकथा दिव्याः श्रुतयश्च सनातनाः ॥ तच्छ्रोतव्यं मनुष्येण परं पदमिहेच्छता ॥ ९६ ॥ एतत्पवित्रं परममेतद्धर्मनिदर्शनम् ॥ एतत्सर्वगुणोपेतं श्रोतव्यं भूतिमिच्छता ॥ ९७ ॥

कथा हैं भारतको देवता नित्य सेवते हैं इससे नित्य भारतका कीर्तन करे ॥ ९२ ॥ हे राजन् ! यही सब शास्त्रोंमें श्रेष्ठ है, भारतश्रवणसे मुक्ति हो जाती है यह मैं तत्त्वसे कहता हूं ॥ ९३ ॥ महाभारतकी कथा पृथ्वी गौ सरस्वती ब्राह्मण और केशवका स्मरण करनेसे पुरुष दुःख नहीं पाता है ॥ ९४ ॥ वेद रामायण पवित्र भारतमें आदि मध्य और अन्तमें सर्वत्र हरि गाये जाते हैं ॥ ९५ ॥ जहां विष्णुकी दिव्य कथा है वहां सनातनी श्रुति है सो परमपदकी इच्छावाले मनुष्यको सदा सुननी चाहिये ॥ ९६ ॥ यही परम पद और धर्मका निदर्शन है यही सब गुणोंसे युक्त ऐश्वर्यकी

इच्छावालेको सुननी चाहिये ॥ ९७ ॥ इस संसारमें यही वांछित फल देनेका कारण है और सार है इस प्रकार व्यासजीने हरिवंशका माहात्म्य कहा
है ॥ ९८ ॥ सहस्र अश्वमेध और सौ वाजपेय यज्ञसे जो फल होता है वह हरिवंशके पारणसे फल होता है ॥ ९९ ॥ अजर अमर एक आदि अन्तस
शून्य सगुण अगुण आदि स्थूल सूक्ष्मरूप निरुपम अनुमेय योगियोंके ज्ञानमें आने योग्य त्रिभुवनगुरु विष्णु ईशकी मैं शरण होता हूं ॥ १०० ॥ सम्पूर्ण
कष्ट दूर हों सब मंगल दृष्टिगोचर हों सब वांछित अर्थ इसके पारणसे प्राप्त होते हैं ॥ १०१ ॥ इति श्रीम० खि० ह० भ० भा० हरिवंशश्रवणफलकथनं
नाम द्वात्रिंशाधिकशततमोऽध्यायः ॥ १३२ ॥ जन्मेजय बोले; हे ब्रह्मन् ! मैं तत्त्वसे शिवद्वारा त्रिपुरासुरका वध सुनना चाहता हूं, जो
आकाशचारी तीन पुर हैं उनका संक्षेपसे वर्णन करो यद्यपि भारतकी समाप्ति करके अब प्रश्नका संभव युक्त नहीं परन्तु "आत्मा वा अरे श्रोतव्येति"

क्रियतेऽत्रारसंसारे वाञ्छितस्यैव कारणम्॥हरिवंशस्य श्रवणमिति द्वैपायनोऽब्रवीत्॥९८॥अश्वमेधसहस्रेण वाजपेयशतैस्तथा॥ यत्फलं
प्राप्यते पुंभिस्तद्धरेर्वंशपारणात् ॥ ९९॥ अजरममरमेकं ध्येयमाद्यन्तशून्यं सगुणमगुणमाद्यं स्थूलमत्यन्तसूक्ष्मम् ॥ निरुपममनुमेयं
योगिनां ज्ञानगम्यं त्रिभुवनगुरुमीशं त्वां प्रपन्नोऽस्मि विष्णो ॥ १०० ॥ सर्वस्तरतु दुर्गाणि सर्वो भद्राणि पश्यतु ॥ सर्वेषां वाञ्छिता
अर्था भवन्त्वस्य च पारणात् ॥ १०१ ॥ इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे भविष्यपर्वणि श्रवणफलकथनं नाम द्वात्रिंशाधिक-
शततमोऽध्यायः ॥ १३२ ॥ जनमेजय उवाच ॥ त्र्यक्षाद्वधमहं ब्रह्मन् श्रोतुमिच्छामि तत्त्वतः ॥ त्रयाणां पुरसंज्ञानां खेचराणां
समासतः ॥१॥ वैशम्पायन उवाच ॥ शृणु विस्तरतः सर्वं यन्मां पृच्छसि नैधनम् ॥ दैत्यानां बाहुबलिनां सर्वप्राणिविरोधिनाम् ॥२॥

श्रुतिद्वारा फिर दृढता प्रतिपादन करानेके लिये प्रश्न करते हैं (त्र्यक्षात्) श्रवण मनन निदिध्यासनरूप दर्शन साधन इन्द्रियवत् नेत्रवाले, वा विद्वान् श्रव- ॥२६८॥
णादि समुदायवान् तीन नेत्रवालेसे (त्रिपुर) स्थूल सूक्ष्म कारण देहोंका समूलोच्छेद किस प्रकारसे होता है अर्थात् मनन निदिध्यासन फलोपकार्यद्वारा
वेदान्त महावाक्य श्रवणसे कैसे संसारका विच्छेद होता है कारण कि ज्ञानमात्रसे किसी अर्थका उच्छेद देखा नहीं है सो कहो ॥ १ ॥ वैशंपायन बोले;
जो तुम पूछते हो वह विस्तारसे सुनो, वे बडे बली दैत्य सब प्राणियोंके विरोध करनेवाले थे, शमादिक देवता और काम क्रोधादिक असुर यह,

अध्यात्मविद्यामें बृहदारण्यकमें कथन किया है ॥ २ ॥ जैसे परमात्मा शंकरने श्रवणादि साधनवाले तीन शूलोंसे वध किया है सो सुनो यह असुर सब भूतोंके वधकी इच्छा करनेवाले थे ॥ ३ ॥ यह त्रिपुर (जाग्रत स्वप्न सुषुप्ति) के अभिमानी विश्व तैजस प्राज्ञद्वारा भोगयोग्य बहुतसी धातु (मायाका कार्य) और उनके गुणोंसे युक्त हैं अर्थात् आकाशरूप अपने कारणमें मेघसमूहकी समान स्वयं उठे हुए हैं ॥ ४ ॥ प्राकाररूप अन्नमय पिंडके सुवर्णरूप प्रकाशमान मणि सर्व रत्न और तोरणोंसे अर्थात् भोगमोक्षकी उपयोगी इन्द्रियोंसे संयुक्त हैं ॥ ५ ॥ वह आकाशमें परम लक्ष्मीसे प्रकाशमान थे बडे

शंकरेण वधं राजन् शूलैस्त्रिभिरजिह्मगैः ॥ कृतं पुराऽसुरेन्द्राणां सर्वभूतवधैषिणाम् ॥ ३ ॥ त्रिपुरं पुरुषव्याघ्र बृहद्धातुसमीरितम् ॥
विक्रामति नभोमध्ये मेघवृन्दमिवोत्थितम् ॥ ४ ॥ प्राकारेण प्रवृद्धेन काञ्चनेन विराजता ॥ मणिभिश्च प्रकाशद्भिः सर्वरत्नैश्च
तोरणैः ॥ ५ ॥ बभासे नभसो मध्ये श्रिया परमया ज्वलन् ॥ गन्धर्वाणामिवोदग्रं कर्मणा साधितं परम् ॥ ६ ॥ वाजिनः पक्षसंयुक्ता
वहन्ति बलदर्पिताः ॥ पुरं प्रभाकरश्रेष्ठं मनोभिः कामबृंहणैः ॥ ७ ॥ धावन्ति हेषमाणास्ते विक्रमैः प्राणसंभृतैः ॥ आह्वयन्त
इवाकाशं खुरैः श्यामदलप्रभैः ॥ ८ ॥ वायुवेगसमैर्वेगैः कालयन्त इवाम्बरम् ॥ असुराः समदृश्यन्त चक्षुर्भिर्विदितात्मभिः ॥ ९ ॥
ऋषिभिर्ज्वलनप्रख्यैस्तपसा दग्धकिल्बिषैः ॥ गीतवादित्रबहुलं गन्धर्वनगरोपमम् ॥ १० ॥ चित्रायुधसमाकीर्णैः प्रतप्तकनकप्रभैः ॥
भवनैर्बहुभिश्चैव प्रांशुभिः समलंकृतैः ॥ ११ ॥

गन्धर्वोंके कर्मसे साधित अर्थात् यज्ञादिसे गंधर्वपुरकी समान शोभित थे ॥ ६ ॥ उसको परम बलरूप इन्द्रियरूपी घोडे वहन करते हैं और यथेच्छ मनकी वृत्तियोंसे इच्छित स्थानमें पहुँचा देते हैं ॥ ७ ॥ और उत्तर उत्तर वासनाके बढनेसे धावमान होते हुए कामरूपी तृष्णासे पुष्ट हुए वे घोडे मुख्य प्राणों द्वारा चलायमान होते हैं और काले खुरोंसे मानो आकाशको हूयमान करते हैं ॥ ८ ॥ वायुकी समान वेगवालोंसे वे असुर आकाशरूप कारण ब्रह्मको ग्रसते हुए दीखते हैं और चार दर्शन साधन आदि अनुमानसे जाने जाते हैं ॥ ९ ॥ तपसे दग्धपाप हुए ऋषियोंकी समान वह नगर गन्धर्वनगरकी समान शोभित हुआ ॥ १० ॥ चित्रआयुधोंसे युक्त जो कनककी समान प्रकाशित हैं

अर्थात् कामके उद्दीपन करनेवाले कटाक्षादिसे समाकीर्ण और चित्तके प्रवेशवाले स्त्रीरूपी भवनोंसे युक्त है ॥ ११ ॥ साक्षात् स्वर्गकी समान बडे बडे महलोंसे संयुक्त और ग्रहोंके ऊपर मनोरथरूपी दूसरे पुरोंसे संयुक्त हैं ॥ १२ ॥ आकाशमें सूर्यकी समान वह दैत्यनगर शोभित हुआ जो बडी अटारी युक्त तपाये सुवर्णकी समान कान्तिमान् था ॥ १३ ॥ हे राजन् ! तेजोंसे प्रदीप्त होकर वह शोभित हुआ और उसमें दैत्योंके बडे बडे सिंहनाद होते थे ॥ १४ ॥ वह चैत्ररथ वनकी समान महाशोभाको प्राप्त हुआ बडी बडी पताका और अलियोंसे विराजित था ॥ १५ ॥ इस प्रकार अंबरमें त्रिपुर विराजमान हुआ. हे राजन् ! उसमें सूर्यनाभ (चक्षु) चन्द्रनाभ (मन) उसमें अधिपति हैं ॥ १६ ॥ तथा औरभी बलसे दर्पित दानव मोहित होकर

देवेन्द्रभवनाकारैः शुशुभे तन्महाद्युति ॥ प्रासादाग्र्यैः प्रवृद्धैश्च कैलासशिखरप्रभैः ॥ १२ शुशुभे दैत्यनगरं बहुसूर्यमिवाम्बरम् ॥ वराट्टालकसम्पन्नं तप्तकाञ्चनसप्रभम् ॥१३॥ प्रदीप्तमिव तेजोभी रराजाथ महाप्रभो ॥ क्ष्वेडितोत्कृष्टबहुलं सिंहनादविनादितम् ॥१४॥ बभौ वल्गुजनाकीर्णं वनं चैत्ररथं यथा ॥ समुच्छ्रितपताकं तद्दासीभिश्च विराजितम् ॥१५॥ रराज त्रिपुरं राजन्महाविद्युदिवाम्बरे ॥ सूर्यनाभश्च दैत्येन्द्रश्चन्द्रनाभश्च भारत ॥ १६ ॥ तथान्ये च महावीर्या दानवा बलदर्पिताः ॥ ममृदुश्च बभञ्जुश्च मोहिताः परमेष्ठिना ॥१७॥ पन्थानं देवगमनं पितृयानं च भारत ॥ तैरेवमसुराग्र्यैश्च प्रगृहीतशरासनैः ॥१८॥ दानवैर्नरशार्दूल देवयाने महापथे ॥ पितृवह्निबलोपेते हृते भरतसत्तम ॥१९ ॥ ब्रह्माणमभ्यधावन्त सर्वे सुरगणास्तथा ॥ विवर्णवदना दीनाश्छिन्नेव गतिकर्मणि ॥२०॥ अब्रुवंश्च गताः स्थित्वा स्वरेणार्तनिनादिना ॥ हन्यामहे शत्रुगणैर्भोगोच्छेदेन भागद ॥ २१॥ तेषां चैव वधोपायं वदस्व वदतां वर ॥ यं ज्ञात्वा बाहुबलिनो बाधेम समरे परान् ॥ २२ ॥

मर्दित और भजन करने लगे ॥ १७ ॥ अर्थात् देवयान पितृयान मार्गको प्राप्त करानेवाले कर्म और उपासनाको नष्ट करने लगे और उन्होंने बडे बडे धनुष धारण किये ॥ १८ ॥ हे महाराज ! जब उन्होंने अग्नि बलवाले देवयान और पितृबलसे युक्त पितृयानका हरण किया अर्थात् धर्मकर्मसे श्रद्धा नष्ट की ॥ १९ ॥ तब देवता दोनों मार्गके नष्ट होनेसे ब्रह्माके निकट गये और कर्म नष्ट होनेसे विवर्णवदन तथा दीन हो गये ॥ २० ॥ और आर्तस्वरसे दीन होकर कहने लगे पुण्यलोककी प्राप्तिके न होनेसे हम असुरोंसे हत हुए हैं ॥ २१ ॥ हे वदतां वर ! आप उनके वधका उपाय कहिये जिसको

जानकर हम शत्रुओंको बाधा दे सकें ॥ २२ ॥ तब ब्रह्मा उन्हें समझाते हुए बोले; हे देवताओ ! शत्रुओंके नाशका उपाय सुनो ॥ २३ ॥ वे दानव शंकररूपी सुखबोधके विना मृत्युको प्राप्त न होंगे, इस कारण उस अविनाशीकी प्रार्थना करो ॥ २४ ॥ हे भारत ! तब वे सब रुद्रके सहित पृथ्वीमें आकर प्राप्त हुए विन्ध्यपाद मेरु और पृथ्वीतलमें अर्थात् कारण कर्मभूमिमें उग्रतपरूप प्राणोंके साथ शंकरकी शरणमें गये ॥ २५ ॥ वे सब मुनि तप चान्द्रायणादि वानप्रस्थ धर्मयोग निष्काम कर्मानुष्ठान गृहस्थधर्म जप वेदाभ्यास ब्रह्मचारी धर्म ब्रह्मसंहिता ओंकार जपते हरको प्राप्त हुए ॥ २६ ॥ जिन महात्माओंकी तपयोगके ऐश्वर्यकी प्रार्थना करनेवाली परस्त्रियोंकी तथा कामादिकी विफलता होती हुई इस कारण वे तृष्णादिक परम दुर्बल हो गये,

सान्त्वयित्वा तु वरदो ब्रह्मा प्रोवाच देवताः ॥ शृणुध्वं देवताः सर्वाः शत्रुप्रतिकृतिं पराम् ॥ २३ ॥ अवध्या दानवाः सर्वे ऋते शंकरमव्ययम् ॥ प्रतिगृह्य च तद्वाक्यं मनोभिर्वाग्भिरेव च ॥ २४ ॥ भूमौ प्रपेदिरे सर्वे सह रुद्रैश्च भारत ॥ विन्ध्यपादे च मेरौ च मध्ये च पृथिवीतले ॥ २५ ॥ तपसोग्रेण योगज्ञाः सर्वे ते मुनयोऽभवन् ॥ काश्यपेयं हरं प्राप्ता जपन्तो ब्रह्मसंहिताम् ॥ २६ ॥ एषां च परदाराणामभवद्वन्ध्यता जने ॥ विन्यस्तदर्भनिचये ताम्रलोहं च भूषणम् ॥ २७ ॥ परिधानानि चर्माणि मृदूनि च शुभानि च ॥ स्वयंमृतानां कृष्णानां मृगाणां कुरुसत्तम ॥ २८ ॥ गृहीतानि विमुक्तानि देहेभ्यो वनचारिणाम् ॥ अन्तरिक्षमथोपेत्य विविशुर्मायया वृताः ॥ २९ ॥ हराळयं सुराः सर्वे व्याघ्रचर्मनिवासिनः ॥ प्रणिपत्याथ ते दीना भगवन्तं जगत्पतिम् ॥ ३० ॥

कुशसमूहको बिछाये लोहरूपी भूषणवाले ॥ २७ ॥ मृदु और शुभ मृगचर्म धारण किये हे कुरुसत्तम ! वे मृगचर्म स्वयं मृतक हुए मृगोंके थे ॥ २८ ॥ वे वनचारी मृगोंके थे इनसे वे कामादिक अत्यन्त दरिद्री हो अन्तरिक्षरूपी हृदयाकाशमें सूक्ष्म वासनारूपसे विलीन हुए ॥ २९ ॥ वे व्याघ्रचर्म धारण करनेवाले देवता हरके स्थानको गये और दीन होकर जगत्पतिको प्रणाम किया अर्थात् संसारके दुःख हरनेवाले निर्गुण ब्रह्मके उपलब्धि स्थान हृदयाकाश सगुण ब्रह्ममें उनकी उपासना करनेको चले, वे शान्ति आदि देवता विषयोंको भोगनेवाले व्याघ्रको मार उसका चर्म धारण किये थे ॥ ३० ॥

और अच्छे वचनोंसे नारायणके प्रति वचन कहने लगे जैसे भस्मसे ढकी अग्निमें हवि निष्फल है ऐसे हमारे मलिन चित्त है ॥ ३१ ॥ हे भगवन् ! आपसे विमुख होनेमें हमको आत्मज्ञानका वरदान वृथाही है यथाकाल यथादेशमें ब्रह्माका वचन कीजिये हमको तत्त्वज्ञान दीजिये ॥ ३२ ॥ जो कुछ देवदेवने खेचर (हृदय आकाश) में उपासकोंके समीप कहा है (कि मैं तुमको सब पापोंसे छुडा दूंगा सोच मत करो) उस मोक्षरूप अर्थके वैभवसे ॥ ३३ ॥ प्रगट हुए और महादेव इन्द्रादि देवताओंके सहित आदित्यमार्गमें स्थित हो प्रगट हुए ॥ ३४ ॥ यह सब सुवर्णकी समान दीप्तिमान् हुए और रुद्रके साथ वह तेजसे अधिक जलाने लगे अर्थात् उपासक अधिक शोभित हुए ॥ ३५ ॥ और वे सब

सुव्यक्तेनाभिधानेन प्रभाषन्त हरं ततः ॥ हविर्दत्तमविज्ञानाद्भस्मच्छन्नेषु वह्निषु ॥ ३१ ॥ वरदानं वृथास्मासु भगवन्विमुखे त्वयि ॥
यथादेशं यथाकालं क्रियतां ब्रह्मणो वचः ॥ ३२ ॥ यदुक्तं देवदेवेन खेचराणां समीपतः ॥ एवं देववचोभिश्च भाविनोऽर्थस्य
वैभवात् ॥ ६३ ॥ समनह्यन्महादेवो देवैः सह सवासवैः ॥ आदित्यपथमास्थाय सन्नद्धाः समलंकृताः ॥ ३४ ॥ सर्वे काञ्चनवर्णाभा
बभुर्दीप्ता इवाग्नयः ॥ रुद्रेण सहिता रुद्रा दहन्त इव तेजसा ॥ ३५ ॥ सन्नद्धाः कुशलाः सर्वे प्रांशवः पर्वता इव ॥ विश्वे विश्वेन वपुषा
बलिनः कामरूपिणः ॥ ३६ ॥ समनह्यन्महात्मानो दानवान्तं विधित्सवः ॥ एभिः सह धनाध्यक्षैः समन्तात्परिवारितः ॥ ३७ ॥
त्रिपुरं योधयञ्त्र्यक्षः प्रगृह्य सशरं धनुः ॥ अथ दैत्या भिन्नदेहाः पुराट्टालं गता इव॥ ३८॥ न्यपतन्त विदेहास्ते विशीर्णा इव पर्वताः ॥
अतिविद्धाः सुविद्धाश्च रणमध्यगता नृप॥ ३९॥न्यपतन्दैत्यसंघाता वज्रेणेव हता नगाः॥ असिभिश्च हता देवैः शक्तिचक्रपरश्वधैः ॥४०॥

चतुर पर्वतोंकी समान प्रकाशित और सन्नद्ध हुए और तपोयोगबलसे सब (कामरूप) सर्वात्मिक हो गये ॥ ३६ ॥ इस प्रकार वे महात्मा दानवोंके वधकी इच्छा करके इन धनाध्यक्ष (श्रद्धावित्त मुख्य अध्यक्षों) शमादिसे परिवारित हुए ॥ ३७ ॥ तब विद्वान् त्र्यक्ष त्रिपुरसे युद्ध करनेकी इच्छा करते हुए अर्थात् कोश भंग करनेको उद्यत हुए और प्रणवरूपी धनुष और आत्मारूपी बाण लिया, तब योगारंभ करनेके उपरान्त कामादि दैत्य भिन्न देहवाले हो गये और वे स्थूलरूप रणमें अधिकतर भिन्न हो गये ॥ ३८ ॥ ३९ ॥ और वज्रसे हत हुए पर्वतकी समान वे पृथ्वीमें गिरे देवताओंने असि

और शक्तिसे तथा फरसोंसे दैत्योंको मारा ॥ ४० ॥ वे दैत्य युद्धमें बाणोंसे भिन्नदेह हो गये और छिन्न हुए पंखवाले पर्वतोंकी समान पृथ्वीमें गिरे ॥ ४१ ॥ और योगियों द्वारा बलसे निरुद्धमान हुए दैत्य दुष्ट वचन कहते प्रदीप्त हुए फिर कषायद्वारा जडीभूत हो लयको प्राप्त होते हैं, और क्षपकर्मसे क्षय हुए परस्पर बाधा देते हैं ॥ ४२ ॥ वे दिव्यचक्षु होकरभी चक्षुसे उनको न देख सके सूर्यके बोधवाले निशामुखमेंभी अविद्यारूपमें स्थित होनेसे छिन्न भिन्न हो देवता (शमदमादि) पृथ्वीमें गिरे ॥ ४३ ॥ तब दैत्य जयको प्राप्त हो रात्रिमें तीक्ष्ण बाणोंसे देवताओंको मारते मेघकी समान गंभीर शब्द करते हुए ॥ ४४ ॥ और जयको प्राप्त हो परस्पर जल्पना करने लगे और संग्राममें जय पानेवाले सब देवताओंको व्याकुल कर दिया ॥ ४५ ॥

बाणैश्च भिन्नमर्माणो दैत्येन्द्रा युद्धगोचरे ॥ प्रपेतुः सहिता उर्व्यां छिन्नपक्षा इवाचलाः ॥ ४१ ॥ तत्र संज्ञां विमुञ्चन्ति दीव्यमानेन तेजसा ॥ एवं तेऽन्योन्यसंबाधे क्षीयन्ते क्षयकर्मणा ॥ ४२ ॥ नोपालभ्यन्त चक्षुर्भ्यामपि दिव्येन चक्षुषा ॥ अस्तं प्राप्ते दिनकरे सुरेन्द्रास्ते निशामुखे ॥ छिन्नभिन्नक्षतमुखा निपेतुर्वसुधातले ॥ ४३ ॥ अथ दैत्या जयं प्राप्ता निशायां निशितैः शरैः ॥ विनेदुर्विपुलैर्नादैर्मेघा इव महारवाः ॥ ४४ ॥ जयप्राप्त्यासुराश्चैव तेऽन्योन्यमभिजल्पिरे ॥ त्रासितास्त्रिदशाः सर्वे संग्रामजयकाङ्क्षिणः ॥ ४५ ॥ अस्माभिर्बलसंपन्नैः सह प्रासासितोमरैः ॥ विरेजुश्च जयं प्राप्ता उशनोहव्यबोधिताः ॥४६॥ समरे बलसंपन्नाः सायुधा दैत्यसत्तमाः ॥ सुरैश्च सहिताः सर्वे रथमास्थाय शंकरः ॥ ४७ ॥ दर्पितान्निनदन्दैत्यान् प्रदहन्निव तेजसा ॥ युगान्तकाले वितते रश्मिवानिव निर्दहन् ॥४८॥ सर्वभूतानि भूताग्र्यः प्रलये समुपस्थिते ॥ स रथो वाजिभिः शीघ्रैरुह्यमानो मनोजवैः ॥ ४९ ॥

और उशनाकी हविसे बोधित हुए प्रास असि तोमर लिये बलसम्पन्न जयको प्राप्त हो शोभित हुए उस भृगुका रूप बृहस्पतिजीने देवताओंके जय और दैत्योंके क्षयके निमित्त धारण किया है यह मैत्रायणी श्रुति है ॥ ४६ ॥ वे दैत्य आयुध लिये समरमें बलसम्पन्न हो गये तब स्थूलको छोड शंकर देवताओंके सहित रथमें स्थित हुए अर्थात् सूक्ष्मदेहमें प्रवेश होनेसे पहले लय विक्षेप विघ्न होते हैं ॥ तब अस्मितारूपमें प्राप्त होनेपर उनका बाध होता है, तब योगिरूप शंकर देवताओंके साथ रथमें चढकर ॥ ४७ ॥ अपने तेजसे शब्द करते हुए दैत्योंको जलाने लगे, जैसे युगान्तकालमें सूर्य जलता है ऐसे कामादिकको जलाने लगे ॥ ४८ ॥ जब सब भूतोंकी प्रलय उपस्थित होने लगी, तब वह रथ वासनामय सूक्ष्म इन्द्रियोंसे चालित

होता हुआ ॥ ४९ ॥ आकाशमें बिजलीयुक्त मेघकी समान शोभित हुआ वह योगसे उत्तम वृषभरूपी धर्मसे जो ध्वजाग्रकी समान ऊंचा था गर्जने लगे ॥ ५० ॥ हे राजन् वह रथ आकाशमें इन्द्रधनुषकी समान शोभित हुआ तब आकाशमें स्थित हुए सिद्ध शिवजीकी प्रार्थना करने लगे, अर्थात् स्तुतिरूप विघ्न प्राप्त हुआ ॥ ५१ ॥ तब वह अपने पूर्वजन्मके कर्मोंसे शिवजीको प्रार्थना करने लगे अर्थात् सत्यव्रतपरायण शान्त ऋषि ॥ ५२ ॥ और अमृतके प्राप्त होनेवाले सम्पूर्ण देवता गन्धर्व अप्सरा यह सब गन्धर्व स्वरसे ॥ ५३ ॥ प्रहृष्टमुख हो सौम्यरूप पित्रके स्थानान्तरमें समूहोंवाली अटारी जिनमें सैकडों शतघ्नी विद्यमान हैं ॥ ५४ ॥ ऐसे भयावने दैत्यके नगरमें दैत्य दानव बाणोंकी वर्षा करने लगे अर्थात् सूक्ष्म देहमें युद्ध

विबभो नभसो मध्ये सविद्युदिव तोयदः ॥ वृषभेण ध्वजाग्रेण गर्जमानेन भारत ॥ ५० ॥ भाति स्म स रथो राजन् सेन्द्रायुध इवाम्बुदः॥ ततोऽम्बरगताः सिद्धास्तुष्टुवुर्वृषभध्वजम् ॥५१॥ कर्मभिः पूर्वजं पूर्वैः शुचिभिस्त्र्यम्बकं तदा ॥ ऋषयश्च तपःशान्ताः सत्यव्रतपरायणाः ॥ ५२ ॥ अमृतप्राशिनश्चैव सुरसंघास्तथैव च ॥ गन्धर्वाप्सरसश्चैव गन्धर्वेण स्वरेण वै ॥ ५३ ॥ प्रहृष्टवदनाः सौम्याः पैत्र्ये स्थानान्तरे नृप ॥ चयाट्टालकसंपन्ने शतघ्नीशतसंकुले ॥ ५४ ॥ तस्मिंस्तु दैत्यनगरे सर्वभूतभयावहे ॥ ततस्तु शरवर्षाणि मुमुचुर्दैत्यदानवाः ॥ ५५ ॥ सुराणामरयो मध्ये तीक्ष्णाग्राणि समन्ततः ॥ शतघ्नीभिश्च निघ्नन्तो भल्लैः शूलैश्च भारत ॥ ५६ ॥ ते चक्रिरे महत्कर्म दानवा युद्धकोविदाः ॥ गदाभिश्च गदां जघ्नुर्भल्लैर्भल्लांश्च चिच्छिदुः ॥ ५७ ॥ अस्त्रैरस्त्राण्यबाधन्त मायां मायाभिरेव च ॥ ततोऽपरे समुद्यम्य शरशक्तिपरश्वधान् ॥ ५८ ॥ अशनींश्च महाघोरान्मुक्तान् शतसहस्रशः ॥ असिभिर्मायाविहितैर्मृत्योर्विषयगोचरे ॥ ५९ ॥

हुआ ॥ ५५ ॥ तब दैत्य देवताओंपर बाण वर्षा करने लगे शतघ्नी भाले और शूलसे मारने लगे ॥ ५६ ॥ युद्धमें चतुर दानवोंने उस समय महत्कर्म किया गदासे गदा भालेसे भाले मारकर छेदन करने लगे ॥ ५७ ॥ अस्त्रसे अस्त्र और मायासे मायाका बाध होने लगा तब दूसरे शर शक्ति और फरसोंको लेकर ॥ ५८ ॥ सैकडों महाघोर अशनी वज्रोंको छोडने लगे और मायाकी तलवार जो अज्ञानरूपी मृत्युके निकट है छोडने लगे ॥ ५९ ॥

तब देवता उनसे वध्यमान होकर बाणोंकी वर्षा करते स्थित हुए तब गन्धर्वनगरी समान हरका रथ फिर सोशित होने लगा ॥ ६० ॥ प्रास असि तोमरोंसे देवताओंद्वारा ताडित हो और बडे भारवाले देवताओंके प्रहारसे युक्त अनेक विचित्र अस्त्रोंको धारण किये इन्द्र स्थित हुआ (इन्द्रसे योगी जानना) ॥ ६१ ॥ हे राजन् ! तब स्वर्गके स्थानमें बडा भारी शब्द होने लगा ऋषियोंका और ब्रह्मपुत्रोंका बडा शब्द हुआ ॥ ६२ ॥ और शंकरके आगे यह रथ भूमिमें प्रतिष्ठित हुआ और सब लोकोंके देखते अजेय होकरभी पराजयको प्राप्त हुआ ॥ ६३ ॥ हे राजन् ! उस रथश्रेष्ठके

ते वध्यमान विबुधाः शरवर्षैरवस्थिताः ॥ गन्धर्वनगराकारः सोऽसीदृत्सहरो रथः ॥ ६० ॥ हन्यमानोऽसुरगणैः प्रासासिशरतोमरैः ॥
तेश्च दैत्यप्रहरणैर्गुरुभिर्भारसाहिभिः ॥ चित्रैश्च बहुभिः शस्त्रैरतिष्ठत शचीपतिः ॥६१॥ ततो मध्ये दिव्यशब्दः प्रादुरासीन्महीपते ॥
ऋषीणां ब्रह्मपुत्राणां महतामपि भारत ॥ ६२ ॥ स एष शंकरस्याग्रे रथो भूमिं प्रतिष्ठितः ॥ अजेयो जयतां प्राप्तः सर्वलोकस्य
पश्यतः ॥६३॥ तस्मिन्निपतिते राजन् रथानां प्रवरे रथे ॥ निपेतुः सर्वभूतानि भूतले वसुधाधिप ॥ ६४ ॥ विचेलुः पर्वताग्राणि
चेलुश्चैव महाद्रुमाः ॥ विचुक्षुभुः समुद्राश्च न रेजुश्च दिशो दश ॥६५॥ वृद्धाश्च ब्राह्मणास्तत्र जेपुश्च परमं जपम् ॥ यत्तद्ब्रह्ममयं तेजः
सर्वत्र विजयैषिणाम् ॥ ६६॥ शान्त्यर्थं सर्वभूतानामिह लोके परत्र च ॥ समाधायात्मनात्मानं योगप्राप्तेन हेतुना ॥६७॥ रथन्तरेण
साम्नाथ ब्रह्मभूतेन भारत ॥ तेजसा ज्वलयन्विष्णो त्र्यक्षस्य च महात्मनः ॥ ६८ ॥ सर्वेषां चैव देवानां बलिनां कामरूपिणाम् ॥
ऋषीणां तपसाढ्यानां वसतां विजने वने ॥ ६९ ॥

पतित होनेमें सब प्राणी पृथ्वीमें गिर पडे ॥ ६४ ॥ पर्वतके शृंग चलायमान हो गये महावृक्ष चलायमान हो गये सब समुद्र क्षुभित हुए और दिशा शोभित न हुई ॥ ६५ ॥ तब वृद्ध ब्राह्मण परम जप करने लगे और जीतनेवालोंका जो ब्रह्मतेज है ॥ ६६ ॥ उसकी शान्तिके अर्थ सब भूत इस लोक और परलोकमें आत्माको आत्मासे समाधान कर अर्थात् जीवन्मुक्ति और विदेहमुक्तिके निमित्त योगप्राप्तिके हेतुसे ॥ ६७ ॥ रथंतर साम (प्रणवाख्य प्रतीक तथा शब्द ब्रह्मरूप साम) करके विष्णुके तेजसे प्रज्वलित महात्मा त्र्यक्षका ॥ ६८ ॥ सब बली तथा कामरूपी देवताओंका तथा

निर्जन वनमें निवास करनेवाले बडे बली तपस्वियोंको ॥ ६९ ॥ महायोगी विष्णुजी सब ओरसे तत्त्वसे देख वृषरूपमें स्थित हो रथको उद्धार करने लगे ॥ ७० ॥ सम्पूर्ण बल और पुरुषार्थवाले देवताओंको देखकर हेतुरूप सींगोंपर उठाकर देवयान और पितृयानमार्गकी प्राप्तिके निमित्त हवपरूप अन्धकारसे उद्धार कर प्राणरूप योगबलसे गर्जने लगे ॥ ७१ ॥ इस प्रकार लिंगशरीररूप भूमिको जीतकर योगभूमिकी प्राप्ति कहते हैं वह शृंगवान् तीसरे वायु विषय शुद्धत्व पदार्थको प्राप्त होकर पर्वमें समुद्रकी समान नाद करने लगा ॥ ७२ ॥ उस नादसे युद्धदुर्मद दैत्य वित्रस्त हो गये और फिर युद्ध करनेको तत्पर हुए अर्थात् लय विक्षेप विघ्न वहांभी आनकर प्राप्त हुए पहले लीन सुषुप्तिमें कहे जाते हैं दूसरा लीन विदेह कहा जाता है कारण

अथ विष्णुर्महायोगी सर्वतोऽदृश्य तत्त्वतः॥ वृषरूपं समास्थाय प्रोज्जहार रथोत्तमम् ॥७०॥ समाक्रान्तं देवगणैः समग्रबलपौरुषैः॥ बलवांस्तोलयित्वा तु विषाणाभ्यां महाबलः ॥ ननाद प्राणयोगेन मथ्यमान इवार्णवः ॥ ७१ ॥ तृतीयं वायुविषयं समाक्रम्य विषाणवान् ॥ ननाद बलवान्नादं समुद्र इव पर्वणि ॥ ७२ ॥ ततो नादेन वित्रस्ता दैतेया युद्धदुर्मदाः ॥ पुनस्ते कृतसन्नाहा युयुधः सुमहाबलाः ॥ ७३ ॥ सर्वे वै बाहुबलिनः समर्थबलपौरुषाः ॥ सुरसैन्यं प्रमर्दन्तः प्रगृहीतशरासनाः ॥७४॥ अग्निं संधाय धनुषि शितं बाणं सुपत्रिणम् ॥ ब्रह्मास्त्रेणाभिसंयोज्य ब्रह्मदण्डं शिवोऽव्ययः ॥ मुमोच दैत्यनगरं त्रिधामात्रानुसंज्ञितम् ॥ ७५ ॥

कि उसमें स्थूल शरीर त्याग होता है तीसरा लय प्रकृतिलीन कहाता है ॥ ७३ ॥ वे सब बडे बाहुबली समर्थ बल और पुरुषार्थवान् थे, और शरासन ग्रहण कर देवताओंकी सेनाको मर्दन करने लगे ॥ ७४ ॥ धनुषमें अग्नि चढाकर बडा तीक्ष्ण बाण लेकर ब्रह्मास्त्रसे उसको संयुक्त कर अविनाशी शिवने तीन प्रकार मात्रावाला बाण प्रहार किया, अर्थात् अग्निदेवतात्मक तत्त्वमस्यादि महावाक्यको ओंकाररूप धनुषपर चढाय "ओमि-त्येतदक्षरमिदं सर्वं" सूक्ष्मबुद्धिसे तीक्ष्णकर भ्रमरहित वाक्यके तात्पर्यको जान, सूक्ष्मचित्तवृत्तिरूप ब्रह्मविद्या ब्रह्मास्त्रसे चिदाभास संज्ञक जीवको संयुक्त कर मूल अज्ञानरूप तीसरे दैत्य नगरपर उसको छोडा, मूल अज्ञान नष्ट होनेसे चौथा अविनाशी अवशिष्ट रहता है वह ब्रह्मदण्ड तीन मात्रा अकार

उकार मकार रूप विश्व तैजस प्राज्ञ संज्ञावाली थी ॥ ७५ ॥ सूक्ष्मधारात्मक स्थूलदशामें जाग्रत् आदि भेदसे तीन प्रकार है ऐसा मनमें विचार कर शास्त्र-युक्ति वीर्य ध्यानबल उग्रतप (मनइन्द्रियोंकी एकाग्रता) जीव ब्रह्मकी अभेदताका बाण छोडा ॥ ७६ ॥ वह सर्व प्राण हरनेवाला बाण दैत्योंके नगरपर छोडा जो दीप्तिमान् सुवर्णके वर्णकी समान थे और बडे निर्मल थे यह काव्यशोभा है ॥ ७७ ॥ विषैले सर्पोंकी समान उन बाणोंको छोडकर जो बडे दीप्तिमान् तीन थे और वेगवान् थे उन्होंने त्रिपुर विदीर्ण कर दिया ॥ ७८ ॥ शराघातसे वह पुर विन्ध्याचलके शृंगकी समान प्रदीप्त हुआ उस पुरके सहित गोपुरादि स्थान विदीर्ण होने लगे ॥ ७९ ॥ अग्निगर्भवाले पदार्थ अग्निसे प्रदीप्त हो गये और वह पुर पृथ्वीपर गिरे, जैसे यज्ञ वेदी पूजा इस न्यायसे बुद्धिमय पुर

तं बाणं त्रिविधं वीर्यात्संधाय मनसा प्रभुः ॥ सत्येन ब्रह्मयोगेन तपसोग्रेण भारत ॥ ७६ ॥ मुमोच दैत्यनगरे सर्वप्राणहराञ्छरान् ॥
दीप्तान्कनकवर्णाभान्सुवर्णांश्च सुनिर्मलान् ॥ ७७ ॥ मुक्त्वा वरशरान्घोरान्सविषानिव पन्नगान् ॥ सुदीप्तैस्त्रिभिर्बाणैर्वेगिभिस्तद्विदा-रितम् ॥ ७८ ॥ शरघातप्रदीप्तानि विन्ध्याग्राणीव भारत ॥ गोपुराणि पुरैः सार्द्धं व्यशीर्यन्त नराधिप ॥ ७९ ॥ अग्निना संप्रदीप्तानि वह्निगर्भाणि भारत ॥ धरण्यां संप्रपद्यन्त पुराणि वसुधाधिप ॥ ८० ॥ तानि वैदूर्यवर्णानि शिखराणि गिरेरिव ॥ शंकरेण प्रदग्धानि ब्रह्मास्त्रेणापतन् नृप ॥ ८१ ॥ हते च त्रिपुरे देवैर्वाचो हर्षात्किलेरिताः ॥ सर्वान् जहीति शत्रूंस्त्वं प्रवृद्धान्पुरुषोत्तम ॥ ८२ ॥ विष्णुरेव महायोगी योगेन प्रस्मयन्निव ॥ स्तूयते ब्रह्मवद्देवैर्ऋषिभिः शंकरेण च ॥ ब्रह्मणा सहितैर्देवैः संपन्नबलपौरुषैः ॥ ८३ ॥
इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे भविष्यपर्वणि त्रिपुरवधो नाम त्रयस्त्रिंशाधिकशततमोऽध्यायः ॥ १३३ ॥

रज्जुसर्पकी समान नष्ट हो गये ॥ ८० ॥ वे वैदूर्यमणिके वर्णवाले पर्वतशिखरकी समान शंकररूप कल्याणकारी जीवने ब्रह्मविद्यारूपी अस्त्रसे नष्ट कर दिये ॥ ८१ ॥ त्रिपुरके नष्ट होनेमें देवता जयध्वनि करने लगे. हे पुरुषोत्तम ! धर्मरूप महाविष्णु आप सब शत्रुओंको जीतो ॥ ८२ ॥ विष्णुरूप धर्म महायोगी योगसे (बुद्धिद्वारा) अनुष्ठानको प्राप्त होकर आश्चर्यकी समान स्तुति किया जाता है और ब्रह्माकी समान ऋषि और सम्पन्न बलपौरुषवाले देवताओंके सहित ब्रह्माद्वारा स्तुतिको प्राप्त होता है तात्पर्य यह है कि इस अध्यायमें सम्पूर्ण भारतका यह आशय प्रगट किया है कि धर्मबलसे अविद्या नष्ट होकर विद्यासे परमानन्दकी प्राप्ति होती है ॥ ८३ ॥ इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे भविष्यपर्वणि भाषायां त्रिपुरवधो नाम त्रयस्त्रिंशाधिकशततमोऽध्यायः ॥ १३३ ॥

वैशंपायन बोले; अब क्रमसे हरिवंशकी कथाकी सूची कहते हैं, पहले आदिसर्ग फिर भूत सर्ग॥ १ ॥ वैन्यपुत्र पृथुका आख्यान, मनुका कीर्तन, वैवस्वत-कुलकी उत्पत्ति, धुंधुमारकी कथा॥ २ ॥ गालवकी उत्पत्ति, इक्ष्वाकुवंशका कीर्तन, पितृकल्पकी, उत्पत्ति, चन्द्रमा बुधकी उत्पत्ति॥ ३ ॥ कीर्तिवर्द्धन अमावसुका वंशकथन, इन्द्रकी च्युति और प्रतिष्ठा, क्षत्रवृद्धोत्पत्ति ॥ ४ ॥ दिवोदासकी प्रतिष्ठा, क्षत्रियश्रेष्ठ त्रिशंकुका चरित्र, ययातिचरित्र, पुरुवंशका कीर्तन ॥ ५ ॥ कृष्णका चरित्र, स्यमंतकमणिका वर्णन, संक्षेपसे विष्णुका प्रादुर्भाव ॥ ६ ॥ तारकामय युद्ध, ब्रह्मलोकका वर्णन, ब्रह्माके वचनसे विष्णुका योगनिद्रासे

वैशम्पायन उवाच ॥ हरिवंशेऽत्र वृत्तान्ताः प्रकीर्त्यन्ते क्रमोदिताः ॥ तत्राद्यमादिसर्गस्तु भूतसर्गस्ततः परः ॥ १ ॥ पृथोर्वैन्यस्य चाख्यानं मनूनां कीर्त्तनं तथा ॥ वैवस्वतकुलोत्पत्तिर्धुन्धुमारकथा तथा ॥ २ ॥ गालवोत्पत्तिरिक्ष्वाकुवंशस्याप्यनुकीर्तनम् ॥ पितृकल्पस्तथोत्पत्तिः सोमस्य च बुधस्य च ॥ ३ ॥ अमावसोरन्वयस्य कीर्त्तनं कीर्तिवर्द्धनम् ॥ च्युतिप्रतिष्ठे शक्रस्य प्रसवः क्षत्रवृद्धजः ॥ ४ ॥ दिवोदासप्रतिष्ठा च त्रिशङ्कोः क्षत्रियस्य च ॥ ययातिचरितं चैव पुरुवंशस्य कीर्त्तनम् ॥ ५ ॥ कीर्त्तनं कृष्णसंभूतेः स्यमन्तकमणेस्तथा ॥ संक्षेपात्कीर्तिता विष्णोः प्रादुर्भावास्ततः परम् ॥ ६ ॥ तारकामययुद्धं च ब्रह्मलोकस्य वर्णनम् ॥ योगनिद्रासमुत्थानं विष्णोर्वाक्यं च वेधसः॥७॥ पृथ्वीवाक्यं च देवानामंशावतरणं तथा ॥ ततो नारदवाक्यं च स्वप्नगर्भविधिस्तथा ॥८॥ आर्यास्तवः पुनः कृष्णे समुत्पत्तिः प्रपञ्चतः ॥ गोव्रजे गमनं विष्णोः शकटस्य निवर्त्तनम् ॥ ९ ॥ पूतनाया वधो भङ्गो यमलार्जुनयोरपि ॥ वृकसंदर्शनं चैव वृन्दावननिवेशनम् ॥ १० ॥ प्रावृषो वर्णनं चापि यमुनाह्रददर्शनम् ॥ कालीयस्यापि दमनं धेनुकस्य च भञ्जनम् ॥ ११ ॥ प्रलम्बनिधनं चैव शरद्वर्णनमेव च ॥ गिरियज्ञप्रवृत्तिश्च गोवर्द्धनविधारणम् ॥ १२ ॥

उठना ॥ ७ ॥ पृथ्वीके वाक्य, देवताओंका अंशावतार होना, नारदवाक्य, स्वप्नगर्भविधि ॥८॥ आर्यास्तव, प्रपंचसे कृष्णकी उत्पत्ति, विष्णुका गोव्रजमें जाना, शकटका तोडना ॥ ९ ॥ पूतनावध, यमलार्जुनवृक्षका गिराना, वृकोंका दीखना, वृंदावनमें जाना ॥ १० ॥ वर्षाका वर्णन, यमुनाह्रदका देखना कालीनागका दमन, धेनुकवध ॥ ११ ॥ प्रलम्बनिधन, शरद्वर्णन, गिरियज्ञप्रवृत्ति, गोवर्द्धनधारण ॥ १२ ॥

गोविन्दका अभिषेक, गोपियोंसे क्रीडा अरिष्टासुरनिधन, अक्रूरका प्रेषण ॥ १३ ॥ अंधकके वाक्य, केशीका निधन, अक्रूरका आना, नागलोकका दर्शन ॥ १४ ॥ धनुर्भंग, कंसवाक्य कथन, कुवलयापीड और चाणूरका वध ॥ १५ ॥ कंसको .निधन, उसकी स्त्रियोंका विलाप करना, उग्रसेनका अभिषेक, यादवोंको आश्वासन करना ॥ १६ ॥ गुरुकुलसे लौटकर आना, रामकृष्णसे वचन कहना, मथुराका घेरना, जरासंधका लौट जाना ॥ १७ ॥ विकद्रुवाक्य, रामका दर्शन और भाषण; गोमन्तका अधिरोहण, जरासंधकी गति ॥ १८ ॥ गोमन्तपर्वतका जलाना, करवीरपुरमें जाना, शृगालवध,

गोविन्दस्याभिषेकं च गोपीसंक्रीडनं तथा॥रिष्टासुरस्य निधनमक्रूरप्रेषणं तथा॥१३॥अन्धकस्य च वाक्यानि केशिनो निधनं तथा॥ अक्रूरागमनं चैव नागलोकस्य दर्शनम्॥१४॥धनुर्भङ्गस्य कथनं कंसवाक्यमतः परम्॥ कुवलयापीडस्यश्चाणूरान्धवधस्तथा॥१५॥ कंसस्य निधनं चापि विलापः कंसयोषिताम्॥उग्रसेनाभिषेकश्च यादवाश्वासनं तथा॥१६॥प्रत्यागातिर्गुरुकुलादथोक्ता रामकृष्णयोः॥ मथुरायाश्चोपरोधो जरासन्धनिवर्त्तनम् ॥ १७ ॥ विकद्रुवाक्यं रामस्य दर्शनं भाषणं तथा ॥ गोमन्तारोहणं चापि जरासंधगतिस्तथा ॥१८॥ गोमन्तस्य गिरेर्दाहः करवीरपुरे गतिः॥ शृगालस्य वधस्तत्र मथुरागमनं ततः ॥१९॥ यमुनाकर्षणं चैव मथुरापक्रमस्तथा॥ उपायेन वधः कालयवनस्य प्रकीर्तितः॥२०॥ निर्माणं द्वारवत्यास्तु रुक्मिणीहरणं तथा ॥ विवाहश्चैव रुक्मिण्या रुक्मिणो निधनं तथा॥२१॥ बलदेवाह्निकं पुण्यं बलमाहात्म्यमेव च ॥ नरकस्य वधः पारिजातस्य हरणं तथा ॥ २२ ॥ द्वारवत्या विशेषेण पुनर्निर्माणकीर्त्तनम् ॥ द्वारकायां प्रवेशश्च सभायां च प्रवेशनम् ॥ २३ ॥ नारदस्य च वाक्यानि वृष्णिवंशानुकीर्त्तनम् ॥ षट्पुरस्य वधाख्यानं मेध्यकस्य निबर्हणम् ॥ २४ ॥ समुद्रयात्रा कृष्णस्य जलक्रीडाकुतूहलम् ॥ तथा भैमप्रवीराणां मधुपानप्रवर्त्तकम् ॥ २५ ॥

मथुरामें जाना ॥ १९ ॥ यमुनाकर्षण, मथुराका अपक्रम उपायसे कालयवनका वध ॥ २० ॥ द्वारकापुरीका निर्माण, रुक्मिणीहरण, रुक्मिका निधन ॥२१॥ बलदेव आन्हिक, बलदेवजीका माहात्म्य, नरकवध, पारिजातहरण॥२२॥ विशेष कर फिर द्वारकापुरीका निर्माण कहना, द्वारका और सभामें प्रवेश ॥ २३ ॥ नारदके वाक्य, वृष्णिवंशका कीर्तन, षट्पुरका आख्यान, मेध्यकका निवर्हण ॥ २४ ॥ कृष्णकी समुद्रयात्रा, जलविहार

वर्णन, भैमवंशवालोंका मधुगान करना ॥ २५ ॥ हरिके निकट छालिक्य गांधर्व (गीत) का गान करना, भानुदुहिता भानुमतीका हरण ॥ २६ ॥ शम्बरवध, धन्योपाख्यान कथन, वासुदेवमाहात्म्य, बाणासुरका युद्ध ॥ २७ ॥ भविष्यपर्वमें पुष्करप्रादुर्भाव कथन, वाराह नृसिंह और वामन चरित्रवर्णन ॥ २८ ॥ कृष्णकी कैलास यात्रा, पौंड्रकवध, हंस डिंभक वध कथन ॥ २९ ॥ त्रिपुरसंहार हे राजन् ! इस ग्रंथमें पापनाशक इतने चरित्र वर्णन किये हैं ॥ ३० ॥ जो सावधान होकर सायंप्रातःकालमें यह वृत्तान्त सुनते हैं हे कुरुराज ! वह कामनाको प्राप्त हो विष्णुके धामको जाते हैं यह धन्य यशदाता

ततश्छालिक्यगान्धर्वमधुग्राहरणं हरेः ॥ भानोश्च दुहितुर्भानुमत्याहरणकीर्तनम् ॥ २६ ॥ शम्बरस्य वधश्चैव धन्योपाख्यानमेव च ॥ वासुदेवस्य माहात्म्यं बाणयुद्धं प्रपञ्चितम् ॥ २७ ॥ भविष्यं पुष्करं चैव प्रपञ्चेनैव कीर्तितम् ॥ वराहं नारसिंहं च वामनं बहुविस्तरम् ॥ २८ ॥ कैलासयात्रा कृष्णस्य पौण्ड्रकस्य वधस्ततः ॥ हंसस्य डिम्भकस्यैव वधश्चैव प्रकीर्तितः ॥ २९ ॥ पुरत्रयस्य संहार इति वृत्तान्तसंग्रहः ॥ कथितो नृपशार्दूल सर्वपापप्रणाशनः ॥ ३० ॥ वृत्तान्तं शृणुयाद्यस्तु सायं प्रातः समाहितः ॥ स याति वैष्णवं धाम लब्धकामः कुरूद्वह ॥ धन्यं यशस्यमायुष्यं भक्तिमुक्तिफलप्रदम् ॥ ३१ ॥ इति श्रीम० खि० ह० भवि० वृत्तान्तसंग्रहो नाम चतुस्त्रिंशाधिकशततमोऽध्यायः ॥ १३४ ॥ इति हरिवंशः समाप्तः ॥ अथ श्रवणफलकथनम् ॥ जनमेजय उवाच ॥ हरिवंशे पुराणे तु श्रुते मुनिवरोत्तम ॥ किं फलं किं च देयं वै तद्ब्रूहि त्वं ममाग्रतः ॥ १ ॥ वैशम्पायन उवाच ॥ हरिवंशे पुराणे तु श्रुते च भरतोत्तम ॥ कायिकं वाचिकं चैव मनसा समुपार्जितम् ॥ २ ॥

आयु भक्ति और मुक्तिका देनेवाला है ॥ ३१ ॥ इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे भविष्यपर्वणि भाषायां वृत्तान्तसंग्रहो नाम चतुस्त्रिंशाधिकशततमोऽध्यायः ॥ १३४ ॥ अथ श्रवणफलकथनम् ॥ ॥ जन्मेजय बोले; हे द्विजोत्तम ! हरिवंशके श्रवण करनेका क्या फल है और क्या विधान है इसमें क्या देना चाहिये सो आप हमसे कहिये ॥ १ ॥ वैशंपायन बोले; हे भरतसत्तम ! हरिवंशपुराण श्रवण करनेमें कायिक वाचिक और मानसिक पाप ॥ २ ॥

सब ऐसे नष्ट हो जाता है जैसे सूर्योदयमें जाडा नष्ट हो जाता है जो अठारेह पुराणोंके सुननेका फल है ॥ ३ ॥ इसमें सन्देह नहीं वह फल वैष्णव (हरिभक्त) को प्राप्त हो जाता है हरिवंशका एक श्लोक आधा श्लोक वा चौथाई ॥ ४ ॥ जो श्रद्धासे सुनते हैं वे वैष्णवपदको प्राप्त होते हैं जम्बुद्वीपको प्राप्त हो कलिमें इसके सुननेवाले दुर्लभ होंगे ॥ ५ ॥ हे राजन् ! यह मैं सत्यही सत्य कहता हूं पुत्रकी कामना करनेवाली स्त्रियोंको निश्चय विष्णुका यश सुनना चाहिये ॥ ६ ॥ और तीन निष्क सुवर्ण दक्षिणामें देना चाहिये यह वाचकको यथाशक्ति फलकी इच्छा कर देना चाहिये ॥ ७ ॥ और

तत्सर्वं नाशमायाति हिमं सूर्योदये यथा ॥ अष्टादशपुराणानां श्रवणाद्यत्फलं भवेत्॥३॥ तत्फलं समवाप्नोति वैष्णवो नात्र संशयः॥
श्लोकार्द्धं श्लोकपादं वा हरिवंशसमुद्भवम् ॥ ४ ॥ शृण्वन्ति श्रद्धया युक्ता वैष्णवं पदमाप्नुयुः ॥ जम्बुद्वीपं समाश्रित्य श्रोतारो
दुर्लभाः कलौ॥ ५ ॥ भविष्यन्ति नरा राजन् सत्यं सत्यं वदाम्यहम् ॥ स्त्रीभिश्च पुत्रकामाभिः श्रोतव्यं वैष्णवं यशः ॥ ६ ॥
दक्षिणा चात्र देया वै निष्कत्रयसुवर्णकम् ॥ वाचकाय यथाशक्त्या यथोक्तं फलमिच्छता ॥ ७ ॥ स्वर्णशृङ्गीं च कपिलां सवत्सां
वस्त्रसंयुताम् ॥ वाचकाय प्रदद्याद्वै आत्मनः श्रेयकाङ्क्षया ॥ ८ ॥ अलंकारं प्रदद्याच्च पाण्योर्वै भरतर्षभ ॥ कर्णस्याभरणं दद्याद्यानं
च सविशेषतः ॥ ९ ॥ भूमिदानं समाद्द्याद्ब्राह्मणाय नराधिप ॥ भूमिदानसमं दानं न भूतं न भविष्यति ॥१०॥ शृणोति श्रावयेद्वापि
हरिवंशं तु यो नरः ॥ सर्वथा पापनिर्मुक्तो वैष्णवं पदमाप्नुयात् ॥ ११ ॥ पितॄनुद्धरते सर्वानेकादश समुद्भवान् ॥ आत्मानं ससुतं
चैव स्त्रियं च भरतर्षभ ॥ १२ ॥ दशांशश्चात्र होमो वै कार्यः श्रोत्रा नराधिप ॥ इदं मया तवाग्रे च सर्वं प्रोक्तं नरर्षभ ॥ १३ ॥

सोनेके सींग मढवाकर बछडे सहित कपिला गौको वस्त्रसहित अपने मंगलके निमित्त वाचकको देनी चाहिये ॥ ८ ॥ और बहुमूल्यके अलंकारभी देने चाहिये कर्ण आभरण और विशेषकर यानभी देने चाहिये ॥ ९ ॥ हे राजन् ! ब्राह्मणके निमित्त भूमिदान करना चाहिये पृथ्वीदानकी समान और दान न है और न होगा ॥ १० ॥ जो ब्राह्मण हरिवंश सुनते और सुनाते हैं वह सर्वथा पापरहित हो वैष्णवपदको प्राप्त होते हैं ॥ ११ ॥ और अपने ग्यारह पितरोंका उद्धार करते हैं. हे राजन् ! अपनेको पुत्र और स्त्रियोंको उद्धार करता है ॥ १२ ॥ हे राजन् ! श्रोताको दशांश हवन करना चाहिये. हे

राजन्! यह मैंने सब आपके आगे वर्णन किया ॥ १३ ॥ इसके स्मरणमात्रसे यह प्राणी सब पापोंसे छूट जाता है, अपुत्र पुत्रको और निर्धन धनको प्राप्त होता है ॥ १४ ॥ जो फल मनुष्योंको नरमेध और अश्वमेधसे प्राप्त होता है वह फल इस पुराणके श्रवणसे मिलता है ॥ १५ ॥ ब्राह्मण हत्यारा, गर्भहत्यारा, गोहत्यारा, सुरापान करनेवाला, गुरुस्त्रीगामी, ऐसे पुरुषभी एकबार पुराण श्रवण करनेसे पवित्र हो जाते हैं इसमें संदेह नहीं ॥ १६ ॥ हे

यस्य स्मरणमात्रेण सर्वपापैः प्रमुच्यते ॥ अपुत्रः पुत्रमाप्नोति अधनो धनमाप्नुयात् ॥ १४ ॥ नरमेधाश्वमेधाभ्यां यत्फलं प्राप्यते नरैः ॥ तत्फलं लभते नूनं पुराणश्रवणाद्‌द्विरैः ॥ १५ ॥ ब्रह्महा भ्रूणहा गोघ्नः सुरापो गुरुतल्पगः ॥ सकृत्पुराणश्रवणात्पूतो भवति नान्यथा ॥ १६ ॥ इदं मया ते परिकीर्तितं महच्छ्रीकृष्णमाहात्म्यमपारमद्भुतम् ॥ शृण्वन् पठन्नाशु समाप्नुयात्फलं यच्चापि लोकेषु सुदुर्लभं महत् ॥ १७ ॥ इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे भविष्यपर्वणि श्रवणफलकथनं नाम पञ्चत्रिंशाधिकशततमोऽध्यायः ॥ १३५ ॥ इति हरिवंशग्रन्थः समाप्तः ॥ श्रीकृष्णार्पणमस्तु ॥

राजन्! यह मैंने तुम्हारे आगे श्रीकृष्णका अपार और अद्भुत चरित्र कीर्तन किया इसके श्रवण पठन करनेसे यह प्राणी लोकमें दुर्लभ फलको प्राप्त होता है ॥ १७ ॥ इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे भविष्यपर्वणि

पंचत्रिंशाधिकशततमोऽध्यायः ॥ १३५ ॥

॥ इति हरिवंशे भाषाटीकायुतं भविष्यपर्व समाप्तम् ॥

श्रीहरिवंशपुराणम् :: श्लोकानुक्रमणी

[१=हरिवंशपर्व :: २=विष्णुपर्व :: ३=भविष्यपर्व]

अ

आ

ऊ

जृम्भणं प्रापणं चैव ३.४४.१३
जृम्भते श्वसते २ १२३.४
जृम्भमाणेव गगने २.१२६.१७
जृम्भमैरावणं चापि २.१०२.२५
जेता क्षत्रस्य सर्वस्य १.१३.२९
जेता जेयो जय श्रीमान ३.६४.२८
जेपुमुनिगणां मंत्रान् २.७५.१६
जेपुमुनिगणास्तत्र कृष्णस्य २.८५.५६
जेष्यामि तौ रणे विप्र ३.११२ ३
जैगीषव्याय तु तथा १.१८.२४
जोतिष्मान् भार्गवश्चैव १.७.६१
ज्याघाततलनिर्घोषो धनुषां १.४७.२५
ज्यां विकूजन्महाशब्दः २.६३.४९
ज्यामघस्याभवद्भार्या शैब्या १.३६.१६
ज्येष्ठः पुत्रशतस्या १.१०.३४
ज्येष्ठाषाढौ शुभौ मासौ २.७९.४३
ज्यैष्ठ्यं कानिष्ठ्य मप्येषां १.२.५६
ज्यैष्ठ्यं मेतेन देवेन २.७१.५३
ज्तोतिर्भूतो ज्योतिषां ३.३२.२९
ज्योतिश्चक्षुश्च १.४०.६१

ज्योतिश्चक्षुषि संबद्धं ३.१७:४०
ज्योतिषामीश्वरं व्योम्नि १.४४.२६
ज्योतींषि घनमुक्तानि २.१६.३१
ज्योतींषि चैव संवृत्ता ३.१९.४३
ज्योतींषि शतशः पेतुः २.७५.१६
ज्योतिष्टोमविभागौ च २.१२२.३३
ज्वरः कृष्णविसृष्टस्तु २.१२३.८
ज्वरस्य तु महायुद्धे २.१२२.९१
ज्वरस्य वचनं श्रुत्वा २.१२३.३४
ज्वराभिभूतमात्मान २.१२३.६
ज्वलनादित्यसंकाशां २.११९.१६१
ज्वलद्भिरिव विप्रैस्तै ३.२३.२८
ज्वलद्भिरिव संयुक्तं २.१२६.५४
ज्वलद्भिर्निशितैर्बाणै १.५.४८
ज्वलन्निव च तेजस्वी ३.१४.२
ज्वलिताग्निप्रतीकाशो १.५४.७
ज्वालाशतसहस्राढ्यं २.५३.२९
ज्ञाति कार्य चिकीर्षुस्त २.१०१.२८
ज्ञाति कार्यार्थसिद्ध्यर्थं २.३४.८
ज्ञातिभेद मयात्कृष्णस्त १.३९.३१

ज्ञातियोधान्समानीय २.९६.९
ज्ञातेस्समानवंशस्य २.५९.२४
ज्ञात्वा तु वरदानं २.५७.१८
ज्ञात्वा प्रमाणं पृथ्व्याश्च १.३.२३
ज्ञात्वा विष्णुं क्षितिगतं २.१.१
ज्ञानध्यानतपः पूजावेद १.२३.१७
ज्ञानं यदाप्त भवता ३.१०८.१७
ज्ञानलेशाद्विहीनात्मन् ३.१०८.१
ज्ञानवान् दृष्टविश्वात्मा ३.१०.५४
ज्ञानविज्ञानसंपन्नो ३.१२६.२

ड

डिण्डिमैर दृहासैश्च ३.८६.९
डिम्भकः शक्विभृच्छ्रः ३.१२५.२६
डिम्भको वीर्यसम्पन्नो ३.१२९.२

त

त ऊचुः सर्वदेवानाम २.८२.१७
त एते पितरो देवा १.१७.४२
तं कालनेमि समरे १.४६.५८
तं कूर्दमान मधुसूदनश्च २.८९.१७
तं कृच्छ्रगतमाज्ञाय २.६०.१०
तं कृष्णलक्ष्णया वाचा २.२७.२०

तं कृष्णौ रौक्मिणेयश्च २.९०.२०
तं क्रीडमानं गोपालाः २.११.२५
तं गतासु गतश्रीकं पतितं २.१३.२१
तं गत्वा यज्ञवाटं ३.६९.५८
तं गर्भं विधिना हृष्टा १.२५.७
तं गृहीत्वा रणमुखे ३.५४.५१
तं गृह्य बाहुना कृष्णो ३.१२३.१७
तं गोपाः पर्वताकारं २.१७.२४
तं घंटैः काञ्चनैर्दिव्यैः २.२६.५७
तं च दिव्यं द्रुमश्रेष्ठं २.९९.२३
तं च देशं व्यवसितः १.५३.२१
तं च नेतुं समायाता २.११९.९
तं च वृद्धं प्रियसुतं २.२६.१८
तं च शक्रस्यदयितं २.९९.१९
तं च श्रुत्वा महानादं २.१२२.२७
तं चापि दशभिर्वीरो ३.९८.१०
तं चाश्वमेधिकं सोऽश्वं १.१४.३०
तं जघान महाघोरं २.६३.८६
तं जनाः पर्यधावन्त १.३८.२३
तं जयन्तो नियत्याथ पतितं २.७३.७६

तं जयाय सुरेन्द्राणां १.४८.३८
तं जिगाय ततो रुक्मी २.६१.२९
तं तथा पतितं दृष्ट्वा २.११६.५८
तं तपन्तमिवादित्यं १.४५.२४
तं तु कृष्णश्चगोपाश्च २.१४.५६
तं तु गर्भं प्रयत्नेन २.४.९
तं तु पञ्चत्वमापन्नं १.२०.९९
तं तु बद्धं गले दृष्ट्वा १.१२.२२
तं तु रैवतकेऽद्राक्षं तदासीन २.६९.२५
तं त्यजाव महाराज २.३७.२३
तं दिव्यं कुसुमं वृक्षं २.७५.५४
तं दृष्ट्वा चित्रलेखा तु २.११९.३
तं दृष्ट्वा दानवा देवमभि २.८४.३४
तं दृष्ट्वा दुद्रुवुर्गोपाः २.२४.१६
तं दृष्ट्वा निर्ययौ हृष्टरस २.५७.४१
तं दृष्ट्वा भगवानकृष्ण २.९७.१४
तं दृष्ट्वा मूर्च्छितं २.१२६.७२
तं दृष्ट्वा विस्मयं तत्र २.१२२.२४
तं दृष्ट्वा समनुप्राप्तं २.५५.९३

तस्थ संस्थाकृतमिदं ३.२.३१
तस्य सत्यरथानाम १.१३.२४
तस्य सत्यव्रतो नाम १.१२.१२
तस्य सम्यक्प्रचारेण २.३७.४२
तस्य सम्यक् प्रवृत्तस्य २.३७.२५
तस्य सुप्तस्य शुशुभे १.५०.११
तस्यसिहासनस्थस्य २.२६.१६
तस्य सैन्यस्य निनदं २.११६.६०
तस्य हैमवती कन्या सत्तां १.१२.४
तस्य ह्येका महाराज १.४१.१८
तस्याग्नेर्विस्फुलिङ्गानां ३.२८.७५
तस्याग्रे समपद्यन्त ३.८६.१
तस्याज्ञया वधिष्यामो २.८६.८२
तस्यातिमात्रामृद्धि च १.२.१२
तस्याथ पुरुषेन्द्रस्य २.६३.२१
तस्यान्ववाये जज्ञेऽसौ २.५६.२१
तस्यान्ववाये भीमस्य २.५६.१२
तस्यान्ववाये महति १.२०.४०
तस्मिन्विशसने घोरे चक्र २.४३.४१
तस्यापरे दाशजनाः प्रवाला २.३८.३१
तस्यापि राजन्विप्रस्य ३.१११.२६
तस्याः पुत्रो महानासी १.१२.६
तस्या पुर्या महावीर्यो १.५४.६३
तस्याः प्रपातं दक्ष्याम २.३६.६०
तस्याः प्रीतोऽभवद्भर्ता १.२७.१८
तस्याभिपततः खड्गं २.६०.२४
तस्याभ्याशगतो भाति २ २६.५६
तस्यांगतायां कंसस्तु २.४.४६
तस्यां जनिष्यते पुत्रो १.२७.२०
तस्यां जज्ञे महाबाहुः १.३८.५१
तस्यां तु शप्तमात्रायां १.२६.३२
तस्यां देवपुराभायां २.६३.२३
तस्यां प्रणस्य यातायां २.६४.१६
तस्यां प्रतिहतायां ३.४५.३०
तस्यां स देव्या राजर्षि १.३२.२
तस्यां सभायां दिव्या ३.४२.१६
तस्यां सभायामास्ते ३.६६ ३२
तस्यामाधत्त गर्भ च १.३७.११
तस्यामुत्पादयामास पुत्रा २.६०.३७
तस्यामुपरि मेंदिन्यां २.४६.३३
तस्यामेव सुरम्यां ३.१४.४२
तस्यायं प्रथमः कल्पः २.४०.३७
तस्यारसितशब्देन रथने २.४४.११
तस्यारुरोह सहसा मध्यमं २.१२.३४
तस्यार्चेर्विस्फुलिङ्गानां ३.१८.१२
तस्यार्जुनकदम्बाढ्या २.११.८
तस्याव्यक्तस्य योव्यक्तो २.७१.१४
तस्या शक्त्या प्रभावेण ३.३६.१८
तस्याश्चैवान्तरप्रेप्सुर १.३.१३१
तस्याश्रमे च तं गर्भं १.१४.८
तस्या सभायां दैत्येन्द्रो ३.४२.१
तस्यासीद्दयिता भार्या २.३७.१३
तस्यासीद्विजयो युद्धे तत्र १.३६.१७
तस्याः सुस्राव नेत्राभ्यां २.६६.२४
तस्यास्तद्वचनं श्रुत्वा २ ४४.५३
तस्यास्तद्ववनं श्रुत्बा २.११६.६८
तस्या स्तनं पपौ कृष्णः २.६.२६
तस्यास्तनुस्तमोद्वारा १.५०.२८
तस्यास्तं समयं सर्वं १.२६ १७
तस्यास्ति कन्यारत्नं हि २.६१.४१
तस्यास्तु विधिवन्नाम २.५६.३३
तस्यास्त्रचरितं मार्गं २.१६.८०
तस्यास्ये वितता ह्यायो २.१२७.६६
तस्यास्त्रैलोक्यसुन्दर्या २.४७.८
तस्यास्त्वं नवमो गर्भः २.२.३५
तस्याःहं समनुप्राप्तो ३.६६.५५
तस्येच्छया वाति वायुरा- २.८६.२६
तस्येष करसंक्षेपो ३.११८.३४
तस्यैव च सहायोऽन्यो ३.१३.२
तस्यैव च सुवृत्तस्य २.३७.४४
तस्यैव तु प्रसादेन ३.६७.८
तस्योत्तमांग स्वे काये २.१४.५२
तस्योत्तमे महाश्रृङ्गे २.३६.६७
तस्योत्तरं नृपश्रेष्ठ ३.१२७.५
तस्योत्पन्नं भयं ३.१०.१८
तस्योत्पन्नमिदं लोके २.१२१.४
तस्योत्संगे घनश्यामं २.२६.५८
तस्योत्सिक्तस्य बलवान् २.२४.३६
तस्योद्यतस्तदा दक्षो १.३.१२
तस्योपतिष्ठः सूर्यं १.३८.१६
तस्योपरि गवां लोकस्साध्या २.१६.३०
तस्योपरि जलौघस्य ३.३५.१
तस्योपविष्टस्य मुखं २.१६.७
तस्योरसि सुदुःखार्ता २.४४.४२
तस्योरुं सहसा भित्वा १.४५.४६
तांश्च राज्ञः शेरेः सर्वा २.६०.२६
तांश्च हत्वा विविशतुर्मध्यं २.२६.४१
तांश्चापि नष्टान्विज्ञाय १.३.२७
तांश्चासुरान्समुत्पाठ्य १.५५.२०
तांस्तदाब्रुवतः सर्वान्महर्षी १.५.११
तांस्तु दृष्ट्वा महाभागान् १ ३.८
तांस्तु विद्रवतो ३.६०.५४
ताः कन्या प्रददौ ३.२२.६
ताः कन्या भैममुख्यांनां २.८३.४१
ता गावः प्रद्रुता हृष्टा २.१७.३३
ता जले स्थलवत्स्थित्वा २.८८.४६
ताड्यतामत्र भेरी ३.६३.१६
तात मातर्व्रजे गोष्ठे ३.१३०.६
तात युक्तास्स्म वयसा २.३८.५
तादृक् स्वप्नो मयो दृष्टो २.१०८.६

फ

ब

म

स गृहीत्वांकुशं चैव	१ ५४.५१	संग्रामेषु प्रहर्तव्यं तेन	२.७०.३५	स च स्वर्गी ततः	३.८३.३२	स ज्येष्ठः सर्वभूतानां	२.६८.३२	स तत्र भोगी नागन्द्रः	२.५५.६६
स ग्रहग्रस्तकेशश्च कंसो	२.३०.७८	संघट्टनः संकुटनः	२.१०९.७८	स चाग्निर्विधिवत्तत्र	३.२९.४	सचितानि शवान्यासन्	३.१२२.१९	स तत्र प्रविशन्नेव	१.५०.७
सग्रहं कृष्ण नक्षत्रं	२.४०.४४	सचक्रकूबरह्य सध्वज	३.६०.४२	स चाग्निर्वैष्णवैर्लोकै	३.२८.९०	सचिन्तयति मध्यस्थो	३.१०.१९	स तत्र रजनीमेकामुषित्वा	२.८६.४३
सघण्टाघारिभिश्चैव	३.३२.९	स चक्रमुशलो नाम संग्राम	२.३९.७५	स चास्योरसि विस्तीर्णे	१.५२.३	संच्छाद्यमानः शस्त्रोघै	३.५४.५६	स तत्र वयसा तुल्यैर्वत्स	२.११.२४
संगतश्चापि लोकानामा	२.२६.७०	स चक्रेण शिरस्तस्य	२ ९०.६२	सचित्र भानुरशैलेन्द्रो	२.४२.५८	संच्छाद्यार्ताव तोयेन	३.१९.२६	स तत्र वासयामास श्वफल्क	१.३४.६
संगतिस्तव तस्यास्तु	३.१०९.१९	स चक्रेणार्कतुल्येन	२.४३.३६	सचित्राष्टास्त्रिचरणा	२.२९.२	संच्छिद्य पाशान्संवीस्ता	२.६३.५६	स तत्र सहसा क्षिप्तस्तिी	२.३७.५२
संगरे निहतो देव	३.१३१.५	स च घोरः पिशाचोऽपि	३.८१.११	स चिन्तयित्वा धनुषो	२.२८.१	संजीवयामास मृतं पुत्रं	२.१०२.२७	स तत्र स्थापयित्वा	२.७५.४६
संगृह्य तमलंकार ताश्च	२.४१.३५	स चतं शोधयामास	२.३८.१५	स चिन्तयित्वा संरब्धो	२.१८.२७	संज्ञप्तमश्व तत्रास्य	३.५.१२	स तत्राम्बुप्रतिप्रख्यं	१.५०.४
संगृह्य ते कलत्राणि	२.५६.१६	स च तेनैव नाम्ना तु	२.७.३६	सचिवैः श्राविताः सर्वे	२.५०.८१	संज्ञा तु पार्थिवी तात	१.९.२१	स तत्रैकेन पादेन शकटं	२.६.९
संगृह्य वचनं तस्य	२.५८.७४	स च दूतवचश्श्रुत्वा	२.२४.६	स चेतनां पुनः प्राप्य	२.१०६.६	संज्ञां पुनः समालम्ब्य	३.९७.९	स तथेति तदा देवमुक्त्वा	२.७५.२१
संगेषु भावमोहाभ्यां	३.२७.३४	स च दृष्ट्वा महोत्पातान्	३.४६.२६	स चोपेन्द्रो वृषं हत्वा	२.२१.२४	सडिण्डिमैः सभेरीकैः	३.३२.१०	स तथेति ब्रुवन्नेव	१.२८.१७
संग्रामकाले कालज्ञः	३.२२.११	स चन्द्रविषयं राजन्	३.२८.४८	स चोरगपतिः क्रुद्धो	२.१२.५	स ततः पौण्ड्रको	३.१००.२६	स तथेति हरिर्विष्णुर्ययौ	३.१३१ ११
संग्रामः पुष्करेऽस्माकं	३.११९.१४	स च पापान्महाघोरान्	३.११०.९	सच्छत्रासादिनश्चैव	२.३५.८०	सततं दूषयन्विष्णुं	३.८०.२७	स तथैव यथापूर्वं	३.१०.२६
संग्रामं गच्छतां घोरमेतयो	३.१०५.१७	सच पुत्रो मम ज्याया	२.५.८	सच्छत्रोत्सेधिनस्सर्वे	२.४३.३०	सततं पीड्यमानं च कंसे	२.२६.६	स तदन्तः पुरं सर्वं ददर्श	२.३७.७२
संग्राममर्षी घोरः	३.५८.९८	सच प्रासादमुख्योऽथ	२.९८.४५	स च्छिन्नधन्वविरथः	२.६०.२३	सततं सहितो देव्या	२.६८.३०	स तद्विवेश हृष्टात्मा	१.५०.२
संग्रामयुक्तस्तेजस्वी दैत्य	२.४१.३८	स च बाणसहस्रैश्च	२.७५.९	स जरां प्रतिजग्राह	१.३०.३४	स तत्कारणमाचख्यौ	१.२४.७	सतनुत्राणनिर्स्त्रिशास्सायुधा	२.४३.२९
संग्रामश्च महान्कृष्ण	२.३९.७२	स च विप्रसुतो राजन्	३.१०४.१९	सजलाम्भोदसदृशं विद्युत्	१.४८.४	स तत्प्राप्य महद्राज्यं	१.२५.२३	सतनुत्रास्सनिर्स्त्रिशाः	२.३५.७९
संग्रामः सुमहानासीदित्युक्तं	३.१०३.७	स च विष्णु हृषीकेशं	३.१०५.२५	स जहाराथ वेगेन रौहिणेयं	२.१४.२९	स तत्र गास्तु प्रसभं	२.२१.११	स त पिता चक्रधरो	२.१०५.७७
संग्रामान् सुबहून् कृत्वा	१.३३.१३	सच समरपरिश्रमं	२.१०७.३२	स जातः सर्वकृद्देवो भ्राता	२.७१.२४	स तत्र त्वरितं द्वारि	२.४.३०	स तं कृच्छ्रगत	३.७२.५९
संग्रामे युद्धशौण्डेन	३.५९.२४	सच सर्वास्त्रविन्नित्यं	३.१२८.११	सज्यगाण्डीवमेवाथ	२.८५.३१	स तत्र दानवः क्रीडन्वर्ष	१.५४.२५	स तं जग्राह धर्मात्मा	२.९६.४०

संदधत्कार्मुकं चैव	२.१२५.३
संदधे चापमादाय शरं	२.१०६.४
संदधे चापमानम्य	२.१०७.२४
संदष्टोष्ठपुटः क्रोधाद्वराह	३.४६.३६
संदष्टोष्ठपुटाः केचित	२.१२१.६८
संदष्टोष्ठपुटाः केचित	३.१२२.२५
संदह्य स शरो दैत्यं	३.१२३.२१
संदिष्टो बलिपुत्रेण	३.५१.३६
संदेहममरश्रेष्ठं भगवन्त	१.१८.२
संध्याकाले तु संप्राप्ते	२.८१.२२
सन्ध्यारागो जपावर्णो	२.११२.४
सन्धि च विग्रह चैव	२.३९.७
सन्नतिं विनयं शीलं	२.९४.३१
सन्नद्ध एव चोवाच ब्रह्म	२.८४.६६
सन्नद्धं तत्र युध्यन्तं	३.५७.२०
सन्नद्धा कुशलाः सर्वे	३.१३३.३६
सनद्धा निर्ययुहृष्टाः	२.१०४.४३
सन्नद्धाः समदृश्यन्त	३.५४.३६
संनह्यतां बलं सर्वं	३.१२०.३
सन्नादयन्दिशस्सर्वा संर्वा	२.४२.८
सन्नाहभेरी कृष्णस्य	२.१२१.१६
संनिकृष्टानियान्यास	२.८.१२
सन्निकृष्टे ततो नागे	२.२९.२७
सन्निकृष्टे वने ते तु	२.२२.९२
सन्निपाते तु तौ मल्लौ	२.३०.४९
सन्निविष्टं विमानस्थं	१.१७.८
सन्निवृत्याथ दष्टोष्ठः	२.८५.१५
स पक्षबलविक्षपैर्विधुन	२.१२२.९
स पक्षबलविक्षेपैर्हिमाद्रि	२.६४.४५
स पक्षवातसंक्षुब्धं	२.१०० ३
सपक्षिगणमातंङ्ग समृगव्या	२.६४.४०
स पञ्चकन्या मध्यस्थो	२.३७.७१
सपताकध्वजोदग्र सादित्य	१.४३.६
सपत्नस्ते गुणोपेते	२.६५.३७
सपत्नीनामधि निय भवेयं	२.७९.१२
सपत्नीरधितिष्ठेयं पश्येयं	२.८१.३३
स पद्मे पद्मनाभस्य नाभि	१.५२.२८
स पपात नरेन्द्राणा	२.११०.१९
स पपात महाबाहुर्वसुधा	२.६०.२५
स परीत्य ततो वीरो	२.८४.२६
स पर्वतगुहां कांचित्प्रविश्य	२.५७.४७
स पर्वतनिभाकारो	३.५१.१५
सपर्वतांस्तरून्गुल्मांल्लता	३.९.११
स पारिजातपुष्पस्य	२.६६.१५
स पारिजातं यदि न	२.६८.३९
स पारि जातं यदि न	२.७०.९
स पाटितो भुजेनाजौ	२.२४.४५
सपार्षदस्तवनाचारस्तव	१.२९.४०
स पितृव्यं गदंवीरं	२.९४.४४
स पीठे कांचने शुभ्रे	२.११०.३०
स पुण्यमतिसौभाग्यं	२.६८.५
सपुत्रं भोजयित्वा	२.११३.३२
स पूज्यमानस्त्रिदशैः	२.६४.७१
सप्तकिष्कुपरीणाहं	३.५५.११४
सप्त चैवोत्थिताः सूर्या	३.५३.२८
सप्त ते सप्तभिश्चैव	१.७.५३
सप्तत्या शभुहन्तारं	२.१०५.४१
सप्तद्वीपान्विचरति नटः	२.९२.५३
सप्त द्वीपान्ससिन्धूंश्च	२.११३.२०
सप्तधूमनिभा घोराः	३.४६.११
सप्तमं च ततो वायुमष्टमं	३.१४.४९
सप्तमस्तारणो धीमानस्त्र	३.११८.३८
सप्तमो देवकीगर्भो	२.२.३१
सप्तरात्रेण ते भीरु	२.११८.६०
सप्तरात्रे तु निवृते	२.१८.६३
सप्तर्षयो महाभागा	२.१२७.१२५
सप्तविंशतिऋक्षाणि	२.१२०.१३
सप्तविंशतिमिन्दोस्तु	१.२५.२२
सप्तविंशति याः प्रोक्ता	१.३.६३
सप्त व्याधा दशार्णेषु	१.२४.२०
सप्त सप्त च सप्ताथ	२.८१.२८
सप्तस्वरगता यस्य	३.६२.१४
सप्तार्चिषः समाप्ति च	३.८४.२५
सप्ताशीतिसहस्राणि	३.१२२.२१
सप्ताहे जातमात्रे तु	२.१०४.५८
सप्तेमान्दे वकीगर्भा	२.२.१०
सप्तैत यजतां श्रेष्ठं	१.१८.४
सप्तैते जनयन्ति स्म प्रजा	१.१.३६
स प्रदेशस्तु भगवान	२.१२७.५
स प्रविष्टः पुनः	३.१०.२५
स प्रविष्टस्तु वेगेन तं व्रजं	२.४६.३
स प्रहस्य ततो वाक्यं	२.१२७ ९६
सफलं कर्म कुर्वाणं	३.२६.३९
सफेनं व्रक्रजं चैव ववर्ष	२.२४.२७
स फेनो वारिणाविश्य	३.२८.१२
स बद्धांगदनिर्व्यूहाश्चि	२.२०.२१
स बभौ तां गदां	३.५६.६०
स बभौ मूर्तिलिंगस्थः	२.६३.६
सबलास्ते महीपाला	२.३५.२५
सबलास्ते महीपाला	२.४२.१२
सबलेपु नरेन्द्रेषु शान्त	१.५३.५५
सबालयुवतीवृद्धस्स च	२.१२.१९
स बाला मोहिता राजन्	२.११७.३१
स बालो ब्रह्मदत्तस्य	१.२०.९४
स बाहुशतमुद्यम्य सर्वा	१.४८.२९
स बृहस्पतिना सार्द्धं मन्त्र	२.९१.१६
स भगस्य हयान्हत्वा	३.५५.१३०
स भवान् कथयत्वेतां	१.१६.१७
सभाक्षो भङ्गकारिस्तु	१.३८.४८
सभागतान्सोमरविप्रकाशा	२.५२.२

इति श्रीहरिवंशपुराणम् समाप्तम्